वार्षिक-रिपोर्ट
1982-83

वार्षिक रिपोर्ट

1982-83

विद्ययाऽमृतमश्नुते

एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
National Council of Educational Research and Training

दिसंबर 1983
अग्रहायण 1905

P.D. 1T-PD

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 1983

प्रकाशन विभाग में, सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित तथा मयूर प्रेस, 27-डी. एल. एफ. इंडस्ट्रियल एरिया, नजफगढ़ रोड, नई दिल्ली-110015 में मुद्रित।

कृतज्ञता-ज्ञापन

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, केन्द्रीय शिक्षा तथा संस्कृति की राज्य मंत्री और शिक्षा के उपमंत्री द्वारा परिषद् के कार्यों में गहरी रुचि लेने के लिए उनके प्रति अत्यन्त कृतज्ञ है। परिषद् उन सभी विशेषज्ञों के प्रति आभारी है जो इसकी विभिन्न समितियों में रहकर अपना बहुमूल्य समय इसके कार्यों के लिए देते रहे हैं और अन्य कई प्रकार से परिषद् की सहायता करते रहे हैं। परिषद् उन सभी संगठनों और संस्थाओं, विशेष रूप से राज्य-शिक्षा-विभागों और राज्य शिक्षा संस्थानों तथा राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषदों के प्रति भी कृतज्ञ है, जिन्होंने इसके कार्यकलापों को चलाए रखने में सहयोग दिया है। परिषद् यूनेस्को, यूनीसेफ़, यू० एन० डी० पी० और ब्रिटिश काउंसिल का भी सधन्यवाद आभार स्वीकार करती है, जिन्होंने इसे सहायता प्रदान की है।

विषय-सूची

कृतज्ञता-ज्ञापन v

1. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् : भूमिका एवं संरचना 1
2. वर्ष के उल्लेखनीय कार्य 12
3. प्रारंभिक शैशवकाल की शिक्षा 23
4. प्रारंभिक शिक्षा का सार्वजनीकरण 30
5. सुविधा-वंचित वर्गों की शिक्षा 50
6. पाठ्यचर्या, पाठ्यपुस्तकें तथा सहायक पुस्तकें 54
7. शिक्षा और कार्य 82
8. अध्यापकों और अन्य कार्मिकों का प्रशिक्षण 89
9. शैक्षिक प्रौद्योगिकी और शिक्षण-साधन 142
10. जनसंख्या शिक्षा 163
11. शैक्षिक मूल्यांकन 171
12. सर्वेक्षण, आधार-सामग्री प्रक्रिया और प्रलेखन 179
13. अनुसंधान और नवीन प्रक्रियाएँ 186
14. प्रतिभा की खोज 228
15. विस्तार के कार्य और राज्यों के साथ काम करना 237
16. अंतर्राष्ट्रीय सहायता और अंतर्राष्ट्रीय संबंध 242
17. प्रकाशन 252
18. प्रशासन, वित्त एवं कल्याण के कार्यकलाप 266

परिशिष्ट

(क) व्यावसायिक शैक्षिक संगठनों को सहायता देने की योजना 277
(ख) राज्यों में परिषद् के क्षेत्र-सलाहकारों के पते 285
(ग) समितियों की संरचना 288
(घ) सन् 1982-83 के दौरान समितियों द्वारा किए गए मुख्य निर्णय 321

1

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् : भूमिका एवं संरचना

भूमिका और कार्य-व्यापार

भारत में स्कूल स्तर की शिक्षा की गुणवत्ता को सुधारने के निमित्त, शैक्षणिक आवश्यकताओं की आपूर्ति कराने के लिए, भारत सरकार ने शैक्षिक एवं व्यावसायिक मार्ग-दर्शन ब्यूरो (1954), राष्ट्रीय बुनियादी शिक्षा संस्थान (1955), राष्ट्रीय दृश्य-श्रव्य शिक्षा संस्थान (1959), माध्यमिक शिक्षा प्रसार कार्यक्रम निदेशालय (1959) आदि जैसे जो अनेक विशेषीकृत संस्थान बना रखे थे, उनको मिला करके 1 सितम्बर 1961 को राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन० सी० ई० आर० टी०) की स्थापना की गई थी।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् संस्था पंजीकरण अधिनियम (1860) के अधीन पंजीकृत एक स्वायत्त संगठन है। यह शिक्षा और संस्कृति मंत्रालय के शैक्षिक सलाहकार के रूप में कार्य करती है। स्कूल स्तर की शिक्षा में अपनी नीतियों एवं अपने कार्यक्रमों को बनाने और लागू करने के लिए शिक्षा मंत्रालय एन० सी० ई० आर० टी० की विशेषज्ञ सेवाओं का लाभ उठाती है। परिषद् का वित्त पोषण पूर्णतः सरकार करती है। संस्था की विवरणिका के अनुसार, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के उद्देश्य हैं—शिक्षा, विशेषकर स्कूल स्तर की शिक्षा के क्षेत्र में, शिक्षा और संस्कृति मंत्रालय को अपनी नीतियों और प्रमुख कार्यक्रमों को लागू करने की दिशा में सलाह तथा सहायता प्रदान करना।

कार्यक्रम एवं गतिविधियाँ

इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए परिषद् निम्नलिखित कार्यक्रम और गतिविधियाँ चलाती है :

(क) स्कूल स्तर की शिक्षा के सभी क्षेत्रों में **अनुसंधान** करती है, अथवा करवाने के लिए सहायता देती है, उसे बढ़ावा देती है और उनमें समन्वय करती है।

(ख) सेवा-पूर्व और सेवाकालीन **प्रशिक्षण**, विशेषकर उच्च स्तर के प्रशिक्षण आयोजित करती है।

(ग) शैक्षिक पुनर्रचना में लगे हुए संस्थानों, संगठनों, और माध्यमों के लिए **विस्तार सेवाओं** का आयोजन करती है।

(घ) सुधरी हुई शैक्षिक विधियों, अभ्यासों और **अभिनव परिवर्तनों** को विकसित करती है और उन पर प्रयोग करती है।

(ङ) शैक्षिक जानकारी को एकत्र करती है, उन्हें सम्पादित करती है और फिर उन्हें **प्रचारित-प्रसारित** करती है।

(च) स्कूल-शिक्षा के **गुणात्मक सुधार** के लिए बने कार्यक्रमों को विकसित करने अथवा लागू करने में राज्यों एवं राज्य-स्तर के संस्थानों, संगठनों और माध्यमों की सहायता करती है।

(छ) यूनेस्को, यूनिसेफ़ जैसे अंतर्राष्ट्रीय संगठनों और अन्य देशों के राष्ट्रीय स्तर के शैक्षिक संस्थानों को **सहयोग** प्रदान करती है।

(ज) अन्य देशों के शैक्षिक कर्मियों को प्रशिक्षण एवं अध्ययन की सुविधाएँ प्रदान करती है।

(झ) अध्यापक-शिक्षा की राष्ट्रीय परिषद् के शैक्षणिक सचिवालय के रूप में कार्य करती है।

अनुसंधान

शैक्षिक अनुसंधान के क्षेत्र में, राष्ट्रीय परिषद् के प्रयास रहे हैं कि ऐसे कार्यक्रम और कार्यकलाप शुरू किए जाएँ और उन्हें बढ़ावा दिया जाए जो अनुसंधान की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए शैक्षिक प्रणाली में अपेक्षित परिवर्तन लाने वाले हों। ऐसे कार्यक्रम शिक्षा प्रणाली के लिए प्रासंगिक होते हैं और भारत में शैक्षिक शोध के क्षेत्र में नेतृत्व की व्यवस्था प्रदान करते हैं।

रा० शै० अ० और प्र० प० अनुसंधान के लिए बाहर की संस्थाओं को वित्तीय सहायता भी प्रदान करती है। वरिष्ठ और कनिष्ठ फ़ेलोशिप प्रदान कर यह अनुसंधान को बढ़ावा देती है ताकि शैक्षिक समस्याएँ ढूंढी जा सकें और निपुण अनुसंधान कर्मियों का दल बनाया जा सके। व्यक्तिगत रूप से शोध करने वालों, स्कूल शिक्षकों, विश्वविद्यालय के शैक्षणिक कर्मचारियों और शैक्षिक अनुसंधान की संस्थाओं को वित्तीय सहायता और शैक्षणिक सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाती हैं। पीएच० डी० के अच्छे प्रबन्धों को प्रकाशित करवाने के लिए परिषद् वित्तीय सहायता भी देती है।

शैक्षिक सुविधाओं और आवश्यकताओं से सम्बद्ध आधार सामग्री उपलब्ध कराने के लिए समय-समय पर रा० शै० अ० और प्र० प० शैक्षिक सर्वेक्षण भी कराती है। आधार सामग्री के प्रक्रियन और भंडारण के लिए परिषद् के पास कम्प्यूटर टर्मिनल है।

विकास

शिक्षा में विकासात्मक गतिविधियाँ परिषद् के कार्य का प्रमुख भाग हैं। परिषद् स्कूल-शिक्षा की परिवर्तनशील पद्धति की जरूरतों के अनुरूप पाठ्यक्रमों के विकास और पाठ्य-पुस्तकों, शिक्षक संदर्शिकाओं, छात्रों की अभ्यास-पुस्तिकाओं एवं पूरक पठन-पाठन सामग्री के निर्माण का कार्य हाथ में लेती है। यह कार्य सदा चलता रहता है। रा० शै० अ० और प्र० प० उत्कृष्ट शिक्षण-सामग्री, शिक्षण-साधनों, विज्ञान किटों, प्रयोगशाला उपकरणों, शैक्षिक फिल्मों, वीडियो कैसेटों, रेडियो आलेखों आदि का निर्माण करती है और शिक्षण तथा मूल्यांकन की सुधरी हुई पद्धतियों पर कार्य करती है।

रा० शै० अ० और प्र० प० अनौपचारिक शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोगात्मक कार्यक्रमों को भी हाथ में लेती है ताकि शैक्षिक विकास के लिए अभिनव मार्ग कौशल को अपनाने के निमित्त पर्याप्त अनुभव उपलब्ध हो जाए। शिक्षा के व्यावसायीकरण वाले कार्यक्रम के अंश के रूप में लाए जाने वाले कोर्सों के लिए पाठ्यक्रमों के विकास तथा शिक्षण-सामग्री के निर्माण एवं व्यावसायिक सर्वेक्षणों के संचालन में परिषद् राज्यों की सहायता करती है।

प्रशिक्षण

अध्यापकों को सतत रूप में सहायता मिलती रहे, इस उद्देश्य से सारे देश में स्थापित किए गए प्रसार सेवा विभागों और केन्द्रों के साथ रा० शै० अ० और प्र० प० गहन रूप से कार्य करती है। कक्षा में होने वाली पढ़ाई को सुधारने की दृष्टि से परिषद् के क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय और क्षेत्र कार्यालय प्रसार एवं अभिनव परिवर्तनों वाले कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करते रहते हैं।

भारत के स्कूलों की पढ़ाई एवं व्यवस्था को सुधारते रहने के विचार से परिषद् महत्वपूर्ण कार्यक्रमों का आयोजन करने में पहल करती रहती है। शैक्षिक संस्थाओं के प्रिंसिपलों, अध्यक्षों, परामर्शकों, कैरियर मास्टरों, अध्यापक-शिक्षकों, निरीक्षकों, अधीक्षकों, आदि के लिए परिषद् तरह तरह के पाठ्यक्रम, कार्यक्रम, प्रतियोगिताएँ और सम्मेलन करती रहती है।

प्रसार कार्यक्रम इन बातों से सम्बद्ध होते हैं—आंतरिक सुधार परियोजनाएँ, अच्छी स्कूल व्यवस्था, अभिनव परिवर्तनों को प्रोत्साहन, प्रमुख कार्मिकों के लिए राष्ट्रीय परिचर्चाएँ, राज्यों के अधिकारियों के लिए राष्ट्रीय स्तर के सम्मेलन और राष्ट्रीय सामग्रियों की प्रदर्शनियाँ। इस प्रकार के प्रसार के कार्यकलापों के अंतर्गत सभी 22 राज्य और 9 केन्द्र शासित प्रदेश आ जाते हैं।

प्रकाशन एवं विकीर्णन

रा० शै० अ० और प्र० प० कक्षा I से XII तक के लिए पाठ्यपुस्तकें प्रकाशित करती है। देश में स्कूल-शिक्षा के स्तर को सुधारने की दिशा में अपने समग्र प्रयास के एक अंश के रूप में यह अन्य प्रकार की अमुद्रित सामग्री का निर्माण भी करती है। राष्ट्रीय परिषद् की पाठ्यपुस्तकें, अभ्यास-पुस्तिकाएँ और अध्यापक-संदर्शिकाएँ अपने किस्म की आदर्श-पुस्तकें होती हैं। परिषद् के विभिन्न विभागों द्वारा किए जा रहे शोध और विकास के कार्यों के फलस्वरूप ही इन पुस्तकों का आविर्भाव होता है। हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी में प्रकाशित परिषद् की पाठ्यपुस्तकें और सम्बद्ध सामग्री देश के विभिन्न राज्यों और संघ शासित क्षेत्रों के अधिसंख्य स्कूलों में इस्तेमाल होती हैं। सभी राज्यों को यह सुविधा दी गई है कि वे इन पाठ्यपुस्तकों को चाहे ज्यों का त्यों लगा लें या अपनी आवश्यकताओं के हिसाब से इन्हें अपने लिए अनुकूलित कर लें।

शैक्षिक जानकारी के **विकीर्णन** के लिए परिषद् चार पत्रिकाएँ प्रकाशित करती है। **'प्राइमरी शिक्षक'** और **'प्राइमरी टीचर'** प्राथमिक स्कूलों के शिक्षकों के लिए सार्थक और प्रासंगिक सामग्री प्रकाशित करती हैं। इस सामग्री को सीधे कक्षा में इस्तेमाल किया जा सकता है। विज्ञान शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर विचार-विमर्श करने के वास्ते 'स्कूल

साइंस' खुले मंच के रूप में सामने आती है । **'जर्नल ऑफ इंडियन एजुकेशन'** एक ऐसा मंच प्रदान करती है जिस पर सामयिक रूप से प्रचलित शैक्षिक समस्याओं पर विचार-विमर्श करके शिक्षा में मौलिक विवेचना को बढ़ावा दिया जा सके। **'इंडियन एजुकेशनल रिव्यू'** के माध्यम से एक ऐसे मंच का निर्माण किया गया है जहाँ शैक्षिक अनुसंधान और नव परिवर्तन के क्षेत्र में किए जाने वाले अनुभवों का आदान-प्रदान होता है । **'एन० सी० ई० आर० टी० न्यूज लेटर'** परिषद् की मुख पत्रिका है जो हर महीने प्रकाशित होती है । सभी क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय अपनी-अपनी पत्रिकाएँ प्रकाशित करते हैं ।

मूल्यांकन एवं आदान-प्रदान कार्यक्रम

पाठ्यपुस्तकों और सम्बद्ध सामग्री का निरंतर मूल्यांकन किया जाता है । मूल्यांकन के लिए निकष, उपकरण और तरीके बनाए जा चुके हैं। गुणवत्ता की दृष्टि से मार्गदर्शी रेखाएँ और प्रणालियाँ निश्चित की जा चुकी हैं । जिन स्कूलों में ये पाठ्यपुस्तकें चलती हैं वहाँ से अनुभव जन्य सुझाव मिलते रहते हैं जिनसे पाठ्यपुस्तकों का संशोधन-परिवर्धन होता रहता है ।

हर साल राष्ट्रीय परिषद् 550 प्रतिभा-छात्रवृत्तियाँ देने के लिए (इनमें से 50 अनुसूचित जातियों/जनजातियों के लिए होती हैं), कक्षा X, XI व XII में पढ़ने वाले छात्रों की भारतीय संविधान द्वारा स्वीकृत सभी भाषाओं में परीक्षाएँ लेती है। छात्रवृत्ति पाने वाले छात्र विज्ञान, गणित, अथवा सामाजिक विज्ञान में पीएच० डी० तक की पढ़ाई या अभियांत्रिकी अथवा चिकित्साशास्त्र की व्यावसायिक पढ़ाई कर सकते हैं ।

शिक्षा की गुणवत्ता को सुधारने के लिए किए जा रहे प्रयासों के निमित्त राष्ट्रीय परिषद् को यूनेस्को, यूनिसेफ़, यू. एन. डी. पी. और यू. एन. एफ. पी. ए. जैसी अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं से सहायता मिलती रहती है । इन संस्थाओं द्वारा माँगे जाने पर, परिषद् अपने शैक्षणिक कर्मचारियों को अंतर्राष्ट्रीय सभाओं, परिचर्चाओं, कार्यगोष्ठियों और सम्मेलनों में भाग लेने के लिए भेजती है । इसी प्रकार विदेशियों के लिए भारत में प्रशिक्षण की व्यवस्था भी परिषद् करती है ।

शैक्षिक नवाचार और विकास के एशियाई केन्द्र के लिए राष्ट्रीय विकास दल के सचिवालय के रूप में भी परिषद् कार्य करती है । स्कूल-शिक्षा के लिए विभिन्न देशों के साथ भारत सरकार जो द्विपक्षी सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रम के समझौते करती है उनके कार्यान्वयन के लिए भी परिषद् मुख्य माध्यम के रूप में कार्य करती है । परिषद् अन्य देशों के साथ शैक्षिक सामग्री का विनिमय करती है ।

संरचना और प्रशासन

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की नीति निर्धारण की निकाय सामान्य निकाय (जनरल बॉडी) है जिसके अध्यक्ष केन्द्रीय शिक्षा मंत्री हैं और सभी राज्यों व संघ क्षेत्रों के शिक्षा मंत्री उसके सदस्य हैं। इसके अलावा उसके अन्य सदस्य हैं—विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष, शिक्षा मंत्रालय के सचिव, चार विश्वविद्यालयों के उपकुलपति (हर क्षेत्र से एक एक), कार्यकारी समिति के सभी सदस्य (जो ऊपर नहीं गिनाए गए हैं), और भारत सरकार द्वारा समय समय पर नामजद अन्य व्यक्ति जिनकी संख्या बारह से अधिक नहीं होगी और जिनमें से कम से कम चार को स्कूल शिक्षक होना चाहिए।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की मुख्य शासी निकाय परिषद् की **कार्यकारी समिति** है। कार्यकारी समिति में निम्नलिखित आते हैं—परिषद् के अध्यक्ष (पदेन) के रूप में केंद्रीय शिक्षा मंत्री, शिक्षा मंत्रालय के राज्य मंत्री (पदेन उप-अध्यक्ष), शिक्षा मंत्रालय के उप मंत्री, शिक्षा मंत्रालय के सचिव, परिषद् के निदेशक, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष, स्कूल-शिक्षा में गहरी रुचि लेने के लिए विख्यात चार शिक्षा-शास्त्री (जिनमें से दो को स्कूल-शिक्षक होना चाहिए), परिषद् के सह निदेशक, परिषद् की संकाय के तीन सदस्य (जिनमें से कम से कम दो प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष के स्तर के होने चाहिए), शिक्षा मंत्रालय का एक प्रतिनिधि, और वित्त मंत्रालय का एक प्रतिनिधि (जो परिषद् का वित्तीय सलाहकार होगा)।

कार्यकारी समिति निम्नलिखित स्थायी समितियों की सहायता से अपने कार्य करती है—

—कार्यक्रम सलाहकार समिति

—वित्त समिति

—स्थापना समिति

—भवन और निर्माण समिति

—शैक्षिक अनुसंधान और नवाचार समिति

—क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालयों की प्रबंध समितियां

परिषद् के मुख्यालय में आते हैं— (1) परिषद् का सचिवालय, और (2) लेखा शाखा। राष्ट्रीय शै० अ० और प्र० परिषद् के मुख्य कार्यकारी हैं—निदेशक, सह निदेशक

और सचिव जिनकी नियुक्ति भारत सरकार करती है। वर्ष के दौरान इन पदों पर नीचे लिखे अधिकारी बने रहे : डा० शिवकुमार मित्र — निदेशक (18 अगस्त 1982 तक)। डा० त्रिलोकनाथ धर—सह निदेशक (19 अगस्त 1982 से कार्यकारी निदेशक)। श्री विनोद कुमार पंडित, आइ. ए. एस.—सचिव। परिषद् के अधीन हैं—(क) राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान, (ख) चार क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, (ग) सोलह क्षेत्रीय एकक।

राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान

नई दिल्ली के **राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान** में निम्नलिखित घटक हैं जो अपने अपने विशिष्ट क्षेत्रों में अनुसंधान, विकास, प्रशिक्षण, प्रसार, मूल्यांकन और विकीर्णन के कार्य करते हैं—

1. विज्ञान और गणित शिक्षा विभाग
2. सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग
3. अध्यापक-शिक्षा विभाग
4. शिक्षण साधन विभाग
5. मापन एवं मूल्यांकन विभाग
6. प्रकाशन विभाग
7. वर्कशॉप विभाग
8. पुस्तकालय तथा प्रलेखन एकक
9. शैक्षिक मनोविज्ञान एकक
10. शैक्षिक और व्यावसायिक मार्गदर्शन एकक
11. नियोजन, समन्वय एवं मूल्यांकन एकक
12. राष्ट्रीय प्रतिभा खोज एकक
13. जनसंख्या-शिक्षा एकक
14. अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति शिक्षा एकक
15. सर्वेक्षण और आधार-सामग्री प्रक्रिया एकक
16. समाजोपयोगी उत्पादक कार्य एकक
17. शिक्षा का व्यावसायीकरण एकक
18. शिशु अध्ययन एकक

19. स्त्री-शिक्षा एकक
20. पत्रिका प्रकोष्ठ
21. प्राथमिक शिक्षा व्यापक उपागम प्रकोष्ठ
22. समुदाय शिक्षा और प्रतिभागिता में विकासात्मक गतिविधियाँ प्रकोष्ठ
23. प्राथमिक पाठ्यक्रम विकास प्रकोष्ठ
24. पाठ्यक्रम वर्ग
25. अनौपचारिक शिक्षा वर्ग
26. प्रसार एकक

नई दिल्ली में सन् 1973 ई० में **शैक्षिक प्रौद्योगिकी केंद्र** की स्थापना की गई थी ताकि शिक्षा के प्रसार के लिए संचार माध्यमों के इस्तेमाल के वास्ते रूपात्मकताओं का विकास किया जा सके। शैक्षिक फिल्मों के निर्माण, रेडियो कार्यक्रमों के विकास और सम्बद्ध शैक्षिक सामग्री के उत्पादन जैसे क्षेत्रों में यह केंद्र अनुसंधान और विकास के कार्य करता है। शैक्षिक दूरदर्शन और स्कूल के प्रसारण-कार्यक्रमों में प्रशिक्षण के आयोजन भी यह केंद्र करता है।

क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय और क्षेत्र एकक

क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय नीचे लिखे स्थानों पर हैं—

—अजमेर —भोपाल

—भुवनेश्वर —मैसूर

इन महाविद्यालयों में निम्नलिखित कोर्सों की व्यवस्था है—

—बी. ए. (आनर्स) बी. एड.

—बी. एससी. (आनर्स)/(पास) बी. एड.

—बी. एड. आर्ट्स (एलीमेंटरी/सेकंडरी एजुकेशन)

—बी. एड. साइंस (एलीमेंटरी/सेकंडरी एजुकेशन)

—बी. एड. (एग्रीकल्चर/कामर्स/सोशल साइंस)

—बी. एड. (इंग्लिश/हिन्दी/उर्दू)

—बी. एड. (समर स्कूल-कम-कारेस्पांडेंस कोर्स)

—एम. एड. (एलीमेंटरी/सेकंडरी एजुकेशन)

—एम. एससी. एड. (फ़िज़िक्स/कैमिस्ट्री/मैथेमेटिक्स)

—पीएच. डी. (एजुकेशन)

अजमेर के क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय में केवल चार वर्षीय बी. एससी. बी. एड. कोर्स की व्यवस्था है जबकि भुवनेश्वर के क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय में लाइफ़ साइंसेज़ में एम. एससी. एड. का प्रबंध है और मैसूर के क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय में फ़िज़िक्स, कैमिस्ट्री और मैथेमेटिक्स में एम. एससी. एड. का प्रबंध है। चारों क्षे. शि. म. में पीएच. डी. और एक वर्षीय बी. एड. तथा एम. एड. कोर्सों की व्यवस्था है।

क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय आवासीय संस्थान हैं और इनमें प्रयोगशालाओं, पुस्तकालयों और अन्य सुविधाओं की अच्छी व्यवस्था है। इन महाविद्यालयों में बहूद्देशीय प्रदर्शन स्कूल भी हैं जहाँ नई विकसित शिक्षण पद्धतियों को व्यावहारिक तौर पर कक्षा स्थितियों में जाँचा जाता है।

निम्नलिखित स्थानों पर सोलह क्षेत्रीय कार्यालयों की स्थापना की गई है ताकि राज्य शिक्षा प्राधिकरणों एवं स्कूल शिक्षा के लिए काम कर रहे राज्य स्तर के शैक्षिक संस्थानों के साथ प्रभावी सम्पर्क बनाया जा सके—

1. अहमदाबाद
2. इलाहाबाद
3. कलकत्ता
4. गौहाटी
5. चंडीगढ़
6. जयपुर
7. त्रिवेंद्रम
8. पटना
9. पुणे
10. बंगलूर
11. भुवनेश्वर
12. भोपाल
13. मद्रास
14. शिलङ
15. श्रीनगर
16. हैदराबाद

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की संरचना
रा० शै० अ० और प्र० प०

- सचिवालय
  - स्थापना अनुभाग
    - कार्यक्रम अनुभाग
    - भर्ती अनुभाग
    - क्षे. शि. म. अनुभाग
    - परिसर एवं कल्याण अनुभाग
    - समितियाँ एवं संसद अनुभाग
    - सामान्य अनुभाग
    - खरीद अनुभाग
    - चौकसी
    - जन सम्पर्क
  - लेखा शाखा
- घटक एकक
  - क्षे० शि० महा०
    - अजमेर
    - भुवनेश्वर
    - भोपाल
    - मैसूर
  - शैक्षिक प्रौद्योगिकी केन्द्र
  - क्षेत्र सलाहकार
    - अहमदाबाद
    - इलाहाबाद
    - कलकत्ता
    - गौहाटी
    - चंडीगढ़
    - जयपुर
    - त्रिवेंद्रम
    - पटना
    - पुणे
    - बंगलूर
    - भुवनेश्वर
    - भोपाल
    - मद्रास
    - शिलङ
    - श्रीनगर
    - हैदराबाद

राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान

(शैक्षणिक)

- विज्ञान और गणित शिक्षा विभाग
- सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग
- अध्यापक शिक्षा विभाग
- शैक्षिक मनोविज्ञान एकक
- मापन एवं मूल्यांकन विभाग

(सेवा/उत्पादन)

- शिक्षण साधन विभाग
- प्रकाशन विभाग
- वर्कशॉप विभाग

(एकक/प्रकोष्ठ/वर्ग)

- राष्ट्रीय प्रतिभा खोज एकक
- नियोजन, समन्वय एवं मूल्यांकन एकक
- पुस्तकालय तथा प्रलेखन एकक
- शिक्षा का व्यावसायीकरण एकक
- प्राथमिक पाठ्यक्रम विकास प्रकोष्ठ
- पत्रिका प्रकोष्ठ
- प्रसार एकक
- समुदाय शिक्षा और प्रतिभागिता में विकासात्मक गतिविधियाँ प्रकोष्ठ
- पाठ्यक्रम वर्ग
- अनौपचारिक शिक्षा वर्ग
- शैक्षिक और व्यावसायिक मार्गदर्शन एकक
- जनसंख्या शिक्षा एकक
- अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति शिक्षा एकक
- समाजोपयोगी उत्पादक कार्य एकक
- शिशु अध्ययन एकक
- स्त्री शिक्षा एकक
- प्राथमिक शिक्षा व्यापक उपागम प्रकोष्ठ
- सर्वेक्षण और आधार सामग्री प्रक्रिया एकक
- समुदाय शिक्षा और प्रतिभागिता में विकासात्मक गतिविधियाँ प्रकोष्ठ

2

वर्ष के उल्लेखनीय कार्य

सन् 1961 में स्थापित राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने अपने जीवन के बीस वर्ष पूरे कर लिए और स्कूल-शिक्षा के गुणात्मक सुधार के लिए अनुसंधान, विकास, प्रशिक्षण एवं प्रसार के अपने तीसरे दशक में प्रवेश किया। ये कार्यकलाप शैक्षिक विकास से सम्बद्ध राज्य शिक्षा विभागों, राज्य स्तर के संस्थानों, विश्वविद्यालयों एवं अन्य संगठनों के सहयोग से राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान के विभिन्न विभाग, क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय एवं क्षेत्रीय एकक कर रहे हैं। वर्ष के दौरान परिषद् ने स्कूल प्रणाली को प्रत्यक्ष लाभ पहुँचाने वाले अनेक कार्यक्रमों में अपने को लगाए रखा। वर्ष की कुछ उल्लेखनीय उपलब्धियों को यहाँ संक्षिप्त रूप में दिया जा रहा है।

पाठ्यक्रम विकास

स्कूल पाठ्यक्रम के क्षेत्र के रूप में सामुदायिक कार्य की योजना के बारे में विस्तृत रूपरेखा बनाने के उद्देश्य से एक समिति बनाई गई। समिति की कई बैठकें हुईं। आशा है कि समिति एक व्यापक आलेख तैयार कर लेगी जिसे सामुदायिक सेवा की पुस्तिका के रूप में छापा जाएगा।

सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी

कक्षा IX-X की उर्दू भाषा की पाठ्यपुस्तकें और पाठ्यचर्याएँ तैयार करने का काम रा० शै० अ० और प्र० प० ने पहली बार हाथ में लिया। इस उद्देश्य से एक उर्दू समिति बनाई गई जिसके अध्यक्ष प्रोफेसर गोपीचंद नारंग हैं। समिति में पाँच अन्य सदस्य भी हैं।

परिवेश शिक्षा

इस क्षेत्र में जो कार्यक्रम हुए उनमें ये शामिल हैं—प्रभावपूर्ण तरीके से परिवेश के माध्यम से विज्ञान पढ़ाने के लिए स्थिति-निर्धारण की कार्यगोष्ठियाँ; 'परिवेश प्रबंध संगठन' पर एक परिसंवाद; परिवेशीय अध्ययन पर एक पाठ्यपुस्तक का निर्माण; और परिवेशीय शिक्षा पर प्रदर्श-सामग्री।

मूल्यों का स्थिति-निर्धारण

छात्रों और शिक्षकों में वांछित मूल्यों को जगाने के लिए अपेक्षित सामग्री के विकास की दृष्टि से शिक्षा में मूल्यों के स्थिति निर्धारण में विज्ञान की भूमिका पर एक परियोजना शुरू की गई। इसके लिए एक समिति बनाई गई है जो विज्ञान और मूल्यों के आपसी संबंधों का पता लगाएगी तथा शिशुओं में मूल्यों के विकास के लिए विज्ञान शिक्षा को निमित्त बनाने के उपाय ढूँढ़ेगी।

विज्ञान एवं गणित

भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय और ब्रिटिश काउंसिल के मध्य हुए एक समझौते के अंतर्गत, रा० शै० अ० और प्र० प० दो परियोजनाएँ शुरू कर रही है—(i) अखिल भारतीय विज्ञान शिक्षा परियोजना, एवं (ii) अखिल भारतीय गणित शिक्षा परियोजना। इन परियोजनाओं के अंतर्गत यूनाइटेड किंगडम में उच्च प्रशिक्षण के लिए विभिन्न राज्यों और संघ क्षेत्रों के सेकंडरी स्कूल शिक्षकों एवं अध्यापक-शिक्षकों के लिए विज्ञान की 18 और गणित की 23 छात्रवृत्तियाँ उपलब्ध कराई जाएँगी।

राष्ट्रीय विज्ञान प्रदर्शनी

कलकत्ता में 10 से 16 नवम्बर 1982 के बीच बारहवीं राष्ट्रीय विज्ञान प्रदर्शनी आयोजित की गई। इस वर्ष की प्रदर्शनी का विषय था—"विज्ञान एवं सामुदायिक विकास"। इस प्रदर्शनी में चार सौ से भी अधिक स्कूली बच्चों और शिक्षकों ने हिस्सा लिया और 160 प्रदर्श दिखाए गए। प्रदर्शनी का जोर इलेक्ट्रोनिक्स, सैटेलाइट, विज्ञान प्रदर्श, अंतरिक्ष की खोज आदि पर था।

विज्ञान क्लब किट

रा० शै० अ० और प्र० प० ने एक विज्ञान क्लब किट बनाया है जिसमें औजारों, उपकरणों, प्राथमिक सहायता आदि की पचास चीजें हैं। इस किट को बनाने का उद्देश्य यह है कि इसकी चीजों की मदद से बच्चे एवं अध्यापक नुमाइश के लिए विज्ञान-प्रदर्श बना सकें। विज्ञान क्लब किट तेरह राज्यों को भेंट कर दिए गए। औजारों वाले किट के इस्तेमाल के लिए राज्यों के प्रमुख कार्मिकों को प्रशिक्षित करने के उद्देश्य से एक कार्यगोष्ठी भी की गई।

लड़कियों और स्त्रियों की शिक्षा

'लड़कियों में शैक्षिक पिछड़ापन' की शोध परियोजना, जिसे यूनिसेफ़-पोषण मिला हुआ है, आंध्र प्रदेश, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, जम्मू एवं कश्मीर, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान और हरियाणा प्रदेशों में इस वर्ष भी चलती रही। यह 1981 से चल रही है। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह पता लगाना है कि लड़कियों में नामांकन और पढ़ाई छोड़ देने की दर क्या है, छह से चौदह वर्ष की लड़कियों में दाखिला न लेने और पढ़ाई छोड़ देने के कारण क्या हैं और इन बुराइयों का उपचार क्या है। आठों राज्यों के कुल 27 जिले परियोजना के अंतर्गत आते हैं।

पाठ्यपुस्तक-मूल्यांकन

पाठ्यपुस्तकों के मूल्यांकन का कार्यक्रम राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने सन् 1981 में शुरू किया था जबकि राष्ट्रीय एकीकरण की दृष्टि से इतिहास और भाषाओं की स्कूली पाठ्यपुस्तकों को मूल्यांकित किया गया था। मूल्यांकन की मार्गदर्शी रेखाएँ और उपकरण बना लिए गए हैं। कार्यक्रम को लागू करने की विधि ढूंढ़ ली गई है। इस कार्यक्रम को हाथ में लेने के लिए राज्य सरकारों ने अपने अपने राज्यों में संस्थाएँ ढूंढ़ ली हैं। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की अंग्रेजी, इतिहास, संस्कृत और हिन्दी की पाठ्यपुस्तकों के मूल्यांकन का काम भी हाथ में लिया गया है।

यूनिसेफ़ की परियोजनाएं

यूनिसेफ़ की परियोजनाएँ राज्य शिक्षा विभागों और राज्य स्तर के संस्थानों के सहयोग से कार्यान्वित की जा रही हैं। इन परियोजनाओं के लक्ष्य हैं—स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्यचर्या का विकेन्द्रीकृत प्रतिपादन; उन्हीं विषयों पर अनुदेशीय सामग्री का निर्माण जो समाज से सम्बद्ध हैं; अनौपचारिक परिवेश में स्कूल न जाने वाले बच्चों को शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए शिक्षकों में कुशलताओं का विकास; सामुदायिक विकास के लिए स्कूल को केन्द्रीय संस्थान के रूप में तैयार करने वाले उपायों का कार्यान्वियन।

पाठ्यक्रम नवीकरण

प्राथमिक शिक्षा पाठ्यक्रम नवीकरण यूनिसेफ़ की उन परियोजनाओं में से है जिन्हें देश के तीस राज्यों एवं संघ क्षेत्रों में लागू किया जा रहा है। राष्ट्रीय स्तर पर परिषद् इस परियोजना पर नज़र रखती है और राज्यों/संघ क्षेत्रों को मार्गदर्शन प्रदान करती है। भाषाओं, परिवेश अध्ययनों, स्वास्थ्य शिक्षा, गणित, सृजनात्मक अभिव्यक्ति एवं समाजोपयोगी उत्पादक कार्य के क्षेत्र में नीचे लिखे राज्यों में कार्यक्रम किए गए—महाराष्ट्र (7 से 22 जून 1982); गुजरात एवं गोआ (25 से 30 जून 1982); हरियाणा (2 से 7 जुलाई 1982); राजस्थान (12 से 17 जुलाई 1982); पंजाब (19 से 25 जुलाई 1982) और बिहार (26 से 31 जुलाई 1982)।

पोषण एवं स्वास्थ्य शिक्षा

यूनिसेफ़-पोषित परियोजना "पोषण, स्वास्थ्य-शिक्षा एवं परिवेशीय स्वच्छता" को प्रारम्भ में केवल पंजाब, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु, गुजरात और पश्चिम बंगाल में ही शुरू किया गया था। किंतु इस वर्ष सात और राज्यों ने भी इसे अपना लिया है। ये राज्य हैं—असम, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, बिहार, महाराष्ट्र, राजस्थान, और हरियाणा।

प्रारम्भिक शैशवकालीन शिक्षा

शिशुओं को सँभालने के लिए जिस ज्ञान, समझ, कौशल और अभिवृत्ति की ज़रूरत होती है; उसमें पूर्व-प्राथमिक एवं प्राथमिक शिक्षकों को निपुण बनाने के लिए, अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों के अध्यापक-शिक्षकों के वास्ते एक-एक महीने के प्रशिक्षण कार्यक्रम किए गए जिनमें उड़ीसा, कर्नाटक, तमिलनाडु, बिहार, महाराष्ट्र और राजस्थान के अध्यापक-शिक्षक सम्मिलित हुए।

प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वजनीकरण का प्रबोधन एवं मूल्यांकन

भारत में प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वजनीकरण की परियोजना का प्रबोधन एवं मूल्यांकन करने के लिए उपकरणों की खोज कर ली गई और उन्हें आंध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश और गुजरात

जाँचा-परखा गया। अब प्रयोग के तौर पर इनकी उड़ीसा, जम्मू एवं कश्मीर तथा राजस्थान में भी जाँच की जाएगी। ये उपकरण औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों किस्म की शिक्षा प्रणालियों के लिए हैं।

अनुसूचित जातियों की शिक्षा

अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए पाठ्यक्रम-निर्माण की उप-समिति की एक बैठक दिल्ली में जून 1982 में की गई। पश्चिम बंगाल के संथाल बच्चों के लिए अनुदेशीय-सामग्री के निर्माण के निमित्त कार्यकारी दल की एक बैठक नई दिल्ली में 1 से 10 सितम्बर 1982 तक की गई। उड़ीसा की साओरा जनजाति के बच्चों की कक्षा II की प्राइमर को अंतिम रूप देने के लिए एक और बैठक नई दिल्ली में 6 से 10 सितम्बर 1982 तक हुई।

प्रारम्भिक शिक्षा का सार्वजनीकरण/ अनौपचारिक शिक्षा

आंध्र प्रदेश, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, जम्मू एवं कश्मीर, पश्चिम बंगाल, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान और हरियाणा के पिछड़े राज्यों के अनौपचारिक शिक्षा के प्रभारी अधिकारियों का एक सम्मेलन दिल्ली में 5 से 7 अगस्त तक हुआ। इसका उद्देश्य यह पता लगाना था कि अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम के कार्यान्वयन की क्या स्थिति है। इसमें विभिन्न राज्यों को उलझाने वाली समस्याओं पर भी विस्तार से विचार किया गया।

समाजोपयोगी उत्पादक कार्य

समाजोपयोगी उत्पादक कार्य में लगे हुए आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल, गुजरात, तमिलनाडु, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और लक्षद्वीप राज्यों के मुख्य कार्मिकों को भाषणों, परिचर्चाओं और स० उ० का० के कार्यकलापों के माध्यम से अनुकूलित किया गया।

शिक्षा का व्यावसायीकरण

आंध्र प्रदेश, गुजरात, तमिलनाडु और दिल्ली प्रदेशों के प्रिंसिपलों और मुख्य कार्मिकों के लिए शिक्षा के व्यावसायीकरण में अनुकूलन कार्यक्रम आयोजित किए गए। आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, गोआ, तमिलनाडु और महाराष्ट्र में व्यावसायिक विषयों पर अल्पकालिक अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम किए गए। व्यावसायिक विषयों में शिल्पविज्ञान, वाणिज्य, कृषि और पैरामेडिकल विषयों को लिया गया था।

अध्यापक शिक्षा

रा० शै० अ० और प्र० प० सभी स्तरों पर अध्यापक प्रशिक्षण की पाठ्यचर्याओं के संशोधन-परिवर्धन के कार्य में लगी हुई है। इसके लिए वह विश्वविद्यालयों के शिक्षा विभागों

से घनिष्ठ सम्पर्क बनाए हुए हैं। बी० एड० की पाठ्यचर्या को संशोधित करने में औरंगाबाद, नागपुर और बम्बई के विश्वविद्यालयों की मदद की गई। एशियाई और पैसिफिक क्षेत्रों के अध्यापक-प्रशिक्षण में लगे हुए अध्यापकों एवं शैक्षणिक कार्मिकों तथा विशेषज्ञों के लिए दिल्ली में 5 से 14 अप्रैल 1982 तक एक यूनेस्को क्षेत्रीय सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में ग्यारह देशों के प्रतिनिधि आए।

सतत शिक्षा के केन्द्र

विभिन्न राज्यों में सदा चलती रहने वाली शिक्षा के केन्द्र विभिन्न शिक्षण संस्थाओं में बनाए गए हैं। इन केन्द्रों को चलाने में परिषद् सम्बद्ध राज्य सरकारों को सहयोग देती आ रही है। अभी तक 97 केन्द्र स्थापित किए जा चुके हैं। इन केन्द्रों द्वारा शिक्षकों के लिए चलाए जाने वाले सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रमों का खर्च रा० शै० अ० और प्र० प० तथा राज्य सरकार के बीच बराबर-बराबर बँट जाता है।

अपंग बच्चों के लिए एकीकृत शिक्षा

अपंग बच्चों को शिक्षित करने में अध्यापकों को प्रशिक्षित करने के लिए, चारों क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालयों में सुविधाओं की व्यवस्था करने का निर्णय राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने किया है। छह महीनों की अवधि वाला एक कोर्स भी बनाया गया है जिसमें महाविद्यालय के कुछ शिक्षक प्रशिक्षित होकर अध्यापक-शिक्षक बनेंगे और अन्य शिक्षकों को प्रशिक्षित करेंगे। हर महाविद्यालय अलग अलग क्षेत्रों में विशेषज्ञता प्रदान करेगा।

क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय

अजमेर, भुवनेश्वर, भोपाल और मैसूर के क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय सेवापूर्व कोर्स, सेवाकालीन प्रशिक्षण, प्रसार, पत्राचार कोर्स और कुछ अन्य विशेष कार्यक्रम नियमित रूप से चलाते हैं। अध्यापक-शिक्षा के अभिनव परिवर्तन वाले और एकीकृत कोर्सों के कार्यक्रम इन महाविद्यालयों में रखे जाते हैं। जिन विश्वविद्यालयों के साथ इनकी संलग्नता रहती है, वे ही इन्हें डिग्रियाँ देते हैं। ये महाविद्यालय आवासीय हैं और इनमें पढ़ने वाले छात्रों के पचास प्रतिशत को योग्यता के आधार पर छात्रवृत्ति दी जाती है।

शैक्षिक मनोविज्ञान

बच्चे को समझने और आवश्यकता-आधृत शिक्षा प्रदान करने के विचार से मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के इस्तेमाल के लिए मुख्य कार्मिकों को प्रशिक्षित करने का काम रा० शै० अ० और प्र० प० ने हाथ में लिया था। अध्यापक-शिक्षकों के लिए प्रति कोर्स पन्द्रह शिक्षक के हिसाब से आठ दिनों वाले प्रेक्टिकम कोर्सों की योजना बनाई गई। स्कूल-

व्यवस्था में व्यवहार-सुधार तकनीक के इस्तेमाल के लिए अनेक मुख्य कार्मिकों को आठ से दस दिनों वाले प्रैक्टिकल कोर्सों में प्रशिक्षित भी किया गया। अध्यापक-शिक्षकों के लिए अधिगम के सम्पन्नता-कोर्स भी चलाए गए। परिषद् के राष्ट्रीय परीक्षण विकास घर के संग्रह में और भी अधिक मानकीकृत परीक्षण बढ़ाए गए।

शैक्षिक और व्यावसायिक मार्गदर्शन

शैक्षिक और व्यावसायिक मार्गदर्शन के इक्कीसवें डिप्लोमा कोर्स में तैंतीस प्रशिक्षार्थी थे। इनमें से तीन प्रतिनियुक्त किए गए थे और शेष तीस नौ राज्यों के गैर सरकारी प्रशिक्षार्थी थे। सात प्रशिक्षार्थी अनुसूचित जातियों के थे। इनको मिला कर कुल पच्चीस प्रशिक्षार्थियों को 250 रु० प्रति माह के हिसाब से वजीफ़ा दिया गया।

शैक्षिक प्रौद्योगिकी

वर्ष के दौरान रा० शै० अ० और प्र० प० ने शैक्षिक दूरदर्शन के पचास आदर्श कार्यक्रम बनाए। ये कार्यक्रम बीस-बीस मिनट के हैं और ये आंध्र प्रदेश तथा उड़ीसा के ग्रामीण क्षेत्रों के प्राथमिक स्कूल शिक्षकों के लिए बने हैं। मूल रूप से इन कार्यक्रमों को **इनसैट** द्वारा दिखाया जाना था। ये कार्यक्रम ग्राउंड स्टेशनों को दे दिए गए हैं। इन कार्यक्रमों से हर राज्य के छह-छह सौ गाँव लाभान्वित हुए।

शिक्षण-साधन

इनसैट के लिए फिल्म स्क्रिप्टें और वीडियो कार्यक्रम बनाने के निमित्त 11 से 13 मई 1982 तक एक कार्यगोष्ठी की गई। इसमें विज्ञान शिक्षकों, वैज्ञानिकों, बाल साहित्य के लेखकों और मीडिया विशेषज्ञों ने भाग लिया जिनकी संख्या 15 थी।

राष्ट्रीय जनसंख्या शिक्षा परियोजना

इस परियोजना का मुख्य उद्देश्य नई पीढ़ी को जनसंख्या समस्या से अवगत कराना है ताकि बड़े होने पर यह पीढ़ी अधिक जिम्मेवार बन सके। इस विषय को एक स्कूली पाठ्य विषय बनाए बगैर ही परियोजना इसे स्कूलों में ले आना चाहती है। इसके कार्यान्वियन के लिए यूनेस्को तकनीकी मार्गदर्शन दे रही है।

परीक्षा सुधार

परिषद् मध्य प्रदेश, उड़ीसा, सिक्किम और तमिलनाडु राज्यों तथा केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड को उनके परीक्षा सुधार कार्यक्रमों में मदद करती आ रही है। निकष-संदर्भित परीक्षण, प्राथमिक स्कूलों में मूल्यांकन, मूल्यांकन के पठन और व्यावहारिक परीक्षा जैसे

विषयों पर पुस्तकें बनाई गईं । इतिहास और भूगोल की परीक्षण इकाइयाँ छप चुकी हैं । 'ओपेन बुक इक्ज़ामिनेशंस' के अध्ययन को पूरा किया जा चुका है ।

राष्ट्रीय प्रतिभा खोज

हर साल राष्ट्रीय परिषद् 550 **छात्रवृत्तियाँ** देती है जिनमें 50 अनुसूचित जातियों/जनजातियों के लिए होती हैं । इसके लिए परिषद् भारतीय संविधान में स्वीकृत सभी भाषाओं में परीक्षाएँ लेती है । ये परीक्षाएँ हर वर्ष मई में आयोजित की जाती हैं । इन परीक्षाओं में कक्षा दस, ग्यारह और बारह के छात्र बैठ सकते हैं । छात्रवृत्ति-विजेता छात्र विज्ञान, गणित और सामाजिक विज्ञानों में किसी भी विषय में पीएच० डी० तक की पढ़ाई छात्रवृत्ति के आधार पर कर सकते हैं या इंजीनियरिंग और डाक्टरी की पढ़ाई में जा सकते हैं । इस वर्ष राष्ट्रीय प्रतिभा खोज की परीक्षाओं में कक्षा X में 46,365, कक्षा XI में 8,988 और कक्षा XII में 27,967 छात्र 439 केन्द्रों में बैठे ।

सर्वेक्षण और आधार-सामग्री प्रक्रिया

चौथे अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण की मुख्य रिपोर्ट प्रकाशित हो गई । इसमें 1978-79 के स्कूलों की अलग अलग कक्षाओं में भर्ती हुए छात्रों की संख्या, शिक्षकों की संख्या और वर्तमान शैक्षिक सुविधाओं की जानकारी दी गई है । कुल रिपोर्ट 982 पृष्ठों की है ।

यू० एस० ए० आई० डी० के सुझाव पर प्राथमिक स्तर पर प्रवेशार्थियों की संख्या पर 'दुपहर के भोजन के कार्यक्रम' के प्रभाव का अध्ययन शुरू किया गया है । जिन तेरह राज्यों में 'दुपहर का भोजन-कार्यक्रम' चल रहा है, उनका अध्ययन किया जाएगा । चौथे अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण के आधार पर जिला शिक्षा योजनाओं के विकास को शुरू किया गया है ।

अनुसंधान और अभिनव परिवर्तन

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के विभिन्न अधिकारियों ने अपनी कई अनुसंधान परियोजनाएँ पूरी कर नई परियोजनाओं पर काम शुरू कर दिया है । शैक्षिक अनुसंधान और नवाचार समिति (एरिक) ने भी अनेक शोध परियोजनाओं को पोषण देना जारी रखा । इस वर्ष के दौरान अठारह शोध परियोजनाएँ पूरी हुईं । पीएच० डी० के नौ प्रबंध प्रकाशित किए गए ।

प्रसार कार्य

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के अहमदाबाद, इलाहाबाद, कलकत्ता, गौहाटी, चंडीगढ़, जयपुर, त्रिवेंद्रम, पटना, पुणे, बंगलूर, भुवनेश्वर, भोपाल, मद्रास,

शिलंङ, श्रीनगर और हैदराबाद स्थित सोलह क्षेत्रीय एककों ने शिक्षकों को कक्षा शिक्षण के सुधार में निरंतर सहायता दी ताकि संस्थाओं का वातावरण सुधर सके। प्रसार कार्यक्रमों में ये सम्मिलित हैं—गहन प्रायोगिक परियोजनाएँ, अच्छा स्कूल व्यवहार, अभिनव परिवर्तनों के लिए प्रोत्साहन, सामग्रियों की प्रदर्शनी आदि।

राष्ट्रीय एकीकरण परियोजना

राष्ट्रीय एकीकरण की भावना जगाने के निमित्त स्कूली बच्चों और शिक्षकों के लिए बारह राष्ट्रीय एकता शिविर लगाए गए। इस दिशा में एक महत्वपूर्ण विकास यह रहा कि शिक्षकों के लिए जो शिविर लगाए गए उनमें सामुदायिक गायन में उन्हें प्रशिक्षित किया गया। इससे यह होगा कि इस विधि से प्रशिक्षित होकर वे शिक्षक अपने अपने स्कूलों में सामुदायिक गायन को बढ़ावा देंगे और इस प्रकार यह जन आंदोलन बन सकेगा। रा० शै० अ० और प्र० प० ने सभी भाषाओं में राष्ट्रीय एकीकरण वाले गाने टेप कर कैसेट बनाए हैं। इन शिविरों में भाग लेने वाले शिक्षकों को ये कैसेट दिए जाते हैं ताकि एकीकरण के उद्देश्य को बल मिल सके।

अंतर्राष्ट्रीय सम्पर्क

वर्ष के दौरान परिषद् के अनेक अधिकारियों को यूनेस्को के कार्यकलापों में हिस्सा लेने के लिए विदेश भेजा गया। इसी प्रकार विदेशी अतिथि भी यहाँ बड़ी संख्या में आए। एपीड के सहयोगी केन्द्र के रूप में काम करना परिषद् ने जारी रखा और द्विपक्षी सांस्कृतिक आदान प्रदान के कार्यक्रम में हिस्सा लिया।

शैक्षिक पत्र-पत्रिकाएँ

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने आगे लिखे पत्रों का प्रकाशन किया—

(i) 'इंडियन एजुकेशनल रिव्यू' (त्रैमासिक), (ii) 'जर्नल ऑफ़ इंडियन एजुकेशन' (द्विमासिक); (iii) 'प्राइमरी शिक्षक' (त्रैमासिक); (iv) 'प्राइमरी टीचर' (त्रैमासिक); (v) 'स्कूल साइंस' (त्रैमासिक)। एक नए हिन्दी पत्र का प्रकाशन शुरू किया जा रहा है जिसका नाम है 'भारतीय आधुनिक शिक्षा'।

शैक्षिक पत्रकारिता पर राष्ट्रीय सम्मेलन

नई दिल्ली स्थित राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान के परिसर में 28-29 जनवरी 1983 को एक राष्ट्रीय सम्मेलन शैक्षिक पत्रकारिता विषय पर किया गया जिसमें देश के विभिन्न भागों से 24 व्यक्ति आए और विभिन्न विषयों पर उन्होंने अपने अपने प्रबंध पढ़े।

प्रकाशन

वर्ष के दौरान कुल 181 प्रकाशन किए गए जिनका ब्यौरा इस प्रकार है—प्रथम संस्करण वाली नई पाठ्यपुस्तकें (6); पाठ्यपुस्तकों के पुनर्मुद्रण (117); अन्य संस्थाओं के लिए पाठ्यपुस्तकें (19); अनुसंधान ग्रंथ (24) और पत्र-पत्रिकाएँ (15)।

प्राथमिक शिक्षा व्यापक उपागम

प्राथमिक शिक्षा व्यापक उपागम (**केप**) के अंतर्गत यूनिसेफ़ से सहायता लेकर चलने वाली शोध परियोजनाओं को हाथ में लेने के उद्देश्य हैं : (i) **केप** के अधीन बने अधिगम उपाख्यानों की क्षमता को निश्चित करना; (ii) सामुदायिक शिक्षा कार्यक्रमों के लिए विकासात्मक माध्यमों द्वारा प्रयुक्त शिक्षण प्रणालियों की जाँच और केप अध्ययन केन्द्रों में प्रयुक्त शिक्षण प्रणालियों के साथ उनकी सुसंगति; (iii) ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में प्राथमिक स्कूल शिक्षकों से विकासात्मक माध्यमों द्वारा की जाने वाली अपेक्षाओं का अध्ययन; और (iv) नौ से चौदह वर्ष के बच्चों की पठन योग्यता पर टाइपोग्राफी के विभिन्न कारकों के प्रभाव का अध्ययन।

रा० शै० अ० और प्र० प० के पुनर्गठन के लिए टास्क फोर्स

इस वर्ष जो विशेष बातें हुई उनमें एक प्रमुख बात है राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् पर भारत सरकार द्वारा **टास्क फोर्स** की संरचना। यह **टास्क फोर्स** पब्लिक एकाउंट्स कमेटी की अड़तालीसवीं रिपोर्ट की सिफ़ारिश पर बनाया गया है। इस सिफ़ारिश को लागू करने के विचार से भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने नीचे लिखी बातों के अनुसार एक **टास्क फोर्स** बनाए जाने का निर्णय लिया—

(i) परिषद् की नियमावली में दिए गए दीर्घ अथवा लघु काल वाले उद्देश्यों को पूरा करने की दिशा में परिषद् द्वारा किए गए कार्यों का समीक्षात्मक मूल्यांकन।

(ii) पहले बनाई गई समितियों द्वारा की गई सिफ़ारिशों की, खास कर जिनका जिक्र पब्लिक एकाउंट्स कमेटी ने किया है, इस दृष्टि से समीक्षा करना कि परिषद् के भविष्य के लिए वे कितनी प्रासंगिक अथवा महत्वपूर्ण हैं।

(iii) स्कूल शिक्षा के भावी विकास के क्षेत्र में उठने वाली चुनौतियों का सामना कर पाने की सामर्थ्य परिषद् में आ सके, इस दृष्टि से परिषद् के लिए एक संगठनात्मक संरचना का सुझाव।

(iv) ऊपर गिनाई गई बातों के प्रकाश में, परिषद् के लिए प्रबंधन और निर्णय लेने के क्षेत्र में संरचना और प्रक्रियाओं के बारे में सुझाव।

टास्क फोर्स इस प्रकार गठित होगा—

(i) डा० (श्रीमती) माधुरी शाह (अध्यक्ष)
अध्यक्ष
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग
नई दिल्ली

(ii) डा० वी० जी० कुलकर्णी (सदस्य)
परियोजना निदेशक
टाटा इंस्टीच्यूट ऑफ़ फंडामेंटल
रिसर्च, होमी भाभा सेंटर फॉर
साइंस एजुकेशन
बम्बई

(iii) प्रोफ़ेसर सत्य भूषण (सदस्य)
उप कुलपति
जम्मू विश्वविद्यालय
जम्मू तवी

(iv) श्री० पी० के० उमाशंकर (सदस्य)
शिक्षा आयुक्त
केरल सरकार
त्रिवेंद्रम

(v) डा० शिवकुमार मित्र (सदस्य)
निदेशक
रा० शै० अ० और प्र० प०
नई दिल्ली

(vi) श्री जे० ए० कल्याणकृष्णन (सदस्य)
वित्त सलाहकार
शिक्षा और संस्कृति मंत्रालय
नई दिल्ली

(vii) संयुक्त सचिव (स्कूल) (सचिव)
शिक्षा और संस्कृति मंत्रालय
(शिक्षा विभाग)
नई दिल्ली

3

प्रारम्भिक शैशवकाल की शिक्षा

स्कूल-पूर्व की शिक्षा के क्षेत्र में रा० शै० अ० और प्र० प० देशी उपक्रमों, शिक्षण सामग्रियों के निर्माण, कार्मिकों के प्रशिक्षण, चल रही गतिविधियों के मूल्यांकन और खिलौनों, चित्रों, पुस्तकों, श्रव्य टेपों आदि के निर्माण के कार्यक्रम करती है। यूनिसेफ़ की सहायता से बनाई गई शिशु माध्यम प्रयोगशाला में रा० शै० अ० और प्र० प० तीन से आठ वर्ष की उम्र के बच्चों के लिए शैक्षिक उपयोगिता वाले कम खर्च के, अनौपचारिक तथा प्रभावी माध्यमों की खोज करती है। इस कार्यक्रम का मुख्य पक्ष है अध्यापक-शिक्षकों, स्कूल-पूर्व के शिक्षकों और पर्यवेक्षकों के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।

यह परियोजना उड़ीसा, कर्नाटक, तमिलनाडु, बिहार, महाराष्ट्र और राजस्थान राज्यों में लागू की गई है।

अध्यापक-शिक्षकों का प्रशिक्षण

राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान के परिसर में 15 अप्रैल से 14 मई 1982 की अवधि में उड़ीसा और महाराष्ट्र के अध्यापक-शिक्षकों के लिए प्रारम्भिक शैशव काल की शिक्षा में एक महीने का प्रशिक्षण कार्यक्रम किया गया। इसका उद्देश्य था शिशु और उसके विकास में शिक्षक की भूमिका को रेखांकित करना। इस कार्यक्रम का मुख्य लक्ष्य था शिशु विकास की अधुनातन प्रवृत्तियों से प्रतिभागियों को परिचित कराना और उनका उपयोग प्रारम्भिक शैशवकालीन शिक्षा में करना। इस कार्यक्रम में नाटक, कठपुतली खेल, चित्रकला जैसे रचनात्मक व्यावहारिक कार्यकलापों को मुख्य महत्व दिया गया। सम्बद्ध सामग्रियों के निर्माण के लिए प्रतिभागियों को प्रोत्साहित किया गया। परिचर्चाओं, विशेष भाषणों और बालभवन, गुड़िया घर तथा संकटग्रस्त (एस० ओ० एस०) गाँव की यात्राओं द्वारा इस कोर्स को सुसम्पन्न किया गया। कार्यक्रम में उड़ीसा के आठ और महाराष्ट्र के पन्द्रह प्रतिभागी सम्मिलित हुए।

राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान के परिसर में 14 जून से 13 जुलाई 1982 तक राजस्थान के अध्यापक-शिक्षकों के लिए प्रारम्भिक शैशव काल की शिक्षा में एक महीने का प्रशिक्षण कार्यक्रम किया गया। इसमें कुल 27 व्यक्तियों ने भाग लिया—26 राजस्थान से आए थे और एक पंजाब से। इन प्रतिभागियों को प्रारम्भिक शैशवकालीन शिक्षा की प्रणालियों और शैलियों से अवगत कराया गया। ये प्रतिभागी आगे चलकर 65 पूर्व-प्राथमिक केन्द्रों के पूर्व-प्राथमिक अध्यापकों को प्रशिक्षित करेंगे।

राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान के परिसर में ही बिहार और महाराष्ट्र के अध्यापक-शिक्षकों के लिए प्रारम्भिक शैशव काल की शिक्षा में एक महीने का एक अन्य प्रशिक्षण कार्यक्रम 14 जुलाई 1982 को शुरू किया गया जिसमें 42 प्रतिभागियों को प्रशिक्षित किया गया।

इसी प्रकार का एक अन्य प्रशिक्षण कार्यक्रम गांधीग्राम में 1 जुलाई से 30 जुलाई 1982 तक गांधीग्राम ट्रस्ट द्वारा तमिलनाडु के अध्यापक-शिक्षकों के लिए किया गया जिसमें 19 व्यक्ति सम्मिलित हुए। इस कोर्स में प्रारम्भिक शैशव काल की शिक्षा की प्रणालियों एवं विधियों पर सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक पक्ष से विचार विमर्श एवं कार्यकलाप किए गए।

इसी प्रकार का एक और कार्यक्रम कोयम्बतूर के श्री अविनाशलिंगम गृह-विज्ञान महाविद्यालय में 19 जुलाई से 18 अगस्त 1982 तक कर्नाटक राज्य के लिए किया गया।

शिशु-माध्यम में स्थिति-निर्धारण कार्यक्रम

राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान परिसर में 1 मार्च से 6 मार्च 1983 तक शिशु-माध्यम का एक स्थिति-निर्धारण कार्यक्रम राज्य स्तर के संसाधन सम्पन्न व्यक्तियों के लिए किया गया। यह कार्यक्रम एक श्रृंखला की पहली कड़ी है। यह उड़ीसा, महाराष्ट्र और राजस्थान राज्यों के लिए किया गया जो प्रारम्भिक शैशवकालीन शिक्षा की परियोजना में शामिल हो गए हैं। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य यह है कि शिशु-माध्यमों के विभिन्न पक्षों में केन्द्रीय स्तर पर अनुकूलित हुए प्रतिभागी आगे चलकर अपने-अपने राज्यों के अध्यापक-शिक्षकों और अध्यापकों के लिए सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित कर सकेंगे। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए राज्यों से प्रार्थना की गई थी कि निम्नलिखित क्षेत्रों में से हरेक के लिए एक-एक विशेषज्ञ इस कार्यक्रम में भेजें—प्रारम्भिक शैशवकाल की शिक्षा, शिशु विकास, बाल साहित्य, बाल चित्रावली, श्रव्य टेपों का उत्पादन एवं फोटोग्राफी।

इसी प्रकार का एक अन्य अनुकूलन कार्यक्रम तमिलनाडु और बिहार राज्यों के लिए राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान के परिसर में 28 जून से 3 जुलाई 1982 तक किया गया। हर राज्य ने छह-छह व्यक्तियों का दल इसके लिए भेजा।

इसी प्रकार कर्नाटक के छह संसाधन सम्पन्न व्यक्तियों के एक दल को शिशु-माध्यमों में राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान में 20 से 24 सितम्बर 1982 तक अनुकूलित किया गया।

कम खर्च वाली खेल सामग्री पर जनजातीय और सुदूर के क्षेत्रों के शिक्षकों का प्रशिक्षण

पश्चिम बंगाल के सुदूर स्थित क्षेत्रों के शिक्षकों के लिए कलकत्ता में 20 से 29 जनवरी 1983 तक एक प्रशिक्षण कार्यक्रम किया गया।

अरुणाचल प्रदेश के विवेकानन्द केन्द्र के शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए अरुणाचल प्रदेश के जयरामपुर में 19 से 23 अप्रैल 1982 तक एक प्रशिक्षण कार्यक्रम किया गया।

शिशुओं के लिए श्रव्य कार्यक्रमों के आलेख लेखन की कार्यगोष्ठी

शिशुओं के लिए श्रव्य कार्यक्रमों के आलेख-लेखन की एक कार्यगोष्ठी 31 अगस्त से 9 सितम्बर 1982 तक की गई। इसमें तीन से छह वर्ष के शिशुओं के लिए हिन्दी में श्रव्य कार्यक्रमों के आलेख लिखे गए। कार्यगोष्ठी में उत्तर प्रदेश, दिल्ली और राजस्थान से आए

17 प्रतिभागी सम्मिलित हुए। इन प्रतिभागियों में शिशु साहित्य के लेखक और पूर्व प्राथमिक तथा प्राथमिक स्कूलों के शिशुओं के लिए श्रव्य कार्यक्रमों के प्रस्तोता थे।

कुल मिलाकर 21 आलेख तैयार किए गए जो कीड़ों-मकौड़ों, पानी के रूप, दूध और उससे बनी चीजें, बाजे, रोशनी, रोटी की कहानी, बच्चे के निरीक्षण, आवाज की पहचान, जंगली जानवर, मौसम जैसे विषयों से सम्बद्ध थे। इन आलेखों पर आधारित श्रव्य कार्यक्रम तैयार किए जाएँगे।

प्रारम्भिक शैशवकालीन शिक्षा के अध्यापक-शिक्षकों के लिए शिक्षण-सामग्री

अध्यापक-शिक्षकों के लिए शिक्षण-सामग्री तैयार करने के निमित्त एक कार्यगोष्ठी 29 नवम्बर से 4 दिसम्बर 1982 तक की गई। इसमें दस पांडुलिपियों पर विचार-विमर्श हुआ। गोष्ठी में दस लेखक और चार संसाधन सम्पन्न व्यक्ति, जिनमें तीन अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों से आए थे, सम्मिलित हुए। पांडुलिपियों पर सुझाव दिए गए और लेखकों को संशोधित पांडुलिपि प्रस्तुत करने के लिए कहा गया।

सम्मेलन

स्कूल-पूर्व के शिशुओं के लिए श्रव्य कार्यक्रमों पर प्रस्तोताओं और शिक्षकों के वास्ते एक सम्मेलन राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान के परिसर में 18 अक्तूबर 1982 को किया गया। इसका उद्देश्य था सन् 1981 में हुए सम्मेलन की सिफ़ारिशों की समीक्षा करना और तदनुसार बाद में किए गए कामों के बारे में विचार-विमर्श करना तथा साथ ही स्कूल-पूर्व के शिशुओं के लिए श्रव्य कार्यक्रमों की योजना, विकास और प्रस्तुतीकरण पर भी विचार-विमर्श करना था। इस सम्मेलन में पाँच प्रबंध पढ़े गए।

बाल साहित्य के विषयों पर 8 से 10 अप्रैल 1982 तक एक सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन का मुख्य प्रयोजन स्कूल-पूर्व के शिशुओं की योग्यता और रुचियों के परिप्रेक्ष्य में उनके लिए साहित्य सृजन की आवश्यकता पर बल डालना था। स्कूल-पूर्व के शिशुओं के लिए साहित्य निर्माण से सम्बद्ध लेखकों, चित्रकारों और प्रकाशकों में संवाद की स्थिति पैदा करना इस सम्मेलन का उद्देश्य था। देश के विभिन्न भागों से आए 18 व्यक्तियों ने इस सम्मेलन में भाग लिया।

शिशु-माध्यम प्रयोगशाला की सामग्रियों का मूल्यांकन—एक अध्ययन

यह अध्ययन बस्तर जिले के जनजातीय क्षेत्रों में 20 मई 1982 को शुरू किया गया। इसका उद्देश्य था शिशु-माध्यम प्रयोगशाला की सामग्रियों का मूल्यांकन करना। नमूने के

लिए बारह आंगनबाड़ियों के 144 बच्चे लिए गए । ये बच्चे टोकापाल की आई० सी० डी० एस० परियोजना की आंगनबाड़ियों के थे । इन्हें दो वर्गों में बाँटा गया—प्रायोगिक और नियंत्रण । परीक्षण विभिन्न बोधात्मक और भाषा कार्यों पर किया गया । उनकी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि, तंदुरुस्ती, स्वच्छता आदि के बारे में भी जानकारी एकत्र की गई ।

शिशु-माध्यम प्रयोगशाला की विभिन्न सामग्रियों के इस्तेमाल में अनुकूलित करने के लिए टोकापाल की प्रयोगात्मक वर्ग की छह आंगनबाड़ियों में काम करने वालों के वास्ते ग्यारह दिनों की एक कार्यगोष्ठी की गई । विभिन्न कार्यकलापों को करने का अभ्यास करवाया गया । कुछ दिनों बाद बस्तर जिले में नमूने के इन्हीं बच्चों पर परीक्षण किया गया । इस परियोजना का दूसरा भाग दिल्ली के खानपुर ब्लॉक की बालबाड़ी के बच्चों पर आयोजित किया गया ।

$2\frac{1}{2}$ से 13 वर्ष के भारतीय बच्चों का बोधात्मक विकास

यह पीजेटीयन नमूने पर (i) नैमित्तिक चिंतन, (ii) रक्षण, (iii) संबंध, (iv) देश काल, गति और चाल, तथा (v) सेंसरी मोटर स्ट्रक्चर का एक विकासात्मक अध्ययन है । यह अध्ययन कार्य इस उद्देश्य से हाथ में लिया गया है कि बोधात्मक विकास के सिद्धांत को भारत में विकसित किया जाए । परियोजना पर कार्य अक्तूबर 1978 में ही शुरू कर दिया गया था । चार वय समूहों के बच्चों अर्थात् 2,5,8 और 11 वर्ष के बच्चे को अध्ययन के लिए चुना गया । अध्ययन अनुदैर्घ्य पद्धति से किया गया है । आधार सामग्री को सारणीबद्ध किया जा चुका है और उनका विश्लेषण हो रहा है । आँकड़ों का संकलन किया जा रहा है । काम की रिपोर्ट लिखी जा रही है ।

शिक्षा में कला-आस्वादन

वंचित वर्ग के बच्चों के समग्र विकास के लिए उन्हें कला का आस्वादन कराना इस परियोजना का उद्देश्य है । इसके लिए नई दिल्ली के बाल भारती स्कूल को समन्वय केन्द्र के रूप में लिया गया था । निजामुद्दीन के गूंगे-बहरों के स्कूल के बच्चों और अंध विद्यालय के अंधे बच्चों तथा भाटी गाँव के बच्चों को कला-आस्वादन के अनुभव कराए गए । परियोजना में शिक्षकों को भी शामिल किया जाना है और बच्चों द्वारा किए गए कामों की एक प्रदर्शनी लगाई जानी है ।

शिशु-माध्यम प्रयोगशाला के कार्यकलाप

(क) **'शैक्षिक खेल सामग्री'** परियोजना का उद्देश्य यह दिखाना है कि स्थानीय रूप से उपलब्ध खिलौनों और अन्य सस्ते सामानों से किस प्रकार लिखना-पढ़ना सिखाना प्रभावी हो सकता है । परियोजना के चार पहलू हैं—

—राज्यों में उपलब्ध खिलौनों और खेल-सामग्री का व्यवस्थित सर्वेक्षण करवाना ।

—इन खिलौनों की शैक्षिक सम्भावनाओं का पता लगाना और उनको शैक्षिक माध्यम के तौर पर प्रभावी ढंग से इस्तेमाल करने के लिए शिक्षक-पुस्तिकाएँ बनवाना ।

—इन खिलौनों को सुधारने के लिए तरीके सुझाना ।

—स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्री द्वारा नए खिलौने बनवाना ।

इस परियोजना पर एक कार्यगोष्ठी इलाहाबाद के नर्सरी टीचर्स ट्रेनिंग कालेज में 3 से 5 मार्च 1983 तक हुई । उत्तर प्रदेश के शिक्षकों के लिए जो पुस्तिका तैयार की गई थी उसी का 'फीड बैक' प्राप्त करने के लिए यह कार्यगोष्ठी मुख्य रूप से लगी रही ।

आंध्र प्रदेश के शिक्षकों के लिए खेल सामग्री पर एक पुस्तिका छप चुकी है । आंध्र प्रदेश में उपलब्ध पारम्परिक और कम खर्च वाली खेल सामग्री के संक्षिप्त विवरण के अलावा इस पुस्तिका में ऐसे कार्यकलाप बताए गए हैं जिन्हें खेल सामग्री की मदद से कक्षा में किया जा सकता है और उनकी शैक्षिक सम्भावनाओं को देखा जा सकता है ।

(ख) मुद्रित ग्राफ़िक सामग्री के अंतर्गत दस मेमोरी कार्डों के आर्ट वर्क बनाने का काम पूरा किया जा चुका है । इसका उद्देश्य बच्चों में निरीक्षण और स्मृति को सुकर बनाना है । बातचीत के चार चार्टों के चित्र बनाए जा चुके हैं । इसका उद्देश्य शिशुओं में मौखिक अभिव्यक्ति को सरल बनाना है ।

बच्चों के लिए दो बोर्ड खेल छापे जा चुके हैं । पहला 'भाषा की उड़ान' है जो भाषा सिखाने के लिए है । दूसरा 'पौष्टिक' है जो संतुलित आहार के बारे में है । बोर्ड पासे वाले दोनों खेल रंगीन चित्रों से सुसज्जित हैं ।

(ग) श्रव्य कार्यक्रमों—के अंतर्गत आकाशवाणी द्वारा शिशुओं के लिए प्रसारित किए जाने वाले कार्यक्रमों का अनुश्रवण और मूल्यांकन तथा तीन से आठ वर्ष तक के शिशुओं के लिए कार्यक्रमों के आदर्श रूप तैयार करना है । कलकत्ता दूरदर्शन से दिखाए जाने वाले बच्चों के कार्यक्रम के अनुश्रवण की परियोजना के अनुश्रवकों के लिए 12 अक्तूबर 1982 से तीन दिनों का एक अनुकूलन कार्यक्रम कलकत्ता के दूरदर्शन केन्द्र में शुरू किया गया । इस कार्यक्रम में परियोजना के अवैतनिक निदेशक के साथ छह अनुश्रवक और एक अधीक्षक सम्मिलित हुए । अनुकूलन का एक अन्य कार्यक्रम इलाहाबाद के राज्य शिक्षा संस्थान में 20 और 21 अगस्त 1982 को रेडियो अनुश्रवण पर तीन नामिकाओं (शहरी गंदी बस्ती, शहरी और देहाती वर्ग) के लिए किया गया । कार्यक्रम को सुधारने और लोकप्रिय बनाने के सुझाव दिए गए ।

पंजाबी और मराठी में पन्द्रह-पन्द्रह मिनट वाले दो-दो श्रव्य कार्यक्रम तैयार हैं। हरेक में एक कहानी, एक खेल और मुक्त बातचीत है।

(घ) **प्रोजेक्टेड साधनों का कार्यक्रम**—'चाय की कहानी' नामक एक 'स्लाइड-कम-टेप' कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया है। इसमें 45 स्लाइडें और एक श्रव्य टेप हिन्दी में है। इसमें एक गाने की सहायता से समझाया गया है कि चाय कैसे बनती है और उसमें क्या-क्या चीजें पड़ती हैं।

(ङ) **स्लाइड टेप कार्यक्रम**—'सैंड प्ले' नामक स्लाइड टेप कार्यक्रम का छायाचित्र वाला भाग पूरा कर लिया गया है। आई० सी० डी० एस० की इस परियोजना को शिशु अध्ययन एकक के कर्मचारियों ने परामर्श सेवाएँ दीं।

पूर्व-प्राथमिक एवं प्राथमिक स्कूल-शिक्षकों के लिए राष्ट्रीय और राज्य-स्तर की खिलौना बनाने की प्रतियोगिता

प्रतियोगिता दो स्तरों पर होती है। पहले राज्य स्तर पर फिर राष्ट्रीय स्तर पर। राज्य स्तर पर प्रतियोगिताओं की व्यवस्था रा० शै० अ० और प्र० प० के क्षेत्र सलाहकारों ने अपने अपने राज्यों में की। हर राज्य में खिलौनों की जाँच तीन निर्णायकों की एक समिति ने की और पुरस्कार घोषित किए। तीन दिनों का एक कार्यक्रम राष्ट्रीय स्तर पर किया गया जिसमें हर राज्य या संघ क्षेत्र से एक एक प्रतियोगी के हिसाब से कुल 17 लोगों ने भाग लिया। कार्यक्रम में रा० शै० अ० और प्र० प० के शिशु अध्ययन एकक द्वारा बनाई गई मार्गदर्शी रेखाओं के आधार पर प्रतियोगियों ने वहीं बैठकर खिलौने बनाए। तीन निर्णायकों की एक समिति ने प्रतियोगिता के पुरस्कारों की घोषणा की

इस अवसर पर राज्य स्तर के पुरस्कृत खिलौने और राष्ट्रीय स्तर के पुरस्कृत खिलौने प्रदर्शित किए गए।

4

प्रारम्भिक शिक्षा का सार्वजनीकरण

प्रारम्भिक शिक्षा को सभी लोगों तक पहुँचाने के लिए रा० शै० अ० और प्र० प० विविध प्रकार के कार्य करती है जिनमें शोध, विकास, प्रशिक्षण और प्रसार के कार्यक्रम शामिल हैं। इसके लिए ऐसे कार्यकलाप हाथ में लिए जाते हैं जिनसे औपचारिक शिक्षा तक सभी की पहुँच हो। इसके साथ ही उन लोगों के लिए जो बीच में ही पढ़ाई छोड़ देते हैं, अनौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था को बढ़ावा दिया जाता है। औपचारिक शिक्षा के लिए पाठ्य-क्रम नवीकरण के कार्यकलाप हाथ में लिए जाते हैं और अनौपचारिक शिक्षा के लिए उपयुक्त अनुदेशीय-कार्यक्रमों तथा शिक्षा-सामग्री का निर्माण किया जाता है।

राज्य शिक्षा विभागों तथा राज्य स्तर के राज्य शिक्षा संस्थानों व राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषदों जैसे प्रशिक्षण संस्थानों के सहयोग से प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वजनीकरण को बढ़ावा देने वाली नीचे लिखी विशिष्ट परियोजनाएँ यूनिसेफ़ की सहायता से चलती रहीं—

(i) प्राथमिक शिक्षा व्यापक उपागम ।

(ii) प्राथमिक शिक्षा पाठ्यक्रम नवीकरण ।

(iii) समुदाय शिक्षा और प्रतिभागिता में विकासात्मक गतिविधियाँ ।

(iv) पोषण, स्वास्थ्य शिक्षा एवं परिवेश-स्वच्छता ।

(v) प्रारम्भिक शैशवकालीन शिक्षा/शिशु माध्यम प्रयोगशाला ।

ऊपर गिनाई गई परियोजनाओं में से शुरू की तीन के कार्यकलापों के बारे में इस अध्याय में लिखा जा रहा है । शेष दो के बारे में यथास्थान लिखा गया है ।

प्राथमिक शिक्षा व्यापक उपागम

"प्राथमिक शिक्षा व्यापक उपागम" (केप) की परियोजना अब तक स्कूल-शिक्षा से वंचित अधिसंख्य बच्चों की न्यूनतम शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करने और अंशकालिक अनौपचारिक शिक्षा में 9 से 14 वर्ष के स्कूल न जाने वाले बच्चों के नामांकन के लक्ष्य को प्राप्त करने के भारत सरकार के प्रयत्न का एक भाग रही है । परियोजना के अंतर्गत स्थानीय रूप से प्रासंगिक अधिगम-सामग्री (अधिगम उपाख्यान) पर्याप्त संख्या और किस्मों में बनाई जा रही है। प्रारम्भिक अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों (टी० टी० आई०) के पाठ्क्रमों अथवा प्राथमिक स्कूल शिक्षकों के लिए अंत: सेवा प्रशिक्षण कोर्सों में एक प्रशिक्षण-उत्पादन विधि को लाकर अधिगम उपाख्यान बनाए जा रहे हैं । प्रक्रियन और संशोधन के उपरांत अधिगम उपाख्यानों को परियोजना में हिस्सा लेने वाले राज्यों व संघ क्षेत्रों के प्रारम्भिक अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों (टी० टी० आई०) अथवा अंत: सेवा अध्यापक-प्रशिक्षण केन्द्रों (आई० टी० टी० सी०) के साथ संलग्न करने के निमित्त स्थापित किए गए प्रायोगिक अधिगम केन्द्रों में प्रयुक्त किया जाएगा । इसके बाद राज्यों व संघ क्षेत्रों में मूल्यांकन केन्द्रों एवं प्रत्यायन सेवाओं की स्थापना की जाएगी ताकि इन अधिगम केन्द्रों में जाने वाले बच्चे अपनी शैक्षणिक उपलब्धियों के लिए सनद या श्रेय पा सकें ।

परियोजना के उद्देश्य

परियोजना के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

(i) शिक्षा में अनौपचारिक उपागम का विकास और शिक्षित बच्चों की संख्या में वृद्धि, विशेष रूप से उन बच्चों की जो समाज के सुविधा-वंचित समूहों के हैं, औपचारिक शिक्षण के विकल्प के रूप में आयोजित अनौपचारिक शिक्षा क्रिया कलापों में भाग लेना, और (ii) ऐसे नम्य, कार्य आधारित, समस्या केन्द्रित एवं विकेंद्रित पाठ्य-विवरण और अधिगम सामग्री का निर्माण करना जो कि 9 से 14 वर्ष के आयु वर्ग के विभिन्न समूहों के बच्चों की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप हों और जो न केवल अनौपचारिक शिक्षा के लिए बल्कि औपचारिक शिक्षा के लिए भी उपयोगी हों।

परियोजना के कार्यान्वयन का परिगणन

परियोजना से संबंधित मूल क्रिया कलापों का कार्यान्वयन तीन प्रमुख चरणों में किया जा रहा है। पहले चरण में, पर्याप्त मात्रा और विविधता में अधिगम उपाख्यानों के विकास, निर्माण, प्रकाशन से संबंधित सभी क्रिया कलाप शामिल हैं। दूसरे चरण में वे सब क्रिया कलाप हैं जो अनौपचारिक अधिगम केंद्रों की स्थापना और उनके कार्यों से संबंधित हैं। परियोजना के तीसरे चरण में वे क्रिया कलाप हैं जो मूल्यांकन केंद्रों और प्रत्यायन सेवाओं की स्थापना से संबंधित हैं।

अरुणाचल प्रदेश और पांडिचेरी के संघ राज्य क्षेत्रों को छोड़कर समस्त राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों ने इस परियोजना के कार्यान्वयन के लिए समझौता किया है। लेकिन परियोजना में भाग ले रहे सभी राज्यों व संघ क्षेत्रों की गतिविधियाँ एक जैसी नहीं हैं क्योंकि सभी जगहों पर इनके शुरू करने की तारीख अलग अलग है। कुछ राज्यों व संघ क्षेत्रों में इन्हें 1979 में शुरू किया गया तो कुछ में 1980 में और कुछ में 1981 में और कुछेक में तो 1982 में। त्रिपुरा राज्य और दादरा और नगर हवेली संघ राज्य क्षेत्र में परियोजना के क्रिया कलाप अभी प्रारंभ नहीं किए गए हैं।

किए गए मुख्य कार्य कलाप

उन समस्त राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों में परियोजना के प्रथम चरण से संबंधित कार्यों में प्रगति हो रही है जिन्होंने इसे कार्यान्वित किया है। वर्ष 1982-83 के दौरान परियोजना के अधीन किए गए मुख्य क्रिया कलापों में निम्नलिखित सम्मिलित हैं :

—अधिगमउपाख्यानों के निर्माण की कार्यप्रणाली पर अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों/ अंतः-सेवा अध्यापक प्रशिक्षण केन्द्रों के अध्यापक-शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण कोर्स

—अधिगम उपाख्यानों के प्रक्रमण की कार्यप्रणाली पर अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों/अंत:-सेवा अध्यापक प्रशिक्षण केन्द्रों के अध्यापक-शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण कोर्स

—विभिन्न विषयों और क्षेत्रों से सम्बद्ध कुशलताओं को अधिगम उपाख्यानों में एकीकृत करने की प्रणाली पर एवं कम पठन योग्यता वाले या उस से पूर्णत: विहीन शिक्षार्थियों के लिए अधिगम-सामग्री के निर्माण की प्रणाली पर अध्यापक-प्रशिक्षण संस्थानों के अध्यापक-शिक्षकों के लिए स्थिति-निर्धारण कोर्स

—'प्राथमिक शिक्षा व्यापक उपागम' की परियोजना के नियोजन और प्रबंधन पक्षों पर जिला और ब्लॉक स्तर के शिक्षा अधिकारियों के लिए स्थिति-निर्धारण कोर्स

—अधिगम उपाख्यानों के लिए चित्र निर्माण की प्रणाली पर कला शिक्षकों/कलाकारों के लिए प्रशिक्षण कोर्स

—प्रक्रमण के लिए अधिगम उपाख्यानों के प्रारूपों की काट-छाँट

—अधिगम उपाख्यानों के प्रारूपों का प्रक्रमण

—अधिगम उपाख्यानों का उत्पादन/प्रकाशन

लक्ष्य की उपलब्धि

देश के 30 राज्य शिक्षा संस्थान/राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्/डी० एस० ई० आर० टी०/एस० आई० ई० आर० टी० और 980 प्रारम्भिक अध्यापक प्रशिक्षण संस्थान/अंत:-सेवा अध्यापक प्रशिक्षण केन्द्र कैप परियोजना के कार्यान्वियन में लगे हुए हैं। अधिगम उपाख्यानों के निर्माण एवं प्रक्रमण की प्रणाली में लगभग 40 क्षेत्रीय विकेन्द्रीकृत संसाधन केन्द्रों के सदस्यों को 1982-83 के दौरान प्रशिक्षित किया गया। अधिगम उपाख्यानों के निर्माण की प्रणाली में अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों के 473 अध्यापक-शिक्षकों तथा 806 सेवा-रत शिक्षकों को प्रशिक्षित किया गया। अधिगम उपाख्यानों के प्रक्रमण की प्रणाली में अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों/अंत:-सेवा अध्यापक प्रशिक्षण केन्द्रों के 1165 अध्यापक-शिक्षकों को प्रशिक्षित किया गया। विभिन्न विषयों या क्षेत्रों से सम्बद्ध कुशलताओं को अधिगम उपाख्यानों में एकीकृत करने की प्रणाली पर एवं कम पठन योग्यता वाले अथवा उससे पूर्णत: विहीन शिक्षार्थियों के लिए अधिगम-सामग्री के निर्माण की प्रणाली पर अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों/अंत:-सेवा अध्यापक प्रशिक्षण केन्द्रों के 581 अध्यापक-शिक्षकों को प्रशिक्षित किया गया। 'प्राथमिक शिक्षा व्यापक उपागम' की परियोजना के नियोजन और प्रबंधन पक्षों पर जिला और प्रखंड स्तर के 504 शिक्षा अधिकारियों को अनुकूलित किया गया। अधिगम उपाख्यानों के लिए चित्र-निर्माण की प्रणाली पर 223 कला शिक्षकों/

कलाकारों को प्रशिक्षित किया गया। अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों के अध्यापक प्रशिक्षार्थियों/अध्यापक-शिक्षकों तथा सेवा-रत अध्यापकों द्वारा बनाए गए अधिगम उपाख्यानों के प्रारूपों की काट-छाँट के लिए 38 कार्यगोष्ठियाँ की गईं। इस प्रक्रिया में अ० प्र० सं० के 575 अध्यापक-शिक्षकों को सम्मिलित किया गया। प्रकाशन के लिए चुने गए अधिगम उपाख्यानों को सुधारने के लिए अ० प्र० सं०/अं० से० अ० प्र० के० के 1092 अध्यापक-शिक्षकों को सम्मिलित करते हुए 56 कार्यगोष्ठियाँ भी इसी काल में की गईं। अ० प्र० सं० के अध्यापक प्रशिक्षार्थियों/अध्यापक-शिक्षकों और सेवा-रत शिक्षकों द्वारा बनाए गए लगभग 400 माडलों को प्रकाशन के लिए तैयार कर लिया गया है। आंध्र प्रदेश, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु, बिहार और मध्य प्रदेश के राज्यों ने 119 अधिगम उपाख्यानों को कैप्सूल के रूप में प्रकाशित कर दिया है।

प्राथमिक शिक्षा पाठ्यक्रम नवीकरण

'प्राथमिक शिक्षा पाठ्यक्रम नवीकरण' की परियोजना पाठ्यक्रम नवीकरण कार्यक्रम से सम्बद्ध विभिन्न माध्यमों को अपनाकर निम्नलिखित उद्देश्यों को पूरा करने में लगी हुई है—

—अभिनव परिवर्तन वाले ऐसे पाठ्यक्रम का निर्माण जो विभिन्न वर्गों से आने वाले बच्चों, खास कर असुविधाग्रस्त क्षेत्रों के बच्चों की जरूरतों के अनुकूल हो।

—बच्चे की जीवन-शैली और आगे उपलब्ध होने वाले सामाजिक-आर्थिक अवसरों के साथ पाठ्यक्रम को गुणात्मक रीति से समायोजित करना।

—परियोजना के अंतर्गत आने वाले स्कूलों के प्रयोगात्मक शैक्षिक कार्यक्रमों में परीक्षित अभिनव परिवर्तन वाले विचारों को प्रारम्भिक स्कूल पाठ्यक्रम में क्रमिक रूप से मिलाना ताकि वर्तमान प्राथमिक शिक्षा की सार्थकता में वृद्धि हो।

सन् 1979-80 में शुरू की गई इस परियोजना की प्रसार अवस्था में सम्मिलित होने वाले 20 राज्यों और 8 संघ क्षेत्रों को मार्ग निर्देशन देने और राष्ट्रीय स्तर पर परियोजना की देखरेख करने का काम परिषद् के प्राथमिक पाठ्यक्रम विकास प्रकोष्ठ के जिम्मे है। राज्य स्तर पर राज्य शि० सं०/राज्य शै० अ० और प्र० प० अपने राज्य प्राथमिक पाठ्यक्रम विकास प्रकोष्ठों के माध्यम से परियोजना के कार्यान्वयन का काम देखते हैं। परियोजना के प्रभावी कार्यान्वयन एवं परियोजना-स्कूलों में शैक्षणिक कार्यों के अधीक्षण के लिए राज्य शि० सं०/राज्य शै० अ० और प्र० प० की सहायता के निमित्त 180 से भी अधिक अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों को चुना गया है। परियोजना में 2,469 प्राथमिक स्कूल

शामिल हैं जिनमें चार लाख से अधिक बच्चे पढ़ते हैं। इन स्कूलों में लगभग 11,000 शिक्षक काम कर रहे हैं।

प्राथमिक शिक्षा पाठ्यक्रम नवीकरण परियोजना के अंतर्गत निम्नलिखित कार्य हैं—

—अभिनव परिवर्तन वाली पाठ्यक्रम-योजना का निर्माण

— प्राथमिक कक्षाओं के लिए विस्तृत पाठ्यचर्याओं का निर्माण

—प्रासंगिक एवं आवश्यकता-आधृत शिक्षण-सामग्री (पाठयपुस्तकें, शिक्षक-संदर्शिकाएँ आदि) का निर्माण एवं परियोजना स्कूलों में उसकी जाँच पड़ताल

—अभिनव परिवर्तन वाले पढ़ाने-पढ़ने के प्रासंगिक तरीकों की खोज

—छात्रों के विकास के मूल्यांकन के लिए समुचित तरीकों की खोज

शिक्षण-सामग्री

परियोजना में सम्मिलित हुए राज्य और संघ क्षेत्र शिक्षण-सामग्री का निर्माण कई चरणों में कर रहे हैं। विभिन्न कक्षाओं की शिक्षण-सामग्री के निर्माण और परियोजना-स्कूलों में उसकी जाँच पड़ताल का काम अलग अलग अवस्थाओं में चल रहा है।

वर्ष के दौरान प्रतिभागी राज्यों/संघ क्षेत्रों ने अपनी अपनी भाषाओं में कुल 296 शिक्षण सामग्रियाँ बनाईं।

परियोजना के कर्मचारियों का अनुकूलन

प्रा० शि० पा० न० परियोजना के विभिन्न पक्षों में राज्य प्राथमिक पाठ्यक्रम विकास प्रकोष्ठों एवं अ० प्र० संस्थानों के कर्मचारियों के लिए रा० शै० अ० और प्र० प० ने 25 अनुकूलन कार्यक्रम किए। इन कार्यक्रमों में 275 व्यक्ति सम्मिलित हुए। परियोजना स्कूलों के अध्यापकों एवं अधीक्षण कर्मचारियों के लिए प्रतिभागी राज्यों एवं संघ क्षेत्रों ने 424 अनुकूलन कार्यक्रम किए। इन कार्यक्रमों में लगभग 11,800 प्रतिभागी सम्मिलित हुए।

राज्यों को मार्ग-निर्देशन

अनुकूलन कार्यक्रमों के अलावा रा० शै० अ० और प्र० प० के प्रा० पा० वि० प्र० ने राज्यों को कई प्रकार से सहायता प्रदान की। नागालैंड, हरियाणा, अंडमान और निकोबार द्वीप समूहों, मेघालय, मध्य प्रदेश, हिमालय प्रदेश और राजस्थान के राज्य प्राथमिक पाठ्य-

क्रम विकास प्रकोष्ठों को शिक्षण सामग्री के निर्माण तथा मूल्यांकन में मार्गदर्शन दिया गया। त्रिपुरा, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, अंडमान और निकोबार द्वीप समूहों तथा गोआ को अल्पकालिक परामर्श सेवाएँ प्रदान की गईं।

परियोजना के समन्वयकों के लिए राष्ट्रीय स्तर का सम्मेलन

प्रा० शि० पा० न० परियोजना के समन्वयकों का एक सम्मेलन नई दिल्ली के रा० शि० सं० परिसर में 3 से 10 नवम्बर 1982 तक हुआ। इस सम्मेलन में परियोजना की प्रगति की समीक्षा की गई और 1983 के लिए राज्यों एवं संघ क्षेत्रों की योजनाओं को अंतिम रूप दिया गया। इसके अलावा समन्वयकों ने परियोजना के सुचारु कार्यान्वियन के लिए अनेक महत्वपूर्ण सुझाव दिए।

राज्यों/संघ क्षेत्रों में पाठ्यक्रम नवीकरण कार्यक्रम की मूल संरचना

हर राज्य में प्रा० शि० पा० न० परियोजना के अंतर्गत पाठ्यक्रम के निर्माण की प्रक्रिया राज्य प्रा० पा० वि० प्र० के सदस्यों, अ० प्र० सं० और परियोजना स्कूलों के कर्मचारियों, विषय विशेषज्ञों एवं विभिन्न शैक्षिक संस्थाओं आदि के विषय-विशेषज्ञों एवं लेखकों का संयुक्त अथवा सहयोगी प्रयास होती है। इस प्रकार, प्रा० शि० पा० न० परियोजना के कार्यान्वियन ने हर राज्य अथवा संघ क्षेत्र में पाठ्यक्रम विकास के लिए एक मूल संरचना खड़ी कर दी है।

प्रा० शि० पा० न० परियोजना के कार्यान्वियन द्वारा ही यह सम्भव हो सका है कि सिक्किम, नागालैंड, मेघालय, जैसे राज्यों और अंडमान व निकोबार द्वीप समूहों, पांडिचेरी, चंडीगढ़ और लक्षद्वीप जैसे संघ क्षेत्रों में प्राथमिक स्तर की शिक्षा के लिए उनकी अपनी पाठ्यचर्याएँ और शिक्षण-सामग्री विकसित होती जा रही है। आशा की जाती है कि प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के कार्यक्रम को बल देने में बच्चों के लिए प्रासंगिक और आवश्यकता-आधृत पाठ्यक्रमों के निर्माण का विशेष हाथ होगा।

राज्य शिक्षा प्रणाली में वृहत्तर रूप से पाठ्यक्रमों को लाने की वर्तमान स्थिति

प्रतिभागी राज्यों और संघ क्षेत्रों ने नए पाठ्यक्रमों के विकास का एक चरण-बद्ध कार्यक्रम बनाया है। प्रा० शि० पा० न० परियोजना के अंतर्गत बनाई जा रही शिक्षण-

सामग्री की जाँच परख परियोजना-स्कूलों में की जा रही है। इस प्रकार प्राप्त अनुभवों के आधार पर शिक्षण सामग्री का संशोधन परिवर्धन किया जा रहा है। इसी के साथ-साथ राज्य शिक्षा प्रणाली में नए पाठ्यक्रमों को वृहत्तर रूप से लाने के लिए भी कदम उठाए जा रहे हैं।

राज्यों और संघ क्षेत्रों के शिक्षा विभागों को यह सलाह दी गई है कि वे प्रा० शि० पा० न० परियोजना के कार्यों को घनिष्ठता से देखते और अपनाते चलें ताकि राज्य शिक्षा प्रणाली में प्रा० शि० पा० न० परियोजना द्वारा बनाए जा रहे पाठ्यक्रमों को वृहत्तर रूप से लाया जा सके। सिक्किम, तमिलनाडु, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, नागालैंड, उड़ीसा, और राजस्थान के राज्यों और अंडमान व निकोबार द्वीप समूहों तथा मिजोराम के संघ क्षेत्रों ने अपनी शिक्षा प्रणाली में प्रा० शि० पा० न० परियोजना के अंतर्गत बनी शिक्षण सामग्री को वृहत्तर रूप से लाने के लिए ठोस कदम उठा लिए हैं। इन ठोस कदमों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

—**हिमाचल प्रदेश** सरकार ने फैसला किया है कि 1983 से प्राथमिक कक्षाओं की पाठ्यपुस्तकों का राष्ट्रीयकरण किया जाएगा। इस फैसले के अनुसार चलने के लिए बोर्ड ऑफ स्कूल एजुकेशन ने निर्णय किया है कि प्रा० शि० पा० न०परियोजना के अंतर्गत हिमाचल प्रदेश के सोलन स्थित राज्य शिक्षा संस्थान द्वारा बनाई गई शिक्षण-सामग्री को 1983-84 के शैक्षणिक सत्र से लगा लिया जाएगा। राज्य में स्कूलों के इस्तेमाल के लिए पाठ्यपुस्तकें छाप ली गई हैं।

—**महाराष्ट्र** ने राष्ट्रीय स्तर पर प्रा० शि० पा० न० परियोजना के अंतर्गत बनी 'मिनिमम लर्निंग कांटीनूम' सामग्री को अपना लिया है ताकि प्राथमिक कक्षाओं के लिए विविध विषयों की पाठ्यचर्याएँ उस पर आधारित कर बनाई जा सकें। पूरे राज्य के लिए कक्षा I से IV तक का पाठ्यक्रम संशोधित कर लिया गया है और पाठ्यक्रम के प्रारूप को राज्य सरकार की स्वीकृति के लिए भेजा गया है। परियोजना के प्रथम चरण के दौरान कक्षा I और II के लिए बनी परिवेश अध्ययन की शिक्षक संदर्शिका को वृहत्तर उपयोग के लिए राज्य शिक्षा विभाग ने अपना लिया है।

—**नागालैंड** के शिक्षा विभाग ने यह निर्णय किया है कि प्रा० शि० पा० न० परियोजना के अंतर्गत बनाई जा रही शिक्षण सामग्री को राज्य के सभी प्राथमिक स्कूलों में इस्तेमाल के लिए लगा लिया जाए।

—**उड़ीसा** के बोर्ड ऑफ स्कूल एजुकेशन ने प्रा० शि० पा० न० परियोजना के प्रथम चरण के दौरान कक्षा I और II के लिए बनी शिक्षक संदर्शिका को राज्य के सभी प्राथमिक स्कूलों में वृहत्तर उपयोग के लिए अपना लिया है। प्रा० शि०

पा० न० परियोजना के प्रसार चरण के दौरान बने पाठ्यक्रम के ढाँचे को भी यत्किंचित संशोधन के बाद राज्य के सभी प्राथमिक स्कूलों में ले आया गया है।

—**राजस्थान** के शिक्षा विभाग ने फैसला किया है कि प्रा० शि० पा० न० परियोजना के अंतर्गत उदयपुर स्थित राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण संस्थान द्वारा बनाई गई शिक्षण सामग्री और पाठ्यचर्या को वृहत्तर इस्तेमाल के लिए अपना लिया जाए या लगा लिया जाए। इस उद्देश्य से एक समीक्षा समिति बना ली गई है। राज्य के प्राथमिक स्कूलों की जरूरतों के अनुकूल प्रा० शि० पा० न० परियोजना की शिक्षण-सामग्री को समीक्षित और संशोधित करने का काम इस समिति के जिम्मे होगा।

—**सिक्किम** के शिक्षा विभाग ने प्रा० शि० पा० न० परियोजना के अंतर्गत स्थानीय आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुकूल प्राथमिक कक्षाओं के लिए अपनी खुद की शिक्षण-सामग्री बनाने की प्रक्रिया शुरू कर दी है। राज्य सरकार ने तय किया है कि प्रा० शि० पा० न० परियोजना के अंतर्गत बन रही शिक्षण-सामग्री को राज्य के सभी प्राथमिक स्कूलों में 1983 से इस्तेमाल किया जाए।

—**तमिलनाडु** राज्य के शिक्षा विभाग ने प्रा० शि० पा० न० परियोजना के अंतर्गत राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद द्वारा बनाई गई कक्षा I और II की गणित की पाठ्यपुस्तकों को वृहत्तर उपयोग के लिए लगा लिया है।

—**अंडमान और निकोबार द्वीप समूह** का शिक्षा विभाग अपने स्कूलों में पड़ोसी राज्यों की शिक्षण-सामग्री का इस्तेमाल करता है। प्रा० शि० पा० न० परियोजना के अंतर्गत स्थानीय आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुकूल शिक्षण-सामग्री के निर्माण के लिए एक चरणबद्ध कार्यक्रम बना लिया गया है। इस परियोजना के अंतर्गत बनी शिक्षण-सामग्री को सभी प्राथमिक स्कूलों में 1983 से लगा लिया जाएगा।

—**मिज़ोराम** में प्रा० शि० पा० न० परियोजना के अंतर्गत बनी निम्नलिखित शिक्षण-सामग्री को संघ क्षेत्र के सभी प्राथमिक स्कूलों में इस्तेमाल के लिए मिज़ोरामा बोर्ड ऑफ स्कूल एजुकेशन द्वारा अपना लिया गया है—

(i) कक्षा I से V तक के लिए मिज़ो भाषा में भाषा की पाठ्यपुस्तकें।

(ii) कक्षा III से V तक के लिए परिवेश अध्ययन (सामाजिक अध्ययन) की पाठ्यपुस्तकें।

अनुसंधान

वर्ष 1982-83 के दौरान प्रा० पा० वि० प्र० ने विवरणात्मक अनुसंधान अध्ययनों की एक श्रृंखला शुरू की। ये अध्ययन तीन प्रकार के हैं : स्टेटस स्टडीज़, केस स्टडीज और हिस्टारिकल स्टडीज़।

स्टेटस स्टडीज़ के छह अध्ययन इस प्रकार हैं—

—भारत में प्रा० शि० पा० न० परियोजना के स्कूलों की स्थापना, पैटर्न और कार्य प्रणाली का परिचय।

—परियोजना स्कूलों में भौतिक सुविधाएँ।

—परियोजना स्कूलों में उपलब्ध उपकरणों, पठन एवं खेल सामग्री की किस्म।

—परियोजना स्कूलों में समाजोपयोगी उत्पादक कार्य और कला-कार्यकलाप के विशेष संदर्भ में पाठ्यक्रमीय और पाठ्येतर गतिविधियाँ।

—परियोजना स्कूलों के छात्रों की सामाजिक पृष्ठभूमि।

—परियोजना स्कूलों के अध्यापकों का स्तर।

इनके अलावा 13 राज्यों व 2 संघ क्षेत्रों में चुने हुए परियोजना स्कूलों के 30 अध्ययन केस स्टडीज़ के तौर पर भी किए जा रहे हैं ताकि स्कूलों पर परियोजना के प्रभाव को समझा जा सके। भारत में प्राथमिक-पाठ्यक्रम-विकास (1882-1982) का ऐतिहासिक अध्ययन भी किया जा रहा है। ये सभी अध्ययन सुचारु रूप से चल रहे हैं।

"स्वातंत्र्योत्तर भारत की विभिन्न शैक्षिक विचारधाराओं का अध्ययन (1947-1980)"

यह अध्ययन निम्नलिखित चार शैक्षिक विचारधाराओं के बारे में है—

(i) हिंदू योग साधना की विचारधारा
(ii) मनोविश्लेषणात्मक विचारधारा
(iii) गांधीवादी शैक्षिक दर्शन
(iv) मार्क्सवादी विचारधारा

नीचे लिखी दो विचारधाराओं के साहित्य का अध्ययन पूरा किया जा चुका है—

(i) हिन्दू योग साधना की विचारधारा
(ii) मनोविश्लेषणात्मक विचारधारा

'गांधीवादी शैक्षिक दर्शन' के साहित्य का अध्ययन अभी चल रहा है। संभवतया मई 1983 तक यह पूरा हो जाएगा।

"प्राथमिक स्तर की विज्ञान, सामाजिक अध्ययन और भाषा की पाठ्यपुस्तकों में प्रयुक्त भाषा की बोधगम्यता का अध्ययन"

इस परियोजना का मुख्य उद्देश्य यह देखना था कि (क) किसी कक्षा विशेष की पाठ्यपुस्तक में प्रयुत भाषा उस कक्षा के बच्चों के लिए बोधगम्य है अथवा नहीं; (ख) बच्चे की मौखिक और लिखित भाषाओं का पाठ्यपुस्तकों में प्रयुक्त भाषा से क्या सम्बन्ध है।

यह अध्ययन राजस्थान राज्य की कक्षा III की पाठ्यपुस्तकों पर किया गया। **क्लोज, एम० सी० क्यू०** और बोधगम्यता के परीक्षण तैयार किए गए और उन्हें मानकीकृत किया गया। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों की कक्षा III के बच्चों की मौखिक और लिखित भाषाओं के नमूने इकट्ठे किए गए। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बराबर बराबर बच्चों पर परीक्षण किए गए। साथ ही यह भी ध्यान रखा गया कि लड़कों और लड़कियों की संख्या भी बराबर रहे। 500 बच्चों के नमूने अंतिम तौर पर लिए गए। अध्ययन की रिपोर्ट बन चुकी है।

देखा गया कि बच्चों की भाषा और पाठ्यपुस्तकों में प्रयुक्त भाषा में उल्लेखनीय अंतर हैं। इस अध्ययन से पाठ्यपुस्तक-लेखकों को बच्चों की भाषा और पाठ्यपुस्तक में प्रयुक्त भाषा के बीच की खाई को पाटने में मदद मिलेगी।

"प्राथमिक स्तर पर विज्ञान, सामाजिक अध्ययन और भाषा की पाठ्यपुस्तकों में प्रयुक्त भाषा की बोधगम्यता को प्रभावित करने वाले मनोवैज्ञानिक कारकों का अध्ययन"

यह अध्ययन ऊपर गिनाए गए अध्ययन का ही विस्तार है। इस अध्ययन का उद्देश्य है पाठ्यपुस्तकों में प्रयुक्त भाषा की बोधगम्यता पर प्रभाव डालने वाली मेधा (मौखिक और अमौखिक) और सामाजिक-आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना।

तीनों विषय-क्षेत्रों की भाषा की बोधगम्यता मापने के लिए परीक्षण तैयार किए गए और उन्हें मानकीकृत किया गया। राजस्थान के कक्षा III के 400 नमूने के बच्चों पर बोधगम्यता परीक्षण, मेधा परीक्षण और सामाजिक-आर्थिक-स्थिति-मानक को प्रयुक्त कर आँकड़ों को एकत्र किया जा चुका है। प्रक्रमण का कार्य किया जा रहा है। सम्भवतया अध्ययन की रिपोर्ट 1983 के अंत तक तैयार हो जाएगी।

"बाल-साहित्य : निर्माण और मूल्यांकन" नामक पुस्तक का प्रकाशन

बच्चों को किस प्रकार का साहित्य दिया जाए कि जिसे पढ़कर वे बेहतर नागरिक बन सकें ? इस सवाल से जूझने का काम परिषद् की उपरोक्त पुस्तक करती है। यह पुस्तक उन लेखों का संग्रह है जो रा० शै० अ० और प्र० प० द्वारा आयोजित एक सम्मेलन में पढ़े गए थे। बाल-साहित्य के निर्माण और मूल्यांकन के लिए सिद्धांतों और तरीकों को समझने की कोशिश इन लेखों में की गई है। इन लेखों के लेखकों में बाल-पत्रिकाओं के सुविज्ञ सम्पादक, भारत की विभिन्न भाषाओं के जाने माने लेखक और प्रतिष्ठित शिक्षाविद शामिल हैं।

"शोध माध्यम से पाठ्यपुस्तकों को सुधारना"

मिमियोग्राफ़ की गई यह पुस्तिका बताती है कि भारतीय स्कूल व्यवस्था में पाठ्य-पुस्तकों का क्या स्थान है और पाठ्यपुस्तकें किन कमियों से भरी हुई हैं। राज्य पाठ्यपुस्तक बोर्डों/निगमों/ब्यूरो; रा० शै० अ० और प्र० प० तथा प्राइवेट प्रकाशकों द्वारा बहुत बड़ी संख्या में हर साल पाठ्यपुस्तकें बनाई जाती हैं और छापकर ग्राहकों को बेची जाती हैं। इस काम में रा० शै० अ० और प्र० प० को छोड़कर और किसी भी संस्था में प्रकाशन के पहले किसी प्रकार के शोध की व्यवस्था नहीं है। देश में पढ़ने पढ़ाने के मुख्य उपकरण के रूप में प्रयुक्त होने वाली पाठ्यपुस्तकों को सुधारने के निमित्त शोध की आवश्यकता पर यह पुस्तिका बल देती है। पाठ्यसामग्री के प्रस्तुतीकरण, चित्रांकन, अभ्यास निर्माण, राष्ट्रीय एकीकरण, सृजनात्मक अधिगम आदि के क्षेत्रों में शोध की समस्याएँ पहचानी जानी चाहिए। पुस्तिका में पाठ्यपुस्तकों के सुधार के लिए विभिन्न विषयों की कुछ शोध समस्याओं को बताया भी गया है।

समुदाय शिक्षा और प्रतिभागिता में विकासात्मक काय कलाप

परियोजना के उद्देश्य

यूनिसेफ़ की सहायता से परिषद् द्वारा क्रियान्वित की जा रही 'समुदाय शिक्षा और सहभागिता में विकासात्मक क्रिया कलाप' परियोजना का विशिष्ट उद्देश्य उन विशाल समूहों की न्यूनतम शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करने के संभाव्य साधनों के रूप में शैक्षिक क्रिया-कलापों के नवीन रूपों को विकसित और परीक्षित करना है, जो कि वर्तमान में अंशत: या पूर्णत: किसी भी प्रकार की शिक्षा से वंचित हैं। यह उपागम इस बात पर आधारित है कि बच्चों की शिक्षा को सार्थक बनाने के लिए यह जरूरी है कि उनके सामाजिक-आर्थिक पर्या-वरण में धीरे-धीरे परिवर्तन और संशोधन करते रहना चाहिए। इसको सफल बनाने के लिए

शिक्षा और समुदाय की प्रेरणा जरूरी है, जिसका आशय यह है कि प्रभावी और कुशल तरीकों से न केवल स्कूल-पूर्व और स्कूल से बाहर के बच्चों की ही बल्कि बीच ही में स्कूल छोड़ देने वाले बच्चों और माताओं की शैक्षिक आवश्यकताओं को भी पूरा किया जाए।

इससे संबंधित एक उद्देश्य यह पता लगाना है कि क्या स्कूलों और समुदाय के बीच द्विभाजन को दूर करके ऐसा करना संभव है कि स्कूल, समुदाय को इस प्रकार सहायता प्रदान करें कि वे समुदाय के अन्य क्षेत्रकों में सामाजिक परिवर्तन के प्रेरणा स्रोत बन जाएँ।

इसलिए परियोजना में अनौपचारिक शिक्षा के कार्यक्रमों के आयोजन की इस प्रकार कल्पना की गई है जिससे कि 0-3 आयु वर्ग और माताओं की, 3-6, 6-14 और 15-35 आयु वर्ग की और प्रौढ़ों की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। इस परियोजना की चुनौती का सामना करने के लिए यह आवश्यक है कि विभिन्न विभागों और कल्याण एजेंसियों के कार्यक्रमों के जरिये चुने हुए समुदायों को पहले से ही उपलब्ध कराए गए संसाधनों का प्रभावी उपयोग किया जाए।

यह परियोजना भारत सरकार की अनौपचारिक शिक्षा के व्यापक कार्यक्रम के अनु-रूप है। परियोजना के अंतर्गत विकसित किए गए कार्यक्रम और क्रिया कलाप, लोगों की स्वैच्छिक सहभागिता के जरिये उनके 'जीवन और रहन-सहन' को सुधारने के व्यापक उद्देश्य को पूरा करते हैं और 'न्यूनतम अधिगम आवश्यकताओं के पैकेज कार्यक्रम' को पूरा करने के लिए अपेक्षित क्षमताएँ प्रदान करते हैं।

परियोजना का एक महत्वपूर्ण आयाम विभिन्न एजेंसियों द्वारा प्रदान किए गए विभिन्न विकासात्मक कार्यक्रमों में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए समुदाय के सदस्यों के अपेक्षित ज्ञान और कौशलों को विकसित करना है। विकासात्मक क्रियाकलाप समुदायों के शिक्षा कार्यक्रमों से जुड़े हुए हैं। परियोजना बड़े प्रभावी तरीके से प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के प्राथमिकता वाले कार्यक्रम को पोषित करती है। विभिन्न आयु वर्ग, विशेषरूप से 6-14 और 15-34 आयु वर्ग के लिए अनौपचारिक शिक्षा-नीति और सामग्री के मॉडलों को संबंधित राज्य और संघ राज्य क्षेत्रों द्वारा अपनाया/रूपांतरित किया जा सकता है।

यह परियोजना शिक्षा के लिए समुदाय के सदस्यों की सकारात्मक अभिवृत्तियों का विकास सुनिश्चित करने का प्रयास करती है। जिन बच्चों ने या तो बीच में ही स्कूल छोड़ दिया है या जो कभी भी स्कूल नहीं गए हैं, उन्हें अनौपचारिक शिक्षा के जरिये शिक्षा की मुख्य धारा में पुनः प्रवेश करने में सहायता उपलब्ध की जाती है। महिलाओं के शिक्षा

कार्यक्रमों में प्रसव-पूर्व और प्रसव के बाद की देखभाल, बच्चों की देखभाल तथा पोषण, कुछेक आर्थिक क्रिया कलाप, गृह प्रबंधन आदि को शामिल किया गया है। स्कूल-पूर्व के बच्चों के लिए शैक्षिक कार्यक्रम स्कूली शिक्षा के लिए उपयुक्त अभिवृत्ति और रुचि का विकास करने में उनकी सहायता करते हैं। खेल के तरीके की शिक्षा प्रणाली और सर्जनात्मक क्रिया कलापों के जरिये स्कूल-पूर्व के बच्चों का सर्वतोमुखी विकास करने के लिए सावधानी बरती जाती है।

6-14 आयु वर्ग के बच्चों के लिए बने अनौपचारिक शिक्षा के कार्यक्रमों ने यह लक्ष्य बना रखा है कि जिन बच्चों ने या तो पढ़ाई के बीच में ही स्कूल जाना छोड़ दिया है या जो कभी भी स्कूल नहीं गए हैं, उन्हें अंशकालिक शिक्षा प्रदान की जाए। बच्चों से अपेक्षा की जाती है कि वे शास्त्रीय शिक्षा में ज्ञान एवं कौशल अर्जित करेंगे तथा उसके साथ ही समाजोपयोगी उत्पादक कार्य में और अपने बाप दादे के धंधों में भी सुविज्ञता ला सकेंगे। यह शिक्षा बच्चों के चाहने पर उन्हें औपचारिक शिक्षा की धारा में भी प्रवेश दिला सकती है।

महिला और पुरुष—दोनों प्रकार के प्रौढ़ों के कार्यक्रमों का उद्देश्य पढ़ने और लिखने के ज्ञान और कौशलों को प्रदान करना और उनमें प्रकार्यात्मक साक्षरता एवं संख्यात्मक ज्ञान का विकास करना है। इस कार्यक्रम का महत्वपूर्ण आयाम स्वास्थ्यप्रद रहन-सहन के विभिन्न पक्षों, कृषि संबंधी और गैर-कृषि संबंधी कौशलों के बारे में जानकारी देना तथा उनमें विभिन्न कल्याण एवं विकासात्मक कार्यक्रमों के प्रति उपयुक्त अभिवृत्तियों का विकास करना हैं। इस प्रकार यह परियोजना समुदाय कार्य के जरिये समाज के रूपांतरण के लिए अवसर प्रदान करती है।

विभिन्न लक्ष्य समूहों के लिए कार्यक्रमों तथा क्रिया कलापों की योजना को और विभिन्न प्रकार की शैक्षिक सामग्री के विकास को शैक्षिक आवश्यकताओं और समुदायों के विस्तृत सर्वेक्षण के जरिये पहचाने गए स्थानीय पर्यावरण के आधार पर स्वीकार किया जाता है।

परियोजना का कार्यान्वयन

वर्ष 1976 में इस परियोजना को प्रयोगात्मक आधार पर 14 राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों में हाथ में लिया गया था। इस उद्देश्य के लिए प्रत्येक राज्य में दो-दो समुदाय केन्द्र खोले गए थे। ये केन्द्र निर्धन, ग्रामीण आदिवासी, पहाड़ी क्षेत्रों और शहरी गरीब क्षेत्रों में स्थित थे। परियोजना के परिणाम से उत्साहित होकर वर्ष 1981 में 14 राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों में समुदाय केन्द्रों की संख्या 2 से बढ़ाकर 4 या 5 कर दी गई और बाकी बचे राज्यों/संघ

राज्य क्षेत्रों में, प्रत्येक में दो समुदाय केन्द्र खोले गए, सिवा अरुणाचल प्रदेश के जिसने कार्य-क्रम में भाग नहीं लिया। अत्यधिक सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक विभिन्नताएँ प्रदान करने तथा उनकी जरूरतों के अनुसार प्रत्येक समुदाय के लिए अनौपचारिक शिक्षा के उपयुक्त मॉडलों का विकास करने के लिए समुदाय केन्द्रों की संख्या को, इस प्रकार, 28 से बढ़ाकर 102 कर दिया गया है। इन केन्द्रों में से 98 दिसम्बर तक अस्तित्व में आ चुके थे। इनके अलावा तमिलनाडु, मध्य प्रदेश, और उड़ीसा में 8 और केन्द्रों की स्थापना के लिए स्वीकृति मिल चुकी है। इन केन्द्रों के कार्मिकों का खर्च राज्य सरकारें उठाएँगी।

परियोजना में सम्मिलित विभिन्न लक्ष्य समूहों के लिए अनौपचारिक शिक्षा के विभिन्न पैटर्नों का विकास सभी राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों में किया जा रहा है। ये पैटर्न सर्वेक्षण के निष्कर्षों और स्थानीय दशाओं की माँगों पर आधारित हैं। समुदाय केन्द्रों में विकसित प्रणालियों और सामग्रियों को प्रतिपुष्ट आँकड़ों के आधार पर संशोधित किया जा रहा है।

परियोजना में भाग लेने वाले राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों के परियोजना समन्वयकों और समुदाय कार्मिकों के लिए सन् 1982-83 के दौरान चार अभिविन्यास पाठ्यक्रम अब तक आयोजित किए जा चुके हैं जिनमें विभिन्न लक्ष्य समूहों के लिए कार्यक्रमों और क्रिया कलापों के विकास से संबंधित विभिन्न पक्षों पर ध्यान केन्द्रित किया गया है।

इन कोर्सों में सामुदायिक कार्यकर्ताओं को बुलाया गया था ताकि वे केन्द्रों, विभिन्न आयुवर्गों के लिए कार्यक्रमों व कार्यकलापों, तथा केन्द्रों की कठिनाइयों की सही तस्वीर पेश कर सकें। अनेक केन्द्रों में समुदायों ने केन्द्रों के कार्यकलाप में रुचि लेना शुरू कर दिया है। कुछेक राज्यों में, केन्द्रों के लिए बनाई गई सामग्री को राज्यों के अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रमों में व्यापक उपयोग के लिए अपनाया जा रहा है।

परियोजना का प्रबोधन

राष्ट्रीय स्तर पर इस परियोजना का प्रबोधन राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा किया जाता है। भाग लेने वाले राज्यों में राज्य स्तर पर राज्य शिक्षा संस्थानों/राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषदों, अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों के कार्यकर्ताओं द्वारा और ग्राम स्तर पर स्थानीय प्राथमिक स्कूलों के कार्मिकों द्वारा इसको कार्यान्वित किया जाता है। शिक्षकों, सामुदायिक कार्यकर्ताओं एवं सामुदायिक सदस्यों जैसे आधारिक कार्मिकों को समुदाय केन्द्रों में कार्यक्रमों व क्रियाकलापों की योजना बनाने और उन्हें कार्यान्वित करने के लिए शामिल किया जाता है।

परियोजना का मूल्यांकन

परियोजना का एक आंतरिक मूल्यांकन सन् 1983 के अंत तक पूरा हो जाएगा। मूल्यांकन के उपकरण रा० शै० अ० और प्र० प० के स्तर पर बनाए गए हैं। राज्यों/संघ क्षेत्रों को अपनाने के लिए ये उपलब्ध कराए जा रहे हैं। परियोजना का एक बाह्य मूल्यांकन 1983 के दौरान प्रस्तावित है।

अनौपचारिक शिक्षा

अनौपचारिक शिक्षा का कार्यक्रम परिषद् ने जुलाई 1976 में हाथ में लिया। इस क्षेत्र में मुख्य जोर इन कामों के लिए दिया जा रहा है—शोध करवाना, वैचारिक और शिक्षण सामग्री का निर्माण, सम्मेलन एवं अभिविन्यास के कार्यक्रम करवाना तथा अनौपचारिक शिक्षा के न्यूज़ लेटर द्वारा जानकारी का विकीर्णन करना। अपने क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालयों और क्षेत्र एककों के माध्यम से परिषद् ने अनौपचारिक शिक्षा के 228 प्रायोगिक केन्द्र भी स्थापित किए हैं। इन केन्द्रों की स्थापना क्रमशः की गई है। मूल रूप से ये केवल दो वर्षों के लिए बनाए गए थे। आगे चल कर इनका कार्यकाल मई 1982 तक के लिए बढ़ा दिया गया।

1982-83 के दौरान रा० शै० अ० और प्र० प० ने अनौपचारिक शिक्षा के क्षेत्रों में नीचे लिखे काम पूरे किए—

अनुसंधान

परिषद् ने 'हिन्दी शब्द भांडार का संकलन और भाषा वैज्ञानिक विश्लेषण' नामक अनुसंधान परियोजना हाथ में ली। परियोजना की रिपोर्ट तैयार की गई और विभिन्न व्यक्तियों तथा संस्थाओं को भेजी गई। यह अध्ययन बच्चों की मौखिक व लिखित अभिव्यक्ति की भाषा और पाठ्यपुस्तकों में प्रयुक्त भाषा के शब्द भांडार से सम्बन्धित है। अध्ययन के उद्देश्य हैं—ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बच्चों की लिखित व मौखिक भाषा के शब्दों का, तथा हिन्दी भाषी राज्यों में कक्षा I से V तक के सभी पाठ्य विषयों की पाठ्यपुस्तकों में प्रयुक्त शब्दावली का संग्रह करना और संरचना, व्याकरण तथा अर्थ की दृष्टि से संग्रहीत शब्दों का विश्लेषण करना। अध्ययन दो चरणों में किया गया (i) शब्दावली का संग्रह, (ii) शब्द भांडार का विश्लेषण।

बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, दिल्ली और चंडीगढ़ के राज्यों/संघ क्षेत्रों के 22 जिलों में स्थित 96 स्कूलों के 1920 बालक बालिकाओं

की मौखिक व लिखित अभिव्यक्ति के शब्दों का संग्रह किया गया । संग्रहीत हुए शब्दों की संख्या 15,197 है । इस आधार-सामग्री को शब्दों की कुल संख्या, उनकी बारम्बारिता और प्रतिशतता के आधार पर प्रस्तुत किया गया है । सूची में 6,034 शब्द दस से अधिक बारम्बारिता वाले हैं और 9,163 शब्द दस से कम बारम्बारिता वाले हैं । छह सौ पृष्ठों की एक वृहद सूची साइक्लोस्टाइल की जा रही है जिसमें 12 प्रकार की बारम्बारिता वाले पन्द्रह हजार शब्द हैं । एक और वृहद सूची भी तैयार की जाएगी जिसमें 41 श्रेणीबद्ध सूचियाँ होंगी ।

अनौपचारिक शिक्षा के परिषद् के प्रायोगिक केन्द्रों का सर्वेक्षण

दिसम्बर 1978 से मई 1982 तक की अवधि में रा० शै० अ० और प्र० प० ने अनौपचारिक शिक्षा के 228 प्रायोगिक केन्द्र विभिन्न सामाजिक-आर्थिक वर्गों के लिए बनाए । इस कार्यक्रम का उद्देश्य स्कूल न जाने वाले बच्चों को लिखाई-पढ़ाई और गिनती की जानकारी देना तथा स्वास्थ्य, स्वच्छता, व्यवसाय, समाजोपयोगी उत्पादक कार्य व परिवेश-शिक्षा से परिचित कराना था । इन प्रायोगिक केन्द्रों ने क्या अनुभव प्राप्त किया इसके मूल्य-निर्धारण के लिए परिषद् ने कार्य शुरू किया । इस मूल्य-निर्धारण की रिपोर्ट से अनौपचारिक शिक्षा की संकल्पना व उसके उद्देश्यों, छात्रों में अभिप्रेरण, केन्द्रों के शिक्षकों तथा अधीक्षकों के प्रशिक्षण, शिक्षण सामग्री, शिक्षण कार्यक्रम, सामुदायिक सहयोग, विकासात्मक माध्यमों के सहयोग, हस्तशिल्प की शिक्षा आदि की जानकारी मिलती है ।

अनौपचारिक शिक्षा की नीतियों और विभिन्न उपागमों की पहचान

यह परियोजना दो वर्षों के लिए है । इसे अप्रैल 1982 में शुरू किया गया था । यह केवल हिन्दी भाषी प्रदेशों तक सीमित है । अनौपचारिक शिक्षा के विविध उपागमों एवं व्यावहारिक अभ्यासों की पहचान करना इसका लक्ष्य है । सम्बद्ध साहित्य का अध्ययन और विश्लेषण किया जा चुका है । प्रश्नावलियाँ तैयार कर राज्यों के अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों में भेजी गई थीं । प्राप्त हुई आधार-सामग्री का विश्लेषण किया जा चुका है । कुछ शिक्षकों और अधीक्षकों से साक्षात्कार भी किए गए । विशेषज्ञों की सलाह पर पाँच प्रश्नावलियाँ तैयार की गई हैं । इन प्रश्नावलियों द्वारा आधार-सामग्री एकत्र की जाएगी जिससे अंतिम रिपोर्ट तैयार हो सकेगी ।

अनौपचारिक शिक्षा की शिक्षण-सामग्री का मूल्यांकन

अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों के लिए बनाई गई शिक्षण-सामग्री के मूल्यांकन के लिए उपकरण बनाना ही इस परियोजना का लक्ष्य है । यह अध्ययन केवल हिन्दी भाषी प्रदेशों

तक ही सीमित है। विभिन्न राज्यों से प्रासंगिक सामग्री इकट्ठा की जा चुकी है और विश्लेषित भी हो चुकी है। उपकरण का प्रथम प्रारूप बन चुका है। अगले वित्तीय वर्ष तक इस परियोजना की रिपोर्ट उपलब्ध हो जाएगी।

कक्षा VI से VIII तक की अनौपचारिक शिक्षा

मिडिल स्कूल (कक्षा VI से VIII) तक की अनौपचारिक शिक्षा के निमित्त पाठ्यचर्या एवं शिक्षण-सामग्री के निर्माण की यह परियोजना परिषद् ने नवम्बर 1982 से शुरू की है। औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों प्रकार की मिडिल स्कूल तक की शिक्षा की शिक्षण-सामग्री का विश्लेषण, एक केन्द्रिक पाठ्यचर्या की पहचान, अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों में प्रवेश लेने वाले बच्चों की जरूरतों और जीवन-कौशलों की पहचान, मिडिल स्तर तक विकसित होने वाली कुशलताओं की पहचान, एकीकृत और विषय-केन्द्रित उपागमों की शिक्षण-सामग्री का निर्माण, अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों के शिक्षकों के लिए पुस्तकों एवं मार्गदर्शी सामग्री का निर्माण इसके कार्यक्रम में शामिल है।

जनवरी, 1983 में एक कार्यगोष्ठी की गई जिसमें बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश एवं अंडमान निकोबार द्वीप समूह के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। इन राज्यों की पाठ्यचर्याओं और शिक्षण सामग्री का विश्लेषण किया गया और स्कूल न जाने वाले बच्चों के केन्द्रिक घटकों एवं जीवन-संदर्भों की पहचान की गई। एकीकृत पाठों के निर्माण के लिए मार्गदर्शी रेखाएँ भी बनाई गईं।

प्रशिक्षण

शैक्षिक रूप से पिछड़े हुए नौ राज्यों के द्वितीय स्तर के कार्मिकों के लिए परिषद् ने एक प्रशिक्षण कार्यक्रम 21 से 26 मार्च, 1983 तक चलाया। इन नौ राज्यों और पाँच स्वैच्छिक संस्थानों के प्रतिनिधियों ने इसमें भाग लिया। इस प्रशिक्षण कार्यक्रम का मुख्य कार्य यह देखना था कि प्राथमिक स्तर पर प्राकृतिक विज्ञानों, सामाजिक विज्ञानों, गणित, भाषाओं और स० उ० कार्यों को पढ़ाने के लिए कौन सी विधियों और उपागमों का प्रयोग हो रहा है। कार्यक्रम के परिणामस्वरूप प्राथमिक स्तर पर विभिन्न विषयों के शिक्षण पर कई लेख तैयार हुए।

दिल्ली नगर निगम के शिक्षा विभाग की प्रार्थना पर निगम द्वारा स्थापित अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों के अध्यापकों के लिए एक प्रशिक्षण कार्यक्रम 15 से 20 अक्तूबर, 1982 तक किया गया।

अंडमान और निकोबार द्वीप समूह के शिक्षा विभाग के शिक्षा अधिकारियों के लिए 14 से 21 दिसम्बर 1982 तक एक प्रशिक्षण कार्यक्रम किया गया। इन्हीं के लिए मार्च, 1983 में भी एक प्रशिक्षण कार्यक्रम किया गया।

प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वजनीकरण का प्रबोधन एवं मूल्यांकन

उपकरणों की जाँच-परख की पहल

यह परियोजना उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश और गुजरात के एक-एक जिलों में फरवरी 1982 में शुरू की गई थी और सितम्बर 1982 में पूरी की गई। इन राज्यों के अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों के विशिष्ट संदर्भ में प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के प्रबोधन एवं मूल्यांकन के उपकरणों की जाँच-परख करना ही इस कार्यक्रम का लक्ष्य था। राज्य प्राधिकरणों की मदद से जो जिले इस काम के लिए चुने गए थे वे हैं—उत्तर प्रदेश में इलाहाबाद, आंध्र प्रदेश में नालगोंडा और गुजरात में साबरकांठा।

इन जिलों में और इन जिलों के प्रखण्ड मुख्यालयों में रिपोर्टाधीन अवधि के दौरान चरणबद्ध रीति से नियोजन-सह-प्रशिक्षण और अभिविन्यास के लिए समीक्षा-बैठकें हर महीने और हर महीने में चार बार की गईं। अप्रैल से सितम्बर 1982 के दौरान इक्कीस बैठकें हुईं जिनमें 970 प्रशिक्षक/अधीक्षक राज्य स्तर के कार्यकारी सम्मिलित हुए। इन बैठकों में प्रतिभागियों को उपकरणों की जाँच-परख के तरीकों से परिचित कराया गया। प्रशिक्षकों को प्रपत्र भरने में प्रशिक्षित किया गया। तीनों प्रतिभागी राज्यों के सम्बद्ध अधिकारियों-कार्मिकों के लिए नई दिल्ली के राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान परिसर में 21 से 23 सितम्बर 1982 तक एक बैठक हुई। जाँच-परख के अनुभवों के आधार पर उपकरणों की समीक्षा की गई और अपेक्षित रूप से उन्हें सुधारा गया।

प्रबोधन और मूल्यांकन के उपकरणों का व्यवहार

प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के प्रबोधन एवं मूल्यांकन पर 3 से 6 नवम्बर, 1982 तक एक राष्ट्रीय सम्मेलन किया गया जिसमें विभिन्न राज्यों/संघ क्षेत्रों के ग्यारह वरिष्ठ अधिकारी सम्मिलित हुए। अधिकारियों ने अपने-अपने राज्य में औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत प्रारम्भिक शिक्षा की स्थिति पर रिपोर्टें पढ़ीं। प्रबोधन एवं मूल्यांकन के संशोधित संस्करण पर भी उन्होंने विचार-विमर्श किया। उत्तरवर्ती कार्य के रूप में, राज्य प्राधिकरणों के परामर्श से यह तय किया गया कि संशोधित संस्करण वाले उपकरणों को राजस्थान, जम्मू व कश्मीर तथा उड़ीसा के शैक्षिक रूप से पिछड़े राज्यों

में व्यवहार में लाया जाए। इन उपकरणों के व्यवहार के लिए राजस्थान के उदयपुर, जम्मू व कश्मीर के बादगाम और उड़ीसा के नयागढ़ जिलों को सम्बद्ध राज्य शिक्षा विभागों की सलाह पर चुना गया।

उदयपुर में परिषद् ने मार्च 1983 में तीन बैठकें आयोजित कीं। पहली राज्य स्तर पर नियोजन के बारे में थी और बाकी दोनों प्रखण्ड स्तर पर अभिविन्यास की थीं।

5

सुविधा-वंचित वर्गों की शिक्षा

समाज के सुविधा-वंचित वर्गों, खास कर अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के बच्चों की शिक्षा को प्रभावित करने वाली समस्याओं का पता लगाने की दृष्टि से रा० शै० अ० और प्र० प० अनुसंधान करती है। साथ ही परिषद् ऐसे छात्रों के इस्तेमाल के लिए पाठ्यक्रमों और शिक्षण सामग्री का निर्माण भी करती है, जनजातीय क्षेत्रों के लिए प्रमुख व्यक्तियों के प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करती है और सुविधा-वंचित छात्रों के लिए पूरक पठन सामग्री उत्पादित करती है।

वर्ष के दौरान परिषद् ने अनुसंधान और विकास के कई कार्य-

क्रम हाथ में लिए । समस्या-क्षेत्रों की पहचान, पाठ्य सामग्री के निर्माण और प्रमुख व्यक्तियों के प्रशिक्षण के कामों में इन कार्यक्रमों से सहायता मिली है ।

अनुसंधान

निम्नलिखित अध्ययनों को वर्ष के दौरान हाथ में लिया गया/पूरा किया गया :

(i) **जनजातीय छात्रों के अनौपचारिक-शिक्षा-कार्यक्रम की विधियों, प्रक्रियाओं और व्यवहारों का अध्ययन**

अध्ययन की रिपोर्ट पूरी कर ली गई । इस अध्ययन को आंध्र प्रदेश, गुजरात, पश्चिमी बंगाल, मध्य प्रदेश और राजस्थान में हाथ में लिया गया था ।

(ii) **नागालैंड की अनुसूचित जनजातियों के शैक्षिक विकास में सामुदायिक प्रतिभागिता के स्वरूप एवं सीमा तथा उसकी प्रभावान्विता का अध्ययन**

नागालैंड के कोहिमा जिले के पन्द्रह स्कूलों और उनके आसपास रहने वाले जनजातीय समुदायों में इस वर्ष के दौरान परियोजना के लिए क्षेत्र कार्य किया गया । परिणामस्वरूप प्राप्त आधार-सामग्री को विश्लेषित और सारणीकृत किया गया । परियोजना की रिपोर्ट समाप्ति के निकट है ।

पाठ्यक्रम और पाठ्य सामग्री

जनजातीय बोलियों में पाठ्यपुस्तकों का निर्माण

विभिन्न राज्यों के प्राथमिक स्तर के जनजातीय बच्चों के लिए पाठ्यपुस्तकें बनाने का काम रा० शै० अ० और प्र० प० ने शुरू किया है । इस कार्यक्रम के अन्तर्गत उड़ीसा के कोरापुत और गंजम जिलों की कक्षा I में पढ़ने वाले साओरा बच्चों की प्रवेशिका को अंतिम रूप दिया गया । इस प्रवेशिका की पांडुलिपि पिछले वर्ष लिखी गई थी । प्रवेशिका मुद्रित हो रही है । शीघ्र ही साओरा बच्चों में वह पहुँच जाएगी ।

जनजातीय छात्रों के लिए पाठ्यक्रम का विश्लेषण और विकास

आंध्र प्रदेश के प्राथमिक स्तर के जनजातीय छात्रों के लिए वर्तमान पाठ्यक्रम के विश्लेषण और एक समुचित-संशोधित पाठ्यक्रम के विकास का कार्यक्रम रा० शै० अ० और प्र० प० ने शुरू किया है ।

जनजातीय क्षेत्रों में स्थित अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों के लिए शिक्षण-सामग्री का निर्माण

पश्चिम बंगाल के अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों के संताल बच्चों के लिए शिक्षण-सामग्री के निर्माण के निमित्त विशेषज्ञों के वर्किंग ग्रुप की एक बैठक परिषद् ने वर्ष के दौरान आयोजित की। यह बैठक 1 से 10 सितम्बर 1982 के दौरान नई दिल्ली के राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान में हुई जिसमें 11 विशेषज्ञ-लेखकों ने भाग लिया। शिक्षण-सामग्री का एक भाग तैयार किया गया।

जनजातीय क्षेत्रों के अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों के शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण-पैकेज का निर्माण

जनजातीय क्षेत्रों के अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों के शिक्षकों को एक प्रशिक्षण-पैकेज उपलब्ध कराना इस कार्यक्रम का लक्ष्य है। पैकेज में जनजातीय लोगों के जीवन और संस्कृति के विविध पक्षों को समाहित करने वाले विषय होंगे। साथ ही उनकी शैक्षिक समस्याओं के समाधान भी होंगे। अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों में पढ़ाते समय प्रयुक्त करने के लिए कुछ पाठों के नमूने भी शिक्षकों के लिए पैकेज में होंगे। विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों को नमूने के पाठ तैयार करने के काम सौंपे गए।

अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए पाठ्यक्रम-निर्माण की उप-समिति की एक बैठक नई दिल्ली के राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान में 11 जून 1982 को अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए पाठ्यक्रम निर्माण, पाठ्यपुस्तक-निर्माण आदि के निमित्त विधियाँ बनाने के वास्ते हुई।

प्रशिक्षण

जनजातीय क्षेत्रों के जिला शिक्षा अधिकारियों के लिए अभिविन्यास कोर्स

नई दिल्ली के राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान में जनजातीय क्षेत्रों के जिला शिक्षा अधिकारियों के लिए कई अभिविन्यास कोर्सों का आयोजन किया गया। एक कोर्स 17 से 31 जनवरी 1983 तक उड़ीसा, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, त्रिपुरा, तमिलनाडु और अरुणाचल प्रदेश के 12 प्रतिभागियों के लिए हुआ। दूसरा कोर्स 14 से 28 फरवरी 1983 तक आँध्र प्रदेश, कर्नाटक, गुजरात, मिजोरम और दादरा एवं नगर हवेली के दस प्रतिभागियों के लिए किया गया। इन कोर्सों का उद्देश्य जिला शिक्षा अधिकारियों को जनजातीय जीवन और संस्कृति तथा शैक्षिक विकास की आधुनातन प्रवृत्तियों में अभिविन्यस्त करना था।

जनजातीय क्षेत्रों के अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रमों के प्रमुख कार्मिकों के लिए अभिविन्यास कोर्स

वर्ष 1982-83 के दौरान जनजातीय क्षेत्रों के अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रमों के प्रमुख कार्मिकों को अभिविन्यस्त करने के लिए दो कोर्स चलाए गए जिनका उद्देश्य था जनजातीय जीवन एवं संस्कृति, जनजातीय शिक्षा की समस्याओं, अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों के संगठन आदि से प्रमुख कार्मिकों को परिचित कराना। पहला कोर्स केरल, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और राजस्थान के 18 प्रतिभागियों के लिए 15 से 21 सितम्बर 1982 तक आयोजित किया गया था और दूसरा उड़ीसा, गुजरात, पश्चिम बंगाल, बिहार, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान और हिमाचल प्रदेश के 22 प्रतिभागियों के लिए 15 से 21 मार्च 1983 तक।

जनजातीय क्षेत्रों में स्थित माध्यमिक अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों के अध्यापक-शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण कोर्स

नई दिल्ली के राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान में 22 से 28 मार्च 1983 तक जनजातीय क्षेत्रों में स्थित माध्यमिक अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों के अध्यापक-शिक्षकों के लिए एक प्रशिक्षण कोर्स किया गया जिसका उद्देश्य था जनजातीय जीवन एवं संस्कृति तथा जन-जातीय शिक्षा की समस्याओं में अध्यापक-शिक्षकों को प्रशिक्षित करना। कोर्स में केरल, गुजरात, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और मेघालय से आए 8 व्यक्तियों ने भाग लिया।

अन्य कार्यकलाप

सुविधा-वंचित वर्गों के विशिष्ट संदर्भ में प्रथम स्तर की शिक्षा के सार्वजनीकरण के लिए वैकल्पिक संरचनाओं पर एक प्रबंध यूनेस्को के लिए तैयार किया गया। इस प्रबंध को एक बैठक में अंतिम रूप दिया गया जो 23 नवम्बर 1982 को रा० शै० अ० और प्र० प० में हुई। संशोधित प्रबंध को बैङ्कॉक स्थित यूनेस्को कार्यालय को भेजा गया।

अरुणाचल प्रदेश की शिक्षा-संरचना का अध्ययन करने के लिए एक अध्ययन दल अरुणाचल प्रदेश की यात्रा पर 1982-83 के दौरान गया।

6

पाठ्यचर्या, पाठ्यपुस्तकें तथा सहायक पुस्तकें

सभी कक्षाओं के लिए पाठ्यचर्या तथा पाठ्यक्रम के स्तर को ऊँचा उठाने और पाठ्यपुस्तकें तैयार करने की ओर ध्यान दिया जाता रहा है। पहले वर्षों की तरह ही विद्यार्थियों तथा शिक्षकों के प्रयोग के लिए सामग्री के पैकेज को विकसित करने पर बल दिया गया। इस पैकेज में पाठ्यपुस्तकें, अभ्यास पुस्तिकाएँ तथा शिक्षक संदर्शिकाएँ शामिल हैं। स्कूल जा रहे बच्चों के ज्ञान सवंर्धन हेतु परिषद् सहायक पठन सामग्री तैयार करती रही है। परिषद् ने अपनी पाठ्यपुस्तकों को मूलरूप में अथवा उनका अनुकूलन कर प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान की। कुछ पुस्तकों का क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद भी हुआ।

पाठ्यचर्या-विकास और अनुसंधान

'स्कूल-पाठ्यचर्या के एक क्षेत्र के रूप में सामुदायिक कार्य' विषय पर राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने एक समिति इन कामों के लिए बनाई थी— (क) स्कूल पाठ्यचर्या के एक क्षेत्र के रूप में सामुदायिक कार्य की योजना के विस्तृत विवरण तैयार करना; और (ख) सामुदायिक सेवा पर एक पुस्तिका प्रकाशित करने के लिए एक व्यापक दस्तावेज तैयार करना।

समिति ने विभिन्न अवस्थाओं में इसके लिए अस्थायी ढाँचा तैयार कर लिया है। पहली अवस्था (1981-82) में समिति ने समस्या के विभिन्न पहलुओं पर विचार-विमर्श किया। दूसरी अवस्था में क्षेत्र स्तर पर समिति के अध्यक्ष और 'शिक्षासत्र' नामक स्कूल के अध्यापकों, विद्यार्थियों तथा अभिभावकों के बीच सामूहिक विचार-विमर्श हुआ। इस स्कूल की स्थापना रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने ग्रामीण परिवेश में की थी। इसके पश्चात् स्कूल पाठ्यचर्या के एक क्षेत्र के रूप में सामुदायिक कार्य की योजना के विभिन्न पहलुओं पर विचार करने के लिए एक विस्तृत कार्यशाला का आयोजन उदयपुर में हुआ। इन तीनों अवस्थाओं में हुए कार्य के आधार पर रा० शै० अ० और प्र० प० ने 'स्कूल पाठ्यचर्या के एक क्षेत्र के रूप में' सामुदायिक कार्य नामक एक पुस्तिका अंग्रेजी भाषा में निकाली। इस पुस्तिका में इस परियोजना का आधार, आवश्यकता, उद्देश्य, विषयवस्तु तथा कार्यान्विति वर्णित है। आशा है कि स्कूल पाठ्यचर्या के एक क्षेत्र के रूप में सामुदायिक कार्य की परियोजना के लिए तैयार किया गया प्रारूप आम स्कूली प्रणाली के लिए सही आधार प्रस्तुत कर सकेगा।

पाठ्यचर्या-विकास के लिए समन्वय समिति

पाठ्यचर्या-विकास के लिए निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु एक समिति का गठन किया गया जिसका सचिवालय रा० शै० अ० और प्र० प० में है।

(i) उन कार्यक्रमों की रूपरेखा बनाना जिन पर रा० शै० अ० और प्र० प० के विभिन्न घटक कार्य करेंगे।

(ii) राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान के विभिन्न घटकों द्वारा स्कूल-पाठ्यचर्या पर चलाए गए कार्यक्रमों में पुनरावृत्ति न होने देना।

(iii) क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालयों तथा राज्य शै० अ० और प्र० प० एवं राज्य शिक्षा संस्थान जैसे राज्यों/केन्द्रशासित क्षेत्रों में स्थित संस्थानों के साथ ताल मेल रखने के लिए तंत्र तैयार करना।

(iv) स्कूल-पाठ्यचर्या से सम्बद्ध विभागीय कार्यक्रम का समय-समय पर पर्यवेक्षण तथा मूल्यांकन करना।

(v) स्कूल पाठ्यचर्या के लिए प्रस्तावित कार्यक्रमों की स्वीकृति हेतु अनुमोदन करना ।

(vi) स्कूल पाठ्यचर्या पर रा० शै० अ० और प्र० प० के बाहर से प्राप्त प्रस्तावों पर विचार करना तथा उन पर निर्णय लेना ।

1982-83 के दौरान समिति की छठी, सातवीं और आठवीं बैठकें हुईं जिनमें 109 पुरानी तथा 1983-84 के लिए नई रा० शि० संस्थान के विभिन्न प्रभागों द्वारा प्रस्तावित परियोजनाओं के मूल्यांकन के अतिरिक्त उन विषयों पर भी विचार-विमर्श हुआ जिनके द्वारा रा० शि० सं० के उन विभिन्न विभागों में ताल मेल स्थापित हो सकेगा जो एक जैसे क्षेत्रों में ही कार्य कर रहे हैं । इसके साथ ही प्रस्तावित परियोजनाओं के नियोजन तथा कार्यरूप देने के सही ढंग, समिति को अधिक कार्यशील बनाने के ढंग, स्कूल पाठ्यचर्या से सम्बद्ध कार्यक्रमों को छाँटने के लिए दिशा निर्देशन तथा प्राथमिकता निर्धारण और समिति की सिफारिशों पर आधारित उन्नति की ओर ध्यान देना, आदि विषयों पर विचार-विमर्श किया गया ।

स्कूल पाठ्यचर्या का प्रभावी उपयोग

यह एक प्रायोगिक और विकासात्मक परियोजना है । इसे 1978 में इस लक्ष्य को ध्यान में रखकर आरम्भ किया गया था कि इससे प्राथमिक स्कूलों के अध्यापक, शिक्षा के विकासात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए स्कूल पाठ्यचर्या का प्रभावी उपयोग कर सकेंगे जिससे बच्चे का एक छात्र, एक व्यक्ति, एक नागरिक और एक कार्मिक के रूप में विकास हो सकेगा ।

इस परियोजना की विकासात्मक अवस्था (1981-82) के अन्तर्गत परियोजना में लगे व्यक्ति नीचे लिखे विषयों पर समुचित सामग्री बनाने में लगे रहे :

(i) प्राथमिक स्तर पर शिक्षा का विकासात्मक उद्देश्य ।

(ii) शिशु का मनोविज्ञान, जिसकी ओर शिक्षक को प्राथमिक स्तर पर ध्यान देना चाहिए ।

(iii) सीखने-सिखाने के तरीके ।

(iv) शिक्षण कौशल ।

(v) वातावरण का उपयोग ।

(vi) पाठ्यचर्या की विषयवस्तु का विश्लेषण ।

(vii) पाठ्यचर्या की अ-पुस्तकीय विषय वस्तु ।

(viii) छात्र के विकास का मूल्यांकन ।

(ix) छात्र के सही विकास के लिए शिक्षक का व्यवहार ।

(x) शिक्षकों के कार्य-संपादन का निरीक्षण ।

1981-82 में आरम्भ की गई इस परियोजना की प्रायोगिक अवस्था 1982-83 में पूरी हो गई । प्राप्त आँकड़ों के विश्लेषण का कार्य समाप्तप्राय है । इसके पश्चात् परियोजना की प्रायोगिक अवस्था के निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए आगे के कार्य का बढ़ाया जाना संभव हो सकेगा ।

विभिन्न राज्यों में स्कूल पाठ्यचर्या के विभिन्न पहलुओं को दिया गया महत्व

आठ राज्यों तथा केन्द्र शासित क्षेत्रों में छह से दस तक की कक्षाओं में स्कूल पाठ्यचर्या के विभिन्न पहलुओं को दिए गए महत्व को जानने के लिए रा० शै० अ० और प्र० प० ने एक अध्ययन किया । ये राज्य तथा केन्द्र शासित क्षेत्र हैं—अंडमान निकोबार द्वीप समूह, असम, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, मिज़ोरम, पंजाब, राजस्थान तथा तमिलनाडु । विषय के महत्व का इस दिशा में अध्ययन किया गया कि उसके लिए वार्षिक परीक्षा में अंकों के निर्धारण को ध्यान में रखते हुए स्कूल टाइम टेबिल में कितना समय दिया गया है ।

इस अध्ययन के मुख्य निष्कर्ष हैं :

(i) शैक्षणिक विषयों के अध्यापन को अपेक्षाकृत अधिक समय दिया जाता है । उनके लिए अधिक अंक भी निर्धारित किए जाते हैं ।

(ii) शैक्षणिक विषयों के अन्तर्गत अनिवार्य विषयों को ऐच्छिक विषयों की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाता है और उन्हीं के लिए अधिक अंक भी निर्धारित किए जाते हैं ।

(iii) विभिन्न राज्य समय अथवा अंक निर्धारण की दृष्टि से पाठ्यचर्या के विषय को अलग अलग महत्व देते हैं ।

(iv) परीक्षा की दृष्टि से मातृभाषा तथा अंग्रेजी को अन्य सभी विषयों की अपेक्षा अधिक महत्व मिलता है ।

(v) समय निर्धारण की दृष्टि से प्रारम्भिक कक्षाओं में, ऊँची कक्षाओं की अपेक्षा विज्ञान अध्यापन को कम समय दिया जाता है ।

(*vi*) परीक्षा में अंक निर्धारण और अध्यापन के लिए समय निर्धारण के दृष्टिकोण से विभिन्न विषयों में कोई ताल मेल नहीं है ।

(vii) विषय को जो प्राथमिकता समय निर्धारण की दृष्टि से दी जाती है, वही प्राथमिकता उस विषय को परीक्षा की दृष्टि से नहीं दी जाती ।

10+2 पद्धति की शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत पाठ्यचर्या का कार्यान्वयन

इस परियोजना का उद्देश्य निम्नलिखित तीन राज्यों तथा एक केन्द्र शासित क्षेत्र में पाठ्यचर्या के कार्यान्वयन का अध्ययन करना है—तमिलनाडु, गुजरात, महाराष्ट्र और दिल्ली । इस अध्ययन से पाठ्यचर्या नियोजकों को वर्तमान पाठ्यचर्या के विकास के लिए आधार सामग्री प्राप्त होने की संभावना है । 1982-83 वर्ष के दौरान कुछ चुने हुए राज्यों से आँकड़े संचय करने के लिए विकसित उपकरणों द्वारा आँकड़े एकत्र किए गए । चार राज्यों के कुछ चुने हुए स्कूलों में तात्कालिक अध्ययन किया गया । इस समय इन आँकड़ों को सारिणीबद्ध कर उनका विश्लेषण किया जा रहा है ।

सेकंडरी स्तर पर पाठ्यचर्या का भार

'सेकंडरी स्तर पर पाठ्यचर्या के भार की तुलना' नामक परियोजना इस वर्ष पूरी कर ली गई । यह परियोजना तीन राज्यों—केरल, महाराष्ट्र और हरियाणा तथा केन्द्र शासित राज्य दिल्ली में चलाई गई । इसके मुख्य निष्कर्ष इस प्रकार हैं ।

(i) दिल्ली के अध्यापक अंग्रेजी, गणित और हिन्दी (ए कोर्स) की वर्तमान पाठ्यचर्या के भार को 'थोड़ा सा' अधिक मानते हैं जबकि विज्ञान और सामाजिक ज्ञान की पाठ्यचर्या के भार को 'कुछ अधिक' मानते हैं । पाँच विषयों की पाठ्यचर्या का भार सम्मिलित रूप में 'थोड़ा सा' अधिक है । पाँचों विषयों में कठिनाई का स्तर औसत दर्जे का है :

(ii) महाराष्ट्र की कक्षा 9 और 10 में अंग्रेजी तथा सामाजिक अध्ययन की वर्तमान पाठ्यचर्या का भार थोड़ा सा अधिक है जबकि मराठी, विज्ञान और गणित का कुछ अधिक है । पाँच विषयों में किसी भी विषय की पाठ्यचर्या का भार अधिक नहीं है । पाँचों विषयों को मिलाकर पाठ्यचर्या का भार कुछ अधिक है । जीवविज्ञान को छोड़ पाँचों विषयों में कठिनाई का स्तर औसत दर्जे का है । विज्ञान के एक भाग के रूप में जीवविज्ञान को सरल समझा गया ।

(iii) हरियाणा में सेकंडरी स्तर पर पाँच विषयों अंग्रेजी, हिन्दी, विज्ञान, गणित तथा सामाजिक अध्ययन की वर्तमान पाठ्यचर्या का भार थोड़ा सा अधिक है । पाँचों विषयों का सम्मिलित रूप में भार भी थोड़ा सा अधिक है । विषय वस्तु के आधार पर इन पाँच विषयों का कठिनाई का स्तर भी औसत जाँचा गया है ।

(iv) केरल में सेकंडरी स्तर पर अंग्रेजी, मातृभाषा, गणित और सामाजिक विज्ञान की पाठ्यचर्या कुछ अधिक है जबकि विज्ञान की पाठ्यचर्या को थोड़ा सा अधिक समझा गया । पाँचों विषयों का सम्मिलित भार कुछ अधिक आँका गया । कोर्स की विषयवस्तु के आधार पर पाँचों विषयों की कठिनाई का स्तर औसत ही आंका गया ।

(v) विकास-अभिमुख उद्देश्यों की अपेक्षा ज्ञान संवर्धन को शिक्षक अधिक महत्व देते हैं । उनके शिक्षण का मूल उद्देश्य छात्रों को वार्षिक परीक्षा के लिए तैयार करना है ।

(vi) शिक्षकों द्वारा दिया गया गृहकार्य, उसके लिए दिए गए समय से बहुत अधिक होता है ।

पाठ्यचर्या संसाधन केन्द्र तथा बुलेटिन

पाठ्यचर्या संसाधन केन्द्र देश और विदेश की विभिन्न शैक्षिक एजेंसियों के साथ ताल मेल रखता है । देश और विदेश की विभिन्न पाठ्यचर्या एजेंसियों की महत्वपूर्ण सूचनाओं और सामग्री को संकलित किया गया है जिससे पाठ्यचर्या पर काम करने वाले तथा अनुसंधानकर्ता लाभ उठा सकें । समय समय पर यह केन्द्र विशेष पुस्तिका प्रकाशित करता है । 1982-83 के दौरान 'सेलेक्ट एनोटेटेड बिबलियोग्राफी ऑन स्कूल करिक्यूलम' नामक पुस्तिका निकाली गई ।

पाठ्यचर्या बुलेटिन

सन् 1982-83 के दौरान त्रैमासिक 'करिक्यूलम बुलेटिन' ने अपने प्रकाशन के तीसरे वर्ष में प्रवेश किया । वर्ष के चारों अंक प्रकाशित हुए । इस बुलेटिन के चार अंकों में पुस्तक समीक्षा, अनुसंधान सार, पाठ्यचर्या से सम्बद्ध समाचारों के साथ ही साथ प्रतिष्ठित शिक्षाविदों के "राष्ट्रीय एकीकरण के लिए पाठ्यचर्या का निर्वाह", "सामाजिक आवश्यकताएँ तथा स्कूल पाठ्यचर्या", "जीवन के लिए शिक्षा" आदि लेख भी प्रकाशित हुए ।

इस बुलेटिन के प्रथम सात अंकों से चुने हुए लेखों का "रेफलेक्शन्स करिक्यूलम" नामक एक विशेषांक भी तैयार किया गया जो आजकल प्रकाशनाधीन है ।

1982 में "बाल मनोविज्ञान तथा पाठ्यचर्या" नामक पुस्तक निकाली गई जो अंग्रेजी पुस्तक का अनुवाद है।

प्राथमिक स्तर पर औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा में कलाओं की भूमिका बढ़ाना

यह अनुसंधान और विकास की एक परियोजना है, जिसका लक्ष्य है—प्राथमिक कक्षाओं के स्तर पर औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा में कला की भूमिका को बढ़ावा देना, कक्षा में कला की शिक्षण-अधिगम विधि का सुव्यवस्थित विकास करना और अन्य विषयों के शिक्षण के साथ उसे एकीकृत करना। प्राथमिक अवस्था में कलाओं को अन्य विषयों के साथ एकीकृत करने के उद्देश्य से शिक्षण इकाइयों के निर्माण के लिए दस स्थानीय प्राथमिक स्कूलों को चुना गया। इन स्कूलों के शिक्षकों तथा अन्य विशेषज्ञों की एक बैठक जनवरी 1982 में हुई। इसमें कक्षा III और IV के लिए चार शिक्षण इकाइयाँ बनाई गई और चारों का अपेक्षित योग्यताओं, व्यावहारिक उद्देश्यों और सुझाई गई गतिविधियों के संदर्भ में विश्लेषण किया गया।

अक्टूबर और दिसम्बर 1982 में शिक्षकों तथा हेडमास्टरों की शिक्षण कार्यगोष्ठियों की दो बैठकें हुईं। इन कार्यगोष्ठियों में कक्षा III और IV के लिए दिसम्बर और जनवरी मास के लिए पाठ्यचर्या की विषयवस्तु का विश्लेषण किया गया। प्रायोगिक कला की क्रियाओं के संदर्भ में शिक्षकों के ज्ञान का नवीकरण किया गया। इन कलाओं में रबिंग, स्वतंत्र चित्रकारी, कागज काटना, मिट्टी के मॉडल बनाना, अबरी बनाना, साधारण मुखौटे बनाना, मौलिक नाटक खेलना और कठपुतली बनाना शामिल हैं। इनका उपयोग हिन्दी, गणित, पर्यावरण और सामाजिक ज्ञान के शिक्षण के लिए होता था।

तीन स्तरों पर मूल्यांकन के कार्यक्रम पर विचार विमर्श हुआ। ये इस प्रकार हैं—प्रारम्भिक मूल्यांकन, प्रक्रिया मूल्यांकन और परिणामात्मक मूल्यांकन। कलाओं और सृजन क्रियाओं पर आधारित कक्षा शिक्षण अगस्त और सितम्बर 1983 में होगा जिसका उद्देश्य नए शिक्षण अधिगम कार्यक्रम की प्रभावकारिता को जाँचना है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् दूसरी कला परियोजनाओं पर भी कार्य कर रही है। इन परियोजनाओं का उद्देश्य कला की पाठ्यचर्या और शिक्षण सामग्री तैयार करना और उसे कार्यान्वित करना है।

'शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर कला के विभिन्न क्षेत्रों में पाठ्यचर्या का प्रारूप तैयार करना' नामक परियोजना के अन्तर्गत +2 के स्तर के लिए दृश्य कला के कोर्सों को विकसित करने के लिए एक कार्यगोष्ठी का आयोजन मार्च 1983 में किया गया। विशेषज्ञ 1983-84 के दौरान इस प्रारूप को अन्तिम रूप देंगे।

'विभिन्न कलाओं में भिन्न भिन्न शिक्षा स्तरों पर शिक्षकों और छात्रों के लिए शिक्षण सामग्री तैयार करना' नामक एक दूसरी परियोजना के अन्तर्गत मार्च 1983 में एक कार्यदल की बैठक हुई। इसका उद्देश्य शैक्षिक कठपुतलियों पर एक प्रारूप बनाना, मौलिक कला विधियों के लिए सामग्री, साधन और विधियों पर एक पुस्तिका के लिए कुछ नए प्रस्तावों का विश्लेषण करना था। चित्रों के साथ दोनों प्रारूपों को 1983-84 के दौरान अंतिम रूप दे दिया जाएगा साथ ही बच्चों की कला कृतियों को भी प्रकाशित किया जाएगा।

सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी

नागरिक शास्त्र के कार्यक्रम

लगभग एक वर्ष पूर्व भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय के अन्तर्गत यूनेस्को के साथ सहयोग के लिए भारतीय राष्ट्रीय कमीशन ने यूनेस्को के साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर किए। जिसके अन्तर्गत मानवाधिकार, निशस्त्रीकरण तथा अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था की नयी संरचना जैसी संसार की समकालीन समस्याओं पर सामग्री की कार्यान्विति तथा उनका मूल्यांकन करना है। भारतीय राष्ट्रीय कमीशन की ओर से रा० शै० अ० और प्र० प० शैक्षणिक सत्र 1982-83 में इस परियोजना के कार्यान्वयन के लिए यूनेस्को से सहयोग के लिए तैयार हो गई। रा० शै० अ० और प्र० प० ने परियोजना की विषयवस्तु दिशानिर्देशन, कार्यविधि, प्रशासन तथा मूल्यांकन के लिए एक परियोजना कार्य समिति का गठन किया और परियोजना के कार्यान्वयन के लिए एक टास्कफोर्स भी बनाई। यह परियोजना, दिल्ली पब्लिक स्कूल और लेडी इर्विन स्कूल, स्प्रिंगडेल्स स्कूल, और जामियामिलिया हायर सेकंडरी स्कूल में आरम्भ की गई। यह परियोजना मार्च 1983 में पूरी कर ली गई तथा इसकी अन्तिम रिपोर्ट बैंङ्कॉक स्थित यूनेस्को के दफ्तर को भेज दी गई।

इतिहास के कार्यक्रम

जम्मू और कश्मीर के माध्यमिक शिक्षा बोर्ड तथा परिषद् के क्षेत्रीय सलाहकार के दफ्तर के संरक्षण में माध्यमिक कक्षाओं के इतिहास शिक्षकों के लिए मई और अक्तूबर 1982 में दो कार्यगोष्ठियों का आयोजन किया गया। प्रशिक्षण के कार्यक्रम में संकाय के सदस्यों ने साधन संपन्न व्यक्तियों के रूप में कार्य किया। इस कार्यक्रम में प्रतिभागियों को कोर्स की उस विषयवस्तु से परिचित कराया गया जो परिषद् ने कक्षा IX-X के लिए बनाई थी तथा 1982 से जिसे जम्मू और कश्मीर के स्कूलों ने स्वीकार किया है।

केन्द्रीय विद्यालय संगठन के तत्त्वावधान में प्राथमिक तथा मिडिल स्तर पर सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रमों पर नए सिरे से विचार करने के लिए एक कार्यगोष्ठी का आयोजन किया गया।

जम्मू में, जम्मू और कश्मीर के माध्यमिक शिक्षा बोर्ड तथा परिषद् के क्षेत्रीय सलाहकार के दफ्तर ने, एक कार्यगोष्ठी का आयोजन किया जिसका उद्देश्य +2 स्तर पर परिषद् द्वारा तैयार किए गए पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकों को लगवाना था। इस कार्य-गोष्ठी में निर्णय लिया गया कि जम्मू और कश्मीर की कक्षा XI-XII में परिषद् के पाठ्य-क्रम के साथ ही वहाँ के इतिहास पर एक अध्याय भी पढ़ाया जाए।

सुब्रह्मण्यम भारती की जन्म शताब्दी के अवसर पर उनकी कविताओं के संग्रह का हिन्दी और अंग्रेजी में अनुवाद किया गया। बाहर के कुछ विद्वानों की सहायता से हिन्दी और अंग्रेजी में अनूदित कविताओं के साथ ही उनकी मूल कविताओं का संकलन किया गया है। ये दोनों हिन्दी तथा अंग्रेजी संकलन प्रकाशित हो चुके हैं।

मौलाना अबुलकलाम आजाद पर बाहर के एक विद्वान द्वारा तैयार की गई पुस्तिका परिषद् को प्राप्त हो चुकी है। उसे संपादित किया जाएगा।

'भारत का स्वाधीनता संग्राम—दृश्यों और दस्तावेजों के माध्यम से' नामक परि-योजना को अन्तिम रूप दिया जा रहा है।

भूगोल के कार्यक्रम

'+2 के स्तर के लिए भौतिक भूगोल' की पुस्तक तैयार करने का कार्य आरम्भ किया गया। इसका प्रारूप तैयार करने के लिए रा० शै० अ० और प्र० प० में 21 से 25 मार्च 1983 तक एक कार्यगोष्ठी हुई।

'भारत विकास की ओर' नामक कक्षा IX-X की पुस्तक को संशोधित किया गया।

'पिक्चर बुक ऑन आस्ट्रेलिया' नामक परियोजना पर कार्य चल रहा है।

जम्मू और कश्मीर के माध्यमिक शिक्षा बोर्ड तथा परिषद् के क्षेत्रीय सलाहकार के दफ्तर के तत्त्वावधान में, मई और अक्तूबर 1982 में जम्मू और श्रीनगर में, सेकंडरी कक्षाओं के भूगोल अध्यापकों के लिए ज्ञान संवर्धन कार्यगोष्ठियाँ हुईं।

'प्रीपेरेशन ऑफ ए सैट ऑफ चार्ट्स ऑन फिजिकल ज्योग्रेफी' नामक परियोजना जारी है और प्रथम 20 चार्ट लगभग तैयार हो चुके हैं।

भूगोल में क्षेत्रीय अध्ययन के प्रयोग के लिए मार्गदर्शन पर परियोजना का प्रथम प्रारूप लगभग तैयार है तथा निकट भविष्य में एक कार्यगोष्ठी के माध्यम से उसे अन्तिम रूप दे दिया जाएगा।

'भूगोल की पाठ्यपुस्तकों में चित्रों का महत्व' नामक परियोजना को अन्तिम रूप दिया जा रहा है। इस परियोजना के लिए मानचित्र तथा चित्र पूरे कर लिए गए हैं।

'भारत के विभिन्न राज्यों में मिडिल, सेकंडरी तथा हायर सेकंडरी कक्षाओं के भूगोल के पाठ्यक्रमों का तुलनात्मक अध्ययन' नामक परियोजना पर आरम्भिक कार्य शुरू हो चुका है।

अर्थशास्त्र के कार्यक्रम

रा० शै० अ० और प्र० प० ने 'भारतीय अर्थ व्यवस्था के मूल्यांकन की शिक्षण इकाइयाँ—कक्षा XI के लिए अर्थशास्त्र की पाठ्यपुस्तक' को बनाने के लिए एक कार्यगोष्ठी आयोजित की। भारतीय अर्थव्यवस्था पर कोर्स को अधिक रुचिकर बनाने के लिए दस इकाइयाँ बनाई गईं जिनमें ताजे आँकड़े शामिल किए गए। स्कूलों, अध्यापक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों के लगभग 25 लोगों ने इस कार्यगोष्ठी में भाग लिया।

रा० शै० अ० और प्र० प० ने स्कूलों में उत्पादकता संबंधी शिक्षा नामक परियोजना चलाई। इसके अन्तर्गत 'विकास की सीमाएँ नहीं' नामक एक पुस्तिका अंग्रेजी में अभी निकली है। इस पुस्तिका में उत्पादकता सिद्धान्त, धारणा तथा विभिन्न पहलुओं को उजागर किया गया है। उत्पादकता के लिए शिक्षा विषय पर विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार विमर्श किया गया है और इसके अन्तिम विश्लेषण से इस नतीजे पर पहुँचा गया है कि उत्पादकता एवं विकास प्रत्यक्ष रूप में व्यक्ति से जुड़े हैं जिसमें उसके विचार, उद्देश्य तथा अभिरुचि सम्मिलित हैं।

रा० शै० अ० और प्र० प० ने 'विभिन्न सेकंडरी बोर्डों में अर्थशास्त्र शिक्षण के स्तर' विषय पर एक परियोजना अपने हाथ में ली है। इस पर एक पत्रक तैयार करके राज्यों को भेजा गया। बड़ी संख्या में उत्तर प्राप्त हो चुके हैं और जिन बोर्डों के उत्तर प्राप्त नहीं हुए उनसे परिषद् के क्षेत्रीय सलाहकारों द्वारा आवश्यक सामग्री प्राप्ति हेतु सम्पर्क किया गया। पत्रक प्राप्त कर आँकड़ों पर कार्य किया जाएगा।

अंग्रेजी के कार्यक्रम

रा० शै० अ० और प्र० प० ने ओपेन स्कूल के लिए ये पुस्तकें बनाईं—

इंग्लिश रीडर I इंग्लिश रीडर II	पाठ्यपुस्तकें
स्टोरीज एण्ड टेल्स स्टोरीज एण्ड लीजेंड्स	सहायक पुस्तकें

अरुणाचल प्रदेश के लिए कक्षा I और II के अंग्रेजी विषय के लिए पाठ्यक्रम को विकसित करके अन्तिम रूप दिया गया। इसी तरह अरुणाचल के लिए कक्षा I की पाठ्यपुस्तक भी विकसित की गई।

'रीडिंग्स ऑन लेंगुवेज एण्ड लेंगुवेज टीचिंग' की पांडुलिपि तैयार हो चुकी है। इस पुस्तक में 'पठन' के ऊपर भाषा तथा शिक्षण के तरीकों पर नवीनतम पुस्तकों के आधार पर सामग्री जुटाई गई है तथा भिन्न भिन्न विचारों को जन्म देने वाले अभ्यासों को भी इसमें सम्मिलित किया गया है।

अंग्रेजी के लगभग 40 संसाधन सम्पन्न व्यक्तियों ने जुलाई 1982 में एक नवीकरण कार्यक्रम में भाग लिया। इन व्यक्तियों को प्रशिक्षण कार्यक्रमों में मार्गदर्शक व्यक्तियों के रूप में कार्य करना था। इन कार्यक्रमों को कुछ समय बाद राज्य शि० सं० ने प्रशिक्षित स्नातक शिक्षकों के लिए आयोजित किया। इस कार्यक्रम का मुख्य ध्यान रा० शै० अ० और प्र० प० द्वारा तैयार की गई तथा सेंट्रल बोर्ड ऑफ सेकंडरी एजूकेशन द्वारा 'बी' कोर्स में लगाई गई 'स्टेप्स टु इंग्लिश बुक V' पाठ्यपुस्तक, सहायकपुस्तक और अभ्यासपुस्तिका पर विचार-विमर्श करने पर ही रहा।

कक्षा X की पुस्तकों का प्रयोग करने वाले दो सौ प्रशिक्षित स्नातक अध्यापकों के लिए वार्तामालाओं का आयोजन किया गया।

हिन्दी के कार्यक्रम

बी० एच० ई० एल० हरिद्वार में 1 जून से 10 जून 1982 तक उत्तरी क्षेत्र के केन्द्रीय विद्यालयों में काम कर रहे स्नातकोत्तर अध्यापकों (हिन्दी) के लिए एक स्थिति-निर्धारण कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम में 56 अध्यापकों ने भाग लिया। इन्हें साहित्यिक और भाषा विज्ञान की प्रभावशाली विषयवस्तु तथा प्रशिक्षण के नवीनतम तरीकों से परिचित कराया गया।

'उत्तराखण्ड की यात्रा' नामक सहायक पुस्तक के प्रारूप को अन्तिम रूप देने के लिए, मदुरै विश्वविद्यालय में 14 से 19 सितम्बर 1982 तक एक कार्यगोष्ठी का आयोजन किया गया। लेखकों, यात्रावृतान्त लेखकों, अध्यापकों और शैक्षणिक व्यक्तियों की सहायता से पांडुलिपि को अन्तिम रूप दिया गया। प्रकाशन के लिए पांडुलिपि को संपादित किया जाना है।

'भारती भाग I' (कक्षा VI के लिए हिन्दी की पाठ्यपुस्तक) को विकसित तथा संशोधित करने के लिए कमच्छा, वाराणसी के अध्यापक प्रशिक्षण कालिज में एक कार्यगोष्ठी 23 से 29 नवम्बर 1982 तक संपन्न हुई। समस्त पुस्तक पर विस्तार से विचार विमर्श हुआ

और अन्त में कुछ पाठ निकाल दिए गए। कुछ पाठों को छोटा करके प्रभावशाली बना दिया गया। कुछेक पाठों को बदलने की बात भी सुझाई गई।

राजकीय शिक्षा संस्थान चाङ्लाङ् में 19 से 24 दिसंबर 1982 के बीच अरुणाचल प्रदेश के हिन्दी शिक्षकों के लिए एक स्थिति निर्धारण कोर्स का आयोजन हुआ। इस कोर्स में पाठों के विश्लेषण करने के ढंग, शिक्षण बिन्दुओं को छाँटना और उनके अनुसार कक्षा में पढ़ाना आदि विषयों पर 58 प्रतिभागियों को दिशा निर्देश दिए गए। कुछ पाठों को पढ़ाकर भी दिखाया गया।

रा० शि० सं० के परिसर में 2 और 3 मार्च 1983 को विद्यार्थी साहित्य कोश के सलाहकार मंडल की एक विशेषाधिकार प्राप्त बैठक हुई। सलाहकार मंडल के सुझावों को ध्यान में रखते हुए हिन्दी शिक्षकों, साहित्यकारों, भाषाविदों तथा शिक्षक प्रशिक्षणदाताओं की एक कार्यगोष्ठी का आयोजन रा० शि० सं० परिसर में 31 मार्च से 4 अप्रैल 1983 तक कोश के विषयों को छाँटने के लिए किया गया।

मातृभाषा हिन्दी

बाल भारती भाग I पर आधारित कक्षा I के लिए सहायक सामग्री तैयार की गई। इस सामग्री का प्रकाशन पुस्तिकाओं, फोल्डर तथा भित्ति चार्टों के रूप में होगा। यह सामग्री जिसकी रूपरेखा विशेषरूप से पाठ्यपुस्तक के साथ ही पढ़ने के लिए बनाई गई है, पठन अभ्यास के लिए अधिक अवसर प्रदान कर सकती है क्योंकि कहानियाँ, घटनाएं तथा कविताएँ बाल भारती के पाठों के पाठ्यक्रम को ध्यान में रखकर ही तैयार की गई हैं। यह सामग्री बच्चों की आवश्यकता पूर्ति करती है क्योंकि हिन्दी में इस स्तर के लिए रुचिकर सरल भाषा एवं शैली में लिखी कम ही पुस्तकें उपलब्ध हैं।

यह सामग्री केवल भाषा के विकास को ही नहीं बल्कि बच्चों की शारीरिक, भावनात्मक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक और उनके अपने चारों ओर के वातावरण में रुचि लेने की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर बनाई गई है। इस सामग्री का चयन इस ढंग से किया गया है जिससे बच्चों में सहयोग, सफाई, साहस, शालीनता, कार्य करने के अच्छे ढंग, अनुशासन, मित्रता, ईमानदारी, सहभागिता, पशुओं के प्रति उदारता, आज्ञाकारिता, सहयोग, मिलकर काम करने की भावना, सच्चाई तथा प्रेम जैसी मान्यताएँ पनप सकें।

कक्षा II से V तक के लिए सहायक पुस्तकों का प्रारूप भी तैयार हो चुका है। इसकी समीक्षा विशेषज्ञों तथा अध्यापकों द्वारा होनी है। यह ऐसी सामग्री है जिससे प्राइमरी स्तर के विद्यार्थियों की पढ़ने की आदत को बल मिलेगा।

प्राइमरी स्तर पर पहली तीन कक्षाओं के लिए सुलेख पुस्तिकाओं की रूपरेखा तैयार हो चुकी है। पहली पुस्तक अन्तिम चरण में है।

दूसरी भाषा हिन्दी

रा० शै० अ० और प्र० प० अरुणाचल प्रदेश के लिए दूसरी भाषा के रूप में हिन्दी शिक्षण के लिए पाठ्यपुस्तकें तथा अभ्यास पुस्तिकाएँ बना रही है। कक्षा I के लिए पाठ्य पुस्तक तथा उसकी अभ्यास पुस्तिका और कक्षा II के लिए पाठ्यपुस्तक तैयार की गई है जो अरुणाचल के शिक्षा निदेशक ने वहाँ के सभी स्कूलों में लगा दी है। कक्षा II की अभ्यास-पुस्तिका प्रेस में है। तीसरी पुस्तक पर कार्य चल रहा है।

नैतिकता की शिक्षा

नैतिकता की शिक्षा की मूलभूत बातों पर तथा पाठ्यचर्या के लिए मार्गदर्शी रेखाओं को विकसित करने के लिए राष्ट्रीय स्तर का विचार विमर्श आयोजित करने के बाद रा० शै० अ० और प्र० प० ने मिडिल तथा सेकन्डरी कक्षाओं के लिए नैतिकता की शिक्षा के लिए पाठ्यचर्या की रूपरेखा तैयार की। प्राइमरी कक्षाओं के लिए पाठ्यचर्या, जो अधिक क्रियाओं पर आधारित होगी, एक कार्यगोष्ठी में विकसित की जाएगी और इस प्रारूप को शैक्षणिक वर्ष 1983-84 के मध्य तक अन्तिम रूप दे दिया जाएगा। उसके बाद विभिन्न आयु वर्ग के लिए अनुकूल निर्देशन सामग्री बनाने का कार्य आरम्भ किया जाएगा।

स्त्रियों के लिए शिक्षण सामग्री

स्टेट रिसोर्स सेंटर के सहयोग से हरियाणा में ग्रामीण महिलाओं के लिए शिक्षण सामग्री तैयार करने का कार्य रा० शै० अ० और प्र० प० ने अपने हाथ में लिया। आवश्यकता पर आधारित अध्यापन तथा पठन सामग्री तैयार करने के लिए एक सर्वेक्षण किया गया जिससे ग्रामीण महिलाओं की अभिरुचियों और आवश्यकताओं का पता लगाया जा सके। इस सर्वेक्षण से लेखकों को ग्रामीण स्त्रियों की वास्तविक स्थिति का ज्ञान हुआ। इससे उन्हें विषय तथा शब्द भण्डार चयन में सहायता मिलती है। चार कार्यगोष्ठियों में इस सामग्री का तीसरा प्रारूप तैयार किया गया। इसमें नीचे लिखी चीजें शामिल हैं :

(i) प्राइमर (शब्दों तथा अंकों के ज्ञान के लिए)

(ii) निर्देशकों के लिए संदर्शिका

(iii) अभ्यास पुस्तिका (लेखन सिखाने के लिए)

(iv) कहानी संग्रह (जागने की इच्छा बलवती करने के लिए)

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने मध्य प्रदेश सरकार के पंचायत एवम् समाज कल्याण निदेशालय के सहयोग से जनजाति तथा पिछड़े वर्ग की महिलाओं के लिए पठन-पाठन सामग्री विकसित करने का कार्य अपने हाथ में लिया। आवश्यकता पर आधारित पठन-पाठन सामग्री तैयार करने के लिए सर्वेक्षण किए जा रहे हैं। इनमें साक्षात्कार तथा विचार विमर्श किया जाता है। अभी तक बस्तर और बहरामपुर में दो कार्यगोष्ठियों का आयोजन किया जा चुका है और इनमें दस पाठ विकसित किए गए हैं। लेखन सिखाने के लिए अभ्यास पुस्तिका के पाठ तैयार किए गए हैं। सामाजिक जानकारी के लिए कविताएँ तथा कहानियाँ लिखी गई हैं।

संकाय के सदस्यों ने राजकीय अनुसंधान परिषद् हरियाणा द्वारा मई 1982 में रोहतक में तथा नवम्बर 1982 में इन्दौर में आयोजित दिशा निर्देशन कार्यक्रमों में भाग लिया। ये कार्यक्रम पंचायत एवं समाजकल्याण निदेशालय द्वारा आयोजित किए गए। इन कार्यक्रमों में पठन और लेखन के नए तरीकों को बताने के साथ ही साथ परिषद् द्वारा तैयार की गई सामग्री का प्रयोग करना भी बताया गया है।

विज्ञान तथा गणित

पर्यावरणीय शिक्षा

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने 1982-83 में विज्ञान शिक्षण में पर्यावरण के प्रयोग को आगे बढ़ाया। यूनेस्को की सहायता से पर्यावरणीय शिक्षा में शिक्षकों के प्रशिक्षण पर 3 से 16 मार्च 1983 तक एक क्षेत्रीय कार्यगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस कार्यगोष्ठी का आयोजन नीचे लिखे उद्देश्यों के लिए किया गया :

(i) यूनेस्को द्वारा तैयार की गई पर्यावरण संबंधी शिक्षा में शिक्षकों के प्रशिक्षण मॉड्यूल्स की विषयवस्तु से शिक्षक प्रशिक्षार्थियों को अवगत कराने के लिए।

(ii) शिक्षक प्रशिक्षण के मॉड्यूल्स के प्रयोग तथा उनके स्थानीय अनुकूलन का सही तथा सस्ता मार्ग ढूँढ निकालने के लिए।

(iii) मॉड्यूल्स के स्थानीय अनुकूलन के लिए संस्थानों की पहचान करने के लिए और संभावनाओं को मूर्त रूप देने के लिए।

(iv) बड़े क्षेत्रों के छोटे-छोटे भागों में पर्यावरणीय शिक्षा के विकास में सूचनाओं तथा विशेषज्ञों के ज्ञान का आदान प्रदान करने के लिए।

इस कार्यगोष्ठी में अफगानिस्तान, श्रीलंका, बांग्लादेश तथा भारत के प्रतिभागियों ने भाग लिया।

इस कार्यगोष्ठी में यूनेस्को द्वारा दिए गए निम्नलिखित दस्तावेजों पर विस्तार से विचार विमर्श हुआ :

(i) पर्यावरणीय शिक्षा की पाठ्यचर्या के विकास के तरीके ढूँढ़ना ।

(ii) पर्यावरणीय शिक्षा में शिक्षकों के प्रशिक्षण के तरीके ढूँढ़ना ।

(iii) सेवा के पूर्व और सेवा के मध्य शिक्षक प्रशिक्षण तथा प्राथमिक स्तर के स्कूलों के पर्यवेक्षकों के प्रशिक्षण हेतु मॉड्यूल्स I और II ।

(iv) सेकन्डरी स्कूलों के लिए पर्यावरणीय शिक्षा में सेवा के पूर्व तथा सेवा के मध्य प्रौद्योगिकी प्रशिक्षण के लिए मॉड्यूल्स III और IV ।

(v) सामाजिक अध्ययन के अध्यापकों तथा सेकंडरी स्कूलों के पर्यवेक्षकों के सेवा के पूर्व और सेवा के मध्य प्रशिक्षण के लिए मॉड्यूल VI ।

प्रतिभागियों ने देश और राज्यों की रिपोर्ट प्रस्तुत की । दिल्ली में पर्यावरण से सम्बद्ध समस्याओं के अनुभव के लिए कुछ यात्राओं का भी आयोजन किया गया ।

इस परियोजना के अन्तर्गत प्राथमिक स्तर पर पर्यावरणीय शिक्षा में काम कर रहे शिक्षकों के सेवामध्य प्रशिक्षण के लिए एक मॉड्यूल विकसित किया गया । यह मॉड्यूल रा० शै० अ० और प्र० प० में लेखकों के एक दल ने तैयार किया तथा इसे यूनेस्को को टिप्पणी के लिए भेज दिया गया । उसके बाद यह मॉड्यूल क्षेत्र के एक भाग की कार्यगोष्ठी में प्रस्तुत किया गया ।

कक्षा III और IV के लिए पर्यावरण अध्ययन में पाठ्यपुस्तकों के विकास के लिए परियोजना के अन्तर्गत राजकीय शिक्षा संस्थान चाङ्लाङ्, अरुणाचल प्रदेश में 3 से 12 जनवरी 1983 तक एक कार्यगोष्ठी का आयोजन किया गया । सरकारी प्राथमिक स्कूलों के शिक्षकों ने एक कार्यगोष्ठी में भाग लिया जिसमें पर्यावरणीय शिक्षा की कक्षा III की पाठ्यपुस्तक के भाग II को अरुणाचल प्रदेश के स्कूलों की आवश्यकता के अनुसार संशोधित किया गया ।

राज्यों के साधन सम्पन्न व्यक्तियों के लिए पर्यावरण अध्ययन में मार्ग निर्देशन कार्यक्रम नामक परियोजना के अन्तर्गत दो कार्यगोष्ठियों का आयोजन किया गया । पहली कार्यगोष्ठी उत्तरी और पूर्वी क्षेत्रों के राज्यों तथा केन्द्र शासित क्षेत्रों के साधन सम्पन्न व्यक्तियों के लिए थी । इसका आयोजन गवर्नमेंट सेन्ट्रल पेडागोजिकल इंस्टीट्यूट इलाहाबाद में हुआ । यह 5 से 15 अक्टूबर 1982 तक हुई और 16 प्रतिभागियों ने भाग लिया । दूसरी कार्यगोष्ठी 15 से 25 फरवरी 1983 तक सर्वजन हायर सेकंडरी स्कूल, पीलामेडा, कोयम्बटूर में हुई, यह कार्यगोष्ठी दक्षिणी और पश्चिमी क्षेत्रों के लिए थी । इस कार्यगोष्ठी में भी 16 प्रतिभागियों ने भाग लिया ।

नीचे लिखी बातों से प्रतिभागियों को परिचित कराना इन कार्यगोष्ठियों के विस्तृत उद्देश्य थे :

(i) विभिन्न राज्यों तथा केन्द्र शासित क्षेत्रों के प्राथमिक स्कूलों में पर्यावरण अध्ययन के संदर्भ में विज्ञान शिक्षा की स्थिति ।

(ii) रा० शै० अ० और प्र० प० द्वारा तैयार की गई सामग्री तथा कार्यक्रम ।

(iii) ई० वी० एस० प्रणाली तथा शिक्षक प्रशिक्षण की नीतियों में मार्ग निर्देशन ।

भौतिकी के कार्यक्रम

'कक्षा XI-XII के लिए भौतिकी की आदर्श प्रयोगशाला मैनुअल तैयार करना' नामक परियोजना के अन्तर्गत प्रायोगिक कौशलों के विकास के लिए प्रयोगों की एक सीरीज तैयार की गई । एक कार्यगोष्ठी का आयोजन, विभिन्न कौशलों और योग्यताओं के विकास के लिए नए प्रयोगों की जाँच करने के लिए अहमदाबाद में हुआ ।

'भौतिकी परियोजना के लिए मार्गदर्शक रेखाएँ' नामक परियोजना के अन्तर्गत चल रही परियोजनाओं में बढ़ोतरी के लिए और नई परियोजनाओं के विकास के लिए राज्य/शै० अ० और प्र० प० में, दिल्ली 23 से 26 मार्च 1983 तक एक कार्यगोष्ठी हुई । इसके द्वारा कक्षा 12 के छात्र समुचित परियोजना का चयन कर उसे पूरा कर सकेंगे ।

"कक्षा XI के भौतिकी के कोर्स के लिए निर्देशन की अलग अलग मार्गदर्शन प्रणाली" पर कार्य जारी है । इस प्रणाली में स्वप्रेरित अलग-अलग नियंत्रित आत्म-अवलोकन सम्मिलित है और उसे कक्षा XI के भौतिकी पाठ्यक्रम में जाँचा जा रहा है । सेन्ट्रल बोर्ड ऑफ सेकन्डरी एजूकेशन की कक्षा XI के पाठ्यक्रम को ध्यान में रखते हुए भौतिकी की 21 इकाइयाँ प्रकाशित हो चुकी हैं ।

इसके साथ ही निर्देशन की अलग-अलग मार्गदर्शन प्रणाली को कार्यान्वित करने की रूपरेखा देते हुए एक पुस्तिका भी प्रकाशित हो चुकी है । उपरोक्त भौतिकी इकाइयों में 105 मास्टरी असेस्मेंट परीक्षण भी तैयार हो चुके हैं । कक्षा XI के लिए गणित पर भी कार्य आरम्भ हो चुका है और इस परियोजना के अन्तर्गत गठित की गई 22 इकाइयों का विकास किया गया है ।

'भौतिकी में कसेंट्रिक दशा के विषयों में धारणा को श्रेणीबद्ध करना' नामक परियोजना के लिए पुनर्निवेशन का विश्लेषण किया गया और संशोधित मूल्यांकित विषयों को अलग स्कूलों में पुनः जाँचा गया । प्राप्त पुनर्निवेशन का फिर से विश्लेषण किया गया ।

'+2 स्तर पर पाठ्यचर्या में संशोधन' नामक परियोजना के अन्तर्गत 28 मार्च से 2 अप्रैल 1983 तक एक कार्यगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस कार्यगोष्ठी में 32 प्रतिभागियों ने भाग लिया। ये प्रतिभागी विश्वविद्यालयों, राजकीय विज्ञान शिक्षा संस्थानों, क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालयों तथा स्कूलों से आए थे। भौतिकी की पाठ्यपुस्तक के प्रथम संस्करण पर विभिन्न माध्यमों से प्राप्त पुनर्निवेशन पर आधारित एक परियोजना पत्रक प्रतिभागियों के विचारार्थ तैयार किया गया। कार्यगोष्ठी में संशोधित पाठ्यक्रम का प्रारूप तैयार किया गया। भौतिकी शिक्षण में कुछ सस्ते प्रयोगों, प्रदर्शनों का विकास किया गया। रा० शै० अ० और प्र० प० ने कम पारे के इस्तेमाल से एक सस्ता बैरोमीटर तैयार किया। इसे कलकत्ता में आयोजित विज्ञान प्रदर्शनी में प्रदर्शित किया गया।

रसायन शास्त्र के कार्यक्रम

'कक्षा XI की पाठ्यपुस्तक का संशोधन' नामक परियोजना के अन्तर्गत धारणाओं का विस्तार से अध्ययन किया गया विशेष रूप से स्कूल प्रणाली में उनकी संभावनाओं के संदर्भ में। शिक्षण में लगे शिक्षकों और विद्यार्थियों को प्रश्नावली भेजी गई। विश्वविद्यालय विभागों के विषय विशेषज्ञों ने पाठ्यपुस्तक को संशोधित किया। स्कूलों और विशेषज्ञों से प्राप्त पुनर्निवेशन पर तथा उनके विचार तथा मूल्यांकन के नतीजों पर 2 से 5 अगस्त 1982 तक आयोजित एक गोष्ठी में विचार विमर्श किया गया। इसकी उपलब्धि को कक्षा XI की रसायन विज्ञान की पाठ्यपुस्तक को संशोधित करने के लिए इस्तेमाल किया जाएगा।

'सेकंडरी स्तर पर विभिन्न राज्यों तथा केन्द्र शासित क्षेत्रों के रसायन विज्ञान पाठ्यक्रम का विश्लेषण' नामक परियोजना के अन्तर्गत रसायन विज्ञान के कार्यदल ने पाठ्यक्रम के विश्लेषण के लिए एक रूपरेखा तैयार की। परियोजना के मुख्य उद्देश्य हैं:

(i) राज्यों तथा केन्द्र शासित क्षेत्रों के पाठ्यक्रम की अच्छाइयों तथा बुराइयों का पता लगाना।

(ii) रसायन विज्ञान अध्ययन प्रणाली की पहचान।

(iii) रसायन विज्ञान में अन्तः अनुशासिक अंतरापृष्ठ की पहचान।

(iv) राज्यों तथा संघीय क्षेत्रों के पाठ्यक्रम को आधुनिकतम और नवीनतम बनाने के लिए निर्देश रेखाएँ उपलब्ध कराना।

सीनियर सेकंडरी स्तर पर +2 स्तर के बाद शैक्षणिक तथा व्यावसायिक कोर्स की आवश्यकताओं को पूरा करने वाला पाठ्यक्रम भी सुझाया गया। इसकी प्राप्ति के लिए 14 से 18 फरवरी 1983 तक एक कार्य गोष्ठी का आयोजन किया गया। इसमें महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों के पाठ्यचर्या विकास में लगे और रसायन विज्ञान के विशेषज्ञों ने भाग लिया।

'कक्षा XII के लिए रसायन विज्ञान की पाठ्यपुस्तक' परियोजना के अन्तर्गत कक्षा XI के समान ही प्रणाली अपनाई गई। कक्षा XII की रसायन विज्ञान की पाठ्य-पुस्तक की विषयवस्तु के परिणाम को निश्चित करने के लिए 14 से 18 मार्च 1983 तक एक कार्यगोष्ठी का आयोजन किया गया।

'+2 स्तर पर रसायन विज्ञान के लिए धारणा केन्द्रित प्रयोगों का विकास' परि-योजना के अन्तर्गत ऐसे प्रयोगों की रूपरेखा तैयार की गई जिन्हें +2 स्तर पर रसायन विज्ञान के प्रभावशाली शिक्षण के लिए जरूरी समझा गया और उनकी प्रयोगशाला में जाँच की गई। सीमित विषयवस्तु प्रयोगों पर एक प्रयोगात्मक संस्करण निकाला गया जिसकी स्कूलों में जाँच की गई। इन प्रयोगों का विकास करते हुए इनकी कीमत, भौतिक आवश्यक-ताओं और स्कूल के आस-पास प्राप्त सामग्री आदि बातों पर अधिक जोर दिया गया। कठिन एवं अमूर्त धारणाओं के लिए प्रयोगों की रूपरेखा भी तैयार की गई। इन प्रयोगों वाली पुस्तिका को 'कक्षा XI की रसायन विज्ञान भाग I के लिए धारणा केन्द्रित प्रयोग' का नाम दिया गया।

रसायन विज्ञान के शिक्षण के लिए कम कीमत वाले स्थानीय उत्पादित उपकरणों पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सहयोग से यूनेस्को द्वारा पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़ में 7 से 9 जनवरी 1983 तक आयोजित कार्यगोष्ठी में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने भी भाग लिया।

'रसायन विज्ञान में कक्षा XI-XII के लिए प्रायोगिक परियोजना' के अन्तर्गत राज्यों तथा संघ क्षेत्रों के संसाधन सम्पन्न व्यक्तियों के स्थिति निर्धारण कार्यक्रम की रिपोर्ट को अन्तिम रूप दिया गया तथा प्रकाशनार्थ उसे सम्पादित किया गया।

'+2 के रसायन विज्ञान के प्रायोगिक कोर्स में छात्रों के काम के मूल्यांकन के लिए दिशानिर्देश विकसित करना' नामक परियोजना के अन्तर्गत दिशा निर्देशन की रूपरेखा की पांडुलिपि को अन्तिम रूप देकर मुद्रणार्थ भेज दिया गया।

जीव विज्ञान के कार्यक्रम

धारणाओं के सरल और वक्र ताल-मेल तथा उनके संबंध को जानने के लिए कक्षा III से XII तक के जीव-विज्ञान-पाठ्यक्रम का गहराई से अध्ययन किया गया। +2 स्तर पर जीव विज्ञान पाठ्यचर्चा के साथ जीव विज्ञान से जुड़े व्यावसायिक कोर्स के संबंध की जाँच के लिए 21 से 28 मार्च 1983 तक एक कार्यगोष्ठी का आयोजन किया गया। विभिन्न राज्यों के विश्वविद्यालयों और ऐसे महाविद्यालयों के, जहाँ आयुर्विज्ञान की शिक्षा दी जा रही है, प्रतिभागियों की सहायता से जीव विज्ञान पाठ्यचर्या तथा सेंट्रल बोर्ड ऑफ सेकंडरी एजूकेशन के गृह-विज्ञान, कृषि तथा आयुर्विज्ञान के व्यावसायिक कोर्सों के वर्गों को आमने-सामने रखकर विश्लेषण किया गया।

"शिक्षक प्रशिक्षण सामग्री बनाने के लिए जीव विज्ञान शिक्षा में प्रशिक्षण क्रिया-कलाप और एशिया में जीव विज्ञान की शिक्षा पर उसकी अनुगामी लघु क्षेत्रीय गोष्ठी" नामक परियोजना के अन्तर्गत पाँच मॉड्यूल्स तैयार किए गए। ये हैं—(i) जैनेटिक कोड (ii) जैनेटिक इंजिनियरिंग (iii) अंडरस्टैंडिंग प्रोटीन (iv) एन्जाइम्स एण्ड हाऊ दे ऐक्ट (v) वाइल्ड लाइफ कनज़र्वेशन।

गणित के कार्यक्रम

सहायक अध्ययन सामग्री तैयार करने के लिए +2 के गणित के पाठ्यक्रम का विश्लेषण किया गया। यह गणित में व्यावसायिक कोर्सों को ध्यान में रखते हुए किया गया। बीजगणित और सांख्यिकी में तैयार की गई सामग्री की समीक्षा करने के लिए 21 से 25 मार्च 1983 तक एक कार्यगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस कार्यगोष्ठी में विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों और स्कूलों के अध्यापकों तथा आई० आई० टी० विशेषज्ञों ने भाग लिया।

'कक्षा VI और VII की पाठ्यपुस्तकों का मूल्यांकन और शिक्षक संदर्शिका बनाना' नामक परियोजना के अन्तर्गत दो कार्यगोष्ठियों का आयोजन 21 से 26 फरवरी 1983 तक किया गया। इस प्रकार कक्षा VI और VII में चल रहे पाठ्यक्रम की गहराई से समीक्षा की गई। दो पाठ्यपुस्तकों का मूल्यांकन पहले किया गया था। उनकी रिपोर्ट पर इस कार्यगोष्ठी में विचार किया गया। शिक्षक संदर्शिका बनाने के लिए सुझाव भी प्राप्त हुए।

इस कार्यगोष्ठी की उपलब्धियों को मिडिल स्कूल स्तर पर पाठ्यपुस्तकों तथा शिक्षक संदर्शिकाओं की नई सीरीज बनाने के लिए प्रयोग में लाया जाएगा।

इस वर्ष "ऑबजेक्टिव बेस्ड टेस्ट आईटम्स इन मैथेमेटिक्स फॉर क्लास IX" नामक पुस्तक प्रकाशित हुई।

'गणित में निर्देशन की अलग-अलग मार्गदर्शक प्रणाली' नामक परियोजना के अन्तर्गत कक्षा XI के लिए 22 इकाइयों की रूपरेखा विकसित की गई।

एकीकृत विज्ञान शिक्षा का पाठ्यक्रम

'साइंस ए पार्ट ऑफ लाइफ' नामक फिल्म के आलेख का संशोधन एक ग्रुप ने किया। इसका फिल्मांकन हरियाणा में डाला के एक ग्रामीण स्कूल में अक्तूबर 1982 में आरम्भ किया गया।

'स्कूलों में एकीकृत विज्ञान पाठ्यचर्या को कार्यान्वित करने का गहराई से अध्ययन' नामक एक अनुसंधान परियोजना आरम्भ की गई। कार्यगोष्ठियों का आयोजन किया गया

जिनमें दिल्ली के 13 प्रायोगिक स्कूल शामिल हुए। इन कार्यगोष्ठियों तथा बाद की बैठकों में कक्षा VI और VII के एकीकृत विज्ञान पाठ्यक्रम की समीक्षा की गई। दिल्ली के शिक्षकों को एकीकृत विज्ञान पाठ्यचर्या से सम्बद्ध टेस्ट के विषय, छात्रों की क्रियाएँ और प्रदर्शनीय क्रियाएँ विकसित करने के लिए प्रशिक्षित किया गया। शिक्षकों द्वारा विकसित सामग्री की समीक्षा की गई, उस पर विचार-विमर्श हुआ और शीघ्र ही इसे पूरा किया जाएगा।

'विज्ञान सीखना भाग I, II और III' के लिए संयुक्त शिक्षक संदर्शिका छप गई है तथा शीघ्र ही उसका विमोचन कर दिया जाएगा।

'ऑल इंडिया साइंस एजुकेशन प्रोजेक्ट (ए० आई० एस० ई० पी०) तथा आल इंडिया मैथमेटिक्स एजुकेशन प्रोजेक्ट (ए० आई० एम० ई० पी०)'

भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय और ब्रिटिश हाई कमीशन के ब्रिटिश कौंसिल डिवीजन के समझौते के अन्तर्गत, शिक्षा मंत्रालय की ओर से रा० शै० अ० और प्र० प० का विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग इन दोनों समझौतों को कार्यान्वित कर रहा है।

ए० आई० एस० ई० पी० के अन्तर्गत 1982-83 वर्ष में केरल, उत्तर प्रदेश और केन्द्रीय विद्यालयों से गणित शिक्षा की विकसित प्रणाली में 9 मास के प्रशिक्षण के लिए 23 अध्यापकों का चयन किया गया। इंग्लैंड जाने से पूर्व 12 अक्तूबर 1982 को इन शिक्षकों का संक्षिप्त अनुकूलन किया गया।

ए० आई० एस० ई० पी० के अन्तर्गत बिहार में भौतिकी, रसायनविज्ञान तथा जीव विज्ञान में प्रशिक्षणोत्तर गोष्ठियों का आयोजन किया गया। विज्ञान शिक्षा की विकसित प्रणाली में प्रशिक्षण प्राप्त कर इंग्लैंड से लौटे हुए शिक्षकों ने इन कार्यगोष्ठियों में संसाधन सम्पन्न व्यक्तियों के रूप में कार्य किया। इन कार्यगोष्ठियों का उद्देश्य इंग्लैंड में प्राप्त प्रशिक्षण के चहुँमुखी प्रभाव को बढ़ावा देना था। इसी तरह की कार्यगोष्ठियाँ उड़ीसा में आयोजित करने का प्रस्ताव है। विज्ञान (भौतिकी, रसायन विज्ञान और जीव विज्ञान) में बीस शिक्षावृत्तियाँ और गणित में तेईस शिक्षावृत्तियाँ 1983-84 वर्ष के लिए विभिन्न राज्यों और केन्द्र शासित क्षेत्रों को सुलभ कराई जा रही हैं। दो कार्यक्रमों के अन्तर्गत विभाग ने अध्यापकों के चयन के लिए एक नए उपकरण का विकास किया। शिक्षकों के चयन का कार्य आरम्भ हो चुका है।

'स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा' नामक परियोजना के अन्तर्गत प्राथमिक स्कूलों के लिए स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा का कोर राष्ट्रीय पाठ्यक्रम विकसित किया गया। उच्च कक्षाओं के लिए यह सुझाया गया कि स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा से सम्बद्ध घटक दूसरे विषयों के साथ ही मिला दिए जाएँ।

राष्ट्रीय विज्ञान प्रदर्शनी तथा राज्य स्तर की विज्ञान प्रदर्शनी

बच्चों के लिए 12वीं राष्ट्रीय विज्ञान प्रदर्शनी का आयोजन 10 से 16 नवम्बर 1982 तक रा० शै० अ० और प्र० प० और पश्चिमी बंगाल सरकार ने मिलकर कलकत्ता में किया। इसका उद्‌घाटन शिक्षा एवं संस्कृति की केन्द्रीय मन्त्री श्रीमती शीला कौल ने किया। 1982 की विज्ञान प्रदर्शनी का विषय 'विज्ञान और सामुदायिक विकास' था। इस प्रदर्शनी में 28 राज्यों/केन्द्र शासित क्षेत्रों और केन्द्रीय विद्यालयों के 400 बच्चों और अध्यापकों ने भाग लिया।

प्रदर्शनी में प्रदर्श-विषय थे :

(i) संसाधन तथा उनका अदलाव बदलाव।

(ii) स्थानीय समस्याएँ तथा उनका समाधान।

(iii) आम सामग्री और उपकरणों के लिए सस्ते अनुकल्प, और

(iv) भोजन सुरक्षित रखना।

'अपंगों के लिए सहायता', 'विज्ञान खेल है', और 'विज्ञान एवं गणित में शिक्षण सामग्री' आदि मॉडल प्रदर्शित किए गए थे। पाँच प्रदर्श वी० आई० टी० एम० द्वारा छाँटे गए तथा एक साल के लिए प्रदर्शित किए गए। इस अवसर पर दो पुस्तिकाएँ 'स्ट्रक्चर एण्ड वर्किंग ऑफ साइंस मॉडल्स 1982' तथा 'लिस्ट ऑफ एग्जिबिट्स' निकाली गईं।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर एम० दास गुप्ता ने 'आकाश की खोज यात्रा के 25 वर्ष' नामक विषय पर एक व्याख्यान दिया। प्रतिभागियों को वी० आई० टी० एम०, बोटैनिकल गार्डेन और बिरला कृत्रिम नभोमंडल, दिखाने ले जाया गया।

छब्बीस राज्यों तथा केन्द्र शासित क्षेत्रों ने राज्य स्तर की विज्ञान प्रदर्शनियों का आयोजन किया। राष्ट्रीय उत्पादकता वर्ष के साथ ताल मेल रखते हुए इन राज्य स्तर की प्रदर्शनियों का विषय 'उत्पादकता के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी' ही रखा गया।

रा० शै० अ० और प्र० प० के सहयोग से 14 से 28 मार्च 1983 तक संसाधन सम्पन्न व्यक्तियों को विज्ञान क्लब किट्स का प्रयोग करना सिखाने के लिए प्रशिक्षण हेतु एक कार्यगोष्ठी का आयोजन किया गया। राज्यों तथा केन्द्र शासित क्षेत्रों के 13 व्यक्तियों ने इसमें भाग लिया। बढ़ईगीरी, लोहारी और आसान बिजली के काम तथा इलैक्ट्रोनिक्स के काम में क्रियात्मक प्रशिक्षण दिया गया।

शिक्षण-सामग्री केन्द्र

रा० शै० अ० और प्र० प० ने एक भीति पत्रिका आरम्भ की है। नीचे लिखे विषयों पर चार सैट हिन्दी और अंग्रेजी में प्रदर्शित किए गए—

(i) भारत में अणु।

(ii) पर्यावरण शिक्षा तथा रा० शै० अ० और प्र० प०।

(iii) वन्य जीवन, और

(iv) जल प्रदूषण।

5 मई 1982 को विश्व पर्यावरण दिवस मनाया गया। 5 से 11 अक्तूबर 1982 तक वन्य जीवन सप्ताह का आयोजन किया गया जिसमें इच्छुक परियोजना के स्कूलों को शामिल किया गया। चलचित्र दिखाए गए, गोष्ठियों का आयोजन किया गया और रुचिकर सामग्री को प्रदर्शित किया गया।

नीचे दिए अवसरों पर शिक्षण सामग्री केन्द्र ने क्षेत्र-कार्य शुरू किया :

(i) मावलंकर हाल, दिल्ली में पर्यावरण पर प्रारम्भिक मंच तैयार करने के लिए अप्रैल-मई 1982 में एक प्रदर्शनी का आयोजन।

(ii) हैदराबाद के भारतीय विज्ञान शिक्षक संघ की वार्षिक बैठक का 10 से 12 जनवरी 1983 तक आयोजन।

(iii) 3 से 16 मार्च 1983 तक पर्यावरण शिक्षा के लिए सामग्री तैयार करने के लिए यूनेस्को की सभा का आयोजन।

(iv) गुड़गांव जिले के डाला के ग्रामीण सेकंडरी स्कूल में एक विज्ञान कोने की स्थापना।

नीचे दी गई गोष्ठियों/भाषणों का भी आयोजन किया गया।

(ii) पहली मार्च 1983 को उस्मानिया विश्वविद्यालय हैदराबाद के निदेशक, डा० अलह्यांकर का 'कॉमेट्स' पर भाषण।

(ii) संयुक्त राज्य अमेरिका के ईस्ट कैरोलीन विश्वविद्यालय के डा० स्पूनर और उनके साथी की सहायता से 'विज्ञानशिक्षा में तर्क' पर 22 से 27 जनवरी 1983 तक एक गोष्ठी का आयोजन।

राज्यों तथा संस्थाओं को सहायता

पाठ्यचर्या के विकास, पाठ्य सामग्री तैयार करने और शिक्षक प्रशिक्षण के कार्य में रा० शै० अ० और प्र० प० ने सहायता करना जारी रखा । जम्मू और कश्मीर राज्य के कक्षा 9 और 10 में विज्ञान और गणित विषयों में रा० शै० अ० और प्र० प० की पाठ्यपुस्तकें लगाने के फैसले को ध्यान में रखते हुए, जम्मू व कश्मीर क्षेत्र के संसाधन सम्पन्न व्यक्तियों के लिए जम्मू और श्रीनगर में दो स्थितिनिर्धारण कोर्सों का आयोजन किया गया । उन कार्यक्रमों के आयोजन में रा० शै० अ० और प्र० प० के भौतिकी, रसायन विज्ञान, जीवविज्ञान और गणित विषयों के विशेषज्ञों ने राज्य शिक्षा अधिकारियों की सहायता की ।

रा० शै० अ० और प्र० प० के कर्मचारियों ने स्कूलों में प्रायोगिक कार्य में आने वाले विज्ञान के उपकरणों की सूची विकसित करने के लिए केरल के शिक्षा विभाग की सहायता की ।

अरुणाचल प्रदेश राज्य को कक्षा I और II के लिए पर्यावरण अध्ययन के लिए पाठ्यपुस्तक बनाने में सहायता दी गई ।

रा० शै० अ० और प्र० प० के गणित शिक्षा विभाग में काम कर रहे कर्मचारियों ने बोर्ड ऑफ सेकन्डरी एजुकेशन द्वारा आयोजित गणित की गोष्ठी में भाग लिया और राष्ट्रीय स्तर पर गणित की पाठ्यचर्या विकसित करने में बोर्ड की सहायता की ।

शिक्षण सामग्री केन्द्र द्वारा कुछ शिक्षा संस्थाओं को जिनमें बांग्ला देश का शिक्षा विभाग भी शामिल है, इकाई की दशमलव प्रणाली पर परामर्श सेवाएँ उपलब्ध कराई गईं ।

पोषाहार, स्वास्थ्य शिक्षा तथा पर्यावरणीय सफाई

वर्ष 1982 के अन्तर्गत गुजरात, तमिलनाडु, मध्यप्रदेश और पंजाब में क्रमशः बड़ौदा, कोयम्बटूर, जबलपुर और लुधियाना नामक स्थानों पर पुराने केन्द्रों के साथ ही दस नए केन्द्र स्थापित किए गए । ये दस केन्द्र आंध्र प्रदेश, असम, बिहार, हरियाणा, कर्नाटक, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश में स्थित हैं । बहुत से नए केन्द्रों ने आधारभूत सर्वेक्षण लगभग समाप्त कर लिया है । इसी पर अनुकूल पाठ्यचर्या विकास की प्रक्रिया आधारित होगी । इनमें से कुछ पाठ्यचर्या विकास की अवस्था में हैं । एम० पी० के बाकी समय के लिए परियोजना के लिए प्रस्तावित कार्य की मुख्य बात यह रही कि बच्चों के लिए तथा उस समाज के लिए जिसमें वे रहते हैं, एक ही साथ दोनों को संदेश दिए जाएँगे, एक दूसरे के बाद नहीं जैसा पहले किया गया था ।

1982 के दौरान पुराने केन्द्र छात्रों के लिए निर्देश सामग्री के संशोधन तथा शुद्धिकरण और शिक्षकों के लिए संदर्शिकाएँ बनाने में व्यस्त थे।

1982 में प्रत्येक राज्य को इस कार्यक्रम को 300 स्कूलों में लागू करना था और उन स्कूलों के अध्यापकों को प्रशिक्षित करना था।

1982 में पुराने केन्द्रों ने नीचे दिए क्रियाकलाप पूरे किए :

बड़ौदा केन्द्र

(i) पाठ्यचर्या सामग्री के संशोधन के लिए कार्यगोष्ठी

(ii) बाकी बचे अध्यापक-शिक्षकों और पर्यवेक्षकों के लिए प्रशिक्षण

(iii) शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों के प्रिंसिपलों और साधन सम्पन्न व्यक्तियों के लिए स्थिति निर्धारण कार्यक्रम

कोयम्बटूर केन्द्र

(i) प्राइमरी स्कूलों के लिए संशोधित पाठ्यक्रम का विकास

(ii) प्राथमिकता के विषयों तथा क्रियाओं का निर्धारण

(iii) बी० टी० आई० एस० द्वारा बचे हुए विज्ञान शिक्षकों का प्रशिक्षण

(iv) निर्देशन पैकेज के मूल्यांकन के लिए कार्यगोष्ठी

(v) निर्देशन सामग्री के संशोधन के लिए कार्यगोष्ठी

(vi) संशोधित निर्देशन सामग्री के संपादन के लिए कार्यगोष्ठी

(vii) शिक्षा के ढंग बताने वाले शिक्षकों के लिए स्थिति निर्धारण कोर्स

(viii) प्राइमरी स्कूल के शिक्षकों के लिए पाठ्यसामग्री की समीक्षा हेतु कार्यगोष्ठी

जबलपुर केन्द्र

(i) बचे हुए विज्ञान शिक्षकों का प्रशिक्षण

(ii) निर्देशन पैकेज के मूल्यांकन के लिए कार्यगोष्ठी

(iii) निर्देशन सामग्री के संशोधन के लिए कार्यगोष्ठी

(Iv) संशोधित निर्देशन सामग्री के सम्पादन के लिए कार्यगोष्ठी

लुधियाना केन्द्र

(i) बाकी बचे विज्ञान अध्यापक-शिक्षकों/पर्यवेक्षकों और शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों के प्रिंसिपलों के लिए स्थिति निर्धारण-कार्यक्रम

यह भी प्रस्ताव है कि बड़ौदा, कोयम्बटूर, जबलपुर और लुधियाना के पो० स्वा० शि० और प० स० के केन्द्र, जिन्होंने 1976 में काम करना आरम्भ किया था, अपने समीपवर्ती राज्यों तथा केन्द्र शासित क्षेत्रों के पो० स्वा० शि० और प० स० की परियोजनाओं के लिए साधन सम्पन्न केन्द्र के रूप में काम करेंगे। इन केन्द्रों का यह कार्य उन केन्द्रों के अपने कार्यों तथा क्रियाकलापों के अतिरिक्त होगा।

स्त्री शिक्षा

परिषद् ने स्कूल-पाठ्यचर्या के द्वारा स्त्रियों का स्तर ऊँचा उठाने और लड़कियों की शिक्षा के सार्वजनीकरण के लिए विभिन्न अनुसंधान, विकास और प्रशिक्षण के कार्यक्रमों को हाथ में लेती रही है। इस वर्ष के दौरान हाथ में लिए गए मुख्य कार्यकलापों में ये भी शामिल हैं—

अनुसंधान

अनुसंधान के क्षेत्र में परिषद् ने स्त्रियों का जीवन स्तर सुधारने के लिए लड़कियों की शिक्षा के सार्वजनीकरण से सम्बद्ध अनेक परियोजनाओं का काम जारी रखा। इनमें शामिल हैं—

(i) "आवश्यकता-आधृत, पारिस्थितिकी-निर्धारित एवं परिवर्तन-उन्मुख खाना-बदोश जाति के लिए शिक्षा-प्रणाली"

(परियोजना चल रही है)

(ii) "शिक्षा के व्यावसायीकरण के लिए लड़कियों और स्त्रियों के वास्ते स्थानीय जरूरतों पर आधारित काम-धंधों की पहचान"

(परियोजना चल रही है)

(iii) "लड़कियों के लिए (जिनमें सामाजिक दृष्टि से अपंग लड़कियाँ भी शामिल हैं) गणित में कम उपलब्धि वाले निर्धारक"

(परियोजना चल रही है)

"अच्छे जीवन की आकांक्षा और उसे पाने के लिए कार्य" नामक परियोजना जिसे यूनेस्को का वित्तपोषण मिला हुआ है, शुरू की गई। स्त्री-शिक्षा एकक और राष्ट्रीय शैक्षिक

नियोजन एवं प्रशासन संस्थान के सहयोग से इसे प्रो० आर० के० मुखर्जी सँभाले हुए हैं। इस अध्ययन का मूल उद्देश्य अच्छे जीवन की आकांक्षाओं और उन्हें पाने के लिए किए जाने वाले कार्यों के अति संवेदी क्षेत्रों में अनुसंधान प्रणाली को सुदृढ़ बनाना है। अध्ययन पूरा कर लिया गया है।

विकास

वर्ष के दौरान स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में नीचे लिखे विकासात्मक कार्यों को किया गया :

'प्राइमरी स्तर के लिए गणित में शिक्षण सामग्री का विकास' पर एक कार्यगोष्ठी का आयोजन 17 से 22 जनवरी 1983 तक हुआ। इस कार्यगोष्ठी में छात्रों के चारों ओर के वातावरण से ली गई, हमारे जीवन से सम्बद्ध अंक प्रणाली तथा रेखागणित पर विभिन्न प्रकार की शिक्षण-सामग्री तैयार की गई जिसमें इस बात का ध्यान रखा गया कि इससे छात्रों को, विशेषरूप में लड़कियों को गणित के मूल सिद्धान्तों की समझ बढ़े और वे गणित में रुचि लें। विकसित शिक्षण-सामग्री बहुउद्देशीय है और उसमें अंक प्रणाली के बहुत से सिद्धान्त एक साथ ही समाहित हैं। इस सामग्री को सस्ती रखने तथा शिक्षकों को शीघ्र सुलभ कराने का प्रयत्न किया गया है। स्त्रियों की स्थिति के संदर्भ में भाषा की पाठ्य पुस्तकों और सहायक पुस्तकों के मूल्यांकन के लिए मूल्यांकन उपकरण बनाए गए। पाठ्य सामग्री और सहायक पुस्तकों के मूल्यांकन का मापदंड विकसित करने के लिए उत्तरकाशी में जनवरी 1983 में और मसूरी में 15 से 19 मार्च 1983 तक दो कार्यगोष्ठियाँ हुईं।

पूर्वस्नातक स्तर पर स्त्री शिक्षा के लिए कार्यकारी मॉडल में एक कोर्स का ढाँचा विकसित किया गया है। कानपुर विश्वविद्यालय के स्त्रियों के विकास के अध्ययन दल ने इसे मूल रूप से स्वीकार कर लिया है। कानपुर विश्वविद्यालय के विभिन्न महाविद्यालयों के कोर्स समन्वयकों के लिए पुनः स्थिति निर्धारण कार्यक्रम का आयोजन दिसम्बर 1982 में किया गया।

स्कूल स्तर पर समाज विज्ञान के शिक्षण के लिए बी० एड० के पाठ्यक्रम के विकास हेतु एक बैठक 26 से 28 अगस्त 1982 तक हुई। इसमें प्रतिभागी देश भर से लिए गये थे जिनमें समाज विज्ञान के प्रसिद्ध स्कूल शिक्षक प्रशक्षिक, विश्वविद्यालयों के प्रोफेसर शामिल थे।

इस एकक ने कक्षा 11 और 12 के लिए समाज विज्ञान में पाठ्यसामग्री को अन्तिम रूप देने के लिए प्रसिद्ध समाज वैज्ञानिकों और स्कूल शिक्षकों के परीक्षणदल की एक बैठक का आयोजन 7 मार्च से 11 मार्च 1983 के बीच रा० शि० सं० परिसर में किया। दो पुस्तकों 'इंडियन सोसायटी' और 'प्रोबलम ऑफ इंडियन सोसाइटी' का परीक्षण किया गया।

यूनेस्को के लिए, "शैक्षिक कार्यक्रमों तथा पाठ्यपुस्तकों में सेक्स स्टीरियो टाइप की पहचान के लिए क्षेत्रीय संदर्शिका तैयार करने का काम" हाथ में लिया गया।

गणित पाठ्यचर्या द्वारा स्त्रियों के स्तर पर स्लाइड और टेप तैयार करने का कार्यक्रम पूरा किया गया ।

प्रशिक्षण और प्रसार कार्य

राजस्थान, बिहार, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के प्राथमिक स्कूलों के अध्यापकों के लिए एक अभिविन्यास कार्यक्रम किया गया । इसका विषय था 'पाठ्यचर्या द्वारा स्त्रियों का स्थान—एक शिक्षक संदर्शिका' । इसका आयोजन 4 से 6 जनवरी 1983 तक राजकीय प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय रातू, रांची में हुआ । इस कार्यक्रम की मुख्य बात इसमें 200 शिक्षक-प्रशिक्षणार्थियों को सम्मिलित करना था ।

आरम्भिक स्कूल शिक्षकों, प्रशिक्षकों और संसाधन-सम्पन्न व्यक्तियों का 'पाठ्यचर्या द्वारा स्त्री के स्थान पर पुस्तिका' पर अभिविन्यास कार्यक्रम हुआ । इसमें हिन्दी भाषी क्षेत्रों तथा पश्चिमी क्षेत्रों के शिक्षक शामिल हुए । इसका आयोजन 14 से 17 मार्च 1983 तक हुआ । इस कार्यक्रम में गोआ, महाराष्ट्र, गुजरात और दिल्ली के शिक्षक प्रशिक्षकों को अभि-विन्यस्त किया गया ।

आठ मार्च का दिन 'अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस' के रूप में मनाया गया । इस अवसर पर रा० शै० अ० और प्र० प० ने 'स्त्रियों के लिए शिक्षा और रोजगार की समस्याएँ' और 'स्त्री शिक्षा में अनुसंधान' विषयों पर दो भाषणों का आयोजन किया । ये भाषण दो प्रतिष्ठित विदुषियों - डा० देवकी जैन और कु० सुशीला भान ने दिए ।

रा० शै० अ० और प्र० प० ने गुजरात के स्कूल पाठ्य पुस्तकों के राजकीय बोर्ड को पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तकों के विकास के लिए एक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित करने के लिए परामर्श सेवाएँ प्रदान कीं ।

'भविष्य के लिए शिक्षा' पर भी रा० शै० अ० और प्र० प० ने राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन एवं प्रशासन संस्थान को परामर्श सेवाएँ प्रदान कीं ।

पाठ्यपुस्तक मूल्यांकन

राष्ट्रीय एकीकरण समिति और अल्पसंख्यक आयोग की सिफारिशों के बाद भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने एकीकरण की दृष्टि से पाठ्यपुस्तकों के मूल्यांकन का काम आरम्भ किया है। शिक्षा एवं संस्कृति मंत्रालय के सचिव ने फरवरी 1981 में राज्यों के शिक्षा सचिवों को पत्र लिख कर पाठ्यपुस्तकों के मूल्यांकन के कार्यक्रम को चलाने की प्रार्थना की थी । काम को शुरू करने के लिए सबसे पहले इतिहास और भाषाओं की पाठ्यपुस्तकों को जाँचा जा रहा है । इस कार्यक्रम को विकेन्द्रीकृत कर दिया गया है और राज्यों तथा संघ क्षेत्रों

से अनुरोध किया गया है कि वे अपने स्तर पर इस कार्यक्रम को सँभालें। रा० शै० अ० और प्र० प० से कहा गया है कि वह कार्यक्रम का संयोजन और समन्वय तथा पाठ्यपुस्तकों के मूल्यांकन के लिए उपकरणों की व्यवस्था करे और कार्य के लिए मार्गदर्शी रेखाएँ बनाए।

रा० शै० अ० और प्र० प० ने इतिहास और भाषाओं की पाठ्यपुस्तकों के मूल्यांकन के लिए मार्गदर्शी रेखाओं का प्रारूप तैयार किया। इस प्रारूप का संशोधन एक विशेषज्ञ समिति ने किया जिसे केन्द्रीय शिक्षा मंत्री ने गठित किया था। सितम्बर 1981 में, रा० शै० अ० और प्र० प० नई दिल्ली में एक सम्मेलन हुआ जिसमें विभिन्न राज्यों व संघ क्षेत्रों के इस कार्यक्रम के प्रभारी अधिकारियों ने भाग लिया और मार्गदर्शी रेखाओं पर विचार विमर्श हुआ। इस सम्मेलन में मार्गदर्शी रेखाओं को कुछ संशोधन के साथ स्वीकार कर लिया गया और कार्य संचालन की विधि को तय किया गया। पाठ्यपुस्तक मूल्यांकन के उपकरणों और मार्गदर्शी रेखाओं को राज्यों और संघ क्षेत्रों के उन माध्यमों के पास भेज दिया गया है जिन्हें मूल्यांकन करना था।

इस कार्यक्रम को शुरू करने के लिए पश्चिमी बंगाल को छोड़ सभी राज्य सहमत हो गए। सभी संघ क्षेत्र भी इसके लिए सहमत हैं, केवल उन संघ क्षेत्रों को छोड़ जहाँ रा० शै० अ० और प्र० प० की बनाई पाठ्यपुस्तकें चलती हैं। सभी राज्यों और संघ क्षेत्रों में कार्यक्रम भिन्न भिन्न चरणों में है। पंजाब, हिमाचल प्रदेश, गुजरात तथा केन्द्र शासित मिज़ोरम और दिल्ली और सेंट्रल बोर्ड ऑफ सेकंडरी एजुकेशन ने, 1983-84 के शैक्षणिक वर्ष के लिए कुछ कक्षाओं की पुस्तकों को संशोधित कर लिया है। गोआ, तमिलनाडु और उत्तर प्रदेश राज्यों में 1983-84 के शैक्षणिक वर्ष में पाठ्यपुस्तकों के संशोधित होने की संभावना है। विशेषज्ञ समिति ने, हरियाणा, कर्नाटक, उड़ीसा, त्रिपुरा और बिहार राज्यों तथा असम के बोर्ड ऑफ सेकन्डरी एजूकेशन की रिपोर्टों को अन्तिम रूप दे दिया है। आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, केरल, जम्मू और कश्मीर तथा मिज़ोरम और सिक्किम राज्यों/संघ क्षेत्रों ने कार्यक्रम को स्वीकार कर लिया परन्तु कार्य की गति धीमी है। मेघालय में पाठ्य-चर्या को संशोधित किया जा रहा है इसीलिए इस कार्यक्रम पर काम नहीं हुआ। शिक्षा मंत्रालय के कहने पर, रा० शै० अ० और प्र० प० ने इतिहास और भाषाओं की अपनी पाठ्यपुस्तकों के मूल्यांकन का काम भी हाथ में लिया। विशेषज्ञ समिति की बैठक सितंबर 1982 में आयोजित की गई। अन्तिम रिपोर्ट संबद्ध विभागों को आवश्यक कार्यवाही के लिए भेज दी गई।

7

शिक्षा और कार्य

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् समाजोपयोगी उत्पादक कार्य और शिक्षा के व्याव-सायीकरण पर अनुदेशीय और मार्गदर्शी सामग्री का विकास करती है जो स्कूली शिक्षा को देश के आर्थिक विकास के साथ जोड़ने का एक मुख्य साधन है। कार्यकलापों को छाँटने का आधार उनकी शैक्षिक उपयोगिता, उत्पादकता और सामाजिक उपादेयता है। कार्यानुभव की तीन अवस्थाएँ हैं—कार्य-जगत का पता लगाना, सामग्री के साथ प्रयोग करना और कार्य करना।

रा० शै० अ० और प्र० प० सीनियर सेकंडरी स्तर (+2) की कक्षा XI-XII के लिए अनेक व्याव-सायिक कोर्सों के लिए पाठ्यक्रम

विकसित करने में और भिन्न भिन्न राज्यों के ऐसे ही पाठ्यक्रमों के संशोधन के काम में सक्रिय भाग ले रही है। इस कार्य में लगी भिन्न भिन्न संस्थाओं के लिए अभिविन्यास कार्यक्रमों का आयोजन किया गया है। अलग अलग व्यावसायिक विषयों में बहुत से अंशकालिक शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया गया। शिक्षा के व्यावसायीकरण-कार्यक्रम के कार्यन्वयन का मूल्यांकन, तात्कालिक अध्ययन गोष्ठियों तथा सम्मेलनों के माध्यमों से होता रहता है। रा० शै० अ० और प्र० प० भारत के 300 ऐसे संस्थानों के साथ काम कर रही है जो हायर सेकंडरी स्तर पर व्यावसायिक कोर्सों में शिक्षा दे रहे हैं।

समाजोपयोगी उत्पादक कार्य

समाजोपयोगी उत्पादक कार्य के बारे में अनेक गलत धारणाएँ पनप रही हैं जिनके कारण इसे कार्यानुभव, क्राफ्ट और बेसिक शिक्षा जैसे हाथ से काम करने वाले कार्यक्रमों के साथ जोड़ दिया जाता है। यही कारण है कि अनेक राज्यों में इसका कार्यान्वियन सुचारु रूप में नहीं हो सका। यदि इस कार्यक्रम को समीक्षा समिति के सुझाव के अनुसार स्कूल पाठ्य-चर्या में मुख्य स्थान देना है तो ऐसे संसाधन सम्पन्न व्यक्तियों के अनुकूलन का बहुत महत्त्व हो जाता है जिनके ऊपर इस कार्यक्रम के कार्यान्वियन का भार है।

अनुकूलन-कार्यक्रम

समाजोपयोगी उत्पादक कार्य पर रा० शै० अ० और प्र० प० ने उपरोक्त बातों को ध्यान में रखकर चार अनुकूलन-कार्यक्रमों का आयोजन किया :

(i) लक्षद्वीप के संसाधन संपन्न व्यक्तियों और शिक्षकों के लिए 17 से 19 अप्रैल 1982 तक अंद्रोथ में।

(ii) मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और गुजरात के संसाधन संपन्न व्यक्तियों के लिए 27 से 31 अगस्त 1982 तक भोपाल में।

(iii) दक्षिणी क्षेत्र के चार राज्यों के संसाधन संपन्न व्यक्तियों के लिए 16 से 20 सितंबर 1982 तक बंगलूर में।

(iv) बिहार के संसाधन संपन्न व्यक्तियों के लिए 24 से 28 नवंबर 1982 तक पटना में।

मई 1982 तथा फरवरी-मार्च 1983 के दौरान रा० शै० अ० और प्र० प० ने स० उ० का० के चार अनुकूलन कार्यक्रम आयोजित करने में नागालैंड और दिल्ली प्रशासन को सुविज्ञता प्रदान की।

इन कार्यक्रमों के दौरान संसाधन संपन्न व्यक्तियों को स० उ० का० के कार्यान्वयन के सभी संभव पहलुओं की जानकारी तो दी ही गई साथ ही उन्होंने बहुत से क्रियाकलाप भी किए। इन कार्यक्रमों में भाग लेने के बाद प्रतिभागी समाजोपयोगी उत्पादक कार्य की विचारधारा और दर्शन से भली भाँति परिचित हो गए और उन में इस कार्यक्रम को समीक्षा समिति के सुझावों के अनुसार कार्यान्वित करने का आत्म विश्वास जागा।

समाजोपयोगी उत्पादक कार्य की स्रोत-पुस्तिका

कक्षा I से X तक के लिए स० उ० का० से संबद्ध क्रियाकलापों की सूची देते हुए रा० शैं० अ० और प्र० प० ने स्रोत-पुस्तिका के चार भागों का विकास किया। ये पुस्तिकाएँ स० उ० का० से संबद्ध ऐसे क्रियाकलापों की आदर्श रूप रेखा प्रस्तुत करती हैं जिन्हें ऐसे कार्य क्षेत्रों से लिया गया है जो विभिन्न कक्षाओं के छात्रों के अनुकूल हैं। रा० शैं० अ० और प्र० प० ने स० उ० का० की निर्देश सामग्री विकसित करने के लिए 15 से 22 फरवरी 1983 के दौरान रा० शि० सं० नई दिल्ली में एक कार्यगोष्ठी का आयोजन किया क्योंकि समाजोपयोगी उत्पादक कार्य पर ऐसी निर्देश सामग्री उपलब्ध नहीं थी जो सेकंडरी स्तर के बाद की कक्षाओं की आवश्यकताओं को पूरा कर सके। विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों ने कार्य-गोष्ठी में भाग लिया। इन विशेषज्ञों ने बहुत से ऐसे क्रियाकलापों का चयन किया जो स्कूल शिक्षा के इस स्तर के अनुकूल हों। साथ ही उन्हें क्रमशः इस प्रकार समझाया गया जिससे आम स्कूलों में बिना किसी कठिनाई के कार्यान्वित किया जा सके।

शिक्षा का व्यावसायीकरण

शिक्षा के व्यावसायीकरण का उद्देश्य छात्रों में मूल कौशलों और सुविज्ञता का विकास करके उन्हें काम करने में अधिक उपयुक्त बनाना है। यह गंभीर कार्य व्यावसायिक शिक्षकों को सौंपा गया है जो इस जिम्मेबारी को ठीक तरह निभा रहे हैं। ऐसे उदाहरण भी हमारे सामने आते हैं जहाँ व्यावसायिक शिक्षक ईमानदारी और उत्साह से काम करने के बावजूद व्यावसायिक प्रशिक्षण में इच्छित परिणाम देने में असफल रहे हैं। व्यावसायिक शिक्षा के योग्य अध्यापक भी यह महसूस करते हैं कि अपने ज्ञान को नवीनतम करने के लिए उन्हें समय समय पर पुनश्चर्या या प्रशिक्षण कोर्स की आवश्यकता है। इस संदर्भ में इन कोर्सों का महत्त्व और भी अधिक हो जाता है कि व्यावसायिक शिक्षा के शिक्षकों को +2 स्तर पर व्यावसायिक स्ट्रीम के लिए, सेवा पूर्व प्रशिक्षण नहीं दिया गया।

अंशकालिक शिक्षक-प्रशिक्षण

शिक्षकों में व्यावसायिक विशेषज्ञता और योग्यता को अधुनातन बनाने के लिए तथा शिक्षा के व्यावसायीकरण की प्रक्रिया तथा दर्शन से उन्हें अवगत कराने के लिए रा० शैं० अ०

और प्र० प० शिक्षकों के लिए विभिन्न व्यवसायों में विशेष अध्ययन के संस्थानों में अंश-कालिक प्रशिक्षण का आयोजन करती है। इन प्रशिक्षणों में अच्छे से अच्छे संसाधन सम्पन्न व्यक्तियों की सेवाएँ ली जाती हैं।

वर्ष 1982-83 के दौरान नीचे दिए अंशकालिक प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए गए।

(1) वाणिज्य : 17 मई से 15 जून 1982 तक, श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति में।

(2) प्रौद्योगिकी : 17 मई से 12 जून 1982 तक, सी० टी० आई० गुइंडी, मद्रास में।

(3) गृह विज्ञान : 26 मई से 22 जून 1982 तक श्री अविनाशलिंगम् गृह विज्ञान कालिज, कोयम्बटूर में।

(4) कृषि : 1 से 28 जून 1982 तक मराठवाड़ा कृषि विश्वविद्यालय में।

(5) पैरा मेडिकल : 1 जून से 28 जून 1982 तक बाउरिंग और लेडी करजन अस्पताल, बंगलूर में।

विभिन्न राज्यों के व्यावसायिक शिक्षा के शिक्षकों को उनके विभिन्न व्यवसायों में एक ही स्थान पर गहन प्रशिक्षण दिया गया। इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों से देश में व्यावसायिक शिक्षा के विस्तार की आशा की जाती है क्योंकि इन अंशकालिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों से शिक्षकों को अच्छा ज्ञान तथा सुविज्ञता प्राप्त हुई है।

स्थितिनिर्धारण कार्यक्रम

किसी भी शैक्षिक कार्यक्रम की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उसके कार्यान्वयन में लगे लोग उस कार्यक्रम के दर्शन से भली भाँति परिचित हों। राज्यों के शिक्षा प्राधिकारी संस्थानों के अध्यक्ष और शिक्षा बोर्डों के प्राधिकारी ही ऐसे संसाधन सम्पन्न व्यक्ति हैं जिनसे शिक्षा के व्यावसायीकरण के कार्यक्रम को कार्यान्वित करने की आशा की जाती है। राज्यों की प्रार्थना पर रा० शै० अ० और प्र० प० समय-समय पर राज्यों के संसाधन सम्पन्न व्यक्तियों के लिए स्थितिनिर्धारण कार्यक्रमों का आयोजन करती है। वर्ष 1982-83 में रा० शै० अ० और प्र० प० ने ऐसे राज्यों के लिए, जहाँ +2 स्तर पर व्यावसायिक कोर्स चल रहे हैं और जिन राज्यों में शुरू किए जाने हैं, नीचे लिखे स्थिति-निर्धारण कार्यक्रमों का आयोजन किया :

(1) 21 से 23 अप्रैल 1982 तक गांधी नगर में राजस्थान के बहुउद्देशीय स्कूलों के प्रिंसिपलों के लिए।

(2) 28 से 31 जुलाई 1982 तक हैदराबाद में, आंध्र प्रदेश के संसाधन सम्पन्न व्यक्तियों के लिए।

(3) 17 से 19 अगस्त 1982 तक दिल्ली में, सेन्ट्रल बोर्ड ऑफ सेकंडरी एजुकेशन से सम्बद्ध स्कूलों के प्रिंसिपलों के लिए।

(4) 28 से 31 अगस्त 1982 तक तथा 2 से 5 सितम्बर 1982 तक क्रमशः दो स्थितिनिर्धारण कार्यक्रम त्रिची और मदुरै में, तमिलनाडु के संसाधन सम्पन्न व्यक्तियों के लिए।

इन स्थितिनिर्धारण कार्यक्रमों में भाग लेने वालों को शिक्षा के व्यावसायीकरण के कार्यान्वियन के पहलुओं से परिचित कराया गया। यह कार्य व्याख्यानों तथा विचार विमर्श द्वारा किया गया। इन कार्यक्रमों द्वारा इस कार्यक्रम के कार्यान्वियन की बहुत सी कठिनाइयाँ और समस्याएँ सामने आई और इनके सम्भाव्य समाधानों पर भी विचार विमर्श हुआ।

इन कार्यक्रमों से संसाधन सम्पन्न व्यक्तियों में अधिक जानकारी तथा आत्म-विश्वास के बढ़ने की आशा है जिससे वे इस कार्यक्रम को सही ढंग से कार्यान्वित कर सकेंगे।

शिक्षण-सामग्री

यह केवल कहने की ही बात नहीं बल्कि ऐतिहासिक सत्य है कि देश में +2 स्तर पर व्यावसायिक कोर्स ऐसे समय में आरम्भ किए गये जब व्यावसायिक छात्रों के लिए कोई भी शिक्षण सामग्री उपलब्ध नहीं थी। व्यावसायिक शिक्षा के शुरू होने के छह वर्ष बाद भी इस स्थिति में कोई अन्तर नहीं आया। रा० शै० अ० और प्र० प० ने इस स्थिति को सुधारने में पहल की। सुधार का यह कार्य विशेषज्ञों के वास्तविक अनुभवों पर आधारित निर्देश-पुस्तिकाएँ निकाल कर किया गया। व्यावसायिक क्षेत्रों में शिक्षण-सामग्री विकसित करने के लिए नीचे दी गई कार्यगोष्ठियों का आयोजन किया गया :

(i) **कृषि :** 25 नवम्बर से 6 दिसंबर 1982 तक हैदराबाद के आंध्र प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय में जल व्यवस्था, फार्म मशीनरी, मौसम विज्ञान तथा फसल उत्पादन पर चार पुस्तिकाएँ विकसित की गईं।

(ii) **प्रौद्योगिकी :** 1 से 10 दिसंबर 1982 तक रा० शि० सं० नई दिल्ली में मोटरों की मरम्मत पर एक पुस्तिका विकसित की गई जिसे 24 से 26 मार्च 1983 तक दिल्ली में आयोजित एक कार्यगोष्ठी में अन्तिम रूप दिया गया।

(iii) **गृह विज्ञान** : 7 से 14 दिसंबर 1982 तक, इंस्टीट्यूट ऑफ होमइकोनोमिक्स नई दिल्ली में भोजन परिरक्षण पर एक पुस्तिका विकसित की गई।

(iv) **पैरा मेडिकल** : 24 से 31 दिसंबर 1982 तक रा० शि० सं०, नई दिल्ली में चिकित्सा प्रयोगशाला प्रौद्योगिकी के लिए परीक्षण इकाइयाँ तथा प्रश्न बैंक विकसित किए गए।

(v) **वाणिज्य** : 24 जनवरी से 1 फरवरी 1983 तक क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, अजमेर में, बैंकिंग, ऑफिस प्रैक्टिस एवं एकाउंटेंसी और ऑडिटिंग पर तीन पुस्तिकाएँ तैयार की गई।

निर्देश तथा प्रायोगिक पुस्तिकाओं में ऐसी प्रमुख प्रक्रियाओं का विस्तार से वर्णन किया गया है जो सम्बद्ध व्यवसाय में प्रयुक्त होती हैं और व्यवसाय के छात्रों के लिए ऐसी प्रक्रियाओं में आने वाले **'क्यों'** और **'कैसे'** का उत्तर पाना आवश्यक होता है। तीन पुस्तिकाएँ जो फसल विज्ञान में पहले वर्ष विकसित की गई थीं, विभिन्न राज्यों के स्कूलों को जाँच के लिए और विषय विशेषज्ञों को समीक्षा के लिए भेज दी गई हैं।

जो फीड बैंक तथा सुझाव आए हैं वे साबित करते हैं कि पुस्तिकाएँ व्यावसायिक छात्रों के लिए अत्यधिक उपयोगी हैं। इन पुस्तिकाओं का स्वागत केवल व्यावसायिक शिक्षा के छात्रों और शिक्षकों ने ही नहीं बल्कि विश्वविद्यालयों के प्राध्यापकों और प्रोफेसरों ने भी किया है क्योंकि ये पुस्तिकाएँ बी० एससी० (कृषि) के छात्रों के लिए भी समान रूप से उपयोगी हैं। शिक्षण-सामग्री का यह विकास देश में व्यावसायिक शिक्षा के विकास में महत्वपूर्ण है। रा० शै० अ० और प्र० प० दूसरे व्यावसायिक कोर्सों में भी विकास के कार्य जारी रखेगी।

सर्वेक्षण कार्यकर्त्ताओं के लिए पुस्तिका

किसी भी राज्य में शिक्षा के व्यावसायीकरण की योजना के लागू होते ही जिला व्यावसायिक शिक्षा के सर्वेक्षण का कार्य आरम्भ हो जाता है जिससे आवश्यकता पर आधारित कोर्स आरम्भ किए जा सकें। जिला व्यावसायिक सर्वेक्षण के साथ ही रा० शै० अ० और प्र० प० ने 6 से 11 नवंबर 1982 तक एक कार्यगोष्ठी का आयोजन किया जिसमें अब तक किए गए सर्वेक्षणों की समीक्षा की गई, मूल सर्वेक्षण उपकरणों को संशोधित किया गया और संशोधित मार्गदर्शक रेखाओं को अन्तिम रूप दिया गया। इस सर्वेक्षण-पुस्तिका की सहायता से निश्चय ही अच्छे ढंग के सर्वेक्षण संपन्न हो सकेंगे जिससे राज्यों में +2 स्तर पर सार्थक व्यावसायिक शिक्षा का मार्ग **प्रशस्त** हो सकेगा।

परामर्श देने के कार्य

व्यावसायिक शिक्षा की उन्नति के लिए रा० शै० अ० और प्र० प० विभिन्न राज्यों की संस्थाओं को उनकी प्रार्थना पर भिन्न-भिन्न कार्यक्रमों के आयोजन में लगातार सुविज्ञता और सहयोग प्रदान करती है। रा० शै० अ० और प्र० प० ने राज्यों के प्राधिकारियों, विदेशी प्रतिनिधियों और दूसरे विशेष व्यक्तियों से रा० शि० सं० में तथा उनके राज्यों में बैठकें कीं।

इन बैठकों में जिन संस्थानों से विचार विमर्श किया गया उनमें प्रमुख हैं—पंजाब शिक्षा सुधार आयोग, तमिलनाडु, गुजरात और आंध्र प्रदेश के राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन एवं प्रशासन संस्थान।

8

अध्यापकों और अन्य कार्मिकों का प्रशिक्षण

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के अधीन चार क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय अजमेर, भुवनेश्वर, भोपाल, तथा मैसूर में स्थित हैं। ये सभी महाविद्यालय पुस्तकालयों, शैक्षिक सुविधाओं तथा प्रयोगशालाओं से युक्त हैं तथा मुख्य रूप से अध्यापकों के सेवाकालीन तथा सेवापूर्व के प्रशिक्षण से संबंधित हैं। इन अध्यापक-प्रशिक्षण कोर्सों में ये बातें महत्त्वपूर्ण हैं—शिक्षा-विधि तथा विषय का समन्वय, कक्षा के वास्तविक वातावरण में छात्र-अध्यापकों का दीर्घकालीन प्रशिक्षण तथा विद्यार्थियों और अध्यापकों का सामुदायिक कार्यों में सहयोग।

सन् 1973 से लेकर अब तक राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, अध्यापक-शिक्षा की राष्ट्रीय परिषद् के शैक्षिक सचिवालय के रूप में काम करती आई है। अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में सुधार लाने के लिए रा० शै० अ० और प्र० प० का अध्यापक-शिक्षा विभाग अध्यापक-शिक्षा के स्तर पर अनुसंधान करता है, अध्यापक-शिक्षकों के लिए सेवाकालीन प्रशिक्षण का प्रबंध करता है तथा अध्यापक-शिक्षा के राज्य बोर्डों से निकट संपर्क बनाए रखता है। विश्वविद्यालयों को अपने बी० एड० के पाठ्यक्रमों में सुधार लाने के लिए सहायता दी जाती है। राज्यों के सहयोग से रा० शै० अ० और प्र० प० ने जो अनुवर्ती शिक्षा केन्द्र स्थापित किए हैं, वे अध्यापकों को सेवाकालीन प्रशिक्षण प्रदान करते हैं।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा संचालित पत्राचार-सह-संपर्क कोर्स माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षण रहित अध्यापकों को प्रशिक्षण प्रदान करता है तथा इस प्रकार, प्रशिक्षित अध्यापकों की कमी को दूर करने में सहायता प्रदान करता है। संपर्क कार्यक्रम संकाय के सदस्यों से परामर्श, प्रयोगशाला कार्य तथा निरीक्षणाधीन शिक्षण अभ्यास के अवसर प्रदान करते हैं और इस प्रकार पत्राचार कार्यक्रम को अधिक परिपूर्ण बनाने में सहायक होते हैं।

अध्यापक-शिक्षा की प्रशिक्षण गोष्ठियाँ

विज्ञान के अध्यापक-शिक्षकों की कार्यगोष्ठी : माध्यमिक स्तर के विज्ञान के अध्यापक-शिक्षकों तथा लेखकों की एक कार्यगोष्ठी रा० शै० अ० और प्र० प० के परिसर में 30 मार्च से 7 अप्रैल 1982 तक हुई। इसका आयोजन दो चरणों में किया गया। इसके पहले चरण में "माध्यमिक विद्यालयों में विज्ञान-शिक्षा" नामक पुस्तक से जीव-विज्ञान और भौतिकी पढ़ाने वाले अध्यापक-शिक्षकों से प्राप्त पुनर्निवेशन (फ़ीडबैक) पर विचार-विमर्श किया गया। यह विचार-विमर्श 30 मार्च से 7 अप्रैल 1982 तक चला। अध्यापक-शिक्षकों से पुनर्निवेशन प्राप्त करने के लिए इस चर्चा में विज्ञान के 25 अध्यापक-शिक्षकों, परियोजना के 15 सदस्यों और 2 ब्रिटिश विशेषज्ञों ने भाग लिया। दूसरे चरण में ब्रिटिश विशेषज्ञों और परियोजना के सदस्यों ने अध्यापक-शिक्षकों द्वारा प्रस्तावित परिवर्तनों को लागू करने के लिए गोष्ठी में भाग लिया।

माध्यमिक स्तर के अध्यापक-प्रशिक्षण कालिजों में शैक्षिक मनोविज्ञान के शिक्षण में अनुकूलन-प्रशिक्षण

यह कार्यक्रम राज्य शिक्षा संस्थान, श्रीनगर में 11 अक्तूबर से 20 अक्तूबर 1982 तक किया गया। इसमें शैक्षिक मनोविज्ञान की शिक्षण विधि पर विचार किया गया। इस

कार्यगोष्ठी में 34 अध्यापक-शिक्षकों और विश्वविद्यालयों के प्रोफेसरों ने भाग लिया। इस बात पर विचार किया गया कि रा० शै० अ० और प्र० प० द्वारा प्रकाशित "माध्यमिक अध्यापक-शिक्षा के लिए शैक्षिक मनोविज्ञान की पाठ्यपुस्तक" को किस विधि से पढ़ाया जाए। इस पुस्तक में मनोविज्ञान के सिद्धांतों और भारतीय पृष्ठभूमि में कक्षा की वास्तविक परिस्थितियों में उनके प्रयोग पर अधिक बल दिया गया है।

पूर्वी क्षेत्र के माध्यमिक अध्यापक-शिक्षकों के अनुकूलन के लिए कार्यगोष्ठी

क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, भुवनेश्वर में 3 से 8 जनवरी 1983 तक छह दिन की एक कार्यगोष्ठी का आयोजन किया गया। इसका विषय था अध्यापक शिक्षा की राष्ट्रीय परिषद् के निर्देशों पर निर्मित "पाठ्यचर्या और मूल्यांकन शिक्षण" पाठ्यपुस्तक के प्रयोग में पूर्वी क्षेत्र के माध्यमिक अध्यापक-शिक्षकों का अनुकूलन करना। पूर्वी क्षेत्र के विभिन्न राज्यों के 23 अध्यापक-शिक्षकों ने इसमें भाग लिया। इस पाठ्यपुस्तक के विषय और प्रणाली पर तथा अध्यापक-शिक्षा विभाग द्वारा विकसित कोर्स की रूपरेखा पर विचार-विमर्श हुआ।

समाजोपयोगी उत्पादक कार्य तथा सामुदायिक कार्य में अनुकूलन कार्यक्रम

उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में प्रमुख व्यक्तियों के लिए अध्यापक-शिक्षा में समाजोपयोगी उत्पादक कार्य तथा सामुदायिक कार्य पर यह कार्यक्रम 5 नवम्बर से 10 नवम्बर 1982 तक उत्तर गौहाटी के हिन्दी अध्यापक प्रशिक्षण कालिज में आयोजित किया गया। इस कार्यक्रम में प्रशिक्षित व्यक्तियों को विभिन्न राज्यों द्वारा समाजोपयोगी उत्पादक कार्य तथा सामुदायिक कार्य के क्षेत्र में प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर के अध्यापक-शिक्षकों को प्रशिक्षण देने के लिए प्रयुक्त किए जाने की आशा है। असम, मेघालय, मणिपुर, मिजोरम, नागालैंड तथा अंडमान निकोबार द्वीप समूह से आए हुए 23 प्रतिभागियों ने इसमें हिस्सा लिया।

शिक्षा अधिकारियों तथा शिक्षा उप-निदेशकों के लिए अनुकूलन कोर्स

शहरीकरण की दृष्टि से गुजरात राज्य देश में तीसरे नंबर पर है तथा औद्योगीकरण की दृष्टि से दूसरे नंबर पर। राज्य में औद्योगीकरण के फलस्वरूप सभी शहरी क्षेत्रों में गंदी बस्तियों का प्रसार हुआ है, विशेषकर अहमदाबाद, सूरत, अंकलेश्वर, भावनगर, राजकोट, बड़ौदा, नवासरी, जामनगर जैसे शहरों में। गंदी बस्तियों के बच्चों की शैक्षिक आवश्यकताओं को भली भाँति पूरा करने के लिए बड़ौदा म्युनिसिपल बोर्ड के सहयोग से 26 से 30 दिसम्बर 1982 तक श्रेयस समर्पण, बड़ौदा में एक अनुकूलन कोर्स आयोजित किया गया। इसमें

गुजरात के म्युनिसिपल बोर्ड के शिक्षा अधिकारियों का अनुकूलन किया गया ताकि वे गंदी बस्तियों की शैक्षिक समस्याओं से भली भांति निपटने में समर्थ हो सकें। पाँच दिन के विचार-विमर्श के दौरान प्रतिभागियों को शहरी गंदी बस्तियों की संख्या में असाधारण वृद्धि, गंदी बस्तियों में रहने वालों की सामाजिक-आर्थिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, आजकल की शिक्षा के संदर्भ में उनके बच्चों की आवश्यकताओं तथा गंदी बस्तियों के जीवन और शिक्षा की विशेष समस्याओं से अवगत कराया गया। उन्हें उन विशेष कार्यक्रमों की भी जानकारी दी गयी जो गंदी बस्तियों में रहने वाले बच्चों की शिक्षा, उनके तथा उनके माता-पिता के कल्याण के लिए अपनाए जा सकते हैं। प्रतिभागियों ने अपनी-अपनी रिपोर्टों में उन कार्यक्रमों का ब्यौरा दिया जो उनके म्युनिसिपल बोर्ड द्वारा गंदी बस्तियों में रहने वालों की शिक्षा और कल्याण के लिए चलाए जा रहे हैं। कार्यक्रम के अन्त में प्रतिभागियों ने थोड़े समय में पूरी होने वाली योजनाएँ तैयार कीं ताकि उपलब्ध मानवीय एवं आर्थिक साधनों के प्रयोग से इन बच्चों की शिक्षा और जीवन में सुधार लाया जा सके।

"आधुनिक भारतीय समाज में शिक्षक और शिक्षा" विषय पर अध्यापक-शिक्षकों के लिए अनुकूलन कोर्स

आंध्र विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग के सहयोग से रा० शै० अ० और प्र० प० ने आंध्र प्रदेश राज्य के अध्यापक-शिक्षकों के लिए वाल्टेयर (आंध्र प्रदेश) में 31 मार्च से 5 अप्रैल 1983 तक एक अनुकूलन कोर्स का आयोजन किया जिसका विषय था "आधुनिक भारतीय समाज में शिक्षक और शिक्षा"। राष्ट्रीय अध्यापक-शिक्षा परिषद् द्वारा प्रस्तुत ढाँचे पर आधारित अध्यापक-शिक्षा कार्यक्रम की नई योजना का यह पहला कोर कोर्स है। इस कोर्स में अध्यापक-शिक्षा के दार्शनिक तथा सामाजिक आधारभूत सिद्धांत पर बल दिया गया जो अध्यापकों की तैयारी की दृष्टि से हमारे आधुनिक समाज के लिए उपयुक्त हैं। राज्य के 12 माध्यमिक अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों से आए हुए 15 अध्यापक-शिक्षकों ने इस कार्यक्रम में भाग लिया।

कोर्स में इस बात पर विशेष बल दिया गया कि भारतीय जीवन-दर्शन के सभी आधुनिक तथा प्राचीन अव्यावहारिक विचारों को राष्ट्रीय अध्यापक-शिक्षा परिषद् के मॉडल पर आधारित बी० एड० की नई योजना के कोर पेपर में स्थान नहीं दिया जाना चाहिए। हमारी संस्कृति, परम्पराओं, और रीतिरिवाजों में से उन्हीं को अध्यापक-शिक्षा में सम्मिलित किया जाना चाहिए जो हमारी आधुनिक राष्ट्रीय वृद्धि और विकास के अनुरूप हैं। अन्ततः, देश के सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन की विभिन्नताओं में राष्ट्रीय एकता पर बल दिया जाना चाहिए। इसके लिए लोकतंत्रात्मक धर्म-निरपेक्ष तथा नैतिक मूल्यों (जैसे प्रेम, भाईचारा, सहनशीलता, आदि) को महत्व प्रदान किया जाना चाहिए।

प्राथमिक अध्यापक-शिक्षा के लिए लघु-शिक्षण में प्रशिक्षण

पूर्वी क्षेत्र के प्राथमिक अध्यापक-शिक्षकों के लिए लघु-शिक्षण में एक अनुकूलन कोर्स 24 से 29 जनवरी 1983 तक क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, भुवनेश्वर में आयोजित किया गया। इस कोर्स का उद्देश्य अध्यापक-शिक्षकों को लघु-शिक्षण की मूल धारणा और कार्यविधि से परिचित कराना था। लघु पाठों की योजना बनाने तथा केन्द्रिक शिक्षण की निपुणताओं में से एक का प्रयोग करके लघु कक्षाओं में इन पाठों को पढ़ाने की विधि में उन्हें प्रशिक्षित किया गया। उनके सम्मुख शिक्षण-निपुणताओं के समन्वय की मूल-धारणा की व्याख्या की गई और प्रबंध नीति पर विचार किया गया। कुल 41 अध्यापक-शिक्षकों ने इसमें भाग लिया।

बी० एड० के पाठ्यक्रम में संशोधन

"एन० सी० टी० ई० करीकुलम—ए फ्रेमवर्क" द्वारा अनुमोदित रूपरेखा के आधार पर बी० एड० के पाठ्यक्रम में संशोधन करने के लिए कुछ कार्यगोष्ठियों तथा एक गोष्ठी का आयोजन किया गया। पहली कार्यगोष्ठी नागपुर, औरंगाबाद तथा बम्बई विश्वविद्यालयों के बी० एड० के पाठ्यक्रम में संशोधन करने के लिए 14 से 27 अप्रैल 1982 तक राज्य शिक्षा संस्थान, पुणे में रखी गयी। इसमें राज्य के 17 जिलों के प्रिंसिपलों सहित 63 वरिष्ठ अध्यापक-शिक्षकों को निमंत्रित किया गया।

दूसरी कार्यगोष्ठी 12 से 16 जुलाई 1982 तक राजस्थान विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम को संशोधित करने के लिए वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान में आयोजित की गई। भाग लेने वाले प्रिंसिपलों और वरिष्ठ अध्यापक-शिक्षकों ने "एन० सी० टी० ई० करीकुलम—ए फ्रेमवर्क" के अनुमोदनों, विशेषतः विषय एवं कार्यविधि तथा शिक्षण अभ्यास संबंधी अनुमोदनों पर बल दिया।

तीसरी कार्यगोष्ठी का आयोजन 6 से 9 सितम्बर 1982 तक राज्य शिक्षा संस्थान, पुणे में किया गया जिसमें कोल्हापुर, पुणे और एस० एन० डी० टी० विश्वविद्यालयों के बी० एड० पाठ्यक्रमों के संशोधन पर विचार हुआ। संबंधित विश्वविद्यालयों के विभागों के स्टाफ़ तथा माध्यमिक प्रशिक्षण कालिजों के प्रिंसिपलों ने भी इसमें भाग लिया।

चौथी कार्यगोष्ठी 22 से 27 नवम्बर 1982 तक पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला में जम्मू व कश्मीर, हरियाणा तथा हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालयों के बी० एड० पाठ्यक्रम को संशोधित करने के लिए आयोजित की गई। इसमें संबंधित कालिजों/विश्वविद्यालयों के 28 वरिष्ठ प्रिंसिपलों, प्रोफेसरों तथा वरिष्ठ प्राध्यापकों ने भाग लिया।

एक और कार्यक्रम गुजरात, भावनगर और सौराष्ट्र विश्वविद्यालयों तथा गुजरात विद्यापीठ के बी० एड० पाठ्यक्रम का संशोधन करने के लिए 13 से 17 दिसम्बर 1982

तक गुजरात विश्वविद्यालय अहमदाबाद में रखा गया। इसमें 27 वरिष्ठ अध्यापक-शिक्षकों और ट्रेनिंग कालिज के प्रिंसिपलों ने भाग लिया। वर्तमान पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। संशोधित पाठ्यक्रम को संबंधित बोर्ड ऑफ स्टडीज के सामने मंजूरी के लिए रखा जाएगा।

23 से 27 मार्च 1983 तक एम० बी० पटेल कालिज ऑफ़ एजुकेशन, बल्लभ विद्यानगर में गुजरात विश्वविद्यालय के बी० एड० के पाठ्यक्रम को संशोधित करने के लिए एक कार्यगोष्ठी का आयोजन किया गया। इसमें 24 वरिष्ठ प्रोफेसरों और प्रिंसिपलों ने भाग लिया। विचार-विमर्श के बाद प्रतिभागियों ने रिपोर्टें तैयार कीं। इनसे अध्यापक-शिक्षा पर दूरगामी प्रभाव पड़ने की आशा है।

2 से 5 नवम्बर 1982 तक "शारीरिक शिक्षा में अध्यापक-शिक्षा" के बारे में एक गोष्ठी का आयोजन कालिज ऑफ फिजिकल एजुकेशन, एन० बी० एस० महाविद्यालय, विष्णुपुर, बाँकुरा जिला, पश्चिमी बंगाल में किया गया। पश्चिमी बंगाल राज्य के शारीरिक शिक्षा के 11 माध्यमिक विद्यालय अध्यापक-शिक्षकों ने इसमें भाग लिया। इस गोष्ठी में माध्यमिक अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों और माध्यमिक विद्यालयों के शारीरिक शिक्षा के पाठ्यक्रम पर विचार किया गया।

राज्य शिक्षा संस्थानों/राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषदों के निदेशकों का वार्षिक सम्मेलन

राज्य शिक्षा संस्थानों/राज्य शै० अ० और प्र० परिषदों के निदेशकों का वार्षिक सम्मेलन 7 से 9 मार्च 1983 तक राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान, नई दिल्ली में हुआ। इसमें राज्य शिक्षा संस्थानों/राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषदों के निदेशकों/उनके वरिष्ठ प्रतिनिधियों ने भाग लिया। प्रतिभागियों ने अपनी-अपनी वार्षिक रिपोर्टें पेश कीं तथा निम्नलिखित कार्यक्रमों को अपनाने के बारे में बातचीत की :

—स्कूल स्तर पर तथा अध्यापक-शिक्षा स्तर पर सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों को अपनाना, तथा

—विकलांगों की समन्वित शिक्षा।

अध्यापक-शिक्षकों के लिए कार्यक्रम संबंधी गोष्ठी

इस कार्यक्रम को लागू करने का उद्देश्य नवाचारीय कार्यक्रमों को बढ़ावा देना तथा अध्यापक-शिक्षकों को अपने काम में प्रयोगों से प्राप्त अनुभवों तथा अध्ययन से प्राप्त विचारों को लिखने के लिए प्रेरित करना है, ताकि अध्यापक-शिक्षा के विभिन्न पक्षों की

शैक्षिक समस्याओं का अध्ययन हो सके और उन्हें दूसरे अध्यापक-शिक्षकों तक पहुँचाया जा सके। भारत के अध्यापक-शिक्षा संस्थानों के समन्वयकों, अध्यापक-शिक्षकों तथा प्रिंसिपलों से लेख आमंत्रित किए जाते हैं। नवें अखिल भारतीय सेमिनार रीडिंग प्रोग्राम (1982-83) के मुकाबिले में आए अध्यापक-शिक्षकों के लेखों का 22 और 23 फरवरी 1983 को मूल्यांकन किया गया। माध्यमिक अध्यापक-शिक्षकों के 9 और प्राथमिक अध्यापक-शिक्षकों के 7 लेखों को पुरस्कार के लिए चुना गया। पुरस्कृत लेखों पर विचार हेतु पुरस्कार प्राप्त-कर्त्ताओं की एक बैठक राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान, नई दिल्ली में 24 से 26 मार्च 1983 तक हुई। प्रत्येक को 500 रु० नकद और एक मेरिट सर्टिफिकेट दिया गया और 25 मार्च 1983 को सबको दिल्ली के आस-पास के शैक्षिक तथा ऐतिहासिक स्थानों की सैर कराई गई।

अध्ययन

"प्राथमिक अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों में सामाजिक संबद्धता तथा उनकी कार्य-कुशलता से उसका संबंध" विषय पर एक अध्ययन पूरा किया गया।

निम्नलिखित अध्ययन चल रहे हैं :

—माध्यमिक अध्यापक शिक्षा संस्थानों में प्रवेश के लिए उपकरणों का विकास।

—स्व-धारणा, अभिवृत्ति और समायोजन का अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जन-जातियों के विद्यार्थी-अध्यापकों और अन्य जातियों के विद्यार्थी-अध्यापकों की उपलब्धियों के साथ संबंध।

— प्रारम्भिक विद्यालय पद्धति में शहरी और ग्रामीण पृष्ठभूमि में अध्यापकों का तुलनात्मक अध्ययन।

—भारत में अध्यापक का स्थान।

—समुदाय के साथ काम करने के लिए मूल्यांकन उपकरणों का विकास।

—अध्यापक-शिक्षा कार्यक्रम के विकास की दृष्टि से समुदाय के साथ काम करने संबंधी प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षकों के काम का अध्ययन।

—माध्यमिक अध्यापक शिक्षा संस्थानों के लिए नियमों का निर्माण।

—विभिन्न प्रबंधों के अधीन संस्थानों में अध्यापक तैयारी के निजी खर्च का माध्यमिक और प्राथमिक दोनों स्तरों पर, सापेक्ष अध्ययन— शिक्षा के आर्थिक पहलू का प्रवृत्तिगत अध्ययन।

—कार्यकुशलता-आधारित विद्यार्थी-शिक्षा तथा शिक्षण-आदर्श आधारित विद्यार्थी-शिक्षा का विद्यार्थी-अध्यापकों की शिक्षण में कुशलता पर प्रभाव।

प्रकाशन

जो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं उनके नाम हैं—'टीचिंग ऑफ साइंस इन सेकंडरी स्कूल्स', 'कोर टीचिंग स्किल्स— माइक्रोटीचिंग अप्रोच'। निम्नलिखित पुस्तकें तैयार की जा रही हैं :

—करीकुलम एंड इवेल्युएशन (फॉर सेकंडरी टीचर ट्रेनीज)

—एजुकेशनल साइकोलोजी (फॉर सेकंडरी टीचर ट्रेनीज)

—कांटेंट-कम-मैथोडोलोजी ऑफ टीचिंग मैथेमेटिक्स फॉर सेकंडरी टीचर ट्रेनिंग इंस्टीच्यूशंस

—टीचर एंड एजुकेशन इन द अमर्जिग इंडियन सोसाइटी (सेकंडरी लेवल)

—थर्ड नेशनल सर्वे ऑफ सेकंडरी टीचर एजुकेशन इन इंडिया

—कांटेंट-कम-मैथोडोलोजी ऑफ टीचिंग मैथेमैटिक्स फॉर ऐलिमेंट्री टीचर ट्रेनिंग इंस्टीच्यूशंस

—सामान्य अध्ययन कौशल

निम्नलिखित पुस्तकों की पांडुलिपियाँ तैयार हो चुकी है :

—साईकोलोजी फॉर द ऐलिमेंट्री टीचर (टेक्स्ट बुक फॉर ऐलिमेंट्री टीचर एजुकेशन लैवल)

—स्टडीज़ ऐंड इंवेस्टीगेशंस ऑन टीचर एजुकेशन इन इंडिया (1976-80)

—टीचिंग ऑफ साइंस इन ऐलिमेंट्री स्कूल्स

—इन्नोवेटिव प्रेक्टिसेज़ इन सेकंडरी टीचर एजुकेशन इंस्टीच्यूशंस, वाल्यूम IV

अनुवर्ती शिक्षा के लिए केन्द्र

वर्ष 1982-83 के दौरान विभिन्न राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों में 99 केन्द्र विद्यमान थे। इनमें से हरियाणा के तीन केन्द्र और नगर निगम दिल्ली का एक केन्द्र योजना से निकल गया। शेष में से 70 केन्द्र संतोषजनक रूप से काम कर रहे हैं और बाकी के (तीन हरियाणा और एक दिल्ली का छोड़कर) 25 केन्द्र ठीक प्रकार से काम नहीं कर रहे हैं।

हाल ही में गुजरात में तीन और पश्चिमी बंगाल में चार (पुराने पाँच की जगह पर) केन्द्रों की स्थापना की गई है। परिषद् ने मंडी (हिमाचल प्रदेश) में एक नए केन्द्र की मंजूरी दी है। यह अगले वित्त वर्ष में काम करना शुरू कर देगा।

अब तक विभिन्न राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों के 52 केन्द्रों को अनुदान दिया गया है। केन्द्रों के काम-काज का मूल्यांकन करके रिपोर्ट तैयार कर ली गई है जो अब विचाराधीन है।

राष्ट्रीय अध्यापक-शिक्षा परिषद्

यह परिषद् निम्नलिखित शैक्षणिक समितियों के माध्यम से कार्य करती है—

—स्कूल-पूर्व तथा प्रारम्भिक अध्यापक-शिक्षा समिति।

— माध्यमिक तथा कालिज अध्यापक-शिक्षा समिति।

—शारीरिक रूप से अपंग तथा मानसिक रूप से पिछड़े हुए बच्चों की शिक्षा के लिए विशेष विद्यालयों के शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए समिति।

—राष्ट्रीय अध्यापक-शिक्षा परिषद् की संचालन समिति।

ये समितियाँ वर्ष में एक बार अपनी बैठक करती हैं और इनकी सिफारिशों को संबंधित संस्थानों, विभिन्न राज्यों/संघ क्षेत्रों की एजेंसियों तथा विश्वविद्यालयों को उनकी सूचनार्थ भेज दिया जाता है।

राष्ट्रीय अध्यापक-शिक्षा परिषद् अथवा इसकी समितियाँ कुछ उपसमितियों/कार्यकारी दलों का भी गठन करती हैं जो उनकी सिफारिशों को लागू करने से संबंधित विशिष्ट समस्याओं पर विस्तार से विचार करती हैं।

नीचे के अनुच्छेदों में विभिन्न समितियों द्वारा इस वर्ष किए गए काम की संक्षिप्त रिपोर्ट प्रस्तुत है।

स्कूल-पूर्व तथा प्रारम्भिक अध्यापक-शिक्षा समिति

इस समिति की एक बैठक बँगलूर के क्षेत्रीय सलाहकार के दफ्तर में 29 अक्तूबर 1982 को बुलाई गई। इसमें इस स्तर पर अध्यापक-शिक्षा कार्यक्रमों में मूल्य-अभिमुख शिक्षा को शामिल करने पर विचार किया गया। इस बैठक की रिपोर्ट को अन्तिम रूप दे दिया गया है।

माध्यमिक तथा कालिज अध्यापक-शिक्षा समिति

इस समिति की एक बैठक फरवरी 1983 में हुई। राष्ट्रीय अध्यापक-शिक्षा परिषद् की माध्यमिक तथा कालिज अध्यापक-शिक्षा समिति की एक विशेष बैठक 25 जनवरी 1983 को हुई जिसमें अध्यापक-शिक्षा कार्यक्रम में मूल्यों की शिक्षा के समावेश पर विचार किया गया। इसके द्वारा गठित समितियों और उनके काम का ब्यौरा नीचे दिया गया है।

(क) रा० अ० शि० प० पाठ्यचर्या को लागू करने की समस्या : कार्यकारी दल की एक बैठक 15 सितम्बर 1982 को हुई। इसमें राष्ट्रीय अध्यापक-शिक्षा परिषद् की पाठ्यचर्या के लिए एक पेपर तैयार करने के लिए प्रश्नावली पर बहस हुई। इसमें यह पता

लगाने की कोशिश की गई कि इस पाठ्यचर्या को लागू करने के रास्ते में क्या रुकावटें हैं। इस संबंध में आँकड़े इकट्ठे किए जा रहे हैं।

(ख) भविष्य-अभिमुख अध्यापक-शिक्षा : उपसमिति की एक बैठक 23 सितम्बर 1982 को हुई जिसमें भविष्य-अभिमुख अध्यापक-शिक्षा पर होने वाली राष्ट्रीय गोष्ठी में विचारणीय विषयों का निश्चय किया गया।

(ग) अध्यापक-शिक्षा में पत्राचार कोर्सों की समिति : अध्यापक-शिक्षा में पत्राचार कोर्सों की विकल्प नीति पर विचार करने के लिए उपसमिति की एक बैठक 25 जनवरी 1983 को हुई।

गोष्ठियाँ : "भविष्य-अभिमुख अध्यापक-शिक्षा" विषय पर एक राष्ट्रीय गोष्ठी रा० शै० अ० और प्र० प० के मुख्यालय में 21 से 23 मार्च 1983 तक हुई। इसका मुख्य उद्देश्य शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर तथा आने वाले वर्षों में अध्यापक-शिक्षा की स्थिति पर विचार करना था। इन विषयों पर पेपर पढ़े गए—शिक्षा और समाज : उभरता दृश्य; भविष्य के लिए शिक्षा की तकनीक और पद्धतियाँ; अध्यापक की बदलती तस्वीर; एम० एड० कोर्स का भविष्यत रूप। तीन दलों का गठन किया गया जिनके नाम इस प्रकार हैं—प्राथमिक शिक्षा और प्राथमिक अध्यापक-शिक्षा; माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक शिक्षा और अध्यापक-शिक्षा; तथा स्नातकोत्तर अध्यापक-शिक्षा और शैक्षिक नियोजकों तथा प्रशासकों की तैयारी। इन दलों ने शिक्षा के विभिन्न मुद्दों पर विचार-विमर्श किया, जैसे कि शिक्षा की पद्धति और तकनीक में आवश्यक परिवर्तन जिससे सबको कम खर्चे पर बराबर के शैक्षिक अवसर प्राप्त हो सकें। अन्य मुद्दे ये थे—शिक्षा में तकनीकी निवेश जो वर्तमान शिक्षा पद्धति को प्रबलित कर उसे भविष्य की आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ बना सके; शिक्षाशास्त्रीय पक्ष जो शैक्षिक कर्मियों के प्रशिक्षण के लिए आवश्यक है; अध्यापक-शिक्षा के स्नातकोत्तर कोर्सों के लिए नए निवेश; शैक्षिक नियोजकों तथा प्रशासकों का प्रशिक्षण ताकि भविष्य के लिए शिक्षा का नियोजन और प्रबंधन किया जा सके; तथा नए संघटनात्मक नव परिवर्तन जो वर्तमान औपचारिक पद्धति के लिए आवश्यक हैं।

गोष्ठी ने बहुत-सी सिफारिशें कीं जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं—

(क) शिक्षा संसाधनों से पूरी तरह सम्पन्न केन्द्रों की स्थापना की जाए जहाँ उपलब्ध सुविधाओं का उपयोग स्कूलों के समूह तथा अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाएँ कर सकें।

(ख) आत्म-अधिगम को शिक्षा का महत्वपूर्ण उपकरण बनाना पड़ेगा, विशेषकर 9 से 16 वर्ष के बच्चों के लिए।

(ग) शैक्षिक सुविधाओं को समाज के सभी वर्गों, विशेषकर सुविधा-वंचित वर्गों तक पहुँचाने के लिए, जन संचार साधनों, विशेष तौर पर टी० वी० और रेडियो तथा छपी हुई सामग्री का उपयोग आवश्यक है।

(घ) अध्यापक-प्रशिक्षण संस्थाएँ विद्यार्थी-अध्यापकों का इस प्रकार अनुकूलन करें कि वे समाज की विभिन्न एजेंसियों जैसे पंचायतों तथा अन्य विस्तार-कर्मियों से संबंध स्थापित कर सकें।

(ङ) ऐसी प्रायोगिक परियोजनाओं को लेना चाहिए जो शिक्षा की नई तकनीकें और पद्धतियाँ अपनाती हों।

(च) आत्म-अधिगम तकनीकों का प्रयोग करके अध्यापकों को आवश्यकता-आधृत सेवाकालीन प्रशिक्षण प्राप्त कराया जाए।

(छ) विकलांग बच्चों की शिक्षा के लिए आवश्यक विशेष सामग्री अध्यापकों को उपलब्ध कराई जाए क्योंकि विकलांग बच्चों को भी भविष्य में सामान्य विद्यालयों में ही अधिकाधिक शिक्षा उपलब्ध कराई जानी है।

(ज) स्कूलों को अधिकाधिक स्वतंत्रता दी जानी चाहिए ताकि वे अपनी पाठ्यचर्या का निर्माण और सुधार स्वयं कर सकें।

(झ) बच्चों की रचनात्मक प्रवृत्तियों को बढ़ावा देने के लिए सृजन केन्द्रों की स्थापना की जानी चाहिए।

(ञ) स्कूल में औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों प्रकार की विधियों का प्रयोग होना चाहिए।

(ट) प्रतिभावान व्यक्तियों को शिक्षा व्यवसाय की ओर आकर्षित करने के उद्देश्य से अध्यापकों के लिए एक प्रतिभा खोज योजना शुरू की जानी चाहिए।

(ठ) अध्यापक-शिक्षा के सभी स्तरों पर मूल्यों की शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होना चाहिए।

(ड) स्नातकोत्तर स्तर पर शैक्षिक प्रौद्योगिकी में विशेष कोर्स उपलब्ध कराए जाने चाहिएँ।

(ढ) उत्तम प्रकार की शिक्षण सामग्री के विकास के साथ-साथ खुली पद्धति और ओपन यूनिवर्सिटी पद्धति को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

अध्यापक-प्रशिक्षण पर राष्ट्रीय स्तर के अधिकारियों तथा विशेषज्ञों के लिए और शिक्षा में उत्पादक कार्यों को लाने वाले अन्य शैक्षिक कर्मियों के प्रशिक्षण के लिए यूनेस्को की क्षेत्रीय गोष्ठी

रा० शै० अ० और प्र० प० ने यूनेस्को की सहायता से एशिया और प्रशांत के लिए एक गोष्ठी का आयोजन परिषद् के मुख्यालय में किया जिसमें अफ़गानिस्तान, आस्ट्रेलिया, भूटान, बांग्ला देश, चीन, भारत, इंडोनेशिया, मालदीव, नेपाल, पाकिस्तान तथा थाईलैंड के प्रतिभागियों ने भाग लिया। इसका मुख्य उद्देश्य शिक्षा में उत्पादक कार्य की सन्निविष्टि की समस्याओं को सुलझाना था। कार्यक्रम में यूनेस्को के नीचे लिखे दस्तावेजों का प्रस्तुतीकरण और उन पर विचार-विमर्श शामिल था :

—परिवेश शिक्षा की पाठ्यचर्या को बनाने की विधियाँ।

—परिवेश शिक्षा के शिक्षक को प्रशिक्षित करने की विधियाँ।

—परिवेश शिक्षा में प्राथमिक शिक्षकों तथा निरीक्षकों के सेवापूर्व प्रशिक्षण के लिए मॉड्यूल I।

—प्राथमिक अध्यापकों और निरीक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण के लिए मॉड्यूल II।

—विज्ञान में माध्यमिक स्कूल के अध्यापकों के सेवापूर्व प्रशिक्षण के लिए मॉड्यूल III।

—विज्ञान में माध्यमिक स्कूल के अध्यापकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण के लिए मॉड्यूल IV।

विशेष शिक्षा में अध्यापक-प्रशिक्षण

मानसिक रूप से पिछड़े हुए तथा शारीरिक रूप से अपंग बच्चों के लिए विशेष विद्यालयों के अध्यापकों की तैयारी के लिए गठित समिति की एक बैठक 8 जुलाई 1982 को रा० शै० अ० और प्र० प० के मुख्यालय में हुई। समिति ने परिषद् के लिए निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किए :

(क) परिषद् का कार्य विशेष शिक्षा में अनुसंधान, उसके लिए पाठ्यचर्या और शिक्षण सामग्री के विकास तथा शिक्षण विधि के निर्माण तक सीमित होगा। प्रत्येक क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय को विशेष शिक्षा के एक क्षेत्र में अध्यापक-प्रशिक्षण उपलब्ध कराना चाहिए।

(ख) नेत्रहीनों की शिक्षा के क्षेत्र में प्राथमिकता के आधार पर अनुसंधान किया जाना चाहिए ताकि उन्हें पढ़ाने के लिए उपयुक्त विधियों का विकास किया जा सके। यह सुझाव दिया गया कि रा० शै० अ० और प्र० प० इस कार्यक्रम को धीरे धीरे अपने हाथ में तभी ले जब क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालयों और राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान में इसके लिए उपयुक्त ढाँचा खड़ा हो जाए। इस समिति की सिफारिशों पर निम्नलिखित कार्यकारी दलों का गठन किया गया है : (1) बधिरों के अध्यापक-प्रशिक्षण संस्थानों के लिए मानक तैयार करने के कार्यकारी दल, और (2) नेत्रहीनों के अध्यापक-प्रशिक्षण संस्थानों के लिए मानक तैयार करने के लिए कार्यकारी दल। पहले दल की बैठक अक्तूबर में हुई। इसमें बधिरों के अध्यापक-प्रशिक्षण संस्थानों के लिए पाठ्यचर्या और मानक तैयार किए गए। नेत्रहीनों के अध्यापक-प्रशिक्षण संस्थानों के लिए दूसरे कार्यकारी दल की बैठक निकट भविष्य में होगी।

अध्यापक-शिक्षा के राज्य बोर्ड

अध्यापक-शिक्षा के राज्य बोर्डों का वार्षिक सम्मेलन क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, भोपाल में 29 और 30 जुलाई 1982 को हुआ। इसने यह सिफारिश की कि बी० एड० के ग्रीष्म स्कूल-सह-पत्राचार कोर्सों को क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालयों में बंद कर दिया जाना चाहिए क्योंकि अब कई अन्य विश्वविद्यालयों ने भी इन्हें शुरू कर दिया है और इससे इनका स्तर गिर रहा है। इसने यह सुझाव भी दिया कि विस्तार सेवा केन्द्रों को सेवाकालीन कोर्सों का प्रबंध करने की बजाय स्कूलों का दौरा करना चाहिए, आदर्श शिक्षण का प्रदर्शन करना चाहिए और अध्यापकों को वहीं मार्गदर्शन प्रदान करना चाहिए।

संचालन समिति की दसवीं बैठक

राष्ट्रीय अध्यापक-शिक्षा परिषद् की संचालन समिति की दसवीं बैठक राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान, नई दिल्ली में 10 फरवरी 1983 को हुई। इसमें 12 सदस्यों ने भाग लिया।

क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, अजमेर

यह महाविद्यालय उत्तरी क्षेत्र के राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर तथा उत्तर प्रदेश के राज्यों तथा चंडीगढ़ और दिल्ली के संघ क्षेत्रों की अध्यापक-प्रशिक्षण संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करता है।

प्रवेश संख्या : क्षे० शि० म० ने अपने नियमित बी० एड०, एम० एड०, बी० एस-सी० (आनर्स/पास) बी० एड० प्रथम वर्ष तथा बी० एससी० (आनर्स/पास) बी० एड०, द्वितीय वर्ष कोर्सों में 364 विद्यार्थियों को प्रवेश लेने दिया जिनका ब्यौरा इस प्रकार है—

बी० एड० (विज्ञान)	81
बी० एड० (कृषि)	31

बी० एड० (वाणिज्य)	37
बी० एड० (अंग्रेजी)	32
बी० एड० (हिन्दी)	40
बी० एड० (उर्दू)	32
एम० एड०	17
बी० एससी० (आनर्स/पास) बी० एड० प्रथम वर्ष	73
बी० एससी० (आनर्स/पास) बी० एड० द्वितीय वर्ष	21
	364

ग्रीष्म-स्कूल-सह-पत्राचार कोर्स : बी० एड० में प्रवेश संख्या 148 थी।

परिणाम : उत्तरी क्षेत्र के 232 अप्रशिक्षित अध्यापक चार महीने के शिक्षण और दस महीने के पत्राचार कोर्स के बाद बी० एड० ग्रीष्म-स्कूल-सह-पत्राचार कोर्स की जुलाई 1982 की परीक्षा में बैठे।

विस्तार सेवा विभाग : क्षे० शि० म० का विस्तार सेवा विभाग उत्तरी अंचल के राज्यों द्वारा सुझाए गए और कॉलिज संकाय द्वारा प्रस्तावित, राज्यों की शिक्षा की आवश्यकताओं के आधार पर विस्तार कार्यक्रमों का प्रबंध करता है। 1982-83 के शैक्षणिक सत्र के दौरान निम्नलिखित कार्यक्रम किए गए—

(क) **अंचल के विस्तार सेवा विभागों के अवैतनिक निदेशकों का एक सम्मेलन** राजकीय शिक्षा महाविद्यालय, पटियाला में 14 से 17 अप्रैल 1982 तक हुआ जिसका उद्देश्य राष्ट्रीय अध्यापक-शिक्षा परिषद् द्वारा तैयार किए गए प्रारूप-पाठ्यक्रम में विस्तार सेवा के कार्यक्रमों के विभिन्न पक्षों पर विचार-विमर्श करना था। इस सम्मेलन में 21 अवैतनिक निदेशकों, संसाधन व्यक्तियों और समन्वयकों ने भाग लिया।

(ख) **पाठ-लेखन के लिए प्रमुख व्यक्तियों की एक कार्यगोष्ठी** राजकीय सी० पी० आई०, इलाहाबाद में 19 से 23 अक्तूबर 1982 तक हुई। उसका उद्देश्य पत्राचार पाठों को लिखने के लिए प्रमुख व्यक्तियों को प्रशिक्षण देना था। कुल 40 प्रमुख व्यक्तियों ने इसमें भाग लिया।

(ग) **माध्यमिक विद्यालयों में विज्ञान-शिक्षण पर कार्यगोष्ठी :** क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, अजमेर में 16 से 20 दिसम्बर 1982 तक पुस्तक (एस० टी० ई० पी०) का

-परीक्षण-शिक्षण हुआ। इस कार्यगोष्ठी का उद्देश्य विज्ञान-शिक्षण की इस पुस्तक की सामग्री पर सुझाव प्राप्त करना था। पुस्तक में दिए गए भौतिकी, रसायन शास्त्र तथा जीव विज्ञान के पाठों पर अलग-अलग और सामान्य विज्ञान शिक्षण दोनों पर प्रस्ताव आमंत्रित किए गए। इस कार्यगोष्ठी में 8 अध्यापक-शिक्षकों ने भाग लिया।

(घ) **सहकारी विद्यालयों के अध्यापकों, हैडमास्टरों/प्रिंसिपलों के लिए अनुकूलन सम्मेलन** 28 और 29 दिसम्बर 1982 को कालिज के प्रांगण में हुआ। इसका उद्देश्य कालिज के विद्यार्थी-अध्यापकों का उन सहकारी विद्यालयों के अध्यापकों तथा हैडमास्टरों/प्रिंसिपलों से परिचय कराना था जिनमें उन्हें बाद में शिक्षण अभ्यास कराना था।

(ङ) **माध्यमिक स्तर पर अंग्रेजी व्याकरण की शिक्षा** पर एक कार्यगोष्ठी का आयोजन अध्यापक-शिक्षकों के लिए कालिज में 7 से 12 मार्च 1983 तक किया गया। इसका उद्देश्य प्रतिभागियों को अंग्रेजी व्याकरण शिक्षण की अधुनातन विधियों की शिक्षा देना और माध्यमिक विद्यालयों के लिए शिक्षण सामग्री का विकास करना था।

(च) **अनुसंधान विधि और प्रायोगिक रूपरेखा तैयार करने पर** अध्यापक-शिक्षकों के लिए एक कार्यगोष्ठी का आयोजन 14 से 19 मार्च 1983 तक अम्बाला के सोहनलाल कालिज आफ़ एजूकेशन में किया गया। इस का उद्देश्य प्रतिभागियों को अनुसंधान से संबंधित मूलभूत आँकड़ों से परिचित कराना था। इस कार्यगोष्ठी में 44 अध्यापक-शिक्षकों ने भाग लिया।

(छ) **बुक-कीपिंग और लेखा पद्धति के कुछ क्षेत्रों में वाणिज्य शास्त्र के शिक्षकों का ज्ञान बढ़ाने** के लिए कालिज में एक कार्यगोष्ठी का आयोजन 21 से 26 मार्च 1983 तक किया गया। इसमें प्रतिभागियों को विषय के कुछ जटिल अंशों का ज्ञान प्राप्त कराया गया। इस कार्यगोष्ठी में 43 अध्यापकों ने भाग लिया।

एरिक (शैक्षिक अनुसंधान और नवाचार समिति) परियोजना

"किशोरों में वैज्ञानिक विचारों का विकास और निर्धारण" विषय पर काफी काम आगे बढ़ा। एरिक की इस परियोजना से संबंधित प्रोजेक्ट फ़ेलो ने अपना अनुसंधान-प्रबंध "किशोरावस्था के दौरान चरों का अपवर्जन" पी० एचडी० डिग्री के लिए राजस्थान विश्वविद्यालय को प्रेषित किया। अब तक किया गया सारा काम प्रलेखित रूप में है। दो अन्य अनुसंधान-लेख परिपूर्णता के निकट हैं। ये हैं—किशोर अवस्था के दौरान विज्ञान में तार्किक मनन का विकास, और किशोर अवस्था के दौरान नियंत्रित प्रयोग। एम० एड० स्तर पर भी अपचारी बच्चों के पाइजीटियन उद्देश्यों की खोजबीन करने का अवसर प्राप्त हुआ।

कृषि विभाग

इस विभाग में निम्नलिखित काम हुए :

शिक्षण : नीचे लिखे कोर्सों में नियमित शिक्षण-कार्यक्रम सम्पन्न हुआ—(क) कृषि शिक्षण में विशिष्टीकरण वाला एक-वर्षीय बी० एड० कोर्स; (ख) चार-वर्षीय कृषि अभ्यास युक्त बी० एससी० (आनर्स/पास) बी० एड० के समन्वित कोर्स का द्वितीय वर्ष; (ग) बी० एड० (ग्रीष्म-स्कूल-सह-पत्राचार कोर्स) कृषि ।

अनुसंधान : समुदाय के किसानों तथा कालिज के विद्यार्थियों को लाभान्वित करने के लिए शिक्षण फार्म पर अनुसंधान और प्रदर्शन कार्यक्रम आयोजित किए गए । इस सूखे प्रदेश में सर्दी के मौसम में हरे चारे की खेती का कार्यक्रम बहुत सफल रहा ।

विकास की गतिविधियाँ : चौथे वर्ष के विज्ञान के विद्यार्थियों की शिक्षण आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए शिक्षण-फार्म पर एक फल-उद्यान का विकास किया गया । किचेन गार्डेन, ऑर्नामेंटल गार्डेन और पॉट कल्चर के क्षेत्र में समाजोपयोगी उत्पादक कार्य का ज्ञान फैलाने के लिए कालिज के प्रांगण में एक केन्द्रीय उद्यान नर्सरी का विकास किया गया । नए घास के मैदान और पेड़ पौधे कालिज की सजावट को बढ़ाने के लिए लगाए गए । प्रांगण के विन्यास में नव परिवर्तन वाला सजावट-सुन्दरता का एक गहन कार्यक्रम शुरू किया गया ।

विस्तार की गतिविधियाँ : विद्यार्थियों और कर्मचारियों की व्यावसायिक जानकारी बढ़ाने के लिए कृषि-वैज्ञानिकों के भाषण करवाए गए । विद्यार्थियों और कर्मचारियों के लिए समय-समय पर गोष्ठियों का प्रबंध किया गया । कृषि विभाग के कर्मचारियों ने स्थानीय कृषि ज्ञान केन्द्र के साथ सहयोग किया । यह केन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, उदयपुर का एक भाग है । इसमें किसानों के लिए एक प्रदर्शनी तथा कृषि प्रतियोगिताओं का आयोजन करने में कालिज के कृषि विभाग के कर्मचारियों ने सहयोग दिया । कृषि-शिक्षा की राष्ट्रीय संस्था की पत्रिका "वर्क एक्सपीरियंस ऐंड वोकेश्नल एजूकेशन इन एग्रीकल्चर" के एक अंक का संपादन, प्रकाशन और वितरण भी विभाग के विस्तार कार्यक्रम के अन्तर्गत किया गया ।

विज्ञान विभाग : 1982-83 का शैक्षणिक सत्र चार-वर्षीय बी० एससी० (आनर्स/पास) बी० एड० कोर्स के प्रथम तथा द्वितीय वर्ष की कक्षाओं तथा बी० एड० (विज्ञान) और एम० एड० के एक-वर्षीय नियमित कोर्सों से शुरू हुआ ।

इस सत्र में पहले से चली आ रही दो परियोजनाओं का काम आगे बढ़ा । रसायन शास्त्र की शिक्षा परियोजना पर श्री डी० एन० अग्रवाल और ग्रामीण प्रतिभा छात्रवृत्ति मूल्यांकन परियोजना पर श्री एस० सी० जैन काम कर रहे हैं ।

औरंगाबाद में 9 से 11 दिसम्बर 1982 तक हुई एक अखिल भारतीय विचारगोष्ठी में डा० सी० ए० पी० राव ने परिवेश प्रदूषण विषय पर अपना शोध प्रबंध पढ़ा।

चारों क्षे० शि० म० में चल रहे चार-वर्षीय बी० एससी० बी० एड० कोर्स के लिए एक समान पाठ्यक्रम बनाने के सिलसिले में मैसूर में हुई बैठक में डा० एम० पी० भटनागर ने भाग लिया।

प्राथमिक शिक्षा व्यापक उपागम (केप) परियोजना

इस महाविद्यालय की केप टीम के सदस्यों सर्वश्री एस० एस० श्रीवास्तव, बी० एन० लाल, डा० बी० एस० रायजादा और डा० एच० सी० जैन ने भारत के उत्तरी राज्यों द्वारा आयोजित निम्नलिखित कार्यगोष्ठियों/कार्यक्रमों में संसाधन व्यक्तियों के रूप में भाग लिया।

—'केप और इसके दर्शन' पर कार्यगोष्ठियाँ।

—कैप्सूल्स, मॉड्यूल्स और अधिगम पैकेजेज़ की संकल्पनाओं पर भाषण।

—विशिष्ट स्थानीय समस्याओं के आधार पर कैप्सूल्स और मॉड्यूल्स तैयार करने का व्यावहारिक मार्ग दर्शन।

—अधिगम-सामग्री के पुनर्निवेशन के प्रश्नों तथा उद्देश्यों की संरचना पर भाषण।

—तैयार अधिगम सामग्री की लघु तथा बृहत जाँच की प्रविधि पर भाषण।

—भारत के उत्तरी राज्यों के अध्यापक-शिक्षण संस्थानों तथा राज्य शिक्षा संस्थानों के अध्यापक-शिक्षकों द्वारा 1982-83 में तैयार सामग्री का प्रक्रियन और उसको अन्तिम रूप देना।

क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय भोपाल

भोपाल का क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश राज्यों तथा गोआ, दमन, दीव एवं दादरा और नगर हवेली संघ क्षेत्रों की शिक्षा-आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। यह इन राज्यों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन करता है।

कोर्स : महाविद्यालय निम्नलिखित कोर्सों को चला रहा है :

बी० ए०, बी० एड०	—	चार-वर्षीय समन्वित कोर्स जिसमें अंग्रेजी एक विशिष्ट विषय है।
बी० एससी०	—	चार-वर्षीय समन्वित कोर्स।
बी० एड०	—	एक-वर्षीय भाषा, विज्ञान और वाणिज्य कोर्स।
बी० एड०	—	प्राथमिक शिक्षा।
एम० एड०	—	विज्ञान शिक्षा, अध्यापक-शिक्षा, शैक्षिक प्रशासन और मार्गदर्शन के विशेष कोर्स।
एम० एड०	—	प्राथमिक शिक्षा।
बी० एड०	—	ग्रीष्म-स्कूल-सह-पत्राचार कोर्स।

इन कोर्सों में प्रवेश पाने वाले विद्यार्थियों की संख्या अगले पृष्ठों की सारणी में दी गई है—

भोपाल के क्षे० शि० म० में प्रवेशार्थियों का विवरण

कोर्स का नाम	राज्य/संघ क्षेत्र मध्य प्रदेश सा	मध्य प्रदेश पि	महाराष्ट्र सा	महाराष्ट्र पि	गुजरात सा	गुजरात पि	गोआ सा	गोआ पि	अन्य राज्य/देश	जोड़ सा	जोड़ पि	कुल जोड़	विद्यार्थी जो परीक्षा में बैठे	विद्यार्थी जो परीक्षा में पास हुए
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15
बी० एड० (भाषा)	27	3	11	7	6	—	—	—	—	44	10	54	53	48
बी० एड० (विज्ञान)	19	2	11	4	7	—	1	—	—	38	6	44	39	37
बी० एड० (वाणिज्य)	15	3	11	4	2	1	2	—	—	30	8	38	38	38
बी० एड० (प्राथमिक शिक्षा)	12	2	3	15	4	8	—	—	—	19	25	44	42	41
बी० एससी० बी० एड० (प्रथम वर्ष)	64	4	2	—	—	—	—	—	1	67	4	71	66	54
बी० एससी० बी० एड० (द्वितीय वर्ष)	49	1	1	—	—	—	—	—	—	50	1	51	50	36

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15
बी० ए० बी० एड० (प्रथम वर्ष)	26	1	—	—	—	—	—	—	6	32	1	33	32	26
बी० ए० बी० एड० (द्वितीय वर्ष)	21	3	—	—	—	—	—	—	—	21	3	24	23	21
एम० एड० (प्राथमिक शिक्षा)	5	—	—	—	—	—	—	—	—	5	—	5	3	3
एम० एड०	10	—	—	—	—	—	—	—	—	10	—	10	10	7
बी० एड० (ग्रीष्म-स्कूल-सह-पत्राचार कोर्स)	52	22	62		6	53	11	30	9	—	197	48	245	245	224
जोड़	300	41	101		36	72	20	33	9	7	513	106	619	601	535

नोट : सा—सामान्य वर्ग, पि—पिछड़ा वर्ग।

सत्र के दौरान युगांडा से सात विद्यार्थियों ने महाविद्यालय में प्रवेश प्राप्त किया।

महाविद्यालय को इस बात की चिंता है कि मध्य प्रदेश को छोड़कर अन्य राज्यों तथा संघ क्षेत्रों जैसे महाराष्ट्र, गुजरात और गोआ, दमन, दीव तथा दादरा और नगर हवेली से प्रवेशार्थियों की संख्या बहुत कम रही। अतः इन राज्यों/संघक्षेत्रों से प्रवेशार्थियों को प्रेरित करने के लिए कारगर उपाय किए गए। प्रवेशार्थी विद्यार्थियों की सुविधा के लिए पुणे के क्षेत्रीय सलाहकार के दफ्तर में प्रवेश फ़ार्म उपलब्ध कराए गए। इस उद्देश्य से महाराष्ट्र और गुजरात राज्यों ने अपने-अपने विशेष अधिकारियों को यह काम सौंपा।

विस्तार के कार्यक्रम

नियमित कोर्सों के अतिरिक्त, महाविद्यालय ने वर्ष के दौरान अगले पृष्ठों पर लिखे सेवाकालीन कार्यक्रमों का प्रबंध किया :

भोपाल के क्षे० शि० म० द्वारा आयोजित सेवाकालीन कार्यक्रम

क्रम संख्या	कार्यक्रम का नाम	अवधि	स्थान	प्रतिभागियों की संख्या आमंत्रित	आए
1	2	3	4	5	6
1.	प्राथमिक अध्यापक-शिक्षकों के लिए क्रियाशीलता उपागम में अनुकूलन कार्यक्रम	12 से 17 जुलाई 1982	भोपाल	38	27
2.	प्राथमिक स्तर के लिए अधिगम कार्डों को तैयार करने पर कार्यगोष्ठी	15 से 20 जुलाई 1982	भोपाल	25	19
3.	प्राथमिक अध्यापक-शिक्षकों का कोर प्रशिक्षण कार्यक्रम में अनुकूलन	21 से 30 जुलाई 1982	भोपाल	39	37
4.	मिडिल स्कूल अध्यापक-शिक्षकों के लिए रसायन-शास्त्र के शिक्षण में प्रक्रिया उपागम में अनुकूलन कार्यक्रम	16 से 23 अगस्त 1982	भोपाल	20	16
5.	माध्यमिक विद्यालयों के लिए अध्यापक-शिक्षकों का पाइजेशियन मनोविज्ञान में अनुकूलन	23 से 28 अगस्त 1982	भोपाल	38	13
6.	कक्षा XI के लिए सामाजिक विज्ञानों में शिक्षण सामग्री पर कार्यगोष्ठी	23 अगस्त से 1 सितम्बर 1982	जबलपुर	30	21
7.	गुजरात राज्य के अध्यापकों तथा अध्यापक-शिक्षकों के लिए गुजराती भाषा में लेखन निपुणताओं के विकास पर कार्यगोष्ठी	2 से 7 सितम्बर 1982	बल्लभ विद्यानगर	25	10

1	2	3	4	5	6
8.	'माध्यमिक विद्यालयों में विज्ञान' पुस्तक के परीक्षण पर अध्यापक-शिक्षकों के लिए कार्यगोष्ठी.	22 से 25 फरवरी 1983	भोपाल	44	10
9.	अंचल के मेथड मास्टर्स के लिए प्रदर्शन तथा प्रयोगशाला विधि से जीव विज्ञान शिक्षण पर कार्यगोष्ठी	10 से 17 सितम्बर 1982	भोपाल	44	9
10.	जनसंख्या शिक्षा संकल्पना के लिए भूगोल शिक्षण पर अनुकूलन कार्यक्रम	13 से 18 सितम्बर 1982	भोपाल	32	16
11.	महाराष्ट्र, गुजरात और गोआ के प्रशिक्षण कालिजों के अध्यापकों के लिए शैक्षिक प्रौद्योगिकी में अनुकूलन कार्यगोष्ठी	13 से 22 सितम्बर 1982	नासिक	30	15
12.	महाराष्ट्र राज्य के लिए कक्षा I की बालभारती (उर्दू) की अभ्यास-पुस्तिका के निर्माण पर कार्यगोष्ठी	दस दिन	भोपाल	30	17
13.	प्राथमिक अध्यापक-शिक्षकों के लिए शिक्षण में परिवेश उपागम पर अनुकूलन कार्यक्रम	14 से 19 फरवरी 1983	भोपाल	30	21
14.	गुजरात राज्य के उच्चतर माध्यमिक स्कूलों के अध्यापकों के लिए विज्ञान में कार्यगोष्ठी-सह-अनुकूलन कोर्स	7 से 14 मार्च 1983	बल्लभ विद्यानगर	49	44
15.	गुजरात राज्य के अध्यापक-शिक्षकों के लिए गुजराती काव्य की शिक्षण पद्धतियों में नवपरिवर्तनों तथा नई प्रविधियों पर कार्यगोष्ठी	18 से 23 मार्च 1983	भोपाल	25	6

उपरोक्त विस्तार कार्यक्रमों के अतिरिक्त राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान के विभिन्न विभागों द्वारा कालिज में आयोजित कार्यक्रमों में कालिज संकाय ने भाग लिया ।

अपंगों की शिक्षा के लिए अध्यापकों और अध्यापक-शिक्षकों के प्रशिक्षण के कार्यक्रमों की योजना बनाई जा रही है और शिक्षा के इस क्षेत्र की ओर कालिज विशेष रूप से ध्यान दे रहा है ।

अनुवर्ती शिक्षा केन्द्र

इस अंचल के अनुवर्ती शिक्षा केन्द्रों को आवश्यक सहायता और मार्गदर्शन प्रदान किया गया । इन केन्द्रों के कर्मियों के लिए विशेष रूप से निम्नलिखित कार्यक्रम आयोजित किए गए ।

क्रम संख्या	कार्यक्रम का नाम	प्रतिभागियों की संख्या
1.	'शिक्षा में नेतृत्व' विषय पर माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के अनुवर्ती शिक्षा केन्द्रों के प्रधानाचार्यों तथा वरिष्ठ संसाधन व्यक्तियों का अनुकूलन ।	32
2.	अनुवर्ती शिक्षा केन्द्रों के संसाधन व्यक्तियों के लिए भौतिकी/रसायन शास्त्र/जीव विज्ञान में प्रैक्टिकल्स; राष्ट्रीय प्रतिभा खोज कार्यक्रम; प्रायोगिक परियोजनाओं के लिए रूपरेखा तथा दृश्य-श्रव्य साधनों में अनुकूलन कार्यक्रम ।	19

वर्ष के दौरान जो सेवाकालीन कार्यक्रम आयोजित किए गए, राज्यों के अनुसार उनकी संख्या निम्नलिखित सारणी में दी गई है ।

क्रम संख्या	राज्य/संघ क्षेत्र	कार्यक्रमों की संख्या	आमंत्रित व्यक्ति	भाग लेने वालों की संख्या	व्यक्ति-कार्य-दिवस (i) अभीष्ट लक्ष्य	(ii) जितना पूरा हुआ
1.	मध्यप्रदेश	4	124	77	924	578
2.	महाराष्ट्र	1	30	27	300	270
3.	गुजरात	3	99	60	692	458

4.	गोआ, महाराष्ट्र और गुजरात के लिए विशेष	3	110	56	780	456
5.	क्षेत्रीय	6	235	122	1566	808
	कुल जोड़	17	598	322	4262	2570

परियोजनाएँ

विभिन्न विषय-क्षेत्रों में कालिज ने निम्नलिखित परियोजनाओं को हाथ में लिया—

क्रम संख्या	परियोजना का नाम	मुख्य अन्वेषक/अन्वेषक
1	2	3
1.	प्राथमिक स्तर पर परिवेश उपागम की परिपूर्ति के लिए शिक्षण निपुणताओं और प्रशिक्षण नीति के निर्धारण पर अनुसंधान अध्ययन	डा० जे० एस० राजपूत
2.	रचनात्मक मनन को बढ़ावा देने के लिए तथा इसकी प्रभावकारिता का पता लगाने के लिए शिक्षण सामग्री का विकास	प्रोफेसर एस० एन० त्रिपाठी
3.	जीव विज्ञान के अध्यापकों के लिए एक दीपिका बनाने के लिए ताजे पानी में जीवन का अध्ययन	डा० (श्रीमती) चन्द्र लेखा रघुवंशी
4.	औपचारिक विद्यालयों तथा अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों के विद्यार्थियों की उपलब्धियों में साम्यता का पता लगाने के लिए उपकरणों और प्रविधियों का विकास	डा० जे० एस० राजपूत
5.	अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों के लिए शिक्षण सामग्री का विकास तथा शिक्षण निपुणताओं का पता लगाना	डा० जे० एस० ग्रेवाल
6.	मध्य प्रदेश के जीव विज्ञान शिक्षकों के लिए संसाधन सामग्री का उत्पादन करने के लिए भोपाल में पाए जाने वाले पेड़-पौधों का अध्ययन	डा० पी० के० खन्ना

1	2	3
7.	मध्य शैशव में पाइजीशियन कांक्रीट आपरेशनल ग्रुपमेंट्स का अध्ययन	श्री ए० सी० पचौरी
8.	पश्चिमी क्षेत्र में पत्राचार कोर्स के द्वारा अध्यापक-प्रशिक्षण (बी० एड० डिग्री) का अध्यापकों की ऊर्ध्व गतिशीलता पर प्रभाव—एक सापेक्ष अध्ययन	डा० डी० सी० उप्रेती
9.	पश्चिमी क्षेत्र में अध्यापक-शिक्षा के वर्तमान स्तर का अध्ययन	डा० जे० एस० राजपूत
10.	भोपाल के मिडिल और प्राइमरी स्कूलों के सामाजिक विज्ञान के अध्यापकों के लिए गुणात्मक सुधार कार्यक्रम	श्री० एस० सी० सक्सेना (ई० टी० सेल)

अकादमिक कार्यक्रम

समन्वित शिक्षण में सुधार के लिए महाविद्यालय प्रति सप्ताह दो घंटे लगाता है। इस कार्यक्रम में महाविद्यालय संकाय के सभी सदस्य सम्मिलित होते हैं।

अकादमिक उपलब्धियाँ

(1) भोपाल विश्वविद्यालय ने श्रीमती सरला राजपूत को उनके शोध प्रबंध "राज्य प्रशासन में मुख्य मंत्री की भूमिका—मध्यप्रदेश का एक वृत्त अध्ययन" पर उन्हें पीएच० डी० डिग्री प्रदान की।

(2) श्रीमती ए० ग्रेवाल को उनके शोध प्रबंध "बुद्धि, रचनात्मकता और सामाजिक-आर्थिक स्तर के संबंध में परिकल्पना करने और परिकल्पना जाँच की योग्यताओं का अध्ययन" के लिए पीएच० डी० की डिग्री प्रदान की गई।

कैम्पस से बाहर की अकादमिक गतिविधियाँ

(1) वनस्पति विज्ञान विभाग में रीडर, डा० पी० के० खन्ना ने "युवकों द्वारा विद्यालय से बाहर की वैज्ञानिक गतिविधियों" से संबंधित मुख्य व्यक्तियों की क्षेत्रीय कार्यगोष्ठी में भाग लिया, जो 24 अगस्त से 2 सितम्बर 1982 तक बैंक्कॉक में हुई। इस कार्यगोष्ठी को थाईलैंड की विज्ञान सोसाइटी ने विकास के लिए शैक्षिक नवाचार के एशियाई केन्द्र (यूनेस्को) के सहयोग से प्रवर्तित किया।

(2) भारत-सोवियत सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रम 1981-82 के अंतर्गत डा० जे० एस० राजपूत, प्रिंसिपल, ने भारतीय सांस्कृतिक दल के सदस्य के रूप में रूस की दो सप्ताह की यात्रा सितम्बर 1982 में की।

(3) डा० जे० एस० राजपूत और डा० जे० एस० ग्रेवाल ने अक्तूबर 1982 में टॅरोंटो, कैनाडा में हुए "मानव-परिवेश-प्रभाव पर अन्तर्राष्ट्रीय विश्व सम्मेलन" में भाग लिया और इसमें अपना निबंध "भारत में परिवेश-शिक्षा में वर्तमान शैक्षिक अनुसंधान कार्यक्रम" पढ़ा ।

(4) वाणिज्य विभाग के डा० यू० एस० प्रसाद और श्री आर० एन० नामादे ने वाणिज्य शिक्षा पर एशियाई सम्मेलन के सिलसिले में जापान और थाईलैंड का दौरा किया ।

प्रदर्शन विद्यालय

सन् 1982-83 के लिए विभिन्न कक्षाओं की प्रवेश संख्या और परिणाम स्थिति नीचे दी गई है :

कक्षा	परीक्षा में बैठने वाले विद्यार्थियों की संख्या	परीक्षा में पास होने वाले विद्यार्थियों की संख्या	प्रतिशत
I	82	राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के नीति निर्णय के अनुसार सब विद्यार्थियों को उत्तीर्ण किया गया	
II	78		
III	72		
IV	75		
V	81	62	76%
VI	82	71	86%
VII	80	60	75%
VIII	60	57	93%
IX	67	51	76%
X	55	47	85%
XI	20	18	90%
XII	20	16	80%

व्यावसायिक विकास

विद्यालय के सात अध्यापकों ने राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् तथा कोयम्बतूर के रामकृष्ण शिक्षा महाविद्यालय द्वारा आयोजित गोष्ठियों/कार्यगोष्ठियों और कोर्सों में भाग लिया । विद्यालय के आठ अध्यापक विभिन्न विषयों में पीएच० डी० के लिए पंजीकृत हैं ।

प्रथम अन्तर-प्रदर्शन-विद्यालय प्रतियोगिता

विद्यालय के 25 विद्यार्थियों ने विभिन्न कार्यक्रमों में भाग लिया और उनमें से 24 ने इनाम जीते। समग्र रूप से उनका प्रदर्शन दूसरे नंबर पर आया।

क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, भुवनेश्वर

इस वर्ष क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, भुवनेश्वर ने नियमित अध्यापक-प्रशिक्षण कार्यक्रमों के द्वारा 940 विद्यार्थी-अध्यापकों तथा शिक्षकों को प्रशिक्षित किया। विभिन्न अल्पकालीन प्रशिक्षण कोर्सों के माध्यम से 74 अध्यापकों और अध्यापक-शिक्षकों को भी अनुकूलित किया गया। महाविद्यालय से संबद्ध प्रदर्शन विद्यालय ने प्राथमिक कक्षाओं से लेकर +2 स्तर तक 956 विद्यार्थियों को उत्तम शिक्षा उपलब्ध कराई।

सेवापूर्व के प्रशिक्षण कार्यक्रम

कुशल शिक्षकों का एक ऐसा दल तैयार करने के लिए जो स्कूल शिक्षा में अभीष्ट सुधार ला सके, महाविद्यालय निम्नलिखित नियमित कोर्स चला रहा है जो उड़ीसा के उत्कल विश्वविद्यालय द्वारा मान्यता प्राप्त हैं :

(क) +2 स्तर के विद्यार्थियों के लिए चार-वर्षीय बी० एससी० (आनर्स) बी० एड० तथा बी० ए० (आनर्स) बी० एड० डिग्री के समन्वित कोर्स।

(ख) कला, विज्ञान और वाणिज्य के स्नातकों तथा स्नातकोत्तरों के लिए एक-वर्षीय बी० एड० (माध्यमिक) डिग्री कोर्स।

(ग) कला और विज्ञान में स्नातकों और स्नातकोत्तरों के लिए एक-वर्षीय बी० एड० (प्रारम्भिक) डिग्री कोर्स।

(घ) शिक्षा में स्नातकों के लिए एक-वर्षीय एम० एड० डिग्री कोर्स।

(ङ) विज्ञान स्नातकों के लिए दो-वर्षीय एम० एससी० (लाइफ़ साइंस) एड० डिग्री कोर्स।

नीचे दी गई दो सारणियों में दिखाया गया है कि 1981-82 में विश्वविद्यालय परीक्षा में महाविद्यालय का परिणाम कैसा रहा और 1982-83 में कितने छात्रों ने विभिन्न कोर्सों में प्रवेश प्राप्त किया :

सारणी-1

विश्वविद्यालय परीक्षा 1981-82 में महाविद्यालय के परिणाम

क्रम संख्या	कोर्स का नाम	प्रवेशार्थियों की संख्या	विश्वविद्यालय परीक्षा के परिणाम					
			परीक्षा में बैठे	प्रथम श्रेणी	द्वितीय श्रेणी	तृतीय श्रेणी	कुल उत्तीर्ण	प्रतिशत
1.	बी० एड०	180	175	2	118	—	120	68.6%
2.	एम० एड०	32	31	अभी विश्वविद्यालय ने परिणाम प्रकाशित नहीं किया।				
3.	एम० एससी० (लाइफ़ साइंस)		30					
4.	बी० एससी० (आनर्स) प्रथम वर्ष	80	70	—	—	—	40	57%
5.	बी० ए० (आनर्स) प्रथम वर्ष	60	48	—	—	—	48	100%

सारणी-2

1982-83 में विभिन्न कोर्सों में प्रवेश पाने वाले विद्यार्थियों की संख्या

क्रम संख्या	कोर्स का नाम	प्रवेश पाने वाले विद्यार्थियों की संख्या
1	2	3
1.	बी० एससी० बी० एड० प्रथम वर्ष	84
2.	बी० एससी० बी० एड० द्वितीय वर्ष	55
3.	बी० ए० बी० एड० प्रथम वर्ष	32
4.	बी० ए० बी० एड० द्वितीय वर्ष	45

1	2	3
5.	एक-वर्षीय बी० एड० (विज्ञान) माध्यमिक	96
6.	एक-वर्षीय बी० एड० (कला) माध्यमिक	72
7.	एक-वर्षीय बी० एड० (वाणिज्य)	20
8.	एक-वर्षीय बी० एड० (विज्ञान) प्राथमिक	8
9.	एक-वर्षीय बी० एड० (कला) प्राथमिक	12
10.	एम० एड०	24
11.	एम० एससी० एड० (लाइफ़ साइंस) प्रथम वर्ष	20
12.	एम० एससी० एड० (लाइफ़ साइंस) द्वितीय वर्ष	21
	कुल	469

सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम

इन कार्यक्रमों को सेवारत अध्यापकों की कुशलता बढ़ाने की दृष्टि से किया जाता है। ये दो प्रकार के हैं—(क) ग्रीष्म-स्कूल-सह-पत्राचार कोर्स, तथा (ख) विस्तार कार्यक्रम।

(क) ग्रीष्म-स्कूल-सह-पत्राचार कोर्स : यह कोर्स खासकर उन स्नातक अथवा स्नातकोत्तर अप्रशिक्षित अध्यापकों के लिए है जिनके पास उत्तरी अंचल के किसी मान्यता-प्राप्त प्राथमिक/मिडिल/उच्च/उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में कम-से-कम पाँच वर्ष पढ़ाने का अनुभव हो। यह कोर्स प्रशिक्षणार्थियों को उत्कल विश्वविद्यालय की बी० एड० डिग्री दिलवाता है। इस कोर्स में इम्फाल के उप-केन्द्र सहित 451 अध्यापकों को प्रवेश दिया गया।

(**ख**) **विस्तार कार्यक्रम** : अध्यापकों तथा अध्यापक-शिक्षकों को अनुकूलित करने के लिए महाविद्यालय ने 4 से 20 दिन के पाँच अल्पकालीन कोर्सों का आयोजन किया ताकि उन्हें विषय और पद्धति के अधुनातन विकास से अवगत कराया जा सके जिससे वे कक्षा के शिक्षण को अधिक रोचक और प्रभावशाली बनाने में समर्थ हों। इन कार्यक्रमों से पूर्वी अंचल के 74 अध्यापकों को लाभ हुआ। इन कार्यक्रमों का ब्यौरा नीचे दिया गया है :

विस्तार सेवा कार्यक्रम (1982-83)

क्रम संख्या	कार्यक्रम का नाम	प्रतिभागियों का विवरण	तारीखें और अवधियाँ	प्रतिभागियों की संख्या
1.	समाजोपयोगी उत्पादक कार्य पर कार्यगोष्ठी	समाजोपयोगी उत्पादक कार्य में माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापक	18.1.83 से 24.1.83 (7 दिन)	7
2.	अध्यापक-शिक्षकों के लिए अनुसंधान पद्धति	माध्यमिक अध्यापक-शिक्षक	1.12.82 से 15.12.82 (15 दिन)	14
3.	असाधारण बच्चों की शिक्षा	प्राथमिक अध्यापक-शिक्षक	1.2.83 से 19.2.83 (19 दिन)	16
4.	हिन्दी में भाषा-विज्ञान और भाषा-शिक्षण	माध्यमिक प्रशिक्षण विद्यालयों के हिन्दी अध्यापक	20.11.82 से 25.11.82 (6 दिन)	26
5.	इनसेट फिल्म उत्पादन (उड़ीसा) के लिए ग्रामीण पृष्ठभूमि के विषयों के प्रतिपादन पर कार्यगोष्ठी	विज्ञान तथा मानविकी पढ़ाने वाले प्राथमिक शिक्षक	26.11.82 से 29.11.82 (4 दिन)	11

विशेष कार्यक्रम

महाविद्यालय ने 5 जुलाई 1982 से 20 अगस्त 1982 तक सात सप्ताह का गणित में क्षेत्रीय प्रशिक्षण कोर्स का आयोजन यूनेस्को की ओर से किया । इस कोर्स के मुख्य उद्देश्य थे, गणित के पाठ्यक्रमों का सम्पन्नीकरण तथा इन पाठ्यक्रमों को विद्यालय पाठ्यचर्या में लागू करना, विशेषकर तकनीकी और व्यावसायिक विद्यालयों में ।

माध्यमिक, तकनीकी और व्यावसायिक स्कूलों के 20 अध्यापकों तथा अफ़गानिस्तान, बांग्लादेश, भूटान, लाओस, मालदीव और जापान के निरीक्षकों और गणित पाठ्यचर्या नियोजकों ने इस कोर्स में भाग लिया । भारत सरकार द्वारा संस्तुत ग्रामीण प्रतिभा खोज योजना पर अध्ययन पूरा कर लिया गया और इसकी रिपोर्ट भेज दी गई ।

बहूद्देशीय प्रदर्शन विद्यालय

महाविद्यालय के साथ एक बहूद्देशीय प्रदर्शन विद्यालय संबद्ध है । यह विद्यालय कालिज के विभिन्न अध्यापक-शिक्षा कोर्सों में प्रविष्ट विद्यार्थी-अध्यापकों के लिए शिक्षण-अभ्यास के स्कूल के रूप में काम करता है । विद्यालय में शिक्षण की संशोधित विधियों और नवाचारीय पद्धतियों का अभ्यास किया जाता है । विद्यालय सेन्ट्रल बोर्ड ऑफ़ सेकंडरी एजूकेशन, दिल्ली से संबद्ध है । विद्यालय में 1981-82 के सत्र में विद्यार्थियों की कुल संख्या 1023 थी ।

विद्यालय में विद्यार्थियों की संख्या

वर्ष	कक्षाएँ													कुल
	के.जी.	I	II	III	IV	V	VI	VII	VIII	IX	X	XI	XII	
1981-82	28	79	78	79	80	117	83	79	117	108	89	52	34	1023
1982-83		78	79	72	67	93	109	83	78	104	115	50	49	967

विद्यालय के परिणाम

(अखिल भारतीय माध्यमिक/उच्चतर माध्यमिक/सीनियर परीक्षाएँ)

वर्ष	परीक्षा	परीक्षा में बैठे	पास हुए
1975-76	अखिल भारतीय उच्चतर माध्यमिक परीक्षा, 1976	48	47
1976-77	अखिल भारतीय उच्चतर माध्यमिक परीक्षा, 1977	74	68
1976-77	अखिल भारतीय माध्यमिक परीक्षा, 1977	65	65
1977-78	अखिल भारतीय माध्यमिक परीक्षा, 1978	67	64
1978-79	अखिल भारतीय माध्यमिक परीक्षा, 1979	80	77
1978-79	अखिल भारतीय सीनियर परीक्षा, 1979	50	44
1979-80	अखिल भारतीय माध्यमिक परीक्षा, 1980	75	75
1979-80	अखिल भारतीय सीनियर परीक्षा, 1980	46	43
1980-81	अखिल भारतीय माध्यमिक परीक्षा, 1981	75	73
1980-81	अखिल भारतीय सीनियर परीक्षा, 1981	36	34
1981-82	अखिल भारतीय माध्यमिक परीक्षा, 1982	88	82
1981-82	अखिल भारतीय सीनियर परीक्षा, 1982	34	26
1982-83	अखिल भारतीय माध्यमिक परीक्षा, 1983	88	87
1982-83	अखिल भारतीय सीनियर परीक्षा, 1983	34	30

क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, मैसूर

सेवा-पूर्व के कार्यक्रम

महाविद्यालय ने पहले से चले आ रहे निम्नलिखित सेवा-पूर्व कोर्स 1982-83 में भी जारी रखे ।

(1) **एम० एससी० एड० गणित/भौतिकी/रसायन शास्त्र** : ये चार-सिमेस्टर वाले स्नातकोत्तर कोर्स 1974 में शुरू किए गए थे । इनका इस प्रकार विकास किया गया है कि इनसे सुयोग्य अध्यापकों का एक ऐसा दल तैयार हो सके जो न केवल स्नातकोत्तर स्तर पर

अपने विषय के विशेषज्ञ हों, अपितु विषय का संबंधित शिक्षा-शास्त्रीय पक्ष से समन्वय कर उसे और प्रभावकारी बना सकें। इस प्रकार के नवाचारीय कोर्सों को स्वीकारने की अपनी ही कठिनाइयाँ होती हैं। परन्तु इसके बावजूद, महाविद्यालय द्वारा प्रशिक्षित अध्यापकों को स्नातकोत्तर अध्यापक/प्राध्यापक के रूप में नौकरी के अच्छे अवसर मिले हैं और आगे उच्च स्तर की पढ़ाई के भी अवसर अच्छे रहे हैं।

(2) **एम० एड० :** यह दो सिमेस्टर का कोर्स है। इसका पाठ्यक्रम मैसूर विश्वविद्यालय के एम० एड० कोर्स के समान है और इसमें प्राथमिक शिक्षा आदि में विशेषज्ञता प्राप्त करने का प्रावधान है। शिक्षा-सत्र 1983-84 से शैक्षिक प्रौद्योगिकी और शैक्षिक प्रशासन की विशेषज्ञताओं वाले कोर्स को इस कोर्स में मिलाकर शुरू करने की मंजूरी भी मैसूर विश्वविद्यालय ने दे दी है।

(3) **बी० एससी० एड० :** यह एक आठ सिमेस्टर का समन्वित कोर्स है जिसमें बी० एससी० के अतिरिक्त बी० एड० स्तर का शिक्षा-शास्त्रीय कोर्स है। यह कोर्स विज्ञान और गणित के अध्यापक तैयार करता है। इस कोर्स को बी० एससी०, बी० एड० डिग्रियों के बराबर माना गया है और इसे एसोसिएशन ऑफ़ इंडियन यूनिवर्सिटीज तथा अन्य कई संस्थाओं से अध्यापक की नौकरियों के लिए तथा उच्च शिक्षा के लिए मान्यता प्राप्त है।

बी० ए० एड० : यह एक आठ सिमेस्टर का संशोधित कोर्स है जिसे बी० एससी० के कोर्स की तरह ही 1981-82 में संशोधित किया गया। यह कोर्स अंग्रेजी और इतिहास के अध्यापक तैयार करता है।

बी० एड० ग्रीष्म-स्कूल-सह-पत्राचार कोर्स : यह कोर्स दक्षिणी अंचल के अप्रशिक्षित माध्यमिक अध्यापकों को प्रशिक्षित करने के लिए 1966 में शुरू किया गया था। यह उद्देश्य अब लगभग पूरा हो चुका है। इस कोर्स में 1982-83 में प्रवेश पाने वालों की संख्या नीचे की सारणी में दी गई है :

1982-83 में महाविद्यालय में प्रवेश पाने वालों की संख्या

कोर्स	स्वीकृत संख्या	वर्ष I	II	III	IV
1	2	3	4	5	6
एम० एससी० एड० (रसायन शास्त्र)	20	22*	14	—	—

1	2	3	4	5	6
एम० एससी० एड० (गणित)	20	13	13	—	—
एम० एससी० एड० (भौतिकी)	20	13	13	—	—
एम० एड०	20	19	—	—	—
बी० एड० (माध्यमिक)	140	123	—	—	—
बी० एड० (प्राथमिक)	20	16	—	—	—
बी० एड० (ग्रीष्म-स्कूल-सह-पत्राचार कोर्स)	250	203	—	—	—
बी० एससी० एड०	60	58	46	54	47
बी० ए० एड०	30	31	19	—	—

*मैसूर विश्वविद्यालय ने 25 स्थानों तक भर्ती की अनुमति दे दी है ताकि 20 स्थान भरे रहें।

विश्वविद्यालय परीक्षा अप्रैल 1982 के परिणाम

मैसूर विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित परीक्षाओं में महाविद्यालय के परिणाम कोर्स के अनुसार नीचे दिए गए हैं :

1982 के परीक्षा परिणाम

कोर्स	परीक्षा में बैठे	पास हुए	दुबारा बैठेंगे
1	2	3	4
एम० एससी० एड० (रसायन शास्त्र) प्रथम वर्ष	14	14	—
एम० एससी० एड० (रसायन शास्त्र) द्वितीय वर्ष	18	17	1
एम० एससी० एड० (गणित) प्रथम वर्ष	13	9	4
एम० एससी० एड० (गणित) द्वितीय वर्ष	15	13	2

1	2	3	4
एम० एससी० एड० (भौतिकी) प्रथम वर्ष	16	6	10
एम० एससी० एड० (भौतिकी) द्वितीय वर्ष	19	10	9
एम० एड०	17	15	2
बी० एड० (माध्यमिक) विज्ञान/गणित	70	63	7
बी० एड० (माध्यमिक) अंग्रेजी/इतिहास	36	33	3
बी० एड० (प्राथमिक)	17	17	—
बी० एड० (एस० एस० सी० सी०)	220	183	37
बी० एससी० एड० प्रथम वर्ष	48	31	17
बी० एससी० एड० द्वितीय वर्ष	54	43	11
बी० एससी० एड० तृतीय वर्ष	47	36	11
बी० एससी० एड० चतुर्थ वर्ष	50	44	6
बी० ए० प्रथम वर्ष	22	14	8

जैसा कि दिख रहा है, कुछ विद्यार्थी पहली बार में ही सभी विषयों में पास नहीं हो सकते। इसका मतलब उनका फेल होना नहीं है। सिमेस्टर योजना पर चलाए जा रहे इन कोर्सों के अनुबंध के अनुसार, विद्यार्थियों को उपचारीय शिक्षण देकर उन्हें कुछ कोर्सों में परीक्षा देने का अवसर दिया जाता है ताकि वे अन्ततः कोर्स को पास करने में सफल हो जाएँ। ये कोर्स इस प्रकार के हैं कि विद्यार्थियों को विभिन्न विषयों में उच्च स्तरीय व्यावसायिक योग्यता प्राप्त करनी होती है अतः उन्हें अपने आप को इन कोर्सों की आवश्यकताओं के अनुसार ढालने में कुछ समय लगता है। परन्तु जैसे-जैसे वे पहले वर्ष से आगे बढ़ते हैं, उनमें अधिकाधिक सुधार दिखता है।

सेवाकालीन कार्यक्रम

महाविद्यालय ने दक्षिणी अंचल के अध्यापकों के लिए सेवाकालीन कार्यक्रम आयोजित किए। इनके आधार निम्नलिखित थे :

(i) राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा विकसित पाठ्यचर्या और शिक्षा नीति का कार्यान्वियन पक्ष।

(ii) अंचल के शिक्षा विभागों द्वारा प्रस्तावित कार्यक्रम ।

(iii) महाविद्यालय की संकाय द्वारा विद्यालय-शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी संकल्पनाओं के आधार पर संरचित कार्यक्रम ।

मैसूर विश्वविद्यालय के बी० एड० के पाठ्यक्रम को राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् के निर्देशों के अनुसार संशोधित किया जा रहा है। मैसूर विश्वविद्यालय की प्रार्थना पर विश्वविद्यालय से संबद्ध शिक्षा महाविद्यालयों का एक सम्मेलन 7 और 8 अप्रैल 1982 को क्षेत्रीय महाविद्यालय, मैसूर में हुआ जिसमें 29 प्रिंसिपलों और अध्यापक-शिक्षकों ने भाग लिया । इस सम्मेलन में क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, मैसूर द्वारा राष्ट्रीय अध्यापक-शिक्षा परिषद् के पाठ्यक्रम के कार्यान्वयन से अर्जित अनुभव उपलब्ध कराया गया ।

इस कार्यक्रम के अनुवर्तन के रूप में तथा बी० एड० के पाठ्यक्रम को अन्तिम रूप देने के लिए, महाविद्यालय ने 27 से 29 मार्च 1983 तक प्रिंसिपलों के एक और सम्मेलन का आयोजन किया । बँगलूर, कर्नाटक और गुलबर्गा सहित मैसूर और मेंगलूर विश्वविद्यालयों से संबद्ध शिक्षा महाविद्यालयों के 25 प्रिंसिपलों ने इसमें भाग लिया ।

शिक्षण में इंटर्नशिप अध्यापक-शिक्षा का महत्वपूर्ण पक्ष है । सहकारी विद्यालयों के अध्यापकों और प्रधानाचार्यों को इसमें अनुकूलित करने के लिए उनका और महाविद्यालय की संकाय का एक सम्मेलन, इंटर्नशिप शुरू होने से पहले आयोजित किया गया । इस सम्मेलन के दौरान प्रतिभागियों को शिक्षण और मूल्यांकन में निष्पक्षता अपनाने, विद्यार्थियों-के शिक्षण के मूल्यांकन और सहकारी स्कूलों की भूमिका में अनुकूलित किया गया । अध्यापक शिक्षकों तथा महाविद्यालय की संकाय के द्वारा प्रदर्शन पाठों का प्रबंध किया गया ।

एक इंटर्नशिप-पूर्व सम्मेलन : इस महाविद्यालय में 12 से 14 जुलाई 1982 तक बी० एससी० बी० एड० में इंटर्नशिप शिक्षण कार्यक्रम आयोजित किया गया । इसमें सहकारी स्कूलों के 22 प्रधानाचार्यों और अध्यापकों ने भाग लिया ।

महाविद्यालय की संकाय के लिए **मूल्यांकन पर एक अनुकूलन-सह-पुनश्चर्या** का आयोजन महाविद्यालय में 7 से 9 जुलाई 1982 तक किया गया । इसमें संकाय के 50 सदस्यों ने भाग लिया ।

महाविद्यालय में 22 से 26 नवम्बर 1982 तक कर्नाटक में **अंग्रेजी के विषय निरीक्षकों के लिए अंग्रेजी शिक्षण में आधुनिक प्रवृत्तियाँ** विषय पर एक अनुकूलन कार्यक्रम आयोजित किया गया । प्रतिभागियों को अनुकूलित करने के अतिरिक्त, अंग्रेजी शिक्षण के निरीक्षण पर एक प्रोफ़ार्मा भी तैयार किया गया ।

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, तमिलनाडु के निदेशक की प्रार्थना पर महाविद्यालय में 3 से 7 जनवरी 1983 तक एक कार्यगोष्ठी का आयोजन किया गया ।

इसका विषय था विकासशील समाज में अध्यापक-शिक्षा, प्राथमिक अध्यापक-शिक्षकों के लिए शैक्षिक मनोविज्ञान और शिशु अध्ययन में टेस्ट आइटम्स की तैयारी और मूल्यांकन । इसमें 21 अध्यापक-शिक्षकों ने भाग लिया ।

केरल के आयुक्त और विशेष शिक्षा सचिव के अनुरोध पर महाविद्यालय ने राज्य के कक्षा I से X तक के **विज्ञान और गणित पाठ्यक्रम का पुनरावलोकन** 14 से 23 फरवरी 1983 तक किया । एक संशोधित पाठ्यक्रम का प्रारूप आगे विचार के लिए तैयार कर उसका अनुमोदन किया गया । इसमें महाविद्यालय की संकाय को केरल और तमिलनाडु के 15 विशेषज्ञों ने सहायता दी ।

पिछले वर्ष आयोजित पारिवारिक जीवन शिक्षा पर क्षेत्रीय गोष्ठी के अनुवर्त्ती कार्यक्रम के रूप में एक कार्यगोष्ठी का आयोजन महाविद्यालय ने 24 से 27 फरवरी 1983 तक किया जिसमें प्राथमिक, माध्यमिक और स्नातकोत्तर स्तरों पर अध्यापक-प्रशिक्षण कार्यक्रमों में पारिवारिक जीवन शिक्षा में अध्ययन कोर्स और पाठ्यक्रम को अन्तिम रूप दिया गया । इसमें 13 अध्यापक-शिक्षकों ने भाग लिया ।

लघु-शिक्षण देश में अध्यापक-प्रशिक्षण कार्यक्रमों का एक महत्वपूर्ण अंग बनता जा रहा है । केरल के राज्य शिक्षा संस्थान ने राज्य के प्राथमिक अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों में इसको अपनाने का निर्णय किया था । उनके अनुरोध पर प्राथमिक अध्यापक शिक्षकों के लिए लघु-शिक्षण में एक अनुकूलन कोर्स का आयोजन 7 से 11 मार्च 1983 तक रामवर्मापुरम, त्रिचूर, केरल में किया गया । इसमें 36 अध्यापक-शिक्षकों ने भाग लिया ।

इसी प्रकार का एक कोर्स मैसूर और मैंगलूर विश्वविद्यालयों से संबद्ध शिक्षा महाविद्यालयों तथा कर्नाटक के कुछ प्राध्यापकों के लिए 23 से 25 मार्च 1983 तक महाविद्यालय में हुआ । इसमें 25 अध्यापक-शिक्षकों ने भाग लिया ।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के अध्यापक-शिक्षा विभाग ने माध्यमिक विद्यालयों में विज्ञान-शिक्षण पर एक पाठ्यपुस्तक तैयार की है । इस अंचल के कुछ चुने हुए शिक्षा महाविद्यालयों के अध्यापक-शिक्षकों से इस सामग्री पर पुनर्निवेशन प्राप्त करने की दृष्टि से तथा अगले शिक्षा वर्ष में इसकी जाँच परख करने के लिए एक अनुकूलन कार्यक्रम 8 से 12 मार्च 1983 तक महाविद्यालय में आयोजित किया गया । इसमें आंध्रप्रदेश और तमिलनाडु के 9 अध्यापक-शिक्षकों ने भाग लिया ।

अगले पृष्ठ की सारणी महाविद्यालय द्वारा इस वर्ष में आयोजित सेवाकालीन कार्यक्रमों का एक विहंगम दृश्य प्रस्तुत करती है ।

वर्ष 1982-83 के दौरान आयोजित सेवाकालीन कार्यक्रम

कार्यक्रम	अवधि/तिथियाँ	प्रतिभागियों की संख्या	क्षेत्र
1	2	3	4
मैसूर विश्वविद्यालय से संबद्ध महाविद्यालयों के प्रिंसिपलों का राष्ट्रीय अध्यापक-शिक्षा परिषद् के ढाँचे पर सम्मेलन	2 दिन 7.4.82 से 8.4.82	29	कर्नाटक
बी० एससी० एड० इंटर्नशिप-इन-टीचिंग कार्यक्रम के लिए सहकारी अध्यापकों का इंटर्नशिप-पूर्व का सम्मेलन	3 दिन 12.7.82 से 14.7.82	22	आंचलिक
महाविद्यालय संकाय के लिए मूल्यांकन पर अनुकूलन कार्यक्रम	3 दिन 7.7.82 से 9.7.82	50	क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, मैसूर
कर्नाटक के अंग्रेजी विषय के विषय-निरीक्षकों का अंग्रेजी शिक्षण में आधुनिक प्रवृत्तियों पर अनुकूलन कार्यक्रम	5 दिन 22.11.82 से 26.11.82	16	कर्नाटक
तमिलनाडु के प्राथमिक अध्यापक-शिक्षकों के लिए शैक्षिक मनोविज्ञान और शिशु अध्ययन तथा विकासशील समाज में अध्यापक-शिक्षा पर टेस्ट-आइटम्स की तैयारी और मूल्यांकन पर कार्यगोष्ठी	5 दिन 3.1.83 से 7.1.83	30	तमिलनाडु
सहकारी अध्यापकों का इंटर्नशिप-पूर्व का सम्मेलन	3 दिन 10.1.83 से 12.1.83	50	आंचलिक
केरल राज्य की कक्षा I से X के लिए विद्यालय विज्ञान पाठ्यक्रमों के पुनरावलोकन पर कार्यगोष्ठी	10 दिन 14.2.83 से 23.2.83	15	केरल

1	2	3	4
पारिवारिक जीवन शिक्षा पर पाठ्यक्रमों और कोर्सों को अन्तिम रूप देने और उनका पुनरावलोकन करने के लिए कार्यगोष्ठी	4 दिन 24.2.83 से 27.2.83	13	आंचलिक
विज्ञान-शिक्षण पर एस० टी० पी० पी० सामग्री का परीक्षण प्रयोग करने के लिए दक्षिणी अंचल के अध्यापक-शिक्षकों के लिए विज्ञान-शिक्षण पद्धतियों के लिए विषय-सह-प्रविधि पर अनुकूलन कार्यक्रम	5 दिन 8.3.83 से 12.3.83	9	आंचलिक
केरल के प्राथमिक अध्यापक-शिक्षकों के लिए लघु-शिक्षण पर कार्यगोष्ठी	5 दिन 7.3.83 से 11.3.83	36	केरल
मैसूर और मेंगलूर विश्व-विद्यालयों के अध्यापक-शिक्षकों के लिए लघु-शिक्षण में अनुकूलन कोर्स	3 दिन 23.3.83 से 25.3.83	23	कर्नाटक
मैसूर विश्वविद्यालय के बी० एड० के पाठ्यक्रम का संशोधन करने के लिए कार्यगोष्ठी	3 दिन 27.3.83 से 29.3.83	31	कर्नाटक

चल रही अनुसंधान-परियोजनाएँ

निम्नलिखित अनुसंधान परियोजनाओं पर काम चल रहा है :

—स्कूल विज्ञान में पाठ-गतिक संरचना और अधिगम निष्कर्षों का संबंध। डा० जी० राजू

—माध्यमिक स्कूलों में भौतिकी के शिक्षण में कमियों के क्षेत्रों का पता लगाना और उनको दूर करने के उपायों की तलाश करना। डा० सोमनाथ दत्त

—अंग्रेजी में समझ के साथ तेज पढ़ने की विधि की खोज और उसका कार्यान्वयन ।	श्रीमती लक्ष्मी आराध्या
—घरेलू स्तर पर उपलब्ध घटकों, सुविज्ञता तथा ज्ञान के आधार पर उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों/जूनियर कालिजों के लिए एक प्रतिरूप भौतिकी प्रयोगशाला का डिज़ाइन तैयार करना ।	डा० ए० एन० महेश्वरी
—स्कूल जीव विज्ञान के लिए कार्यक्रमबद्ध संसाधन सामग्री का विकास ।	श्री आर० के० भरतिया
—भौतिकी संसाधन सामग्री की तृतीय पुस्तक ।	भौतिकी संकाय
—पिएजे का बौद्धिक विकास स्तर और इसका माध्यमिक स्कूलों के पाठ्यचर्या विषय से संबंध ।	डा० जी० राजू
—संस्था (क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, मैसूर) में एक सहकारी उपचारीय केन्द्र का प्रायोगिक मॉडल ।	श्री बी० फालाचन्द्र मार्गदर्शन परामर्शक
—क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय (क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, मैसूर) के कार्यक्रमों की ग्राह्यता, अभिज्ञता और प्रभाव ।	डा० एस० दंडपाणि डा० डी० एस० बाबू

शैक्षिक प्रौद्योगिकी संबंधी गतिविधियाँ

महाविद्यालय के उत्साही कर्मियों की एक टीम द्वारा बनाए गए कुछ शैक्षिक खेलों को विभिन्न राज्यों के परियोजना समन्वयकों के सामने नई दिल्ली में 24 से 28 अगस्त 1982 तक आयोजित एक कार्यगोष्ठी में प्रदर्शित किया गया । इस महाविद्यालय में शैक्षणिक खेलों के क्षेत्र में सक्रिय रूप से भाग लेने वालों के नाम ये हैं— डा० एम० एस० मुरारी राव, डा० के एन० तांत्री, डा० पी० सी० ईपेन, डा० जी० राजू, डा० एन० बी० बद्रीनारायण, श्री एस० राघवेन्द्र भट्ट और श्री पी० वी० सत्यनारायण मूर्ति । इन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान, नई दिल्ली में आयोजित शैक्षिक खेलों की कार्यगोष्ठी में भाग लिया जो 29 और 30 अगस्त 1982 को हुई ।

शैक्षणिक सामग्री को अधिक सम्पन्न बनाने के लिए लघु-शिक्षण पर तथा पी० एस० एस० सी० और सी० एच० ई० एम० पाठ्यचर्याओं पर आधारित भौतिकी और रसायन विज्ञान से संबंधित शैक्षिक फिल्मों को खरीदा गया । अपने विद्यार्थियों और स्टाफ के लिए एक माइक्रो-कम्प्यूटर ट्रेनर भी प्राप्त कर लिया गया है ।

केप परियोजना संबंधी गतिविधियाँ

केप टीम ने 10 से 19 जून 1982 तक अधिगम उपाख्यानों को तैयार करने की प्रणाली पर एक प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन किया। इसमें भाग लेने वाले महाविद्यालय के बहूद्देश्यीय प्रदर्शन विद्यालय के अध्यापक थे।

तमिलनाडु की अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाओं के विद्यार्थियों द्वारा तैयार किए गए अधिगम उपाख्यानों को संसाधित और परिमार्जित करने के लिए मद्रास में 20 से 26 जून 1982 तक एक कार्यगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें केप टीम के एक सदस्य डा० जी० राजू ने एक संसाधन व्यक्ति के रूप में काम किया।

आंध्र प्रदेश की अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाओं के विद्यार्थी-अध्यापकों तथा अध्यापक-शिक्षकों द्वारा तैयार किए गए अधिगम उपाख्यानों का पुनः संसाधन और विषय सम्पादन हैदराबाद में 1 से 7 जुलाई 1982 तक हुई एक कार्यगोष्ठी में किया गया। इस में श्री पी० वी० सत्यनारायण मूर्ति ने एक संसाधन व्यक्ति के रूप में काम किया।

महाविद्यालय की केप टीम के सदस्यों ने मैसूर में 20 से 24 सितम्बर 1982 तक हुई एक कार्यगोष्ठी में संसाधन व्यक्तियों के रूप में भाग लिया। इस कार्यगोष्ठी में पहले तैयार किए गए उपाख्यानों का पुनरावलोकन किया गया और उन्हें अन्तिम रूप दिया गया। इस कार्यगोष्ठी में आंध्र प्रदेश के केप टीम के सदस्यों और अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाओं के अध्यापक-शिक्षकों ने भाग लिया।

क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, मैसूर की केप टीम के सदस्यों ने अधिगम उपाख्यानों को तैयार करने की प्रणाली पर एक प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन किया। इससे महाविद्यालय के एक-वर्षीय बी० एड० (प्राथमिक) के विद्यार्थी लाभान्वित हुए। कार्यक्रम 20 से 24 नवम्बर 1982 तक चला।

केप टीम के सभी सदस्यों ने राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान, नई दिल्ली में 20 से 24 अगस्त 1982 तक आयोजित एक बैठक में भाग लिया। इसमें राज्यों की केप परियोजनाओं की प्रगति का पुनरावलोकन किया गया। यह बैठक राज्यों की केप परियोजनाओं के समन्वयकों के लिए रखी गई थी।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् तथा राज्यों के कार्यक्रमों में संकाय का सहयोग

डा० एम० एस० मुरारी राव, डा० सी० शेषाद्रि तथा श्री एच० के० वेंकटरंगाचार्य ने राज्य स्तर के तीन दिन के एक सम्मेलन में भाग लिया। इसका आयोजन कर्नाटक के अध्यापक-शिक्षक संघ ने 18 से 20 फरवरी 1983 तक किया था।

फरवरी 1983 के प्रथम सप्ताह में उसमानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद में आयोजित वार्षिक सम्मेलन में डा० एस० दंडपाणि, रीडर (शिक्षा) ने एक पेपर पढ़ा, जिसका विषय था **शैक्षिक प्रविधि की संकल्पना** ।

श्री एन० एन० प्रहलाद, प्राध्यापक (शिक्षा) ने क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, मैसूर में 18 से 22 मार्च 1982 तक अखिल भारतीय प्राथमिक शिक्षक फेडरेशन के पदाधिकारियों के लिए एक पेपर प्रस्तुत किया जिसका विषय था प्राथमिक स्तर पर पाठ्यचर्या-निर्माण और उसका कार्यान्वियन ।

डा० वी० के० सत्यनारायण, प्राध्यापक (हिन्दी) ने मादीकेरी जिले के हिन्दी अध्यापकों के लिए एक कार्यगोष्ठी में संसाधन व्यक्ति के रूप में भाग लिया । इसका विषय था हिन्दी शिक्षण की विधि । इसका आयोजन राजकीय जूनियर कालिज, मादीकेरी में किया गया ।

माध्यमिक स्तर के लिए जनसंख्या शिक्षा पर एक अध्यापक-संदर्शिका तैयार करने के लिए डी० एस० ई० आर० टी० बँगलूर ने दो कार्यगोष्ठियों का आयोजन किया—पहली उडुपी में 15 और 16 सितम्बर 1982 को और दूसरी शिमोगा में 10 और 11 नवम्बर 1982 को । इन कार्यगोष्ठियों में कन्नड़ के प्राध्यापक श्री एस० राघवेंद्र भट्ट ने भाग लिया ।

डा० ए० एन० महेश्वरी, प्रोफेसर (भौतिकी) ने भारत सरकार के परमाणु ऊर्जा विभाग के तत्त्वावधान में छठी हाई एनर्जी फिजिक्स विचारगोष्ठी का आयोजन किया । यह क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, मैसूर में 6 से 11 दिसम्बर 1982 तक हुई । इसमें भारत और विदेशों के 150 भौतिक विज्ञानियों ने भाग लिया ।

वनस्पति विज्ञान में रीडर, श्री आर० के भरतिया ने रा० शै० अ० और प्र० प० द्वारा नई दिल्ली में आयोजित दो कार्यगोष्ठियों में भाग लिया । पहली कार्यगोष्ठी अक्तूबर 1982 में हुई और दूसरी 31 मार्च से 8 अप्रैल 1983 तक । इन गोष्ठियों का विषय स्कूलों में जीव विज्ञान पढ़ाने के लिए योग्यताओं की पहचान करना था ।

श्री वी० कृष्ण कुमार ने रा० शै० अ० और प्र० प० द्वारा तिरुपति में आयोजित एक प्रशिक्षण कार्यक्रम में भाग लिया जो वाणिज्य के व्यावसायिक अध्यापकों के लिए किया गया था ।

अकादमिक तथा अन्य उपलब्धियाँ

रसायन शास्त्र की पाठ्यचर्या और शिक्षण सामग्री पर एक क्षेत्रीय परिरूप कार्यगोष्ठी में महाविद्यालय के प्रिंसिपल डा० ए० के० शर्मा ने एक संसाधन व्यक्ति के रूप में भाग लिया । यह गोष्ठी यूनेस्को द्वारा ज्योंबाइ नेशनल यूनिवर्सिटी, ज्योंजू, साउथ कोरिया में आयोजित की गई थी ।

इंटरनेशनल सेंटर ऑफ़ थ्योरेटिकल फिजिक्स, त्रीस्ते, इटली ने डा० ए० एन० महेश्वरी, प्रोफेसर (भौतिकी) और विज्ञान, टेक्नोलोजी के विभागाध्यक्ष को रिसर्च एसोसिएटशिप प्रदान की।

बड़ौदा विश्वविद्यालय के सेंटर ऑफ़ एडवांस्ड स्टडी इन एजूकेशन (सी० ए० एस० ई०) ने शिक्षा विभाग के रीडर डा० सी० शेषाद्रि को विज़िटिंग फेलो के रूप में पाँच भाषण देने के लिए आमंत्रित किया।

कर्नाटक सरकार ने गणतंत्र दिवस के अवसर पर शिक्षा विभाग में रीडर डा० एस० एल० भैरप्पा को साहित्यिक पुरस्कार प्रदान किया।

प्राणि विज्ञान में रीडर, डा० जी० राजू यूनेस्को के सलाहकार मिशन के अन्तर्गत मालदीव गए।

डा० एन० बी० बद्रीनारायण, लेक्चरर (गणित), ने क्योटो, जापान में आयोजित सोरोबेन शिक्षा पर एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में भाग लिया।

तेलुगु में लेक्चरर, श्री पी० वी० सत्यनारायण मूर्ति को तिरुतन्नि में उनकी नाट्य-वादन प्रस्तुति पर उन्हें "नाट्यवादन कलाप्रापूर्ण" की उपाधि से विभूषित किया गया।

श्री के० पी० शंकरन, लेक्चरर (मलयालम) को केरल साहित्य अकादमी ने साहित्यिक पुरस्कार से सम्मानित किया।

श्री एन० एन० प्रहलाद, लेक्चरर (शिक्षा) को यूनाइटेड राइटर्स एसोसिएशन ने ऐक्सीलेंस इन जर्नलिज्म का पुरस्कार प्रदान किया।

महाविद्यालय का पुस्तकालय

पुस्तकालय के सदस्यों में 947 विद्यार्थी और 295 कर्मचारी हैं। इस वर्ष कुल 24,905 पुस्तकें इशू की गईं जिसके अनुसार 71 पुस्तकें प्रतिदिन दी गईं। ऐसा अनुमान है कि 78,723 विद्यार्थी पुस्तकालय में आए और लगभग 2,17,225 पुस्तकें पुस्तकालय के अन्दर इस्तेमाल की गईं। इस प्रकार प्रति दिन की औसत 790 पुस्तकें निकलती हैं।

पुस्तकालय में विभिन्न विषयों की पुस्तकों और पत्रिकाओं का एक बहुत बड़ा भंडार है। इस वर्ष 28,095.68 रुपये मूल्य की 1839 पुस्तकें और खरीदी गईं। इस तरह अब पुस्तकों की कुल संख्या 48,217 हो गई है और उनका मूल्य लगभग 9,17,927.03 रुपये बैठता है।

पिछले वर्ष की तरह इस वर्ष भी पुस्तकालय ने 127 पत्रिकाएँ मँगाई जिनका मूल्य 29,094.00 रुपये था जबकि पिछले वर्ष यह मूल्य 27,000.00 रुपये था। इसके अतिरिक्त पुस्तकालय में 20 पत्रिकाएँ उपहार के रूप में आती हैं। पुस्तकालय 12 समाचार पत्र और 21 अन्य पत्रिकाएँ सामान्य पाठकों के पढ़ने के लिए भी खरीदता है जिनका मूल्य लगभग 4,500.00 रुपये आता है।

प्रदर्शन विद्यालय, मैसूर

स्कूल के लिए 1982-83 का वर्ष चहल-पहल और व्यस्तता का वर्ष था। बड़ी संख्या में सहपाठ्यक्रमीय गतिविधियाँ, जो अब विद्यालय का वार्षिक अंग बन गई हैं, इस बार अन्तर उच्च विद्यालय कन्नड़ वादविवाद प्रतियोगिता से 19 अगस्त 1982 को शुरू हुई। इस में 20 विद्यालयों ने भाग लिया। शील्ड के विजेता टी नर्सीपुर के बहूद्देश्यीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थी रहे। दूसरे नंबर पर सेंट मेरी स्कूल के विद्यार्थी रहे और कप उन्हें मिला। हमारी स्कूल की टीम ने केलेगल में कन्नड़ वादविवाद प्रतियोगिता में शील्ड जीती। हमारे विद्यार्थियों ने **अंग्रेजी वाद-विवाद प्रतियोगिता** में रामकृष्ण विद्यालय से भी शील्ड जीती। अंग्रेजी और कन्नड़ वाद-विवाद की विभिन्न प्रतियोगिताओं में, जो स्थानीय विद्यालयों ने आयोजित कीं; हमारे विद्यार्थियों ने कई व्यक्तिगत कप जीते।

इस वर्ष पहली बार उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के लिए विद्यालय में वाद-विवाद और मोनो एक्टिंग प्रतियोगिताएँ आयोजित की गईं।

रामकृष्ण विद्यालय और भगिनी सेवा समाज ने सामान्य ज्ञान प्रतियोगिताएँ आयोजित कीं। उन दोनों में हमारे विद्यार्थियों ने शील्ड जीतीं। अक्तूबर के महीने में कर्नाटक विज्ञान परिषद् ने निबंध, गोष्ठी, सामान्य ज्ञान तथा प्रश्नोत्तरी में प्रतियोगिताएँ आयोजित कीं। हमारे विद्यार्थियों ने सभी प्रतियोगिताओं में अपनी वरीयता दिखाई, बहुत से व्यक्तिगत इनाम जीते तथा सामान्य ज्ञान की प्रतियोगिता में शील्ड जीती।

अन्तर-विद्यालय संगीत प्रतियोगिता स्कूल में आयोजित की गई और इसकी अवधि एक दिन और बढ़ानी पड़ी क्योंकि स्थानीय स्कूलों से भाग लेने वालों की संख्या अभूतपूर्व थी।

वन्य-प्राणी सप्ताह सितम्बर मास में मनाया गया। इसमें चित्रकला, निबंध लेखन, प्रदर्शनियाँ, प्रश्नोत्तरी तथा गोष्ठियाँ आदि विभिन्न कार्यक्रम रखे गए जिससे स्थानीय विद्यालयों के बच्चे इसमें भाग ले सकें और वन्य-प्राणियों के बारे में अपने ज्ञान को बढ़ा सकें। मैसूर चिड़ियाघर के भ्रमण से विद्यार्थियों को जानवरों के रख-रखाव के बारे में अध्ययन करने का अवसर मिला। नागरहोल की एक दिन की यात्रा और रात वहाँ ठहरने से विद्यार्थियों को जानवरों के बारे में प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हुआ।

शिक्षा सत्र के शुरू में ही श्री टी० एन० गोपालकृष्ण की दुखद मृत्यु के कारण शारीरिक शिक्षा कार्यक्रमों को बहुत बड़ा धक्का लगा। इसके परिणामस्वरूप अन्तर-स्कूल

खेलकूद प्रतियोगिता को रद्द करना पड़ा। फिर भी अन्तर-हाईस्कूल खेलकूद, विवेक कुमार मैमोरियल क्रिकेट टूर्नामेंट और एन० सी० सी० का वार्षिक प्रशिक्षण कार्यक्रम योजनानुसार चला। एन० सी० सी० के कैडेटों के लिए 30 जनवरी 1983 को ट्रेक्किंग अभियान बहुत सफल रहा जो चौमुंडी हिल पर पैदल चढ़ने का अभियान था। अक्तूबर में 6 दिन की अवधि का एक छोटा भ्रमण कार्यक्रम मद्रास और उसके आसपास के स्थानों के लिए रखा गया। दक्षिणी भारत के तटीय किनारों का एक 13-दिवसीय लम्बा कार्यक्रम भी बहुत सफल रहा।

पहला अन्तर-प्रदर्शन-विद्यालय सम्मेलन, जो अब तक एक स्वप्न की तरह था, इस वर्ष वास्तविक रूप ग्रहण कर गया जब 6 दिन के लिए 13 से 18 दिसम्बर 1982 तक चारों विद्यालयों से 25-25 चुने हुए विद्यार्थी मैसूर में मिले। एक छह्-दिवसीय योजना बनाई गई और उसे कार्यान्वित किया गया। हमारे विद्यालय का प्रदर्शन सर्वोत्तम रहा और उसने शील्ड जीत ली। भुवनेश्वर और भोपाल की टीमें दूसरे नंबर पर आई और उन्हें कप प्राप्त हुआ। इस आयोजन की कुछ बातों को अकाशवाणी के युववाणी कार्यक्रम में प्रसारित किया गया। हमारे विद्यालय की उपलब्धियाँ इस बात से स्पष्ट हो जाती हैं कि मैसूर शहर में हमारा स्कूल सर्वोत्तम माना गया और उसने 1982-83 वर्ष की शील्ड जीती। समग्र रूप में 1982-83 का शिक्षा-सत्र विद्यार्थियों की गतिविधियों से भरपूर था और इस वर्ष विद्यार्थी बहुत व्यस्त रहे और उन्होंने बहुत सी प्रतियोगिताओं में भाग लिया।

नीचे की सारणी में कक्षा I से XII तक के परिणामों का ब्यौरा दिया गया है :

कक्षा	विद्यार्थी जो परीक्षा में बैठे	जो विद्यार्थी पास हुए	पास प्रतिशत
I	81	72	89.0
II	84	72	85.7
III	87	77	88.5
IV	86	72	82.5
V	92	82	89.1
VI	87	81	93.0
VII	88	87	98.6
VIII	88	76	86.4
IX	77	67	87.0
X	75	74	98.7
XI	32	25	78.1
XII	7	5	71.4

अध्यापक-शिक्षकों के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षण करने और परीक्षण-अंकों की व्याख्या करने में प्रशिक्षण कोर्स : इस कोर्स का अल्पकालिक उद्देश्य अध्यापक-शिक्षकों में मनोवैज्ञानिक परीक्षण करने, परीक्षण अंकों को लगाने, उनकी व्याख्या करने तथा उनको सम्प्रेषित करने के कौशलों में प्रशिक्षण देना है ताकि वे विद्यार्थियों की मेधा, रुचि और उनके व्यक्तित्व के गुणों को सही-सही समझ सकें। इसका लम्बी-पहुँच का उद्देश्य है—बी० एड० स्तर के सेवा-पूर्व के कोर्सों में मनोवैज्ञनिक परीक्षणों की कुशलताओं का समावेश। यह कोर्स आठ दिनों की अवधि का है और अत्यन्त व्यावहारिक है।

सन् 1982-83 के दौरान, निम्नलिखित कोर्सों का आयोजन किया गया :

राज्य	स्थान	तिथि	प्रतिभागियों की संख्या
असम, मेघालय, नागालैंड, मणिपुर, मिज़ोरम और त्रिपुरा	गौहाटी	1.11.1982 से 11.11.1982	13
उड़ीसा	दिल्ली	27.12.82 से 2.1.83	11
बिहार और मध्य प्रदेश	दिल्ली	21.2.83 से 28.2.83	16

प्राप्त सूचनाओं के अनुसार, कुछ विश्वविद्यालयों ने अपने बी० एड० के कोर्सों में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का समावेश कर लिया है।

माध्यमिक अध्यापक-शिक्षा संस्थानों और राज्य शिक्षा संस्थान/राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के अध्यापक-शिक्षकों के लिए अधिगम और विकास पर सम्पन्नीकरण कोर्स : अध्यापक अनुदेशों पर बल देते हैं और समझते हैं कि सीखने वाला उनसे सीख जाएगा। इसमें संदेह नहीं कि अध्यापक अधिगम-प्रक्रिया के बारे में थोड़ा-बहुत जानते हैं, फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि वे इस तथ्य से अनभिज्ञ हैं कि कक्षा की शिक्षण-अधिगम स्थितियों में अधिगम को कैसे सफल बनाया जाए। इस विषय पर कर्नाटक और आंध्र प्रदेश राज्यों के लिए एक दस-दिवसीय कोर्स 7 से 16 मार्च 1983 तक आयोजित किया गया। इसमें 19 प्रतिभागियों ने भाग लिया।

प्राथमिक अध्यापक-शिक्षा संस्थान/राज्य शिक्षा संस्थान/राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के शैक्षणिक सदस्यों व अध्यापक-शिक्षकों के लिए अधिगम और विकास पर सम्पन्नीकरण कोर्स : बच्चों की अधिगम और विकास प्रक्रिया में प्राथमिक स्कूल शिक्षक की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पर सामान्यतः यह देखा जाता है कि शिक्षक अथवा शिक्षिका को 'रिइनफ़ोर्समेंट' के सिद्धांतों का ज्ञान नहीं होता, जिनकी जरूरत कक्षा संचालन के लिए पड़ती है। अतः शिक्षकों के ज्ञान को बढ़ाने के लिए 6 से 11 वर्ष के बच्चों के अधिगम और विकास की प्रक्रियाओं के बारे में एक कोर्स का आयोजन किया गया। इस में असम, मेघालय, त्रिपुरा, मणिपुर, मिजोरम, नागालैंड और बिहार राज्यों ने भाग लिया। यह कोर्स 4 से 13 अक्तूबर 1982 तक आयोजित किया गया।

प्राथमिक स्तर के अध्यापक-शिक्षकों के लिए विद्यालय-परिस्थितियों में व्यवहार-परिष्करण तकनीक का प्रयोग : इस वर्ष रा० शै० अ० और प्र० प० ने प्राथमिक अध्यापक-शिक्षकों के लिए व्यवहार परिष्करण पर एक कार्यगोष्ठी का आयोजन किया। कार्यगोष्ठी ने प्राथमिक-विद्यालय-परिस्थितियों में व्यवहार परिष्करण के सैद्धांतिक और व्यावहारिक पक्षों पर ध्यान केन्द्रित किया। उद्देश्य यह था कि अध्यापक-शिक्षकों को व्यवहार परिष्करण के सैद्धांतिक और व्यावहारिक पक्षों का परिचय प्राप्त हो सके; वे इसे व्यवहार में लाना सीख सकें और उन्हें कुछ ऐसी तकनीकों का ज्ञान व्यावहारिक रूप से दिया जाए जिन्हें वे अपनी कक्षा में प्रयोग में ला सकें। कक्षा की स्थिति में बच्चों के साथ कुछ व्यावहारिक सत्रों का प्रदर्शन किया गया ताकि अध्यापक-शिक्षक समझ सकें कि किस तरह विद्यालय में समस्याओं से निपटा जाता है। प्राथमिक अध्यापकों के लिए नियोजित कार्यगोष्ठियों की कड़ी में यह तीसरी थी। इस कार्यगोष्ठी में कुल 18 प्रतिभागियों ने भाग लिया जिनमें से 11 बिहार राज्य और 7 मध्य प्रदेश राज्य से आए।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने निम्नलिखित परियोजनाओं को भी हाथ में ले रखा है :

—मनोवैज्ञानिक परीक्षण में संदर्भ सामग्री उपलब्ध कराने की परियोजना;

—मनोविज्ञान शिक्षण के लिए शैक्षणिक सामग्री में सुधार की परियोजना; तथा

—विद्यालय में, घर में तथा साधारण तौर पर समायोजन में मार्गदर्शन उपलब्ध कराने की परियोजना।

राष्ट्रीय परीक्षण विकास पुस्तकालय

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा स्थापित राष्ट्रीय परीक्षण विकास पुस्तकालय चार प्रकार की सेवाएँ प्रदान करता है : (i) एक संदर्भ परीक्षण

पुस्तकालय के रूप में, (ii) मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के लिए एक सूचना केन्द्र के रूप में, (iii) सभी प्रकाशित परीक्षणों का समालोचनात्मक पुनरावलोकन उपलब्ध कराने वाली एजेंसी के रूप में, तथा (iv) परीक्षण विकास में अन्तरालों की पहचान कराने वाली संस्था के रूप में। इसका मार्गदर्शन एक सलाहकार समिति करती है जिसके सदस्य देश के चोटी के साइकोमेट्रीशियन हैं। अब तक पुस्तकालय ने 403 प्रकाशित परीक्षणों को तथा 233 अप्रकाशित परीक्षणों को प्राप्त कर लिया है जिनको पीएच० डी० डिग्री के कार्यक्रम के एक भाग के रूप में बनाया गया था।

पुस्तकालय ने तीन बुलेटिन निकाले, तथा अमेरिकन साइकोलोजिकल एसोसिएशन की अनुमति से "स्टैंडर्ड्स इन एजूकेशनल एंड साइकोलोजिकल टेस्ट्स" का पुनर्मुद्रण किया। यह पुस्तिका टेस्ट तैयार करने में टेस्ट बनाने वालों तथा टेस्ट प्रयोग करने वालों को उनके मूल्यांकन में सहायक सिद्ध होगी।

इस वर्ष की विशिष्टता यह रही कि परीक्षणों का समालोचनात्मक पुनरावलोकन करने के लिए देश के 40 प्रतिशत साइकोमेट्रीशियनों, मनोविज्ञान के प्रोफेसरों और शिक्षा के प्रोफेसरों का सहयोग प्राप्त हुआ। वे राष्ट्रीय महत्व के 30 संस्थानों और विश्वविद्यालयों का प्रतिनिधित्व करते हैं। परीक्षण विकास के क्षेत्र में इनका यह सहयोग और टेस्टों का पुनरावलोकन टेस्टों की गुणवत्ता को सुधारने में वरदान सिद्ध होगा। सम्पादन के बाद, 50 समालोचित टेस्टों को एक मानसिक मापन पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया जाएगा। इन 50 टेस्टों में 29 व्यक्तित्व क्षेत्र में हैं और 21 मेधा क्षेत्र में।

कक्षा XI और XII के लिए मनोवैज्ञानिक प्रयोगों और व्यावहारिक ज्ञान की एक पुस्तिका का विकास

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् दो ऐसी पुस्तिकाएँ तैयार कर रही है जिनमें स्कूल स्तर पर मनोविज्ञान की पाठ्यचर्या में रखे गए प्रयोगों के बारे में संबंधित ज्ञान और मार्गदर्शन का समावेश होगा। इनमें से एक पुस्तिका कक्षा XI की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर तैयार की जा रही है और दूसरी कक्षा XII की। इन पुस्तिकाओं के प्रथम प्रारूप अध्यापकों तथा विषय-विशेषज्ञों की एक कार्यगोष्ठी में पुनरावलोकित किए गए। इनके परिष्कार के लिए प्राप्त सुझावों को इनमें शामिल किया जा रहा है।

कक्षा XI के लिए मनोविज्ञान की पाठ्यपुस्तक

"साइकोलोजी : ऐन इंट्रोडक्शन टु ह्यूमन बीहेवियर" नामक पाठ्यपुस्तक इस वर्ष प्रकाशित की गई। यह पुस्तक +2 स्तर पर मनोविज्ञान की पाठ्यपुस्तक की आवश्यकता की पूर्ति करती है।

मनोवैज्ञानिक सेवाओं का केन्द्र

इस केन्द्र की स्थापना मुख्य रूप से स्कूली बच्चों की समायोजन, अधिगम, व्यक्तित्व तथा कोर्सों के चुनाव से संबंधित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए की गई। अन्ततः यह उन्हें उपचारीय और ज्ञान संबंधी सेवाएँ भी प्रदान करेगा। इस काम के लिए यह केन्द्र विभिन्न उपकरण और सामग्री एकत्रित करने में व्यस्त है। वर्ष के दौरान 7 विद्यार्थियों ने केन्द्र में पंजीकरण कराया जिनमें से 6 को विस्तृत रोग निरूपण के लिए चुना गया।

सीनियर माध्यमिक स्तर पर मनोविज्ञान में आदर्श पाठ्यक्रमों का निर्माण

विभिन्न राज्यों में सीनियर माध्यमिक स्तर पर मनोविज्ञान के पाठ्यक्रमों के विस्तारपूर्वक विश्लेषण की आवश्यकता को महसूस किया गया, ताकि पिछले दो दशकों में मनोविज्ञान के क्षेत्र में आए परिवर्तनों को पाठ्यक्रमों में समाविष्ट किया जा सके। इस उद्देश्य से विभिन्न राज्यों से मनोविज्ञान के पाठ्यक्रमों को एकत्र करने, उनका विश्लेषण करने, सुधार के सुझाव प्रस्तुत करने तथा राज्यों के लिए एक संशोधित और आधुनिक पाठ्यक्रम का प्रारूप तैयार करने की योजना है।

शैक्षिक और व्यावसायिक मार्गदर्शन

दो अध्ययन पूरे किए गए और उनकी रिपोर्टें भेज दी गई। ये हैं—"बी० एड० के पत्राचार कोर्स के विद्यार्थियों की प्रेरणा का अध्ययन" और "केन्द्रीय विद्यालय के विद्यार्थियों पर योग का प्रभाव"।

एक और अध्ययन पहली अप्रैल 1982 से शुरू किया गया। यह है शिलङ् (मेघालय) में और उसके आसपास के हाई स्कूलों के जनजाति के विद्यार्थियों के बारे में शैक्षिक तथा व्यावसायिक नियोजन, शैक्षिक उपलब्धियाँ तथा चुने हुए मनोवैज्ञानिक और घरेलू पृष्ठभूमि के चरों का अध्ययन। सन् 1982-83 में इस अध्ययन पर काम जारी रहा।

मार्गदर्शन प्रयोगशाला, जिसमें व्यावसायिक सूचना केन्द्र भी सम्मिलित है, के विकास का काम इस वर्ष भी जारी रहा।

माध्यमिक विद्यालयों की लड़कियों के लिए मार्गदर्शन कार्यक्रम के विकास का काम शुरू किया गया। इसमें विषय पर ग्रंथ-सूची का विकास और स्कूली लड़कियों की वरीयताओं, समस्याओं, व्यावसायिक तथा शैक्षिक आवश्यकताओं का अध्ययन सम्मिलित है। एक प्रश्नावली का निर्माण किया गया और उसे एक राजकीय विद्यालय की कक्षा IX और X की लड़कियों से भरवाया गया। इस कार्यक्रम के संबंध में कुछ भाषणों का प्रावधान भी इसी विद्यालय के लिए योजना में है।

"सलाहकार प्रशिक्षार्थियों में प्रेषण कौशलों के विकास के लिए लघु परामर्श प्रविधि का उपयोग" पर एक विकासपरक अध्ययन शुरू किया गया है ताकि परामर्श प्रक्रिया में आवश्यक बुनियादी प्रेषण कौशलों को ज्ञात किया जा सके जिससे कौंसलरों को प्रशिक्षण देने के लिए लघु-परामर्श प्रविधि के आधार पर प्रशिक्षण नीति का निर्माण किया जा सके।

"ए हैंडबुक फ़ॉर कैरियर टीचर्स" नामक पुस्तक के विकास का काम भी इसी वर्ष हाथ में लिया गया।

"शैक्षिक और व्यावसायिक मार्ग दर्शन का डिप्लोमा कोर्स" का इस वर्ष इक्कीसवाँ कोर्स था। कुल 33 विद्यार्थियों ने कोर्स पूरा किया। इनमें से तीन विद्यार्थी कर्नाटक और मणिपुर राज्यों तथा दलाईलामा द्वारा प्रतिनियुक्त किए गए थे। शेष 30 विद्यार्थी गैर सरकारी थे और निम्न राज्यों से थे दिल्ली-8, हरियाणा-3, पंजाब-2, चंडीगढ़-1, उत्तर प्रदेश-8, महाराष्ट्र-4, जम्मू एवं कश्मीर-1, केरल-1 और उड़ीसा-1।

इनमें से 7 प्रशिक्षार्थी (पिछले वर्ष के एक सहित) अनुसूचित जाति के थे। इन 7 प्रशिक्षार्थियों सहित 25 प्रशिक्षार्थियों को 250 रुपये महीने प्रति व्यक्ति का वज़ीफ़ा दिया गया। कोर्स में गहन सैद्धान्तिक शिक्षण के अतिरिक्त व्यावहारिक प्रशिक्षण भी शामिल किया गया है ताकि कोर्स को पूरा कर लेने पर प्रशिक्षार्थियों में इतनी योग्यता आ जाए कि वे राज्य स्तर की एजेंसियों को चला सकें अथवा देश के प्रशिक्षण महाविद्यालयों, माध्यमिक अथवा सीनियर माध्यमिक विद्यालयों में काम सँभाल सकें।

नवम्बर-दिसम्बर 1982 में बंगलूर में मार्गदर्शन कोर्सों का आयोजन चर्च ऑफ़ साउथ इंडिया कौंसिल फ़ॉर चाइल्ड केअर के व्यावसायिक मार्गदर्शन अधिकारियों तथा आवासीय एककों के वार्डनों के लिए आयोजित किए गए। राजस्थान और दिल्ली के जिला शिक्षा अधिकारियों के लिए व्यावसायिक मार्गदर्शन में दो अनुकूलन कार्यक्रमों का प्रबंध किया गया। इनमें राजस्थान से 36 और दिल्ली से 18 जिला शिक्षा अधिकारियों ने भाग लिया।

इस वर्ष के दौरान असम के प्रभारी-परामर्शदाता के लिए मार्गदर्शन में एक अल्प अनुकूलन कोर्स उपलब्ध कराया गया। मार्गदर्शन सेवाओं में एक अनुकूलन कार्यक्रम जांबिया के एक अधिकारी को भी प्रदान किया गया। इस अधिकारी को स्कूल मार्गदर्शन सेवाओं के प्रबंध तथा विभिन्न तकनीकों के बारे में आवश्यक जानकारी दी गई।

विद्यालय मार्गदर्शन के उन एककों को मार्गदर्शन और सामग्री प्रदान की गई, जिन्होंने इसकी माँग की।

इस वर्ष के दौरान विश्वविद्यालयों की संकायों के सदस्यों तथा माध्यमिक अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालयों के सदस्यों के लिए मार्गदर्शन में एक रिफ्रेशर कोर्स का प्रबंध किया गया।

सामाजिक सुरक्षा पर एक गोष्ठी में महाविद्यालय संकाय के एक सदस्य ने एक पेपर तैयार किया जिसका विषय था "मनोवैज्ञानिक पिछड़ापन : कारण और परिणाम"। यह गोष्ठी अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली में हुई।

इस वर्ष अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ तथा अनुसंधान, प्रशिक्षण और रोजगार सेवाओं के केन्द्रीय संस्थान, पूसा, नई दिल्ली ने संयुक्त रूप से एशियाई क्षेत्र के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया। इसमें संकाय के एक सदस्य ने "स्कूल स्तर पर व्यावसायिक मार्गदर्शन कार्यक्रम" विषय पर एक पेपर प्रस्तुत किया।

विद्यार्थी मार्गदर्शन सीरीज़ में पहले से तैयार एक हिन्दी पुस्तिका को परिषद् ने प्रकाशित किया, जिसका शीर्षक था "पढ़ने को कैसे सुधारें"। "महिलाओं के व्यावसायिक प्रशिक्षण पर एक अखिल भारतीय गोष्ठी" में संकाय के एक सदस्य ने संसाधन व्यक्ति के रूप में कार्य किया। इस गोष्ठी का आयोजन अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ ने श्रम मंत्रालय के सहयोग से किया।

संकाय के एक सदस्य ने भारत सरकार के योजना आयोग के मानव शक्ति डिवीजन को परामर्श उपलब्ध कराया। उसने राष्ट्रीय स्तर की मार्गदर्शन समिति के उपयोग के लिए दो पेपर प्रस्तुत किए। ये थे—"स्कूलों में मार्गदर्शन और परामर्शदात्री सेवाएँ तथा आत्म-रोजगारिता का विकास" तथा "आत्म-रोजगारिता के लिए मार्गदर्शन"।

संकाय के एक सदस्य ने, मार्गदर्शन और व्यावसायिक सूचना केन्द्र, 1505, साओ पोलो, ब्राजील के शैक्षिक अनुसंधान के समन्वयक, प्रोफेसर फ्रांसिसको मोरेटो को परामर्श प्रदान किया और उन्हें भारत में मार्गदर्शन के क्षेत्र में उन अनुसंधानों और सामग्रियों की जानकारी दी जिन्हें पूरा किया जा चुका है।

स्टाफ़ के एक सदस्य ने अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली के बाल-चिकित्सा विभाग के जिनेटिक एकक को उसकी एक परियोजना के संबंध में परामर्श प्रदान किया। उस परियोजना का शीर्षक है—"सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से वंचित बच्चों पर हस्तक्षेप कार्यक्रम का प्रभाव, विशेषकर उनके व्यक्तित्व और ज्ञानात्मक कारकों के संबंध में"।

एकक ने अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली को एक प्रोफ़ार्मा बनाने में भी सलाह दी जो उनके प्रजनन और मनो-यौन संबंधी सलाहकारिता के विषय में था।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने राष्ट्रीय श्रम संस्थान, नई दिल्ली को उनके एक अध्ययन की रिपोर्ट का मूल्यांकन करने में सहायता दी जिसका विषय था "सुविधा वंचित कामगारों का मानसिक स्वास्थ्य"।

राजस्थान के जिला शिक्षा अधिकारियों के लिए मार्गदर्शन के अनुकूलन कार्यक्रम के मूल्यांकन का काम अनुवर्ती कार्य के रूप में किया गया।

9

शैक्षिक प्रौद्योगिकी और शिक्षण-साधन

अध्ययन-अध्यापन के कार्य कलापों की सहायतार्थ राष्ट्रीय शै० अ० और प्र० प० योजनान्तर्गत तथा योजनेतर सहायक सामग्री का निर्माण करती है। प्रयोगात्मक फिल्मों का निर्माण प्रोटोटाइप के तौर पर किया जाता है। बहु-साधन संवेष्टनों का निर्माण भी किया जाता है। रेडियो तथा टेलीविजन के द्वारा प्रसारण के लिए शैक्षिक कार्यक्रमों का निर्माण भी किया जाता है। केन्द्रीय फिल्म लाइब्रेरी सारे भारत में फैली लगभग दो लाख शिक्षण संस्थाओं को औसतन लगभग 10,000 शैक्षिक फ़िल्में उधार देती है।

कार्यशालाओं/गोष्ठियों/प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों का आयोजन

प्रौढ़ शिक्षा में शैक्षिक प्रौद्योगिकी के अमल पर प्रोटोटाइप सामग्री के निर्माण के लिए 31 मार्च से 5 अप्रैल 1982 तक साक्षरता निकेतन, लखनऊ में एक कार्यशाला का आयोजन किया गया। इस कार्यशाला में प्रौढ़ शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों (भाषा-विज्ञान, लेखन, कला तथा प्रशिक्षण) के लोगों ने भाग लिया। इस कार्यशाला के फलस्वरूप "प्रौढ़ शिक्षण : नई प्रेरक विधियाँ" नामक एक पुस्तक तैयार की गई। बहुसाधन संवेष्टन के अंतर्गत पूर्व प्रकाशित पुस्तक "प्रौढ़ शिक्षण : नई विधि, नई विधा" को अपने प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों में उपयोग के लिए उत्तर प्रदेश सरकार ने अनुकूलन/अपनाने के लिए स्वीकार किया है। इसी पुस्तक के आधार पर राज्य सरकार ने पर्यावरण बोध, व्यावहारिकता, सामाजिक शिक्षा, स्वास्थ्य तथा परिवार कल्याण के प्रतीकों पर एक पोस्टर छापा है।

दूरदर्शन महानिदेशालय, नई दिल्ली के सहयोग से इन्सेट टी० वी० ग्रामों के उपभोक्ता शिक्षकों/संरक्षकों का एक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम आयोजित किया गया। दो चरणों में आयोजित इस पाठ्यक्रम के प्रथम चरण में राज्यों के शिक्षा विभागों के राज्य स्तरीय रिसोर्स व्यक्तियों को टी० वी० के उपयोग में अनुकूलित किया गया। इन प्रशिक्षित रिसोर्स व्यक्तियों से अपेक्षा की जाती है कि वे लोग अपने-अपने राज्यों में ऐसे ही शिविर लगा कर वास्तविक उपभोक्ता शिक्षकों/संरक्षकों के दलों को प्रशिक्षित करेंगे।

22 और 23 जून 1982 को राष्ट्रीय शै० अ० और प्र० प० में हुए प्रशिक्षण शिविर में उड़ीसा के 24 मुख्य व्यक्तियों के दल को टी० वी० सेवाओं के प्रभावी उपयोग के संबंध में अनुकूलित किया गया। इसके तुरंत बाद 25 और 26 जून 1982 को आंध्र प्रदेश के 26 मुख्य व्यक्तियों के लिए प्रशिक्षण कोर्स का आयोजन किया गया। इन प्रशिक्षार्थियों में राज्य शै० अ० और प्र० प० के लेक्चरर और स्कूलों के डिप्टी इंसपेक्टर और हैड मास्टर थे।

राष्ट्रीय शै० अ० और प्र० प० पूर्वी दिल्ली की एक पुनर्वास बस्ती नंदनगरी के बुनकरों के लिए अनवरत शिक्षा की पाठ्यक्रम सामग्री के विकास के लिए एक परियोजना पर कार्य कर रही है। इस परियोजना का मुख्य उद्देश्य है : रँगाई, नमूने डालना, बुनना तथा अन्य आवश्यकता-आधारित हथकरघा-प्रौद्योगिकी के विकास, जैसे तैयार माल को बेचना, सहकारिता तथा वित्त तथा रोजमर्रा के व्यापार के लिए धन प्राप्त करना आदि पर उत्तम प्रशिक्षण सामग्री का विकास करना। इस परियोजना का एक और उद्देश्य पेशेवर समूहों अर्थात बुनकरों की समस्याओं के निवारण के लिए एक 'सिस्टम डिजाइन' का विकास करना भी है।

छह कार्यशालाओं के आयोजन के बाद प्रशिक्षण सामग्री का प्रोटोटाइप तीन पुस्तिकाओं के रूप में विकसित किया गया। ये हैं : (अ) नए रंग नई रेखाएँ, (ब) डिजाइनें और डिजाइनें, (स) बुनकर सहायक। ये पुस्तिकाएँ सरल भाषा और स्वयं-प्रशिक्षण शैली में तैयार की गई हैं। आशा है इनसे हथकरघा-प्रौद्योगिकी की विभिन्न कुशलताओं को प्रोत्साहन मिलेगा।

अशिक्षित और अर्धशिक्षित बुनकरों की एक बड़ी संख्या को ध्यान में रखकर कई कैसेट कार्यक्रमों तथा स्लाइड-टेप कार्यक्रमों का विकास किया गया है।

राष्ट्रीय शै० अ० और प्र० प० डिजाइन के नमूनों की पुस्तक, रंगों के कार्ड, रंग संयोजन आदि के लिए सहायक सामग्री तैयार कर रही है। समस्त बहु-साधन-संवेष्टनों के तैयार हो जाने के बाद, ये नंदनगरी में प्रयुक्त किए जाएँगे। उसके बाद इनका मूल्यांकन भी किया जाएगा।

'डिस्टेन्स लर्निंग' तकनीक की विधियों की डिजाइन तैयार करने तथा उन्हें विकसित करने के लिए राष्ट्रीय शै० अ० और प्र० प० (अ) वर्तमान व्यवस्थाओं के प्रबंधन तथा आयोजन में सुधार, तथा (ब) डिस्टेन्स लर्निंग सामग्री के उत्पादन के लिए कार्मिकों के प्रशिक्षण की दिशा में कार्य कर रही है। इसके लिए राष्ट्रीय परिषद् ने पंजाब विश्वविद्यालय में 'रैस्पोन्स शीट एसाइनमेन्ट' के मूल्यांकन के लिए संदर्शिका के विकास के वास्ते एक पाँच-दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया। इसमें विभिन्न विश्वविद्यालयों के 13 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। उन्होंने कुछ उपयोगी दिशा निदेशक सामग्री तैयार की जिसे सभी सम्बद्ध लोगों को दिखाया जा रहा है।

राजनीतिक विज्ञान, अर्थशास्त्र तथा अंग्रेजी पत्राचार पाठ लेखकों के लिए एक अनुकूलन-पाठ्यक्रम तथा कार्यशाला का आयोजन 3 से 12 नवम्बर 1982 तक पंजाबी विश्वविद्यालय में आयोजित किया गया। सहभागियों को डिस्टेन्स एजूकेशन में लेखन की तकनीकों तथा कुशलताओं के बारे में अनुकूलित किया गया। इन लोगों ने प्रत्येक विषय में कई आदर्श पाठ तैयार किए जिन्हें सभी सम्बद्ध लोगों को दिखाया जा रहा है।

राष्ट्रीय परिषद् ने इम्फाल, मणिपुर में 8 से 22 नवम्बर 1982 तक शैक्षिक रेडियो के 'स्क्रिप्ट राइटरों' के लिए एक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम भी आयोजित किया। इसमें 25 अध्यापकों तथा बाल-साहित्य के लेखकों को प्रशिक्षित किया गया। प्रशिक्षण कार्यक्रम राज्य शिक्षा संस्थान में आयोजित किया गया। इन लेखों पर आधारित रेडियो-कार्यक्रमों के आकाशवाणी के इम्फाल केन्द्र से प्रसारित होने की आशा है।

प्रौढ़ शिक्षा की पठन-पाठन तकनीकों में शैक्षणिक प्रौद्योगिकी के प्रयोग के लिए अध्यापकों के अनुकूलन की एक कार्यशाला का आयोजन जयपुर के आई० जी० जैल के सहयोग से 21 से 26 फरवरी 1983 तक जयपुर में किया गया।

पूर्वी क्षेत्रों के राज्यों के अध्यापक प्रशिक्षकों के लिए राष्ट्रीय परिषद् ने 3 से 16 फरवरी 1983 तक शैक्षिक प्रौद्योगिकी में एक पंद्रह दिवसीय अनुकूलन पाठ्यक्रम का आयोजन क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, भुवनेश्वर में किया । प० बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा के कुल 15 लोगों ने इसमें भाग लिया । सभी प्रतिभागियों को कक्षा-शिक्षण में शैक्षिक प्रौद्योगिकी की परिकल्पना तथा उसके प्रयोग से अवगत कराया गया । उन्हें कार्यक्रम की पठन सामग्री, पत्राचार पाठों की रूपरेखा तैयार करने तथा योजनान्तर्गत तथा योजनेतर प्रौद्योगिकी-सहायक-सामग्री के लेखन तथा संभाल का अभ्यास कराया गया । भाषा प्रयोग-शाला तथा दूरदर्शन केन्द्रों को देखने की व्यवस्था भी की गई । इसके बाद मीडिया (साधन) कार्यक्रमों के उपयोग और मूल्यांकन में प्रतिभागियों का अनुकूलन किया गया ।

प्रौढ़ों, विशेषकर स्त्रियों तथा जनजातियों, की व्यावहारिक कुशलताओं को बेहतर बनाने के निमित्त पठन सामग्री विकसित करने के लिए एक कार्यशाला का आयोजन राँची के जेवियर इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल सर्विसेज में 4 से 8 मार्च 1983 तक किया गया ।

तीन कार्यशालाओं की एक श्रृंखला के फलस्वरूप सात-कुशलता-विकास कार्यक्रमों पर "आमदनी बढ़ाने के धंधे" नामक एक हस्तपुस्तिका बिहार राज्य के प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय के अनुरोध पर तैयार की गई । ये पुस्तिकाएँ मधुमक्खी पालने, साबुन बनाने, फसल काटने, कृत्रिम गर्भाधान कराने, पैपीन निकालने, रेशम के कोयों से सूत कातने, नींबू घास तथा इयूक्लिप्टस से तेल निकालने पर हैं ।

प्रौढ़ शिक्षा के लिए बहु-साधन परियोजना के अन्तर्गत "गाँव से प्रखण्ड तक" नामक एक रिसोर्स पुस्तक राँची क्षेत्र के लिए तैयार की गई । इसमें गाँव तथा ब्लॉक स्तर के कार्य-कर्ताओं की सूची और उनके कामों के बारे में संक्षिप्त विवरण दिया गया है । केन्द्र एवं राज्य सरकारों की कई योजनाओं पर पठन सामग्री भी तैयार की गई है जिससे प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों के शिक्षकों तथा शिक्षार्थियों को लाभ होगा ।

प्रौढ़ शिक्षा के शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए एक संदर्शिका तैयार करने के निमित्त उत्तर प्रदेश सरकार को तथा प्रशिक्षकों द्वारा प्रयोग के लिए पठन-पाठन तकनीकें तैयार करने के निमित्त एक स्लाइड-कम-टेप कार्यक्रम तैयार करने के लिए प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय को परामर्श प्रदान किया गया ।

इन्सैट शैक्षिक दूरदर्शन तथा अन्य कार्यकलाप

उड़ीसा तथा आंध्र प्रदेश के चुने हुए स्कूलों के लिए इन्सैट शैक्षिक दूरदर्शन-सेवा 16 अगस्त 1982 को शुरू हुई । पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार राष्ट्रीय परिषद् द्वारा तैयार किया गया प्रथम दिन का कार्यक्रम प्रसारित किया गया ।

कटक तथा हैदराबाद के दूरदर्शन केन्द्रों से परामर्श करके एकीकृत कार्यक्रमों को अंतिम रूप दिया जा चुका है। 15 अगस्त 1982 से इन्सैट द्वारा प्रसारित किए जाने के लिए कार्यक्रम के केपसूलों को दूरदर्शन के दिल्ली केन्द्र को भेज दिया गया था।

सितम्बर 1982 के प्रारम्भ में इन्सेट-वन-ए की असफलता के कारण दूरदर्शन के दिल्ली केन्द्र से प्रसारण बन्द कर दिया गया। फिर भी राष्ट्रीय परिषद् ने आंध्र प्रदेश तथा उड़ीसा में प्रसारण के लिए कार्यक्रम-कैपसूल दूरदर्शन के हैदराबाद तथा कटक केन्द्रों को भेजना शुरू कर दिया है। वर्तमान में राष्ट्रीय परिषद् द्वारा कार्यक्रम तैयार करके प्रति सप्ताह हैदराबाद तथा कटक प्रसारण के लिए भेजे जा रहे हैं।

दूरदर्शन कार्यक्रमों के लिए अध्यापक-निर्देशन नोट तैयार कर राज्य परिषदों को क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद के लिए भेजे जा रहे हैं जो दूरदर्शन-ग्रामों में बाँटे जाएँगे।

लगभग 100 प्रोटोटाइप शैक्षिक दूरदर्शन कार्यक्रम 5-8 तथा 9-11 आयुवर्ग के बच्चों तथा प्राइमरी स्कूल के अध्यापकों के लिए पहले हिन्दी में तैयार किए गए और फिर उन्हें उड़िया तथा तेलुगु में डब किया गया ताकि उन्हें उड़ीसा तथा आंध्र प्रदेश में प्रसारित किया जा सके। इन्सैट वन-ए की असफलता के बावजूद शैक्षिक दूरदर्शन सेवा, जो 15 अगस्त 1982 को शुरू की गई थी, टैरिस्ट्रिअल स्टेशनों के माध्यम से पूर्ववत् जारी रखी गई।

गत वर्ष इन्सैट राज्यों से चुने गए कथा लेखकों के लिए आठ सप्ताह का एक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम हैदराबाद स्थित सेन्ट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ इंग्लिश एण्ड फॉरेन लेंगुएजेज में आयोजित किया गया। 20 दिसम्बर 1982 को शुरू हुए कार्यक्रम में उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र तथा दिल्ली के 22 प्रतिभागी सम्मिलित हुए। प्रशिक्षार्थियों द्वारा लेखन अभ्यास के फलस्वरूप 60 सम्पूर्ण शैक्षिक दूरदर्शन कथा लेख तैयार हुए। इनमें से 10 का प्रयोग शैक्षिक दूरदर्शन कार्यक्रमों के लिए हुआ तथा चार हैदराबाद के दूरदर्शन केन्द्र से प्रसारित हुए।

शैक्षिक दूरदर्शन के विषयों/प्रसंगों को जानने के लिए एक राष्ट्रीय कार्यगोष्ठी का आयोजन 31 मार्च से 5 अप्रैल 1983 तक हुआ। इसमें छह इन्सैट राज्यों, दूरदर्शन केन्द्रों, स्पेस एप्लीकेशन सेन्टर तथा राष्ट्रीय परिषद् के 40 प्रतिभागी शामिल हुए। इस कार्यगोष्ठी के बाद वर्ष 1983-84 के लिए संक्षिप्त कार्यक्रम तथा शैक्षिक दूरदर्शन कार्यक्रम आलेख तैयार करने का काम होगा।

इन्सैट के लिए फिल्म तथा वीडिओ पटकथाओं का लेखन

इन्सैट कर्यक्रमों के लिए फिल्म तथा वीडिओ कार्यक्रमों की पटकथाओं को तैयार करने के निमित्त 11 से 13 मई 1982 तक एक कार्यगोष्ठी का आयोजन हुआ। इसमें 15

प्रतिभागी शामिल हुए । इसमें कर्मचारियों के अलावा विज्ञान-शिक्षक, वैज्ञानिक, बाल-साहित्य लेखक तथा प्रचार माध्यम के विशेषज्ञ थे । कार्यगोष्ठी के दौरान साइट अनुभव, ग्रामीण अध्यापकों को विज्ञान-शिक्षण के अनुभव तथा इन्सैट के दूरदर्शन-कार्यक्रमों के शिक्षा संबंधी उपयोग पर विचार हुआ । बाद में दल ने विषयों को प्राथमिकता देने का कार्य किया । पाँच पटकथाओं का मसौदा विभाग के सदस्यों ने दल के विचारार्थ रखा । प्रतिभागियों के विचार विमर्श के फलस्वरूप चार पटकथाओं—(i) पानी, (ii) पीने योग्य पानी (iii) हैंड पम्प (iv) वृक्षों से भोजन—को वीडिओ कार्यक्रम के निमित्त निर्माण करने के लिए चुना गया ।

रेडियो कार्यक्रम

"रेडियो की सहायता से प्रथम भाषा (हिन्दी) पढ़ाना"—परियोजना में कक्षा 3 के विद्यार्थियों के केवल एक दल ने वर्ष 1982-83 में भाग लिया । आकाशवाणी के जयपुर व अजमेर केन्द्रों से नित्य पंद्रह मिनटों का कार्यक्रम प्रसारित किया गया । अप्रैल 1982 में कक्षा 3 की उपलब्धियों का मूल्यांकन किया गया । फिर कई अंतरालों में उच्चारण में सुधार किया गया । अंतिम मूल्यांकन की रिपोर्ट तैयार है । 31 मार्च 1983 को यह प्रयोग समाप्त हो गया ।

मूल्यांकन कार्यक्रम

विद्यार्थियों की एक बड़ी संख्या के लिए, जो औपचारिक विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकती है, डिस्टेन्स लर्निंग विधि औपचारिक शिक्षा का एक विकल्प प्रस्तुत करती है । शैक्षिक प्रौद्योगिकी द्वारा डिस्टेन्स लर्निंग विधियों में सुधार शैक्षिक प्रौद्योगिकी केन्द्र के लिए महत्वपूर्ण है । उच्चतर स्तर पर पत्राचार शिक्षा पर आधारित सूचनाओं को इकट्ठा करने के लिए राष्ट्रीय परिषद् ने कई अध्ययन शुरू किए हैं । इस क्रम में द्वितीय अध्ययन पूरा हो गया है जो माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, अजमेर के पत्राचार पाठ्यक्रम के बारे में है । प्रथम अध्ययन पत्राचार विद्यालय, दिल्ली के बारे में था जो 1980 में पूरा हुआ था । राजस्थान बोर्ड के पत्राचार पाठ्यक्रम के बारे में अनुसंधान-अध्ययन पूरा हो चुका है तथा उसका प्रारूप भी बन चुका है ।

प्राइमरी स्कूलों के बच्चों तथा शिक्षकों के लिए राष्ट्रीय परिषद् ने प्रोटोटाइप शैक्षिक दूरदर्शन कार्यक्रमों का निर्माण शुरू किया है । ये कार्यक्रम आंध्र प्रदेश और उड़ीसा के चुने हुए जिलों में प्रसारित किए जा रहे हैं । उपयोगी तथा आवश्यक कार्यक्रमों के निर्माण के लिए इन कार्यक्रमों का क्षेत्रों में ही निर्माण-मूल्यांकन किया गया । इस प्रकार जो जानकारी मिली उससे भविष्य के कार्यक्रमों को सुधारने तथा परिवर्तित करने में सहायता मिलेगी । अध्यापकों एवं विद्यार्थियों की इन कार्यक्रमों के विषय में राय जानने का कार्य जारी है ।

शैक्षिक प्रौद्योगिकी केन्द्र के तकनीकी क्षेत्रों की गतिविधियाँ तथा अन्य कार्य

राष्ट्रीय परिषद् नई दिल्ली के परिसर में स्थित पुस्तकालय भवन के द्वितीय तल पर बने नए सम्मेलन कक्ष में एक नया 'कांफ्रेंस सिस्टम' जिसमें एक चेयरमैन यूनिट, बीस प्रतिनिधि यूनिट, मॉनीटरिंग यूनिट तथा पावर सप्लाई शामिल हैं, लगाया गया।

राष्ट्रीय परिषद् के परिसर में स्थित पुराने पुस्तकालय भवन के स्टोर ब्लाक को टी० वी० स्टूडिओ में बदला जा रहा है। इस कार्य के लिए अनुमानित खर्च का ब्यौरा आकाशवाणी के सिविल निर्माण विभाग द्वारा बनाया गया है।

ओ० बी० वैन के साथ टेली-सिने संपर्क स्थापित हो चुका है। इसका उपयोग फिल्मों तथा वीडिओ टेपों पर उपलब्ध कार्यक्रमों को रिकार्ड करने के लिए होगा।

शिक्षण साधन

राष्ट्रीय शै० अ० और प्र० प० शिक्षा के लिए कम लागत वाली प्रौद्योगिकी का प्रयोग करती है। कम लागत वाले श्रव्य-दृश्य साधनों के निर्माण के अलावा परिषद् स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्री द्वारा शिक्षण साधनों के निर्माण के लिए शिक्षकों व अन्य कार्मिकों को प्रशिक्षित करती है।

कार्यगोष्ठियाँ और प्रशिक्षण-कार्यक्रम

श्रव्य-दृश्य संसाधन का प्रबंधन एक ऐसा क्षेत्र है जिस पर गंभीर ध्यान दिया जाना चाहिए। एक संसाधन विभाग की स्थापना तथा अध्यापकों को उन साधनों के उपयोग की अनुमति प्रदान करने की दिशा में कुछ विचार हुआ है। इस संबंध में काम चलाने की व्यावहारिक व्यवस्था को तैयार करने के उद्देश्य से एक द्विदिवसीय कार्यगोष्ठी तथा बैठक का आयोजन 28 व 29 अप्रैल 1982 को किया गया जिसमें दिल्ली शिक्षा निदेशालय के 15 क्षेत्रीय शिक्षा अधिकारियों तथा प्रधानाध्यापकों ने भाग लिया। इस कार्यगोष्ठी ने छह सदस्यों की एक समिति बनाई जो इस कार्य को आगे चलाएगी। इस दिशा में आगे काम हो रहा है।

माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर के लिए भूगोल चार्ट

माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक स्कूलों के विद्यार्थियों के लिए भूगोल चार्टों को बनाने के वास्ते 20 से 24 सितम्बर 1982 तक एक कार्यगोष्ठी का आयोजन हुआ। विभिन्न

विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों से विषय विशेषज्ञों तथा कलाकारों सहित 12 प्रतिभागियों ने इसमें हिस्सा लिया। इस कार्यगोष्ठी का उद्देश्य माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर पर कक्षा में अध्यापन के निमित्त "बायोस्फेयर" तथा "हाइड्रोस्फेयर" पर चार्टों का निर्माण करना था। प्रतिभागियों ने पहले हुई एक कार्यगोष्ठी में निर्मित "लिथोस्फेयर" तथा "एट्मोस्फेयर" चार्टों का परीक्षण भी किया। सामूहिक अभ्यासों के फलस्वरूप प्रतिभागी दोनों विषयों पर चार्टों के निर्माण के लिए 23 सिद्धांत चुनने में सफल हुए। उक्त विषयों पर भूगोल के चार्टों के निर्माण का कार्य अन्तिम चरण में है।

श्रव्य-दृश्य सामग्री के निर्माण में शैक्षिक प्रौद्योगिकी का उपयोग

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्र० प० तमिलनाडु तथा केन्द्रीय प्रशिक्षण संस्थान, गिन्डी, मद्रास, के सहयोग से श्रव्य-दृश्य सामग्री के निर्माण के लिए एक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम 13 से 25 सितम्बर 1982 तक मद्रास में आयोजित किया गया। इसमें दक्षिणी राज्यों—तमिलनाडु, कर्नाटक, केरल तथा आंध्र प्रदेश के 25 अध्यापक-प्रशिक्षकों ने भाग लिया। व्याख्यानों से लाभान्वित होने के अलावा प्रतिभागियों ने चार्टों, फिल्म आलेखों, स्लाइडों तथा फ्लैनलग्राफ पैकजों का निर्माण किया। प्रतिभागियों ने सात फिल्म आलेखों तथा शिक्षण साधनों के निर्माण समेत दस परियोजनाओं को शुरू किया।

आंध्र प्रदेश, उड़ीसा तथा उत्तर प्रदेश के देहाती स्कूलों के लिए शै० दू० द० कार्यक्रमों के आलेख

आंध्र प्रदेश, उड़ीसा तथा उत्तर प्रदेश के देहाती स्कूलों के लिए शैक्षिक दूरदर्शन के कार्यक्रमों के आलेखों को अंतिम रूप देने के लिए एक कार्यगोष्ठी का आयोजन 27 से 29 जनवरी 1983 तक हुआ। इन कार्यक्रमों को इन्सैट द्वारा प्रसारित करना था। आलेख तैयार करने का प्रयोजन इस बात की जागरूकता लाना था कि अच्छा स्वास्थ्य कैसे बनाए रखा जाए तथा ग्रामीण बच्चों, युवाओं तथा प्रौढ़ों की शिक्षा के लिए दूसरा उपाय क्या हो।

विभागीय लोगों के अलावा दूरदर्शन के नौ विशेषज्ञों, पटकथा लेखकों, विषय वस्तु तथा बाल साहित्य में अनुभव प्राप्त लोगों ने उक्त कार्यगोष्ठी में भाग लिया। इसमें जल, पीने योग्य जल, हैन्ड पंप तथ वृक्षों से भोजन आदि पर आलेख तैयार किए गए और उन पर विस्तार पूर्वक विचार हुआ।

इनमें से हैन्ड पंप तथा वृक्षों से भोजन पर वीडिओ कार्यक्रम निर्माण नई दिल्ली स्थित 'सेन्डिट' के सहयोग से शुरू हो चुका है जिसके 1983-84 तक पूरा होने की आशा है।

शिक्षण साधन विभाग के उत्पादों तथा प्रोटोटाइपों का मूल्यांकन

जनसंख्या शिक्षा पर पाँच टेप-स्लाइड कार्यक्रमों के मूल्यांकन के लिए एक दो-दिवसीय कार्यशाला का आयोजन 31 जनवरी और 1 फरवरी 1983 को हुआ। इसमें केन्द्रीय

शिक्षा संस्थान तथा शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान, दरियागंज, नई दिल्ली के प्रतिभागियों ने हिस्सा लिया। जनसंख्या की सीमा का अर्थ, हमारी बढ़ती जनसंख्या, जनसंख्या वृद्धि का परिणाम, पारिवारिक जीवन और राष्ट्रीय नीति तथा कार्यक्रम—इन पाँचों कार्यक्रमों का मूल्यांकन हुआ।

फिल्म स्ट्रिपों के लिए आलेख

राष्ट्रीय परिषद् ने सिक्किम राज्य शिक्षा संस्थान गङ्टोक के शिक्षा प्रौद्योगिकी एकक को 9 से 18 फरवरी 1983 तक फिल्म स्ट्रिप के लिए आलेख लेखन की एक कार्यगोष्ठी के लिए विशेषज्ञ सलाह प्रदान की। क्षेत्रीय शिक्षकों, शिक्षक प्रशिक्षकों सहित 15 प्रतिभागियों ने इसमें भाग लिया। इस कार्यगोष्ठी के उद्देश्य थे :

(i) प्रतिभागियों को फिल्म स्ट्रिपों के लिए आलेख के स्वरूप से परिचित कराना।

(ii) फिल्म-स्ट्रिप के उत्पादन की बनावट की जानकारी देना।

(iii) फिल्म आलेख के उत्पादन की संपूर्ण प्रक्रिया के विभिन चरणों और उसके प्रति लेखकीय दायित्व से प्रतिभागियों को परिचित कराना।

(iv) फिल्म आलेखों के स्वरूप और योगदान तथा आलेखन के विभिन्न चरणों से प्रतिभागियों को परिचित कराना, तथा

(v) शुरू में तीन या चार फिल्म-स्ट्रिपों का निर्माण तथा अन्य दस फिल्म स्ट्रिपों की रूपरेखा बनाना।

कम लागत के शिक्षण-साधन

गुड़गाँव स्थित हरियाणा राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के सहयोग से कम लागत के शिक्षण-साधनों पर एक कार्यगोष्ठी का आयोजन 14 से 21 फरवरी 1983 तक उच्चतर-माध्यमिक स्कूल, मुरथल जिला सोनीपत (हरियाणा) में किया गया। हरियाणा के ग्रामीण स्कूलों के 32 विज्ञान-शिक्षकों ने इसमें भाग लिया। सहभागियों के लाभार्थ एक प्रदर्शनी लगाई गई जिसमें कुछ नमूनों के मॉडल तथा सचित्र सामग्री रखी गई थी। इन नमूनों पर एक प्रश्नावली बनाई गई थी और पहले ही दिन प्रतिभागियों के विचार जाने गए थे। कार्यगोष्ठी का क्षेत्र माध्यमिक तथा प्राइमरी स्तर के गणित तथा विज्ञान के शिक्षण-साधनों के निर्माण तक सीमित था। कार्यगोष्ठी के कार्यक्रमों में प्राइमरी और माध्यमिक स्तर के सिद्धांतों तथा उप-सिद्धांतों का परिचय, पर्यावरण में उपलब्ध सामग्री की पहचान, सामग्री संचय, नियोजन तथा रूपरेखा निर्माण, साधनों का निर्माण तथा उद्देश्य बताने के लिए चार्टों पर लेख बनाना शामिल थे। कार्यगोष्ठी के दौरान 33 शिक्षण-साधनों का निर्माण हुआ और हरेक पर एक एक लेख लिखा गया।

गणित में स्वाध्याय कार्डों का निर्माण

गुजरात के अहमदाबाद जिले के ग्रामीण प्राइमरी स्कूलों के शिक्षकों के लिए गणित के स्वाध्याय कार्डों के निर्माण के निमित्त एक कार्यशाला का आयोजन 1 से 7 मार्च 1983 तक विक्रम साराभाई सामुदायिक विज्ञान केन्द्र, अहमदाबाद में किया गया। इसका आयोजन राज्य शै० अ० और प्र० परिषद् अहमदाबाद तथा विक्रम साराभाई केन्द्र के सहयोग से हुआ। अहमदाबाद जिले के ग्रामीण स्कूलों के 25 प्राइमरी शिक्षकों ने इसमें भाग लिया।

इस कार्यशाला का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में एक-शिक्षक-वाले स्कूलों के अध्यापकों की सहायता के लिए स्वाध्याय कार्डों का निर्माण करना था। कार्यशाला के दौरान सहभागी अध्यापकों ने 200 स्वाध्याय कार्डों का निर्माण गणित में किया, जिनमें ये छह् विषय थे— जोड़, घटाना, गुणा, भाग, गिनती तथा स्थान मूल्य।

सहभागियों द्वारा बनाए गए कार्डों को परखने के लिए अहमदाबाद जिले के राजोदा गाँव में सभी सहभागियों को ले जाया गया।

विभाग ने इन्सैट के लिए फिल्म आलेखों तथा वीडिओ कार्यक्रमों के निर्माण के लिए 11 से 13 मई 1982 तक एक कार्यशाला का आयोजन किया। इसमें पंद्रह सहभागियों ने भाग लिया जिनमें विज्ञान शिक्षक, वैज्ञानिक, बाल साहित्य लेखक, तथा प्रचार साधन विशेषज्ञ और विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग, शिक्षण-साधन विभाग तथा शैक्षिक प्रौद्योगिकी केन्द्र के विभागीय सदस्य शामिल थे। कार्यशाला के दौरान 'साइट' तथा अन्य अनुभवों पर, जो देहाती स्कूल शिक्षकों को विज्ञान शिक्षण हेतु उपयोगी थे, तथा 'इन्सैट' के टेलीविजन कार्यक्रमों के शैक्षिक उपयोग पर विचार हुआ। बाद में दल ने विषयों की प्राथमिकता के आधार पर यह निर्णय किया कि किसे पहले लिया जाए। शिक्षण साधन विभाग के सदस्यों ने पाँच आलेखों का मसौदा दल के सामने सम्मति तथा सुधार के लिए रखा। सहभागियों के विचार विमर्श तथा सुझावों के फलस्वरूप चार आलेखों— (i) जल, (ii) पीने योग्य जल, (iii) हैन्ड पंप, तथा (iv) वृक्षों से भोजन को वीडिओ कार्यक्रमों के उत्पादन के लिए अंतिम रूप से स्वीकार किया गया।

श्रव्य-दृश्य उपकरणों का परिचालन तथा प्रयोग

श्रव्य-दृश्य साज सामान के परिचालन व प्रयोग के बारे में तकनीकी प्रशिक्षण देने के लिए शिक्षण साधन विभाग में 4 से 13 अक्तूबर 1982 तक एक तकनीकी प्रशिक्षण पाठ्यक्रम का आयोजन किया गया। इसमें केरल, राजस्थान, गुजरात, बिहार, तमिलनाडु, दिल्ली, हरियाणा, चंडीगढ़, नागालैंड तथा मेघालय की राज्य परिषदों तथा स्थानीय शिक्षण संस्थानों के 15 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। सहभागियों को एक नया 16 मि० मी० का फिल्म

प्रोजेक्टर दिखाया गया जिसे सिनेफोन ने बनाया था। उन्हें गाजियाबाद स्थित उच्च स्तरीय टेली-कम्युनिकेशन प्रशिक्षण केन्द्र भी ले जाया गया ताकि वे टेलीविजन ध्वनि स्टूडिओ भी देख सकें। पाठ्यक्रम के दौरान श्रव्य-दृश्य सामग्री, जैसे 16 मि० मी० का प्रोजेक्टर, ओवर हैड प्रोजेक्टर आदि पर कई फिल्में दिखाई गई ताकि प्रशिक्षार्थी उन मशीनों को चलाना व उनके रख-रखाव को जान सकें।

गणित में कम लागत के शिक्षण साधन

आंध्र प्रदेश के कृष्णा जिले के चुने हुए ग्रामीण प्राइमरी/अपर प्राइमरी स्कूल-शिक्षकों के लिए गणित में कम लागत के शिक्षण साधनों पर राष्ट्रीय शैं० अ० और प्र० प० ने एक कार्यशाला का आयोजन किया। कार्यशाला का आयोजन राज्य शिक्षा विभाग आंध्र प्रदेश, तथा गणित शिक्षा सुधार संघ, विजयवाड़ा के सहयोग से 13 से 20 अक्तूबर 1982 तक केसरपल्ली गाँव में किया गया। इस कार्यशाला के उद्देश्य ये थे :

—सहभागियों को कम लागत के शिक्षण साधनों को बनाने और उपयोग करने की आवश्यकता बताना।

—गणित के कठिन सिद्धान्तों को समझाना, यह तय करना कि कौन से साधन विषय के स्पष्टीकरण में सहायक होंगे, स्थानीय रूप से उपलब्ध साधनों के उपयोग द्वारा कठिन सिद्धान्तों पर साधन बनाना, कार्यशाला में बनाए गए साधनों का विश्लेषण तथा संशोधन।

प्रथम सत्र में सहभागियों के साथ "कक्षा में शिक्षण के लिए अनुदेशों की बजाय शिक्षण साधन क्यों जरूरी है" विषय पर बहस हुई। कार्यशाला में इस बात पर जोर दिया गया कि पर्यावरण में उपलब्ध सामग्री से ही शिक्षण साधन बनाने पर बल दिया जाना चाहिए। सभी सहभागी चार्ट, मॉडल, फ्लेनल-कट-आउट तथा हस्त निर्मित स्लाइडों तथा किटों को बनाने के बारे में विचार-विमर्श कर सके।

साधनों को बनाने के बाद इनका विश्लेषण करने के लिए कई सत्रों का आयोजन किया गया। इस अभ्यास के फलस्वरूप सहभागियों ने बनाए गए साधनों की सहायता से पाठ तैयार किए। इनसे आने वाले दिनों में बनाए जाने वाले साधनों में सुधार हो सका। आठ दिनों के अल्प समय में शिक्षण-साधनों के निर्माण में शैक्षिक प्रौद्योगिकी का उपयोग करने का प्रयास किया गया। इस कार्य में वस्तु की अपेक्षा प्रक्रिया को अधिक महत्त्व दिया गया ताकि यहाँ प्राप्त अनुभवों को सहभागी अपनी-अपनी संस्थाओं के अध्यापकों को प्रदान कर सकें।

शैक्षिक प्रौद्योगिकी तथा उसका श्रव्य दृश्य उपकरणों के निर्माण में उपयोग

शैक्षिक प्रौद्योगिकी तथा उसके उपयोगों के बारे में एक कार्यशाला का आयोजन शिक्षण-साधन विभाग में 10 से 23 दिसम्बर 1982 तक किया गया। इसमें उड़ीसा, मध्य

प्रदेश, दिल्ली तथा उत्तर प्रदेश से 19 सहभागी उपस्थित हुए । इन्हें शैक्षिक प्रौद्योगिकी तथा इसके सिद्धांतों, जैसे वीडिओ टेपों, टेप स्लाइडों, फिल्म स्ट्रिपों तथा चार्टों आदि विभिन्न श्रव्य-दृश्य उपकरणों के निर्माण के बारे में प्रशिक्षित किया गया। सहभागियों ने हैंड पंप पर वीडिओ टेप, मानचित्र पर टेप स्लाइड, वृक्ष पर टेप स्लाइड तथा हैंड पंप पर फ्लेनल ग्राफ और चार्ट एवं मानचित्र पर चार्ट जैसी छह परियोजनाओं को पूरा किया ।

विभिन्न कार्यदलों की बैठकें

राष्ट्रीय परिषद् ने 19 और 20 जुलाई 1982 को कार्य दल की एक बैठक बुलाई जिसका उद्देश्य भौतिक भूगोल में उन चार्टों को अंतिम रूप देना था, जिन्हें 1980-81 में हुई कार्यशालाओं में बनाया गया था । दिल्ली विश्वविद्यालय, केन्द्रीय विद्यालयों तथा दिल्ली प्रशासन के स्कूलों के भूगोल अध्यापकों को मिलाकर बनाए गए इस दल ने उपरोक्त चार्टों का आलोचनात्मक परीक्षण किया । इस दल के सुझावों के अनुसार संशोधित कर इन चार्टों को बड़ी संख्या में छापा जाएगा ।

जीव विज्ञान के क्षेत्र में एक कार्यदल की बैठक 9 से 11 अगस्त 1982 तक बुलाई गई । इसका उद्देश्य जीव विज्ञान के चार्टों को अंतिम रूप देना तथा इन चार्टों के मूल्यांकन के लिए पहले हुई कार्यशाला की रिपोर्ट पर विचार करना था । संबंधित विभागीय सदस्यों के अलावा चार संसाधन व्यक्तियों ने इस बैठक में भाग लिया । दल ने जीवविज्ञान के चार्टों पर हुई मूल्यांकन-कार्यशाला की रिपोर्ट की अच्छी प्रकार से जाँच की । उस कार्य शाला के प्रतिभागियों के कुछ सुझाव बड़े उपयोगी थे । उनके आधार पर जीवविज्ञान के चार्टों को संशोधित कर लिया गया है । कार्यदल की बैठक के फलस्वरूप जीवविज्ञान के चार्टों को, सुझाए गए परिवर्तनों के साथ, अंतिम रूप देने का कार्य आगे चल रहा है ।

विजयवाड़ा की गणित-शिक्षा-सुधार समिति तथा राज्य शै० अ० और प्र० परिषद् हैदराबाद के सहयोग से गणित में शिक्षण-साधनों के निर्माण के लिए दो सप्ताह की एक कार्यदल की बैठक 28 जनवरी से 10 फरवरी 1983 तक बुलाई गई ।

उपरोक्त विषय पर एक संदर्शिका तैयार करने के लिए निम्नलिखित कार्य किए गए :

(i) प्राथमिक स्तर पर गणित के शिक्षण साधनों के नक्शे बनाना ।

(ii) कठिन सिद्धांतों तथा उप-सिद्धांतों की पहचान करना ।

(iii) गणित-शिक्षा के सुधार के लिए समिति द्वारा पूर्व निर्मित सूची तैयार करना तथा विभाग द्वारा अक्तूबर 1982 में केसरपल्ली में कम लागत के शिक्षण साधनों पर आयोजित कार्यशाला में बनाए गए साधनों की सूची बनाना ।

(iv) पुस्तिका के लिए शिक्षण साधनों का चयन ।

(v) सामग्री चयन तथा संदर्भ जुटाना ।

(vi) चार्टों तथा मॉडलों के लिए लेख तैयार करना ।

(vii) चार्टों तथा मॉडलों के लिए ड्राइंग बनाना ।

चार्टों व मॉडलों के रूप में 29 विषयों के 44 शिक्षण साधनों को बैठक में अंतिम रूप दिया गया । कुछ कच्ची ड्राइंगों पर भी विचार हुआ । इन ड्राइंगों तथा लेखों की साइक्लोस्टाइल द्वारा प्रतियाँ तैयार हो रही हैं जिन्हें प्राथमिक शिक्षकों द्वारा परखा जाएगा । उसके बाद संदर्शिका को अंतिम रूप दिया जाएगा ।

उत्पादन के कार्यक्रम

साँची पर स्लाइड, टेप स्लाइड के निर्माण का कार्यक्रम

साँची पर एक टेप स्लाइड कार्यक्रम तैयार हो चुका है । इसमें 78 स्लाइडें, एक आधा घंटे की रिकार्ड की हुई कैसेट तथा एक पुस्तिका है । इसका उद्देश्य साँची स्थित बौद्ध स्मारक और उसकी पृष्ठभूमि के बारे में एक सचित्र विवरण देना था । यह कार्यक्रम स्कूली बच्चों को साँची स्थित हमारी सांस्कृतिक विरासत से अवगत भी कराएगा ।

जनसंख्या शिक्षा

जनसंख्या शिक्षा पर एक श्रव्य-दृश्य पैकेज का निर्माण हो चुका है। इसमें 264 रंगीन स्लाइडें, अंग्रेजी/हिन्दी में पाँच कमेन्ट्री की तीन कैसेट और उसकी संदर्शिका शामिल हैं।

यह पैकेज माध्यमिक स्कूलों के शिक्षकों तथा शिक्षक-प्रशिक्षकों को जनसंख्या शिक्षा से परिचित कराने के लिए बनाया गया है । जनसंख्या शिक्षा के समस्त क्षेत्र को पाँच एककों में बाँटा गया है । ये हैं—जनसंख्या शिक्षा का अर्थ और क्षेत्र, बढ़ती हुई जनसंख्या, जनसंख्या शिक्षा के परिणाम, पारिवारिक जीवन-शिक्षा तथा राष्ट्रीय नीति कार्यक्रम ।

स्लाइडों व फिल्म स्ट्रिपों को स्वचालित स्लाइड प्रोजेक्टरों अथवा हस्तचालित स्लाइड फ़िल्म प्रोजेक्टरों द्वारा दिखाया जा सकता है । हर कैसेट में दोनों ओर कमेन्ट्री हैं ।

इस पैकेज की प्रतियाँ बना ली गई हैं । समस्त पैकेज देश के सभी 30 जनसंख्या शिक्षा केन्द्रों को भेजे जा रहे हैं । कुल 140 सैट बनाए गए हैं जिन्हें देश की शिक्षा संस्थाओं में बाँटा और बेचा जाएगा ।

रसायन विज्ञान पर टेप-स्लाइड कार्यक्रम

"कैमिकल एण्ड आयोनिक बॉन्ड्स" शीर्षक का एक टेप-स्लाइड कार्यक्रम बन चुका है। इसमें 42 स्लाइडें तथा 30 मिनट की एक कैसेट तथा शिक्षण नोट हैं।

कम लागत वाले शिक्षण साधनों की संदर्शिका

ग्रामीण इलाकों के प्राइमरी/अपर प्राइमरी शिक्षकों के लिए कम लागत वाले शिक्षण-साधनों की संदर्शिका तैयार की गई है। इसमें 25 सटीक चित्र हैं। इसे कम लागत/बिना लागत वाले शिक्षण-साधनों पर आयोजित कई कार्यशालाओं में तैयार किया गया है। इसकी 500 प्रतियाँ छापी गई हैं जिन्हें उन कार्यशालाओं के प्रतिभागी अध्यापकों तथा रिसोर्स व्यक्तियों को भेजा गया है। इसका उद्देश्य अध्यापकों को कठिन विषयों पर स्थानीय प्रौद्योगिकी तथा विद्यार्थियों की सहायता से शिक्षण साधनों के निर्माण तथा उपयोग में सहायता करना है।

राष्ट्रीय नेताओं के चित्र

वर्ष 1982-83 में 25 राष्ट्रीय नेताओं के चित्रों का निर्माण कार्य शुरू किया गया। प्रत्येक चित्र पर उस नेता के शिक्षा, संस्कृति, धर्म तथा राष्ट्रीय एकता संबंधी उद्धरण होंगे। ये उद्धरण उस नेता की जीवनी, आत्मकथा, भाषणों तथा पुस्तकों से लिए जाएँगे। तैयार होने पर इन सैटों को शिक्षक-प्रशिक्षक संस्थानों, राज्य शिक्षा परिषदों, राज्य शिक्षा संस्थानों, राष्ट्रीय परिषद् के क्षेत्र सलाहकारों, क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालयों तथा अन्य ऐसे संस्थानों को देश भर में वितरित किया जाएगा। ये यथा संभव संबद्ध भाषाओं में होंगे। इस योजना का उद्देश्य है कि बच्चे राष्ट्रीय नेताओं को पहचानें व उनसे प्रेरणा पाएँ और देश के प्रति उनके योगदान को जानें।

प्रथम चरण में सात नेताओं—महात्मा गाँधी, पं० जवाहरलाल नेहरू, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, डा० सर्वपल्लि राधाकृष्णन, डा० जाकिर हुसैन, डा० भीमराव अम्बेदकर तथा श्रीमती इन्दिरा गाँधी के चित्रों के सैट बनाए गए हैं। अन्य 18 नेताओं के चित्रों के सैट 1983-84 के दौरान बनाए जाएँगे।

केन्द्रीय फिल्म लाइब्रेरी

वर्ष 1982-83 के दौरान केन्द्रीय फिल्म लाइब्रेरी में 25 फिल्में और जोड़ी गईं। अब फिल्मों की कुल संख्या 8174 है। 191 नए सदस्य 31 मार्च 1983 तक बनाए गए। अब सदस्यों की कुल संख्या 3805 है। वर्ष के दौरान सदस्यों को 6745 फिल्में लाइब्रेरी द्वारा दी गईं।

फिल्मों का पूर्वावलोकन तथा खरीद

केन्द्रीय फिल्म लाइब्रेरी द्वारा संभाव्य खरीद के लिए वर्ष के दौरान अनेक शैक्षिक फिल्मों के पूर्वावलोकन की व्यवस्था की गई। फलस्वरूप निम्नलिखित फिल्मों को खरीदा गया :

(i) **फ्रॉम दीज रूट्स**—अमरीका के विलियम ग्रीव्ज प्रोडक्शन द्वारा निर्मित पुरस्कृत फिल्म

(ii) **ओह् स्पोर्ट यू आर पीस**—मॉस स्टूडियो, मास्को द्वारा निर्मित मास्को ओलम्पिक 1980 पर एक आधिकारिक फिल्म।

(iii) **शोर्स ऑफ दि कॉस्मिक ओशन**

(iv) **वन वाइस इन दि कॉस्मिक फ़्यूग**

(v) **दि हारमॅनी ऑफ दि वर्ल्ड**

(vi) **हैवेन एण्ड हैल**

(vii) **ट्रेडीशनल वर्ल्ड ऑफ इस्लाम**

(viii) **केयर ऑफ दि आईज** (अंग्रेजी)

(ix) **रवीन्द्रनाथ टैगोर** (अंग्रेजी-हिन्दी)

(x) **एयर पौल्यूशन** (अंग्रेजी-हिन्दी)

(xi) **ईश्वर चन्द्र विद्यासागर** (अंग्रेजी)

वर्ल्ड वाइल्ड लाइफ फंड, भारत द्वारा अंग्रेजी में निर्मित रंगीन टेप-स्लाइड कार्य-क्रम—"वैनिशिंग फॉरेस्ट्स" केन्द्रीय फिल्म लाइब्रेरी द्वारा खरीदा गया। इसमें 91 स्लाइडें, 15 मिनट की कमेन्ट्री के कैसेट के अलावा आलेख हैं।

दृश्यों तथा आलेखों द्वारा भारतीय स्वाधीनता संग्राम पर परियोजना

राष्ट्रीय परिषद् माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक स्कूल स्तर के विद्यार्थियों तथा शिक्षकों के लिए भारतीय स्वाधीनता संग्राम पर एक फोलियो के निर्माण में संलग्न है। इस फोलियो में यूरोपीय लोगों के भारत आगमन से स्वाधीनता प्राप्ति तक स्वाधीनता संग्राम के विभिन्न आयामों पर 80 पैनल होंगे। इस योजना का उद्देश्य अध्यापकों के समक्ष भारतीय स्वाधीनता संग्राम की मुख्य घटनाओं को मूल दृश्यों तथा संबंधित दस्तावेजों के द्वारा इस प्रकार प्रस्तुत करना है ताकि यह विषय अधिक आकर्षक बन सके। इस सामग्री की सहायता से अध्यापक इस विषय को अधिक सरल और प्रभावपूर्ण ढंग से पढ़ा सकेंगे। इस फोलियो

द्वारा शिक्षक और विद्यार्थी आधुनिक भारतीय इतिहास के एक महत्त्वपूर्ण दौर की घटनाओं को सचमुच महसूस कर सकेंगे। पैनलों की मदद से विद्यार्थी तत्कालीन परिवर्तनशील परिस्थितियों को केवल पुस्तकों की अपेक्षा अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से समझ सकेंगे।

इस वर्ष के दौरान लगभग 45 पैनलों को अंतिम रूप दिया गया। आशा है 1983-84 के दौरान शेष पैनलों को भी पूरा किया जा सकेगा।

भारतीय स्वाधीनता संग्राम के विभिन्न आयामों को दर्शाने वाले पैनलों की प्रदर्शनी

भारतीय स्वाधीनता संग्राम के पैनलों की एक प्रदर्शनी शिक्षा तथा संस्कृति मंत्रालय, शास्त्री भवन, नई दिल्ली में की गई। केन्द्रीय शिक्षा मंत्री तथा कार्यकारी समिति के सदस्यों ने इसकी प्रशंसा की। यह अनुभव किया गया कि यह फोलियो माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं के विद्यार्थियों तथा अध्यापकों के लिए बहुत उपयोगी होगा। इससे राष्ट्रीय एकता में भी मदद मिलेगी।

श्रव्य-दृश्य उपकरणों तथा सामग्री की निर्देशिका का पुनर्मुद्रित संस्करण

निर्देशिका के संशोधित संस्करण के लिए आँकड़े संकलित करने के निमित्त एक प्रश्नावली बना कर साज-समान बनाने/बेचने वालों के पास भेजी गई है। उत्तर आने पर विश्लेषण कर उनका संकलन 1983-84 के दौरान किया जाएगा।

फिल्म निर्माण

राष्ट्रीय शै० अ० और प्र० प० ने "विज्ञान जीवन का अंग है" शीर्षक से एकीकृत विज्ञान पर फिल्म बनाना शुरू किया है। इस वर्ष फिल्म की पटकथा को विशेषज्ञों की सलाह से अंतिम रूप दिया गया। फिल्म की शूटिंग हरियाणा के गुड़गाँव जिले में सोहना के निकट ग्रामीण अंचल में हुई। 1983-84 के दौरान फिल्म के पूरी होने की आशा है।

फिल्म का उद्देश्य स्कूलों में विज्ञान शिक्षण के प्रति एकीकृत दृष्टिकोण प्रस्तुत करना तथा स्थानीय पर्यावरण में बच्चों के दैनिक कार्यों और विज्ञान में निहित वैज्ञानिक सिद्धांतों की सार्वभौमिकता पर विचार करना है।

फिल्मों का विक्रय

स्कूली पाठ्यक्रमों से संबंधित विभाग द्वारा निर्मित 16 मि० मी० की शैक्षिक फिल्में रु० 87847.30 पैसों में देश की विभिन्न शिक्षा संस्थाओं को बेची गईं।

—'अंडरस्टैंडिंग एनीमल्स' के 16 मि० मी० के प्रिंट तथा 'वाइल्ड लाइफ़ ऑफ इण्डिया' की 35 मि० मी० की रंगीन फिल्मस्ट्रिप उपहारस्वरूप बच्चों के अजायबघर के लिए मैक्सिको सरकार के विदेश संबंध मंत्री को भेजी गई।

—'नेशनल साइंस एग्जीबीशन' (अंग्रेजी) नामक 16 मि० मी० फिल्म उपहार स्वरूप इलफोर्ड, एसेक्स के नेशनल एसोसिएशन फॉर मल्टीरेशियल एजूकेशन को भेजी गई।

सुविधाओं का विकास

शैक्षिक प्रौद्योगिकी केन्द्र के ध्वनि स्टूडियो का टी० वी० ओ० बी० वैन की सहायता से सुधार किया गया ताकि पहले सेट के कार्यक्रमों को 16 जुलाई 1982 तक पूरा किया जा सके। शैक्षिक प्रौद्योगिकी केन्द्र द्वारा निर्मित एक डीज़ल जेनेरेटर भी टी० वी० ओ० बी० वैन के साथ चलाया गया ताकि बिजली फेल होने पर उसका उपयोग हो सके। 16 मि० मी० फिल्म तथा स्लाइडों के प्रयोग की अतिरिक्त उत्पादन सुविधा प्रदान करने के लिए टैलीसिने उपकरण को टी० वी० ओ० बी वैन से जोड़ा गया।

शैक्षिक दूरदर्शन परियोजना के साथ समय-साझेदारी के आधार पर रेडियो पाइलट परियोजना के कार्यक्रमों को भी रिकार्ड करने के लिए शैक्षिक प्रौद्योगिकी केन्द्र के ध्वनि स्टूडियो का उपयोग किया गया।

जनवरी 1983 तक शैक्षिक प्रौद्योगिकी केन्द्र के टेलीसिने कक्ष में पौन इंची 'यू' मैटिक वीडिओ कैसेट रिकार्डर सिस्टम को लगाने का कार्य पूरा हो गया था। इसे इस प्रकार लगाया गया है कि इसका उपयोग स्वतंत्र रूप से संपादन के लिए हो सकेगा और इसे कार्यक्रमों की रिकार्डिंग तथा प्लेबैक के लिए ओ० बी० वैन से भी जोड़ा जा सकेगा।

आई० वी० सी० कैलीफोर्निया/सिंगापुर से एक इंची वीडिओ टेपों के दो-दो सौ नगों वाले दो लॉटों का आयात किया गया। दिसम्बर 1982 तथा फरवरी 1983 में यह माल आ गया।

रंगीन ई० एन० जी० उपकरण के एक सैट का आयात नवम्बर-दिसम्बर 1982 में जापान से किया गया। इस सैट में दो पौन इंची वीडिओ टेप रिकार्डर, एक इलेक्ट्रानिक सम्पादन यूनिट, एक पोर्टेबुल वीडिओ रिकार्डर, एक रंगीन कैमरा, एक रंगीन मॉनीटर तथा एक टाइम बेस करेक्टर यूनिट हैं।

जनवरी 1983 में टोकियो, जापान से 300 पौन इंची वीडिओ टेपें आईं।

अमरीका की आई० वी० सी० से फरवरी 1983 में चार आई० वी० सी० स्कैनर आए।

आई० वी० सी० स्पेयर्स जिसमें वीडिओ हैन्ड्स और इलेक्ट्रोनिक सर्किटरी बोर्ड हैं, का आयात जी० सी० ई० एल० पर किया गया। ये पाँच सैट सोनी पौन इंची 'यू' मैटिक ई० एन० जी० इक्विपमेंट सिस्टम तथा चार आर० सी० एन० एक इंची वीडिओ टेप रिकार्डरों के लिए मँगाए गए। आशा है ये 31 अगस्त 1983 तक आ जाएँगे।

पुरानी लाइब्रेरी के पास बन रहे शैक्षिक दूरदर्शन स्टूडियो के लिए एक इलेक्ट्रोनिक लाइट डिमर सिस्टम खरीदने के लिए क्रयादेश (आर्डर) को अंतिम रूप दे दिया गया है। सामान के आने और लगाए जाने की जुलाई-अगस्त 1983 तक आशा है।

पौन इंची वीडिओ उपकरण के लिए बैटरी चार्जर, बैटरी बेल्ट तथा पावर पैक जैसे अतिरिक्त सामानों का आर्डर दिया गया था। यह सामान कभी भी आ सकता है।

शैक्षिक प्रौद्योगिकी केन्द्र के लिए भवन-निर्माण के संबंध में राष्ट्रीय परिषद् तथा आकाशवाणी के सिविल निर्माण विभाग के बीच बात चल रही है। आकाशवाणी का सिविल निर्माण विभाग राष्ट्रीय परिषद् के परिसर में इस भवन के निर्माण के लिए सहमत हो गया हैं। इसे दो चरणों में बनाने का निश्चय किया गया है। प्रथम चरण में केवल तकनीकी भाग बनेगा।

पुराने लाइब्रेरी भवन को शैक्षिक दूरदर्शन स्टूडियो में बदलने का काम आकाशवाणी के सिविल निर्माण विभाग ने हाथ में लिया था। इसे बदलने का राज-मिस्त्रियों वाला काम लगभग पूरा हो चुका है ताकि ये कमरे शैक्षिक दूरदर्शन स्टूडियो के लिए उपयोगी हो सकें। बिजली के तार डाले जा रहे हैं। 'एकोस्टिक ट्रीटमैंट' कार्य का विवरण तैयार किया जा रहा है। स्टूडियो के लिए एनेक्सी का निर्माण तथा प्लांट रूम की कंडीशनिंग का ठेका भी सिविल निर्माण विभाग को दिया गया है। इस विभाग द्वारा काम पूरा करने की सही तारीख अभी बताई जानी है। लाइटिंग लोड, लाइटिंग ग्रिड, एकोस्टिक ट्रीटमैंट, एयर कंडीशनिंग तथा अन्य सामानों के बारे में आवश्यक सूचना आकाशवाणी के सिविल निर्माण विभाग को दी जा चुकी है।

शैक्षिक प्रौद्योगिकी केन्द्र में 16 लैजरों का एक तकनीकी स्टोर है। इसमें 3,000 से अधिक चीजें हैं जिनका मूल्य लगभग 64,18,000 रुपए है।

तकनीकी स्टोर के कार्यों में अग्रिम योजना, सामान मुहय्या करना, लेखा रखना, रख रखाव तथा संरक्षण, सामान इशू करना, सूची बनाना और समय-समय पर कम हुए सामान को पूरा करना है। इसके लिए कोटेशन/निविदा मँगाना, मूल्यांकन, आर्डर देना तथा

उन पर आगे की कार्यवाही करना आदि कार्य करने पड़ते हैं। विदेशों से सामान आयात करने के लिए और भी कई प्रकार के काम करने पड़ते हैं जैसे एल/सी कस्टम ड्यूटी की छूट खुलवाना, बैंक क्लियरेंस प्राप्त कर हवाई अड्डे से सामान छुटाना, डी० जी० एस० एण्ड डी०, डी० जी० टी० डी० तथा डी० ओ० ई० से सम्पर्क बनाए रखना।

शिक्षा मंत्रालय द्वारा इन्सैट कार्यक्रमों को हाथ में लिए जाने के कारण भी काम बढ़ा है। उसके लिए संभावित आवश्यकताओं की पूर्ति और उनका अनुमान लगाने के लिए फैडरल रिपब्लिक ऑफ जरमनी तथा ब्रिटिश काउन्सिल के प्रतिनिधियों को तकनीकी सहयोग प्रदान किया गया।

एक सहायक अभियंता को पौन इंची 'यू' मैटिक बीडिओ उपकरण तथा संबंधित तंत्रों के रख रखाव के प्रशिक्षण के लिए टोकियो, जापान भेजा गया। यह प्रशिक्षण नई मशीनों को ध्यान में रखकर कराया गया।

रीडर (इंजीनियरिंग) परियोजना-पूर्व के अध्ययन दौरे पर फैडरल रिपब्लिक ऑफ़ जरमनी की इस्सन यूनिवर्सिटी गए। इसके लिए यू० एन० डी० पी० द्वारा धन दिया गया था। उन्होंने शैक्षिक प्रौद्योगिकी केन्द्र के लिए सुविधाओं के विकास का अध्ययन किया।

बम्बई के शैक्षिक प्रौद्योगिकी प्रकोष्ठ के दो टेक्नीशियनों को दूरदर्शन की श्रव्य-दृश्य उत्पादन तकनीकों में 12 से 24 जुलाई 1982 तक प्रशिक्षित किया गया।

विज्ञान कार्यशाला

उपकरण तथा किट

स्कूलों के लिए विज्ञान सामग्री के अनुसंधान तथा निर्माण कार्य में विज्ञान कार्यशाला लगी रही। गत वर्षों की तरह राज्यों के अनुरोध पर प्रोटोटाइप तथा विज्ञान किटों का बहु उत्पादन किया गया। बड़ी संख्या में शैक्षिक संस्थानों से साइंस किटों के लिए अनुरोध आए। एक ओर स्कूलों दूसरी ओर विज्ञान-सामग्री के निर्माताओं से निकट का सम्पर्क बनाए रखने का प्रयास किया गया। कार्यशाला ने उस सामग्री के मानकीकरण की दिशा में भारतीय मानक संस्थान के ई० डी० सी० 77 के सदस्य के रूप में काफी योग दिया।

शिक्षा मंत्रालय की सलाह पर कार्यशाला ने एक प्रस्ताव तैयार किया जिसमें राज्य स्तर की नौ कार्यशालाओं की स्थापना, उनको एफ० आर० जी० से भविष्य में मिलने वाली बीस मिलियन जर्मन मुद्रा की सहायता से सुसज्जित करना, उनका संगठन, बजट तथा अन्य विवरण थे। जर्मनी के एक मूल्यांकन मिशन ने प्रस्ताव को जाँचा और कार्यशाला तथा राज्यों का दौरा किया। जर्मन तकनीकी विशेषज्ञों की सलाह तथा कार्यशाला की मदद से राज्य

स्तर की दो कार्यशालाओं की स्थापना की संभावना है। प्रथम चरण में कार्यशाला राज्यों के कार्मिकों को डिजाइन, तकनीकी ज्ञान तथा ब्लुप्रिंट बनाने में प्रशिक्षण प्रदान करने तथा अनुसंधान तथा विकास कार्य करने में सक्षम हो जाएगी।

डिजाइन और विकास

राष्ट्रीय विज्ञान प्रदर्शनी की सलाहकार समिति की सिफारिश पर कार्यशाला ने एक विज्ञान क्लब किट का निर्माण किया। इस किट में 58 बहु-उपयोगी औजार आदि और प्रथम चिकित्सा की चीजें हैं। इससे विद्यार्थियों व अध्यापकों द्वारा प्रयोगों व विज्ञान के नमूने को बनाने का काम आसान हो जाता है। राज्यों के संसाधन व्यक्तियों ने इन औजारों से काम करके देखा और इन्हें स्कूलों के लिए बहुत उपयोगी पाया।

1982 की बच्चों की राष्ट्रीय विज्ञान प्रदर्शनी में प्रदर्शित वस्तुओं का निर्माण भी इसी कार्यशाला में किया गया।

माध्यमिक स्कूल स्तर के लिए विज्ञान उपकरणों को इस्तेमाल कर देखा गया और प्राप्त अनुभव के आधार पर उनमें सुधार किया गया।

इलेक्ट्रानिकी में लघु परियोजनाओं को राज्यों के संसाधन व्यक्तियों के लिए तैयार किया गया। ये संसाधन सम्पन्न व्यक्ति इन परियोजनाओं के नए विचारों को स्कूल अध्यापकों तक पहुँचाएँगे।

किटों का वितरण

निम्नलिखित राज्यों को कुल 2,071 प्राइमरी स्कूल किट भेजे गए :

श्रीनगर के राज्य शिक्षा संस्थान को	—1600 किट
जम्मू के राज्य शिक्षा संस्थान को	— 452 किट
अन्य संस्थानों को	— 19 किट

दो सप्ताह के प्रशिक्षण को पूरा करने वाले तेरह संसाधन संपन्न व्यक्तियों को एक-एक विज्ञान क्लब किट भेंट किया गया।

प्रशिक्षण के कार्यक्रम

वैज्ञानिक उपकरणों के डिजाइन और निर्माण में नेपाल के एक टेक्नीशियन को प्रशिक्षित किया गया। उसे यूनेस्को ने एपीड के कम समय वाले विशेष तकनीकी सहयोग के अंतर्गत प्रवर्तित किया था।

आई० टी० आई० के प्रशिक्षार्थियों को इलेक्ट्रीशियन, फिटर, टर्नर, मशीनिस्ट, शीट मेटल तथा बढ़ईगीरी में प्रशिक्षित किया गया।

राज्यों के संसाधन सम्पन्न व्यक्तियों के लिए दो सप्ताह का एक प्रशिक्षण कार्यशाला में आयोजित किया गया। प्रशिक्षित व्यक्तियों की संख्या बढ़ाने के लिए ये लोग अपने-अपने राज्यों में ऐसे ही प्रशिक्षणों का आयोजन करेंगे। इस कार्य के लिए उन्हें एक पुस्तिका दी गई जिसमें सभी आवश्यक अभ्यासों और परियोजनाओं का विवरण दिया गया है। इसमें किट के सभी औजारों तथा उपकरणों के विवरण, प्रयोग तथा सुरक्षा के बारे में बताया गया है।

विविध कार्य

कार्यशाला राष्ट्रीय परिषद् की मोटर गाड़ियों, गर्मी और सर्दी के लिए कूलरों और हीटरों, पी० ए० सिस्टम, बिजली तथा इलेक्ट्रानिक के विविध उपकरणों के रख-रखाव का कार्य करती रही। कार्यशाला ने कम लागत वाले किन्तु प्रभावपूर्ण "शैड" तथा बच्चों के पार्क के उपकरणों का नवीकरण किया। "शैड" को लगा दिया गया है, इस पर पारंपरिक "शैड" की तुलना में कुल 20% खर्च आया है।

10

जनसंख्या शिक्षा

वर्ष 1982-83 में राष्ट्रीय जनसंख्या शिक्षा परियोजना अपने तीसरे चरण में चली गई। प्रथम चरण में बिहार, चंडीगढ़, गुजरात, हरियाणा, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, पंजाब, राजस्थान तथा तमिलनाडु जैसे नौ राज्य और एक संघ क्षेत्र इस परियोजना में 1 अप्रैल 1980 को सम्मिलित हुए थे और दूसरे चरण में आंध्र प्रदेश, असम, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, केरल, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बंगाल जैसे सात राज्य और एक संघ क्षेत्र इस परियोजना में शामिल हुए। तीसरे चरण में अर्थात् 1982-83 में मणिपुर, मेघालय, नागालैंड, सिक्किम, त्रिपुरा, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, गोआ, दमन व दिउ, मिज़ोरम एवं

पांडिचेरी के पाँच राज्य और चार संघ क्षेत्र इस परियोजना में शामिल हो गए। सत्ताइस राज्यों व संघ क्षेत्रों को साथ लेकर यह परियोजना अब सही अर्थों में अखिल भारतीय स्तर की हो गई है।

परियोजना की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ

इस परियोजना की कुछ उल्लेखनीय उपलब्धियाँ इस प्रकार हैं—

(i) परियोजना के पहले और दूसरे चरण में संलग्न 18 राज्यों/संघ क्षेत्रों में से 17 ने जनसंख्या शिक्षा प्रकोष्ठों की स्थापना कर ली है।

(ii) पूरे देश में परियोजना के कार्यान्वियन में लगे हुए पूर्णकालिक शैक्षणिक कर्मचारियों की संख्या इस समय 70 है।

(iii) इस समय काम करने वाली राज्य समन्वयन समितियों की संख्या 15 है। इस वर्ष उनकी 23 बैठकें हुईं।

(iv) प्राथमिक और मिडिल स्कूल स्तर के लिए जनसंख्या शिक्षा की पाठ्यचर्याओं का निर्माण 16 राज्यों ने कर लिया है। सेकंडरी स्कूल स्तर को मिलाकर तीनों स्तरों के लिए पाठ्यचर्याओं का निर्माण 14 राज्यों ने किया है। आठ राज्यों ने जनसंख्या शिक्षा को अलग या अतिरिक्त विषय न मानते हुए अपने स्कूल स्तर के वर्तमान पाठ्यक्रमों में जनसंख्या शिक्षा की विषय वस्तु को मिला लिया है।

(v) बारह राज्यों ने अपने प्रारम्भिक अध्यापक-प्रशिक्षण संस्थानों में जनसंख्या शिक्षा को प्रविष्ट करा दिया है। 28 विश्वविद्यालयों ने अपनी बी० एड० पाठ्यचर्या में जनसंख्या शिक्षा की संकल्पना को शामिल कर लिया है। हर राज्य की वर्तमान शिक्षा प्रणाली में जनसंख्या शिक्षा को डालने के लिए अभी और कदम उठाने आवश्यक हैं।

(vi) अब तक कम से कम 12 राज्यों ने अपने शिक्षकों, अध्यापक-शिक्षकों, स्कूल-प्रशासकों और संसाधन सम्पन्न व्यक्तियों को अभिविन्यस्त करने के लिए प्रशिक्षण पैकेजों का निर्माण किया है।

(vii) जनसंख्या शिक्षा में अभिविन्यस्त हुए अधीक्षकों और स्कूल-प्रशासकों की संख्या बढ़ कर इस वर्ष 3076 तक पहुँच गई। इसी प्रकार जनसंख्या शिक्षा में अभिविन्यस्त हुए कुल शिक्षकों की संख्या पचास हज़ार से भी ऊपर हो गई।

(viii) तेज़ी से बढ़ने वाली आबादी के कारणों और परिणामों को महसूस कराने के लिए 241 पाठ्यपुस्तक लेखकों को जनसंख्या शिक्षा से परिचित कराया गया।

(ix) स्कूलों में पढ़ाए जाने वाले विभिन्न विषयों में जनसंख्या सम्बन्धी विचारों को सम्मिलित कराए जाने के लिए पाठ्यपुस्तकों के 183 नमूने के पाठों को या तो दुबारा लिखा गया या संशोधित किया गया। अपने स्कूलों की वर्तमान पाठ्यपुस्तकों में जनसंख्या से सम्बद्ध पाठ्यविवरणों का समावेश कराने में चार राज्यों को सफलता मिली है।

(x) सोलह राज्यों ने अपने शिक्षकों के लिए समुचित शिक्षण-सामग्री का निर्माण किया है। विभिन्न राज्यों ने इस प्रकार की सामग्री के अंतर्गत अब तक कुल 156 विषयों पर सामग्री तैयार की है।

(xi) इस वर्ष के दौरान 23 रेडियो वार्ताओं और एक दूरदर्शन पाठ का प्रसारण हुआ।

(xii) विभिन्न स्तरों पर जनसंख्या शिक्षा में अनुसंधान को बढ़ावा देने के लिए पाँच राज्यों ने पहल की है। इस समय किए जा रहे अनुसंधानों की संख्या बढ़कर 17 तक पहुँच गई है।

राष्ट्रीय स्तर के कार्यक्रम

तीसरे चरण में सम्मिलित राज्यों के पूर्णकालिक कार्मिकों के निमित्त मुख्य रूप से दो गहन प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया गया जो इस प्रकार हैं—

(i)	लखनऊ	22 से 30 नवम्बर 1982 तक	पाठ्यक्रम-निर्माण एवं शिक्षण-सामग्री के विकास के सिद्धांत एवं विधियाँ
(ii)	मद्रास	6 से 14 दिसम्बर 1982 तक	प्रशिक्षण, प्रबोधन, मूल्यांकन और अनुसंधान से सम्बद्ध कार्य-विधियाँ

इन कार्यक्रमों में राज्यों एवं संघ राज्यों में स्थित जनसंख्या शिक्षा प्रकोष्ठों के 49 सदस्यों ने भाग लिया।

तीसरे चरण वाले राज्यों/संघ क्षेत्रों के लिए परियोजना-प्रस्तावों के विकास के निमित्त कार्यगोष्ठियाँ

तीसरे चरण में सम्मिलित राज्यों/संघ क्षेत्रों के लिए परियोजना-प्रस्तावों के विकास के निमित्त पटना में 3 से 8 अप्रैल 1982 के बीच एक कार्यगोष्ठी की गई जिसमें मणिपुर, मेघालय, नागालैंड और सिक्किम के राज्य सम्मिलित हुए।

मिज़ोरम के संघ क्षेत्र ने अपने परियोजना-प्रस्तावों को 1 से 3 जुलाई 1982 के बीच नई दिल्ली में अंतिम रूप दिया। इसके पहले इन प्रस्तावों के निर्माण के लिए अपेक्षित आधार-सामग्री के संकलन में सहायता देने के विचार से रा० शै० अ० और प्र० प० के जनसंख्या शिक्षा एकक के अधिकारियों के तीन दल उत्तर पूर्वी क्षेत्र के राज्यों/संघ क्षेत्रों की यात्राओं पर गए।

पाठ्यपुस्तक-लेखकों का अभिविन्यास

पिछले वर्ष किए गए कार्यकलाप के निर्णयों के अनुसार काम करने के लिए लखनऊ के रचनात्मक प्रशिक्षण महाविद्यालय में एक कार्यगोष्ठी की गई जिसमें पूर्ववर्ती कार्यगोष्ठियों में बनाए गए पाठों में से हिन्दी के कुछ पाठों को सम्पादित किया गया। इस तरह बने कुछ पाठों को राज्यों अथवा शिक्षा मंडलों ने अपनी पाठ्यपुस्तकों में समाविष्ट करने के लिए चुना है।

अनौपचारिक शिक्षा क्षेत्र के लिए जनसंख्या शिक्षा

जनसंख्या शिक्षा की राष्ट्रीय संचालन समिति ने सिफ़ारिश की थी कि औपचारिक शिक्षा में समाविष्ट करने के लिए जनसंख्या शिक्षा की जो पाठ्यसामग्री बन चुकी है उसे इस दृष्टि से परखा जाए कि क्या उसे अनौपचारिक शिक्षा के लिए अनुकूलित किया जा सकता है। इसके लिए जनसंख्या शिक्षा एकक ने लुधियाना के पंजाब कृषि विश्वविद्यालय में 4 से 11 नवम्बर 1982 तक एक कार्यगोष्ठी आयोजित की। इस कार्यगोष्ठी में स्कूल न जाने वाले 9 से 15 वर्ष के बच्चों की आवश्यकताओं को पहचानने पर ध्यान केन्द्रित किया गया। कार्यगोष्ठी ने यह पता लगाने की कोशिश भी की कि 12 से 15 वर्ष की लड़कियों की जरूरतों को विशेष तौर पर ध्यान में रखते हुए क्या कुछ विशिष्ट किस्म की सामग्री के निर्माण की आवश्यकता है। कार्यगोष्ठी ने यह भी पता लगाने की कोशिश की कि यह सामग्री किन के लिए होगी। अंत में यह निर्णय हुआ कि सबसे पहले अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों में काम कर रहे प्रशिक्षकों के लिए ही सामग्री बनाई जाए।

कुछ ऐसी शिक्षण-सामग्री बनाने के लिए एक और कार्यगोष्ठी आयोजित करने का निश्चय किया गया जिसे अपने आप अनुकूलित कर प्रशिक्षक इस्तेमाल कर सकें।

स्लाइडों और टेप की गई कमेंटरी का निर्माण

जनसंख्या शिक्षा एकक इस परियोजना पर पिछले कई वर्षों से शिक्षण-साधन विभाग के सहयोग से काम करता आ रहा है। ऐसे आलेख बनाने के लिए दो राष्ट्रीय कार्यगोष्ठियाँ

की गई जिन पर स्लाइडें और टेप कमेंटरी बनाई जा सकें। स्लाइड-कम-टेप कमेंटरी के लिए निम्नलिखित पाँच इकाइयाँ बनाई गई : (i) जनसंख्या शिक्षा का अर्थ और क्षेत्र; (ii) जनसंख्या गतिकी; (iii) जनसंख्या वर्ग के परिणाम; (iv) पारिवारिक जीवन; और (v) जनसंख्या नीति एवं कार्यक्रम।

250 से भी अधिक स्लाइडें बनाई गई। टेप कमेंटरी के साथ इन स्लाइडों को लगभग एक घंटे में दिखाया जा सकता है। टेप कमेंटरी हिन्दी और अंग्रेजी में अलग-अलग बनी हैं। फरवरी 1983 में मद्रास में परियोजना-प्रगति-समीक्षा-बैठक हुई जिसमें स्लाइड-प्रदर्शन किया गया। स्लाइडों की प्रतियाँ बनाई जा रही हैं। शीघ्र ही प्रतिभागी राज्यों में उन्हें बाँट दिया जाएगा।

मूल्यांकन उपकरणों का विकास

अब इस परियोजना को चूँकि लगभग सभी राज्यों में फैलाया जा चुका है इसलिए यह महसूस किया गया कि इस परियोजना के अंतर्गत किए जाने वाले कार्यकलाप को और भी सुधारा जाए। इस उद्देश्य से जनसंख्या शिक्षा एकक ने अनेक कार्यगोष्ठियों और बैठकों के द्वारा मूल्यांकन उपकरणों की एक सीरीज बनाई है। बैठकों एवं कार्यगोष्ठियों का विवरण नीचे दिया जा रहा है—

अवधि	स्थान
28 दिसम्बर 1982 से 2 जनवरी 1983 तक	मैसूर स्थित क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय में
16 से 22 जनवरी 1983 तक	नई दिल्ली स्थित जनसंख्या शिक्षा एकक (रा० शि० सं० परिसर में)
27 से 29 जनवरी 1983 तक	लखनऊ स्थित यू० पी० बोर्ड ऑफ सेकंडरी एंड हायर सेकंडरी एजुकेशन के कार्यालय में
30 जनवरी से 2 फरवरी 1983 तक	नई दिल्ली स्थित जनसंख्या शिक्षा एकक (राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान परिसर में)
5 से 7 फरवरी 1983 तक	शिक्षा महाविद्यालय, उस्मानिया विश्वविद्यालय हैदराबाद में
8 से 13 फरवरी 1983 तक	मद्रास स्थित टेक्निकल टीचर्स ट्रेनिंग इंस्टीच्यूट में

बनाए जा रहे उपकरण इस प्रकार हैं—

(i) स्टेट स्टडी शेड्यूल्स (शेड्यूल्स I-XVII)

(ii) उपलब्धि परीक्षण (मिडिल स्कूल स्तर के लिए)

(iii) सजगता परीक्षण (सेकंडरी स्कूल स्तर के शिक्षकों व छात्रों के लिए)

(iv) पाठ्यक्रम, पाठ्य एवं शिक्षण सामग्री, प्रशिक्षण कार्यक्रमों के तरीकों की तरह के विशिष्ट घटकों का मूल्यांकन

उपकरणों और उनके माध्यम से एकत्र की गई मूल्यांकन की आधार-सामग्री को अगले वर्ष होने वाली त्रिपक्षीय समीक्षा समिति के सम्मुख प्रस्तुत किया जाएगा।

विदेशी प्रतिनिधियों की भारत-यात्रा

फिलीपाइन्स के अध्यापक-शिक्षकों का एक आठ-सदस्यीय प्रतिनिधिमंडल 5 से 9 सितम्बर 1982 के बीच भारत-यात्रा पर आया। इसके नेता विश्वविद्यालय के उपकुलपति थे।

दूसरा प्रतिनिधिमंडल चीन के जनतंत्र से आया जिसमें सात प्रतिनिधि थे। यह प्रतिनिधिमंडल 11 से 21 सितम्बर 1982 तक भारत में रहा।

इन प्रतिनिधिमंडलों ने राज्य शिक्षा संस्थानों और राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषदों, स्कूलों, प्रशिक्षण महाविद्यालयों, दिल्ली, चंडीगढ़, पंजाब एवं महाराष्ट्र के अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों की यात्रा की। भारत के विभिन्न राज्यों में परियोजना को नवाचार के तरीकों से फलते-फूलते हुए देखकर अतिथिगण बड़े प्रभावित हुए।

अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में भारत की प्रतिभागिता

सन् 1982 से 86 तक के चार वर्षों में एशियाई क्षेत्र में जनसंख्या शिक्षा को बढ़ावा देने वाली योजना के लिए हुए क्षेत्रीय सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व प्रोफेसर भालचंद्र सदाशिव पारख और श्री एस० एल० नाग्दा ने किया। यह सम्मेलन बैङ्कॉक में 11 से 18 अक्तूबर 1982 तक हुआ था। सम्मेलन में प्रोफेसर पारख ने प्रमुख व्यक्ति की भूमिका अदा की। इस सम्मेलन के लिए कार्यकारी दस्तावेज़ तैयार करने के वास्ते बैङ्कॉक में 4 से 9 अक्तूबर 1982 तक हुई तकनीकी दल की बैठक में भी वे सम्मिलित हुए।

राष्ट्रीय संचालन समिति की बैठकें

राष्ट्रीय जनसंख्या शिक्षा परियोजना का कार्यान्वयन राष्ट्रीय संचालन समिति की देखरेख में किया जाता है। इस समिति के अध्यक्ष भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय के

सचिव हैं। इस समिति की बैठकों में राज्यों के अनेक शिक्षा-सचिवों और राज्य परियोजना निदेशकों ने बारी बारी से भाग लिया। इस वर्ष समिति की दो बैठकें लगभग छह-छह महीनों के अंतराल पर 16 जुलाई 1982 और 5 मार्च 1983 को हुईं। इस परियोजना के कार्यान्वियन के लिए विभिन्न राज्यों द्वारा किए जा रहे कार्य की प्रशंसा समिति ने की। समिति ने इस बात पर प्रसन्नता प्रकट की कि इस वर्ष चालीस हजार शिक्षकों को जनसंख्या शिक्षा में अभिविन्यस्त किया गया जबकि पिछले वर्ष केवल दस हजार को किया जा सका था। फिर भी समिति ने राज्यों से कहा कि हमारा लक्ष्य और ऊँचा होना चाहिए।

परियोजना की प्रगति की समीक्षा-बैठकें

वर्ष के प्रारम्भ में ही परियोजना की प्रगति के लिए तीन समीक्षा बैठकें इस प्रकार हुईं—

स्थान	अवधि	राज्य/संघ क्षेत्र
उदयपुर	12 से 14 अप्रैल 1982 तक	पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, राजस्थान, गुजरात, चंडीगढ़
त्रिवेंद्रम	17 से 19 अप्रैल 1982 तक	महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल
राँची	22 से 24 अप्रैल 1982 तक	असम, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश

अगस्त 1982 के अंत में दिल्ली में भी एक ऐसी ही बैठक हुई जिसमें रा० शै० अ० और प्र० प० के जनसंख्या शिक्षा एकक द्वारा की गई प्रगति की समीक्षा की गई।

त्रिपक्षीय प्रगति समीक्षा की बैठक

इन चारों बैठकों की एक रिपोर्ट त्रिपक्षीय प्रगति समीक्षा समिति के सम्मुख 30 अगस्त 1982 को भारत सरकार के शिक्षा एवं संस्कृति मंत्रालय में हुई बैठक में प्रस्तुत की गई। शिक्षा एवं संस्कृति मंत्रालय के संयुक्त सचिव श्री एस० सत्यम ने बैठक की अध्यक्षता की। बैङ्कॉक स्थित एशिया और प्रशांत क्षेत्र के यूनेस्को क्षेत्रीय कार्यालय के जनसंख्या शिक्षा के क्षेत्रीय सलाहकार डा० डेला क्रुज़ इस बैठक में उपस्थित थे। यू० एन० एफ० पी० ए० की ओर से न्यूयार्क स्थित यू० एन० एफ० पी० ए० की तकनीकी शाखा के अध्यक्ष श्री ओ० जे० साइक्स भी इस बैठक में आए। नई दिल्ली स्थित यू० एन० एफ० पी० ए० के वरिष्ठ

जनसंख्या सलाहकार श्री वर्नन पेरीज़ भी बैठक में सम्मिलित हुए । इस परियोजना के अंतर्गत किए गए काम की और इसके कार्यान्वियन के लिए अपनाई गई अभिनव परिवर्तन वाली विविध विधियों की इस बैठक में प्रशंसा की गई । समिति ने तय किया कि अगली त्रिपक्षीय समीक्षा समिति की बैठक में परियोजना का मध्यावधि मूल्यांकन किया जाए और परियोजना के अंतर्गत किए गए विविध कार्यों के गुणात्मक मूल्यांकन पर जोर दिया जाए ।

परियोजना की प्रगति की समीक्षा-बैठक

मद्रास में 8 से 13 फरवरी 1983 के दौरान परियोजना-प्रगति-समीक्षा की एक बैठक हुई । इस कार्यक्रम में 20 राज्यों/संघ क्षेत्रों ने भाग लिया । विभिन्न राज्यों द्वारा की गई प्रगति की समीक्षा, रा० शै० अ० और प्र० प० द्वारा बनाए गए मूल्यांकन उपकरणों पर विचार-विमर्श, अगले वित्तीय वर्ष के लिए कार्यक्रमों का पुनर्निर्धारण और हर राज्य के लिए संभाव्य खर्च का आकलन बैठक में किया गया ।

11

शैक्षिक मूल्यांकन

परीक्षा सुधार परियोजना अपनी स्थापना के समय से ही अनुसंधान-अध्ययनों, प्रशिक्षण और प्रसार कार्य-क्रमों तथा नमूने की मूल्यांकन सामग्री द्वारा सुधार करती आ रही है।

रटने की प्रवृत्ति को हतोत्साहित करने वाली रूपात्मकलाओं को अपना कर लिखित परीक्षाओं का सुधार किया जाता है। प्रश्नों को ऐसी विधि में बनाया जाता है कि वे समूचे पाठ्य विषय को समाहित कर लें और अपने उद्देश्यों को सही रूप में परिभाषित करें।

भारत भर में लगभग सभी स्कूल विषयों में इकाई परीक्षणों और नमूने के प्रश्न पत्रों के अधिसंख्य निर्माण द्वारा एवं अनेक प्रशिक्षण कोर्सों, प्रश्न-

पत्र निर्माताओं की कार्यगोष्ठियों, परीक्षकों के सम्मेलनों आदि का आयोजन करके राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् परीक्षा-सुधार के कार्यक्रम चलाती है ।

राष्ट्रीय परिषद् परीक्षा बोर्डों, राज्य शिक्षा संस्थानों, प्रशिक्षण महाविद्यालयों, विश्वविद्यालय के शिक्षा विभागों, राज्य विज्ञान शिक्षा संस्थानों, राज्य अंग्रेजी अध्ययन संस्थानों और सेकंडरी स्कूलों के साथ मिलकर काम करती है ।

आवासीय स्कूलों में रखे गए भारत सरकार की योग्यता-छात्रवृत्ति पाने वालों का गहन अध्ययन

छात्रवृत्ति पाने वालों और उनके अभिभावकों, छात्रवृत्ति को बीच में ही छोड़ देने वालों और उनके अभिभावकों, मान्यता प्राप्त आवासीय स्कूलों के प्रिंसिपलों, शिक्षा निदेशकों, सेंट्रल बोर्ड ऑफ सेकंडरी एजुकेशन तथा शिक्षा मंत्रालय को एक प्रश्नावली भेजकर उनके उत्तरों द्वारा आधार सामग्री एकत्र की गई। इस आधार सामग्री को विश्लेषित कर अर्थ निकाला गया और अब रिपोर्ट तैयार की जा रही है ।

कक्षा XII के छात्रों की शैक्षिक और व्यावसायिक आकांक्षाएँ

इस परियोजना के अंतर्गत कक्षा XII के छात्रों की शैक्षिक और व्यावसायिक आकांक्षाओं पर एक साक्षात्कार शेड्यूल बनाया गया है। इसे 125 प्रशिक्षण महाविद्यालयों को भेजा गया है ताकि वे छात्रों को इस साक्षात्कार शेड्यूल द्वारा अनुसंधान अध्ययन के लिए प्रोत्साहित कर सकें और परिणामों को तुलनात्मक अध्ययन के लिए वापस भेज सकें ।

प्रतिभा खोज अध्ययन

प्रतिभा-खोज के क्षेत्र में नीचे लिखे अध्ययन किए जा रहे हैं जिनका आधार सामग्री विश्लेषण से सम्बद्ध कार्य पूरा हो चुका है और परिणामों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा रहा है—

(क) प्रतिभा क्षेत्र में अनुसंधान और विकास : रचनात्मक परीक्षणों के उपयोग का अध्ययन ।

(ख) सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन और बच्चों की रचनात्मक कार्यविधि के परिवर्तन ।

(ग) कक्षा X के प्रतिभा सम्पन्न छात्रों की पृष्ठभूमि का अध्ययन ।

(घ) कक्षा XI के प्रतिभा सम्पन्न छात्रों की पृष्ठभूमि का अध्ययन ।

(ङ) कक्षा XII के प्रतिभा सम्पन्न छात्रों की पृष्ठभूमि का अध्ययन ।

प्रतिभावान छात्रों की उपलब्धियों का गहन अध्ययन : राष्ट्रीय प्रतिभा खोज छात्रवृत्तियाँ

इस अध्ययन के लिए भारत के और बाहर के 80 प्रतिभावान छात्रों से आधार-सामग्री जुटाई जा चुकी है, और अधिक छात्रों से सम्पर्क करने की कोशिश की जा रही है । प्राप्त साहित्य की समीक्षा की जा रही है ।

कक्षा IX, X और XII के लिए राजस्थान के बोर्ड ऑफ सेकंडरी एजुकेशन द्वारा अपनाई गई व्यापक आंतरिक मापन योजना का मूल्यांकन

नमूने के स्कूलों से इकट्ठा की गई आधार-सामग्री का विश्लेषण किया गया और परिणाम निकालने के बाद उनको अंतिम रूप दिया गया । सन् 1982-83 के दौरान इसकी रिपोर्ट बन गई है ।

शिक्षण-अधिगम की इकाइयाँ

नागरिक शास्त्र के कक्षा-अधिगम को सुधारने के लिए कार्यकारी दल की बैठक की गई ताकि शिक्षण-अधिगम की उन इकाइयों को अंतिम रूप दिया जा सके जिनमें कक्षा VIII के इकाई परीक्षण भी शामिल हैं । केन्द्रीय विद्यालय संगठन के सहयोग से परिषद् द्वारा कक्षा-अधिगम-सुधार की हाथ में ली गई परियोजना के परिणामस्वरूप यह सामग्री बनी । इस दल की बैठक 29 मार्च से 3 अप्रैल 1982 के बीच हुई । अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालयों, कालेजों, स्कूलों और राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषदों के नौ प्रतिभागियों ने इकाइयों को जाँचा और उन्हें अंतिम रूप दिया ।

व्यावहारिक परीक्षाओं का सुधार

एक दो-दिवसीय नियोजन-बैठक 20 और 21 अप्रैल 1982 को रा० शै० अ० और प्र० प० ने की जिसका मुख्य उद्देश्य प्रैक्टिकल परीक्षाओं के एक मोनोग्राफ़ को विचार-विमर्श के बाद अंतिम रूप देना था । इस बैठक में स्कूलों, कालेजों, विश्वविद्यालयों, राज्य विज्ञान शिक्षा संस्थानों और बोर्ड ऑफ सेकंड्री एजुकेशन के 15 विशेषज्ञों ने भाग लिया । मोनोग्राफ के विभिन्न अध्यायों पर विचार-विमर्श हुआ और उन्हें अंतिम रूप प्रदान किया

गया । सम्पादन के बाद इस मोनोग्राफ़ को छाप दिया गया है । इसका शीर्षक है, "विज्ञान की प्रैक्टिकल परीक्षाओं को सुधारने की पुस्तिका" ।

परीक्षण सामग्री का संशोधन

रा० शै० अ० और प्र० प० ने विभिन्न विषयों में परीक्षण-मदों के संशोधन और विकास से सम्बद्ध मूल्यांकन पर एक कार्यक्रम का आयोजन किया । दार्जिलिंग में 9 से 12 जून 1982 तक हुई इस कार्यगोष्ठी में विभिन्न विषयों के 16 विशेषज्ञों को बुलाया गया ।

गणित में परीक्षण इकाइयाँ

गणित में +2 स्तर पर परीक्षण इकाइयाँ बनाने के लिए आठ दिनों वाली एक कार्यगोष्ठी दिल्ली में 29 सितम्बर से 6 अक्तूबर 1982 तक की गई । विभिन्न राज्यों के 11 प्रतिभागियों ने कार्यगोष्ठी में भाग लिया और उन्होंने बारहवीं कक्षा की पाठ्यचर्या के विषय-शीर्षकों को समाहित करने वाली 16 परीक्षण इकाइयाँ बनाईं । इन्हें अंतिम रूप दिया जा रहा है । बाद में जाँच परख के लिए इन्हें विभिन्न स्कूलों में भेजा जाएगा ।

राजनीतिक विज्ञान में मूल्यांकन

राजनीतिक विज्ञान में मूल्यांकन विषय पर +2 स्तर की प्रस्तावित पुस्तक की रूपरेखा बनाने के लिए उच्चस्तरीय समिति की बैठक 7 और 8 अक्तूबर 1982 को की गई । इस समिति में विश्वविद्यालयों के राजनीतिक विज्ञान के चार प्रोफ़ेसर/वरिष्ठ लेक्चरर हैं जिन्होंने पुस्तक की रूपरेखा बनाई । मार्गदर्शी रेखाओं के सहारे सामग्री का विकास कर पुस्तक का प्रारूप बनाया जाएगा ।

इतिहास में प्रश्न बैंक

नई दिल्ली के राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान परिसर में 11 से 18 अक्तूबर 1982 तक एक कार्यगोष्ठी इतिहास में प्रश्न बैंक बनाने के लिए की गई जिसमें छह राज्यों के 10 प्रतिभागी आए । इतिहास का प्रश्न बैंक पुस्तक रूप में प्रकाशित किया जाएगा ।

अर्थशास्त्र में प्रश्न बैंक

अर्थशास्त्र में प्रश्न बैंक के लिए परीक्षण मदें बनाने के विचार से छह दिनों वाली एक कार्यगोष्ठी 18 से 23 अक्तूबर 1982 तक की गई जिसमें गोआ (2), दिल्ली (3), मध्य प्रदेश (1), महाराष्ट्र (1), जम्मू और कश्मीर (2), बिहार (1), हरियाणा (1), राजस्थान (3) और उत्तर प्रदेश (1) के 15 व्यक्ति शामिल हुए । आठ अलग अलग विषयों पर परीक्षण मदें बनाई गईं । अब इन्हें स्कूलों को भेजा जा रहा है ।

अर्थशास्त्र में परीक्षण मदें

अर्थशास्त्र की परीक्षण मदों को औचित्य, विषय वस्तु की शुद्धता, विशिष्टता आदि की दृष्टि से जाँचने के लिए स्कूलों को भेजा गया। स्कूलों से अपेक्षा है कि वे परीक्षण मदों की वास्तविक कार्यकुशलता के अनुसार परिणामों को भेजेंगे। इस अनुभव जनक अभ्यास से विभाग को परीक्षण इकाइयों के अंतिम रूप तैयार करने में मदद मिलेगी।

क्राइटेरियन रेफरेंस्ड टेस्टिंग

रा० शै० अ० और प्र० प० ने अंग्रेजी में एक मोनोग्राफ़ तैयार किया है—'क्राइटेरियन रेफ़रेन्स्ड टेस्टिंग'। इसे सारे देश में समीक्षा टिप्पणी के लिए भेजा गया है।

प्रारम्भिक स्कूलों में छात्रों का मूल्यांकन

प्रारम्भिक स्तर पर छात्रों की निष्पत्ति का मूल्यांकन कर पाने के लिए स्कूलों को व्यावहारिक मार्गदर्शन उपलब्ध कराने के विचार से 'प्रारम्भिक स्कूलों में छात्रों का मूल्यांकन' नामक पुस्तिका स्कूलों को भेजी गई है।

परिवेश अध्ययन की परीक्षण सामग्री

मार्च 1983 में दिल्ली में एक कार्यगोष्ठी हुई जिसमें कक्षा III, IV, और V के लिए परिवेश अध्ययन (सामाजिक अध्ययन) के क्षेत्र में परीक्षण सामग्री बनाई गई जिसमें ये चीजें शामिल हैं—प्रश्न, कार्यभार और परियोजना कार्य (साथ में उनके मूल्यांकन के उपकरण)। यह सामग्री राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की इस स्तर की पाठ्यपुस्तकों पर आधारित है। निकट भविष्य में यह सामग्री अध्यापक संदर्शिका के रूप में प्रकाशित की जाएगी।

शैक्षिक मूल्यांकन के संसाधन सम्पन्न व्यक्ति

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने पांडिचेरी के संघ क्षेत्र के लिए अंग्रेजी, गणित, विज्ञान एवं सामाजिक अध्ययन में शैक्षिक मूल्यांकन में संसाधन सम्पन्न व्यक्तियों के प्रशिक्षण के लिए पांडिचेरी में 12 और 13 मई 1982 को एक कार्यगोष्ठी आयोजित की जिसमें हेडमास्टरों, स्कूल निरीक्षकों, और शिक्षकों के 21 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। प्रतिभागियों को सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों पक्षों में अभिविन्यस्त किया गया।

सिक्किम के वरिष्ठ शिक्षकों का अभिविन्यास

सिक्किम सरकार की प्रार्थना पर रा० शै० अ० और प्र० प० ने सिक्किम के शिक्षा निदेशालय के सहयोग से 14 से 20 जुलाई 1982 तक एक कार्यगोष्ठी गणित, जीवविज्ञान, भौतिकी और रसायन विज्ञान के वरिष्ठ शिक्षकों को मूल्यांकन की धारणा और विधियों में अभिविन्यस्त करने के लिए की। इस प्रशिक्षण-कार्यक्रम में जीवविज्ञान के 35 शिक्षक, रसायन विज्ञान के 17 शिक्षक, भौतिकी के 13 शिक्षक और गणित के 47 शिक्षक सम्मिलित हुए। प्रतिभागियों ने अपने अपने क्षेत्रों में परीक्षण इकाइयाँ बनाईं। हर वर्ग ने प्रभावी कक्षा-शिक्षण के लिए वार्षिक प्लैन भी बनाए। इन वार्षिक प्लैनों को निदेशालय में जाँचा जाएगा और उनके कार्यान्वियन के लिए कदम उठाए जाएँगे।

पहले स्तर की कार्यगोष्ठी के बाद दूसरी कार्यगोष्ठी नई दिल्ली के राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान में 10 से 17 फरवरी 1983 तक की गई जिसमें वैज्ञानिक समन्वयक को मिलाकर 19 प्रतिभागियों ने हिस्सा लिया। भौतिकी, रसायन विज्ञान, जीव-विज्ञान और गणित की शिक्षण इकाइयाँ बनाई गईं।

कार्यगोष्ठी की समाप्ति पर 250 पृष्ठों की रिपोर्ट निकाली गई जिसमें पृष्ठभूमि की सामग्री और नमूने की सामग्री शामिल है। अपने अपने स्कूल में इन विषयों को पढ़ाने वाले सिक्किम के शिक्षकों के लिए यह सामग्री बड़ी उपादेय होगी, ऐसी आशा है। सिक्किम का शिक्षा निदेशालय इस सामग्री को राज्य में अच्छी तरह बँटवाने के लिए प्रकाशित कर रहा है।

प्रश्नपत्र बनाने वालों के लिए प्रशिक्षण कोर्स

पटियाला के राज्य शिक्षा महाविद्यालय में 20 से 24 सितम्बर 1982 तक सेंट्रल बोर्ड ऑफ सेकंडरी एजुकेशन के प्रश्नपत्र बनाने वालों के लिए एक प्रशिक्षण कोर्स का आयोजन किया गया जिसमें कालेजों और विश्वविद्यालयों में सामाजिक विज्ञान तथा भाषाएँ पढ़ाने वाले 31 विषय विशेषज्ञ और हेडमास्टर सम्मिलित हुए। यह कार्यक्रम कक्षा X और XII की परीक्षाओं के प्रश्नपत्र बनाने वालों को बेहतर प्रश्नपत्र बनाने की विधा में प्रशिक्षित करने के निमित्त था। कार्यगोष्ठी में बनाए गए नमूने के हर विषय के प्रश्नपत्रों को बाद में बोर्ड को भेज दिया गया जिससे वह उन्हें प्रकाशित कर सम्बद्ध स्कूलों में भेज सके।

विज्ञान और गणित में प्रश्नपत्र बनाना

मध्य प्रदेश के बोर्ड ऑफ सेकंडरी एजुकेशन के सहयोग से विज्ञान और गणित में प्रश्नपत्र बनाने की विशेषज्ञता प्रदान करने के उद्देश्य से, पचमढ़ी में 3 से 12 नवम्बर 1982

तक दस दिनों वाली एक कार्यगोष्ठी की गई जिसमें कुल 44 प्रतिभागी और दो संसाधन सम्पन्न व्यक्ति आए। कार्यगोष्ठी में भौतिकी, रसायन विज्ञान, जीवविज्ञान और गणित के प्रश्नपत्र बनाए गए।

शैक्षिक मूल्यांकन में प्रशिक्षण कोर्स

हैदराबाद के उस्मानिया विश्वविद्यालय के मॉडल हाई स्कूल में 6 से 15 दिसम्बर 1982 तक जीवविज्ञान एवं गणित के संसाधन सम्पन्न व्यक्तियों के लिए शैक्षिक मूल्यांकन में एक अखिल भारतीय प्रशिक्षण कोर्स आयोजित किया गया जिसमें सिक्किम, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, जम्मू एवं कश्मीर, कर्नाटक, केरल, आंध्र प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, राजस्थान और मध्य प्रदेश के गणित के 18 और जीवविज्ञान के 12 प्रतिभागी उपस्थित हुए। कार्यक्रम में सैद्धांतिक भाषण हुए ताकि शैक्षिक मूल्यांकन, विशेषकर मूल्यांकन की प्रकृति और क्षेत्र, विषयवस्तु का विश्लेषण, शैक्षिक उद्देश्य, प्रश्नों के रूप, बेहतर प्रश्नपत्र बनाने की कला और उनके विश्लेषण का प्रशिक्षण दिया जा सके। व्यावहारिक कार्यों में शामिल था विभिन्न रूपों में आब्जेक्टिव बेस्ड प्रश्न बनाने और इकाई परीक्षण विकसित करने का गहरा अभ्यास। प्रतिभागियों ने कुल मिलाकर गणित में 8 और जीवविज्ञान में 3 इकाई परीक्षण बनाए। इसके अलावा हर वर्ग ने अपनी इकाई के वस्तु तत्व का विश्लेषण किया और नमूने की सचित्र सामग्री भी बनाई।

संसाधन सम्पन्न व्यक्तियों का प्रशिक्षण

उड़ीसा के बोर्ड ऑफ़ सेकंडरी एजुकेशन के संसाधन सम्पन्न व्यक्तियों को 'नूतन परीक्षण' में प्रशिक्षित करने के लिए पुरी में 28 दिसम्बर 1982 से 5 जनवरी 1983 तक नौ दिनों वाली एक कार्यगोष्ठी की गई जिसमें उड़ीसा राज्य के विभिन्न कालेजों, शिक्षा महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों के 52 प्रोफ़ेसर, रीडर और सेकंडरी स्कूलों के हेडमास्टर सम्मिलित हुए। अंग्रेजी, उड़िया, नागरिक शास्त्र, इतिहास, भूगोल, सामान्य विज्ञान और गणित विषयों के लिए यह कार्यक्रम हुआ जिसमें शैक्षिक मूल्यांकन एवं मापन की मूल अवधारणाओं तथा प्रासंगिक प्रश्नपत्र बनाने की कला पर सामान्य भाषण हुए। अपने अपने विषय क्षेत्रों में हर दल ने संतुलित प्रश्नपत्र बनाए।

गणित, विज्ञान और सामाजिक विज्ञान के संसाधन सम्पन्न व्यक्तियों को प्रशिक्षित करने के लिए फरवरी 1983 में केरल में शैक्षिक मूल्यांकन में एक कार्यगोष्ठी की गई। यह कार्यगोष्ठी केरल के शिक्षा निदेशालय के सहयोग से की गई। इसमें 46 व्यक्तियों ने भाग लिया जिन्हें शैक्षिक मूल्यांकन के सैद्धांतिक और व्यावहारिक पक्षों और उसकी धारणाओं और कला में प्रशिक्षित किया गया। विभिन्न विषयों के इकाई परीक्षण बनाए गए जिन्हें बाद में केरल के शिक्षा निदेशालय द्वारा प्रकाशित कर राज्य के स्कूलों में बँटवाया जाएगा।

प्रश्न बैंक बनाना

तमिलनाडु की राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् को विज्ञानों, राजनीतिक विज्ञान, इतिहास, अर्थशास्त्र और गणित विषयों में सीनियर सेकंडरी स्तर के लिए प्रश्न बैंक बनाने के काम में राष्ट्रीय परिषद् ने अपनी विशेषज्ञता और सहायता प्रदान की ।

नमूने के प्रश्नपत्र बनाना

नई दिल्ली के सेंट्रल बोर्ड ऑफ सेकंडरी एजुकेशन को कक्षा X की अंग्रेज़ी (बी कोर्स) के लिए नमूने के प्रश्नपत्र बनाने में रा० शै० अ० और प्र० प०,ने मार्गदर्शन और सहायता प्रदान की । नमूने के इन प्रश्नपत्रों को बोर्ड ने प्रकाशित कर स्कूलों में बँटवाया ।

परामर्श सेवाएँ

नई दिल्ली के आर्मी पब्लिक स्कूल और ब्लु बेल्स स्कूल को रा० शै० अ० और प्र० प० ने परामर्श सेवाएँ प्रदान कीं । इन स्कूलों के शिक्षकों को मूल्यांकन की अवधारणा में और सभी विषयों अर्थात् भाषाओं, विज्ञानों, गणित और सामाजिक विज्ञानों में कक्षा-मूल्यांकन के लिए इकाइयों के निर्माण में प्रशिक्षित किया गया ।

प्रकाशन

रा० शै० अ० और प्र० प० ने 1982-83 के दौरान शैक्षिक मूल्यांकन के निम्नलिखित प्रकाशन तैयार किए—

(1) प्रारम्भिक स्तर पर मूल्यांकन (बिहार के संसाधन सम्पन्न व्यक्तियों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम की रिपोर्ट) ।

(2) सेकंडरी स्तर पर आब्जेक्टिव बेस्ड शिक्षण और प्रशिक्षण (सिक्किम सरकार का शिक्षा निदेशालय) ।

(3) इतिहास में मॉडल प्रश्नपत्र बनाने के लिए हुई कार्यगोष्ठी की रिपोर्ट (शिलॉङ् स्थित मेघालय राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्) ।

(4) प्रारम्भिक स्कूलों में छात्र मूल्यांकन : सिद्धांत और व्यवहार ।

(5) क्राइटेरियन रेफरेन्स्ड टेस्टिंग : ए मोनोग्राफ़ ।

(6) सैम्पुल यूनिट टेस्ट्स इन हिस्ट्री ।

(7) रिसर्च एंड डेवेलपमेंट इन टैलेंट सर्च :
ए स्टडी इन दि यूज़ ऑफ क्रिएटिविटी टेस्ट्स ।

(8) इंटर्व्यू शेड्यूल ऑन एजुकेशनल एंड वोकेशनल एस्पिरेशंस फॉर दि स्टुडेंट्स ऑफ़ क्लास XII ।

12

सर्वेक्षण, आधार सामग्री प्रक्रिया और प्रलेखन

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् सर्वेक्षण कराती है, आधार सामग्री प्रक्रिया की सेवाएँ उपलब्ध करती है, आधार सामग्री का विश्लेषण करती है, चुने हुए शैक्षिक आँकड़ों और जानकारी को एकत्र करती है, सर्वेक्षण विधियों में प्रशिक्षण प्रदान करती है, और नमूने के सर्वेक्षण करने के लिए राज्यों के कार्मिकों का अभिविन्यास करवाती है।

सर्वेक्षणों के बाद आधार सामग्री का विश्लेषण नमूने के आधार पर किया जाता है जिससे कि इस आधार सामग्री की बुनियाद पर शिक्षा के लिए जिला विकास योजनाएँ बन सकें। एकत्र की गई आधार सामग्री का उपयोग अन्य बातों के अलावा स्कूल

मैपिंग के लिए किया जाता है और देश में नए स्कूलों की स्थापना इन सर्वेक्षण-परिणामों के आधार पर ही होती है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के पास आधार सामग्री प्रक्रिया के लिए कई मशीनें हैं। इसके पास कम्प्यूटर टर्मिनल है जिसमें LSI-II लगा हुआ है। इससे आधार सामग्री प्रक्रिया की राष्ट्रीय परिषद् की क्षमता बढ़ जाती है। कम्प्यूटर टर्मिनल में LSI-II/10 प्रोसेसर है जिसकी वर्ड मेमोरी 320 K 16-bit है।

शैक्षिक सर्वेक्षण

प्राथमिक स्तर पर नामांकन एवं अवरोधन दरों पर दोपहर के खाने के कार्यक्रम का प्रभाव

इस विषय पर रा० शै० अ० और प्र० प० ने एक अध्ययन कराया। अध्ययन का वित्त पोषण यू० एस० ए० आइ० डी० ने किया। लड़कों और लड़कियों पर अलग अलग अध्ययन किए गए। इसी प्रकार अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जन जातियों के लिए अलग अध्ययन किया गया। इस अध्ययन के अंतर्गत निम्नलिखित 13 राज्य आ जाते हैं जहाँ सी० ए० आर० ई० की मदद से दोपहर के खाने का कार्यक्रम चल रहा है :

(1) आंध्र प्रदेश
(2) उड़ीसा
(3) उत्तर प्रदेश
(4) कर्नाटक
(5) केरल
(6) गुजरात
(7) तमिलनाडु
(8) पंजाब
(9) पश्चिमी बंगाल
(10) मध्य प्रदेश
(11) महाराष्ट्र
(12) राजस्थान
(13) हरियाणा

राज्यों को दो वर्गों में बाँटा गया—वे राज्य जहाँ यह कार्यक्रम केवल सी० ए० आर० ई० की सहायता से चल रहा है और वे राज्य जहाँ यह कार्यक्रम सी० ए० आर० ई० की सहायता के साथ-साथ देशी तरीकों से भी चल रहा है। इस अध्ययन में मापन की इकाई जिला था। हरियाणा और कर्नाटक के राज्यों में मापन की इकाई ब्लॉक था।

आधार सामग्री के विश्लेषण से दोपहर के खाने के प्रभाव के कोई सुनिश्चित प्रमाण नहीं मिले, संभवत: इस कारण कि मापन की इकाई इस प्रयोजन के लिए बहुत बड़ी थी। इसीलिए हरियाणा और कर्नाटक में ब्लॉक स्तर के अध्ययन के परिणाम अधिक स्पष्ट हैं।

शैक्षिक रूप से पिछड़े नौ राज्यों में प्राथमिक स्तर पर निष्क्रियता और स्कूल छोड़ जाने वालों का अध्ययन

इस अध्ययन को लड़कों और लड़कियों में अलग अलग किया गया। इसी प्रकार अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों तथा शहरी और ग्रामीण बच्चों पर अलग अलग किया गया। इस अध्ययन के अंतर्गत नीचे लिखे राज्य आ जाते हैं—

(1) असम
(2) आंध्र प्रदेश
(3) उड़ीसा
(4) उत्तर प्रदेश
(5) जम्मू एवं कश्मीर
(6) पश्चिम बंगाल
(7) बिहार
(8) मध्य प्रदेश
(9) राजस्थान
(10) हिमाचल प्रदेश

हिमाचल प्रदेश शैक्षिक रूप से पिछड़ा राज्य नहीं है। किंतु उसे राज्य सरकार की प्रार्थना पर इस अध्ययन के लिए ले लिया गया।

आधार-सामग्री के संकलन का शेड्यूल बन चुका है और हिन्दी में छप भी चुका है। अध्ययन किए जाने वाले स्कूलों का नमूना अंतिम रूप पा रहा है।

चौथे अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण पर आधारित नमूने का अध्ययन

अध्ययन को नमूने के आधार पर किया गया। उद्देश्य था स्कूल प्लांट, उपकरण, पाठ्यक्रमीय और पाठ्येतर सुविधाओं की उपलब्धि का अध्ययन। चौथे अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण के दौरान प्रयुक्त स्कूल जानकारी के फार्मों को ही आधार बनाया गया। नमूने के अलग-अलग फ्रैक्शंस को अलग-अलग प्रकार के स्कूलों अर्थात् प्राथमिक, मिडिल, सेकंडरी और हायर सेकंडरी अथवा समकक्ष पर लागू किया गया। हर जिले से स्कूलों का एक एक नमूना लिया गया। पचास प्रतिशत से अधिक जिलों ने स्कूल फार्म नहीं लौटाए हैं। हिमाचल प्रदेश, जम्मू एवं कश्मीर, कर्नाटक, उड़ीसा, पंजाब, तमिलनाडु, त्रिपुरा के राज्यों और अंडमान व निकोबार द्वीप समूह, दिल्ली, गोआ दमन व दिउ और लक्षद्वीप के संघ क्षेत्रों की आधार सामग्री को कम्प्यूटर द्वारा देख लिया गया है और परियोजना पर रिपोर्ट तैयार हो रही है।

चौथे अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण की आधार सामग्री के आधार पर जिला शिक्षा योजनाओं का विकास

प्राथमिक और मिडिल स्तरों पर शैक्षिक सुविधाओं के नियोजन के लिए चौथे सर्वेक्षण की आधार सामग्री को प्रयुक्त करने में जिला और ब्लॉक स्तर के अधिकारियों के अभिविन्यास का एक कार्यक्रम कुछ राज्यों में शुरू किया गया है। उन ग्रामीण क्षेत्रों में, जहाँ प्राथमिकता के आधार पर प्राथमिक स्कूलों के खोले जाने की जरूरत है या जहाँ के प्राथमिक स्कूलों को मिडिल स्तर तक बढ़ा दिए जाने की जरूरत है, बस्तियों की खोज-पहचान के लिए एक तरीका ढूंढ़ा गया। इस वर्ष 1982-83 के दौरान राज्य स्तर का प्रशिक्षण गोआ, दमन व दिउ के लिए पंजिम में, तमिलनाडु के लिए मद्रास में और बिहार के लिए भागलपुर में आयोजित किया गया।

राजस्थान में अ० जा०/अ० जनजाति के लिए शैक्षिक सुविधाओं का नमूने का सर्वेक्षण

यह सर्वेक्षण इस बात का पता लगाने के लिए किया जा रहा है कि अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों द्वारा बहुसंख्यक रूप में आबाद किए गए इलाकों में प्राथमिक शिक्षा के लिए क्या सुविधाएँ उपलब्ध हैं और इन इलाकों में बच्चों को स्कूल क्यों नहीं भेजा जाता या पढ़ाई पूरी करने के पहले ही उन्हें प्राथमिक स्कूल से क्यों हटा लिया जाता है। अध्ययन के लिए भरतपुर और डूंगरपुर नामक जिलों को चुना गया है। डूंगरपुर में आधार सामग्री इकट्ठा कर ली गई है और भरतपुर में इकट्ठा की जा रही है।

लड़कियों के शैक्षिक पिछड़ेपन का अध्ययन

आंध्र प्रदेश, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, जम्मू व कश्मीर, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान और हरियाणा राज्यों में, जहाँ प्राथमिक स्तर पर दाखिला लेने वाली लड़कियों की संख्या काफी कम है, लड़कियों के शैक्षिक पिछड़ेपन का अध्ययन करने के लिए एक अनुसंधान-परियोजना हाथ में ली गई है जिसे यूनिसेफ वित्तीय सहायता दे रहा है। उम्मीद की जाती है कि एकत्र की गई जानकारी के आधार पर दाखिला लेने वाली लड़कियों की संख्या बढ़ाने और बीच में ही पढ़ाई छोड़ देने की प्रवृत्ति को कम करने के उपाय किए जा सकेंगे। अधिकांश राज्यों में आधार सामग्री को एकत्र कर विश्लेषित किया जा चुका है। एक राज्य ने तो जिला रिपोर्टों को प्रकाशित भी कर दिया है। इस अध्ययन में शिक्षकों, अभिभावकों और समुदाय के अन्य सदस्यों से भी आधार सामग्री एकत्र की गई है।

नमूने के शैक्षिक सर्वेक्षण की विधियों के प्रयोग में प्रशिक्षण-पाठ्यक्रम

नमूने के शैक्षिक सर्वेक्षण की विधियों को प्रयुक्त करने के तीसरे प्रशिक्षण-पाठ्यक्रम का आयोजन अजमेर के क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय में 24 फरवरी से 5 मार्च 1983 तक किया गया। यह पाठ्यक्रम राज्य शिक्षा संस्थान/राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के कर्मचारियों एवं विभिन्न राज्यों/संघ क्षेत्रों के शिक्षा विभागों के अधिकारियों के लिए किया गया था। इस प्रशिक्षण-पाठ्यक्रम में 13 राज्यों/संघ क्षेत्रों के 16 प्रतिभागियों ने भाग लिया जिनमें अजमेर के क्षे० शि० म० का एक प्रतिनिधि भी सम्मिलित है।

चौथे अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण की रिपोर्ट

चौथे अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण की रिपोर्ट प्रकाशित की गई है। रिपोर्ट में ग्रामीण क्षेत्रों में स्कूलों, शिक्षकों, नामांकन आदि जैसी शैक्षिक सुविधाओं की उपलब्धता के बारे में जानकारी मिलती है।

शिक्षा व्यवस्था पर रिपोर्ट

भारत के राज्यों और संघ क्षेत्रों में विद्यमान शिक्षा व्यवस्था की रिपोर्ट प्रकाशित की गई।

पुस्तकालय और प्रलेखन

पुस्तकालय और प्रलेखन एकक अपने सदस्यों को सभी प्रासंगिक सुविधाएँ उपलब्ध कराता रहा। वर्ष 1982-83 के इस एकक संबंधी आँकड़े इस प्रकार हैं :

1. खरीदी गई पुस्तकों की संख्या	1239
2. मुफ्त में मिली पुस्तकों की संख्या	855
3. विभिन्न विभागों द्वारा परियोजनाओं के लिए खरीदी और पुस्तकालय की अवाप्ति-पंजिका में अवाप्त की गईं पुस्तकों की संख्या	1737
4. बढ़ाई गई पुस्तकों की संख्या	3831
5. पुस्तकों और जिल्द चढ़ी पत्रिकाओं की संख्या	120893
6. सदस्यों की संख्या	2128

7. इस वर्ष जिल्द मढ़वाई गई पुस्तकों और पत्रिकाओं की संख्या (2037+562)	2599
8. पुस्तकालय की परामर्श-सुविधाओं से लाभ उठाने वाले बाहर के अनुसंधान-छात्रों की संख्या	3596
9. खरीदी गई पत्रिकाएँ	329
10. आदान-प्रदान के आधार पर प्राप्त पत्रिकाएँ	19
11. निःशुल्क प्राप्त पत्रिकाएँ	150
12. खरीदे गए अखबारों की संख्या	16
13. पत्रिकाओं के खरीदे गए पुराने अंक	83

प्रलेखन सेवाएँ

प्रलेखन सेवाओं के अंतर्गत वर्ष के दौरान निम्नलिखित सेवाएँ प्रदान की गईं :

1. करेंट कंटेंट्स	12 अंक
2. ऐक्सेशन लिस्ट	6 अंक
3. शिक्षा और अन्य सम्बद्ध विषयों की प्रेस कतरनें	1012

रिप्रोग्राफिक सेवाएँ

पुस्तकालय रिप्रोग्राफिक सेवाएँ प्रदान करने का कार्य करता रहा और विभिन्न विभागों/एककों/प्रकोष्ठों/वर्गों के अनुरोध पर दस्तावेज़ों की 12887 फोटो कापियाँ बनाई गईं।

स्टॉक प्रमाणन

पुस्तकालय के स्टॉक प्रमाणन का कार्य कई चरणों में करने की योजना बनाई गई है जिससे कि एक चक्र तीन वर्षों में पूरा हो जाए। इस दिशा में काम शुरू कर दिया गया है। संकलन के नौ अनुक्रमों का प्रमाणन हो चुका है। प्रमाणन के पहले चक्र के 1984 में पूरे हो जाने की संभावना है। स्टॉक प्रमाणन के कार्य को एक सदा चलती रहने वाली परियोजना के रूप में शुरू किया गया है ताकि प्रमाणन का काम भी चलता रहे और पुस्तकालय के सामान्य कामों में कोई रुकावट न आए।

प्रशिक्षण

पुस्तकालय विज्ञान में चार महीनों के प्रशिक्षण के लिए यू० एन० डी० पी० कार्यक्रम के अंतर्गत यूनेस्को की छात्रवृत्ति पर भूटान के श्री यू० टी० लामा दिसम्बर 1982 में इस एकक में आए। श्री लामा का प्रशिक्षण काल 31 मार्च 1983 को समाप्त हो गया पर उन्हें दो महीनों का विस्तार दे दिया गया है।

स्कूल पुस्तकालयों के निदेशालय द्वारा आयोजित एक अभिविन्यास कार्यक्रम में संसाधन सम्पन्न व्यक्ति के रूप में भाग लेने के लिए पुस्तकालय और प्रलेखन एकक के अध्यक्ष श्री के० एल० लूथरा को प्रतिनियुक्त किया गया।

कर्मचारियों की उन्नति

प्रलेखन अधिकारी श्री एस० एल० वर्मा एक वर्ष के अध्ययन अवकाश पर गए और इस अवधि में उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय से एम० सी० आई० एससी० की डिग्री प्राप्त की।

13

अनुसंधान और नवीन प्रक्रियाएँ

अनुसंधान तथा अनुसंधान के लिए प्रोत्साहन परिषद् के महत्वपूर्ण क्रिया-कलाप हैं। परिषद् के विभागों/एककों और क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालयों द्वारा किए जा रहे अनुसंधानों के अलावा परिषद् बाहर के संगठनों को आर्थिक सहायता प्रदान कर शैक्षिक अनुसंधानों को प्रोत्साहन देती है। परिषद् कनिष्ठ अनुसंधान अध्येता वृत्तियाँ प्रदान करती है ताकि शैक्षिक समस्याओं की खोज-बीन की जा सके और देश के विभिन्न भागों में सक्षम अनुसंधानकर्ताओं की टोलियाँ बनाई जा सकें। परिषद् द्वारा प्रारंभ किए गए अथवा पोषित अधिकांश अनुसंधान कार्य पहले से पहचाने हुए क्षेत्रों में प्राथमिकता के आधार पर किए जा रहे हैं।

वर्ष 1974 में स्थापित शैक्षिक अनुसंधान और नवाचार समिति (एरिक) अनुसंधान को पोषित करने वाला प्रमुख तंत्र है। विश्वविद्यालयों और अनुसंधान संस्थाओं के शिक्षा और सहबद्ध विषयों के विख्यात अनुसंधानकर्ता, राज्य शिक्षा संस्थानों/राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषदों के प्रतिनिधि इस समिति के सदस्य हैं। साथ ही, इस समिति में राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान और क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालयों के सभी विभागाध्यक्ष; राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान और क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालयों के प्रोफेसर स्थायी आमंत्रित सदस्य हैं।

एरिक के मुख्य क्रियाकलाप इस प्रकार हैं :

—शिक्षा और सहबद्ध विज्ञानों की नवाचारीय परियोजनाओं पर अनुसंधान को प्रोत्साहित करना।

—शिक्षा में अनुसंधान करने के लिए छात्रवृत्तियों की व्यवस्था करना।

—पीएच० डी० शोधों और प्रबंधों के लिए प्रकाशन अनुदान देना।

—शोध-निष्कर्षों का समय-समय पर प्रसार करना और अनुसंधान सम्मेलनों का आयोजन करना।

रा० शै० अ० और प्र० प० अपने विभागों/एककों से जिन अनुसंधान प्रस्तावों को प्राप्त करती है, उनका मूल्यांकन सर्वप्रथम छानबीन समिति द्वारा किया जाता है जिसमें बाह्य और आन्तरिक सदस्य होते हैं और जिसकी अध्यक्षता संयुक्त निदेशक करता है।

रा० शै० अ० और प्र० प० अपने विभागों/एककों के जिन प्रस्तावों को प्राप्त करती है उनका सर्वप्रथम मूल्यांकन संयुक्त निदेशक की अध्यक्षता में बाह्य और आंतरिक सदस्यों से गठित छानबीन समिति द्वारा किया जाता है। सामान्यत: प्रस्तावों का मूल्यांकन उनकी सार्थकता और रूपरेखा की उपयुक्तता आदि के आधार पर किया जाता है।

अन्य संस्थानों से प्राप्त अनुसंधान प्रस्तावों और प्रकाशन अनुदान के अनुरोधों का मूल्यांकन विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है। राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान और क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालयों में कनिष्ठ अनुसंधान अध्येता वृत्तियाँ प्रदान करके शैक्षिक समस्याओं पर डॉक्टरेट स्तर पर किए जा रहे अनुसंधान को पोषित किया जाता है। इस वर्ष राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान में सात कनिष्ठ अनुसंधान अध्येता और आठ कनिष्ठ अनुसंधान अध्येता क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालयों में डॉक्टरेट की उपाधि के लिए काम करते रहे।

सम्मेलन/संगोष्ठियाँ/व्याख्यान

राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान की व्याख्यानमाला के अंतर्गत नौ वक्ताओं को आमंत्रित किया गया था। उनके द्वारा दिए गए व्याख्यान विस्तृत विषयों से संबंधित थे। इन विख्यात

व्यक्तियों के नाम और जिन विषयों पर उन्होंने अपने विचार व्यक्त किए थे, उनका विवरण नीचे दिया जा रहा है। नोबेल पुरस्कार विजेता प्रोफेसर सी० वी० रामन के जन्मोत्सव के सिलसिले में 6 नवम्बर 1982 को अनुसंधानकर्ताओं का एक सम्मेलन भी रा० शै० अ० और प्र० प० ने आयोजित किया।

क्र० सं०	वक्ता	विषय	तिथि
1.	डा० सी० गोपालन, न्यूट्रीशन फाउंडेशन ऑफ इंडिया, नई दिल्ली	बच्चों की पोषण सम्बन्धी समस्याएँ	30 जून 1982
2.	डा० बी० एन० जोशी, बम्बई	मन को लगाए रखने की वृत्ति पर शिक्षा	16 जुलाई 1982
3.	सुश्री बेटी ऐडम्स, नेशनल फाउंडेशन फॉर एजुकेशनल रिसर्च	यूनाइटेड किंगडम में शैक्षिक अनुसंधान	2 और 3 अगस्त 1982
4.	डा० एस० रामकृष्ण, तमिल विद्वान	महाकवि सुब्रह्मण्य भारती	18 सितम्बर 1982
5.	डा० एम० एल० फरहत त्रिपॉल, अलफतह विश्वविद्यालय	तीसरी दुनिया में सामाजिक विकल्प	24 सितम्बर 1982
6.	सुश्री एबन बाना, मैक्स म्यूलर भवन, 3, कस्तूरबा मार्ग, नई दिल्ली	रुडॉल्फ स्टीनर के दर्शन पर आधारित प्रभावी स्कूल प्रणाली	24 जनवरी 1983
7.	प्रो० डब्ल्यू० मिटर, निदेशक, अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा एवं अनुसंधान संस्थान, फ्रैंकफुर्त	जर्मनी के विशेष संदर्भ में यूरोप में शैक्षिक अनुसंधान	5 मार्च 1983
8.	डा० श्रीमती देवकी जैन, अध्यक्ष, सामाजिक अध्ययन न्यास, नई दिल्ली	स्त्रियाँ : विकास और रोजगार	8 मार्च 1983
9.	डा० कुमारी सुशीला भान, अध्यक्ष, भारतीय सामाजिक शोध परिषद्, नई दिल्ली	स्त्रियाँ और विकास	8 मार्च 1983

शिक्षा में अनुसंधान का तीसरा सर्वेक्षण

शिक्षा में अनुसंधान के लिए परिषद् ने तीसरा सर्वेक्षण शुरू कर दिया है। भारतीय शिक्षा के विभिन्न पक्षों पर भारत और विदेशों में किए गए लगभग 1600 शोध कार्यों के सारांश एकत्र किए जा चुके हैं। पांडुलिपि को प्रकाशनार्थ सम्पादित किया जा रहा है।

पूरी हुई शोध-परियोजनाएँ

वर्ष के दौरान पूर्ण की गई शोध परियोजनाएँ, प्रमुख निष्कर्षों के साथ नीचे दी जा रही हैं :

पूरी हुई परियोजनाएँ

क्र० सं०	परियोजना का शीर्षक	प्रमुख अन्वेषक
1	2	3
1.	गुजरात राज्य में कक्षा VII के छात्रों के लिए प्राथमिक स्कूल उपलब्धि-परीक्षणों का निर्माण और मानकीकरण	डा० जयंती भाई एच० शाह, भावनगर
2.	आंध्र प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा का अर्थशास्त्र	श्री बी० राजय्या, वारंगल
3.	प्राथमिक स्कूलों में विज्ञान-शिक्षण — एक प्रशिक्षण कार्यक्रम	डा० के० आदिनारायण गांधीग्राम
4.	माध्यमिक स्कूल शिक्षकों की शिक्षण योग्यता का अध्ययन	डा० बी० के० पासी इंदौर विश्वविद्यालय
5.	राष्ट्रीय प्रतिभा चयन की कसौटी की पहचान के लिए अध्ययन	डा० (कुमारी) सुदेश गक्खर, चंडीगढ़
6.	राजस्थान के स्कूलों में कक्षा-उपलब्धि के अधिगम-परिवेश की विशेषताओं का अध्ययन	डा० रामपाल सिंह अजमेर
7.	पाँचवीं कक्षा को विज्ञान पढ़ाने में पारम्परिक विधियों की तुलना में शैक्षिक खिलौनों के इस्तेमाल की प्रभावकारिता का अध्ययन	श्री शंकरनारायण शास्त्री, हसन
8.	प्राथमिक स्कूल की पढ़ाई बीच में ही छोड़ जाने वालों पर नॉन ग्रेडेड इकाइयों का प्रभाव	डा० जी० सुब्रह्मण्य पिल्लै, मदुरै

1	2	3
9.	माध्यमिक स्तर के पत्राचार संस्थानों के छात्रों से सम्बद्ध चरों का अध्ययन	डा० ओ० एस० देवल दिल्ली
10.	दिल्ली और बम्बई के शहरी मिडिल और उच्चतर माध्यमिक स्कूलों के शिक्षकों के लिए कामवाद पर अभिविन्यास कोर्स (दूसरी अवस्था)	श्रीमती के० निश्चल बम्बई
11.	कबाड़ की सहायता से सुधरी हुई सस्ती शिक्षण-सामग्री का निर्माण	श्री एन० के० श्रीवास्तव बाँसवाड़ा
12.	सामान्य स्कूलों में अपंग बच्चे	डा० ए० बी० पाठक उदयपुर
13.	सन् 1973 से 1977 के बीच वृहत्तर बम्बई और थाणा जिलों के म्यूनिसिपल और स्थानीय प्राधिकरण के स्कूलों की कक्षा I से VIII तक के, बीच में ही पढ़ाई छोड़ देने वाले बच्चों की इस प्रवृत्ति का अध्ययन	श्रीमती माधुरी शाह बम्बई
14.	मिर्जापुर के जनजातीय छात्रों की समस्याओं, आकांक्षाओं, जीवन मूल्यों और व्यक्तित्व पैटर्नों का अध्ययन	डा० एस० एस० श्रीवास्तव, वाराणसी
15.	पढ़ाई के लिए गाँवों से शहर जाने वाले देहाती छात्रों की सामाजिक मनोवैज्ञानिक समस्याएँ	डा० सुविमल देव कलकत्ता
16.	उड़ीसा के स्कूली बच्चों के बुद्धि-विकास का खुराक और वृद्धि से संबंध	डा० एस० पी० पटेल भुवनेश्वर
17.	प्राथमिक स्कूलों के बच्चों की पठन-उपलब्धि को प्रभावित करने वाले कुछ कारकों का गहन अध्ययन	प्रो० आर० श्रीनिवास राव, तिरुप[illegible]
18.	बच्चों के लिए आह्लाद के क्षण	प्रो० रामाधार सिंह कानपुर

1. गुजरात राज्य में कक्षा VII के छात्रों के लिए प्राथमिक स्कूल उपलब्धि-परीक्षणों [प्रा० स्कू० उ० प०] का निर्माण और मानकीकरण

प्रमुख अन्वेषक : डा० जयन्तीभाई एच० शाह

गुजरात सरकार ने चूँकि 7+5+2 शिक्षा प्रणाली को चलाने का निश्चय किया है इसलिए कक्षा VII पहली अवस्था का अंतिम बिंदु होगा। इसीलिए यह पता लगाने की

जरूरत है कि अगली अवस्था शुरू करने की सामर्थ्य इन छात्रों में आ गई है या नहीं। इस अध्ययन का लक्ष्य सातवीं कक्षा के छात्रों की वास्तविक सामर्थ्य आंकने के लिए प्राथमिक स्कूल उपलब्धि-परीक्षणों [प्रा० स्कू० उ० प०] का निर्माण और मानकीकरण है।

प्रा० स्कू० उ० प० अमरीकी प्रणाली के स्कूल अथवा कालेज योग्यता परीक्षण की शैली में बनाया गया है। परीक्षण में चार उप-परीक्षण शामिल हैं जो स्कूल अधिगम योग्यताओं को सीधे सीधे नापते हैं।

पहली दो जाँचों में, 90 छात्रों पर परीक्षण किए गए। तीसरी जाँच के लिए 200 बच्चों को लिया गया जिन्हें उप-परीक्षणों के लिए 75, 60, 80 और 50 के बहुवैकल्पिक मदों में बाँटा गया। चौथी जाँच में तीन जिलों के 12 स्कूलों के कक्षा VII के 399 छात्रों को चुना गया। इसके लिए हर उप-परीक्षण के वास्ते 25 मदों को लिया गया।

18 जिलों में से 10 जिलों के 52 स्कूलों को चुनने के लिए झुंड नमूना पद्धति अपनाई गई।

शहरी और अर्धशहरी क्षेत्रों के लड़कों और लड़कियों दोनों माध्यमों के बीच तथा शहरी और देहाती क्षेत्रों के लड़कों और लड़कियों दोनों माध्यमों के बीच उल्लेखनीय अंतर देखे गए। लेकिन अर्धशहरी और देहाती क्षेत्रों के लड़कों और लड़कियों दोनों माध्यमों के बीच के अंतर महत्वपूर्ण नहीं थे। अतएव, शहरी क्षेत्रों के लड़कों और लड़कियों के लिए अलग अलग आदर्श और अर्धशहरी तथा देहाती क्षेत्रों के लड़कों और लड़कियों के लिए मिले जुले आदर्श बनाए गए।

अंतर-परीक्षण विश्वसनीयता, प्रोडक्ट मोमेंट फार्मूला से निकाली गई। सभी सह-सम्बन्ध सकारात्मक थे और पर्याप्त रूप से बताते थे कि उप-परीक्षणों में कुछ समान कारक विद्यमान हैं। विश्वसनीयता के गुणांक 0.76 से 0.94 के बीच घटने-बढ़ने वाले थे। अभिपुष्टिकरण के लिए परीक्षा के प्राप्तांकों का प्रतिशत लिया गया और अन्य मानकीकृत परीक्षणों तथा अध्यापकों की श्रेणी को लिया गया।

2. आंध्र प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा का अर्थशास्त्र

प्रमुख अन्वेषक : श्री बी० राजय्या

विकासशील देशों में सामाजिक परिवर्तन के पीछे शिक्षा का हाथ होता है। चूंकि लड़कियों की पढ़ाई पिछड़ी है इसलिए सामाजिक परिवर्तन भी पिछड़ा है। शिक्षा एक ऐसी पूंजी है जिसे बढ़ाना होगा। सन् 1956 में आंध्र प्रदेश के बन जाने के बाद, शिक्षा के लिए जागरूकता बढ़ी है, इस बात के प्रमाण में वे आँकड़े देखे जा सकते हैं जो प्राथमिक शिक्षा में

दाखिला लेने वालों के हैं। औसत नामांकन 69.49 प्रतिशत है। नामांकित लड़कियों का अनुपात भी बढ़ा है। इस बढ़ोत्तरी का औसत प्रतिशत 3.62 का है। सच बात तो यह है कि लड़कियों का नामांकन लड़कों की अपेक्षा तेजी से बढ़ा है।

सन् 1956-57 और 1978-79 के बीच स्कूलों की संख्या में 36.5 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई। अवरोधन की दर कम होने से, प्राथमिक स्कूलों के उत्पादन और साक्षरता की दरों में ऊँचा अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। प्राथमिक स्कूलों के अध्यापकों की संख्या में वृद्धि होने से स्त्रियों की प्रतिभागिता बढ़ गई।

चूँकि उपभोग और निवेश के खर्चों को अलग-अलग कर पाना संभव नहीं हो सका, इसलिए मानव-निवेश की मात्रा को आंका नहीं जा सका। राष्ट्रीय घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में शिक्षा के खर्च के अंतर्गत प्राथमिक शिक्षा का खर्च बढ़ गया। राज्य की आमदनी 1606 प्रतिशत बढ़ी जबकि प्राथमिक शिक्षा का खर्च 776 प्रतिशत बढ़ा। लेकिन शिक्षा के कुल निवेश में प्राथमिक शिक्षा का हिस्सा इस अवधि में घट गया। प्रति छात्र औसत वार्षिक खर्च लगभग दस गुना बढ़ गया। सभी कक्षाओं में शैक्षिक क्षय कम होता गया। लड़कों के मुकाबले लड़कियों में पढ़ाई के बीच में ही स्कूल जाना बन्द कर देने की प्रवृत्ति कहीं ज्यादा दिखी। लड़कियों, और अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के बच्चों में वार्षिक क्षय की आवर्ती दर ज्यादा थी। अनुसूचित जनजाति के बच्चों में प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर शैक्षिक क्षय की घटनाएँ सबसे ज्यादा घटीं। चूँकि प्राथमिक शिक्षा प्रणाली के लिए यह संभव न हो सका कि स्कूल जाने की उम्र वाले सभी बच्चों को संभाल पाता, इसलिए स्कूल-छोड़ने वालों की संख्या बढ़ी।

आंध्र प्रदेश के विभिन्न जिलों में साक्षरता की दरों में काफी अंतर है। इनमें तेलंगाना क्षेत्र शैक्षिक दृष्टि से सबसे ज्यादा पिछड़ा हुआ है।

3. प्राथमिक स्कूलों में विज्ञान-शिक्षण—एक प्रशिक्षण कार्यक्रम

प्रमुख अन्वेषक : डा० के० आदिनारायण

इस अध्ययन ने प्राथमिक स्कूलों में विज्ञान-शिक्षण की विधियाँ बनाने की कोशिश की। इसके विशिष्ट उद्देश्य थे—(i) प्रारम्भिक विज्ञान के शिक्षण में निपुणताओं वाले क्षेत्रों की पहचान करना; (ii) शिक्षक में अपेक्षित निपुणता पर आधारित प्रारम्भिक विज्ञान के कोर्स का मूल्यांकन करना; (iii) छात्रों की निरीक्षण और जिज्ञासा की वृत्तियों के लिए निकष तैयार करना; (iv) शिक्षकों के लिए शिक्षण-साधनों के पैकेज तैयार करना; तथा (v) इन पैकेजों के लाभों और प्रभावों का पता लगाना।

कक्षा IV और V के लिए तमिलनाडु की सरकार द्वारा स्वीकृत विज्ञान-पाठ्यचर्या की दो इकाइयाँ शिक्षण के लिए चुनी गईं। प्रायोगिक विधि और पारम्परिक विधि से पढ़ाने के

लिए अलग अलग शिक्षण-पैकेज बनाए गए। प्रायोगिक विधि की कक्षा-गतिविधियों में विचार विमर्श, प्रदर्शन-शिक्षण आदि शामिल हैं जबकि पारम्परिक विधि में केवल लेक्चर व प्रदर्शन हैं। कक्षा के बाहर की गतिविधियाँ दोनों विधियों में समान हैं। दोनों विधियों की प्रभावकारिता की तुलना ज्ञान, बोध, निरीक्षण, जिज्ञासा और खोज की प्रवृत्ति के लिए हुए परीक्षण के आधार पर की गई। इस अध्ययन के लिए मदुरै जिले के अथूर पंचायत केन्द्र से सात ग्रामीण स्कूल और तीन अर्धशहरी स्कूल रैंडम सैम्पलिंग के आधार पर प्रयुक्त हुए थे।

कक्षा में पढ़ाने वाले अड़तालीस शिक्षकों को चुना गया था जिनमें से प्रायोगिक वर्ग को पढ़ाने वाले चौबीस शिक्षकों को कार्यक्रम के उद्देश्यों, विषय वस्तु के विश्लेषण, पढ़ाने की विधियों, तथा तकनीकों, मूल्यांकन की विधियों, कक्षा के आयोजन, परीक्षणों के संयोजन, पढ़ाते समय शिक्षक की भूमिका और प्रदर्शनों में अनुकूलित किया गया। नमूने के लिए 760 छात्रों को लिया गया था जिन्हें हर स्कूल में उम्र, मानसिक क्षमता और विज्ञान की पृष्ठभूमि-परीक्षा के आधार पर बराबर बराबर दलों में बाँट दिया गया था। हर दल की परीक्षण-पूर्व एवं परीक्षणोत्तर निष्पत्तियों को देखने के लिए परीक्षण किए गए थे। समग्र निष्पत्ति को निरीक्षण, जिज्ञासा एवं खोज की प्रवृत्ति के आधार पर जाँचा गया। विज्ञान के कार्यकलापों की प्रतिक्रिया को एक प्रतिक्रिया-मानदंड से मापा गया जिसे अन्वेषक ने बनाया था।

परिणाम इस प्रकार रहे—(i) प्रायोगिक वर्ग की निपुणताओं के विकास में उल्लेखनीय अंतर था; (ii) पारम्परिक विधि वाले छात्रों की तुलना में प्रायोगिक वर्ग के नौ स्कूलों के कक्षा IV के छात्रों और सात स्कूलों के कक्षा V के छात्रों में ज्ञान और बोध की वृद्धि देखी गई; (iii) निरीक्षण-कौशल के मामले में प्रायोगिक वर्ग के नौ स्कूलों के कक्षा IV के छात्रों और ग्यारह स्कूलों के कक्षा V के छात्रों में उल्लेखनीय सुधार देखा गया; (iv) प्रायोगिक वर्ग के ग्यारह स्कूलों की हर कक्षा में खोज की वृत्तियों में उल्लेखनीय विकास देखा गया; (v) प्रायोगिक वर्ग के दस स्कूलों के कक्षा IV के छात्रों और सात स्कूलों के कक्षा V के छात्रों में जिज्ञासा वृत्ति कौशल को उल्लेखनीय रूप से बढ़ते हुए देखा गया; एवं (vi) प्रायोगिक वर्ग के छात्र विज्ञान की गतिविधियों के अत्यधिक इच्छुक थे।

4. माध्यमिक-स्कूल-शिक्षकों की शिक्षण-योग्यता का अध्ययन

प्रमुख अन्वेषक : डा० बी० के० पासी

इस अध्ययन के उद्देश्य थे—(i) माध्यमिक स्तर पर शिक्षकों के जनसांख्यिकीय चरों (लिंग और उम्र) एवं शिक्षण-योग्यता के संबंध का अध्ययन; (ii) माध्यमिक स्तर पर शिक्षकों के अन्य पूर्वबोध चरों (शिक्षण के प्रति शिक्षकों की अभिवृत्ति, शिक्षण में रुचि,

अपने शिक्षण व्यवहार की आत्म संकल्पना, और मेधा) एवं शिक्षण-योग्यता के संबंध का अध्ययन; (iii) माध्यमिक भाषा शिक्षकों की शिक्षण-योग्यता एवं उत्पाद चरों (शैक्षणिक उपलब्धि और शिक्षकों के शिक्षण व्यवहार का उनके छात्रों द्वारा पसंद किया जाना) के संबंध का अध्ययन; (iv) माध्यमिक स्तर पर हिन्दी/अंग्रेजी के शिक्षण के लिए अपेक्षित किसी एक शिक्षण-योग्यता के लिए शिक्षण-सामग्री बनाना; और (v) शिक्षण-योग्यता के विकास पर उसके प्रभाव का अध्ययन।

जिन पूर्व कल्पनाओं का परीक्षण किया जाना था, वे थीं — (i) भाषा (हिन्दी/अंग्रेजी) पढ़ाने वाले माध्यमिक स्कूल के शिक्षकों व शिक्षिकाओं की शिक्षण-योग्यताओं में ज्यादा अंतर नहीं होता; (ii) भाषा पढ़ाने वाले माध्यमिक स्कूल के शिक्षकों की उम्र का उनकी शिक्षण-योग्यता अथवा अपने शिक्षण के प्रति उनकी अभिवृति के साथ कोई विशेष संबंध नहीं होता; (iii) शिक्षण में भाषा-शिक्षक की रुचि और उसकी शिक्षण-योग्यता के बीच कोई विशेष संबंध नहीं होता; (iv) शिक्षक/शिक्षिका की आत्मसंकल्पना का उसकी शिक्षण योग्यता के साथ कोई विशेष संबंध नहीं होता; (v) माध्यमिक स्तर के भाषा-शिक्षक की मेधा का शिक्षक की शिक्षण-योग्यता के साथ कोई विशेष संबंध नहीं होता; (vi) माध्यमिक स्कूल स्तर के भाषा-शिक्षक की शिक्षण-योग्यता और उसके छात्रों द्वारा उसके शिक्षण-व्यवहार के पसंद किए जाने के बीच कोई विशेष संबंध नहीं होता; (vii) माध्यमिक स्कूल स्तर के भाषा-शिक्षक की शिक्षण-योग्यता और उसके छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि के बीच कोई विशेष संबंध नहीं होता; (viii) विकसित की गई शिक्षण-सामग्री के द्वारा किसी एक शिक्षण-योग्यता के अभ्यास से शिक्षकों की शिक्षण-योग्यता में सुधार होगा, और (ix) विकसित की गई शिक्षण-सामग्री के द्वारा शिक्षण-योग्यता के अभ्यास से शिक्षकों की भाषा-शिक्षण की योग्यता में सुधार होगा।

अध्ययन की विवरणात्मक अवस्था के मार्गदर्शी अध्ययन के लिए शिक्षण-अधिगम स्थितियों के 72 नमूने लिए गए। इनमें कक्षा IX, X और XI के 36 भाषा-शिक्षक और उनके छात्र शामिल हैं। अध्ययन की विवरणात्मक अवस्था के अंतिम अध्ययन के लिए कक्षा में 556 शिक्षण-अधिगम स्थितियों का निरीक्षण किया गया। कुल मिला कर 107 शिक्षकों को इस अध्ययन में शामिल किया गया जिनमें से 48 शिक्षक हिन्दी पढ़ाने वाले थे और 59 शिक्षक अंग्रेजी पढ़ाने वाले। ये शिक्षक इंदौर जिले के 38 माध्यमिक स्कूलों में कक्षा IX, X और XI के छात्रों को पढ़ाते थे। अपने शिक्षकों के शिक्षण व्यवहार की पसंदगी-नापसंदगी के लिए 9360 छात्रों से आधार सामग्री एकत्र की गई। हिन्दी में उपलब्धि-परीक्षण कक्षा IX के 766 छात्रों पर किया गया। शिक्षण-सामग्री के मान्यकरण के उद्देश्य से, शिक्षण-विषय के रूप में हिन्दी लेने वाले 28 विद्यार्थी-शिक्षकों को चुना गया था जिनको दो वर्गों में बाँट कर, चौदह-चौदह विद्यार्थी-शिक्षकों का प्रायोगिक और पारम्परिक वर्ग बना दिया गया था।

जिन विभिन्न उपकरणों को प्रयुक्त किया गया वे थे—ग्रेवाल का शिक्षक-अभिवृत्ति-मानदंड, ग्रेवाल की शिक्षक-रुचि-सूची, रैवेन की स्टैंडर्ड प्रोग्रेसिव मैट्रिसेज, रामा का स्वयं-

निर्धारण शिक्षक मानदंड, रामा का छात्र पसंदगी का मानदंड । कक्षा-निरीक्षण तालिका और हिन्दी का उपलब्धि-परीक्षण अन्वेषक ने बनाया था । आधार-सामग्री का विश्लेषण अनेक पद्धतियों की सहायता से किया गया था ।

परिणाम ये थे—(1) उन्नीस शिक्षण-योग्यताओं को पहचाना गया जो इस प्रकार हैं: (i) कार्यभार देना, (ii) सस्वर पठन, (iii) पठन, (iv) प्रश्न पूछना, (v) पाठ-परिचय, (vi) कक्षा सँभालना, (vii) स्पष्टीकरण, (viii) गौण सस्वर पठन, (ix) ब्लैकबोर्ड का इस्तेमाल, (x) प्रबलन का प्रयोग, (xi) दुहराव बचाते हुए गति निर्धारण, (xii) पाठ समेकित करना, (xiii) छात्रों की प्रतिक्रियाओं को समझना, (xiv) छात्रों का व्यवहार सुधारना, (xv) श्रवणीयता, (xvi) गौण प्रबलन का प्रयोग, (xvii) छात्रों के ध्यान व्यवहार को पहचानना, (xviii) शाब्दिक रूप प्रस्तुत करना । (2) भाषा शिक्षक और शिक्षिका की योग्यता में कोई अंतर नहीं था । (3) माध्यमिक स्तर पर पढ़ाने वाले भाषा शिक्षकों की उम्र और उनकी शिक्षण-योग्यता के बीच उल्लेखनीय सकारात्मक सहसम्बन्ध था । (4) माध्यमिक स्तर पर हिन्दी/अंग्रेजी पढ़ाने वाले भाषा-शिक्षक की अभिरुचि, मेधा और शिक्षण-योग्यता के बीच कोई उल्लेखनीय संबंध नहीं था । (5) माध्यमिक स्तर पर पढ़ाने वाले भाषा-शिक्षकों की आत्म-संकल्पना और उनकी शिक्षण-योग्यता के बीच उल्लेखनीय ऋणात्मक सहसम्बन्ध था । (6) कक्षा IX के हिन्दी छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि और उन के शिक्षकों के शिक्षण व्यवहार की पसंदगी तथा शिक्षक की शिक्षण-योग्यता के बीच उल्लेखनीय सकारात्मक सहसम्बन्ध था । (7) पारम्परिक विधि वाले विद्यार्थी-शिक्षकों की तुलना में प्रायोगिक विधि वाले विद्यार्थी-शिक्षकों की सस्वर पठन योग्यता उल्लेखनीय रूप से अधिक थी । माइक्रोटीचिंग की शिक्षण-सामग्री के द्वारा विद्यार्थी-शिक्षकों के प्रशिक्षण ने उनकी बोधात्मक योग्यता, संवेगात्मक योग्यता और सस्वर पठन की व्यवहारात्मक योग्यता को सुधारा । (8) पारम्परिक विधि वाले विद्यार्थी-शिक्षकों की तुलना में प्रायोगिक विधि वाले विद्यार्थी-शिक्षकों की वास्तविक कक्षा परिस्थिति में सस्वर पठन योग्यता प्रशिक्षण के बाद उल्लेखनीय रूप से अधिक सुधरी । (9) वास्तविक कक्षा परिस्थिति में भाषा-शिक्षण-योग्यता की दृष्टि से, प्रायोगिक विधि वाले और पारम्परिक विधि वाले विद्यार्थी-शिक्षकों की योग्यता में कोई उल्लेखनीय अंतर नहीं था ।

5. राष्ट्रीय प्रतिभा चयन की कसौटी की पहचान के लिए अध्ययन

प्रमुख अन्वेषक : डा० (कुमारी) सुदेश गक्खर

इस अध्ययन के उद्देश्य थे—(i) बुद्धिवादी व्यक्तित्व और राष्ट्रीय प्रतिभा खोज की प्रक्रियाओं में निष्पत्ति के साथ प्रेरक चरों के सम्बन्ध का अध्ययन करना; (ii) प्रतिभावान छात्रों के चयन के लिए सर्वश्रेष्ठ निकष के रूप में काम आने वाले चरों के परिणामों का

मूल्यांकन करना; (iii) रा० प्र० खो० योजना में सफल और असफल वर्गों से सम्बद्ध चरों की विभिन्नताओं वाली किस्मों का अध्ययन करना।

राष्ट्रीय प्रतिभा खोज-योजना में सफल होने वालों और असफल रहने वालों के उल्लेखनीय अंतरों के सम्भाव्य चरों की पहचान करने के लिए विसंगति की विश्लेषण पद्धति अपनाई गई। इकतीस स्वतंत्र चरों में मेधा के दो, सृजनात्मकता के पाँच, व्यक्तित्व के सोलह, रुचि क्षेत्रों के दस अपवर्तक, एस० ई० एस० की पाँच इंडाइसेज् और वैज्ञानिक अभिरुचि तथा उपलब्धि प्रेरकता के एक एक स्कोर शामिल हैं। आश्रित चर में हैं रा० प्र० खो० परीक्षा के तीन प्रकार के स्कोर (शैक्षिक अभिरुचि परीक्षण, सामान्य मानसिक योग्यता और साक्षात्कार)।

नमूने केवल दिल्ली से लिए गए थे और उन्हें चार वर्गों में बाँटा गया था। वर्ग I—प्रतिभा छात्रवृत्ति पाने में सफल छात्र। वर्ग II—साक्षात्कार तक पहुँचने लेकिन उसमें असफल रहने वाले छात्र। वर्ग III—जो लिखित परीक्षा में भी उत्तीर्ण न हो सके। वर्ग IV—जो परीक्षा तक में नहीं बैठे।

इसमें इन परीक्षणों को प्रयुक्त किया गया था (i) सामान्य मानसिक योग्यता परीक्षण (हिन्दी में): जलोटा; (ii) स्टैंडर्ड प्रोग्रेसिव मैट्रिसेज्; (iii) रचनात्मक चिंतन वाले टोरेंस परीक्षण; (iv) वैज्ञानिक अभिरुचि परीक्षण: माइकेल, फोर्ड; (v) उपलब्धि प्रेरक परीक्षण और सूची: प्रयाग मेहता; (vi) ईसनेक पर्सनैलिटी इंवेंटरी; (vii) जूनियर सीनियर हाई स्कूल पर्सनैलिटी क्वेश्चनेयर; (viii) सामाजिक-आर्थिक मानदंड: देव-मोहन; और (ix) रा० शै० अ० और प्र० प० की रुचि-सूची का अनुकूलन।

परिणामों से पता चला कि (i) साक्षात्कार में सफल या असफल रहने वाले छात्रों में मौखिक और अमौखिक मेधा तथा रचनात्मकता के चरों की दृष्टि से कोई अंतर नहीं था। सफल छात्र अधिक विचारशील और सक्रिय थे। (ii) लिखित परीक्षा में असफल रहने वालों की तुलना में छात्रवृत्ति पाने वाले छात्र अमौखिक मेधा, रचनात्मकता की नम्यता और मौलिकता में बेहतर थे जबकि असफल छात्र मौखिक मेधा, अर्थशास्त्रीय रुचि और बाहर के क्रियाकलापों में बेहतर थे। (iii) अमौखिक मेधा, मौखिक रचनात्मकता और वैज्ञानिक अभिरुचि के क्षेत्रों में परीक्षा में न बैठने वालों की तुलना में छात्रवृत्ति पाने वालों ने अधिक नम्बर पाए। जबकि परीक्षा में न बैठने वालों ने बाहर की गतिविधियों, अर्थशास्त्र और अमौखिक रचनात्मकता में बेहतर कर दिखाया। (iv) मौखिक रचनात्मकता और वैज्ञानिक अभिरुचि के क्षेत्र में, लिखित परीक्षा में असफल रहने वाले छात्रों की तुलना में साक्षात्कार में असफल रहने वालों ने बेहतर कर दिखाया हालाँकि दोनों ही वर्ग मेधावान थे। (v) रा० प्र० खो० परीक्षा में चयन की कसौटी के सम्भाव्य चर ये लगते हैं: अमौखिक मेधा, मौखिक

रचनात्मकता के चारों आयाम, वैज्ञानिक अभिरुचि और प्रवृत्ति तथा बाहरी क्रियाकलाप। (vi) साक्षात्कार के नम्बरों के साथ मौखिक मेधा उल्लेखनीय रूप से सकारात्मक तौर पर सहसंबंधित थी जबकि साक्षात्कार के नम्बरों के साथ अमौखिक मेधा उल्लेखनीय रूप से ऋणात्मक तौर पर सहसंबंधित थी। (vii) परिवार का शैक्षिक स्तर साक्षात्कार के नम्बरों के साथ उल्लेखनीय रूप से सकारात्मक तौर पर सहसंबंधित था।

6. राजस्थान के स्कूलों में कक्षा-उपलब्धि के अधिगम-परिवेश की विशेषताओं का अध्ययन

प्रमुख अन्वेषक : डा० रामपाल सिंह

इस अध्ययन के उद्देश्य थे : (i) छात्रों की शैक्षणिक सफलता और सामान्य कक्षा व्यवहार के साथ सामाजिक-संवेगात्मक कक्षा वातावरण के सम्बन्ध का अध्ययन करना; (ii) गाँव और शहर के स्कूलों के कक्षा वातावरण के पैटर्नों और स्कूल अधिगम पर उनके प्रभावों को पहचानना एवं विश्लेषित करना; (iii) शिक्षक के पुरुष या स्त्री होने की विशेषता के प्रभावों को पहचानने के लिए शिक्षक और शिक्षिका द्वारा पढ़ाई जाने वाली कक्षाओं के सामाजिक-संवेगात्मक वातावरणों की तुलना करना; (iv) छात्रों की दृष्टि में शिक्षकों के कक्षा-व्यवहार और कक्षा के सामाजिक-संवेगात्मक वातावरण के बीच के अंतर-सम्बन्ध का अध्ययन करना; (v) उच्च और निम्न उपलब्धियों वाली कक्षाओं में विद्यमान सामाजिक-संवेगात्मक वातावरणों की तुलना करना; (vi) सहपाठियों की दृष्टि में छात्रों के व्यवहार-विकास को मापने के लिए एक सोश्यो-मीट्रिक टेस्ट बनाना।

तेईस मदों वाली छात्र-सूचना-तालिका से उच्च और निम्न उपलब्धि वाले छात्रों की आत्म संकल्पना को आँका गया; आदतों, विचारों, बोधात्मक पक्षों और शारीरिक विशेषता जैसी व्यक्तित्व-विशेषताओं को छात्रों के पाँच सूत्रीय निर्धारणों द्वारा मापा जा सका। स्टैंडर्ड प्रोग्रेसिव मैट्रिसेज़ और जलोटा के मानसिक योग्यता परीक्षण की सहायता से छात्रों की मेधा के बारे में जानकारी प्राप्त की गई। कुप्पुस्वामी के सोश्यो-इकोनोमिक स्टेटस स्केल के प्रथम संस्करण की मदद से सामाजिक और स्कूली जीवन में छात्रों की स्थिति पता की गई। स्पॉलडिंग के कोपिंग एनालिसिस शेड्यूल के आधार पर दस क्षेत्रों को समाहित करने वाली छात्रों की कक्षा व्यवहार सूची बनाई गई। अजमेर शहर के नमूने के 500 छात्रों पर जाँचा गया, सभी आयामों का विश्वसनीयता-गुणांक 0.77 था। छात्रों की दृष्टि में कक्षा वातावरण को मापने के लिए एंडर्सन और वेलबर्ग की अधिगम वातावरण सूची का इस्तेमाल किया गया। राजस्थान के 15 हायर सेकंडरी स्कूलों, पब्लिक स्कूलों और सेंट्रल हायर सेकंडरी स्कूलों के कक्षा XI के उन छात्रों में से जो राजस्थान की 1979 की सेकंडरी परीक्षा में बैठे थे, पाँच सर्वश्रेष्ठ और पाँच सबसे कमजोर छात्रों को नमूने के तौर पर लिया गया। टी टेस्ट

और विसंगति का बिश्लेषण किया गया। सहसम्वन्ध के प्रोडक्ट मोमेंट-गुणांक से पता चला कि चरों में सम्बन्ध है। आंशिक सहसम्बन्ध की मदद से, मेधा और सामाजिक-आर्थिक स्तर जैसे मध्यवर्ती चरों के प्रभावों को निकाला गया। समाश्रयण विश्लेषण ने चरों की शक्ति बताने में मदद की। विश्लेषण के उद्देश्य से वैयक्तिक स्कोर्स और स्कूल मीन्स को इकाई माना गया।

अध्ययन से पता चला कि (i) छात्रों की उपलब्धि स्कूल की श्रेणी से संबंधित थी। (ii) प्राइवेट स्कूलों, खास कर मिशन स्कूलों में उच्च उपलब्धि वाले छात्र थे। (iii) सामाजिक-आर्थिक स्तर और शैक्षणिक उपलब्धि में उल्लेखनीय सम्बन्ध था, निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर वाले छात्र उच्च उपलब्धि में असफल रहे। (iv) शिक्षकों की तुलना में शिक्षिकाओं ने उल्लेखनीय रूप से बेहतर उपलब्धि दिखाई। (v) कक्षा-वातावरण ने उल्लेखनीय रूप से छात्रों की उपलब्धि को प्रभावित किया, कक्षा के बुरे वातावरण ने छात्रों की उपलब्धि को कम कर दिया। (vi) हालाँकि गाँव के स्कूलों में पढ़ाई का वातावरण था, फिर भी खराब उपलब्धि वाले स्कूल गाँवों में ही थे। (vii) सामाजिक-संवेगात्मक वातावरण ने न केवल छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि को प्रभावित किया, अपितु उसने छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि के बारे में विश्वसनीय रूप से बताया। (viii) कक्षा-वातावरण ने छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धियों के साथ-साथ उनके कक्षा-व्यवहार से सम्बन्धित कार्यकलाप को भी प्रभावित किया।

7. पाँचवीं कक्षा को विज्ञान पढ़ाने में पारम्परिक विधियों की तुलना में शैक्षिक खिलौनों के इस्तेमाल की प्रभावकारिता का अध्ययन

प्रमुख अन्वेषक : श्री शंकरनारायण शास्त्री

परिकल्पना थी कि (i) शैक्षिक खिलौनों द्वारा विज्ञान पढ़ाना उतना पुरअसर नहीं होगा जितना कि पारम्परिक विधियों से हो सकता है; और (ii) शैक्षिक खिलौनों के माध्यम से विज्ञान-शिक्षण ज्ञानबोध को आसानी से नहीं बढ़ा सकता।

अध्ययन के लिए, प्राथमिक स्कूल विज्ञान पाठ्यचर्या में सम्मिलित किसी न किसी अवधारणा पर आधारित खिलौनों, माडलों अथवा चित्रों का इस्तेमाल किया गया।

कर्नाटक के एक प्राथमिक स्कूल की कक्षा V के दो सेक्शनों को लिया गया। एक वर्ष के लिए, प्रायोगिक वर्ग के रूप में एक सेक्शन को खिलौनों के माध्यम से विज्ञान पढ़ाया गया। इसके लिए कुछ खिलौने शिक्षक/अन्वेषक ने बनाए और कुछ स्थानीय बाज़ार से लिए गए या बच्चों के घरों से लाए गए। खिलौनों का चुनाव इस दृष्टि से किया गया कि वे भौतिकी, रसायन विज्ञान, और जीव विज्ञान की अवधारणाओं से कितने सम्बन्धित हैं। एक

ही शिक्षक ने दोनों वर्गों को पढ़ाया ताकि किसी किस्म का अंतर न रहे। इस शिक्षक को खिलौनों द्वारा विज्ञान पढ़ाने के लिए अभिविन्यस्त किया गया था। कक्षा में बच्चों को खेलने के लिए चुने हुए खिलौने बाँट दिए जाते थे। इसके बाद शिक्षक बच्चों से बातचीत करता था जो खिलौनों के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित होती थी।

एक प्रश्नावली, निरीक्षणों और परीक्षा के प्राप्तांकों की मदद से आधार-सामग्री एकत्र की गई।

खोज-परिणामों से पता चला कि (i) पारम्परिक विधि वाले वर्ग की तुलना में प्रायोगिक वर्ग के छात्रों ने पूर्व-परीक्षण में बेहतर कर दिखाया। लेकिन दोनों वर्गों में पूर्व-परीक्षण में उत्तीर्ण लोगों की संख्या बराबर थी, शायद इस कारण कि अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें नई विधि का आभास हो गया था। (ii) दोनों वर्गों के स्कूल में प्राप्तांकों की तुलना करने पर पाया गया कि प्रायोगिक वर्ग के प्राप्तांकों में तेजी से बढ़ोतरी हुई है। (iii) प्रारम्भ में प्रायोगिक वर्ग में खिलौने के इस्तेमाल के कारण, पारम्परिक वर्ग की तुलना में अधिक समय लगा, लेकिन आगे चल कर उसकी पढ़ाई तेजी से और आसानी से आगे बढ़ी। (iv) प्रायोगिक वर्ग के छात्रों में विज्ञान की पढ़ाई के प्रति अभिरुचि का विकास देखा गया। (v) प्रायोगिक वर्ग के छात्रों और शिक्षक के बीच अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध बढ़ते हुए दिखे। (vi) स्कूल में पहले अथवा अंतिम घंटे में विज्ञान पढ़ाने पर प्रायोगिक वर्ग के छात्रों ने अधिक रुचि दिखाई।

8. प्राथमिक स्कूल की पढ़ाई बीच में ही छोड़ जाने वालों पर नॉन ग्रेडेड इकाइयों का प्रभाव

प्रमुख अन्वेषक : जी० सुब्रह्मण्य पिल्लै

इस अध्ययन के लक्ष्य थे—(i) प्राथमिक शिक्षा में शैक्षिक अपक्षय को कम से कम करने के लिए नॉन ग्रेडेड इकाइयों के परिणामों को कूतना; (ii) नॉन ग्रेडेड इकाइयों के बारे में शिक्षकों की प्रतिक्रियाओं को जानना; (iii) नॉन ग्रेडेड प्राथमिक स्कूलों में व्यवहृत अभ्यासों को पहचानना; और (iv) कक्षा I, II व III में उपलब्ध सुविधाओं का पता लगाना।

निम्नलिखित पूर्व-कल्पनाओं को जाँचा गया—(i) प्राथमिक स्कूलों में पढ़ाई के बीच में ही स्कूल छोड़ जाने की प्रवृत्ति को कम करने में नॉन ग्रेडेड इकाइयों ने सहायता पहुँचाई है; (ii) नॉन ग्रेडेड इकाइयों को शिक्षकों ने पसंद किया है; (iii) स्कूलों में नॉन ग्रेडेड इकाइयों के मुख्य अंगों को चलाया गया है; और (iv) स्कूलों में नॉन ग्रेडेड इकाइयों को लागू करने के लिए समुचित सुविधाएँ प्रदान की गई हैं।

तमिलनाडु के मदुरै, रामनाद, तिरुनेलविली और कन्याकुमारी जिलों से नमूने के 150 प्राथमिक स्कूलों के 875 शिक्षकों को नमूने के तौर पर चुना गया। नामांकन खोज प्रपत्र, नॉन ग्रेडेड इकाई प्रतिक्रिया मानदंड और इस अध्ययन के लिए बनाई गई साक्षात्कार तालिका की मदद से आधार सामग्री एकत्र की गई।

परिणाम बताते है कि (i) तमिलनाडु के प्राथमिक स्कूलों में लाई गई नॉन ग्रेडेड इकाइयों ने पढ़ाई के बीच में ही स्कूल छोड़ जाने की प्रवृत्ति को बहुत कम करने में सहायता दी है; (ii) शिक्षकों ने नॉन ग्रेडेड इकाइयों को पसंद किया है; (iii) व्यक्तियों या छोटे वर्गों को न पढ़ाकर पूरी कक्षा को ही एक साथ पढ़ाया गया है; (iv) प्रतिभा और रुचि का ध्यान रखकर कार्यभार नहीं दिया गया है; (v) न तो छात्रों की व्यक्तिगत प्रगति का रेकार्ड रखा गया, न ही लगातार परीक्षण किए गए; (vi) नॉन ग्रेडेड प्रणाली के लिए अधिकांश शिक्षकों का अभिविन्यास नहीं किया गया; (vii) इस प्रणाली के आने से छात्रों का निष्पादन सुधरा है, इस बात को मानने के लिए शिक्षक तैयार नहीं थे; (viii) कक्षा I, II व III को एक इकाई नहीं माना गया क्योंकि हर कक्षा के लिए अलग-अलग समय सारिणी बनी थी; (ix) जो प्रतिभावान बच्चे अपना काम जल्दी कर लेते थे उन्हें अतिरिक्त काम नहीं दिया गया। न ही छात्रों की प्रतिभा और रुचियों का विशेष ध्यान ही रखा गया; (x) कक्षा III से IV में जाने के लिए चूँकि 75 प्रतिशत उपस्थिति आवश्यक थी, इसलिए मई 1981 में कक्षा IV में केवल 45.76 प्रतिशत छात्र ही जा पाए; (xi) इस प्रणाली के आने से कक्षा III में स्थिरीकरण बढ़ा; और (xii) इससे सम्बद्ध शिक्षकों, छात्रों और अभिभावकों की दुश्चिंता बढ़ी क्योंकि इस प्रणाली में अभिप्रेरण का अभाव है।

9. माध्यमिक स्तर के पत्राचार संस्थानों के छात्रों से सम्बद्ध चरों का अध्ययन

प्रमुख अन्वेषक : डा० ओ० एस० देवल

सबसे पहले पत्राचार पाठ्यक्रम उच्च शिक्षा के स्तर पर चलाए गए थे ताकि शिक्षा का प्रसार नियमित हो सके और रोजगार से लगे लोगों के लिए शिक्षा सुलभ हो सके। स्कूल स्तर पर पत्राचार पाठ्यक्रम सन् 1964 में ही शुरू किया जा सका ताकि प्राइवेट छात्रों का शैक्षणिक स्तर सुधर सके। ऐसे पाठ्यक्रमों को शुरू करने वाले चार संस्थान हैं— भोपाल स्थित मध्य प्रदेश बोर्ड ऑफ सेकंडरी एजुकेशन; दिल्ली का पत्राचार विद्यालय; अजमेर का बोर्ड ऑफ सेकंडरी एजुकेशन, राजस्थान; और उड़ीसा का बोर्ड ऑफ सेकंडरी एजुकेशन।

इस अध्ययन के उद्देश्य थे—(i) पत्राचार संस्थानों में छात्रों के वितरण को समझना; और (ii) पत्राचार शिक्षा की विभिन्न उप-प्रणालियों के लिए छात्रों की प्रति-

क्रियाओं का अध्ययन जैसे कि पाठ्यक्रम का कठिन या सरल होना, पढ़ाई के लिए समय का कम या पर्याप्त होना, फ़ीस का कम या ज्यादा होना।

चारों संस्थाओं में पंजीकृत हुए 3,000 छात्रों में से, दिल्ली, भोपाल और अजमेर के संस्थानों से नमूने के लिए 80 छात्रों को लिया गया। चूँकि उड़ीसा के बोर्ड ऑफ सेकंडरी एजुकेशन से पूरी आधार सामग्री नहीं मिल सकी, इसलिए उसे अध्ययन से बाहर कर दिया गया। छात्रों के बारे में जानकारी और पत्राचार शिक्षा के लिए उनकी प्रतिक्रियाओं का पता लगाने के लिए एक प्रश्नावली बनाई गई। छात्रों की उम्र, लिंग, आमदनी, परीक्षा माध्यम, राज्यवार प्रतिनिधित्व, अनुसूचित जाति अथवा अनुसूचित जनजाति के होने न होने के बारे में जानकारी एकत्र की गई। साथ ही कोर्स के कठिन अथवा सरल होने, पढ़ाई के समय, डाक की स्थिति, पाठों की एकरूपता, व्यक्तिगत सम्पर्क की उपयोगिता, फीस और व्यक्तिगत पत्र व्यवहार के बारे में उनकी प्रतिक्रियाओं को भी एकत्र किया गया।

परिणामों से पता चला कि (i) स्त्रियों का पंजीकरण सबसे ज्यादा दिल्ली में (25 प्रतिशत) और सबसे कम राजस्थान में (2.2 प्रतिशत) हुआ; (ii) अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति का पंजीकरण बहुत कम हुआ, वस्तुतः दिल्ली में कोई भी अनुसूचित जनजाति की छात्रा न थी और राजस्थान में अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति की किसी भी छात्रा ने पंजीकरण नहीं कराया था; (iii) तीनों संस्थानों के अधिकांश छात्र 18-21 वयक्रम के थे; (iv) अधिकांश छात्र निम्न और मध्यम आयवर्ग के थे, केवल 5.3 प्रतिशत छात्र ऐसे परिवारों के थे जिनकी आमदनी 12,000 रुपये साल की या उससे अधिक की थी; (v) दिल्ली के पत्राचार विद्यालय में सबसे अधिक संख्या दिल्ली वालों की थी (89.4 प्रतिशत), जबकि हरियाणा, उत्तर प्रदेश और तमिलनाडु का प्रतिनिधित्व क्रमशः 2.2, 2.6 एवं 1.5 प्रतिशत का था, राजस्थान बोर्ड में सभी पंजीकरण राजस्थान वालों का था किन्तु मध्य प्रदेश बोर्ड में कम ही छात्र मध्य प्रदेश के थे, वहाँ सबसे अधिक छात्र क्रमशः हरियाणा, राजस्थान, केरल और पंजाब के थे; (vi) राजस्थान बोर्ड के सभी छात्रों ने हिन्दी माध्यम माँगा, जबकि अंग्रेजी की माँग मध्य प्रदेश में 32.5 प्रतिशत छात्रों की ओर से और दिल्ली में 8 प्रतिशत की ओर से आई; (vii) हालाँकि अधिकांश छात्रों ने कोर्स को सामान्य कठिनाई वाला माना, दिल्ली का कोर्स अधिक कठिन माना गया क्योंकि वह अखिल भारतीय स्तर का था; (viii) अधिकांश छात्रों ने सप्ताह में 13 से 24 घंटों की पढ़ाई की और रविवार को सबसे ज्यादा पढ़ा; (ix) हर संस्थान के छात्रों ने अंग्रेजी को सबसे कठिन विषय माना, मध्य प्रदेश और राजस्थान के छात्रों ने अंग्रेजी के बाद वाणिज्य को सबसे कठिन विषय समझा और दिल्ली के छात्रों के लिए गणित सबसे कठिन विषय रहा; (x) अधिकांश छात्रों के लिए पाठ स्वयं-सम्पूर्ण नहीं थे, गणित, अर्थशास्त्र और वाणिज्य के मुकाबले अंग्रेजी के लिए यह बात ज्यादा महसूस की गई; (xi) आधे छात्रों ने व्यक्तिगत सम्पर्क कार्यक्रम पर ध्यान नहीं दिया और केवल 30 प्रतिशत ने उसके एक हिस्से पर

ध्यान दिया; (xii) जिन आधे छात्रों ने सम्पर्क कार्यक्रम पर ध्यान दिया था उन्होंने उसे किसी काम का न समझा; (xiii) उत्तर पुस्तिकाओं के मूल्यांकन से कोई भी छात्र संतुष्ट न था, इसके अलावा मध्य प्रदेश के छात्र उत्तर पुस्तिकाओं के लौटाए जाने के लिए, लिए जाने वाले समय से असंतुष्ट थे; और (xiv) छात्रों द्वारा पूछे जाने वाले सामान्य प्रश्नों का उत्तर तो दिया जाता था किंतु अधिकांश असामान्य प्रश्न अनुत्तरित ही रह जाते थे ।

10. दिल्ली और बम्बई के शहरी मिडिल और उच्चतर माध्यमिक स्कूलों के शिक्षकों के लिए कामवाद पर अभिविन्यास कोर्स (दूसरी अवस्था)

प्रमुख अन्वेषक : श्रीमती के० निश्चल

अध्ययन की इस दूसरी अवस्था में दिल्ली के शहरी मिडिल और उच्चतर माध्यमिक स्कूलों के शिक्षकों की वर्तमान मनोवृत्ति को बदलने के लिए एक अभिविन्यास कार्यक्रम के निर्माण का प्रयत्न किया गया । अध्ययन ने यह पता लगाने की कोशिश की कि अभिविन्यास कार्यक्रम कक्षा में वयस्क सेक्स भूमिकाओं और व्यवहार की दिशा में शिक्षकों की मनोवृत्ति में कोई परिवर्तन लाने में सफल हो सका या नहीं ।

अध्ययन की पहली अवस्था में दिल्ली और बम्बई के शिक्षकों की मनोवृत्ति का अध्ययन किया गया था । उस अध्ययन के परिणामों के आधार पर यह तय किया गया कि अध्ययन को सरकारी और गैर सरकारी स्कूलों के हिन्दू शिक्षकों (पुरुष) तक ही सीमित रखना चाहिए । अभिविन्यास कार्यक्रम के लिए एक सरकारी (केवल पुरुष) और एक गैर सरकारी (सहशिक्षा) स्कूल के दस-दस शिक्षकों को नमूने के तौर पर चुना गया था । लेकिन बीमारी के कारण छह शिक्षकों से मुलाकात न हो सकी । अभिविन्यास कार्यक्रम के शुरू होने के पहले, छह विशेषज्ञों ने कक्षाओं अथवा खेल के मैदान में शिक्षकों का निरीक्षण इस दृष्टि से किया कि वे अपने सामान्य व्यवहार में छात्रों तक किसी तरह का सेक्सिस्ट संदेश प्रेषित करते हैं या नहीं । दोनों स्कूलों के शिक्षकों को पाँच व्यावहारिक, मौखिक एवं अमौखिक अभ्यास दिए गए । कार्यक्रम की समाप्ति पर शिक्षकों से उस प्रश्नावली के उत्तर फिर से माँगे गए जो उनसे पहले भी भरवाई जा चुकी थी ।

अध्ययन से पता चला कि (i) हालाँकि स्त्रियों और पुरुषों के लिए व्यावसायिक मार्ग एक समान खुले हुए हैं, फिर भी अनुक्रियाएँ बताती हैं कि काम धंधों के बहुत से क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ स्त्रियों और पुरुषों को व्यावसायिक कार्यभार दिए जाने में असंतुलन दिखता है । हालाँकि व्यावसायिक मार्ग-दर्शन देना प्रत्यक्ष रूप से शिक्षकों का काम नहीं है, फिर भी

रूपांतरित रूप से ऐसे संदेश प्रेषित किए जाते हैं जिनसे छात्र घिसे पिटे लक्ष्यों की ओर ही जाते हैं। (ii) हालांकि उनका कहना और मानना है कि सभी काम स्त्रियों और पुरुषों के लिए एक समान हैं क्योंकि दोनों बराबर हैं, फिर भी व्यवहार में काम देते समय वे इस बात को मन में रखे रहते हैं कि कौन सा काम 'जनाना' है और कौन सा 'मर्दाना'। (iii) शिक्षकों को यह बात मालूम है कि समाज में स्त्रियों और पुरुषों को घिसे पिटे पुराने विभाजनों से देखा जाता है और पाठ्यपुस्तकों में भी यही बात परिलक्षित होती है। (iv) हालाँकि अध्ययन के लिए जो नमूने लिए गए थे वे स्त्रियों और पुरुषों दोनों के लिए लगभग बराबर बराबर थे, फिर भी अनुक्रियाओं से पता चला कि वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को सभी स्वीकारते हैं। (v) सेक्स-शिक्षा दिए जाने के बारे में 'नमूनों' के जवाब समान रूप से विभाजित थे। लड़कों के लिए बनी फिल्म को लड़कियों को भी दिखाना चाहिए या नहीं, इस बारे में भी 'नमूनों' की राय समान रूप से बँटी हुई थी। आधे लोगों ने महसूस किया कि ऐसे समय लड़कियों को वहाँ नहीं होना चाहिए जबकि बाकी आधे लोगों ने कहा कि किसी प्रकार का भेद भाव न होना चाहिए। (vi) प्रवृत्तियों की प्रश्नावली को शिक्षकों से दो बार भरवाया गया था: टेप-स्लाइड दिखाने और जागरूकता के अभ्यास करवाने से पहले और कार्यक्रमों के बाद। (पुरुष) शिक्षकों की प्रवृत्ति में सकारात्मक परिवर्तन देखा गया लेकिन शिक्षिकाओं की प्रवृत्ति में कम परिवर्तन हुआ था। कारण यह है कि कार्यक्रम के पहले ही उन्होंने स्त्री-पुरुष-समानता की माँग की थी। (vii) सरकारी स्कूलों के शिक्षकों की प्रवृत्ति में वयस्क सेक्स भूमिकाओं के प्रति अधिक सकारात्मक अंतर आ गया था, जबकि गैर-सरकारी स्कूलों के शिक्षकों की प्रवृत्ति में कक्षागत भूमिकाओं के प्रति अधिक सकारात्मक अंतर देखा गया।

11. कबाड़ की सहायता से सुधरी हुई सस्ती शिक्षण-सामग्री का निर्माण

प्रमुख अन्वेषक : श्री एन० के० श्रीवास्तव

इस अध्ययन के उद्देश्य थे—(i) परिवेश में उपलब्ध रद्दी के सामान की मदद से शिक्षण-साधनों को तैयार करना; (ii) परिवेश में उपलब्ध कबाड़ के महत्व के बारे में शिक्षकों को सचेत करना; और (iii) मितव्ययिता से बेहतर शिक्षा प्रदान करना।

राजस्थान के परिवेश में उपलब्ध रद्दी के सामान से प्राथमिक और अपर प्राथमिक स्कूलों के लिए बने शिक्षण-साधनों तक ही अध्ययन ने अपने को सीमित रखा। सम्पूर्ण राजस्थान को छह भौगोलिक हिस्सों में बाँटकर वहाँ के कबाड़ को इकट्ठा किया गया। कबाड़ से बने शिक्षण-साधनों को एक नुमाइश में दिखाया गया। प्राथमिक और अपर प्राथमिक स्कूलों के सौ शिक्षकों को ये प्रदर्श दिखाकर उनसे राय माँगी गई और सुधार के लिए एक प्रश्नावली के माध्यम से सुझाव आमंत्रित किए गए। 82 शिक्षकों ने जवाब दिए जिनका इस्तेमाल किया जाएगा। अधिकांश शिक्षण-साधन विज्ञान और गणित पढ़ाने के लिए थे।

परिणामों से पता चला कि (i) गाँवों में सामग्री की उपलब्धि के बारे में 68.29 प्रतिशत लोगों के विचार से सामग्री उपलब्ध नहीं है; 4.88 प्रतिशत लोगों के विचार से बहुत कम सामग्री उपलब्ध है; और 26.83 प्रतिशत लोगों के विचार से कुछ सामग्री उपलब्ध है। (ii) इसी तरह के शिक्षण-साधन बनाने के बारे में 26.83 प्रतिशत लोगों ने कहा कि उन्हें इसके लिए तकनीकी सहायता चाहिए; 48.78 प्रतिशत लोगों के विचार से उन्हें कुछ सहायता चाहिए; और 24.39 प्रतिशत लोगों को किसी सहायता की जरूरत नहीं है। (iii) इन शिक्षण-साधनों को बनाने के लिए 59.76 प्रतिशत लोगों को अतिरिक्त घंटों की जरूरत होगी; 34.15 प्रतिशत लोग खाली घंटों का इस्तेमाल कर लेंगे; लेकिन 6.09 प्रतिशत लोग यह तय ही नहीं कर पाए कि वे यह काम कब करेंगे। (iv) कक्षा-शिक्षण में इन साधनों के इस्तेमाल से 57.33 प्रतिशत शिक्षकों को काफी मदद मिल सकेगी; जबकि 28.04 प्रतिशत शिक्षकों को कुछ मदद मिल पाएगी; और 14.63 प्रतिशत शिक्षकों के विचार से शायद ही कोई मदद मिलेगी। (v) इस तरह के शिक्षण-साधनों के निर्माण के बारे में 68.39 प्रतिशत शिक्षकों का विचार था कि समुदाय और छात्रों के साथ मिलकर वे इन्हें बना सकते हैं; जबकि 14.63 प्रतिशत शिक्षकों के विचार से छात्रों के साथ मिलकर शिक्षक इन्हें बना लेंगे; किंतु 16.98 प्रतिशत की राय थी कि इन साधनों को छात्र और समुदाय वाले मिल कर बना लेंगे। (vi) शिक्षकों ने सुझाव दिया कि प्राथमिक और अपर प्राथमिक शिक्षकों को सभी शिक्षण-साधनों के बारे में कुछ साहित्य भी दिया जाना चाहिए और शिक्षण-साधनों को कक्षा और विषय के हिसाब से श्रेणीबद्ध किया जाना चाहिए।

12. सामान्य स्कूलों में अपंग बच्चे

प्रमुख अन्वेषक : डा० ए० बी० पाठक

इन अन्वेषण का उद्देश्य इन बातों का अध्ययन करना था—(i) सामान्य स्कूलों में पढ़ने वाले विकलांग बच्चों के व्यक्तित्व की विशेषताएँ; (ii) विकलांग बच्चों का सामंजस्य; (iii) विकलांग बच्चों की आकांक्षाएँ; (iv) सामान्य स्कूलों के विकलांग बच्चों की सोश्योमीट्री; और (v) सामान्य बच्चों के साथ घुलने मिलने के तरीके।

राजस्थान के उदयपुर, बाँसवाड़ा और जोधपुर जिलों के सामान्य स्कूलों में पढ़ने वाले विकलांग बच्चों में से नमूने लिए गए। अंतिम नमूनों में 32 माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्कूलों (जिनमें नौ स्कूल देहात के थे) के 72 लड़के थे जिनकी उम्र 12 से 18 वर्षों के बीच की थी; हालाँकि अधिकांश लड़के 14 से 17 वर्ष तक के थे। अध्ययन के लिए प्रयुक्त हुए उपकरण थे—हाई स्कूल व्यक्तित्व प्रश्नावली (कपूर एवं मेहरोत्रा); सामंजस्य सूची (सिन्हा एवं सिंह); तथा आकांक्षा प्रश्नावली और इस अध्ययन के लिए बनाया गया व्यक्तिगत आधार सामग्री बैंक।

अध्ययन से पता चला कि (i) अधिकांश विकलांग बच्चों के पिता गरीब घरों के निरक्षर लोग थे, 79 बच्चों में से 63 बच्चों के पिता हायर सेकंडरी तक या उससे भी कम पढ़े हुए थे और 46 बच्चे ऐसे परिवारों के थे जिनकी आमदनी 500 रुपयों से कम थी। (ii) अधिकांश बच्चे बड़े आकार के परिवारों के थे जिनमें चार-पाँच बच्चे होते हैं। (iii) ये बच्चे कुछ चुप्पे या संकोची, भावात्मक रूप से स्थिर-मति, संतोषप्रद रूप में समंजित लेकिन पढ़ाई की सामर्थ्य के हिसाब से कमजोर, जल्दी ही भड़कने वाले, आज्ञाकारी, कार्यसाधक, हट्टे कट्टे, तनाव में न रहने वाले और साथ देने वाले थे। (iv) कुल मिलाकर इनका सामंजस्य औसत दर्जे का था, भावात्मक सामंजस्य अच्छा था और सामाजिक तथा शैक्षिक सामंजस्य औसत ही था। (v) सोश्योमीट्रिक स्थिति संतोषप्रद थी, 41.6 प्रतिशत साठवें शततमक से ऊपर थे और 22.2 प्रतिशत नब्बेवें शततमक से ऊपर। केवल तीन बच्चे एकाकी थे। (vi) अधिकांश विकलांग बच्चे स्नातकोत्तर स्तर तक पढ़ना चाहते थे। (vii) धंधे के रूप में अध्यापन को सभी बच्चे सबसे ज्यादा चाहते थे, और सबसे कम पसंदगी सेना, पुलिस व खिलाड़ियों के पेशे के लिए थी। धार्मिक जीवन पद्धति के लिए सभी ने प्राथमिकता दी थी और बौद्धिक, राजनीतिक तथा भौतिक सुविधाओं की आकांक्षा में किसी की रुचि नहीं थी। (viii) अधिकांश विकलांग बच्चों को लगता था कि उनके सामने कोई विकराल समस्या नहीं है, जो समस्याएँ थीं वे स्कूल से डरने की, कक्षा में होने वाली पढ़ाई की कठिनाई की, शिक्षकों के प्रति असंतोष की, साथी बच्चों द्वारा चिढ़ाए जाने की, और पाठ्यक्रमेतर कार्यकलापों में शामिल होने की थीं।

13. सन् 1973 से 1977 के बीच वृहत्तर बम्बई और थाणा जिले के म्यूनिसिपल और स्थानीय प्राधिकरण के स्कूलों की कक्षा I से VII तक के, बीच में ही पढ़ाई छोड़ देने वाले बच्चों की इस प्रवृत्ति का अध्ययन

प्रमुख अन्वेषक : श्रीमती माधुरी शाह

इस अध्ययन के उद्देश्य थे—(i) वृहत्तर बम्बई और थाणा जिले के म्यूनिसिपल कार्पोरेशन और स्थानीय प्राधिकरण द्वारा चलाए जा रहे विभिन्न भाषायी स्कूलों के लड़कों और लड़कियों के पढ़ाई के बीच में ही स्कूल जाना छोड़ देने की घटनाओं का आकलन करना, और (ii) पढ़ाई के बीच में ही स्कूल जाना छोड़ देने की इस प्रवृत्ति के लिए उत्तरदायी कारकों का अध्ययन करना।

जो प्राक्कल्पनाएँ प्रतिपादित की गईं, वे थीं—(i) पढ़ाई के बीच में ही स्कूल जाना छोड़ने की घटनाओं के अध्ययन से शोधकर्ताओं को पता चल सकेगा कि इस प्रवृत्ति के मूल

में कौन से कारण काम कर रहे हैं और इस प्रकार उन कारणों को दूर करने में सहायता मिल सकेगी, (ii) सुधरी हुई शिक्षण पद्धतियों और समुचित शिक्षण सामग्री के इस्तेमाल से स्कूल जाना छोड़ने की प्रवृत्ति कम की जा सकेगी।

इस अध्ययन को वृहत्तर बम्बई और थाणा जिले में किया गया। इसके लिए म्यूनिसिपल स्कूलों, म्यूनिसिपल सहायता प्राप्त स्कूलों और थाणा जिले के कुछेक जिला परिषद् स्कूलों को लिया गया। अध्ययन चार चरणों में किया गया। पहले चरण में क्षेत्र में स्कूल जाना छोड़ देने की घटनाओं का आकलन और इस प्रवृति के कारणों का अध्ययन किया गया। दूसरे चरण में ऐसी घटनाओं की केस स्टडी हाथ में ली गई। तीसरे चरण में पाँच स्कूलों का विशेष अध्ययन किया गया। चौथे चरण में दो स्कूलों में एक प्रयोग किया गया। इन दोनों में एक मराठी माध्यम वाला स्कूल है और दूसरा गुजराती माध्यम वाला। अध्ययन के लिए एक आधार-सामग्री पत्रक बनाया गया जिसके माध्यम से स्कूल जाना छोड़ देने वालों के बारे में जानकारी इकट्ठा की गई। एक प्रश्नावली भी बनाई गई जिसके द्वारा केस-स्टडीज की गई।

अध्ययन के पहले चरण से पता चला कि (i) मराठी माध्यम वाले म्यूनिसिपल स्कूलों में पढ़ाई के बीच में स्कूल जाना छोड़ देने की प्रवृत्ति सबसे ज्यादा कक्षा I में थी और सबसे कम कक्षा VII में। कक्षा V में इस प्रवृत्ति की प्रतिशतता में तेज बढ़ोतरी हुई। (ii) वृहत्तर बम्बई के गुजराती माध्यम वाले म्यूनिसिपल स्कूलों में पढ़ाई के बीच में ही स्कूल जाना छोड़ देने की प्रवृत्ति सबसे ज्यादा कक्षा I में थी और सबसे कम कक्षा VII में। (iii) हिन्दी माध्यम वाले म्यूनिसिपल स्कूलों में पढ़ाई के बीच में ही स्कूल जाना छोड़ देने की प्रवृत्ति सबसे ज्यादा कक्षा I में थी और सबसे कम कक्षा VII में। (iv) उर्दू माध्यम वाले म्यूनिसिपल स्कूलों में यह प्रवृत्ति सबसे ज्यादा सन् 1975-76 में कक्षा I में, सन् 1974-75 में कक्षा II में, सन् 1974-75 में कक्षा III में, सन् 1976-77 में कक्षा IV में, सन् 1973-74 में कक्षा V में और सन् 1975-76 में कक्षा VI में थी। (v) अंग्रेजी माध्यम वाले म्यूनिसिपल स्कूलों में यह प्रवृति सबसे ज्यादा कक्षा I में, उससे कम कक्षा V में उससे भी कम कक्षा VI में और सबसे कम कक्षा VII में थी। (vi) तेलगु माध्यम वाले स्कूलों में यह प्रवृत्ति सामान्यतः कक्षा I में, कभी कभी कक्षा II में और III में सबसे ज्यादा थी। (vii) तमिल माध्यम वाले स्कूलों में यह प्रवृत्ति सबसे ज्यादा कक्षा I में थी। (viii) मलयालम माध्यम वाले स्कूलों में यह प्रवृति किसी भी कक्षा में लगातार ज्यादा नहीं रही। (ix) यह प्रवृत्ति चारों वर्षों के औसत रूप में तेलगु माध्यम के स्कूलों में सबसे ज्यादा और मलयालम माध्यम के स्कूलों में सबसे कम थी। (x) हिन्दी और तेलगु माध्यम वाले स्कूलों में यह प्रवृत्ति लगातार ज्यादा रही। (xi) यह प्रवृत्ति मराठी माध्यम वाले स्कूलों में 1973-74 में, अंग्रेजी माध्यम वाले स्कूलों में 1975-76 में और सिन्धी माध्यम वाले स्कूलों में 1974-75 में ज्यादा रही। (xii) जिला परिषद् के स्कूलों में सबसे ज्यादा नामांकन कक्षा I में हुआ और

सबसे कम कक्षा VII में। नामांकन में तेज़ी से कमी होने की यह प्रवृति कक्षा V से शुरू हुई। (xiii) स्कूल छोड़ जाने की प्रवृत्ति लड़कों, और लड़कियों में सामान्यत: एक जैसी ही थी।

पढ़ाई के बीच में ही स्कूल छोड़ जाने वालों की केस स्टडी से पता चला कि (i) लगभग 40 प्रतिशत अभिभावक पढ़ने के लिए कभी भी स्कूल नहीं गए थे, जबकि 54 प्रतिशत अभिभावक कक्षा IV या VII तक पढ़े हुए थे। (ii) 366 अभिभावकों में से 261 नौकरी पेशा थे, 35 श्रमिक थे, 28 व्यापारी थे और 24 फेरीवाले थे। (iii) इन 366 अभिभावकों में से 206 की आमदनी 300 से 500 रुपयों तक थी और 127 लोगों की आमदनी 101 से 300 रुपयों तक थी। (iv) लगभग 60 प्रतिशत अभिभावक प्रतिदिन छह से आठ घंटों की ड्यूटी बजाते थे और कुछ मिसालें ऐसी भी थीं जिनमें माता-पिता दोनों काम पर बाहर जाते थे और चूँकि उनकी नियमित नौकरी नहीं थी इसलिए पूरे दिन बाहर ही रहते थे। (v) पढ़ाई के बीच में ही बच्चों के स्कूल छोड़ देने का एक कारण यह भी था कि माता-पिता में से किसी की बीमारी के कारण या छोटे भाई बहनों को घर पर सँभालने के लिए परिवार में और कोई नहीं बचता था। (vi) अधिकांश स्थितियों में, घर पर माता-पिता का हाथ बटाने के लिए, कुछ स्थितियों में काम मिल जाने के कारण और एक प्रतिशत स्थिति में माता-पिता के व्यापार में मदद करने के लिए, बच्चे स्कूल छोड़ गए थे।

पाँच स्कूलों में शैक्षिक अवरोध की स्थिति का अध्ययन करने पर पता चला कि (i) फेल होने की स्थिति कक्षा II और III में ज्यादा है और कक्षा I में सबसे ज्यादा है। (ii) कुछ छात्र एक ही कक्षा में सात बार फेल हुए फिर भी उन्होंने पढ़ाई नहीं छोड़ी।

शिक्षण-विधियों में सुधार और बेहतर शिक्षण-सामग्री के इस्तेमाल वाले प्रयोग से पता चला कि (i) शिक्षकों और हेडमास्टरों की राय में स्कूल के लिए सबसे आदर्श समय ग्यारह बजे सुबह से शाम के पाँच बजे तक का है। (ii) दोनों ही वर्गों ने महसूस किया कि छात्रों पर पड़ा प्रभाव इस बात में परिलक्षित होता है कि वे व्यक्तिगत रूप से अधिक स्वच्छ रहने लगे और नियमित रूप से स्कूल आने लगे। (iii) क्रियाकलाप वाली विधि गणित-शिक्षण के लिए अत्यंत उपयोगी साबित हुई क्योंकि इससे गणित में छात्रों की दिलचस्पी बढ़ गई। (iv) कुल मिला कर गुजराती माध्यम वाले स्कूलों में, कक्षा I में गणित और कक्षा II में गुजराती पढ़ाने में बेहतर और अधिक सफलता दिलाने में प्रायोगिक विधि का महत्वपूर्ण हाथ है। (v) मराठी माध्यम वाले स्कूलों में, कक्षा II में सामान्य-ज्ञान विषय को छोड़कर बाकी सभी विषयों में बेहतर और अधिक सफलता दिलाने में प्रायोगिक विधि का ही हाथ है।

14. मिर्ज़ापुर के जनजातीय छात्रों की समस्याओं, आकांक्षाओं, जीवन-मूल्यों और व्यक्तित्व-पैटर्नों का अध्ययन

प्रमुख अन्वेषक : डा० एस० एस० श्रीवास्तव

इस अध्ययन के उद्देश्य थे (i) मिर्ज़ापुर जिले के हाई और हायर सेकंडरी स्कूलों तथा इंटर कालेजों के जनजातीय, पिछड़े वर्गों के और सवर्ण छात्रों की समस्याओं को खोजना और उनकी तुलना करना; (ii) छात्रों के तीनों वर्गों के मूल्य-प्रतिमानों को खोजना और उनकी तुलना करना; (iii) तीनों वर्गों के व्यक्तित्व प्रतिमानों को खोजना और उनकी तुलना करना; तथा (iv) छात्रों के तीनों वर्गों की व्यावसायिक आकांक्षाओं का पता लगाना।

अध्ययन को दुद्धी और राबर्ट्सगंज सब डिवीजनों, जो कि मुख्यतः जनजातीय इलाके हैं हालाँकि वहाँ केवल जनजातियों के लिए कोई शिक्षा संस्थान नहीं है, के हाई स्कूलों, हायर सेकंडरी स्कूलों और इंटर कालेजों की कक्षा IX और XI के विद्यार्थियों तक ही सीमित रखा गया। मिले जुले स्कूलों और कालेजों से छात्रों के तीनों वर्गों को चुना गया। सभी 56 जनजातीय छात्रों को इन वर्गों में मिलाया गया था और उसी अनुपात में पिछड़े वर्गों और उच्च जाति के वर्गों के छात्रों को इन्हीं संस्थाओं से चुना गया था। अध्ययन के लिए इन उपकरणों को प्रयुक्त किया गया—मनी प्रॉब्लम चेकलिस्ट (श्रीवास्तव और राय) का हिन्दी रूपांतर, व्यक्तिगत मूल्य प्रश्नावली (शीरी और वर्मा), जूनियर-सीनियर हाई स्कूल व्यक्तित्व प्रश्नावली (कपूर, श्रीवास्तव और श्रीवास्तव), और इस अध्ययन के लिए बनाई गई व्यावसायिक आकांक्षा प्रश्नावली। आधार सामग्री का विश्लेषण मीन, स्टैंडर्ड डेविएशन, प्रतिशतता और टी-टेस्ट के प्रयोग द्वारा किया गया।

परिणामों से पता चला कि (i) जनजातीय छात्रों की सबसे बड़ी समस्याएँ मनोवैज्ञानिक-व्यक्तिगत सम्बन्धों, स्वास्थ्य और शारीरिक विकास तथा कोर्टशिप, सेक्स और विवाह को लेकर हैं। पिछड़े वर्गों के छात्रों की सबसे बड़ी समस्याएँ कोर्टशिप, सेक्स और विवाह, सामाजिक एवं मनोरंजनात्मक सुविधाओं और स्वास्थ्य तथा शारीरिक विकास के बारे में हैं। उच्च वर्गों के छात्रों की समस्याएँ स्वास्थ्य और शारीरिक विकास, वित्त, जीवन स्तर, रोजगार और सामाजिक तथा मनोरंजनात्मक कार्यकलाप के बारे में हैं। (ii) जनजातीय छात्रों को जिन समस्याओं से कोई मतलब नहीं था, वे हैं : पाठ्यक्रम और शिक्षण-प्रक्रियाएँ, स्कूल-कार्य का समंजन, नैतिक बातें और धर्म। पिछड़े वर्गों के छात्रों के लिए जिन समस्याओं का कोई अस्तित्व नहीं था, वे हैं : घर, परिवार, पाठ्यक्रम और शिक्षण-प्रक्रियाएँ, और स्कूल कार्य का समंजन। उच्च वर्ण के छात्रों के लिए जो समस्याएँ न होने के बराबर थीं, वे हैं : पाठ्यक्रम और शिक्षण-प्रक्रियाएँ, शैक्षिक और व्यावसायिक भविष्य, व्यक्तिगत और मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध। (iii) उच्च वर्ण के छात्रों की व्यावसायिक आकां-

क्षाएँ तेरह पेशों तक सीमित थीं, जबकि पिछड़े वर्गों और जनजातीय छात्रों के लिए यह संख्या नौ थी और शिक्षण व्यवसाय उनके लिए सबसे ज्यादा पसंदगी का था। जनजातीय और अ-जनजातीय छात्रों की व्यावसायिक आकांक्षाओं में कोई अंतर नहीं था। (iv) हालाँकि अधिकांश छात्र किसान परिवारों के थे, सभी वर्गों के 5 प्रतिशत से भी कम छात्रों ने कृषि व्यवसाय में जाने की इच्छा प्रकट की। (v) पिछड़े वर्गों के छात्र तकलीफों से बचने और मौज करने की प्रवृत्ति वाले थे, वे दूसरों से आगे बढ़ने और उन पर शासन करने के इच्छुक थे, जबकि जनजातीय छात्र इतनी सुखवादी प्रवृत्ति के न थे। पिछड़े वर्गों और उच्च वर्णों के छात्रों में उल्लेखनीय रूप से चार जीवन-मूल्यों की दृष्टि से जबर्दस्त अंतर था। ये चार मूल्य हैं—सामाजिक, ज्ञान संबंधी, सुखवादी और शक्ति। (vi) व्यक्तित्व की एक विशेषता— स्थिरमति होना अथवा उत्तेजना से भड़क उठने वाला होना—को छोड़ कर पिछड़े वर्ग और जनजातीय वर्ग के मिर्जापुर जिले के उन्हीं स्कूलों के छात्रों में कोई अंतर न था। (vii) पिछड़े वर्गों के छात्र अधिक कोमल मन वाले, भावुक, और भरोसेमंद थे, उनकी इच्छा शक्ति अधिक नियंत्रित थी, वे अधिक तनाव वाले भी थे। उनकी तुलना में उच्च वर्ण वाले छात्र भड़क उठने वाले, अधीर और बेकाबू थे। (viii) व्यक्तित्व के चार कारकों की दृष्टि से उच्च वर्णों के छात्रों और पिछड़े वर्गों के छात्रों में महत्वपूर्ण अंतर था लेकिन इन दोनों वर्गों के छात्रों और जनजातीय छात्रों में व्यक्तित्व के दो कारकों की दृष्टि से ही अंतर था।

15. पढ़ाई के लिए गाँवों से शहर जाने वाले देहाती छात्रों की सामाजिक-मनोवैज्ञानिक समस्याएँ

प्रमुख अन्वेषक : डा० सुविमल देव

इस अध्ययन के उद्देश्य थे—(i) शहर जाने वाले देहाती छात्रों की संख्या, और पार की गई भौगोलिक दूरी का पता लगाना; (ii) उनकी सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि का पता लगाना; (iii) उनकी ग्राम्यता या नागरिकता की पसंदगी की प्रकृति का पता लगाना; और (iv) उन क्षेत्रों का पता लगाना जिनमें वे असमंजित महसूस करते हैं।

इस अध्ययन के लिए कलकत्ता विश्वविद्यालय के अंतर्गत बीस किलोमीटर की परिधि में फैले हुए 25 शहरी कालेजों को लिया गया जिनमें पश्चिम बंगाल की उच्चतर माध्यमिक शिक्षा परिषद् द्वारा प्रस्तुत प्रणाली पर कक्षा XI और XII की पढ़ाई होती थी। इन कालेजों में देहात से आए छात्र छात्रावास में या शहर में रहते हुए पढ़ते थे। अध्ययन के लिए नमूनों के तौर पर 450 ऐसे छात्रों को लिया गया जो देहात से शहर में पढ़ने के लिए आए थे, जिनकी स्कूली शिक्षा गाँव के स्कूलों में हुई थी, जो अंशकालिक रोजगार में नहीं थे, आर्थिक रूप से अभिभावकों पर आश्रित थे और छात्रावास में नहीं रहते थे। तुलनात्मक अध्ययन के लिए एक और वर्ग भी चुना गया जिसके छात्र कलकत्ता में पिछले दस वर्षों से

रह रहे थे, जो कभी भी देहाती इलाकों के स्कूलों में नहीं गए थे, जो कलकत्ता के ही किसी स्कूल में पढ़ चुके थे और जिनके माता-पिता कलकत्ता मेट्रोपॉलिटन के रहने वाले थे ।

एक सूचना सारणी बनाई गई ताकि देहात से पढ़ाई करने के लिए शहर आने वाले छात्रों की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि को समझा जा सके । इसी प्रकार की सूचना सारणी शहरी वर्ग वाले छात्रों के लिए भी बनाई गई । यह सारणी सामाजिक-आर्थिक पक्षों से सम्बद्ध बीस क्षेत्रों को समाहित करती थी । उत्तर पाँचसूत्री पैमाने पर दिए जाने थे। चालीस मदों वाला एक ग्रामीण शहरी चुनाव मानदंड भी बनाया गया । एक सामंजस्य सूची बनाकर शहर आने वालों की समंजन की समस्याओं का पता लगाने के लिए प्रयुक्त की गई । ची-स्क्वैअर टेस्ट और टी-टेस्ट प्रयुक्त किए गए ।

परिणामों से पता चला कि (i) शिक्षा और आधुनिकता की दृष्टि से देहाती और शहरी छात्रों के दृष्टिकोण में कोई अंतर नहीं है । (ii) अंतर-वर्ग तुलनाओं ने समंजन समस्याओं में कोई अंतर नही पाया । (iii) देहाती वर्ग कृषि-उन्मुख परिवारों का था जिनकी आमदनी कम थी, जिनकी शैक्षिक पृष्ठभूमि निम्न थी, जिनके मकान घटिया किस्म के थे, और जिनके अभिभावक स्तर-अभिमुखता की दृष्टि से निम्न थे ।

16. उड़ीसा के स्कूली बच्चों के बुद्धि-विकास का खुराक और वृद्धि से सम्बन्ध

प्रमुख अन्वेषक : डा० एस० पी० पटेल

इस अध्ययन का उद्देश्य उड़ीसा के जिला-मुख्यालयों के हाई स्कूलों की कक्षा VIII, IX और X के सर्वश्रेष्ठ दस छात्रों के परिवारों की पोषणीय स्थिति और शैक्षिक स्तर के परिप्रेक्ष्य में शारीरिक वृद्धि और मानसिक विकास के सम्बन्ध को ढूँढ़ना था ।

जिन प्राक्कल्पनाओं का परीक्षण किया गया, वे थीं—(i) सामान्य शारीरिक वृद्धि वाले छात्र बोधात्मक परीक्षणों में अन्य छात्रों की अपेक्षा श्रेष्ठ होंगे । (ii) पारम्परिक स्कूलों में पढ़ने वाले छात्रों की तुलना में पब्लिक स्कूलों में पढ़ने वाले छात्र आई० क्यू० परीक्षण में ज्यादा नम्बर पाएँगे क्योंकि पब्लिक स्कूलों के छात्र आर्थिक प्रतिष्ठा का प्रतिनिधित्व करते हैं और उनके स्कूल उन्हें अधिक अभिप्रेरण प्रदान करते हैं । (iii) पोषक मानवमिति के श्रेणीकरण की तरह का श्रेणीकरण/रूपांतर आई० क्यू० परीक्षण नम्बरों का भी है ।

एक जिले के तीन स्कूलों (एक लड़कों का, दूसरा लड़कियों का, तीसरा पब्लिक स्कूल) की कक्षा VIII, IX और X के दस सर्वश्रेष्ठ छात्रों को अध्ययन के लिए चुन लिया गया । यह मान कर आगे बढ़ा गया कि पारम्परिक स्कूलों के छात्रों की तुलना में पब्लिक

स्कूल के छात्र उच्च सामाजिक-आर्थिक वर्ग के होते हैं। इन छात्रों के घरों पर लगातार तीन दिनों तक जाकर देखा गया कि क्या खाना खाया जाता है। तराजू, एक जैसे प्यालों और चम्मचों, को इस्तेमाल कर खाने की सही मात्रा को आँका गया। मानव-मितीय मापों को लिख लिया गया। स्टैंडर्ड प्रोग्रेसिव मैट्रिसों का भी प्रयोग हुआ।

परिणामों से पता चला कि (i) मेधा के मामले में पारम्परिक और पब्लिक स्कूल के छात्रों में काफ़ी अंतर था। (ii) शरीर के वज़न (लम्बाई नहीं) और आई० क्यू० के बीच सकारात्मक सम्बन्ध था। (iii) पारम्परिक स्कूल के लगभग आधे छात्र जरूरत से कम वजन वाले थे जबकि पब्लिक स्कूल के केवल एक तिहाई छात्र ही कम वजन वाले थे। (iv) पारम्परिक स्कूलों के 32 प्रतिशत छात्र सही वजन वाले थे जबकि पब्लिक स्कूलों के 43 प्रतिशत छात्र सही वजन वाले थे। (v) उच्च आय वर्ग वाले परिवारों के पब्लिक स्कूल के छात्रों की खुराक सही शारीरिक वृद्धि के विचार से बिल्कुल ठीक थी, उसे किसी पूरक खुराक की जरूरत नहीं थी। (vi) अगर वंशानुक्रम से कोई कमजोर बाढ़ वाला और कम मेधा वाला होने के कारण कम आमदनी वाले वर्ग में धकेल दिया जाता है तो उसके बच्चे और भी कमजोर होते चले जाएँगे।

17. प्राथमिक स्कूलों के बच्चों की पठन-उपलब्धि को प्रभावित करने वाले कुछ कारकों का गहन अध्ययन

प्रमुख अन्वेषक : प्रो० आर० श्रीनिवास राव

इस अध्ययन के उद्देश्य थे—(i) बच्चों की पठन-उपलब्धि को उनके घरों और स्कूलों के विविध कारकों तथा व्यक्तिगत विशेषताओं के साथ जोड़ने का परीक्षण; (ii) बच्चों की पठन-उपलब्धि पर इन कारकों के सापेक्ष प्रभाव का आकलन; और (iii) पठन की दृष्टि से कमजोर बच्चों के पठन-कौशलों को सुधारने के लिए नैदानिक उपायों का सुझाव।

अध्ययन के लिए तीन मोटी श्रेणियों को लिया गया—घर की पृष्ठभूमि, स्कूल की स्थितियाँ और बच्चों की व्यक्तिगत विशेषताएँ। आंध्र प्रदेश के तीन क्षेत्रों रायलसीमा, तेलंगाना और सरकार जिले के यों ही चुन लिए गए साठ स्कूलों तक ही अध्ययन को सीमित रखा गया। हर क्षेत्र की ग्रामीण और शहरी बस्तियों के अलग-अलग तरह की प्रबंध समितियों वाले बीस-बीस स्कूलों को लिया गया था। हर स्कूल से पाँच-पाँच लड़कियों व लड़कों को नमूने के तौर पर चुना गया। इस प्रकार नमूने के कुल छात्रों की संख्या छह सौ थी। अध्ययन कक्षा III से VIII तक के तेलगु पढ़ने वाले छात्रों तक ही सीमित था। शांत पठन का परीक्षण हुआ जिसमें मिलने वाले नम्बरों को ही बच्चे की पठन-उपलब्धि माना गया। **घर की पृष्ठभूमि** से आशय था : किस श्रेणी का कितनी जगह वाला मकान है,

उसमें पठन की क्या सामग्री उपलब्ध है, अभिभावक की शैक्षिक योग्यता कैसी है, पिता का पेशा क्या है, परिवार की आमदनी कितनी है और समाज में घुलने-मिलने की उसकी प्रवृत्ति कैसी है । **स्कूल की स्थितियों** में ये बातें शामिल थीं : स्कूल में कितनी जगह है, कैसी सुविधाएँ मिली हुई हैं, कक्षा में कितने बच्चे हैं, शिक्षकों की योग्यता और अनुभव कैसा है, शिक्षण-सामग्री उपलब्ध है या नहीं, लाइब्रेरी है कि नहीं । बच्चों की **व्यक्तिगत विशेषताओं** का तात्पर्य है बच्चे की सामान्य मानसिक योग्यता, शब्दों की पहचान और ध्वनियों की पहचान का विवेक, साफ उच्चारण, पढ़ने की आदतें, पढ़ने में बच्चे की दिलचस्पी । घर की पृष्ठभूमि और स्कूल की स्थितियों के बारे में जानकारी प्रश्नावली और साक्षात्कारों द्वारा एकत्र की गई । कक्षा III व IV , V व VI, VII व VIII के लिए अलग अलग पठन-परीक्षण बनाए गए । पूरे आंध्र प्रदेश के हर स्तर से 1000 छात्रों को लेकर विश्वसनीयता एवं मान्यता स्थापित की गई । स्टैंडर्ड प्रोग्रेसिव मैट्रिसों का भी प्रयोग किया गया । शिक्षकों और हेडमास्टरों से जानकारी लेने के अलावा निरीक्षण और साक्षात्कार से भी सूचनाएँ प्राप्त की गईं । पठन-परीक्षण की निष्पत्ति के आधार पर छात्रों को तीन वर्गों में बाँटा गया और अन्य प्रकार के परीक्षण किए गए ।

अध्ययन से पता चला कि (i) पठन-उपलब्धि और घर की पृष्ठभूमि के हर कारक के बीच अलग अलग घनिष्ठ संबंध है; (ii) पठन-उपलब्धि और स्कूल की हर स्थिति के बीच अलग-अलग संबंध है; (iii) पठन-उपलब्धि हरेक व्यक्तिगत विशेषता के साथ जुड़ी हुई है; (iv) घर की पृष्ठभूमि के सभी कारकों और स्कूल की सभी स्थितियों को सम्मिलित रूप से मिलाने पर पठन-उपलब्धि के साथ जो सह सम्बन्ध बनता है, उसके मुकाबले व्यक्तिगत विशेषताओं और पठन-उपलब्धि के बीच का सह सम्बन्ध कहीं ज्यादा बड़ा और मजबूत है; (v) पठन-उपलब्धि और व्यक्तिगत विशेषताओं के बीच का बहुविध सह सम्बन्ध 81.5 प्रतिशत, स्कूल स्थितियों का 82.5 प्रतिशत और घर की पृष्ठभूमि का 83 प्रतिशत था ।

18. बच्चों के लिए आह्लाद के क्षण

प्रमुख अन्वेषक : प्रो० रामाधार सिंह

इस अनुसंधान का मुख्य उद्देश्य इस बात का अध्ययन करना था कि चार से नौ वर्ष की उम्र वाले बच्चे अपने तुरंत के आह्लाद को कैसे अभिव्यक्त करते हैं । इसके लिए कुल चार प्रयोग किए गए । हर प्रयोग में क्रमशः 72, 144, 48 और 48 बच्चों को 'विषय' के रूप में लिया गया ।

प्रायोगिक कार्यभार नियोजित किए गए । कार्यभार 1 में मौखिक और निश्चित प्रबलनों के क्रमगुणित समुच्चय थे । बच्चों ने एक साधारण प्रेरक पर निष्पादन किया और मौखिक प्रबलनों तथा बैलून के कई समुच्चयों में से एक को प्राप्त किया । उन्होंने अपने

आह्लाद के स्व-निर्णयों को 15 फलकों वाले मानदंड पर दिया। कार्यभार 2 में सकारात्मक और ऋणात्मक मौखिक प्रबलनों की क्रमिक स्थितियों को छलयोजित किया गया। 'विषयों' ने अपने संचयी आह्लाद को तीन मौखिक निरीक्षणों से प्रकट किया। सूचना एकीकरण सिद्धांत के अनुसार यह अपेक्षा की गई कि व्यक्तिगत आह्लाद को व्यक्त करने में कार्यभार 1 के मौखिक और निश्चित प्रबलनों और विभिन्न क्रमिक स्थितियों के मौखिक प्रबलनों का औसतीकरण कर दिया जाएगा।

पहले और दूसरे प्रयोगों ने 'सेंट्रेशंस' के खिलाफ जोरदार साक्ष्य प्रस्तुत किए। अपने आह्लाद को व्यक्त करने में, 4 से 5 वर्ष वाले सभी बच्चे मौखिक और निश्चित दोनों प्रबलनों पर ध्यान देने में समर्थ थे। इससे भी महत्वपूर्ण साक्ष्य यह था कि मौखिक और निश्चित प्रबलनों के एकीकरण में उन्होंने औसतीकरण के नियम का पालन किया। अपने आह्लाद को व्यक्त करने में 8 से 9 वर्ष वाले लड़कों ने बैलून की उपेक्षा की। लड़कों के तीनों वय-क्रमों में निश्चित मौखिक प्रबलनों की रूपरेखा का पैटर्न भी परिवर्तनशील था। लड़कियों में आह्लाद ने एक अ-रेखीय नियम का पालन किया। उन्होंने यह अर्थ भी निकाला कि बैलून की अनुपस्थिति दंडस्वरूप है।

तीसरे और चौथे प्रयोगों ने आह्लाद में अभिनवता-प्रभाव पाया। अंतिम प्रबलन ने बच्चों को सबसे ज्यादा प्रभावित किया। अपने आह्लाद को व्यक्त करने में उन्होंने तीनों मौखिक निरीक्षणों का इस्तेमाल कर लिया। परिणाम से यह भी पता चला कि पाइजेट की सेंट्रेशन की प्राक्कल्पना के विरोध में भी कुछ कहा जा सकता है।

कुल मिलाकर चारों प्रयोगों के निष्कर्ष इस प्रकार हैं—

(क) आह्लाद औसतीकरण के नियम के अनुसार चलता है;

(ख) बच्चों के निर्णय अभिनवता-प्रभाव वाले होते हैं;

(ग) भारत में 4 से 5 वर्ष वाले बच्चों में एक सुविकसित मीट्रिक समझ है; और

(घ) प्रबलित करने वाली स्थितियों के बहुविधि पक्षों को विकेंद्रित करने में भी 4 से 9 वर्ष वाले बच्चे सक्षम थे।

तदनुसार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जितना समझा जाता था, बच्चे उससे कहीं अधिक जटिल हैं।

पीएच० डी० के शोध प्रबंधों/ग्रंथों के लिए प्रकाशन अनुदान

डॉक्टरेट की उपाधि के लिए शोध-प्रबन्धों और ग्रंथों के प्रकाशन के लिए अनुदान

देने की योजना के अन्तर्गत एरिक ने जो प्रकाशन अनुदान दिए उनका विवरण नीचे की सारणी में दिया जा रहा है—

सन् 1982-83 में एरिक द्वारा दिए गए प्रकाशन-अनुदान

क्रम संख्या	परियोजना का शीर्षक	प्रमुख अन्वेषक
1.	शिक्षक व्यवहार के उभरते हुए पैटर्न	डा० बृजकिशोर शर्मा प्रतापगढ़
2.	अनुसूचित जातियों के शैक्षिक विकास के लिए बनी योजनाओं के बारे में अ० जा० की जागरूकता का अध्ययन	डा० एस० के० यादव नई दिल्ली
3.	रिसर्च इंडिकेटर्स इन नॉर्मल एंड क्लिनिकल ग्रुप्स इन मिलिट्री पापुलेशन	डा० बी० एल० दुबे चंडीगढ़
4.	पर्सन पर्सेप्शन	डा० प्रकाशचन्द्र वर्मा गोरखपुर
5.	पढ़ाई में छात्रों को लगने वाले कुछ कारकों का अध्ययन	डा० (श्रीमती) आशा भटनागर नई दिल्ली
6.	राजस्थान के सेकंडरी स्कूलों के संगठन का अन्वेषण	डा० मोतीलाल शर्मा दक्षिण गुजरात विश्वविद्यालय
7.	गति विकास-सह-प्रशिक्षण की अवधारणा	डा० (श्रीमती) उपदेश बेवली नई दिल्ली
8.	ग्रामीण और शहरी हाई स्कूलों के बच्चों की व्यावसायिक आकांक्षाओं से सम्बद्ध कुछ मनोवैज्ञानिक और सामाजिक कारक	डा० एस० एस० चड्ढा चंडीगढ
9.	मेरठ विश्वविद्यालय के कालेजों में ग्रुप ऐक्सपर्टेंस और कुछ अन्य शैक्षिक पहलुओं से सम्बद्ध प्रशासकीय नेतृत्व के आयामों का अध्ययन	डा० एस० पी० कौशिक मेरठ

विभागीय परियोजनाएँ

नीचे लिखी विभागीय परियोजनाएँ पूरी हो गईं :

पूरी हुई विभागीय परियोजनाएँ

क्रम संख्या	परियोजना का शीर्षक	प्रमुख अन्वेषक
1.	बी० एड० पत्राचार कोर्स के छात्रों का अभिप्रेरण	डा० कुलदीप कुमार
2.	विभिन्न राज्यों में माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम भार का तुलनात्मक अध्ययन	श्री जी० एल० अरोड़ा
3.	प्रारम्भिक अध्यापक-प्रशिक्षण संस्थानों में सामाजिक संसक्ति और संस्थानों की कुशलता से उनके सम्बन्ध का अध्ययन	डा० एन० के० जांगीरा
4.	प्रतिभा-खोज में अनुसंधान और विकास : रचनात्मकता-परीक्षणों के इस्तेमाल का अध्ययन	डा० एम० के० रैना

1. बी० एड० पत्राचार कोर्स के छात्रों का अभिप्रेरण

प्रमुख अन्वेषक : डा० कुलदीप कुमार

शिक्षा के प्रसार से सम्बद्ध समस्याओं के व्यावहारिक समाधान के रूप में पत्राचार शिक्षा की प्रणाली सामने आई थी। इस शिक्षा प्रणाली को सन् 1966 में रा० शै० अ० और प्र० प० ने स्कूल स्तर के अध्यापक-प्रशिक्षण के लिए अपनाया था। तब राष्ट्रीय परिषद् ने शिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण के लिए एक ग्रीष्म-स्कूल-सह-पत्राचार कोर्स चलाया था।

प्रस्तुत अध्ययन को रा० शै० अ० और प्र० प० के कोर्स के छात्रों (सेवाकालीन स्कूल शिक्षक) तक ही सीमित रखा गया था। जिन लोगों ने कोर्स की जरूरतों को पूरा कर लिया था और जो प्रश्नावली के उत्तर अंग्रेजी में दे सकते थे, उन सभी लोगों को इस अध्ययन में शामिल किया गया था।

अन्वेषण इस जानकारी के लिए किया गया था कि (i) ग्रीष्म-स्कूल-सह-पत्राचार कोर्स में आने वालों का अभिप्रेरण क्या था; (ii) बी० एड० की डिगरी पा जाने के बाद चुने गए लोगों का तुरंत का और दूरगामी लक्ष्य क्या होगा; (iii) विभिन्न कोर्स इनपुट के संचालन के बारे में इन लोगों का क्या अवगम था।

निम्नलिखित पक्षों को समाहित करने वाले कोर्स इनपुट को चेकलिस्ट ने बताया : (क) पाठों को पाने में नियमितता, (ख) पाठों को समझने में कठिनाई, (ग) पाए गए पाठों की शैक्षणिक गुणवत्ता, (घ) हर पर्चे में मिले कार्यभार की संख्या, (ङ) कार्यभार को पूरा करने के लिए मिला समय, (च) शिक्षण अभ्यास के लिए मार्गदर्शन और सुविधाएँ, (छ) कोर्स में अपनाई गई मूल्यांकन प्रविधियाँ ।

इनके अलावा पत्राचार शिक्षा के प्रति ग्रीष्म-स्कूल-सह-पत्राचार कोर्स के छात्रों की अभिवृत्तियों एवं उपलब्धि अभिप्रेरणाओं को पुरुषों और स्त्रियों के लिए अलग अलग विश्लेषित किया गया और उनकी तुलना पूर्णकालिक बी० एड० के छात्रों के एक वर्ग के साथ की गई ।

अध्ययन से पता चला कि (i) शिक्षण के पेशे में आने के ये कारण हैं—(क) इस व्यवसाय की प्रतिष्ठा और इसके माध्यम से मानवता की सेवा, (ख) पुरुषों के अनुसार रुचि, पसंद और महत्वाकांक्षा के साथ जीविकोपार्जन, महिलाओं ने भी ये ही तीन कारण बताए लेकिन इनका क्रम बदला हुआ था यानी द्वितीय, तृतीय और प्रथम के क्रम में था । (ii) पत्राचार कोर्स के माध्यम से बी० एड० करने के जो कारण अधिकांश लोगों ने बताए, वे थे—(क) नौकरी करते हुए इसे करना आर्थिक रूप से समीचीन था, (ख) व्यावसायिक कुशलताओं को इस तरह सुधारा जा सकता था । (iii) जीवन लक्ष्यों के विश्लेषण से पता चला कि जहाँ तक तुरंत के लक्ष्य का सम्बन्ध है, एक बेहतर शिक्षक बनने के लक्ष्य को ज्यादातर लोगों ने दुहराया जबकि एक पुस्तक लिखने के उद्देश्य को बहुत कम लोगों ने माना। दूरगामी लक्ष्यों के प्रसंग में भी अधिकांश पुरुषों ने वही बात दुहराई किंतु स्त्रियों ने कहा कि वे उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहती हैं । पूर्णकालिक बी० एड० करने वालों ने तुरंत के लक्ष्य के जवाब में बताया कि वे प्रशिक्षण अध्यापक का वेतन पाने के लिए ऐसा कर रहे हैं । दूरगामी लक्ष्य के सिलसिले में उनका कहना था कि उच्च शिक्षा के लिए वे यह कोर्स कर रहे हैं । (iv) ग्रीष्म-स्कूल-सह-पत्राचार कोर्स के छात्रों और नियमित बी० एड० के छात्रों के उपलब्धि अभिप्रेरण के मूल्यांकनों में अधिक अंतर नहीं है । (v) ग्रीष्म-स्कूल-सह-पत्राचार कोर्स के छात्रों ने शिक्षा के प्रति अभिरुचि पर उच्च मीन स्कोर किया । (vi) भुवनेश्वर, भोपाल और मैसूर के क्षे० शि० महाविद्यालयों के छात्रों ने पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम की कड़ी आलोचना की । उनका कहना था कि पाठ्यचर्या बड़ी लम्बी और सैद्धांतिक है । अधिकांश छात्रों ने अपने अनुभव के आधार पर कहा कि शिक्षण अभ्यास को पाठ्यचर्या से हटा देना चाहिए अथवा काफी कम कर देना चाहिए । (vii) भोपाल के क्षे० शि० म० के छात्र शिक्षण-विधियों के तरीके से संतुष्ट नहीं थे । उनके विचार से इस पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए । (viii) भोपाल और मैसूर के कुछ छात्रों ने कहा कि ग्रीष्म कार्यक्रमों में क्षे० शि० म० के नियमित शिक्षकों को पढ़ाना चाहिए । (ix) कुछ छात्रों ने सुझाया कि पत्राचार माध्यम से एम० एड० कार्यक्रम शुरू किया जाना चाहिए । कुछ ने सेवाकालीन

शिक्षकों के लिए रिफ्रेशर कोर्स, स्टडी लीव आदि की माँग की। (x) एक तिहाई छात्रों ने भाषणों को समझने में कठिनाई महसूस की। यह कठिनाई मुश्किल शब्दों, शिक्षण-माध्यम और शंकाओं के समाधान के लिए शिक्षकों के न मिलने के बारे में थी। (xi) लगभग आधे छात्रों ने महसूस किया कि लेक्चरों का प्रबंध ठीक से नहीं किया जा रहा है। (xii) अजमेर के तीन-चौथाई छात्रों ने महसूस किया कि कोर्स के अनुदेश अपर्याप्त थे। (xiii) मूल्यांकन पद्धति से दो-तिहाई छात्र संतुष्ट थे। (xiv) शैक्षणिक समस्याओं के समाधान के लिए तीन चौथाई छात्र एक स्टडी सर्किल बनाना चाहते थे।

2. विभिन्न राज्यों में माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम-भार का तुलनात्मक अध्ययन

प्रमुख अन्वेषक : श्री जी० एल० अरोड़ा

पाठ्यक्रम-भार एक सापेक्ष शब्द है और इसके बारे में निर्णय लेने के पहले कई कारकों को ध्यान में रखना चाहिए। ये कारक हैं—पाठ्यक्रम को सीखने में छात्रों द्वारा, और उसे सिखाने में अध्यापकों द्वारा लगाया जाने वाला समय एवं शक्ति; स्कूल का परिवेश और संसाधन; उपलब्ध समय और छात्रों की मानसिक योग्यता के परिप्रेक्ष्य में प्रबंधकुशलता की सीमा।

इस अन्वेषण का प्रमुख उद्देश्य माध्यमिक स्तर अर्थात् कक्षा IX और X के छात्रों के पाठ्यक्रम-भार का अध्ययन करना था। यह अध्ययन दिल्ली, हरियाणा, केरल और महाराष्ट्र में किया गया।

अध्ययन के अनुसंधान-प्रश्न को इन शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है : "दिल्ली, हरियाणा, केरल और महाराष्ट्र में पाँच अनिवार्य विषयों में वर्ष 1981-82 के दौरान लगाया गया पाठ्यक्रम क्या भारी है ?"

इस अध्ययन के लिए आधार-सामग्री का संकलन प्रश्नावली, साक्षात्कार, वर्ग चर्चा, निरीक्षण, अनुमान आदि के द्वारा किया गया। आधार-सामग्री प्राप्त करने के लिए चारों राज्यों/संघ क्षेत्रों के विभिन्न प्रकार के अनेक स्कूलों से सम्पर्क किया गया जैसे कि ग्रामीण और शहरी स्कूल, बालक एवं बालिका विद्यालय, सरकारी और सरकारी सहायता से चलने वाले स्कूल।

इन स्कूलों के शिक्षकों से वर्तमान पाठ्यक्रमों और शिक्षण के उद्देश्यों, कोर्स को समय से समाप्त न करा पाने के कारणों, कोर्स को जल्दी से समाप्त करने के तरीकों, कोर्स की कठिनाइयों, पाठ्यक्रम-भार के समंजन के लिए सुझावों आदि के बारे में जानकारी और राय ली गई। प्राप्त उत्तरों के आधार पर जो निष्कर्ष निकले वे इस प्रकार हैं :

(1) दिल्ली के शिक्षक अंग्रेजी, गणित और हिन्दी के वर्तमान पाठ्यक्रम को 'तनिक सा भारी' मानते हैं, और विज्ञान तथा सामाजिक विज्ञान के पाठ्य-क्रम को 'कुछ भारी'। छात्रों की राय में केवल विज्ञान का पाठ्यक्रम भारी है।

(2) महाराष्ट्र के शिक्षक अंग्रेजी और सामाजिक अध्ययन के वर्तमान पाठ्यक्रम को 'तनिक सा भारी' मानते हैं, और मराठी, विज्ञान तथा गणित के पाठ्य-क्रम को 'कुछ भारी'। छात्रों की राय में केवल विज्ञान का पाठ्यक्रम भारी है।

(3) हरियाणा के शिक्षक अंग्रेजी, हिन्दी, विज्ञान, गणित और सामाजिक अध्ययन के वर्तमान पाठ्यक्रम को 'तनिक सा भारी' मानते हैं। छात्रों की राय में केवल गणित का पाठ्यक्रम भारी है।

(4) केरल के शिक्षक विज्ञान के वर्तमान पाठ्यक्रम को 'तनिक सा भारी' मानते हैं, और अंग्रेजी, मातृभाषा, गणित और सामाजिक विज्ञान के पाठ्य-क्रम को 'कुछ भारी'। छात्रों की राय में केवल गणित का पाठ्यक्रम भारी है।

3. प्रारम्भिक अध्यापक-प्रशिक्षण संस्थानों में सामाजिक संसक्ति और संस्थानों की कुशलता से उनके सम्बन्ध का अध्ययन

प्रमुख अन्वेषक : डा० एन० के० जांगीरा

इस अध्ययन को उत्तर प्रदेश के 33 प्रारम्भिक अध्यापक-प्रशिक्षण संस्थानों में किया गया। सामाजिक संसक्ति को इस अध्ययन के लिए बनाई गई सामाजिक संसक्ति मूल्यांकन सूची द्वारा मापा गया। बोर्ड परीक्षाओं में मिले प्राप्तांकों को ही छात्र-अध्यापकों की उप-लब्धि माना गया। अभिवृत्तियों को अहलूवालिया अभिवृत्ति सूची से और संस्था के प्रति अभिवृत्ति को रोमा दत्ता के उपकरण से मापा गया। इस अध्ययन से निम्नलिखित बातें पता चलीं—

—छात्र-अध्यापक उपलब्धि और अंतर वैयक्तिक आकर्षण, पूरे वर्ग को एक मान कर उसका मूल्यांकन, नेतृत्व शैली और निर्णयक्षमता पर सामाजिक संसक्ति के स्कोर के बीच जो सह सम्बन्ध है वह .01 स्तर पर महत्वपूर्ण है और वर्ग में बने रहने की सुस्पष्ट इच्छा के साथ उसका सहसम्बन्ध .05 स्तर पर महत्वपूर्ण है। अन्य सहसम्बन्ध महत्वपूर्ण स्तर पर न पहुँचते हुए भी सकारात्मक हैं।

—शिक्षा के सिद्धांतों में छात्र-अध्यापक उपलब्धि और अंतर वैयक्तिक आकर्षण, पूरे वर्ग को एक मान कर उसका मूल्यांकन, नेतृत्व शैली और निर्णय-क्षमता पर सामाजिक संसक्ति के स्कोर के बीच जो सहसम्बन्ध है वह महत्वपूर्ण है। वर्ग के साथ घनिष्ठता और महत्वपूर्ण स्तर पर पहुँचे बिना ही वर्ग में बने रहने की सुस्पष्ट इच्छा के साथ भी उसका सकारात्मक सहसम्बन्ध है।

—शिक्षण अभ्यास में छात्र-अध्यापक उपलब्धि और वर्ग में बने रहने की सुस्पष्ट इच्छा, अंतर, वैयक्तिक आकर्षण, पूरे वर्ग को एक मान कर उसका मूल्यांकन, वर्ग के साथ घनिष्ठता, नेतृत्व शैली और निर्णय क्षमता के बीच महत्वपूर्ण सह-सम्बन्ध है।

—सामाजिक संसक्ति के किसी भी स्कोर के साथ समंजन और अभिवृत्ति के चर महत्वपूर्ण रूप में सहसम्बन्धित नहीं हैं। शिक्षा के सिद्धांतों में, छात्र-अध्यापक उपलब्धि के मीन स्कोर और उनकी कुल उपलब्धि, उच्च व निम्न सामाजिक संसक्ति वाले संस्थानों में महत्वपूर्ण रूप से अलग अलग हैं।

—उच्च और निम्न सामाजिक संसक्ति वाले संस्थानों में अध्यापकों (अध्यापक-शिक्षकों) के प्रति छात्र-अध्यापक की अभिवृत्तियाँ महत्वपूर्ण रूप से अलग अलग हैं।

—थ्योरी में छात्र-अध्यापक उपलब्धि के लिए सामाजिक संसक्ति के स्कोर निम्न भविष्य वाचन वाले हैं। वे विसंगति के 11.69 प्रतिशत के ही लिए हैं। छात्र-अध्यापक समंजन और अभिवृत्ति बेहतर भविष्य-वाचक हैं। वे विसंगति के क्रमशः लगभग 36 प्रतिशत और 14.41 प्रतिशत को बताती हैं।

—शिक्षण अभ्यास में छात्र-अध्यापक उपलब्धि को बताने वाले सामाजिक संसक्ति के चर, बेहतर भविष्य वाचक हैं। वे विसंगति के 48.23 प्रतिशत के लिए हैं।

अन्वेषणात्मक प्रकृति वाले इस अध्ययन ने केवल एक राज्य के प्रारम्भिक अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों तक अपने को सीमित रखा।

4. प्रतिभा-खोज में अनुसंधान और विकास : रचनात्मकता-परीक्षणों के इस्तेमाल का अध्ययन

प्रमुख अन्वेषक : डा० एम० के० रैना

इस अध्ययन का प्राथमिक उद्देश्य रचनात्मक चिंतन योग्यता (वालाख एंड कोगन टेस्ट्स ऑफ क्रिएटिविटी), रचनात्मक बोध और प्रतिभा के मापन के बीच के सम्बन्ध को

पता लगाना था। अधिक स्पष्ट शब्दों में कहा जाए तो अध्ययन का उद्देश्य नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर देना था :

(i) 'वालाख-कोगन टेस्ट्स ऑफ क्रिएटिविटी' पर परखे जाने पर, राष्ट्रीय प्रतिभा-खोज छात्रवृत्ति के लिए चुने गए छात्रों और साक्षात्कार के लिए बुलाए गए किंतु चुने न गए छात्रों की निष्पत्ति में क्या अत्यंत उल्लेखनीय अंतर होता है ?

(ii) रचनात्मकता के परीक्षणों के स्कोर्स और प्रतिभा के मानदंडों के बीच क्या सहसम्बन्ध है ?

(iii) रचनात्मकता के परीक्षणों के मौखिक और चाक्षुष रूपों से निकाले गए मानदंडों के बीच क्या सहसम्बन्ध है ?

(iv) प्रतिभा के मानदंडों द्वारा मापी गई बुद्धि की तुलना में, रचनात्मकता-परीक्षणों की दो बैटरियाँ क्या बुद्धि के दो अलग अलग आयामों को परिभाषित करती हैं ?

भारत के दो अलग अलग परीक्षा-केन्द्रों में, सन् 1977 में, साक्षात्कार के लिए बुलाए गए कक्षा X के 276 प्रत्याशियों को नमूने के लिए लिया गया। सामान्य मानसिक योग्यता परीक्षण और शैक्षणिक अभिरुचि परीक्षण में उनकी निष्पत्तियों के आधार पर उन्हें साक्षात्कार के लिए बुलाया गया था। राष्ट्रीय प्रतिभा खोज छात्रवृत्ति के लिए इन प्रत्याशियों में से 48 को चुना गया और 228 को नहीं चुना गया।

सन् 1978 में, भारत के तीन अलग-अलग परीक्षा केन्द्रों में साक्षात्कार के लिए बुलाए गए कक्षा XI और XII के 205 प्रत्याशियों को नमूने के लिए लिया गया। राष्ट्रीय प्रतिभा खोज छात्रवृत्ति के लिए इन प्रत्याशियों में से 50 को चुना गया और 155 को नहीं चुना गया।

इस अन्वेषण के लिए 'वालाख एंड कोगन टेस्ट्स ऑफ क्रिएटिविटी' के मौखिक और चाक्षुष दोनों परीक्षणों को रचनात्मकता मापने के लिए और रचनात्मक बोध मापने के लिए प्रयुक्त किया गया।

प्रमुख परिणामों को संक्षेप में नीचे दिया जा रहा है :

(i) चुने गए और नहीं चुने गए प्रत्याशियों की रचनात्मकता के तुलनात्मक अध्ययन से पता चला कि : (क) दोनों वर्षों के परीक्षा-परिणामों का यही कहना था कि रचनात्मकता के मौखिक आयामों पर चुने गए और नहीं चुने गए प्रत्याशियों में कोई उल्लेखनीय अंतर नहीं थे। (ख) चाक्षूष रचनात्मकता

परीक्षणों में भी कोई उल्लेखनीय अंतर नहीं मिले। (ग) रचनात्मक बोध के मापन में भी, दोनों वर्गों के बीच कोई उल्लेखनीय अंतर नहीं मिला।

(ii) प्रतिभा और रचनात्मकता के मापन के बीच के सम्बन्धों ने बताया कि (क) रचनात्मकता के चाक्षुष और मौखिक परीक्षणों तथा जी० एम० ए० टी० स्कोर्स के बीच मामूली और निम्न सहसम्बन्ध हैं। सन् 1978 के वर्ग के मामले में भी इसी तरह के परिणाम मिले थे। (ख) रचनात्मकता के चाक्षुष और मौखिक परीक्षणों के विविध आयामों और एस० ए० टी० स्कोर्स के बीच अति निम्न और मुख्यत: ऋणात्मक सहसम्बन्ध मिले। सन् 1978 में भी जो सहसम्बन्ध मिले थे, वे निम्न थे और कई मामलों में शून्य थे। (ग) दोनों ही वर्षों में, रचनात्मकता के चाक्षुष, और मौखिक परीक्षणों तथा साक्षात्कार स्कोर्स के बीच पाए गए अधिकांश सहसम्बन्ध शून्य के आसपास ही थे।

(iii) जहाँ तक प्रतिभा के मापन और रचनात्मक बोध के बीच के सम्बन्ध का सवाल है : (क) 1978 वर्ग के मामले में रचनात्मक बोध और जी० एम० ए० टी० स्कोर्स के बीच तनिक सा सहसम्बन्ध मिला था। (ख) रचनात्मक बोध के मापन के साथ एस० ए० टी० स्कोर्स का ऋणात्मक सहसम्बन्ध था। (ग) सन् 1978 के कुल प्रत्याशियों और न चुने गए प्रत्याशियों के वर्गों के मामले में साक्षात्कार ने रचनात्मक बोध के साथ कोई सम्बन्ध नहीं दिखाया। उसने चुने हुए प्रत्याशियों के वर्ग में निम्न और न के बराबर सहसम्बन्ध दिखाया ($r = \cdot 13$)।

(iv) रचनात्मक चिंतन योग्यता के मानदंडों में अंतर-सहसम्बन्धों के लिए (क) दोनों वर्षों के परिणामों ने जाहिर किया कि रचनात्मकता के विविध कार्यभारों के स्कोर काफी संसक्त थे। (ख) रचनात्मकता की छह मौखिक अनुक्रमणिकाएँ चार मौखिक अनुक्रमणिकाओं के साथ बहुत अच्छी तरह से सहसम्बन्धित नहीं थीं। (ग) कारक विश्लेषण परिणामों ने रचनात्मकता के परीक्षणों में कार्यभार विशिष्टता और रूप विशिष्टता का संकेत दिया। संख्या कारक; प्रतिदर्श अर्थों के कारक; विलक्षणता की रेखा के अर्थों के कारक; शैक्षणिक योग्यता के कारक; विलक्षणता की समानताओं के कारक और विलक्षणता की घटनाओं के कारक उभर कर सामने आए। परिणामों ने रचनात्मकता के मानदंडों और प्रतिभा के मानदंडों के सांख्यिकीय अलगाव का भी संकेत दिया।

नई परियोजनाएँ

अनुसंधान रिपोर्टों और शोध ग्रंथों को प्रकाशन-अनुदान देने और परियोजनाओं को

वित्तीय सहायता देने की योजना के अंतर्गत 29 शोध परियोजनाओं को स्वीकृत किया गया। इस पृष्ठ व अगले पृष्ठों की सारणी में इन परियोजनाओं का ब्यौरा दिया जा रहा है :

वित्तीय सहायता के लिए स्वीकृत नई अनुसंधान-परियोजनाएँ

क्रम संख्या	परियोजना का शीर्षक	प्रमुख अन्वेषक
1	2	3
1.	आत्म-अवधारणा और परामर्श तथा अन्य सहायक रणनीतियों के प्रभाव	प्रो० जे० एन० जोशी चंडीगढ़
2.	उत्तर प्रदेश के निराश्रय-गृहों में पल रहे बच्चों की मार्ग-दर्शन-आवश्यकताएँ	डा० साहब सिंह वाराणसी
3	पठन-सुधार-कार्यक्रम के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए कक्षा V, VI और VII के छात्रों के लिए गुजराती में शांत पठन बोध परीक्षणों का निर्माण और मानकीकरण	डा० बी० वी० पटेल वल्लभ विद्यानगर
4.	आंध्र प्रदेश में गणित शिक्षण और अधिगम का अनुभवजन्य अध्ययन	डा० के० संगीता राव गुंटूर
5.	रा० शै० अ० और प्र० प० के अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षणों द्वारा जुटाई गई आधार सामग्री को प्रयुक्त कर नामांकन एवं स्कूली सुविधाओं की विसंगतियों को मापना	श्री० जे० एल० आजाद नई दिल्ली
6.	बड़ौदा जिले में स्कूल प्रसारणों का अध्ययन	डा० जी० आर० सुदामे बड़ौदा
7.	आंध्र प्रदेश के रायल सीमा इलाके की रक्षा 3 से 7 तक में पढ़ने वाले बच्चों में पठन अयोग्यता की प्रकृति और घटनाओं का अन्वेषण	डा० आर० श्रीनिवास राव, तिरुपति
8.	भारत में शैक्षिक प्रौद्योगिकी का व्यवहार	श्रीमती कुसुम कामथ बम्बई
9.	+2 और पूर्व स्नातक स्तरों पर हिन्दी कहानी की शिक्षण विधियाँ और मूल्यांकन उपकरण	डा० आर० एस० शर्मा एवं श्रीमती कमला वोरा नई दिल्ली

1	2	3
10.	चोय्यासी ब्लॉक में प्रथम श्रेणियों के बीच डिस-कैल्कूलिया	डा० एस० जी० शाह सूरत
11.	आंध्र प्रदेश के वारंगल जिले में प्राथमिक शिक्षा में प्राइवेट निवेश	डा० एन० राजय्या वारंगल
12.	स्कूलों में पोषण और स्वास्थ्य प्रणाली की स्थिति और प्रासंगिकता का अध्ययन	डा० सी० गोपालन नई दिल्ली
13.	प्राथमिक कक्षा के बच्चों में अधिगम-अक्षमता	डा० के० जी० देसाई अहमदाबाद
14.	उत्तर प्रदेश के तीर्थों में साधु संगठनों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति	डा० जे० के० मिश्र मुरादाबाद

पीएच० डी० शोध-प्रबंधों और अनुसंधान रिपोर्टों के लिए प्रकाशन अनुदान

क्रम संख्या	शीर्षक	प्रमुख अन्वेषक
1	2	3
1.	अभियांत्रिकी रचनात्मकता से जुड़े प्रतिभाशाली और अप्रतिभाशाली कारक	डा० एम० सेन गुप्त नई दिल्ली
2.	पंजाब विश्वविद्यालय के 1950-51 और 1974-75 वर्षों का लागत-विश्लेषण	डा० वी० पी० गर्ग नई दिल्ली
3.	शिक्षण की प्रकृति	प्रो० आर० पी० सिंह नई दिल्ली
4.	दिल्ली के स्कूल-अध्यापकों की सामाजिक पृष्ठभूमि और व्यावसायीकरण का सम्बन्ध	डा० सी० एल० वधावन नई दिल्ली
5.	प्राथमिक विद्यालयों की अध्यापिकाओं की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि एवं उनकी कार्य-संतुष्टि	डा० (श्रीमती) करुणा शाह, वाराणसी

1	2	3
6.	हाईस्कूल छात्रों के लिए भौतिक भूगोल में कार्यक्रमित पाठ्य का विकास	डा० निर्मल सिंह कुरुक्षेत्र
7.	सामान्य और समस्याग्रस्त शिशुओं के व्यक्तित्वों के अंतरों का अध्ययन	डा० श्याम कृष्णन गोरखपुर
8.	श्रवण अपंगता वाले शिशुओं के शिक्षकों के लिए व्यावहारिक सहायक पुस्तक	सुश्री मेनका पार्थसारथी मद्रास
9.	प्राचीन भारत की जनशिक्षा पर धर्म का प्रभाव	डा० डी० पी० मुखर्जी विश्वभारती
10.	ऐन इन्वेस्टिगेशन इंटू दि एम्पीरिकल वैलिडिटी ऑफ ब्लूम्स टेक्सोनोमी ऑफ़ एजुकेशनल आब्जेक्टिवज्	डा० प्रीतम सिंह नई दिल्ली
11.	सामाजिक-आर्थिक स्तर पर शिक्षा का प्रभाव	डा० बी० एम० मोदी अहमदाबाद
12.	ऐन एम्पीरिकल स्टडी ऑफ़ दि डेवेलपमेंट ऑफ़ एचीवमेंट मोटिव्ज् एंड फंक्शन्स ऑफ़ प्रोलांग्ड डेप्रीवेशन	डा० अष्टानंद तिवारी देवरिया
13.	दिल्ली के हायर सेकंडरी स्कूलों के शिक्षकों में आत्म-यथार्थीकरण	डा० (श्रीमती) ए० के० सत्पथी, नई दिल्ली
14.	शिक्षक समंजन में समान कारकों का विश्लेषण	डा० एस० के० मंगल रोहतक
15.	नागा भाषा-भाषी छात्राओं की हिन्दी सीखने की समस्याएँ	डा० रामकृपाल कुमार आगरा

शैक्षिक मनोविज्ञान

शैक्षिक मनोविज्ञान के कार्यक्रमों के तीन मुख्य केन्द्र विंदु हैं : (क) सीखने वाला, (ख) सिखाने-सीखने की प्रक्रिया, और (ग) सिखाने-सीखने की परिस्थिति । रा० शै० अ० और प्र० प० इन तीनों विन्दुओं से सम्बद्ध अनुसंधान, प्रशिक्षण और विस्तार के कार्यक्रमों

का आयोजन और सामग्री का निर्माण करती है। ऊपर गिनाए गए उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए, शिक्षा जगत की प्राथमिकताओं के साथ अनुसंधान की एक योजना बनाई गई। अगले पाँच-दस वर्षों के पूर्व अनुमानित पालनपोषण के प्रयासों पर ही ध्यान केन्द्रित करने का प्रस्ताव है। तीन प्रकार की अपंगताएँ पहचानी जा चुकी हैं: अधिगम अपंगताएँ; सामाजिक वंचनाएँ और आर्थिक वंचनाएँ। इन तीनों क्षेत्रों की समस्याओं के आधार पर अनुसंधान प्रस्ताव बनाए जाएँगे।

पढ़ाई के बीच में ही स्कूल छोड़ देने की प्रक्रिया और लक्षणों का अनुदैर्ध्य अन्वेषण

इस अनुदैर्ध्य अन्वेषण का लक्ष्य इस बात का परीक्षण करना है कि किस प्रकार एक विशेष प्रकार के छात्र और संस्थागत लक्षण स्कूल छोड़ देने की प्रवृत्ति से संबंधित हैं। इस प्रवृत्ति को नियंत्रित करने का लक्ष्य भी इसी अन्वेषण का है।

(क) जिन छात्रों ने 1981-82 के दौरान पढ़ाई के बीच में ही स्कूल जाना छोड़ दिया, उनके नाम प्राप्त किए गए।

(ख) स्कूल-परिवेश और छात्रों की विशेषताओं पर शिक्षकों का मूल्य-निर्धारण प्राप्त किया गया।

(ग) स्जोन्दी टेस्ट और पिक्चर फ्रस्ट्रेशन टेस्ट की टीका करने के लिए विस्तृत मार्गदर्शी रेखाएँ बनाई गईं।

(घ) पढ़ाई के बीच में ही स्कूल छोड़ जाने की प्रक्रिया पर प्राक्कल्पनाएँ और केस स्टडीज बनाई जा रही हैं।

हायर सेकंडरी स्तर पर धारा के भीतर ही धारा और कोर्सों को लाने के लिए निकष विकसित करना

रिपोर्ट लिखी जा रही है और निम्नलिखित के प्रथम प्रारूप बन चुके हैं:

—शैक्षणिक उपलब्धि के भविष्य वाचक के रूप में 'जी' और 'एस ए टी' के मानदंड।

—सीनियर स्कूल सर्टिफिकेट के भविष्य वाचक के रूप में सेकंडरी स्कूल सर्टिफिकेट इक्जामिनेशन।

—ई० पी० क्यू० और शैक्षणिक निष्पादन।

—रुचि कारक और शैक्षणिक निष्पादन।

—शैक्षणिक समंजन और शैक्षणिक निष्पादन।

व्यावसायिक खोज कार्यक्रम की प्रभावकारिता का अन्वेषण

माध्यमिक स्कूल स्तर पर व्यावसायिक खोज कार्यक्रम की प्रभावकारिता का अन्वेषण ही इस अध्ययन का लक्ष्य है। इसके दो प्रमुख भाग हैं: (i) अपनी खोज, और (ii) व्यवसायों की खोज।

इस वर्ष 'अपनी खोज' की सामग्री हिन्दी और अंग्रेजी में बनाई गई जिनके शीर्षक थे—(i) तुम्हारी जरूरतें, (ii) अपनी खोज, (iii) तुम्हारी रुचि, (iv) तुम्हारी अभिरुचि, (v) सामाजिक और व्यावसायिक प्रभाव, (vi) तुम्हारे खाली वक्त के काम काज।

छात्रों ने उपरोक्त सामग्री को नियमित कक्षा में पढ़ा और बाद में उस पर चर्चाएँ कीं। (i) आत्म सूचना सूची, (ii) पेशा परिपक्वता सूची, (iii) पेशा परिपक्वता पैमाना, और (iv) कई अभिवृत्ति परीक्षणों पर उनकी प्रतिक्रियाएँ प्राप्त की गईं।

आनुषंगिक प्रबन्ध द्वारा प्रारम्भिक छात्रों के कक्षा व्यवहार और बोधात्मक क्रियाओं को सुधारना

इस अनुसंधान परियोजना का उद्देश्य प्रारम्भिक छात्रों के कक्षा व्यवहार और बोधात्मक क्रियाओं को सुधारने में प्रबंध तकनीक की क्षमता का मूल्यांकन करना है। अध्ययन के लिए चुने गए तीन स्कूलों में इन प्रबंध तकनीकों को प्रयुक्त किया गया। प्रयोग-पूर्व की आधार-सामग्री भी इकट्ठा की गई है। परिणामों को विश्लेषित किया जा रहा है।

प्रेक्षा ध्यान द्वारा जीवन विज्ञान प्रशिक्षण की प्रभावकारिता

आचार्य तुलसी द्वारा प्रवर्तित प्रेक्षा ध्यान के माध्यम से जीवन विज्ञान में प्रशिक्षण की क्षमता का अध्ययन करने के लिए तुलसी अध्यात्म नीड़म एवं राजस्थान शिक्षा निदेशालय द्वारा संयुक्त रूप से यह परियोजना शुरू की गई थी। परिषद् ने मूल्यांकन अध्ययन के लिए अपनी सहमति दी थी। यह अन्वेषण निदान पूर्व और निदानोत्तर परीक्षण का नियोजन करता है।

निम्नलिखित चरों की आधार सामग्री संकलित की गई :

- सामान्य स्वास्थ्य : ऊँचाई, वजन, रक्तचाप, वक्ष-प्रसार, साँस रोकने की क्षमता, दृष्टि (चश्मा लगाने वाले विशेष रूप से बताएँ), कान-नाक-गला का सामान्य परीक्षण, कोई प्रत्यक्ष रोग ।

—सामान्य शैक्षणिक उपलब्धि ।

—सामान्य मानसिक योग्यता ।

—रचनात्मकता ।

—चिंता ।

—समंजन ।

—कुंठा सहिष्णुता ।

—समस्या-समाधान क्षमता ।

—सामाजिक-आर्थिक स्तर ।

तुलसी अध्यात्म नीड़म द्वारा प्रशिक्षित नियमित स्कूल शिक्षकों ने सितम्बर 1982 से फरवरी 1983 तक जीवन विज्ञान प्रशिक्षण दिया ।

उपरोक्त क्षेत्र अध्ययन के अलावा, एक स्कूल में एक गहन अन्वेषण शुरू किया गया जिसमें निम्नलिखित चरों पर अतिरिक्त आधार-सामग्री भी संकलित की गई : इलेक्ट्रो इसीफैलोग्राफी (ई ई सी), मेज लर्निंग (इलेक्ट्रिकल) रिऐक्शन टाइम गैल्वैनिक स्किन रेजिस्टेंस। निदानपूर्व आधार सामग्री स्कोर की जा चुकी थी ।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने निम्नलिखित उद्देश्यों से प्रमुख व्यक्तियों के विकास के लिए, प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया : अध्यापक-शिक्षकों की गुणवत्ता को और अधिगम एवं विकास के मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों वाले उनके ज्ञान को सुधारना; छात्रों को समझने के लिए कौशलों को विकसित करना; सीखने वाले के व्यावहार को सुधारने के लिए कौशलों का विकास करना ।

14

प्रतिभा की खोज

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की राष्ट्रीय प्रतिभा खोज परीक्षा का उद्देश्य प्रतिभाशाली छात्रों को खोज निकालना और उन्हें वित्तीय सहायता देना है ताकि वे उच्च शिक्षा तक पढ़ाई जारी रख सकें। छात्रवृत्तियाँ मूल विज्ञानों, सामाजिक विज्ञानों, कृषि, वाणिज्य और इंजीनियरिंग तथा चिकित्साशास्त्र जैसे व्यावसायिक कोर्सों वाले विभिन्न विषयों के अध्ययन के लिए दी जाती हैं।

हर वर्ष कुल 550 छात्रवृत्तियाँ दी जाती हैं जिनमें 50 छात्रवृत्तियाँ अनुसूचित जाति/अनुसूचित जन जाति के छात्रों के लिए होती हैं। हर साल 400 से अधिक केन्द्रों में परीक्षाएँ ली

जाती हैं जो कक्षा X, XI और XII की फाइनल सार्वजनिक परीक्षा में बैठने वाले छात्रों के लिए होती हैं।

भारत के संविधान में मान्यता प्राप्त सभी भाषाओं में ये परीक्षाएँ होती हैं। बाद में राष्ट्रीय प्रतिभा छात्रवृत्ति पाने वाले छात्रों की निष्पत्तियों के गहन अध्ययन किए जाते हैं।

इस वर्ष राष्ट्रीय प्रतिभा खोज परीक्षा 9 मई 1982 को भारत के 439 केन्द्रों और जर्मनी के एक केन्द्र में हुई। कुल मिला कर 83,320 छात्र इसमें बैठे—कक्षा X में 46,365, कक्षा XI में 8,988 और कक्षा XII में 27,967 छात्र। इसमें से 550 छात्रों को छात्रवृत्तियों के लिए चुना गया जिनमें अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के 50 छात्र सम्मिलित हैं।

आगे एक सारणी दी जा रही है। इसमें 1982 वर्ष में कक्षा X, XI और XII के लिए राष्ट्रीय प्रतिभा खोज परीक्षा में बैठने वाले छात्रों, साक्षात्कार के लिए बुलाए गए छात्रों और चुने गए छात्रों का विवरण राज्य क्रम से दिया गया है। इसमें संक्षिप्त किए गए शब्द इस प्रकार हैं :

परीक्षा में बैठे = प०

साक्षात्कार में आए = सा०

चुने गए = चु०

सन् 1982 की राष्ट्रीय प्रतिभा खोज परीक्षा

क्रम संख्या	राज्य/संघ क्षेत्र	कक्षा X			कक्षा XI			कक्षा XII		
		प०	सा०	चु०	प०	सा०	चु०	प०	सा०	चु०
1.	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11.
1.	आंध्र प्रदेश	3518	16	5	48	—	—	2328	19	15
2.	असम	332	1	1	4	—	—	287	1	1
3.	बिहार	7013	100	50	6	—	—	1923	32	13
4.	गुजरात	1167	7	3	1	—	—	1137	7	3
5.	हरियाणा	559	7	3	382	13	7	189	—	—
6.	हिमाचल प्रदेश	367	1	—	142	3	2	67	—	—
7.	जम्मू व कश्मीर	183	—	—	107	—	—	112	—	—
8.	कर्नाटक	2217	13	7	—	—	—	923	5	3
9.	केरल	2400	10	7	25	2	—	732	2	1
10.	मध्य प्रदेश	840	7	4	4134	18	8	177	1	—
11.	महाराष्ट्र	4533	92	43	4	—	—	2836	53	33
12.	मणिपुर	33	—	—	—	—	—	30	—	—

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11
13.	मेघालय	88	—	—	—	—	—	36	—	—
14.	नागालैंड	3	—	—	—	—	—	5	—	—
15.	उड़ीसा	1800	9	4	490	17	12	1883	10	4
16.	पंजाब	716	7	3	499	15	9	241	5	2
17.	राजस्थान	2481	21	12	2820	119	56	338	7	2
18.	सिक्किम	6	—	—	—	—	—	11	—	—
19.	तमिलनाडु	3358	22	9	21	—	—	2920	28	16
20.	त्रिपुरा	65	1	—	—	—	—	63	—	—
21.	उत्तर प्रदेश	6188	22	9	44	1	—	4607	28	13
22.	पश्चिमी बंगाल	2824	29	12	2	—	—	2130	20	14
23.	अंडमान निकोबार द्वी. स.	65	—	—	—	—	—	46	—	—
24.	अरुणाचल प्रदेश	36	—	—	—	—	—	8	—	—
25.	चंडीगढ़	373	4	4	246	28	11	193	4	1
26.	दादरा व नगर हवेली	—	—	—	—	—	—	—	—	—
27.	दिल्ली	4860	177	97	53	1	—	4479	101	50
28.	गोआ, दमन व दिउ	85	1	1	—	—	—	64	—	—

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11
29.	लक्षद्वीप	8	1	—	—	—	—	2	—	—
30.	मिजोरम	29	—	—	—	—	—	2	—	—
31.	पांडिचेरी	213	—	—	—	—	—	186	—	—
32.	विदेश	6	—	—	—	—	—	2	—	—
		46365	549	274	8988	217	105	27967	323	171

(प)—परीक्षा में बैठे कुल छात्र = 83,320

(सा)—साक्षात्कार में बुलाए गए छात्र = 879

(चु) —चुने गए कुल छात्र = 550

राष्ट्रीय प्रतिभा खोज छात्रवृत्ति के लिए 1982 में चुने गए छात्रों की पढ़ाई की वर्तमान स्थिति (1982-83)

क्रम संख्या	कक्षा	चुने गए छात्रों की संख्या	सन् 1982-83 में पढ़े जा रहे विषय					
			+2 स्तर	बी०ए०प्रथम वर्ष	बी० काम० प्रथम वर्ष	बी० एससी० प्रथम वर्ष	इंजीनियरिंग (अर्थात् बी०ई० या बी० टेक०) प्रथम वर्ष	एम०बी०बी०एस० प्रथम वर्ष
1.	X	250	250	—	—	—	—	—
2.	XI	100	35	25	6	21	13	—
3.	XII	150	—	24	36	13	48	29
	कुल	500	285	49	42	34	61	29

अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति श्रेणी में 1982 में चुने गए छात्रों की स्थिति

1.	X	24	24	—	—	—	—	—
2.	XI	5	1	2	1	1	—	—
3.	XII	21	—	4	3	1	7	6
		50	25	6	4	2	7	6

राष्ट्रीय प्रतिभा खोज छात्रवृत्ति पाने वालों की पढ़ाई की वर्तमान स्थिति (वर्ष 1982-83)

क्रम संख्या	कक्षा/स्तर	सामान्य श्रेणी में चुने गए छात्रों की संख्या	अ० जा०/अ०ज० श्रेणी में चुने गए छात्रों की संख्या	कुल
1	2	3	4	5
1.	+2 स्तर	500	43	543
2.	बी० ए० प्रथम वर्ष	60	6	66
3.	बी० ए० द्वितीय वर्ष	50	7	57
4.	बी० ए० तृतीय वर्ष	76	—	76
5.	बी० कॉम० प्रथम वर्ष	47	4	51
6.	बी० कॉम० द्वितीय वर्ष	35	—	35
7.	बी० कॉम० तृतीय वर्ष	25	—	25
8.	बी० एससी० प्रथम वर्ष	63	2	65
9.	बी० एससी० द्वितीय वर्ष	18	2	20
10.	बी० एससी० तृतीय वर्ष	39	—	39
11.	एम० ए० (प्रथम)	69	—	69
12.	एम० कॉम० (प्रथम)	11	—	11
13.	एम० एससी० (प्रथम)	40	—	40
14.	एम० ए० (फाइनल)	23	—	23
15.	एम० कॉम० (फाइनल)	3	—	3
16.	एम० एससी० (फाइनल)	10	—	10
17.	पीएच० डी० (प्रथम वर्ष)	26	—	26
18.	पीएच० डी० (द्वितीय वर्ष)	33	—	33
19.	पीएच० डी० (तृतीय वर्ष)	25	—	25
20.	पीएच० डी० (चतुर्थ वर्ष)	25	—	25

1	2	3	4	5
21.	बी० ई०/बी० टेक० प्रथम वर्ष	·203	7	210
22.	बी० ई०/बी० टेक० द्वितीय वर्ष	159	7	166
23.	बी० ई०/बी० टेक० तृतीय वर्ष	195	—	195
24.	बी० ई०/बी० टेक० चतुर्थ वर्ष	201	—	201
25.	बी० ई०/बी० टेक० पंचम वर्ष	143	—	143
26.	एम० बी० बी० एस० प्रथम वर्ष	121	9	30
27.	एम० बी० बी० एस० द्वितीय वर्ष	142	3	145
28.	एम० बी० बी० एस० तृतीय वर्ष	164	—	164
29.	एम० बी० बी० एस० चतुर्थ वर्ष	120	—	120
30.	एम० बी० बी० एस० पंचम वर्ष	48	—	48
	कुल	2674	90	2764

मूल विज्ञान पढ़ रहे रा० प्र० खो० छा० पाने वाले स्नातकोत्तर छात्रों के लिए मई-जून 1982 में हुए समर प्लेसमेंट कार्यक्रम का विवरण

क्रम संख्या	समर प्लेसमेंट कार्यक्रम का स्थान	प्रतिभागी छात्रों की संख्या
1.	इंडियन इंस्टीच्यूट ऑफ साइंस, बँगलूर	17
2.	भाभा एटमिक रिसर्च सेंटर, बम्बई	2
3.	टाटा इंस्टीच्यूट ऑफ़ फंडामेंटल रिसर्च, बम्बई	27
4.	फ़िज़िकल रिसर्च लेबोरेटरी, अहमदाबाद	1
5.	रेडियो ऐस्ट्रोनॉमी सेंटर ऑफ़ टी० आई० एफ० आर०, ऊटकमंड	3
6.	इंडियन एग्रीकल्चरल रिसर्च इंस्टीच्यूट, नई दिल्ली	1
7.	इंडियन इंस्टीच्यूट ऑफ़ टेक्नोलॉजी, कानपुर	1

मूल विज्ञान पढ़ रहे रा० प्र० खो० छा० पाने वाले पूर्व स्नातक स्तर के छात्रों के लिए मई-जून 1982 में हुए ग्रीष्म-स्कूलों का विवरण

क्रम संख्या	ग्रीष्म-स्कूल आयोजित करने वाले निदेशक का नाम-पता	प्रतिभागियों की संख्या और कक्षा का विषय
1.	प्रो० एम० एस० सोढा भौतिकी विभाग आइ० आइ० टी० नई दिल्ली	(14) भौतिकी प्रथम वर्ष
2.	प्रो० के० वी० राव भौतिकी विभाग आइ० आइ० टी० खड़गपुर	(14) भौतिकी द्वितीय वर्ष
3.	प्रो० सी० रामशास्त्री भौतिकी विभाग आइ० आइ० टी० मद्रास	(15) भौतिकी तृतीय वर्ष
4.	प्रो० आर० डी० दुआ रसायन शास्त्र विभाग आइ० आइ० टी० नई दिल्ली	(19) रसायन विज्ञान प्रथम, द्वितीय, तृतीय वर्ष
5.	प्रो० सी० एम० पुरुषोत्तम गणित विभाग आइ० आइ० टी० मद्रास	(21) गणित प्रथम, द्वितीय, तृतीय वर्ष
6.	डा० वाइ० आर० मलहोत्रा जीवविज्ञान विभाग जम्मू विश्वविद्यालय जम्मू (जम्मू व कश्मीर)	(16) जीवविज्ञान प्रथम, द्वितीय, तृतीय वर्ष

15

विस्तार के कार्य और राज्यों के साथ काम करना

शिक्षकों को निरंतर सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से, देश भर के अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों व स्कूलों में स्थापित किए गए केन्द्रों एवं विस्तार सेवा विभागों के साथ रा० शै० अ० और प्र० प० बड़े पैमाने पर काम करती है। कक्षा शिक्षण अभ्यासों को सुधारने के लिए परिषद् के चारों क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय और सोलह क्षेत्र एकक विस्तार के कार्यक्रमों और अभिनव परिवर्तनों को बढ़ावा देते हैं।

भारत में स्कूल शिक्षा प्रणाली के व्यवहार और संगठन को सुधारने की दृष्टि से परिषद् महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों को शुरू करती है। यह कोर्सों, अभिविन्यास-कार्यगोष्ठियों, परिचर्चाओं,

प्रतियोगिताओं और सम्मेलनों का आयोजन करती है जिनमें भारत भर के शैक्षिक संस्थानों के परामर्शक, कैरियर मास्टर, अध्यापक-शिक्षक, निरीक्षक, अधीक्षक, शिक्षक, प्रिंसिपल और हेडमास्टर शामिल होते हैं। विस्तार के कार्यक्रम इन विषयों से सम्बद्ध होते हैं : गहन सुधार परियोजनाएँ, स्कूलों में अच्छे अभ्यास, नवाचार को प्रोत्साहन, प्रमुख व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीय स्तर के सम्मेलन, राज्य अधिकारियों की राष्ट्रीय गोष्ठियाँ, एवं शैक्षिक सामग्री की अखिल भारतीय नुमाइशें। भारत के सभी 22 राज्यों तथा नौ संघ क्षेत्रों के लिए विस्तार के ये कार्यकलाप किए जाते हैं।

अहमदाबाद के क्षेत्र कार्यालय ने गुजरात के विभिन्न स्कूलों से 28 परियोजनाओं के लिए प्रस्ताव प्राप्त किए जिनमें से 13 परियोजनाओं को 1982-83 में वित्तीय पोषण दिया गया। इन 13 स्कूलों को प्रायोगिक परियोजनाएँ शुरू करने के लिए मार्गदर्शन और आवश्यक वित्तीय सहायता दी जा रही है।

इलाहाबाद के क्षेत्र कार्यालय ने स्कूलों और अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों की नवाचारीय एवं प्रायोगिक परियोजनाओं के कार्यकलापों को बढ़ावा दिया। क्षेत्र कार्यालय ने क्षेत्रीय प्रशिक्षण संस्थानों के बीस प्रिंसिपलों के लिए एक कार्यगोष्ठी आयोजित की जिसमें इन संस्थानों द्वारा शुरू की जाने वाली प्रायोगिक डिजाइनों को तैयार किया गया। इस सम्बन्ध में काम किया जा रहा है। क्षेत्र सलाहकार ने उन दो संस्थानों का दौरा किया जहाँ परियोजनाओं को शुरू किया जा चुका है।

कलकत्ता के क्षेत्र कार्यालय ने इस वर्ष पश्चिम बंगाल और अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह के विभिन्न स्कूलों से 14 प्रायोगिक परियोजनाओं के लिए प्रस्ताव प्राप्त किए। पश्चिम बंगाल के शिक्षा निदेशक की अध्यक्षता में बनी समिति ने इन प्रस्तावों की जाँच की और वित्तीय पोषण दिए जाने के लिए आठ प्रस्तावों को चुना। इन आठ स्कूलों में से सात को रकम दे दी गई। आठवाँ स्कूल अपेक्षित कागज-पत्र नहीं दे पाया इसलिए उसके प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया गया।

गौहाटी के क्षेत्र कार्यालय ने असम के बोर्ड ऑफ सेकंडरी एजुकेशन के अध्यक्ष और शैक्षणिक कर्मचारियों के साथ बैठक की और माध्यमिक स्कूलों के शिक्षकों के लिए प्रायोगिक परियोजनाओं और अन्य शैक्षिक कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के सम्बन्ध में उनसे विचार-विमर्श किया।

चंडीगढ़ के क्षेत्र कार्यालय ने सभी राज्यों की राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषदों तथा राज्य शिक्षा संस्थानों के निदेशकों एवं सेवाकालीन प्रशिक्षण केन्द्रों के प्रिंसिपलों से प्रायोगिक परियोजनाओं की स्कीम को खूब प्रचारित करने की प्रार्थना की तथा शिक्षकों से परियोजना-प्रस्ताव माँगे। पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश और चंडीगढ़ से क्रमशः 45, 8, 5 और 3 परियोजना-प्रस्ताव आए। इन प्रस्तावों की जाँच करने के लिए

एक समिति बनाई गई जिसमें क्षेत्र सलाहकार और सम्बद्ध राज्यों के दो-दो प्रतिनिधि थे। समिति ने पंजाब के चार, हिमाचल प्रदेश के तीन और चंडीगढ़ के तीन परियोजना-प्रस्तावों को मंजूर कर उन्हें वित्तीय पोषण दिया।

जयपुर के क्षेत्र कार्यालय ने एस० टी० सी० स्कूल इंस्ट्रक्टरों के लिए अभिविन्यास कार्यक्रम और कई अन्य कार्यकलापों के द्वारा विद्यार्थियों में मानव बंधुता की भावना उपजाने बढ़ाने के लिए किए गए कार्यक्रमों में भाग लिया।

त्रिवेन्द्रम के क्षेत्र कार्यालय ने कैसरगोद इलाके के शिक्षकों के लिए प्रायोगिक परियोजनाओं पर चार दिनों का अभिविन्यास कार्यक्रम आयोजित किया। उस इलाके के 22 शिक्षकों ने इसमें भाग लिया। इस कार्यक्रम को आयोजित करने में राज्य के दो संसाधन सम्पन्न व्यक्तियों ने क्षेत्र सलाहकार की सहायता की। इस कार्यक्रम में, परियोजना-प्रस्तावों को बनाने में शिक्षकों को प्रशिक्षित किया गया। कोर्स के अंत में शिक्षकों ने अपने अपने प्रस्ताव प्रस्तुत कर दिए जिन्हें विशेषज्ञों ने जाँचा।

पटना के क्षेत्र कार्यालय ने सितम्बर 1982 के चौथे सप्ताह में, प्रायोगिक परियोजनाओं पर काम करने वाले स्कूल शिक्षकों के लिए एक गोष्ठी की। भाषा, विज्ञान और सामाजिक अध्ययन में प्रायोगिक परियोजनाएँ बनाने के लिए विशेषज्ञों ने मार्गदर्शन दिया। ये विशेषज्ञ राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् तथा पटना के अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय से आए थे। विस्तार सेवा केन्द्रों के माध्यम से, बिहार के विभिन्न स्कूलों से 51 प्रायोगिक परियोजनाओं के प्रस्ताव प्राप्त किए गए। वित्तीय पोषण के लिए जाँच करने पर केवल 16 प्रस्तावों को ही ठीक पाया गया। उनमें से केवल आठ शिक्षकों ने अनुदान के लिए कागज पत्रों को समय पर भेजा।

पुणे के क्षेत्र कार्यालय ने इन कार्यक्रमों में प्रतिभागिता की : अध्यापक-शिक्षकों का प्रशिक्षण, विज्ञान शिक्षकों का अनुकूलन, खिलौना बनाने की प्रतियोगिता, नवाचारीय परियोजनाएँ, राज्य स्तर की विज्ञान-प्रदर्शनी और शिक्षण सामग्री की जाँच परख एवं छात्रों का मूल्यांकन।

बंगलूर का क्षेत्र कार्यालय इन कामों में व्यस्त रहा : राष्ट्रीय एकीकरण शिविर का आयोजन, समाजोपयोगी उत्पादक कार्य में प्रशिक्षण, शैक्षिक खिलौना बनाने की प्रतियोगिता, कक्षा I से X तक का आंतरिक मूल्य निर्धारण, अध्यापक-शिक्षकों के लिए अधिगम एवं विकास का सम्पन्नीकरण कोर्स, तमिल में अधिगम उपाख्यान, प्रतिभा खोज परीक्षा, और यूनिसेफ़ सहायता प्राप्त परियोजनाएँ।

भुवनेश्वर के क्षेत्र कार्यालय ने उड़ीसा के प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों के शिक्षकों से प्रायोगिक परियोजनाओं के प्रस्ताव आमंत्रित किए और जारी प्रायोगिक परि-

योजनाओं को आवश्यक मार्गदर्शन उपलब्ध कराया। कुल मिलाकर राज्य के प्राथमिक स्कूलों के शिक्षकों से 46 और माध्यमिक स्कूलों के शिक्षकों से 36 परियोजनाओं के लिए प्रस्ताव आए। इनकी जाँच के लिए बनी समिति ने इन प्रस्तावों की परख की और प्राथमिक स्कूलों की 17 और माध्यमिक स्कूलों की नौ परियोजनाओं को वित्तीय पोषण दिए जाने की सिफ़ारिश की। परियोजनाओं पर काम शुरू करने के लिए 15 प्राथमिक स्कूलों और चार माध्यमिक स्कूलों को 3,239 रुपयों का अनुदान दिया गया।

जो परियोजनाएँ स्कूलों ने ले रखी हैं, उनके बारे में क्षेत्र कार्यालय द्वारा उन्हें परामर्श और शैक्षणिक मार्गदर्शन दिया गया।

"प्रयोगात्मक परियोजनाओं के लिए सहायता की योजना" नामक पुस्तिका के उड़िया संस्करण को विस्तार सेवा केन्द्रों, स्कूलों, संस्थानों, विभिन्न बैठकों-गोष्ठियों-कार्यशालाओं-परिचर्चाओं के प्रतिभागियों में विस्तृत सूचना प्रदान करने के लिए बाँटा गया।

भोपाल का क्षेत्र कार्यालय स्कूलों में चल रही प्रयोगात्मक परियोजनाओं को काफी महत्व देता है। इन प्रयोगात्मक परियोजनाओं को मध्य प्रदेश के अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों के विस्तार सेवा केन्द्रों के माध्यम से चलाया जाता है। इस वर्ष राज्य के स्कूलों से 26 प्रयोगात्मक परियोजनाओं के प्रस्ताव प्राप्त किए गए, जिनमें से 21 को स्वीकृत कर 5,350 रुपए अनुदान के तौर पर दिए गए।

मद्रास के क्षेत्र कार्यालय ने निम्नलिखित कार्यक्रमों में भाग लिया : तमिल भाषा के कौशलों का सुधार; शिक्षा का व्यावसायीकरण, पाठ्यपुस्तक मूल्यांकन, विज्ञान प्रदर्शनी, औपचारिक शिक्षा, सतत शिक्षा, एवं शैक्षणिक आदर्शों को मजबूत करने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रम।

शिलङ् के क्षेत्र कार्यालय ने राज्यों/संघ क्षेत्रों को इन कामों में सहायता देना जारी रखा : प्रायोगिक परियोजनाएँ, अभिनव परिवर्तन वाले कार्य, परीक्षा सुधार, खिलौना बनाने की प्रतियोगिताएँ, प्रतिभा खोज, अनौपचारिक शिक्षा, विज्ञान प्रदर्शनियाँ, शिक्षण-साधन, परामर्श एवं सम्पर्क-कार्य।

श्रीनगर के क्षेत्र कार्यालय ने 18 से 21 अगस्त 1982 तक लेह में, लद्दाख इलाके के माध्यमिक स्कूल शिक्षकों के लिए एक कार्यगोष्ठी आयोजित की जिसमें कक्षा और स्कूल परिस्थितियों पर स्वीकृत प्रायोगिक परियोजनाओं को आकस्मिक सहायता देने की योजना को समझाया गया। चुनी हुई समस्याओं पर परियोजना-प्रस्ताव बनाने में 16 शिक्षकों को

मदद दी गई । स्कूल शिक्षा की गुणवत्ता को सुधारने के लिए स्वीकृत परियोजनाओं को संभवतः 1983-84 में वित्तीय सहायता दी जाएगी ।

हैदराबाद के क्षेत्र कार्यालय ने निम्नलिखित कार्यक्रमों में भाग लिया : लड़कियों का राष्ट्रीय एकीकरण शिविर, प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वजनीकरण का प्रबोधन और मूल्यांकन, शिक्षा का व्यावसायीकरण, अनौपचारिक शिक्षा एवं प्रतिभा खोज परीक्षा ।

16

अंतर्राष्ट्रीय सहायता और अंतर्राष्ट्रीय संबंध

परिषद् स्कूल स्तर पर शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करने के लिए प्रयत्नशील है और इस संबंध में राष्ट्रीय महत्व की संस्था होने के नाते वह यूनेस्को और शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत अन्य अंतर्राष्ट्रीय संगठनों से संपर्क बनाए रखती है। परिषद् ने यू० एन० डी० पी० और यूनेस्को जैसी अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों से सहायता प्राप्त की है। जहाँ तक स्कूल शिक्षा का संबंध है, परिषद् उन द्विपक्षी सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रमों के प्रावधानों के कार्यान्वयन की प्रमुख एजेंसी के रूप में भी कार्य करती है, जिन पर भारत सरकार और विभिन्न देशों के बीच समझौता होता है। परिषद् विकास के लिए शैक्षिक नवीन

प्रक्रिया के एशियाई केन्द्र (एपीड) के लिए राष्ट्रीय विकास दल के सचिवालय के रूप में भी कार्य करती है। अन्य कार्यों के अलावा, सचिवालय-कार्यों में निम्नलिखित कार्य शामिल हैं— शिक्षा निदेशकों, राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषदों, राज्य शिक्षा संस्थानों और अन्य एपीड के संबद्ध केन्द्रों के साथ संचार माध्यम को स्थापित करना; सूचना/प्रलेखन सेवाएँ प्रदान करना; एपीड के अंतर्गत प्रायोजित विभिन्न कार्यक्रमों का विकास और मूल्यांकन करना; और एपीड द्वारा सहायता प्राप्त या प्रायोजित नवीन प्रक्रियात्मक कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के लिए सुविधाएँ जुटाना।

यूनेस्को/एपीड

यूनेस्को कार्यक्रमों में सीधे भाग लेकर; एपीड (विकास के लिए शैक्षिक नवीन प्रक्रिया के एशियाई कार्यक्रम) के जरिये यूनेस्को के कार्यकलापों में भाग लेकर; और शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में अध्ययन करके परिषद् यूनेस्को के कार्यकलापों में भाग लेती है। यूनेस्को के कार्यकलापों में सीधे भाग लेने में अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों, संगोष्ठियों, कार्यशालाओं, विचार-गोष्ठियों आदि में भाग लेने के लिए परिषद् के अधिकारियों को भेजने के साथ-साथ शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में प्रशिक्षण के लिए विदेशी नागरिकों को बुलाना भी शामिल है। वर्ष के दौरान यूनेस्को के क्रियाकलापों में परिषद् के निम्नलिखित अधिकारियों ने भाग लिया :

परिषद् के अधिकारियों की प्रतिनियुक्ति

विज्ञान और गणित शिक्षा विभाग के रीडर डा आर० एन० माथुर भौतिकी में 'इक्जैम्प्लर ट्रेनिंग मॉड्यूल्स' और 'ओपेन एंडेड लेबोरेटरी एक्सपेरीमेंट्स' तैयार करने के लिए हुई यूनेस्को उपक्षेत्रीय लेखन कार्यगोष्ठी में भाग लेने के वास्ते 22 से 26 जून 1982 तक मलयेशिया में रहे।

सर्वेक्षण और आधार सामग्री प्रक्रिया एकक के रीडर श्री० के० एन० हिरियन्निया पढ़ाई के बीच में ही स्कूल छोड़ जाने की समस्या पर अंतर-देशीय अध्ययन करने के लिए मलयेशिया और थाईलैंड की यात्रा पर 6 से 15 सितम्बर 1982 तक गए।

सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग के रीडर डा० दि० सी० मुले सहयोगी स्कूल परियोजना के अंतर्गत समसामयिक विश्व समस्याओं का अध्ययन करने के लिए 24 अगस्त से 10 सितम्बर 1982 तक फिलीपाइन्स और थाईलैंड की यात्रा पर गए।

यूनेस्को परियोजना 'व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा में सचल टीम' के अंतर्गत व्यावसायिक शिक्षा एकक के रीडर डा० सी० के० मिश्र और भोपाल के क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय के लेक्चरर श्री आर० एम० नामदे 25 फरवरी से 11 मार्च 1983 तक के लिए इंडोनेशिया, आस्ट्रेलिया और थाईलैंड की अध्ययन-यात्रा पर गए।

यूनेस्को परियोजना 'व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा में सचल टीम' के अंतर्गत भोपाल के क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय के रीडर डा० यू० एस० प्रसाद 20 से 30 मार्च 1983 तक की अध्ययन-यात्रा पर फिलीपाइन्स और जापान गए।

'सेकंडरी विज्ञान और गणित में कक्षा परीक्षण और मापन के प्रशिक्षण' वाले संलग्नक कार्यक्रम में भाग लेने के लिए मैसूर के क्षे० शि० म० के लेक्चरर डा० एस० एन० प्रसाद मलयेशिया की छह सप्ताह की यात्रा पर 4 अप्रैल 1982 को गए।

रसायन विज्ञान की पाठ्यचर्या और शिक्षण सामग्री की एपीड रीजनल डिज़ाइन वर्कशॉप में भाग लेने के निमित्त मैसूर के क्षे० शि० म० के० प्रोफेसर डा० ए० के० शर्मा एवं विज्ञान और गणित शिक्षा विभाग के रीडर डा० आर० डी० शुक्ल सिओल की एक सप्ताह की यात्रा पर 21 से 28 अक्तूबर 1982 तक के लिए गए।

अपंग बच्चों/लोगों की विशेष शिक्षा पर प्रशिक्षण देने के लिए जापान में हुए द्वितीय एपीड क्षेत्रीय सम्मेलन में भुवनेश्वर के क्षे० शि० म० के रीडर इन एजुकेशन डा० एस० सी० चतुर्वेदी ने 16 से 23 सितम्बर 1982 तक भाग लिया।

शैक्षिक विकास की उन्नत तकनीकी के व्यवहार पर यूनेस्को द्वारा पेनाङ (मलयेशिया) में 20 से 24 सितम्बर 1982 तक आयोजित एसीड स्टडी ग्रुप मीटिंग में शै० प्रौ० के० की प्रोफेसर डा० स्नेहलता शुक्ल ने भाग लिया।

सेकंडरी विज्ञान और गणित के उपकरणों (डिज़ाइन और प्रोटोटाइप उत्पादन) के विकास का प्रशिक्षण, जिसे एपीड के अंतर्गत 20 सितम्बर से 27 नवम्बर 1982 तक पेनाङ (मलयेशिया) में आयोजित किया गया था, लेने के लिए भुवनेश्वर के क्षे० शि० म० के भौतिकी के लेक्चरर श्री० एम० ए० चंद्रशेखर मलयेशिया गए।

यूनेस्को और एपीड के सहयोग से जापान की राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान संस्था द्वारा शैक्षिक जानकारी पर आयोजित क्षेत्रीय कार्यगोष्ठी में 1 से 23 फरवरी 1982 तक सर्वेक्षण और आधार सामग्री प्रक्रिया एकक के रीडर श्री के० एन० हिरियन्निया ने भाग लिया।

व्यावसायिक शिक्षा एकक के अध्यक्ष प्रो० अरुण कुमार मिश्र ने तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा की संभाव्यता पर पेरिस में 1 से 4 मार्च 1983 तक आयोजित यूनेस्को अंतर्राष्ट्रीय परामर्श में भाग लिया।

रा० शै० अ० और प्र० प० के संयुक्त निदेशक डा० त्रिलोकनाथ धर ने प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण पर विशेषज्ञों की बैङ्कॉक में 21 से 29 मार्च 1983 तक हुई बैठक में भाग लिया।

परिषद् में आए विदेशी अतिथि

दूसरे देशों के विशेषज्ञों के लिए परिषद् ने नीचे लिखी भारत-यात्राओं की व्यवस्था की—

विज्ञान के शिक्षण-साधनों के उत्पादन की नई विधियों में एक सप्ताह की निरीक्षण-यात्रा की व्यवस्था नेपाल के पाँच शिक्षाविदों के लिए अप्रैल 1982 में की गई।

पेरिस के अंतर्राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन संस्थान ने नौ एशियाई देशों के 11 प्रशिक्षार्थियों के लिए भारत के राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन एवं प्रशासन संस्थान की यात्रा की व्यवस्था की थी। वे लोग 1 जून 1982 को रा० शै० अ० और प्र० प० की यात्रा पर भी आए। उन्हें यहाँ के कार्यक्रमों से परिचित कराया गया।

यूनेस्को शिक्षावृत्ति पर दो इंडोनेशियाई; सर्वश्री मुज़ाम्मिल खलीमी और अलेक्स मोज़ेज ओपियर, रा० शै० अ० और प्र० प० के एक अल्पकालिक प्रशिक्षण कार्यक्रम में भाग लेने के लिए 6 से 10 जून 1982 तक यहाँ रहे। उनके प्रशिक्षण का क्षेत्र था विज्ञान शिक्षा।

बैङ्कॉक स्थित, एशिया और प्रशांत में शिक्षा के लिए यूनेस्को क्षेत्रीय कार्यालय की पर्यावरणीय शिक्षा की क्षेत्रीय सलाहकार डा० (श्रीमती) डब्ल्यू० डी० पोन्निया परिषद् की अध्ययन-यात्रा पर 9 से 11 जून 1982 तक के लिए आईं।

श्रीलंका के उप शिक्षा मंत्री, श्री समरवीर वीरवाणी वहाँ के शिक्षा सुधार के मुख्य तकनीकी सलाहकार डा० एरिक जे० डि सिल्वा के साथ परिषद् में 1 से 3 जुलाई 1982 तक के लिए आए। उन्होंने राष्ट्रीय परिषद् के शैक्षणिक अधिकारियों के साथ अनेक बैठकें और चर्चाएँ कीं।

जनसंख्या शिक्षा कार्यक्रम का अध्ययन करने के लिए सात चीनी शिक्षकों का एक प्रतिनिधिमंडल परिषद् में 14 से 20 सितम्बर 1982 तक रहा।

जनसंख्या शिक्षा कार्यक्रम का अध्ययन करने के लिए फिलीपाइन्स के आठ शिक्षकों का एक दल परिषद् में 6 से 9 सितम्बर 1982 तक रहा। उनके साथ बैङ्कॉक स्थित यूनेस्को क्षेत्रीय कार्यालय के जनसंख्या शिक्षा विशेषज्ञ डा० अनसार अली खाँ भी थे।

ज़ाम्बिया के अध्येता श्री जी० एम० के० फीरी के लिए परिषद् ने मार्गदर्शन और परामर्श में दस सप्ताहों का एक प्रशिक्षण कार्यक्रम 26 जुलाई से 3 अक्तूबर 1982 तक किया। श्री फीरी विशेष राष्ट्रमंडल सहायता योजना (1982-83) के अंतर्गत शिक्षा मंत्रालय की छात्रवृत्ति पर आए थे।

श्रव्य-दृश्य संसाधन विकास के क्षेत्र में, 3 अगस्त से 30 सितम्बर 1982 तक भूटान के यूनेस्को फेलो श्री गैली दोरजी के लिए एक प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किया गया।

थाईलैंड के शिक्षा कार्यक्रम अधिकारी, श्री सिरिपौन चंटानौंट राष्ट्रीय परिषद् में 13 अगस्त 1982 को आए। वे यूनेस्को नेशनल कमीशन पर्सोनेल आदान-प्रदान कार्यक्रम के अंतर्गत भारत सरकार के निमंत्रण पर दस दिनों की अध्ययन-यात्रा पर आए थे।

यूनिसेफ़ सहायता के अंतर्गत, स्कूल के बाहर के शिक्षा कार्यक्रमों का अध्ययन करने के लिए, 15 अफगान शिक्षकों की टीम दो सप्ताहों की अध्ययन यात्रा पर 29 सितम्बर 1982 को आई।

इथियोपिआ के यूनेस्को फेलो सर्वश्री केवेडे फ्रीसेनबेत, अब्दुल एम० अहमद और डोनेबुल शैक्षिक उपकरण एवं सामग्री के उत्पादन में अध्ययन कार्यक्रम के लिए राष्ट्रीय परिषद् में 21 से 27 अक्तूबर 1982 तक रहे।

नेपाल के यूनेस्को फेलो श्री विष्णु कुमार भुजु, विज्ञान किटों के निर्माण के क्षेत्र में एपीड विशेष तकनीकी सहयोग कार्यक्रम के अंतर्गत, दो सप्ताहों के एक प्रशिक्षण के लिए 29 नवम्बर 1982 से राष्ट्रीय परिषद् में रहे।

केन्द्रीय शिक्षा मंत्री के निमंत्रण पर, यहाँ की स्कूल स्तर की शिक्षा प्रणाली का अध्ययन करने के लिए, भारत यात्रा पर आए हुए कीनिया के बुनियादी शिक्षा मंत्री, श्री जे० के० एडीनी राष्ट्रीय परिषद् में भी 3 नवम्बर 1982 को आए।

भूटान के यूनेस्को फेलो श्री उगेन टी० लामा, पुस्तकालय विज्ञान में परिषद् में हुए छह महीनों वाले एक प्रशिक्षण कार्यक्रम में 6 दिसम्बर 1982 से 31 मई 1983 तक सम्मिलित हुए।

राष्ट्रीय परिषद् में तीन सप्ताहों के लिए 15 दिसम्बर 1982 से शुरू हुए प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में भूटान के पाँच यूनेस्को फेलो सर्वश्री मधुकर गजमेर, त्शोङ्पेन वाङ्दी, मदनकुमार लामा, हर्क बहादुर विश्वा और सोमनाथ प्रधान सम्मिलित हुए।

शैक्षिक सांख्यिकी और सूचना के क्षेत्र में दो महीनों वाले एक प्रशिक्षण कार्यक्रम में शामिल होने के लिए पाँच अफगान नागरिक—कुमारी नसरीन रफीक, सर्वश्री एम० आइ० हबीबी, अजीउल्लाह, यूनुस और अब्दुल गफ्फार तलातूम राष्ट्रीय परिषद् में 17 जनवरी 1983 को आए।

इजिप्ट सरकार के शिक्षा के उपमंत्री, डा० मंसूर हुसेन, इजिप्ट के शिक्षा मंत्रालय के राज्य अवर सचिव श्री एल० हुसैनी सादक और इजिप्ट के प्राथमिक शिक्षा विभाग की

महानिदेशिका श्रीमती सोग अनीस 24 मार्च 1983 को राष्ट्रीय परिषद् में आए। उन्हें परिषद् के कार्यकलापों और कार्यक्रमों की जानकारी दी गई।

पेरिस स्थित यूनेस्को की कार्यक्रम विशेषज्ञा, श्रीमती लिडा फिश राष्ट्रीय परिषद् में 16 मार्च 1983 को आई।

स्कूल छोड़ जाने वाली समस्या और शिक्षा प्रणाली की सचलता का अध्ययन करने के लिए, मलयेशिया के श्री ली मियो राष्ट्रीय परिषद् में 7 से 9 सितम्बर 1982 तक रहे।

थाईलैंड की श्रीमती मथाई एवं मनीला (फिलीपाइंस) की श्रीमती फ्रोज्नोसा राष्ट्रीय परिषद् में 29 अगस्त से 2 सितम्बर 1982 तक रहीं। ये महिलाएँ यूनेस्को परियोजना के सिलसिले में आई थीं। परियोजना शांति और अंतर्राष्ट्रीय समझ को बढ़ाने की दृष्टि से सामयिक विश्व समस्याओं के अध्ययन पर सामग्री के निर्माण, क्रियान्वयन, और मूल्यांकन से सम्बन्धित थी।

एपीड के सहयोगी केन्द्र के रूप में परिषद् के कार्यक्रम

एपीड के सहयोगी केन्द्र के रूप में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने निम्नलिखित कार्यक्रम आयोजित किए :

तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा से सम्बन्धित बुनियादी विज्ञानों के कोटि-उन्नयन के लिए, गणित में एक क्षेत्रीय प्रशिक्षण कोर्स का आयोजन, भुवनेश्वर के क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय में, 5 जुलाई से 20 अगस्त 1982 तक किया गया। इस प्रशिक्षण कोर्स में अफगानिस्तान, बांग्ला देश, भूटान, लाओस, मालदीव और नेपाल के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए।

पर्यावरणीय शिक्षा में अध्यापक-प्रशिक्षण पर, एक यूनेस्को उप-क्षेत्रीय कार्यगोष्ठी का आयोजन, परिषद् ने 3 से 16 मार्च 1983 तक किया जिसमें अफ़गानिस्तान, बांग्ला देश और श्रीलंका के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए।

एशिया में जीवविज्ञान की शिक्षा पर एक राष्ट्रीय प्रशिक्षण कार्यगोष्ठी का आयोजन, प्रशिक्षण सामग्री के निर्माण के लिए परिषद् में 28 नवम्बर से 8 दिसम्बर 1982 तक किया गया।

अध्यापक शिक्षा में उत्पादक कार्य की प्रविष्टि पर एक क्षेत्रीय गोष्ठी, परिषद् में 5 से 14 अप्रैल 1982 तक की गई। इसमें अफगानिस्तान, आस्ट्रेलिया, चीन, भारत, इंडोनेशिया, मालदीव, बांग्ला देश, नेपाल, भूटान, पाकिस्तान और थाईलैंड के प्रतिभागी आए। फ्रांस और थाईलैंड के तीन यूनेस्को विशेषज्ञ भी इस गोष्ठी में आए।

परिषद् द्वारा ली गई यूनेस्को-परियोजनाएँ

निम्नलिखित अध्ययनों को कराने के लिए, परिषद् ने यूनेस्को के साथ अनुबंध किए :

शैक्षिक कार्यक्रमों और पाठ्यपुस्तकों में सेक्स के रूढ़िवादी रूपों को पहचानने और वहाँ से उन्हें हटाने के लिए एक क्षेत्रीय निर्देशिका का निर्माण ।

भारत में विज्ञान शिक्षा की स्थिति का अध्ययन ।

"सुविधा-वंचित वर्गों के लिए प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण की वैकल्पिक संरचनाओं" का अध्ययन ।

शांति और अंतर्राष्ट्रीय समझ को बढ़ाने के उद्देश्य से, सामयिक विश्व समस्याओं के अध्ययन की अंतर-क्षेत्रीय प्रायोगिक परियोजना ।

परिषद् ने 'जर्नल ऑफ इंडियन एजुकेशन' का एक विशेषांक निकाला जिसकी सामग्री सहयोगी केन्द्र की सेवाकालीन प्राथमिक अध्यापक शिक्षा पर ही थी ।

द्विपक्षी सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रम

परिषद् द्विपक्षी सांस्कृतिक आदान-प्रदान के कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने वाली महत्वपूर्ण एजेंसियों में से एक है । कार्यान्वित करने वाली एजेंसी के रूप में कार्य करते हुए रा० शै० अ० और प्र० प० अपने शिष्टमंडलों को नवीन प्रक्रियात्मक शैक्षिक विकासों का अध्ययन करने के लिए विदेशों में भेजकर विदेशी राष्ट्रों के साथ विचारों के पारस्परिक अदान-प्रदान में भाग लेती है । भारत सरकार द्वारा हस्ताक्षरित सांस्कृतिक आदान-प्रदान समझौतों के प्रावधानों के अंतर्गत परिषद् अन्य देशों के साथ पाठ्यपुस्तकों, पूरक पठन सामग्री, अनुसंधान विनिबंधों, फिल्मों और फिल्म पट्टियों सहित शैक्षिक सामग्री का आदान-प्रदान करती रही है ।

सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रम के अंतर्गत परिषद् के जो अधिकारी विदेश गए और जो विदेशी आगंतुक भारत आए, उनका विवरण नीचे दिया गया है :

परिषद् में आए विदेशी अतिथि

भारत-सीरिया सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रम (1980-82) के मद 1 के अंतर्गत, पाठ्यक्रम-विकास का अध्ययन करने के लिए दो सप्ताह की यात्रा पर सीरिया के विशेषज्ञ, श्री मुहम्मद खैर अल हिलो परिषद् में 11 अक्तूबर 1982 को आए ।

भारत-सीरिया सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रम (1980-82) के मद 2 के अंतर्गत, अध्यापकों के प्रशिक्षण से सुपरिचित होने के लिए, एक महीने की यात्रा पर सीरिया के दो

विशेषज्ञ, श्री मुहम्मद सईद मेलोही और श्री फरहद जिब्रायल 11 अक्तूबर 1982 को परिषद् में आए ।

भारत-सोवियत सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रम (1981-82) के मद 32 के अंतर्गत, भारत में स्कूली शिक्षा से सुपरिचित होने के लिए, दस दिनों की यात्रा पर, दो सदस्यीय सोवियत प्रतिनिधिमंडल 27 अक्तूबर 1982 को राष्ट्रीय परिषद् में आया । प्रतिनिधिमंडल के नेता आर्मीनियन सोवियत सोशलिस्ट रिपब्लिक के आर्मीनिया जन शिक्षा के मंत्री, श्री अखूमिया सीमेन तिगीनोविच थे । दूसरे सदस्य थे, मास्को स्थित यू० एस० एस० आर० की शैक्षणिक विज्ञानों की अकादमी के ललित कला विभाग के अध्यक्ष, प्रोफ़ेसर जुसोव बोरिस पेत्रोविच ।

भारत-सीरिया सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रम (1980-82) के मद 4 के अंतर्गत, शिक्षा और दूरदर्शन के क्षेत्र में भारतीय अनुभव का अध्ययन करने के लिए, दो सप्ताहों की यात्रा पर, सीरिया के दो विशेषज्ञ, श्री जार्ज डीब और श्री महमूद आबिद अल अजीज़ 21 दिसम्बर 1982 को राष्ट्रीय परिषद् में आए ।

प्रतिनियुक्तियाँ

भारत-सोवियत सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रम (1981-82) के मद 31 के अंतर्गत, यू० एस० एस० आर० में शैक्षिक सूचना प्रणाली का अध्ययन करने के लिए, भोपाल के क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय के प्रिंसिपल, डा० जे० एस० राजपूत को 15 से 28 सितम्बर 1982 तक के लिए सोवियत रूस में प्रतिनियुक्त किया गया ।

भारत-बेल्जियम सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रम (1980-82) के मद 4 से 10 के अंतर्गत, बेल्जियम में व्यावसायिक शिक्षा और शिक्षण-सामग्री के निर्माण के कार्यक्रमों का अध्ययन करने के लिए, क्रमशः परिषद् के पुणे स्थित क्षेत्र कार्यालय के क्षेत्र सलाहकार श्री एम० जी० केलकर और रीडर (कार्यक्रम) डा० एम० एस० खापर्डे को दो सप्ताहों के लिए 20 सितम्बर 1982 को बेल्जियम में प्रतिनियुक्त किया गया ।

भारत-फ्रांस सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रम (1982-83) के मद 5 (i) के अंतर्गत, फ्रांस में हायर सेकंडरी स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा और प्रारम्भिक शिक्षा के अध्ययन के लिए क्रमशः त्रिवेंद्रम में परिषद् के क्षेत्र सलाहकार, श्री० वी० एस० गोपालन एवं अनौपचारिक शिक्षा एकक के लेक्चरर श्री एच० एल० शर्मा को एक सप्ताह के लिए 27 दिसम्बर 1982 को फ्रांस में प्रतिनियुक्त किया गया ।

अन्य गतिविधियाँ

अनौपचारिक शिक्षा के प्रोफेसर डा० कृष्णगोपाल रस्तोगी ने अंतर्राष्ट्रीय पठन संघ के शिकागो में हुए वार्षिक सम्मेलन में 28 से 30 अप्रैल 1982 तक भाग लिया।

शैक्षिक दूरदर्शन के लिए ग्राफिक और जीवंतता तकनीकों में प्रशिक्षण के निमित्त, ब्रिटिश टेक्निकल कोआपरेशन ट्रेनिंग प्रोग्राम्स के अंतर्गत, ब्रिटिश काउंसिल की छात्रवृत्ति पर, यू० के० में प्रशिक्षण के लिए, निम्नलिखित कर्मचारियों को तीन महीने की प्रतिनियुक्ति पर 4 मई 1982 को भेजा गया : शैक्षिक प्रौद्योगिकी केन्द्र की लेक्चरर कुमारी विमला वर्मा, शिक्षण-साधन विभाग के लेक्चरर श्री के० के० चैनानी और शिक्षण-साधन विभाग के कलाकार श्री० आर० पी० सेन्नों।

शिक्षकों के संसाधन किटों के निर्माण पर यूनेस्को योजना सम्मेलन में भाग लेने के लिए, शिक्षण-साधन विभाग के अध्यक्ष, प्रोफेसर एम० एम० चौधरी 3 से 15 जून 1982 तक के लिए टोकियो (जापान) गए।

विश्व की विज्ञान-शिक्षा की प्रवृत्तियों पर हुए द्वितीय अंतर्राष्ट्रीय सिम्पोजियम में दो सप्ताहों तक भाग लेने के लिए, विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग के रीडर, डा० छोटन सिंह नॉटिंघम (यू० के०) की यात्रा पर 21 जुलाई 1982 को गए।

देहाती समाज के इस्तेमाल के लायक, कम खर्च वाली शैक्षिक श्रव्य-दृश्य सामग्री बनाने के लिए त्यूरिन (इटली) में 12 जुलाई से 20 अगस्त 1982 तक हुए प्रशिक्षण कोर्स में, इतालवी सरकार की छात्रवृत्ति (1981-82) के अंतर्गत, शिक्षण-साधन विभाग के अनुसंधान सहयोगी श्री हरमेश लाल ने भाग लिया।

भोपाल के क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय में वनस्पति शास्त्र के रीडर डा० पी० के० खन्ना ने बैङ्कॉक में दस दिनों के लिए हुई एक क्षेत्रीय कार्यगोष्ठी में 24 अगस्त से 2 सितम्बर 1982 तक भाग लिया। यह कार्यगोष्ठी एसीड के सहयोग से थाईलैंड के विज्ञान समाज ने आयोजित की थी। यह युवाओं द्वारा स्कूल के बाहर के वैज्ञानिक कार्यकलाप से सम्बद्ध प्रमुख व्यक्तियों के लिए थी।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के संयुक्त निदेशक, डा० त्रिलोक नाथ धर ने अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा ब्यूरो द्वारा जेनेवा में 20 से 23 जुलाई 1982 तक आयोजित, अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन में भाग लिया। इस सम्मेलन का विषय था, "विज्ञान और प्रौद्योगिकी के समुचित प्रवेश के परिप्रेक्ष्य में प्राथमिक शिक्षा का सार्वजनीकरण एवं नवीकरण"। जापान के राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान संस्थान द्वारा टोकियो में 4 से 17

नवम्बर 1982 की अवधि में आयोजित क्षेत्रीय कार्यगोष्ठी में प्रोफेसर आर० सी० दास, डीन (शैक्षणिक) सम्मिलित हुए। यह कार्यगोष्ठी शैक्षिक विषय वस्तु और प्रविधियों में सुधार के कार्यान्वियन और मूल्यांकन से सम्बद्ध अनुसंधान के विकास पर हुई थी।

नियोजन, समन्वय और मूल्यांकन एकक के अध्यक्ष, प्रो० हरिसिंह श्रीवास्तव चार सप्ताहों के लिए, 21 दिसम्बर 1982 से 20 जनवरी 1983 तक, पेरिस और हैम्बुर्ग की यात्रा पर गए। उनका उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन संस्थान (आइ० आइ० ई० पी०) और यूनेस्को शिक्षा संस्थान (यू० आइ० ई०) के सहयोग से प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के प्रबोधन एवं मूल्यांकन की परियोजना को पूरा करना व उपकरणों और विधियों को अंतिम रूप देना था।

17

प्रकाशन

परिषद् का एक महत्वपूर्ण कार्य स्कूलों के लिए पाठ्यपुस्तकों, शिक्षण-सामग्री, छात्रों की अभ्यास-पुस्तिकाओं, शिक्षक-संदर्शिकाओं/दीपिकाओं, अनुसंधान-अध्ययनों/प्रबंधों आदि का प्रकाशन है। परिषद् शिक्षा के क्षेत्र में एक व्यापक श्रेणी के प्रकाशनों को छापती और वितरित करती है जिनमें पूरक पठन-सामग्री, शैक्षिक सर्वेक्षणों की रिपोर्टें, सहायक पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ आदि भी शामिल हैं।

इस वर्ष के दौरान, निम्नलिखित प्रकार के साहित्य का प्रकाशन हुआ—

साहित्य का प्रकार	पुस्तकों की संख्या
प्रथम संस्करण वाली पाठ्यपुस्तकें/ अभ्यास पुस्तिकाएँ/स्वीकृत सहायक पुस्तकें	6
पुनर्मुद्रित पाठ्यपुस्तकें/अभ्यास पुस्तिकाएँ/ स्वीकृत सहायक पुस्तकें	117
अन्य सरकारी माध्यमों की पाठ्यपुस्तकें/अभ्यास पुस्तिकाएँ	19
अनुसंधान-प्रबंध/रिपोर्टें और अन्य प्रकाशन	24
पत्र-पत्रिकाएँ (अंक गिनकर)	15
	कुल 181

इस अध्याय के अंत में विस्तृत विवरण दिया हुआ है।

वितरण

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के प्रकाशनों के वितरण और विक्रय का कार्य केन्द्रीय सूचना और प्रसारण मंत्रालय का नई दिल्ली स्थित प्रकाशन विभाग करता रहा, क्योंकि परिषद् का राष्ट्रीय वितरक वही है। पहले उसका यह कार्य देश के उत्तरी, पूर्वी और पश्चिमी क्षेत्रों के ही लिए, उसके नई दिल्ली, कलकत्ता और बम्बई के सेल्स एम्पोरियमों के माध्यम से होता था। इस वर्ष सूचना और प्रसारण मंत्रालय ने मद्रास में भी अपना सेल्स एम्पोरियम खोल दिया। परिणामस्वरूप परिषद् के प्रकाशनों का तमिलनाडु, केरल और पांडिचेरी में वितरण और विक्रय का कार्य भी उसी को सौंप दिया गया। लेकिन परिषद् की पत्र-पत्रिकाओं की बिक्री और वितरण का कार्य पिछले वर्षों की तरह परिषद् के ही पास रहा। विक्रय और वितरण की उपरोक्त व्यवस्था के अलावा, भारत के प्रमुख अखबारों में छपे विज्ञापनों के जवाब में, स्कूलों और अन्य शैक्षिक संस्थाओं से सीधे प्राप्त किए गए क्रयादेशों के अनुसार परिषद् की पाठ्यपुस्तकें सीधे उनको बेची गईं।

वर्ष के दौरान 329 सीधे क्रयादेश प्राप्त किए गए जो इस प्रकार थे—केन्द्रीय विद्यालयों से 31, सैनिक स्कूलों से 15, सेंट्रल स्कूल्स फ़ॉर तिबतंस से 20, अन्य स्कूलों से 253 (इसमें आंध्र प्रदेश और कर्नाटक के पुस्तक-विक्रेताओं के क्रयादेश भी शामिल हैं), और अरुणाचल प्रदेश के जिलों से 10। परिषद् ने 1983-84 सत्र के लिए, सिक्किम के शिक्षा

निदेशालय के क्रयादेश पर उन्हें अपनी पाठ्यपुस्तकें सीधे ही भेजीं। जम्मू और कश्मीर के बोर्ड ऑफ स्कूल एजुकेशन को भी परिषद् ने सीधे ही अंग्रेजी, और उर्दू की कक्षा IX-X की 13 पाठ्यपुस्तकें थोक में भेजीं।

पुस्तक मेलों और प्रदर्शनियों में भाग लेना

वर्ष के दौरान परिषद् ने निम्नलिखित पुस्तक मेलों और प्रदर्शनियों में अपने प्रकाशनों की नुमाइश की :

(i) कलकत्ता की राष्ट्रीय विज्ञान प्रदर्शनी।

(ii) नई दिल्ली के तीन मूर्ति की बाल साहित्य प्रदर्शनी।

(iii) चंडीगढ़ का ग्यारहवाँ राष्ट्रीय पुस्तक मेला।

नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इंडिया के माध्यम से अपने चुने हुए प्रकाशनों को भेजकर परिषद् ने निम्नलिखित अंतर्राष्ट्रीय पुस्तक मेलों और प्रदर्शनियों में भी भाग लिया :

(i) फ्रैंकफुर्त का पुस्तक मेला।

(ii) लंदन की भारतीय पुस्तक प्रदर्शनी।

(iii) सिंगापुर का चौदहवाँ पुस्तकोत्सव।

(iv) मलयेशिया की भारतीय पुस्तक प्रदर्शनी।

(v) बहरैन का मध्यपूर्व पुस्तक मेला।

(vi) तेहरान की भारतीय पुस्तकों की प्रदर्शनी।

(vii) मनीला का अंतर्राष्ट्रीय पुस्तक मेला।

(viii) मारीशस में भारतीय पुस्तक प्रदर्शनी।

(ix) नाइजीरिया की भारतीय पुस्तक प्रदर्शनी।

विक्रय

वर्ष के दौरान राष्ट्रीय शैक्षिक अ० और प्र० प० के प्रकाशनों की बिक्री से रु० 2,52,38,783.17 पैसों की आय हुई। अन्य देशों में $ 416.09 और £ 19.30 के प्रकाशन बिके। इस आमदनी के अलावा, प्रकाशकों से रु० 5,826 की रायल्टी भी प्राप्त हुई।

राज्य सरकारों और अन्य एजेंसियों को कापीराइट अनुमति

रा० शै० अ० और प्र० प० द्वारा प्रकाशित पुस्तकों में राज्य स्तर की कई एजेंसियों ने रुचि ली है। आगे दिए गए विवरण से पता चलेगा कि वर्ष के दौरान परिषद् ने किन माध्यमों को कापीराइट अनुमति दी है—

असम

निदेशक, असम प्राथमिक शिक्षा गौहाटी	अनौपचारिक शिक्षा रीडर 'सिको अहा' की प्रकाशन अनुमति

गुजरात

गुजरात राज्य स्कूल पाठ्यपुस्तक बोर्ड 29, सरकारी बंगलो डफनाल्स के पास कन्टूनमेंट अहमदाबाद	उपयोग अनुमति— (i) 'इंग्लिश रीडर' बुक I (जेनेरल सीरीज) के शुरू के 21 पाठ (ii) 'टीचर्स गाइड टु इंग्लिश रीडर' बुक I (जेनेरल सीरीज) को अनूदित करने की

जम्मू और कश्मीर

निदेशक डोगरी अनुसंधान केन्द्र जम्मू विश्वविद्यालय जम्मू	'समाचार पत्र' पाठ को डोगरी में अनूदित करने की अनुमति

मध्य प्रदेश

बोर्ड ऑफ सेकंडरी एजुकेशन मध्य प्रदेश, भोपाल	'संस्कृतोदय:' को प्रकाशित करने की अनुमति

उत्तर प्रदेश

शिक्षा निदेशक एवं अध्यक्ष बोर्ड ऑफ हाई स्कूल एंड इंटरमीडिएट एजुकेशन उत्तर प्रदेश	प्रकाशन अनुमति — (i) 'सभ्यता की कहानी' भाग I (ii) 'सभ्यता की कहानी' भाग II (iii) 'मनुष्य और वातावरण' (iv) 'भारत विकास की ओर' (v) 'हम और हमारा शासन'

पश्चिम बंगाल

पश्चिम बंगाल राज्य पुस्तक बोर्ड 6-ए, राजा सुबोध मल्लिक स्क्वैयर कलकत्ता	बांग्ला में अनुवाद कर प्रकाशन की अनुमति— (i) 'प्राचीन भारत' लेखक रामशरण शर्मा (ii) 'मध्यकालीन भारत' भाग I और II लेखक डा० सतीशचन्द्र

पत्र-पत्रिकायें

रा० शै० अ० और प्र० प० की प्रकाशन-गतिविधियों में पत्र-पत्रिकाओं का भी महत्वपूर्ण स्थान है। ये प्राथमिक स्कूल अध्यापक से लेकर अनुसंधानकर्ताओं तक के लिए पाठ्यसामग्री जुटाती हैं। हिन्दी तथा अंग्रेजी में प्रकाशित होने वाली पत्रिका "प्राइमरी शिक्षक"/"प्राइमरी टीचर" अध्यापकों तथा प्रशासकों को केन्द्रीय स्तर पर तय की जाने वाली शैक्षिक नीतियों के बारे में आधिकारिक जानकारी देती है। यह उनको प्राथमिक स्तर पर हो रहे शैक्षिक विकास की नव परिवर्तन वाली धारणाओं से भी परिचित कराती है। इसका उद्देश्य कक्षा में सीधे उपयोग के लिए सार्थक एवं प्रासंगिक सामग्री देना है। त्रैमासिक "इंडियन एजुकेशनल रिव्यू" शिक्षा-अनुसंधानों के प्रचार के लिए तथा शोधकर्ताओं, विद्वानों, अध्यापकों और शिक्षा-अनुसंधान के क्षेत्र में कार्य करने वाले अन्य व्यक्तियों को अनुभवों के विनिमय के लिए माध्यम मुहैया करता है। "दि जर्नल ऑफ इंडियन एजुकेशन" वर्तमान शिक्षा-दृष्टियों पर विचार-विमर्श के द्वारा शिक्षा में मौलिक तथा समीक्षात्मक वैचारिकता को प्रोत्साहित करने के लिए अध्यापकों, अध्यापक-शिक्षकों तथा शोधकर्ताओं को मंच प्रदान करता है। यह एक द्वैमासिक प्रकाशन है। "स्कूल साइंस" विज्ञान शिक्षा का एक त्रैमासिक पत्र है जो अध्यापकों तथा छात्रों को विज्ञान शिक्षा के विभिन्न पहलुओं, इनकी समस्याओं, सम्भावनाओं तथा निजी अनुभवों पर विचार-विमर्श के लिए एक खुले मंच का कार्य करता है।

वर्ष के दौरान पत्र-पत्रिकाओं के निम्नलिखित अंक प्रकाशित किए गए :

1.	स्कूल साइंस	सितम्बर 1981 और दिसम्बर 1981।
2.	इंडियन एजुकेशनल रिव्यू	अप्रैल 1982, जुलाई 1982, अक्तूबर 1982 और जनवरी 1983।

3. जर्नल ऑफ इंडियन एजुकेशन — जनवरी 1982, मार्च 1982, मई 1882, जुलाई 1982 और सितम्बर 1982।

4. प्राइमरी टीचर — अक्तूबर 1981, जनवरी 1982 और अप्रैल 1982।

5. प्राइमरी शिक्षक — जनवरी 1982।

1982-83 में परिषद् के प्रकाशन

(वि० का अर्थ है विशेष सीरीज और पु० का पुनर्मुद्रण)

क्रम संख्या	पुस्तक	प्रकाशन का महीना	वर्ष
1	2	3	4

हिन्दी-अंग्रेजी की पाठ्यपुस्तकें और अभ्यास पुस्तिकाएँ (कक्षा-क्रम से)

कक्षा I

पाठ्यपुस्तकें

1.	बाल भारती भाग I (पु०)	अप्रैल	1982
2.	बाल भारती भाग I (पु०)	मार्च	1983
3.	लेट अस लर्न इंग्लिश बुक I (वि० पु०)	जून	1982
4.	मैथेमेटिक्स फॉर प्राइमरी स्कूल बुक I (पु०)	अगस्त	1982

अभ्यास-पुस्तिकाएँ

5.	बाल भारती भाग I की अभ्यास पुस्तिका (पु०)	जुलाई	1982
6.	वर्कबुक टु लेट अस लर्न इंग्लिश बुक I (वि० पु०)	जुलाई	1982

कक्षा II

पाठ्यपुस्तकें

7.	बाल भारती भाग II (पु०)	मई	1982
8.	बाल भारती भाग II (पु०)	मार्च	1983
9.	मैथेमेटिक्स फॉर प्राइमरी स्कूल बुक II (पु०)	जून	1982

1	2	3	4
	अभ्यास पुस्तिकाएँ		
10.	अभ्यास पुस्तिका बाल भारती भाग II (पु०)	फरवरी	1983
11.	वर्कबुक टु लेट अस लर्न इंग्लिशबुक II (वि० पु०)	मार्च	1983
	कक्षा III		
	पाठ्यपुस्तकें		
12.	बाल भारती भाग III (पु०)	अप्रैल	1982
13.	बाल भारती भाग III (पु०)	मार्च	1983
14.	लेट अस लर्न इंग्लिश बुक III (वि० पु०)	मार्च	1983
15.	पर्यावरण अध्ययन भाग I (पु०)	मार्च	1983
	अभ्यास पुस्तिकाएँ		
16.	वर्कबुक टु लेट अस लर्न इंग्लिश बुक III (वि० पु०)	मार्च	1983
17.	वर्कबुक टु लेट अस लर्न इंग्लिश बुक III (वि० पु०)	मार्च	1983
	कक्षा IV		
	पाठ्यपुस्तकें		
18.	बाल भारती भाग IV (पु०)	अप्रैल	1982
19	बाल भारती भाग IV (पु०)	मार्च	1983
20.	इंग्लिश रीडर बुक I (वि० पु०)	मार्च	1983
21.	मैथेमेटिक्स फॉर प्राइमरी स्कूल बुक IV (प्रथम संस्करण)	जून	1982
22.	पर्यावरण अध्ययन भाग I (पु०)	मई	1982
	स्वीकृत सहायक पुस्तक		
23.	रीड फॉर प्लेजर बुक I (पु०)	अप्रैल	1982
	कक्षा V		
	पाठ्यपुस्तकें		
24.	बाल भारती भाग V (पु०)	मार्च	1983
25.	स्वस्ति भाग I (पु०)	फरवरी	1983

1	2	3	4
26.	इनसाइट इंटु मैथेमेटिक्स बुक V (पु०)	अप्रैल	1982
27.	इण्डिया एण्ड दि वर्ल्ड (पु०)	मई	1982
28.	इण्डिया एण्ड दि वर्ल्ड (पु०)	मार्च	1983
29.	भारत और संसार (पु०)	अप्रैल	1982
30.	भारत और संसार (पु०)	मार्च	1983
31.	लर्निंग साइंस थ्रु एनवाइरनमेंट (पार्ट III) (पु०)	जून	1982
32.	लर्निंग साइंस थ्रु एनवाइरनमेंट पार्ट III (पु०)	फरवरी	1983
33.	पर्यावरण से विज्ञान सीखना भाग II (पु०)	फरवरी	1983
	स्वीकृत सहायक पुस्तक		
34.	रीड फॉर प्लेज़र बुक II (पु०)	फरवरी	1983
	कक्षा VI		
	पाठ्यपुस्तकें		
35.	स्वस्ति भाग II (पु०)	मार्च	1983
36.	मैथेमेटिक्स फ़ॉर मिडिल स्कूल बुक II पार्ट I (पु०)	जुलाई	1982
37.	लैण्ड्स एण्ड पीपुल पार्ट I (पु०)	जून	1982
38.	हिस्ट्री एंड सिविक्स पार्ट I (पु०)	सितम्बर	1982
	अभ्यास पुस्तिकाएँ		
39.	अभ्यास पुस्तिका स्वस्ति भाग II (प्रथम संस्करण)	फरवरी	1983
40.	वर्कबुक टु इंग्लिश रीडर बुक III (वि० पु०)	जुलाई	1982
	स्वीकृत सहायक पुस्तक		
41.	रीड फॉर प्लेज़र बुक III (पु०)	मार्च	1983
	कक्षा VII		
	पाठ्यपुस्तकें		
42.	स्वस्ति भाग III (पु०)	अप्रैल	1982
43.	स्वस्ति भाग III (पु०)	मार्च	1983
44.	इंग्लिश रीडर बुक IV (वि० पु०)	मार्च	1983

1	2	3	4
45.	गणित माध्यमिक स्कूलों के लिए पुस्तक II भाग II (पु०)	मार्च	1983
46.	मैथेमेटिक्स फॉर मिडिल स्कूल बुक II पार्ट II (पु०)	मई	1982
47.	मैथेमेटिक्स फॉर मिडिल स्कूल बुक II पार्ट II (पु०)	मार्च	1983
	अभ्यास पुस्तिका		
48.	अभ्यास पुस्तिका स्वस्ति III (प्रथम संस्करण)	मार्च	1983
	स्वीकृत सहायक पुस्तकें		
49.	नया जीवन (पु०)	अप्रैल	1982
50.	संक्षिप्त महाभारत (पु०)	मई	1982
	कक्षा VIII		
	पाठ्यपुस्तकें		
51.	भारती भाग III (पु०)	अप्रैल	1982
52.	हिस्ट्री एंड सिविक्स पार्ट III (पु०)	अप्रैल	1982
53.	इतिहास और नागरिक शास्त्र भाग III (पु०)	मार्च	1983
54.	लर्निंग साइंस पार्ट III (पु०)	अप्रैल	1982
	स्वीकृत सहायक पुस्तकें		
55.	त्रिविधा (पु०)	अप्रैल	1982
56.	जीवन और विज्ञान (पु०)	मई	1982
	कक्षा IX		
	पाठ्यपुस्तकें		
57.	मैथेमेटिक्स पार्ट I (पु०)	मई	1982
58.	गणित भाग I (पु०)	मई	1982
59.	दि स्टोरी ऑफ सिविलाइजेशन पार्ट I (पु०)	जून	1982
60.	सभ्यता की कहानी भाग I (पु०)	मई	1982
61.	साइंस पार्ट I (पु०)	मई	1982

1	2	3	4
62.	विज्ञान भाग I (पु०)	मई	1982
63.	हम और हमारा शासन (पु०)	अप्रैल	1982
	कक्षा X		
	पाठ्यपुस्तकें		
64.	मैथेमेटिक्स पार्ट II (पु०)	अप्रैल	1982
65.	इंडिया ऑन दि मूव (पु०)	अप्रैल	1982
66.	भारत विकास की ओर (पु०)	अप्रैल	1982
67.	साइंस पार्ट II (पु०)	मई	1982
68.	विज्ञान भाग II (पु०)	जून	1982
69.	स्टेप्स टु इंगलिश-5 इंग्लिश रीडर (प्रथम संस्करण)	अप्रैल	1982
	अभ्यास पुस्तिका		
70.	स्टेप्स टु इंग्लिश-5 वर्कबुक टु इंग्लिश रीडर (प्रथम संस्करण)	मई	1982
	स्वीकृत सहायक पुस्तक		
71.	स्टेप्स टु इंग्लिश-5 सप्लीमेंटरी रीडर (प्रथम संस्करण)	मई	1982
	कक्षा XI		
	पाठ्यपुस्तकें		
72.	हिन्दी प्रतिनिधि कहानियाँ (पु०)	मई	1982
73.	मैथेमेटिक्स बुक I (पु०)	मई	1982
74.	गणित भाग I (पु०)	मई	1982
75.	मैथेमेटिक्स बुक II (पु०)	अप्रैल	1982
76.	गणित भाग II (पु०)	अप्रैल	1982
77.	इंग्लिश रीडर पार्ट I (पु०)	अप्रैल	1982
78.	केमिस्ट्री पार्ट I (पु०)	मई	1982
79.	बायोलोजी पार्ट I (पु०)	जून	1982
80.	एंशियंट इंडिया (पु०)	मई	1982

1	2	3	4
81.	प्राचीन भारत (पु०)	जून	1982
82.	मेडिवल इंडिया पार्ट I (पु०)	अप्रैल	1982
83.	मध्यकालीन भारत भाग I (पु०)	जुलाई	1982
84.	राजनीतिक व्यवस्था (पु०)	मार्च	1983
85.	एवोल्यूशन ऑफ इंडियन इकोनोमी (पु०)	जून	1982
86.	अंडरस्टैंडिंग सोसाइटी (पु०)	जून	1982
87.	अंडरस्टैंडिंग सोसाइटी (पु०)	मार्च	1983
88.	फिजिकल बेसिस ऑफ ज्योग्राफी (पु०)	अप्रैल	1982
89.	फिज़िकल बेसिस ऑफ ज्योग्राफी (पु०)	मार्च	1983
90.	फील्ड वर्क एंड लैबोरेटरी टेक्नीक्स इन ज्योग्राफी (पु०)	जून	1982
91.	ज्योग्राफी वर्कबुक (पु०)	अप्रैल	1982
92.	भूगोल अभ्यास पुस्तिका (पु०)	जून	1982
93.	पारिजात (पु०)	अप्रैल	1982
94.	चयनिका (पु०)	अप्रैल	1982
95.	फिजिक्स (पु०)	जून	1982
96.	इंग्लिश रीडर II (पु०)	अप्रैल	1982
	कक्षा XII		
97.	विविधा (पु०)	मार्च	1983
98.	हिन्दी साहित्य का परिचयात्मक इतिहास (पु०)	अप्रैल	1982
99.	साहित्य शास्त्र परिचय (पु०)	मार्च	1983
100.	इंग्लिश सप्लीमेंटरी रीडर II (पु०)	मई	1982
101.	डियर टु ऑल दि म्यूसिस (पु०)	अप्रैल	1982
102.	ऑन टॉप ऑफ दि वर्ल्ड (पु०)	अप्रैल	1982
103.	संस्कृत काव्य तरंगिनी (पु०)	जुलाई	1982
104.	संस्कृत काव्य तरंगिनी (पु०)	मार्च	1983
105.	मैथेमेटिक्स बुक IV (पु०)	जुलाई	1982
106.	मैथेमेटिक्स बुक V (पु०)	मई	1982
107.	केमिस्ट्री पार्ट II (पु०)	मई	1982

1	2	3	4
108.	मध्यकालीन भारत भाग II (पु०)	जून	1982
109.	मॉडर्न इंडिया (पु०)	अप्रैल	1982
110.	आधुनिक भारत (पु०)	जून	1982
111.	भारत में लोकतंत्र (पु०)	मई	1982
112.	भारतीय लेखा पद्धति (पु०)	मार्च	1983
113.	आर्थिक सिद्धांत का परिचय	अप्रैल	1982
	उर्दू की पाठ्यपुस्तकें		
	कक्षा II		
114.	हिसाब बुक II	अक्तूबर	1982
	कक्षा III		
115.	हिसाब बुक III	दिसम्बर	1982
	कक्षा V		
116.	हिन्दुस्तान और दुनिया	मार्च	1983
	कक्षा VI		
117.	साइंस सीखना पार्ट I (पु०)	जुलाई	1982
	कक्षा VII		
118.	मुमालिक और उनके बाशिंदे पार्ट III (पु०)	जुलाई	1982
	कक्षा IX		
119.	आदमी और माहौल	जून	1982
120.	तहजीब की कहानी भाग I (पु०)	जुलाई	1982
	कक्षा IX-X		
121.	हम और हमारी हुकूमत (पु०)	जुलाई	1982
122.	कीमिया	जुलाई	1982
	कक्षा X		
123.	साइंस पार्ट II	सितम्बर	1982

1	2	3	4
	अन्य सरकारों व एजेंसियों के लिए पाठ्यपुस्तकें व अभ्यास पुस्तिकाएँ		
124.	चौथी किरण (पु०)	अप्रैल	1982
125.	अरुण भारती भाग I (पु०)	जुलाई	1982
126.	अरुण भारती भाग II	अगस्त	1982
127.	अरुण भारती भाग I की अभ्यास पुस्तिका (पु०)	जून	1982
128.	स्टोरीज़ एंड लीजेंड्स – सप्लीमेंटरी रीडर बुक I फॉर ओपेन स्कूल	नवम्बर	1982
129.	स्टोरीज़ एंड फेबुल्स—सप्लीमेंटरी रीडर बुक I फॉर ओपेन स्कूल	नवम्बर	1982
130.	इंग्लिश रीडर बुक I फॉर ओपेन स्कूल	दिसम्बर	1982
131.	गद्य भारती (पु०)	अप्रैल	1982
132.	काव्य भारती (पु०)	मई	1982
133.	मैथेमेटिक्स पार्ट I (कक्षा IX)	मई	1982
134.	साइंस पार्ट I	मई	1982
135.	विज्ञान भाग I	मई	1982
136.	स्टोरी ऑफ सिविलाइजेशन पार्ट I कक्षा IX	जून	1982
137.	सभ्यता की कहानी भाग I कक्षा IX	मई	1982
138.	हम और हमारा शासन कक्षा IX-X	अप्रैल	1982
139.	साइंस पार्ट I (उर्दू)	जुलाई	1982
140.	वी एंड अवर गवर्नमेंट (उर्दू)	जुलाई	1982
141.	स्टोरी ऑफ सिविलाइजेशन पार्ट I (उर्दू)	अगस्त	1982
142.	मैन एंड एनवाइरनमेंट (उर्दू)	जून	1982
	शोध प्रबन्ध व अन्य प्रकाशन		
143.	सेलेक्टेड रीडिंग मटीरियल्स इन इंग्लिश पार्ट I	अप्रैल	1982
144.	आडिट रिपोर्ट 1980-81	अप्रैल	1982
145.	लेखा परीक्षा रिपोर्ट 1980-81	जुलाई	1982
146.	दि इफेक्ट ऑफ एनवाइरनमेंटल प्रोसेस वेरिएबल ऑन स्कूल एचीवमेंट (5½ टु 11 इयर्स)	मई	1982

1	2	3	4
147.	एस्० यू० पी० डब्लू० सोर्स बुक वोल्युम IV	मई	1982
148.	थर्ड ऑल-इंडिया एजुकेशनल सर्वे (इंस्टीट्यूशंस ऑफ फिजिकल एजुकेशन)	जुलाई	1982
149.	फील्ड स्टडीज इन दि सोशियोलोजी ऑफ एजुकेशन —ए रिपोर्ट ऑन गुजरात	जुलाई	1982
150.	फोर्थ ऑल-इंडिया एजुकेशनल सर्वे रिपोर्ट	अगस्त	1982
151.	सेम्पुल यूनिट टेस्ट इन हिस्ट्री	सितम्बर	1982
152.	नेशनल साइंस इक्जीबीशन फॉर चिल्ड्रेन 1982	नवम्बर	1982
153.	स्ट्रक्चर एंड वर्किंग ऑफ साइंस मॉडेल्स 1982	नवम्बर	1982
154.	यू एंड योर फ्यूचर	दिसम्बर	1982
155.	एन० सी० ई० आर० टी० ऐनुअल रिपोर्ट 1981-82	दिसम्बर	1982
156.	रा० शै० अ० और प्र० प० वार्षिक रिपोर्ट 1981-82	दिसम्बर	1982
157.	ए हैंडबुक ऑफ स्टेट लेवेल आरगेनाइजर्स वाल्यूम I	दिसम्बर	1982
158.	कोर टीचिंग स्किल्स— ए माइक्रोटीचिंग एप्रोच	दिसम्बर	1982
159.	ऑबजेक्टिव्स बेस्ड टेस्ट आइटम्स इन मैथेमेटिक्स	दिसम्बर	1982
160.	स्टेटस ऑफ वीमेन थ्रू करिक्युलम	जनवरी	1983
161.	नो लिमिट्स टु डेवेलपमेन्ट	जनवरी	1983
162.	टीचर एजुकेशन करिक्युलम— ए फ्रेमवर्क	फरवरी	1983
163.	कैटेलॉग फॉर 1983-84	फरवरी	1983
164.	सोशली यूजफुल प्रोडक्टिव वर्क वाल्युम IV	फरवरी	1983
165.	रोल ऑफ सैम्पुल सर्वेज इन एजुकेशन	फरवरी	1983
166.	एजुकेशन इन एप्लाइड साइंस इन इंडिया	फरवरी	1983

18

प्रशासन, वित्त एवं कल्याण के कार्यकलाप

परिषद् के नियमों, अधिनियमों और कार्यप्रणाली के अनुसार रा० शै० अ० और प्र० प०. का सचिवालय अपने गृह व्यवस्था के काम करता रहा। प्रभावकारी और निपुण तरीके से काम करने के लिए परिषद् के विभिन्न घटकों को इसने आवश्यक साधन जुटाए। कर्मचारियों के लिए कल्याण के कार्यकलाप के अंतर्गत, खेलकूद और सांस्कृतिक चहल पहल के निमित्त परिषद् का सचिवालय आवश्यक सुविधाएँ जुटाता रहा। दिसम्बर 1982 में, परिषद् का वार्षिक खेलकूद आयोजन मैसूर के क्षे० शि० म० में किया गया। वहाँ 13 से 16 दिसम्बर 1982 तक फुटबाल, वालीबाल और टेबुल टेनिस के मैच हुए। एन० सी०

ई० आर० टी० टूर्नामेंट में सभी क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालयों और राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान की टीमें मैदान में उतरीं। खेलों में सम्मिलित हुए कुल खिलाड़ियों की संख्या 125 थी। इन प्रतिभागियों ने सांस्कृतिक कार्यक्रम भी प्रस्तुत किए।

फरवरी 1983 में सी० पी० डब्ल्यू० डी० ने 88 क्वाटर बना कर परिषद् को सौंप दिए। टाइप I, II, III, IV और V के इन स्टाफ क्वार्टरों को कर्मचारियों के नाम अलाट कर दिया गया। टाइप IV के 16 और क्वार्टर जल्दी ही बन जाएँगे। हाथ में आने के बाद उन्हें भी कर्मचारियों को अलाट कर दिया जाएगा।

कर्मचारियों के ग्रुप बी, सी, और डी को लाभान्वित करने के लिए, 1 अप्रैल 1982 से परिषद् ने जीवन बीमा निगम की ग्रुप बीमा योजना को अपने यहाँ चला दिया है। परिषद् के ग्रुप ए के अधिकारियों को भी यह लाभ दिलाने के लिए कदम उठाए गए हैं।

हिमाचल प्रदेश के लिए एक नया क्षेत्र कार्यालय खोला गया है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के निदेशक पद को 18 अगस्त 1982 को छोड़ कर डा० शिव कुमार मित्र चले गए क्योंकि उनके अनुबंध की अवधि बीत गई थी। परिषद् के सचिव, श्री विनोद कुमार पंडित, आइ० ए० एस० को शिक्षा मंत्रालय में संयुक्त शिक्षा सलाहकार का पद 2 दिसम्बर 1982 को मिल गया। अपने नए पद भार के साथ साथ वे रा० शै० अ० और प्र० प० के सचिव का कार्य भी नए सचिव के आने तक सँभालते रहे।

मई 1982 से मार्च 1983 तक परिषद् ने आशु-लेखन एवं टंकण में एक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम का आयोजन विशेष रूप से अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के कर्मचारियों के लिए किया। एक और प्रशिक्षण कोर्स का प्रबंध परिषद् ने खास तौर पर परिषद् मुख्यालय के चौकीदारों के लिए किया।

संस्थापन और व्यक्तिगत मामलों को त्वरित ढंग से निपटाया गया। यहाँ पर गृह-निर्माण अग्रिम, भविष्य निधि-भुगतान, साइकिल-स्कूटर-कार ऋणों आदि का उल्लेख किया जा सकता है। वर्ष के दौरान जिन कर्मचारियों ने अवकाश ग्रहण किया उनके अवकाश-लाभों का भुगतान लगभग अवकाश ग्रहण के साथ ही कर दिया गया। असमय ही स्वर्गवासी हुए परिषद् के कर्मचारियों के परिवारों को सहानुभूतिपूर्ण सहायता देने के लिए हर मामले में परिवार के किसी न किसी सदस्य को परिषद् में नौकरी दी गई जिससे उस परिवार को कुछ न कुछ मदद मिल सके।

हिन्दी-प्रयोग की दिशा में

सरकारी काम-काज में हिन्दी के प्रयोग को अधिकाधिक बढ़ावा देने के उद्देश्य से परिषद् के हिन्दी प्रकोष्ठ ने 1982-83 के दौरान आगे लिखे कार्य किए।

सामग्री का निर्माण : प्रकोष्ठ ने नीचे लिखी पुस्तकें प्राप्त कर उन्हें परिषद् के विभिन्न विभागों, एककों, प्रकोष्ठों और वर्गों में बँटवाया ताकि लोग अपने कामकाज में हिन्दी का अधिक से अधिक इस्तेमाल कर सकें :

(i) केन्द्र की सरकारी भाषा; (ii) कार्यालय सहायिका; (iii) अंग्रेजी-हिन्दी कोश (सम्पादक फ़ादर कामिल बुल्के); (iv) सेवा पुस्तिका को भरना ।

रनिंग शील्ड : दफ्तर के कामों में हिन्दी का अधिकतम प्रयोग करने वाले विभाग को दी जाने वाली रनिंग शील्ड इस बार परिषद् सचिवालय के स्थापना IV को मिली है ।

अनुवाद : अंग्रेजी से हिन्दी में 88 पृष्ठों का अनुवाद किया गया । इनमें से 51 पृष्ठ लेखा शाखा की सामग्री के हैं ।

सर्कुलर : हिन्दी में बारह सर्कुलर जारी किए गए । इनमें से ग्यारह परिषद् में हिन्दी-प्रयोग से सम्बन्धित थे । बारहवाँ उस कार्यक्रम के बारे में था जो सरकारी कामकाज में हिन्दी प्रयोग का प्रावधान देने वाले हैं । मुख्य रूप से उसमें नीचे लिखी बातें थीं : (i) स्वीकृत उद्देश्यों के लिए हिन्दी का प्रयोग, (ii) विशिष्ट उद्देश्यों के लिए हिन्दी और अंग्रेजी दोनों का प्रयोग; (iii) अधीनस्थ सेवाओं और पदों की भर्ती के लिए परीक्षा के वैकल्पिक माध्यम के रूप में हिन्दी का ऐच्छिक प्रयोग; (iv) विभागीय प्रशिक्षण केन्द्रों में शिक्षण के माध्यम के रूप में हिन्दी के प्रयोग की व्यवस्था; (v) विभागीय परीक्षाओं में हिन्दी का ऐच्छिक प्रयोग; (vi) द्विभाषी रूप में प्रपत्रों, नियमावलियों और गजट ज्ञापनों का मुद्रण; (vii) सामान्य आदेशों आदि को द्विभाषी रूप में निकालना; (viii) लिफाफों पर हिन्दी में पते लिखना; (ix) रबर की मोहरें, नाम पट्टिकाएँ, साइन बोर्ड आदि को द्विभाषी रूप में रखना; (x) सेवा पुस्तिका में हिन्दी में दर्ज करना; (xi) हिन्दी में प्राप्त चिट्ठियों के जवाब हिन्दी में देना ।

सर्वेक्षण : दो सर्वेक्षण किए गए : एक तो राज भाषा कार्यान्वियन की संसदीय समिति के लिए, और दूसरा परिषद् के लिए कि रनिंग शील्ड किस विभाग या एकक या प्रकोष्ठ या शाखा को दी जाए । पहला सर्वेक्षण 19 पृष्ठों का था जिसमें 304 बिंदुओं पर आधार सामग्री संकलित की गई थी । दूसरा दो पृष्ठों का था जिसमें 22 बिंदुओं पर सर्वेक्षण किया गया था ।

सूचनाओं का विकीर्णन : नीचे लिखी जानकारी शिक्षा मंत्रालय और संसदीय समिति को भेजी गई : (i) परिषद् में हिन्दी कार्यों से जुड़े कितने पद हैं (1 जनवरी 1982 के अनुसार); (ii) हिन्दी अनुवादकों तथा हिन्दी अधिकारी के पदों के संबंध में जानकारी (जैसी स्थिति 1 अप्रैल 1982 को थी); (iii) वर्ष 1981-82 के लिए वार्षिक कार्यक्रम के कार्यान्वियन की जानकारी ।

प्रतियोगिताएँ : परिषद् ने नीचे लिखी अखिल भारतीय प्रतियोगिताओं में सम्मिलित होने के लिए अपने कर्मचारियों को प्रोत्साहन दिया : (i) हिन्दी आशुलिपि प्रतियोगिता; और (ii) हिन्दी में टिप्पणी लेखन तथा प्रारूप-लेखन ।

परामर्श-सेवाएँ : हिन्दी प्रकोष्ठ ने परिषद् प्रशासन से जुड़े कर्मचारियों को, हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद कार्य में सहायता दी और उनकी हिन्दी संबंधी समस्याएँ सुलझाईं । प्रकोष्ठ ने शैक्षणिक विभागों की सहायता भी उनके उपकरणों के निर्माण में की । अध्यापक-शिक्षा विभाग, स्त्री शिक्षा एकक, मापन एवं मूल्यांकन विभाग और केप वर्ग को हिन्दी सम्बन्धी परामर्श दिए गए ।

अन्य कार्य : हिन्दी टंकण, हिन्दी आशु-लेखन, हिन्दी टिप्पणी लेखन, हिन्दी प्रारूप लेखन और पत्राचार माध्यम से हिन्दी की परीक्षाओं की तैयारी में प्रकोष्ठ ने परिषद् के कर्मचारियों की सहायता की ।

टंकण कार्य : वर्ष के दौरान हिन्दी प्रकोष्ठ ने 786 पृष्ठ टाइप किए और 670 पृष्ठों के स्टेंसिल काटे । इसमें अन्य विभागों के लिए किया गया कार्य भी शामिल है ।

वर्ष 1982-83 के आय और भुगतान का समेकित लेखा

आय	रकम (रुपयों में)	भुगतान		रकम (रुपयों में)
1	2	3		4
अथ शेष	81,55,345.00	अधिकारियों के वेतन		1,01,13,813.00
		गैर योजना	98,46,305.00	
		योजना	2,67,508.00	
भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय से प्राप्त अनुदान	9,46,57,563.00	स्थापना के वेतन		1,01,20,228.00
		गैर योजना	97,42,651.00	
		योजना	3,77,577.00	
विशिष्ट अनुदान से सम्बद्ध अनुदान और वापसी	1,31,84,249.00	भत्ते और मानदेय		2,04,10,873.00
		गैर योजना	1,95,67,262.00	
		योजना	8,43,611.00	
गैर योजना आय		यात्रा भत्ते		19,33,385,00
		गैर योजना	18,58,446.00	
		योजना	74,939.00	
परिषद् की इमारतों का भाड़ा	7,77,174.00	अन्य शुल्क		1,12,55,563.00
		गैर योजना	1,07,99,560.00	
		योजना	4,56,003.00	

1	2	3	4
कर्जों और अग्रिमों पर ब्याज	24,048.00	छात्रवृत्ति/शिक्षावृत्ति	9,69,417.00
		गैर योजना 6,66,389.00	
		योजना 3,03,028.00	
अधिशोधनों की वसूली (अप्रयुक्त निधियों की वापसी)	14,17,877.00	कार्यक्रम	4,33,34,876.00
		गैर योजना 3,56,05,008.00	
		योजना 77,29,868.00	
भविष्य निधि निवेश का ब्याज	14,22,649.00	साज सामान व फर्नीचर	95,00,519.00
		गैर योजना 2,22,092.00	
		योजना 92,78,427.00	
		भूमि व भवन	1,13,98,531.00
		गैर योजना 12,96,540.00	
		योजना 1,01,01,991.00	
पुस्तकों और पत्रिकाओं की बिक्री से	2,51,83,522.00	विविध भुगतान	12,764.00
विज्ञान किटों की बिक्री से	3,07,811.00	अवकाश वेतन व पेंशन अंशदान	57,054.00
प्रकाशकों से रायल्टी	5,826.00		
फीस और अन्य शुल्क	5,33,385.00	अं० भ० नि० में परिषद् का अंशदान व सा० भ० नि० का ब्याज	21,01,412.00
अवकाश वेतन व पेंशन अंशदान	87,443.00		

1	2	3	4
विविध आय	42,00,083.00	पेंशन व डी० सी० आर० जी०	11,32,627.00
केन्द्रीय सरकार स्वास्थ्य योजना	35,851.00	केन्द्रीय सरकार स्वास्थ्य योजना	3,88,836.00
		विज्ञापन	3,08,275.00
		लेखा परीक्षा शुल्क	1,66,590.00
		मकान भाड़ा	17,685.00
		विशिष्ट योजना पर खर्च	1,35,11,880.00
कर्मचारियों से अग्रिमों की वसूली			
मोटर कार/स्कूटर अग्रिम	1,67,367.00	मोटर/स्कूटर अग्रिम	1,27,075.00
अन्य सवारी का अग्रिम	42,240.00	अन्य सवारी का अग्रिम	49,600.00
पंखा अग्रिम	4,798.00	पंखा अग्रिम	1,500.00
त्यौहार अग्रिम	2,24,843.00	त्यौहार अग्रिम	1,81,820.00
घर निर्माण अग्रिम	11,88,572.00	घर निर्माण अग्रिम	31,91,576.00
बदली पर यात्रा भत्ते का अग्रिम	1,742.00	बदली पर यात्रा भत्ता अग्रिम	35,363.00
बदली पर वेतन का अग्रिम	18,905.00	बदली पर वेतन अग्रिम	5,105.00
बाढ़ अग्रिम	49,460.00	विविध अग्रिम	6,000.00
अन्य अग्रिम	31,104.00	स्थायी अग्रिम	10,000.00
स्थायी अग्रिम	8,000.00	अन्य अग्रिम	13,870.00
		खाद्यान्न अग्रिम	758.00
		गर्म कपड़े	250.00

1	2	3	4
निधियों व अ० ज० यो० का लेखा			
सामान्य भविष्य निधि	75,80,745.00	सा० भ० नि०	42,68,342.00
अंशदायी भविष्य निधि	23,12,429.00	अं० भ० नि०	12,91,262.00
अनिवार्य जमा योजना	1,658.00	अ० ज० यो०	2,681.00
जमा			
बयाना रकम/जमानत जमा	5,54,825.00	बयाना रकम/जमानत जमा	6,78,132.00
जमानती रुपया	1,18,268.00	जमानती रुपया	1,57,060.00
अन्य जमा	4,30,074.00	अन्य जमा	4,26,770.00
सा० भ० नि०/अं० भ० नि० निवेश	15,26,453.00	सा० भ० नि०/अं० भ० नि० निवेश	46,28,946.00
अल्पकालिक निवेश	1,52,00,000.00	अल्पकालिक निवेश	1,52,00,000.00
ग्रुप बीमा योजना	2,27,690.00	ग्रुप बीमा योजना	1,02,333.00
उचंत	(—) 22,13,110.00	उचंत	3,74,408.00
प्रेषित			
सा० भ० नि०/अं० भ० नि०	93,642.00	सा० भ० नि०/अं० भ० नि०	88,063.00
आय कर प्रेषित	3,28,535.00	आय कर	3,19,741.00
पी० एल० आइ०/एल० आइ० सी० विविध और अन्य प्रेषित	1,60,456.00	एल० आइ० सी०/पी० एल० आइ० विविध प्रेषित	1,65,033.00

1	2	3	4
एस० ओ० प्रेषित	16,05,005.00	एस० ओ० प्रेषित	15,57,352.00
सी० टी० सोसायटी	79,163.00	सी० टी० सोसायटी	72,059.00
डी० आर० एफ०	26,355.00	डी० आर० एफ०	22,264.00
		अंत शेष हाथ में और बैंक में नकद	1,00,50,354.00
	17,97,62,045.00		17,97,62,045.00

परिशिष्ट

परिशिष्ट-क

व्यावसायिक शैक्षिक संगठनों को सहायता देने की योजना

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने शिक्षा और शैक्षिक नव परिवर्तनों के क्षेत्र में स्वयंसेवी प्रयासों के महत्व को सदैव मान्यता प्रदान की है। शैक्षिक संस्थानों एवं अध्यापकों/प्रशिक्षकों के साथ व्यावसायिक शैक्षिक संस्थाओं का घनिष्ठ सम्पर्क देश में शैक्षिक कायाकल्प लाने में अच्छे उत्प्रेरक का सा काम करता है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर राष्ट्रीय शै० अ० और प्र० प० व्यावसायिक शैक्षिक संगठनों को वित्तीय सहायता देने की एक योजना पिछले अनेक वर्षों से चलाती आई है।

योजना के मुख्य विवरण, जैसे कि वे वर्तमान में कार्यान्वित हो रहे हैं, नीचे दिए जा रहे हैं :

1. उद्‌देश्य

योजना के मुख्य उद्‌देश्य निम्नलिखित हैं :

(i) शिक्षा, विशेषकर स्कूली शिक्षा के सुधार के लिए स्वयंसेवी प्रयासों को बनाए रखना और बढ़ावा देना।

(ii) व्यावसायिक प्रकृति की अच्छे स्तर वाली ऐसी पत्रिकाओं को प्रोत्साहन देना जो शैक्षिक नव परिवर्तनों को प्रचारित-प्रसारित करने में सहायक हों।

(iii) स्वयंसेवी संस्थाओं के माध्यम से शिक्षा में विस्तार-कार्यों को बढ़ावा देना।

2. पात्रता की शर्तें

(क) संगठन

(i) कोई व्यावसायिक शैक्षिक संगठन (व्या० शै० सं०) इस योजना के अंतर्गत रा० शै० अ० और प्र० प० का अनुदान पाने का पात्र तभी होगा यदि वह—

(क) संस्था पंजीकरण अधिनियम (1960 का XXI अधिनियम) के अंतर्गत एक पंजीकृत संस्था है, अथवा

(ख) आज के मान्यता प्राप्त कानून के अंतर्गत एक पंजीकृत सार्वजनिक न्यास है, अथवा

(ग) शैक्षिक गतिविधियों को चलाने और बढ़ावा देने के कार्य में संलग्न एक प्रतिष्ठित संस्थान है।

किसी राज्य सरकार, या स्थानीय निकाय द्वारा चलाए जा रहे अथवा राज्य विधान सभा के किसी अधिनियम अथवा राज्य सरकार के किसी प्रस्ताव के अंतर्गत स्थापित कोई संस्था इस योजना के अंतर्गत सहायता पाने की हकदार नहीं होगी।

(ii) उस संगठन को स्कूली शिक्षा के सुधार के लिए सामान्यत: राष्ट्रीय/क्षेत्रीय स्तर पर कार्य करना चाहिए। केवल अपवाद स्वरूप मामलों में, निधियाँ उपलब्ध होने पर, राज्य स्तर पर कार्यरत व्या० शै० सं० के आवेदनों पर विचार किया जाएगा।

(iii) यह योजना बिना किसी धर्म, जाति, बिरादरी, नस्ल, लिंग अथवा भाषा के भेदभाव के भारत के सभी नागरिकों के लिए खुली है।

(iv) राज्य सरकार से अनुदान पाने के लिए जहाँ मान्यता आवश्यक हो वहाँ उस संगठन को मान्यता-प्राप्त होना चाहिए।

(v) उस संगठन का समुचित गठित प्रबंध निकाय होना चाहिए जिसके अधिकारों, कर्त्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया हो तथा एक लिखित संविधान के रूप में रखा गया हो।

(vi) योजना के अंतर्गत सहायता-अनुदान के लिए आवेदन करने के पूर्व उसे कम से कम एक वर्ष तक सामान्यत: काम करता हुआ होना चाहिए।

(vii) आवेदन के दिन उसकी सदस्य-संख्या कम से कम पचास होनी चाहिए।

(viii) उसे किसी एक व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह के लिए लाभ अर्जित करने वाला नहीं होना चाहिए।

(ख) **कार्यकलाप**

(i) सामान्यत: निम्नलिखित प्रकार के कार्यकलापों को सहायता प्रदान की जाती है :

(क) वार्षिक सभाएँ बशर्ते कि उनकी एक निश्चित विषय वस्तु हो जो किसी राष्ट्रीय शैक्षिक समस्या से संबद्ध हो व जिससे राष्ट्रीय परिषद् को वास्ता हो और/या वह उसके कार्यों को पोषित करे और रा० शै० अनुसंधान और प्र० प० के उद्देश्यों की पूर्ति में उपयोगी हो।

(ख) शैक्षिक साहित्य का उत्पादन जिसमें व्यावसायिक पत्रिकाएँ शामिल हैं किन्तु पाठ्य सामग्री नहीं।

(ग) ऐसी शैक्षिक प्रदर्शनियाँ जो शैक्षिक नव परिवर्तनों या समसामयिक विषयों पर शैक्षिक विकासों से संबद्ध हों।

(ii) सामान्यत: नीचे लिखी बातों पर अनुदान नहीं दिए जाएँगे :

(क) ऐसी परिचर्चाएँ या कार्यगोष्ठियाँ जैसी रा० शै० अ० और प्र० प० प्राय: आयोजित कर सकती है या करती रहती है।

(ख) अनुसंधान परियोजनाएँ।

3. अनुदान की मात्रा

अनुदान पाने वाले संगठन पूरी तरह रा० शै० अ० और प्र० प० पर ही निर्भर न हो जाएँ, इस विचार से इस योजना के अंतर्गत जो सहायता दी जाएगी वह आंशिक ही होगी, जैसा कि नीचे स्पष्ट किया गया है :

(i) किसी वर्ष में किसी कार्यकलाप पर जो खर्च आता है उसके 60% से अधिक का सहायता अनुदान परिषद् सामान्यत: नहीं देगी।

(ii) बाकी बच रहे खर्च का 40% संगठन को दूसरे स्रोतों से जुटाना होगा जैसे कि किसी अन्य संगठन से अनुदान प्राप्त कर या पत्रिकाओं के मामले में बिक्री, वार्षिक चंदा या विज्ञापन शुल्क से जुटाकर। हाँ, यदि दूसरे स्रोतों से खर्च के 40% से अधिक आय हो जाए तो परिषद् अपने हिस्से का अनुदान उसी अनुपात से घटा देगी।

(iii) यदि किसी तरह एक वर्ष में वास्तविक खर्च के 60% से अधिक का भुगतान परिषद् की ओर से हो जाए, या अन्य स्रोत से वह कम हो—इनमें जो भी कम होगी, वह रकम अगले वर्ष के अनुदान से काट ली जाएगी अथवा समंजित कर ली जाएगी।

उदाहरण :

मान लीजिए किसी कार्यकलाप पर पूरा खर्च रु० 1700 आया और रा० शै० अ० और प्र० प० का अनुदान रु० 1500 है तथा अन्य स्रोत से हुई आय रु० 900 है।

(क) खर्च का 60% = रु० 1020

(ख) अन्य स्रोतों की आय काट कर (1700-900) रु० 800

काटी जाने वाली राशि

(क) और (ख) में जो कम हो उसे अनुदान की राशि में से घटाएँ यथा रु० 1500 — 800 = 700 रु०

4. आवेदन करने की विधि

(i) व्या० शै० सं० को छपे हुए फार्मों की दो प्रतिलिपियाँ पूरी तरह भर कर भेजनी होती हैं।

(ii) प्रत्येक कार्यकलाप अथवा गतिविधि के लिए अलग-अलग आवेदन करना होता है।

(iii) प्रत्येक आवेदन के साथ निम्नलिखित दस्तावेज भेजना आवश्यक है :

(क) संगठन/संस्थान का प्रास्पेक्टस अथवा उसकी गतिविधियों तथा उद्देश्यों का संक्षिप्त विवरण।

(ख) संगठन का संविधान।

(ग) अंतिम वार्षिक रिपोर्ट की एक प्रति।

(घ) यदि आवेदन किसी पत्रिका/सामग्री के प्रकाशन अनुदान के लिए है, तो पहले की छपी पत्रिका के अंकों की प्रतियाँ/पहले के प्रकाशन।

(ङ) संगठन के पिछले वर्ष की लेखा परीक्षा का प्रतिवेदन और उसके साथ संगठन के अध्यक्ष/सचिव और लेखा परीक्षकों (चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट) आदि द्वारा हस्ताक्षरित एक उपयोग प्रमाण पत्र।

जिन कार्यकलापों के लिए अनुदान पहले दिया जा चुका है उसके खर्च की बाबत अलग से उसी फार्म पर एक उपयोग प्रमाण पत्र और/अथवा खर्च का विवरण-पत्र भी भेजना चाहिए।

उपरोक्त दस्तावेजों के अभाव में कोई अनुदान मंजूर नहीं होगा।

5. सामान्य

(i) यदि अनुदान पत्रिकाओं के प्रकाशन के लिए हो तो व्या० शै० सं० के लिए परिषद् का एक विज्ञापन निःशुल्क छापना अनिवार्य होगा।

(ii) वार्षिक सभा/सम्मेलन के लिए अनुदान के मामले में संगठन को राष्ट्रीय परिषद् के प्रतिनिधियों को सम्मेलन से संबद्ध करना होगा।

(iii) संस्थान/संगठन को अनुदान से अर्जित पूर्ण अथवा आंशिक परिसंपत्तियों का एक लेखा-जोखा रखना होगा, इस तरह की परिसंपत्ति को रा० शै० अ० और प्र० प० की पूर्वानुमति के बिना बेचा नहीं जा सकता, न ही उसे जिस उद्देश्य के लिए अनुदान दिया गया था, उसके अलावा किसी और तरह से खर्च किया जा सकता है। ऐसा संस्थान/संगठन यदि किसी समय काम करना बन्द कर दे, तो उसकी वे परिसंपत्तियाँ रा० शै० अ० और प्र० प० के पास चली जाएँगी।

(iv) भारत के कन्ट्रोलर एंड ऑडीटर जनरल के जाँच परीक्षण के लिए संस्थान के लेखा पत्रों और अन्य दस्तावेजों को तैयार रखना होगा।

(v) यदि रा० शै० अ० और प्र० प० को कभी ऐसा लगे कि अनुमोदित राशि को उन कार्यों के लिए खर्च नहीं किया जा रहा है जिनके लिए उसे लिया गया था तो परिषद् को अधिकार होगा कि वह अनुदान देना बंद कर दे और दी गई राशि को वापस ले ले।

(vi) रा० शै० अ० और प्र० प० द्वारा वित्त पोषित कार्यक्रमों में संगठन को मितव्ययिता से चलना होगा।

(vii) अनुदान के लिए आवेदन रा० शै० अ० और प्र० प० के सचिव के पास भेजना चाहिए।

विभिन्न व्यावसायिक शैक्षिक संगठनों को सन् 1982-83 के दौरान रा० शै० अ० और प्र० प० द्वारा पत्रिका-प्रकाशन के लिए दिए गए अनुदान

क्रम संख्या	संगठन का नाम-पता	पत्रिका का नाम	अनुदान राशि
1	2	3	3
1.	एस० आई० टी० यू० काउंसिल ऑफ़ एजुकेशनल रिसर्च 169, रामकृष्ण मठ रोड राजा अन्नामलाई पुरम मद्रास-600028	एक्सपेरीमेंट्स इन एजुकेशन	3,000 रु०
2.	इंग्लिश लैंग्वेज टीचर्स एसोसिएशन ऑफ इंडिया, 169, रामकृष्ण मठ रोड, राजा अन्नामलाई पुरम मद्रास-600028	इंग्लिश लैंग्वेज टीचिंग	5,000 रु०
3.	एसोसिएशन फॉर इम्प्रूवमेंट ऑफ़ मैथेमेटिक्स टीचिंग 25 फर्न रोड कलकत्ता-29	इंडियन जर्नल ऑफ़ मैथेमेटिक्स टीचिंग	3,500 रु०
4.	एसोसिएशन फॉर दि प्रमोशन ऑफ साइंस एजुकेशन, नं० 3, फर्स्ट ट्रस्ट लिंक स्ट्रीट, मंडावेली पक्कम, मद्रास-600028	जूनियर साइंटिस्ट	4,500 रु०
5.	इंडियन एसोसिएशन फॉर प्रि-स्कूल एजुकेशन, लेडी इर्विन कॉलेज, सिकन्दरा रोड नई दिल्ली	बालक	2,500 रु०

1	2	3	4
6.	इंडियन रीडिंग एसोसिएशन भारतीय विद्या भवन, कस्तूरबा गाँधी मार्ग, नई दिल्ली	रीडिंग जर्नल	2760 रु०
7.	इंडियन फिज़िक्स एसोसिएशन द्वारा टाटा इंस्टीच्यूट ऑफ़ फंडामेंटल रिसर्च होमी भाभा रोड बम्बई-400005	फिजिक्स न्यूज़	5,000 रु०
8.	आल इंडिया साइंस टीचर्स एसोसिएशन द्वारा अनौपचारिक शिक्षा विभाग राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान नई दिल्ली 110016	विज्ञान शिक्षक	3500 रु०

विभिन्न व्यावसायिक शैक्षिक संगठनों को सन् 1982-83 के दौरान रा० शै० अ० और प्र० प० द्वारा सम्मेलन आदि आयोजित करने के लिए दिए गए अनुदान

क्रम संख्या	संगठन का नाम-पता	उद्देश्य	अनुदान राशि
1.	बाम्बे साइकोलोजिकल एसोसिएशन, कोकीना कैंपस, विद्या नगरी बम्बई-400098	नेशनल कांफ्रेंस ऑन एप्लाइड साइकोलोजी	5,000 रु०
2.	आल इंडिया साइंस टीचर्स एसोसिएशन द्वारा अनौपचारिक शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान, नई दिल्ली-110016	एसोसिएशन के रजत जयंती समारोह पर सम्मेलन तथा रिपोर्ट की छपाई	6,000 रु०
3.	इंडियन एकेडेमी ऑफ़ सोशल साइंस, 555-ई, ममफोर्डगंज इलाहाबाद	सातवीं भारतीय विज्ञान कांग्रेस	5,000 रु०
4.	इंडियन एसोसिएशन फॉर दि स्कूल एजुकेशन, लेडी इर्विन कालेज, सिकन्दरा रोड नई दिल्ली	18वाँ वार्षिक सम्मेलन	4,000 रु०
5.	इंडियन रीडिंग एसोसिएशन भारतीय विद्या भवन, कस्तूरबा गांधी मार्ग नई दिल्ली-110001	राष्ट्रीय कंवेंशन	4,000 रु०
6.	इंटीग्रेटेड एजुकेशन, रिहैबिलिटेशन एंड रिसर्च सेन्टर फॉर हैन्डीकैप्ड, एस-601, स्कूल ब्लाक शकरपुर, दिल्ली-110092	वार्षिक सम्मेलन	3,500 रु०

परिशिष्ट-ख

राज्यों में परिषद् के क्षेत्र-सलाहकारों के पते

पते	राज्य/संघ क्षेत्र
1. क्षेत्र सलाहकार (रा० शै० अ० और प्र० प०) जू रोड, गौहाटी-781024	असम अरुणाचल प्रदेश मणिपुर नागालैंड
2. क्षेत्र सलाहकार (रा० शै० अ० और प्र० प०) एस० आई० ई० बिल्डिंग, पूजापुरा त्रिवेन्द्रम-695012	केरल लक्षद्वीप
3. क्षेत्र सलाहकार (रा० शै० अ० और प्र० प०) 3-6-69/बी/7 अवंतीनगर, बशीरबाग़ हैदराबाद-500029	आंध्र प्रदेश
4. क्षेत्र सलाहकार (रा० शै० अ० और प्र० प०) ए० 33, प्रभु मार्ग, तिलक नगर जयपुर-302004	राजस्थान

5. क्षेत्र सलाहकार (रा० शै० अ० और प्र० प०) एम० आई० जी० 161, ब्लाक नं० 6 सरस्वती नगर, जवाहर चौक भोपाल-462017	मध्य प्रदेश
6. क्षेत्र सलाहकार (रा० शै० अ० और प्र० प०) 555/ई, ममफोर्डगंज इलाहाबाद-211002	उत्तर प्रदेश
7. क्षेत्र सलाहकार (रा० शै० अ० और प्र० प०) होमी भाभा होस्टल क्षे० शि० म० कैम्पस भुवनेश्वर-751007	उड़ीसा
8. क्षेत्र सलाहकार (रा० शै० अ० और प्र० प०) 736, सहकारी मेन रोड III ब्लॉक राजाजी नगर बँगलूर-560010	कर्नाटक
9. क्षेत्र सलाहकार (रा० शै० अ० और प्र० प०) 1-बी, चन्द्रा कॉलोनी (समर्पण फ्लैटों के पास) (लॉ कॉलेज के पीछे) अहमदाबाद-380006	गुजरात दादरा व नगर हवेली
10. क्षेत्र सलाहकार (रा० शै० अ० और प्र० प०) नं० 32, हिन्दी प्रचार सभा स्ट्रीट त्यागराज नगर मद्रास-600017	तमिलनाडु पांडिचेरी

11. क्षेत्र सलाहकार (रा० शै० अ० और प्र० प०) 128/2, कोथरुड, कर्वे रोड (मारुति मंदिर बस स्टाप के पास) पुणे-411029	महाराष्ट्र गोआ, दमन व दिउ
12. क्षेत्र सलाहकार (रा० शै० अ० और प्र० प०) कंकड़ बाग, पत्रकार नगर पटना-800016	बिहार
13. क्षेत्र सलाहकार (रा० शै० अ० और प्र० प०) पी-23, सी० आई० टी० रोड स्कीम 55 कलकत्ता-700014	पश्चिमी बंगाल अंडमान और निकोबार द्वीप समूह सिक्किम
14. क्षेत्र सलाहकार (रा० शै० अ० और प्र० प०) मकान नं० 23, सैक्टर-8 (ए) चंडीगढ़-190008	पंजाब हिमाचल प्रदेश चंडीगढ़ हरियाणा
15. क्षेत्र सलाहकार (रा० शै० अ० और प्र० प०) निजाम मंजिल शेरे कश्मीर कॉलोनी सैक्टर-2 क़मर बाड़ी श्रीनगर-190010	जम्मू और कश्मीर
16. क्षेत्र सलाहकार (रा० शै० अ० और प्र० प०) बॉयसी रोड, डा० लैंतुमख्रा शिलॉङ-795003	त्रिपुरा मिजोरम मेघालय

परिशिष्ट-ग

समितियों की संरचना

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के सदस्यों की सूची

(सामान्य निकाय)

(i) मंत्री, शिक्षा मंत्रालय अध्यक्ष—(पदेन)	1. श्रीमती शीला कौल राज्य मंत्री, शिक्षा मंत्रालय शास्त्री भवन, नई दिल्ली-110001
(ii) अध्यक्ष विश्वविद्यालय अनुदान आयोग— (पदेन)	2. डा० (श्रीमती) माधुरी आर० शाह अध्यक्ष विश्वविद्यालय अनुदान आयोग बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110001
iii) सचिव, शिक्षा मंत्रालय— (पदेन)	3. श्रीमती अन्ना आर० मलहोत्रा सचिव, भारत सरकार शिक्षा मंत्रालय शास्त्री भवन नई दिल्ली-110001 श्रीमती सरला ग्रेवाल सचिव, भारत सरकार शिक्षा मंत्रालय शास्त्री भवन, नई दिल्ली-110001 (2-11-1982 से)

(iv) भारत सरकार द्वारा नामजद चार विश्वविद्यालयों के उपकुलपति, प्रत्येक क्षेत्र से एक	4. प्रो० एस० हमीद उपकुलपति अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़
	5. श्री आर० के० कनबरकर उपकुलपति शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर-416004
	6. प्रो० बी० एस० रामकृष्ण उपकुलपति हैदराबाद विश्वविद्यालय हैदराबाद-500001
	7. डा० बी० के० सुकुमारन नायर उपकुलपति केरल विश्वविद्यालय त्रिवेंद्रम-695001
(v) राज्य/विधानांगों वाले संघ-राज्य क्षेत्र के प्रतिनिधि जो वहाँ के शिक्षा-मंत्री (या उसके प्रतिनिधि) होंगे और दिल्ली के मामले में मुख्य कार्यकारी पार्षद (अथवा उसके प्रतिनिधि) होंगे।	8. शिक्षामंत्री आंध्र प्रदेश हैदराबाद
	9. शिक्षामंत्री असम दिशपुर
	10. शिक्षामंत्री बिहार पटना
	11. शिक्षामंत्री गुजरात अहमदाबाद
	12. शिक्षामंत्री हरियाणा चंडीगढ़
	13. शिक्षामंत्री हिमाचल प्रदेश शिमला

14. शिक्षामंत्री
जम्मू और कश्मीर
श्रीनगर

15. शिक्षामंत्री
केरल
त्रिवेन्द्रम

16. शिक्षामंत्री
मध्य प्रदेश
भोपाल

17. शिक्षामंत्री
महाराष्ट्र
बम्बई

18. शिक्षामंत्री
मणिपुर
इम्फाल

19. शिक्षामंत्री
मेघालय
शिलॉङ

20. शिक्षामंत्री
कर्नाटक
बँगलूर

21. शिक्षामंत्री
नागालैंड
कोहिमा

22. शिक्षामंत्री
उड़ीसा
भुवनेश्वर

23. शिक्षामंत्री
राजस्थान
जयपुर

24. शिक्षामंत्री
पंजाब
चंडीगढ़

25. शिक्षामंत्री
तमिलनाडु
मद्रास

26. शिक्षामंत्री
त्रिपुरा सरकार
अगरतला

27. शिक्षामंत्री
सिक्किम
गङ्टोक

28. शिक्षामंत्री
उत्तर प्रदेश
लखनऊ

29. शिक्षामंत्री
पश्चिमी बंगाल
कलकत्ता

30. मुख्य कार्यकारी पार्षद
दिल्ली प्रशासन
दिल्ली

31. शिक्षामंत्री
गोआ, दमन और दिउ की सरकार
पणजी (गोआ)

32. शिक्षामंत्री
मिजोरम
ऐजल

33. शिक्षामंत्री
पांडिचेरी सरकार
पांडिचेरी

(vi) कार्यकारी समिति के सभी सदस्य जो ऊपर शामिल नहीं हैं।

34. ....

35. श्री पी० के० थुंगन
उपमंत्री, शिक्षा मंत्रालय
शास्त्री भवन
नई दिल्ली-110001

36. निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
नई दिल्ली-110016

37. प्रो० डा० एन० वेदमणि मैनुअल
प्रोफेसर और अध्यक्ष,
शिक्षा विभाग
केरल विश्वविद्यालय
त्रिवेंद्रम

38. प्रो० वी० जी० कुलकर्णी
टाटा इंस्टीच्यूट ऑफ़ फंडामेंटल
रिसर्च, होमी भाभा सेंटर फॉर साइंस
एजुकेशन, होमी भाभा रोड
बम्बई-400005

39. बी० एस० कोशी
प्रिंसिपल
श्री एम० एम० प्यूपिल्स
ओन स्कूल और शारदा मंदिर,
स्वामी विवेकानन्द मार्ग, खार
बम्बई-400052

40. श्री एम० एस० दीक्षित
प्रिंसिपल, हीरालाल वी० एन० कालेज
छिबरामऊ
फर्रुखाबाद

41. डॉ० टी० एन० धर
संयुक्त निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद्
नई दिल्ली-110016

42. प्रो० पी० एन० दवे
सेंट्रल कोआर्डिनेटर, यूनिसेफ
एसिस्टेड प्रोजेक्ट्स
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद्
नई दिल्ली-110016

43. डॉ० जे० एस० राजपूत
प्रिंसिपल
क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय
भोपाल-462013

44. डा० (श्रीमती) शकुंतला भट्टाचार्य
रीडर, विज्ञान एवं गणित
शिक्षा विभाग,
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान
और प्रशिक्षण परिषद्
नई दिल्ली-110016

45. श्री० एस० सत्यम्
संयुक्त सचिव (स्कूल शिक्षा)
शिक्षा मंत्रालय
शास्त्री भवन, नई दिल्ली-110001

46. श्री मनमोहन सिंह
वित्त सलाहकार
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद्, शिक्षा
मन्त्रालय, शास्त्री भवन,
नई दिल्ली-110001

(vii) (क) अध्यक्ष
सेंट्रल बोर्ड ऑफ़ सेकंडरी
एजुकेशन, नई दिल्ली
(पदेन)

47. अध्यक्ष
सेंट्रल बोर्ड ऑफ सेकंडरी
एजुकेशन, 17-बी, इन्द्रप्रस्थ इस्टेट
नई दिल्ली-110002

(ख) आयुक्त, के० वि० सं०
नई दिल्ली
(पदेन)

48. आयुक्त
केन्द्रीय विद्यालय संगठन, नेहरू हाउस
4, बहादुरशाह जफर मार्ग
नई दिल्ली-110002

(ग) निदेशक
के० स्वा० शि० ब्यूरो
नई दिल्ली
(पदेन)

49. निदेशक
केन्द्रीय स्वास्थ्य शिक्षा ब्यूरो
(स्वास्थ्य सेवा महानिदेशालय)
निर्माण भवन, नई दिल्ली-110001

(घ) उप महानिदेशक
(कृषि शिक्षा)
भा० कृ० अ० प०,
कृषि मंत्रालय
नई दिल्ली (पदेन)

50. उप महानिदेशक (कृषि शिक्षा)
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्
कृषि मंत्रालय,
कृषि भवन, डा० राजेन्द्रप्रसाद रोड
नई दिल्ली-110001

(ङ) प्रशिक्षण निदेशक
प्र० रो० म०, श्रम मंत्रालय
श्रम शक्ति भवन
नई दिल्ली-110001
(पदेन)

51. प्रशिक्षण निदेशक
प्रशिक्षण और रोजगार महानिदेशालय
श्रम मंत्रालय, श्रम शक्ति भवन,
नई दिल्ली-110001

(च) प्रतिनिधि, शिक्षा विभाग
योजना आयोग, नई दिल्ली
(पदेन)

52. शिक्षा सलाहकार
योजना आयोग, योजना भवन
पार्लियामेंट स्ट्रीट, नई दिल्ली-110001

(viii) ऐसे अन्य व्यक्ति जिन्हें भारत सरकार समय समय पर नामजद करे। इनकी संख्या 6 से अधिक नहीं होगी और इनमें से कम-से-कम 4 स्कूल अध्यापक होंगे।

53. श्री एम० रामास्वामी
हेडमास्टर, टी० वी० एस०
आयंगार हायर सेकंडरी स्कूल
मदुरै (तमिलनाडु)

54. श्री केदारनाथ सिंह
विज्ञान शिक्षक
के० के० विद्या मंदिर, धारवाढ़
वैशाली (बिहार)

55. श्रीमती सलमा फिरदौस
प्रिंसिपल
हायर सेकंडरी स्कूल
कोताबी बाग
श्रीनगर

56. श्री वीरसिंह
डिवीजनल सुप्रिटेंडेंट ऑफ़
एजुकेशन, जबलपुर डिवीजन
जबलपुर (मध्य प्रदेश)

57. डा० एन० के० उपासनी
अवैतनिक प्रोफेसर, शिक्षा विभाग
एस० एन० डी० टी० यूनिवर्सिटी
बम्बई-400020

58. डा० (कुमारी) एम० डॉली शेनॉय
1-2-212/6/1, गगन महल रोड
दुमालगुडा,
हैदराबाद

(ix) विशेष आमन्त्रित

59. सेक्रेट्री
कौंसिल ऑफ इण्डियन स्कूल सर्टिफिकेट
इक्जामिनेशन, प्रगति भवन
तीसरी मंजिल
47, नेहरू प्लेस
नई दिल्ली-110019

60. श्री विनोदकुमार पंडित
सचिव
रा० शै० अ० और प्र० प०
नई दिल्ली-110016 (सचिव)

कार्यकारी समिति

(i) परिषद् का अध्यक्ष जो कार्यकारी समिति का पदेन अध्यक्ष होगा।	1. श्रीमती शीला कौल राज्यमंत्री शिक्षा मंत्रालय शास्त्री भवन, नई दिल्ली-110001
(ii) (अ) शिक्षा मंत्रालय में राज्यमंत्री जो कार्यकारी समिति का पदेन उपाध्यक्ष होगा।	
(आ) शिक्षा मंत्रालय में उपमंत्री— रा० शै० अ० और प्र० प० के अध्यक्ष द्वारा मनोनीत	2. श्री पी० के० थुंगन शिक्षा उपमंत्री, शिक्षा मंत्रालय शास्त्री भवन, नई दिल्ली-110001
(इ) परिषद् के निदेशक	3. निदेशक राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली-110016
(ई) सचिव, शिक्षा मंत्रालय— पदेन	4. श्रीमती अन्ना आर० मलहोत्रा सचिव, शिक्षा मंत्रालय शास्त्री भवन नई दिल्ली-110001 श्रीमती सरला ग्रेवाल सचिव, शिक्षा मंत्रालय शास्त्री भवन नई दिल्ली-110001 (2-11-1982 से)

(iii) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष (पदेन सदस्य)

5. श्रीमती माधुरी आर० शाह
अध्यक्ष
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग
बहादुर शाह जफर मार्ग
नई दिल्ली-110001

(iv) रा० शै० अ० और प्र० प० के अध्यक्ष द्वारा नामजद चार शिक्षाविद जो स्कूल शिक्षा में विशेष रुचि रखते हों, तथा जिनमें से दो स्कूल अध्यापक होंगे।

6. प्रो० वी० जी० कुलकर्णी
प्रोजेक्ट डायरेक्टर
टाटा इंस्टीच्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च, होमी भाभा सेंटर फॉर साइंस एजुकेशन, भाभा रोड
बम्बई-400005

7. डा० एन० वेदमणि मैनुअल
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, शिक्षा विभाग
केरल विश्वविद्यालय
त्रिवेंद्रम

8. श्री वी० एम० जोशी
प्रिंसिपल, श्री एम० एम० प्यूपिल्स ओन स्कूल और शारदा मंदिर
स्वामी विवेकानन्द रोड, खार
बम्बई-400005

9. श्री एम० एस० दीक्षित, प्रिंसिपल
हीरालाल वी० एन० कालेज,
छिबरामऊ, फर्रुखाबाद

(v) परिषद् के संयुक्त निदेशक.

10. डा० टी० एन० धर
संयुक्त निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
नई दिल्ली-110016

(vi) रा० शै० अ० और प्र० प० के अध्यक्ष द्वारा नामजद परिषद् की संकाय के तीन सदस्य जिनमें से कम से कम दो प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष के स्तर के होंगे।

11. प्रो० पी० एन० दवे
सेंट्रल कोआर्डीनेटर
यूनिसेफ एसिस्टेड प्रोजेक्ट्स
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
नई दिल्ली-110016

12. डा० जे० एस० राजपूत
प्रिंसिपल, क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय
भोपाल-462013

13. डा० (श्रीमती) शकुंतला भट्टाचार्य
रीडर, विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग,
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद्
नई दिल्ली-110016

(vii) शिक्षा मंत्रालय के प्रतिनिधि

14. श्री एस० सत्यम
संयुक्त सचिव, शिक्षा मंत्रालय
शास्त्री भवन
नई दिल्ली-110001

(viii) वित्त मंत्रालय का एक प्रतिनिधि जो परिषद् का वित्त सलाहकार होगा ।

15. श्री मनमोहन सिंह
वित्त सलाहकार
रा० शै० अ० और प्र० प०,
शिक्षा मंत्रालय, शास्त्री भवन
नई दिल्ली-110001

16. श्री विनोद कुमार पंडित
सचिव
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद्,
नई दिल्ली-110016

संस्थापन समिति

(i) निदेशक, रा० शै० अ० और प्र० प० (अध्यक्ष)	1. डा० शिवकुमार मित्र निदेशक राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् नई दिल्ली-110016 (अध्यक्ष)
(ii) संयुक्त निदेशक, रा० शै० अ० और प्र० प०	2. डा० टी० एन० धर संयुक्त निदेशक राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् नई दिल्ली-110016
(iii) परिषद् के अध्यक्ष द्वारा नामजद शिक्षा मंत्रालय का एक प्रतिनिधि	3. श्री एस० सत्यम संयुक्त सचिव शिक्षा मंत्रालय, शास्त्री भवन नई दिल्ली-110001
(iv) परिषद् के अध्यक्ष द्वारा नामजद चार शिक्षाविद जिनमें से कम से कम एक वैज्ञानिक होगा	4. प्रो० एम० आई० सभादत्ती भौतिकी विभाग कर्नाटक विश्वविद्यालय धारवाड़-580003
	5. प्रो० पी० एल० मल्होत्रा डीन ऑफ कालेजेज दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली

	6. डा० फ्रांसिस एक्का प्रोफेसर और उप निदेशक केन्द्रीय भारतीय भाषा संस्थान मानस गंगोत्री मैसूर-570006
	7. प्रो० (कुमारी) ए० जे० दस्तूर अध्यक्ष, नागरिक शास्त्र और राजनीति शास्त्र विभाग बम्बई विश्वविद्यालय, बम्बई
(v) परिषद् के अध्यक्ष द्वारा नामजद क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय का एक प्रतिनिधि	8. श्री पी० सी० जोजेफ स्टोर कीपर, क्षे० शि० म० मैसूर-570006
(vi) परिषद् के अध्यक्ष द्वारा नामजद राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान, दिल्ली का एक प्रतिनिधि	9. कुमारी एस० के० राम रीडर, सा० वि० एवं मा० शि० विभाग रा० शै० अ० और प्र० प० नई दिल्ली-110016
(vii) परिषद् के नियमित शैक्षणिक और गैर-शैक्षणिक कर्मचारी वर्ग में से एक-एक (कुल दो) प्रतिनिधि	10. श्री बालगोपाल वर्मा लेक्चरर क्षे० शि० म०, मैसूर
	11. श्री प्रबोध कुमार उच्च श्रेणी लिपिक सा० वि० एवं मा० शि० वि० रा० शै० अ० और प्र० प० नई दिल्ली-110016
(viii) वित्त सलाहकार, रा० शै० अ० और प्र० प०	12. श्री मनमोहन सिंह वित्त सलाहकार रा० शै० अ० और प्र० प० शिक्षा मंत्रालय, शास्त्री भवन नई दिल्ली
(ix) सचिव, रा० शै० अ० और प्र० प० (सदस्य-संयोजक)	13. श्री विनोदकुमार पंडित सचिव राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् नई दिल्ली (सदस्य-संयोजक)

वित्त समिति

1. प्रो० शिवकुमार मित्र
   निदेशक
   राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
   प्रशिक्षण परिषद्
   नई दिल्ली
   (पदेन अध्यक्ष)

2. श्री एस० सत्यम
   संयुक्त सचिव
   शिक्षा मंत्रालय, शास्त्री भवन
   नई दिल्ली

3. श्री जे० वीर राघवन
   कार्यकारी निदेशक
   राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन एवं
   प्रशासन संस्थान
   17 बी, श्री अरविंद मार्ग
   नई दिल्ली

4. प्रो० वी० जी० कुलकर्णी
   परियोजना निदेशक
   टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल
   रिसर्च
   होमी भाभा सेंटर फॉर
   साइंस एजुकेशन, होमी भाभा रोड
   बम्बई-400005

5. श्री मनमोहन सिंह
   वित्त सलाहकार
   रा० शै० अ० और प्र० प०
   शिक्षा मंत्रालय
   कमरा नं० 109 'सी', शास्त्री भवन
   नई दिल्ली (पदेन सदस्य)

6. श्री विनोद कुमार पंडित
   सचिव
   रा० शै० अ० और प्र० प०
   नई दिल्ली (संयोजक)

भवन तथा निर्माण समिति

(i) निदेशक, रा० शै० अ० और प्र० प० (पदेन अध्यक्ष)	1. प्रो० शिवकुमार मित्र निदेशक, रा० शै० अ० और प्र० प० नई दिल्ली (अध्यक्ष)
(ii) संयुक्त रिदेशक रा० शै० अ० और प्र० प० (पदेन उपाध्यक्ष)	2. डा० टी० एन० धर संयुक्त निदेशक, रा०शै०अ० और प्र०प० नई दिल्ली (उपाध्यक्ष)
(iii) मुख्य इंजीनियर, केन्द्रीय लो० नि० विभाग अथवा उसके द्वारा मनोनीत व्यक्ति	3. श्री एम० एल० कालरा सुपरिंटेंडिग सर्वेयर ऑफ वर्क्स (फूड), सी० पी० डब्ल्यू० डी० इन्द्रप्रस्थ भवन, इन्द्रप्रस्थ इस्टेट नई दिल्ली
(iv) वित्त मंत्रालय (वर्क्स) का एक प्रतिनिधि	4. श्री ए० के० सक्सेना सहायक वित्त सलाहकार वित्त मंत्रालय (वर्क्स) निर्माण भवन, (III मंजिल) नई दिल्ली
(v) परिषद् का परामर्शी वास्तुक	5. श्री के० एन० सक्सेना ज्येष्ठ वास्तुक एच० पी० टी०-2 के० लो० नि० विभाग, निर्माण भवन नई दिल्ली

(vi) परिषद् का वित्त सलाहकार अथवा उनके द्वारा मनोनीत व्यक्ति	6. श्री मनमोहन सिंह वित्त सलाहकार, रा० शै० अ० और प्र० प०, कमरा नं० 109 'सी' शास्त्री भवन, नई दिल्ली
(vii) शिक्षा मंत्रालय द्वारा मनोनीत व्यक्ति	7. श्री एस० सत्यम संयुक्त सचिव, शिक्षा मंत्रालय शास्त्री भवन, नई दिल्ली
(viii) कोई प्रतिष्ठित सिविल इंजीनियर (अध्यक्ष द्वारा मनोनीत)	8. श्री आर० ए० खेमानी मुख्य इंजीनियर दिल्ली विकास प्राधिकरण विकास भवन एनेक्सी इन्द्रप्रस्थ इस्टेट नई दिल्ली
(ix) कोई प्रतिष्ठित बिजली इंजीनियर (अध्यक्ष द्वारा मनोनीत)	9. श्री टी० कृष्णमूर्ति सुप्रिटेंडिंग इंजीनियर दिल्ली सेंट्रल इलेक्ट्रिक सर्किल-1 केन्द्रीय लोक निर्माण विभाग इंद्रप्रस्थ भवन, इंद्रप्रस्थ इस्टेट नई दिल्ली
(x) समिति द्वारा मनोनीत कार्यकारी समिति का सदस्य	10. श्री एस० एच० खान रीडर, पी० सी० डी० सी० रा० शै० अ० और प्र० प० नई दिल्ली
(xi) सचिव, रा० शै० अ० और प्र० प० (सदस्य सचिव)	11. श्री विनोदकुमार पंडित सचिव, रा० शै० अ० और प्र० प० नई दिल्ली (सदस्य सचिव)

कार्यक्रम सलाहकार समिति

1. प्रो० शिवकुमार मित्र
   निदेशक, रा० शै० अ०
   और प्र० प०
   नई दिल्ली (अध्यक्ष)
2. डा० टी० एन० धर
   सह निदेशक, रा० शै० अ०
   और प्र० प०
   नई दिल्ली (उपाध्यक्ष)
3. प्रो० श्रीनिवास भट्टाचार्य
   शिक्षा के प्रोफेसर
   विश्व भारती
   शान्तिनिकेतन (प० बंगाल)
4. प्रो० बी० के० पासी
   अध्यक्ष, शिक्षा विभाग
   इंदौर विश्वविद्यालय
   इंदौर
5. प्रो० के० कुमारस्वामी पिल्लै
   शिक्षा के प्रोफ़ेसर
   अन्नामलाई विश्वविद्यालय
   अन्नामलाई नगर
   (तमिलनाडु)
6. प्रो० बी० आर० कामले
   अध्यक्ष, इतिहास विभाग
   शिवाजी विश्वविद्यालय
   कोल्हापुर
   (महाराष्ट्र)
7. प्रो० के० पद्म उमापति
   गृह विज्ञान के प्रोफेसर
   मैसूर विश्वविद्यालय
   मैसूर
8. निदेशक
   राज्य शिक्षा संस्थान
   सेक्टर 20-डी
   चंडीगढ़
9. प्रिंसिपल
   राज्य शिक्षा संस्थान
   त्रिवेंद्रम (केरल)
10. निदेशक
    राज्य शिक्षा संस्थान
    जोरहट-785001 (असम)
11. निदेशक
    राज्य शिक्षा संस्थान
    सदाशिव पेठ, कुमठेकर रोड, पुणे
12. निदेशक
    राज्य शैक्षिक अनुसंधान और
    प्रशिक्षण विभाग
    श्री बी० पी० वाडिया रोड
    बासवंगुडी
    बँगलूर

13. अध्यक्ष
मापन और मूल्यांकन विभाग
रा० शै० अ० और प्र० प०
नई दिल्ली

14. अध्यक्ष
विज्ञान और गणित शिक्षा विभाग
रा० शै० अ० और प्र० प०
नई दिल्ली

15. अध्यक्ष
सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी
शिक्षा विभाग, रा० शै० अ०
और प्र० प०, नई दिल्ली

16. अध्यक्ष
अध्यापक-शिक्षा विभाग
रा० शै० अ० और प्र० प०
नई दिल्ली

17. अध्यक्ष
वर्कशॉप विभाग
रा० शै० अ० और प्र० प०
नई दिल्ली

18. अध्यक्ष
प्रकाशन विभाग
रा० शै० अ० और प्र० प०
नई दिल्ली

19. अध्यक्ष
प्राथमिक शिक्षा व्यापक उपागम वर्ग
रा० शै० अ० और प्र० प०
नई दिल्ली

20. अध्यक्ष
शिक्षण साधन विभाग
रा० शै० अ० और प्र० प०, नई दिल्ली

21. अध्यक्ष
पाठ्यक्रम वर्ग
रा० शै० अ० और प्र० प०
नई दिल्ली

22. अध्यक्ष
शैक्षिक और व्यावसायिक मार्गदर्शन
एकक, रा० शै० अ० और प्र० प०
नई दिल्ली

23. अध्यक्ष
शिशु अध्ययन एकक
रा० शै० अ० और प्र० प०
नई दिल्ली

24. अध्यक्ष
शैक्षिक मनोविज्ञान एकक
रा० शै० अ० और प्र० प्र०
नई दिल्ली

25. अध्यक्ष
अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति
शिक्षा एकक
रा० शै० अ० और प्र० प०
नई दिल्ली

26. अध्यक्ष
स्त्री शिक्षा एकक
रा० शै० अ० और प्र० प०
नई दिल्ली

27. अध्यक्ष
जनसंख्या शिक्षा एकक
रा० शै० अ० और प्र० प०
नई दिल्ली

28. अध्यक्ष
विस्तार एकक
रा० शै० अ० और प्र० प०
नई दिल्ली

29. अध्यक्ष
योजना, समन्वय और मूल्यांकन एकक
रा० शै० अ० और प्र० प०
नई दिल्ली

30. अध्यक्ष
शिक्षा का व्यावसायीकरण एकक
रा० शै० अ० और प्र० प०
नई दिल्ली

31. अध्यक्ष
सर्वेक्षण और आधार सामग्री प्रक्रिया
एकक, रा० शै० अ० और प्र० प०
नई दिल्ली

32. अध्यक्ष
पुस्तकालय और प्रलेखन एकक
रा० शै० अ० और प्र० प०
नई दिल्ली

33. अध्यक्ष
राष्ट्रीय प्रतिभा खोज एकक
रा० शै० अ० और प्र० प०
नई दिल्ली

34. अध्यक्ष
प्राथमिक पाठ्यक्रम विकास प्रकोष्ठ
रा० शै० अ० और प्र० प०
नई दिल्ली

35. अध्यक्ष
पत्रिका प्रकोष्ठ
रा० शै० अ० और प्र० प०
नई दिल्ली

36. प्रिंसिपल
शैक्षिक प्रौद्योगिकी केन्द्र
रा० शै० अ० और प्र० प०
नई दिल्ली

37. प्रिंसिपल
क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय
अजमेर

38. प्रिंसिपल
क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय
भुवनेश्वर

39. प्रिंसिपल
क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय
भोपाल

40. प्रिंसिपल
क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय
मैसूर

41. प्रोफेसर
अनौपचारिक शिक्षा वर्ग
रा० शै० अ० और प्र० प०
नई दिल्ली

42. प्रो० ए० एन० माहेश्वरी
क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय
मैसूर

43. डा० बृजेशदत्त आत्रेय
रीडर
विज्ञान और गणित शिक्षा विभाग
रा० शै० अ० और प्र० प०
नई दिल्ली

44. कुमारी एस० के० राम
रीडर
सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी
शिक्षा विभाग
रा० शै० अ० और प्र० प०
नई दिल्ली

45. श्री तिलकराज
रीडर
शिक्षण साधन विभाग
रा० शै० अ० और प्र० प०
नई दिल्ली

46. श्री प्रभाकर राव
सी० पी० ओ०
प्रकाशन विभाग
रा० शै० अ० और प्र० प०
नई दिल्ली

47. डॉ० एम० वी० रामजी
रीडर
क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय
भुवनेश्वर

48. डॉ० जे० एस० ग्रेवाल
रीडर
क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय
भोपाल

49. डॉ० श्रीमती अमृतकौर
रीडर
क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय
अजमेर

50. डॉ० जगदीश सिंह
रीडर
शैक्षिक प्रौद्योगिकी केन्द्र
रा० शै० अ० और प्र० प०
नई दिल्ली

51. डीन (ए० एंड आर०)
रा० शै० अ० और प्र० प०
नई दिल्ली

52. डीन (सी०)
रा० शै० अ० और प्र० प०
नई दिल्ली

स्कूल-पाठ्यक्रम की सलाहकार-समिति

1. डॉ० शिवकुमार मित्र — अध्यक्ष
   निदेशक
   राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
   प्रशिक्षण परिषद्
   श्री अरविंद मार्ग
   नई दिल्ली

2. डॉ० टी० एन० धर — सदस्य
   संयुक्त निदेशक
   राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
   प्रशिक्षण परिषद्
   श्री अरविंद मार्ग
   नई दिल्ली

3. उपाध्यक्ष — सदस्य
   विश्वविद्यालय अनुदान आयोग
   बहादुरशाह जफर मार्ग
   नई दिल्ली

4. प्रो० आर० सी० पाल — सदस्य
   उपकुलपति, पंजाब विश्वविद्यालय
   चंडीगढ़

5. प्रो० जी० आर० दामोदरन — सदस्य
   उपकुलपति, मद्रास विश्वविद्यालय
   मद्रास

6. प्रो० रशीदुद्दीन खान — सदस्य
अध्यक्ष, राजनीतिक अध्ययन केन्द्र
स्कूल ऑफ सोशल साइंसेज
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

7. डा० अमरीक सिंह — सदस्य
सचिव, एसोसिएशन ऑफ इंडियन
यूनिवर्सिटीज
दीनदयाल उपाध्याय मार्ग
नई दिल्ली

8. डा० सुमा चिटणीस — सदस्य
प्रोफेसर, टाटा इंस्टीच्यूट ऑफ सोशल साइंसेज
सायन-ट्राम्बे रोड, देवनार
बम्बई

9. डा० राजम्मल पी० देवदास — सदस्य
प्रिंसिपल, श्री अविनाशलिंगम
होम साइंस कॉलेज फ़ॉर वीमेन
कोयम्बतूर

10. प्रो० एस० एम० चटर्जी — सदस्य
98/39, गोपाल लाल टैगोर रोड
कलकत्ता

11. डा० गोपाल सिंह — सदस्य
अध्यक्ष, वर्ल्ड सिख यूनिवर्सिटी प्रेस
7, पूर्वी मार्ग, वसन्त विहार
नई दिल्ली

12. श्री वी० जी० कुलकर्णी — सदस्य
प्रोजेक्ट डाइरेक्टर
टाटा इंस्टीच्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च
होमी भाभा सेंटर फ़ॉर साइंस
एजुकेशन
होमी भाभा रोड
बम्बई-400005

13. डा० मुहम्मद अहमद सदस्य
रीडर इन मेडिसिन
जवाहरलाल नेहरू मेडिकल कॉलेज
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़

14. श्री एस० एन० कपूर सदस्य
निदेशक, गुरु शिखर स्कूल
माउंट आबू
राजस्थान

15. डा० एस० एन० मेहरोत्रा सदस्य
उपकुलपति, आगरा विश्वविद्यालय
आगरा

16. प्रो० बी० के० रॉय बर्मन सदस्य
कौंसिल फॉर सोशल डेवेलपमेंट
53, लोदी इस्टेट
नई दिल्ली-110003

17. श्रीमती अशिमा चौधरी सदस्य
प्रिंसिपल, साउथ देहली पॉलिटेकनीक फॉर वीमेन
एन 9, रिंग रोड
साउथ एक्सटेंशन पार्ट I
नई दिल्ली-110049

18. डा० प्रेम कृपाल सदस्य
63 एफ, सुजानसिंह पार्क
नई दिल्ली-110003

19. डा० पी० एल० मलहोत्रा सदस्य
प्रिंसिपल, कालेज ऑफ वोकेशनल स्टडीज
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-110001

20. निदेशक, ऑल इंडिया इंस्टीच्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज सदस्य
अन्सारी नगर
नई दिल्ली-110016

21. डा० नगेन्द्र — सदस्य
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
16, कैवेलरी लाइंस
दिल्ली-110007

22. डा० (श्रीमती) उषा के० लूथरा — सदस्य
सीनियर डिप्टी डायरेक्टर जनरल
इंडियन कौंसिल ऑफ मेडिकल रिसर्च
अन्सारी नगर
नई दिल्ली-110016

23. श्री ए० के० धान — सदस्य
उपकुलपति
नार्थ ईस्टर्न हिल यूनिवर्सिटी
शिलॉङ

24. डा० एच० एस० लारेंस — सदस्य
5, अरुलगम, बैगडंवल रोड
नुंगंबक्कम
मद्रास

25. प्रो० जे० जे० नानावती — सदस्य
सेंट्रल बॉम्बे सर्विस-1 (आर)
11, नैपियर रोड
पुणे-411001

26. प्रो० एल० के० महापात्र — सदस्य
अध्यक्ष, नृशास्त्र विभाग
उत्कल विश्वविद्यालय
वाणी विहार
भुवनेश्वर (उड़ीसा)

27. डा० के० आर० श्रीनिवास आयंगार — सदस्य
152, कचहरी रोड, मइलापुर
मद्रास-600004

28. प्रिंसिपल — पदेन सदस्य
नेतरहाट विद्यालय
नेतरहाट (बरास्ता राँची)
बिहार

29. आयुक्त — पदेन सदस्य
केन्द्रीय विद्यालय संगठन
नेहरू हाउस
बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली

30. सहायक महानिदेशक (शिक्षा) — पदेन सदस्य
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्
कृषि भवन, डा० राजेन्द्र प्रसाद रोड
नई दिल्ली

31. प्राथमिक शिक्षा निदेशक — पदेन सदस्य
प्राथमिक शिक्षा निदेशालय
पश्चिम बंगाल सरकार
नूतन सचिवालय भवन
कलकत्ता

32. अध्यक्ष — पदेन सदस्य
सेन्ट्रल बोर्ड ऑफ सेकंडरी एजुकेशन
17 बी, रिंग रोड, इन्द्रप्रस्थ इस्टेट
नई दिल्ली-110002

33. अध्यक्ष — पदेन सदस्य
कौंसिल ऑफ बोर्ड्स ऑफ सेकंडरी एजुकेशन इन इंडिया
17 बी, इन्द्रप्रस्थ इस्टेट, नई दिल्ली-110002

34. निदेशक — पदेन सदस्य
राज्य शिक्षा संस्थान, महाराष्ट्र
कुसठेकर मार्ग
पुणे (महाराष्ट्र)

35. सेक्रेट्री — पदेन सदस्य
कौंसिल फॉर दि इंडियन स्कूल सर्टिफिकेट इक्जामिनेशंस
प्रगति हाउस, 47-48, नेहरू प्लेस
नई दिल्ली

36. सदस्य सचिव
भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद्
इन्द्रप्रस्थ इस्टेट
नई दिल्ली-110002

37. निदेशक — पदेन सदस्य
नेताजी सुभाष राष्ट्रीय खेलकूद संस्थान
मोतीबाग
पटियाला-147001

38. शिक्षा निदेशक — पदेन सदस्य
केरल सरकार
त्रिवेन्द्रम

39. राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान के सभी — स्थायी आमंत्रित
विभागों/एककों आदि के अध्यक्ष एवं
प्रोफेसर

40. प्रिंसिपल एवं प्रोफेसर — स्थायी आमंत्रित
शैक्षिक प्रौद्योगिकी केन्द्र

41. रीडर (कार्यक्रम) — स्थायी आमंत्रित

42. अध्यक्ष — (संयोजक)
पाठ्यक्रम वर्ग
रा० शै० अ० और प्र० प०
नई दिल्ली-110016

शैक्षिक अनुसंधान और नवाचार समिति

1. डीन (अनुसंधान)
2. डीन (शैक्षणिक)
3. डीन (समन्वय)
4. रा० शै० अ० और प्र० प० के सभी विभागों के अध्यक्ष
5. क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालयों और शैक्षिक प्रौद्योगिकी केन्द्र के प्रिंसिपल
6. रा० शै० अ० और प्र० प० के निदेशक द्वारा नामजद राज्य शिक्षा संस्थानों के दो व्यक्ति :

   (i) निदेशक
   राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
   6, डी० पी० आइ० कम्पाउंड
   मद्रास

   (ii) निदेशक
   राज्य शिक्षा संस्थान
   जहांगीराबाद
   भोपाल

7. रा० शै० अ० और प्र० प० के अध्यक्ष द्वारा नामजद विश्वविद्यालयों/शोध संस्थानों के आठ व्यक्ति :

   (i) डा० एस० बी० अदावाल
   शिक्षा के प्रोफेसर, इलाहाबाद विश्वविद्यालय
   3, बैंक रोड, इलाहाबाद-211002

(ii) डा० सी० एल० आनंद
शिक्षा के प्रोफेसर
उत्तर पूर्वी पहाड़ी विश्वविद्यालय, शिलॉङ

(iii) डा० रमेश मोहन
निदेशक
केन्द्रीय अंग्रेजी और विदेशी भाषा संस्थान
हैदराबाद

(iv) डा० बी० एन० मुखर्जी
निदेशक
सामाजिक विकास अनुसंधान परिषद्
53, लोदी इस्टेट
नई दिल्ली

(v) प्रो० ए० बी० कुलकर्णी
रसायन विज्ञान के प्रोफेसर
बम्बई विश्वविद्यालय
बम्बई

(vi) प्रो० (श्रीमती) अमिता वर्मा
शिशु विकास की प्रोफेसर
गृह विज्ञान विभाग
बड़ौदा विश्वविद्यालय
बड़ौदा

(vii) प्रो० पी० जी० के० पणिक्कर
निदेशक, विकास अध्ययन केन्द्र, उल्लूर
त्रिवेन्द्रम-695001

(viii) डा० जे० एन० कपूर
गणित के वरिष्ठ प्रोफेसर
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान
कानपुर

पर्यावरणीय शिक्षा के लिए सलाहकार समिति

1. अध्यक्ष, अध्यापक-शिक्षा विभाग एवं प्रिंसिपल, शैक्षिक प्रौद्योगिकी केन्द्र
2. अध्यक्ष, सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग तथा जनसंख्या शिक्षा एकक
3. अध्यक्ष, शिशु अध्ययन एकक
4. अध्यक्ष, प्राथमिक पाठ्यक्रम विकास प्रकोष्ठ
5. अध्यक्ष, प्राथमिक शिक्षा व्यापक उपागम वर्ग
6. अध्यक्ष, शिक्षा व्यावसायीकरण एकक एवं समाजोपयोगी उत्पादक कार्य एकक
7. अध्यक्ष, योजना, समन्वय और मूल्यांकन एकक
8. अध्यक्ष, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति शिक्षा एकक
9. अध्यक्ष, शिक्षण साधन विभाग
10. अध्यक्ष, पाठ्यक्रम वर्ग
11. प्रिंसिपल, क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, अजमेर या उनके प्रतिनिधि
12. प्रिंसिपल, क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, भुवनेश्वर या उनके प्रतिनिधि
13. प्रिंसिपल, क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, भोपाल या उनके प्रतिनिधि
14. प्रिंसिपल, क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, मैसूर या उनके प्रतिनिधि
15. डा० एम० एस० खापर्डे, रीडर (कार्यक्रम)
16. श्री गोपबंधु गुरु
    रीडर, शिक्षा व्यावसायीकरण एकक एवं समाजोपयोगी उत्पादक कार्य एकक
17. डा० बृजेशदत्त आत्रेय
    रीडर, विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग
18. डा० उत्पल मलिक
    परियोजना समन्वयक, यूनिसेफ परियोजना (स्वास्थ्य, पोषण और पर्यावरणीय स्वच्छता)
    विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग
19. अध्यक्ष, विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग (संयोजक)

पुस्तकालय सलाहकार समिति

1. प्रो० ए० एन० बोस विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग	(अध्यक्ष)
2. प्रो० बी० एस० पारख अध्यक्ष, सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग	(सदस्य)
3. प्रो० पी० एन० दवे अध्यक्ष, केप वर्ग	(सदस्य)
4. प्रो० अनिल विद्यालंकार सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग	(सदस्य)
5. प्रो० चौधरी हेमकांत मिश्र सदस्य-सचिव, एरिक	(सदस्य)
6. प्रो० (श्रीमती) स्नेहलता शुक्ल शैक्षिक प्रौद्योगिकी केन्द्र	(सदस्य)
7. डा० (कुमारी) सरोजिनी बिसारिया अध्यक्ष, स्त्री शिक्षा एकक	(सदस्य)
8. डा० एम० एस० खापर्डे रीडर (कार्यक्रम)	(सदस्य)
9. प्रोफेशनल सीनियर लाइब्रेरी एंड डाक्यूमेंटेशन यूनिट	(सदस्य)
10. लाइब्रेरी एसोसिएशन का एक प्रतिनिधि	(सदस्य)
11. अध्यक्ष, लाइब्रेरी एंड डाक्यूमेंटेशन यूनिट	(संयोजक)

समन्वय-समितियाँ

1. पाठ्यक्रम-विकास के लिए समन्वय-समिति

(क) अध्यक्ष, सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग
(ख) अध्यक्ष, विज्ञान और गणित शिक्षा विभाग
(ग) अध्यक्ष, स्त्री-शिक्षा एकक
(घ) अध्यक्ष, अध्यापक-शिक्षा विभाग
(ङ) अध्यक्ष, प्राथमिक शिक्षा : व्यापक उपागम वर्ग
(च) अध्यक्ष, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति शिक्षा एकक
(छ) अध्यक्ष, प्राथमिक पाठ्यक्रम विकास प्रकोष्ठ
(ज) अध्यक्ष, शिक्षा व्यावसायीकरण एकक
(झ) प्रो० अनिल विद्यालंकार
(ञ) योजना, समन्वय और मूल्यांकन एकक का प्रतिनिधि
(ट) अध्यक्ष, पाठ्यक्रम वर्ग (संयोजक)

2. शैक्षिक प्रौद्योगिकी के लिए समन्वय-समिति

(क) अध्यक्ष, शिक्षण-साधन विभाग
(ख) अध्यक्ष, सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग
(ग) अध्यक्ष, विज्ञान और गणित शिक्षा विभाग
(घ) अध्यक्ष, अध्यापक-शिक्षा विभाग
(ङ) अध्यक्ष, विस्तार एकक; राज्यों में शैक्षिक प्रौद्योगिकी की प्रगति से संबद्ध क्षेत्र सलाहकार

(च) योजना, समन्वय और मूल्यांकन एकक का प्रतिनिधि
(छ) प्रिंसिपल, शैक्षिक प्रौद्योगिकी केन्द्र (संयोजक)

3. अनौपचारिक शिक्षा के लिए समन्वय क्रिया समिति

(क) अध्यक्ष, प्राथमिक शिक्षा : व्यापक उपागम वर्ग
(ख) अध्यक्ष, प्राथमिक पाठ्यक्रम विकास प्रकोष्ठ
(ग) अध्यक्ष, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति शिक्षा एकक
(घ) अध्यक्ष, स्त्री-शिक्षा एकक
(ङ) अध्यक्ष, विस्तार एकक
(च) अध्यक्ष, पाठ्यक्रम वर्ग
(छ) अध्यक्ष, मापन और मूल्यांकन विभाग
(ज) योजना, समन्वय और मूल्यांकन एकक का प्रतिनिधि
(झ) श्री ए० ए० सी० लाल
(ञ) प्रो० कृष्णगोपाल रस्तोगी (संयोजक)

4. मापन और मूल्यांकन के लिए समन्वय-समिति

(क) अध्यक्ष, सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग
(ख) अध्यक्ष, विज्ञान और गणित शिक्षा विभाग
(ग) अध्यक्ष, अध्यापक-शिक्षा विभाग
(घ) अध्यक्ष, शैक्षिक और व्यावसायिक मार्गदर्शन एकक
(ङ) अज्यक्ष, शैक्षिक मनोविज्ञान एकक
(च) अध्यक्ष, पाठ्यक्रम वर्ग
(छ) अध्यक्ष, प्राथमिक पाठ्यक्रम विकास प्रकोष्ठ
(ज) अध्यक्ष, प्राथमिक शिक्षा : व्यापक उपागम वर्ग
(झ) अध्यक्ष, शिशु अध्ययन एकक
(ञ) प्रो० श्रीमती स्नेहलता शुक्ला, शैक्षिक प्रौद्योगिकी केन्द्र
(ट) योजना, समन्वय और मूल्यांकन एकक का प्रतिनिधि
(ठ) अज्यक्ष, मापन और मूल्यांकन विभाग (संयोजक)

5. अध्यापक-शिक्षा और अन्य कार्यक्रमों के लिए समन्वय-समिति

(क) अध्यक्ष, सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग

(ख) अध्यक्ष, शिक्षण-साधन विभाग

(ग) अध्यक्ष, प्राथमिक शिक्षा : व्यापक उपागम वर्ग

(घ) अध्यक्ष, शैक्षिक एवं व्यावसायिक मार्गदर्शन एकक

(ङ) अध्यक्ष, शिशु अध्ययन एकक

(च) प्रिंसिपल, शैक्षिक प्रौद्योगिकी केन्द्र

(छ) अध्यक्ष, मापन और मूल्यांकन विभाग

(ज) अध्यक्ष, शैक्षिक मनोविज्ञान एकक

(झ) अध्यक्ष, योजना, समन्वय और मूल्यांकन एकक

(ञ) अध्यक्ष, शिक्षा व्यावसायीकरण एकक

(ट) रीडर (कार्यक्रम)

(ठ) अध्यक्ष, विज्ञान और गणित शिक्षा विभाग

(ड) अध्यक्ष, प्राथमिक पाठ्यक्रम विकास प्रकोष्ठ

(ढ) अध्यक्ष, अध्यापक-शिक्षा विभाग (संयोजक)

परिशिष्ट घ

सन् 1982-83 के दौरान समितियों द्वारा किए गए मुख्य निर्णय

कार्यकारी समिति

कार्यकारी समिति की 57वीं और 58वीं बैठकें क्रमशः 20 मई 1982 और 23 अक्तूबर 1982 को हुई।

नैतिकता की शिक्षा पर जल्दी से जल्दी पाठ्यपुस्तकें निकालने की आवश्यकता पर बल दिया गया। कार्यकारी समिति का सुझाव था कि इस दिशा में शुभारम्भ के लिए प्राथमिक स्तर की पाठ्यपुस्तकें बना देनी चाहिए।

कार्यकारी समिति विक्रम साराभाई सामुदायिक विज्ञान केन्द्र को 1982-83 में सहायता अनुदान देने के लिए सहमत हो गई।

निर्णय किया गया कि राष्ट्रीय प्रतिभा खोज छात्रवृत्ति देने के लिए, दो-स्तरीय चयन विधि को मई 1984 से शुरू किया जाए।

भारतीय स्वाधीनता-संघर्ष पर एक फोलियो निकालने के प्रस्ताव को कार्यकारी समिति ने मंजूरी दे दी। फ़ोलियो का मूल्य ऐसे तरीके से तय किया जाएगा कि उत्पादन और वितरण का खर्च निकल आए। यह सुझाव भी दिया गया कि फोलियो के प्रकाशन के बाद उसे पुस्तक, टेपों, स्लाइडों और फिल्मों आदि के रूप में भी प्रस्तुत किया जाए।

कार्यकारी समिति ने सलाह दी कि जिन पुस्तकों का मूल्य दस रुपए से अधिक आने लगे उनके मूल्य-ढाँचे को फिर से जाँचा जाना चाहिए।

कार्यकारी समिति ने कहा कि राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् को प्रारम्भिक शिक्षा में नामांकन के प्रबोधन के लिए समुचित व्यवस्था बनानी चाहिए क्योंकि इस स्तर की शिक्षा के सार्वजनीकरण को अत्यंत प्राथमिकता वाली जरूरतों में, और बीस सूत्री आर्थिक कार्यक्रम में स्थान मिला हुआ है।

यह निश्चय भी किया गया कि परिषद् को प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में कोई सीधी प्रत्यक्ष भूमिका नहीं लेनी चाहिए क्योंकि शिक्षा मंत्रालय ने इस काम के लिए अलग प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय बना रखा है।

वित्त समिति

वित्त समिति की 57वीं, 58वीं और 59वीं बैठकें क्रमशः 26 अप्रैल 1982, 26 मई 1982 और 29 नवम्बर 1982 को हुईं।

पाठ्यपुस्तकों में आपत्तिजनक सामग्री को पहचानने के कार्य के लिए पहले से स्वीकृत पारिश्रमिक की इन दरों को वित्त समिति ने देख लिया :

(क) कक्षा I से V तक की पाठ्यपुस्तकें : 50 रु० प्रति पुस्तक

(ख) कक्षा VI से VIII तक की पाठ्यपुस्तकें : 75 रु० प्रति पुस्तक

(ग) कक्षा IX से XII तक की पाठ्यपुस्तकें : 100 रु० प्रति पुस्तक

रा० शै० अ० और प्र० प० की पाठ्यपुस्तकों की मूल्यांकन रिपोर्टों को अंतिम रूप देने के लिए आयोजित बैठकों के लिए विशेषज्ञ समितियों के सदस्यों को 50 रुपए प्रति सदस्य प्रतिदिन दिए जाने की संस्तुति वित्त समिति ने की।

परिषद् की चयन समितियों के सदस्यों को यात्रा व दैनिक भत्तों आदि के भुगतान के लिए संघ लोक सेवा आयोग के नियमों का अनुसरण रा० शै० अ० और प्र० प० करे, इस बात की संस्तुति वित्त समिति ने की।

यूनिसेफ़-पोषित परियोजना संख्या 1 और 4 के मामले में वित्त समिति ने संस्तुति की कि परिषद् के इस वर्ष के स्वीकृत योजना बजट की सीमा के भीतर ही 15 लाख रुपयों का एक रोलिंग फंड बनाया जाना चाहिए। इस रोलिंग फंड की कार्य-पद्धति की समीक्षा एक वर्ष बाद की जाएगी। उस समीक्षा के परिणाम ही यह तय करेंगे कि परियोजना 1 और 4 के लिए रोलिंग फंड को चलाया जाए या नहीं अथवा उसे अन्य यूनिसेफ़ परियोजनाओं के लिए बढ़ाया जाए या नहीं।

निम्नलिखित को कार्यकारी समिति की स्वीकृति के लिए वित्त समिति ने संस्तुत किया :

1. शिक्षा वृत्तियों को पहले दो वर्षों के लिए हर महीने 400 रुपयों से बढ़ा कर 600 रुपए कर दिया जाए। तत्पश्चात हर महीने 700 रुपए और 800 रुपए किए जाएँ। 800 रुपए की शिक्षावृत्ति के अनुदान के लिए यह आवश्यक होगा कि शिक्षार्थी (फेलो) ने उसी परियोजना में कम से कम दो वर्षों तक काम किया हो और पी० एच० डी० के शोध-प्रबंध को जमा कर दिया हो। बढ़ी हुई 800 रुपयों की इस शिक्षावृत्ति के लिए शिक्षार्थी का हक़ उस दिन से माना जाएगा जिस दिन शोध-प्रबंध जमा किया जाता है। ऐसे शिक्षार्थी किसी आकस्मिक अनुदान के हक़दार न होंगे।

2. वर्तमान वरिष्ठ परियोजना शिक्षार्थी (सीनियर प्रोजेक्ट फेलो) का पदनाम बदल कर डाक्टरोत्तर परियोजना शिक्षार्थी (पोस्ट डॉक्टोरल प्रोजेक्ट फेलो) किया जाता है। उन्हें अब 900 रुपए प्रति माह की शिक्षावृत्ति बिना किसी आकस्मिक अनुदान के मिलेगी। शिक्षावृति का कार्यकाल परियोजना की समाप्ति तक बना रहेगा।

3. कनिष्ठ परियोजना शिक्षार्थी (जूनियर प्रोजेक्ट फेलो) और डाक्टरोत्तर परियोजना शिक्षार्थी का कुल कार्यकाल किसी भी दशा में साढ़े चार वर्षों से अधिक नहीं हो सकेगा।

वित्त समिति ने प्रशिक्षार्थियों की छह जगहों के सृजन की संस्तुति की। ये जगहें भारत में छह महीनों से अधिक के लिए न होंगी और प्रति प्रशिक्षार्थी/छात्र को प्रति माह 250 रुपयों का जेब खर्च दिए जाने का प्रावधान भी है।

जनसंख्या शिक्षा एकक में जो दफ्तरी नीचे लिखी मशीनें चलाता है, उसे प्रति माह 20 रुपए के मानदेय के अनुदान की संस्तुति वित्त समिति ने की :

(i) ओवरहेड प्रोजेक्टर, (ii) स्लाइड प्रोजेक्टर, (iii) स्कैनर (इलेक्ट्रिक स्टेंसिल कटर), (iv) प्लेन पेपर कॉपियर (फोटोस्टेट यूनिट) और (v) डुप्लीकेटर।

शिक्षण-साधन विभाग के प्रेक्षागृह (आडिटोरियम) को किराए पर देने के भाड़े की निम्नलिखित दरों के लिए वित्त समिति सहमत हो गई :

(i) फिल्में दिखाने के लिए—प्रति घंटा 150 रुपए। अतिरिक्त आधे घंटे का भाड़ा 75 रुपए। (ii) बैठकों के लिए—75 रुपए प्रति आधा घंटा।

नीचे लिखे पदों के नियमित सृजन प्रस्ताव को वित्त समिति मान गई :

(i) सम्पादक (हिन्दी) रु 1100-1600—एक।

(ii) सम्पादन सहायक (हिन्दी व अंग्रेजी दोनों में निष्णात) रु० 550—900—एक।

शैक्षिक अनुसंधान में लगे हुए संगठनों और व्यक्तियों को राष्ट्रीय परिषद् की आधार सामग्री प्रक्रियन सेवाओं को लेने के लिए नीचे लिखे शुल्कों की दरों से वित्त समिति सहमत हो गई :

(i) कार्डों की पंचिंग और वेरीफिकेशन—160 रुपए प्रति हजार कार्ड ।

(ii) कार्डों का खर्च – 40 रुपए प्रति हजार कार्ड ।

(iii) मैग्नेटिक टेपों का भाड़ा—25 रुपए प्रति टेप प्रति माह ।

(iv) प्रोग्रामिंग शुल्क—2665 रुपए प्रति प्रोग्राम प्रति माह ।

काम करने के पहले ही अनुमानित खर्च का 75 प्रतिशत जमा कराने के लिए एजेंसियों और व्यक्तियों को कहा जा सकता है ।

संस्थापन समिति

संस्थापन समिति की बैठकें 31 जनवरी 1983 और 22 फरवरी 1983 को हुईं ।

संस्थापन समिति ने उस एक-सदस्यीय समिति की रिपोर्ट पर विचार किया, जिसे कैडर रिव्यू और पदोन्नति की नीतियों की समीक्षा का काम सौंपा गया था । निश्चय किया गया कि यह पता लगाने के लिए कि निष्क्रियता किस स्तर पर कितना अवरोध उत्पन्न कर रही है, संयुक्त सचिव, वित्तीय सलाहकार और राष्ट्रीय परिषद् के सचिव द्वारा एक तथ्यात्मक विश्लेषण किया जाना चाहिए । इस विश्लेषण पर आधारित, कर्मचारियों को राहत देने वाले समुचित प्रस्तावों को संस्थापन समिति के पास परिषद् को भेजना चाहिए ।

भवन और निर्माण समिति

इस वर्ष इस समिति की कोई बैठक नहीं हुई ।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की सामान्य निकाय की वार्षिक बैठक

रा० शै० अ० और प्र० प० की सामान्य निकाय की वार्षिक बैठक शिक्षा राज्य मंत्री और परिषद् की अध्यक्षा श्रीमती शीला कौल की अध्यक्षता में 23 दिसम्बर 1982 को हुई ।

अपने उद्घाटन भाषण में परिषद् की अध्यक्षा ने शैक्षिक विकास की दिशा में अनेक महत्वपूर्ण पक्षों पर प्रकाश डालते हुए कहा कि शैक्षिक दृष्टि से उन्नत होने के लिए परिषद् को राज्य सरकारों और इस क्षेत्र के अन्य सम्बद्ध व्यक्तियों के साथ मिलकर काम करना चाहिए । विशेषकर लड़कियों और सुविधा-वंचित वर्गों की शिक्षा की ओर हमें ज्यादा ध्यान देना चाहिए । शिक्षा को मूल्योन्मुखी बनाने, अध्यापक-शिक्षा की वर्तमान गतिविधियों को

आलोचनात्मक दृष्टि से परखने, सामान्य स्कूलों में अपंगों की शिक्षा की व्यवस्था करने, और राष्ट्रीय एकीकरण की दृष्टि से पाठ्यपुस्तकों का मूल्यांकन करने की महत्ता की ओर उन्होंने सदस्यों का ध्यान आकर्षित किया। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् में उपलब्ध विशेषज्ञताओं की ओर ध्यान दिलाते हुए उन्होंने राज्य प्रतिनिधियों से कहा कि परिषद् की इन सुविधाओं का पूरा पूरा लाभ राज्यों को उठाना चाहिए। राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषदों तथा राज्य शिक्षा संस्थानों की भूमिका को बताते हुए उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि राज्य स्तर की इन संस्थाओं को अधिक व्यावहारिक और प्रभावी संस्थाओं के रूप में उभरना चाहिए, तभी राज्यों के शैक्षिक विकास के कार्य-क्रम जड़ें जमा सकेंगे और अभिनव परिवर्तनों को ला सकेंगे।

कार्यकारी समिति द्वारा प्रस्तुत सन 1981-82 की परिषद् की वार्षिक रिपोर्ट के मसौदे को सामान्य निकाय ने स्वीकृत कर दिया।

सामान्य निकाय ने परिषद् को सलाह दी कि लेखा परीक्षा रिपोर्ट के प्रस्तुतीकरण को बदला जाना चाहिए। इसे ऐसे टैबुलर रूप में होना चाहिए कि देखते ही उसकी विषय वस्तु स्पष्ट हो जाए। लेखा परीक्षा में उठाई गई आपत्तियों के समाधान के लिए क्या किया गया, इस बात का संकेत भी इसमें होना चाहिए।

विचार-विमर्श के दौरान सामान्य निकाय ने नीचे लिखे सुझाव दिए :

(क) स्कूलों में लड़कियों के नामांकन को बढ़ाने के लिए और भी ज्यादा काम किया जाना चाहिए। वे स्कूल जाना बन्द न करें, इसके लिए औपचारिक अथवा अनौपचारिक पद्धति से दृढ़ प्रयास करना चाहिए। इस दिशा में जहाँ भी जिस विधि से भी सफलता मिली है, वहाँ से ऐसी सच्ची घटनाओं को एकत्र कर लाना चाहिए और उन्हें राज्यों में प्रचारित-प्रसारित करवाना चाहिए।

(ख) नवाचार और अभिनव परिवर्तनों वाली परियोजनाओं की सूची बना कर परिषद् को उन्हें राज्यों में प्रसारित करना चाहिए ताकि राज्यों के शिक्षा विभाग उनसे लाभान्वित हो सकें।

(ग) शैक्षिक अनुसंधानों के सार तत्व को हर साल सम्पादित कर राज्यों को भेजा जाना चाहिए। वे राज्य उनका क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद करा कर अपने संस्थानों को भेज सकेंगे।

(घ) परिषद् द्वारा चलाई जा रही परियोजनाओं के बारे में बीच बीच में पुस्तिकाएँ छपती रहनी चाहिए, ताकि राज्य स्तर की संस्थाएँ उनसे लाभ उठा सकें।

(ङ) स्कूलों में योग-शिक्षा का क्या प्रभाव पड़ा है, यह जानने के लिए, एक अंतर-

संस्था दल बनाया जाना चाहिए जिसमें रा० शै० अ० और प्र० प० तथा केन्द्रीय विद्यालय संगठन के कर्मचारी हों।

(च) रा० शै० अ० और प्र० प० को अनौपचारिक शिक्षा के क्षेत्र में विविध प्रकार की विकासात्मक और शोधात्मक परियोजनाओं में लग जाना चाहिए। इस उद्देश्य के लिए राष्ट्रीय परिषद् प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय का सहयोग ले सकती है।

(छ) अपंग बच्चों की एकीकृत शिक्षा के लिए रा० शै० अ० और प्र० प० को विशेष प्रयत्न करने चाहिए।

सामान्य निकाय ने राष्ट्रीय परिषद् में एक अपंग शिक्षा प्रकोष्ठ के सृजन की सिफारिश की। इस प्रकोष्ठ का काम संसाधन सामग्री बनाना और अध्यापक शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करना तथा इस क्षेत्र में अनुसंधान-अध्ययन करवाना होगा।

जीवन मूल्यों की शिक्षा पर निकाय ने विशेष बल दिया ताकि बच्चों में अभीष्ट मूल्यों को अंकुरित करवाया जा सके। परिषद् को सलाह दी गई कि नैतिकता की शिक्षा के लिए पाठ्यपुस्तकें, सहायक पुस्तकें और पाठ्यचर्याओं के निर्माण के कार्य में तेजी लाई जानी चाहिए।

was. He distrusted their teachings, and was always anxious to explain objections to the old faith. The people of England as a body, too, had been much less antagonized by the exactions of the Roman Church and the immoral lives of the monks and Roman clergy; the new learning had awakened there somewhat less of a spirit of moral and religious reform; and the reformation movement of Luther, after a decade and a half, had roused no general interest. The change from the Roman Catholic faith to an independent English Church, when made, was in consequence much more nominal than had been the case in German lands. As a result the severance from Rome was largely carried out by the ruling classes, and the masses of the people were in no way deeply interested in it. The English National Church merely took over most of the functions formerly exercised by the Roman Church, in general the same priests remained in charge of the parish churches, and the church doctrines and church practices were not greatly altered by the change in allegiance. The changing of the service from Latin to English was perhaps the most important change. The English Church, in spirit and service, has in consequence retained the greatest resemblance to the Roman Catholic Church of any Protestant denomination. In particular, the Lutheran idea of personal responsibility for salvation, and hence the need of all being taught to read, made scarcely any impression in England.

By the time of Elizabeth (1558–1603) it had become a settled conviction with the English as a people that the provision of education was a matter for the Church, and was no business of the State, and this attitude continued until well into the nineteenth century. The English Church merely succeeded the Roman Church in the control of education, and now licensed the teachers (**R. 168**), took their oath of allegiance (**R. 167**), supervised prayers (**R. 169**) and the instruction, and became very strict as to conformity to the new faith (**Rs. 164–166**), while the schools, aside from the private tuition and endowed schools, continued to be maintained chiefly from religious sources, charitable funds, and tuition fees. Private tuition schools in time flourished, and the tutor in the home became the rule with families of means. The poorer people largely did without schooling, as they had done for centuries before. As a consequence, the educational results of the change in the headship of the Church relate almost entirely to grammar schools and to the universities, and not to elementary

education. The development of anything approaching a system of elementary schools for England was consequently left for the educational awakening of the latter half of the nineteenth century. When this finally came the development was due to political and economic, and not to religious causes.

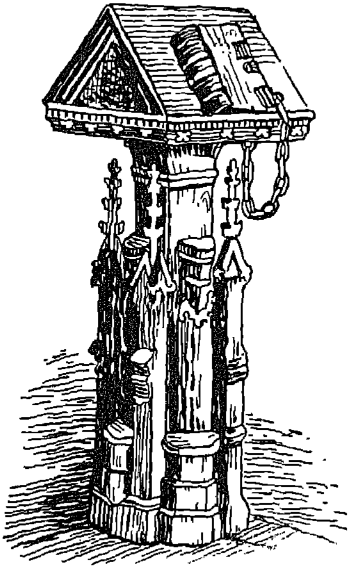

FIG. 97. A CHAINED BIBLE
(Redrawn from an old print showing a chained Bible in a church in York, England)

The English Act of Supremacy (R. 153), which severed England from Rome, had been passed by parliament in 1534. In 1536 an English Bible was issued to the churches,[1] the services were ordered conducted in English, and in 1549 the English Prayer Book, Psalter, and Catechism were put into use. In 1538 the English Bible was ordered chained in the churches,[2] that the people might read it (R. 170), and the people were ordered instructed in English in the Creed, the Lord's Prayer, and the Ten Commandments. The change of the service to English was perhaps the largest educational gain the masses of the people obtained as the result of the Reformation in England.[3]

Suppression of the monasteries and the founding of grammar schools. Between 1536 and 1539 the most striking result of the Reformation in England took place, — the dissolution of the monasteries. Their doubtful reputation enabled Henry and Par-

[1] This was in response to a petition to the King, nearly two years before. The King finally granted the request, "though maintaining that he was not compelled by God's Word to set forth the Scriptures in English, yet 'of his own liberality and goodness was and is pleased that his said loving subjects should have and read the same in convenient places and times.'" (Procter and Frere, *History of the Book of Common Prayer*, p. 30.)

[2] "The injunctions directed that 'a Bible of the largest volume in English' be set up in some convenient place in every church, where it might be read, only without noise, or disturbance of any public service, and without any disputation, or exposition." (*Ibid.*, p. 30.)

[3] The right to read the Bible was later revoked, during the closing years of Henry VIII's reign (d. 1547), by an act of Parliament, in 1543, which provided that "no woman (unless she be a noble or gentle woman), no artificers, apprentices, journeymen, servingmen, under the degree of yeomen . . . husbandmen, or laborers" should read or use any part of the Bible under pain of fines and imprisonment.

liament to confiscate their property, and "the dead hand of monasticism was removed from a third of the lands of England." There were precedents for this in pre-Reformation times, the church authorities themselves having converted several monastic foundations into grammar schools. At one blow Parliament now suppressed the monasteries of all England, some eight thousand monks and nuns were driven out, many of the monasteries, nunneries, and abbey churches were destroyed, and the monastic lands were forfeited to the Crown. It was a ruthless proceeding, though in the long course of history beneficial to the nation. Much of the land was given to influential followers of the king in return for their support, and a large part of the proceeds from sales was spent on coast defenses and a navy, though more than was formerly thought to be the case was used in refounding grammar schools. A number of the monasteries were converted into collegiate churches, with schools attached. Some of the almshouses and hospitals confiscated at the same time were similarly used, and the cathedral churches in nine English cities were taken from the monks (R. 171), who had driven out the regular clergy during the tenth to the twelfth centuries, and were refounded as cathedral church schools. The cathedral church school at Canterbury, which Henry refounded in 1541 as a humanistic grammar school, with a song school attached, and for the government of which he made detailed provisions (R. 172), is typical of a school which had fallen into bad repute (R. 171), and was later refounded as a result of the confiscation of the monastic property. The College of Christ Church at Oxford, and Trinity College at Cambridge, were also richly endowed from the monastic proceeds.

In 1546 another Act of Parliament vested the title of all chantry foundations, some two hundred in number, in the Crown that they might be "altered, changed, and amended to convert them to good and godly uses as in the erecting of grammar schools," but so pressing became the royal need for money that, after their sale, the intended endowments were never made. As the song schools had been established originally to train a few boys "to help a priest sing mass," and as the service was now to be read rather than sung, the need for choristers largely disappeared. Being regarded as nurseries of superstition, they were abandoned without regret.

Result of the Reformation in England. The result of the change in religious allegiance in England was a material decrease

in the number of places offering grammar-school advantages, though with a material improvement in the quality of the instruction provided, and a consequent decrease in the number of boys given free education in the refounded grammar schools. As for elementary education, the abolition of the song, chantry, and hospital schools took away most of the elementary schools which had once existed. The clerk of the parish usually replaced them by teaching a certain number of boys "to read English intelligently instead of Latin unintelligently," many new parish elementary schools were created, especially during the reign of Elizabeth, and in time the dame school, the charity school, the writing school, and apprenticeship training arose (chapter XVIII) and became regular English institutions. These types of schooling constituted almost all the elementary-school advantages provided in England until well into the eighteenth century.

The post-Reformation educational energy of England was given to the founding of grammar schools, and during the century and a half before the outbreak of the struggle with James II (1688) to put an end in England for all time to the late-mediæval theory of the divine right of kings, a total of 558 grammar schools were founded or refounded.[1]

The grammar schools thus founded were, one and all, grammar schools of the reformed humanistic type. What was to be taught in them was seldom mentioned in the foundation articles, as it was assumed that every one knew what a grammar school was, so well by this time had the humanistic type become established. They were one and all modeled after the instruction first provided in Saint Paul's School (p. 275) in London, and such modifications as had been sanctioned with time, and this continued to be the type of English secondary school instruction until well into the nineteenth century.

The dominating religious purpose. The religious conflicts following the reformation movement everywhere intensified religious prejudices and stimulated religious bigotry. This was soon

[1] These were, distributed by reigns, as follows:

Henry VIII	(1509-1547)	63 schools
Edward VI	(1547-1553)	50 "
Mary	(1553-1558)	19 "
Elizabeth	(1558-1603)	138 "
James I	(1603-1625)	
Charles I	(1625-1649)	142 "
Protectorate	(1649-1660)	
Charles II	(1660-1685)	
James II	(1685-1688)	146 "

reflected in the schools of all lands. In England, after the restoration under Catholic Mary (1553–58) and the final reëstablishment of the English Church under Elizabeth (1558), all school instruction became narrowly religious and English Protestant in type. By the middle of the seventeenth century the grammar schools had become nurseries of the faith, as well as very formal and disciplinary in character. In England, perhaps more than in any other Protestant country, Christianity came to be identified with a strict conformity to the teachings and practices of the Established Church, and to teach that particular faith became one of the particular missions of all types of schools. Bishops were instructed to hunt out schoolmasters who were unsound in the faith (**R. 164 a**), and teachers were deprived of their positions for nonconformity (**R. 164 b**). More effectively to handle the problem a series of laws were enacted, the result of which was to institute such an inquisitorial policy that the position of schoolmaster became almost intolerable. In 1580 a law (**R. 165**) imposed a fine of £10 on any one employing a schoolmaster of unsound faith, with disability and imprisonment for the schoolmaster so offending; in 1603 another law required a license from the bishop on the part of all schoolmasters as a condition precedent to teaching; in 1662 the obnoxious Act of Uniformity (**R. 166**) required every schoolmaster in any type of school, and all private tutors, to subscribe to a declaration that they would conform to the liturgy of the Church, as established by law, with fine and imprisonment for breaking the law; in 1665 the so-called "Five-Mile Act" forbade Dissenters to teach in any school, under penalty of a fine of £40; and in that same year bishops were instructed to see that

> the said schoolmasters, ushers, schoolmistresses, and instructors, or teachers of youth, publicly or privately, do themselves frequent the public prayers of the Church, and cause their scholars to do the same; and whether they appear well affected to the Government of his Majesty, and the doctrine and discipline of the Church of England.

This attitude also extended upward to the universities as well, where nonconformists were prohibited by law (1558) from receiving degrees, a condition not remedied until 1871 (**R. 305**). The great purpose of instruction came to be to support the authority and the rule of the Established Church, and the almost complete purpose of elementary instruction came to be to train pupils to read the Catechism, the Prayer Book, and the Bible.

This intense religious attitude in England was reflected in early colonial America, as we shall see in a following chapter.

The Poor-Law legislation, and its educational significance. After the thirteenth century, due in part to the rise of the wool industry in Flanders, England began to change from a farming to a sheep-raising country. Accompanying this decline in the importance of farming there had been a slow but gradual growth of trade and manufacturing in the cities, and to the cities the surplus of rural peasantry began to drift. The cost of living also increased rapidly after the fifteenth century. As a result there was a marked shifting of occupations, much unemployment, and a constantly increasing number of persons in need of poor-relief. In the time of Elizabeth (1558–1603) it has been estimated that one half the population of England did not have an income sufficient for sustenance, and great numbers of children were running about without proper food or care, and growing up in idleness and vice.

The situation, which had been growing worse for two centuries, culminated at the time of the Reformation when the religious houses, which had previously provided alms, were confiscated as a result of the reformation activities. The groundwork of the old system of religious charity was thus swept away, and the relation which had for so long existed between prayer and penance and almsgiving and charity was altered. The nation was thus forced to deal with the problem of poor-relief, and with the care of the children of the poor. In the place of the old system the people were forced, by circumstances, to develop a new conception of the State as a community of peoples bound together by community interest, good feeling, charity, and service.

As this new conception dawned on the English people, a series of laws were enacted which attempted to provide for the situation which had been created. These were progressive in character, and ranged over much of the sixteenth century. First the poor were restricted from begging, outside of certain specified limits. Next church collections and parish support for the poor were ordered (1553), and the people were to be urged to give. Then workhouses for the poor and their children, and materials with which to work, were ordered provided, and those persons of means who would not give freely were to be cited before the bishop first (R. 173), and the justices later, and if necessary forcibly assessed (1563). The next step was to permit the local authorities to

raise needed funds by strictly local taxation (1572). In 1601 the last step was taken, when the compulsory taxation of all persons of property was ordered to provide the necessary poor-relief, and the excessive burdens of one parish were to be shared by neighboring parishes. Thus, after a long period of slowly evolving legislation (R. 173), the English Poor-Law of 1601 (R. 174) finally gave expression to the following principles:

1. The compulsory care of the poor, as an obligation of the State.
2. The compulsory apprenticeship of the children of the poor, male and female, to learn a useful trade.
3. The obligation of the master to train his apprentices in a trade.
4. The obligation of the overseers of the poor to supply, where necessary, the opportunity and the materials for such training of the children of the poor.
5. The compulsory taxation of all persons of property to provide the necessary funds for such a purpose, and without reference to any benefits derived from the taxation.
6. The excessive burdens of any one parish to be pooled throughout the hundred or county.

In this compulsory apprenticeship of the children of the poor, with the obligation imposed that such children must be trained in a trade and in proper living, with general taxation of those of property to provide workhouses and materials for such a purpose, we have the germ, among English-speaking peoples, of the idea of the general taxation of all persons by the State to provide schools for the children of the State. The apprenticing of the children of the poor to labor and the requirement that they be taught the elements of religion soon became a fixed English practice (R. 217), and in the seventeenth century this idea was carried to the American colonies and firmly established there. It was on the foundations of the English Poor-Law of 1601, above stated, that the first Massachusetts law relating to the schooling of all children (1642) was framed (R. 190), but with the significant Calvinistic addition that:

7. "In euery towne ye chosen men" shall see that parents and masters not only train their children in learning and labor, but also "to read & understand the principles of religion & the capitall lawes of this country," with power to impose fines on such as refuse to render accounts concerning their children.

QUESTIONS FOR DISCUSSION

1. Why is progress that is substantial nearly always a product of slow rather than rapid evolution?
2. Show why the evolution of many Protestant sects was a natural consequence of the position assumed by Luther. What is the ultimate outcome of the process?
3. Why was it not important that more than a few be educated under the older theory of salvation?
4. Show how modern democratic government was a natural consequence of the Protestant position.
5. Why was universal education involved as a later but ultimate consequence of the position taken by the Protestants?
6. Explain why the local Church authorities, before 1520, tried so hard to prevent the establishment of vernacular schools.
7. Explain why the religious discussions of the Reformation should have so strongly stimulated a desire to read.
8. Explain the fixing in character of the German, French, and English languages by a single book. What had fixed the Italian?
9. Was Luther probably right when he wrote, in 1524, that the schools "were deteriorating throughout Germany"? Why?
10. Give reasons why Luther's appeals for schools were not more fruitful.
11. What was the significance of the position of Luther for the future education of girls?
12. Was Luther's idea that a clergyman should have had some experience as a teacher a good one, or not? Why?
13. How do you explain Luther's ideas as to coupling up elementary and trade education in his primary schools?
14. Point out the similarity of Luther's scheme for a school system with the German school system as finally evolved (Figure 96).
15. Show how Melanchthon's Saxony Plan differed from Luther's ideas. For the times was it a more practical plan? Why?
16. Explain why the Lutheran idea of personal responsibility for salvation made so little headway in England, and show that the natural educational consequences of this resulted.
17. Show what different conditions were likely to follow, in later centuries, from the different stands taken as to the relation of the State and Church to education by the German people by the middle of the sixteenth century, and by the English at the time of Elizabeth.
18. Compare the origin of the vernacular elementary-school teacher in Germany and England.
19. Leach estimates that, in 1546, there were approximately three hundred grammar schools in England for a total population of approximately two and one half millions. About what opportunities for grammar-school education did this afford?

SELECTED READINGS

In the accompanying *Book of Readings* the following selections are reproduced:

154. Rashdall: Diffusion of Education in Mediæval Times.
155. Times: The Vernacular Style of the Translation of the Bible.
156. Luther: To the Mayors and Magistrates of Germany.
157. Luther: Dignity and Importance of the Teacher's Work.

158. Luther: On the Duty of Compelling School Attendance.
159. Hamburg: An Example of a Lutheran *Kirchenordnung.*
160. Brieg: An Example of a Lutheran *Schuleordnung.*
161. Melanchthon: The Saxony School Plan.
162. Raumer: The School System Established in Würtemberg.
163. Duke Ernest: The *Schulemethodus* for Gotha.
164. Strype: The Supervision of a Teacher's Acts and Religious Beliefs in England.
    (*a*) Letter of Queen's Council on.
    (*b*) Dismissal of a Teacher for non-conformity.
165. Elizabeth: Penalties on Non-conforming Schoolmasters.
166. Statutes: English Act of Uniformity of 1662.
167. Carlisle: Oath of a Grammar School Master.
168. Strype: An English Elementary-School Teacher's License.
169. Cowper: Grammar School Statutes regarding Prayers.
170. Green: Effect of the Translation of the Bible into English.
171. Old MS.: Ignorance of the Monks at Canterbury and Messenden.
172. Parker: Refounding of the Cathedral School at Canterbury.
173. Nicholls: Origin of the English Poor-Law of 1601.
174. Statutes: The English Poor Law of 1601.

QUESTIONS ON THE READINGS

1. From the selection from Rashdall (154), what do you infer as to the effect of the Reformation on the schools? What kind of schools does Rashdall describe as existing?
2. Contrast the vernacular style of the Bible (155) with the Ciceronian.
3. Characterize the three extracts (156–58) from Luther.
4. How advanced was the ground taken by Luther (158)? Would we accept the logic of his argument to-day?
5. Just what do the Hamburg (159) and Brieg (160) *Ordnungen* indicate?
6. Compare Melanchthon's Saxony Plan (161) with Sturm's (137) and the French Collège de Guyenne (136), and grade the three in order of importance.
7. Show the close similarity of the Würtemberg plan of 1559–65 (162) and a modern German state school system.
8. How advanced for the time was the work of Duke Ernest of Gotha (163)?
9. What kind of a school attitude is indicated by the close supervision of English teachers, as described in 164 and 165?
10. What would be the natural effect on the teaching occupation of such legislation as the Act of Uniformity (166)?
11. Compare the form of license of an elementary teacher (168) with a modern form. What have we added and omitted?
12. What do the statutes regarding prayers (169) indicate as to the nature of the grammar schools of the time?
13. Characterize the educational importance of the translations of the Bible into the native tongues (170).
14. What are the marked features of the refounding act (172) for Canterbury cathedral school? What improvements are indicated?
15. State the steps in the development (173) of the English Poor-Law of 1601, just what the law provided for (174), and just what elements necessary to the creation of a state school system were incorporated into it.

SUPPLEMENTARY REFERENCES

*Adams, G. B. *Civilization during the Middle Ages.*
Barnard, Henry. *German Teachers and Educators.*
Francke, Kuno. *Social Forces in German Literature.*
*Good, Harry E. "The Position of Luther upon Education," in *School and Society*, vol. 6, pp. 511–18 (Nov. 3, 1917).
*Montmorency, J. E. G. de. *State Intervention in English Education.*
*Montmorency, J. E. G. de. *The Progress of Education in England.*
Painter, F. V. N. *Luther on Education.*
Paulsen, Fr. *German Education.*
Richard, J. W. *Philipp Melanchthon, the Protestant Preceptor of Germany.*
Woodward, W. H. *Education during the Renaissance.*

CHAPTER XIV

EDUCATIONAL RESULTS OF THE PROTESTANT REVOLTS

II. AMONG CALVINISTS AND CATHOLICS

3. *Educational work of the Calvinists*

The organizing work of Calvin. From the point of view of American educational history the most important developments in connection with the Reformation were those arising from Calvinism. While the Calvinistic faith was rather grim and forbidding, viewed from the modern standpoint, the Calvinists everywhere had a program for political, economic, and social progress which has left a deep impress on the history of mankind. This program demanded the education of all, and in the countries where Calvinism became dominant the leaders included general education in their scheme of religious, political, and social reform.[1] In the governmental program which Calvin drew up (1537) for the religious republic at Geneva (p. 298), he held that learning was "a public necessity to secure good political administration, sustain the Church unharmed, and maintain humanity among men."

In his plan for the schools of Geneva, published in 1538, he outlined a system of elementary education in the vernacular for all, which involved instruction in reading, writing, arithmetic, religion, careful grammatical drill, and training for civil as well as for ecclesiastical leadership. In his plan of 1541 he upholds the principle, as had Luther, that "the liberal arts and good training are aids to a full knowledge of the Word." This involved the organization of secondary schools, or *colleges* as he called them,

[1] "These Calvinists had a common program of broad scope — not merely doctrinal, but also political, economic, and social. Their common program and their social ideals demanded education of all as instruments of Providence for church and commonwealth. Their industrious habits and productive economic life provided funds for education. Their representative institutions in both church and commonwealth not only necessitated general diffusion of knowledge, but furnished the organization necessary for founding, supervising, and maintaining, in wholesome touch with the common man, both elementary and higher institutions of learning. Their disciplined and responsive conscience, their consequent intensity of moral conviction and spirit of self-sacrifice for the common weal, compelled them to realize, in concrete and permanent form, their ideals of college and common school." (Foster, H. D., In Monroe's *Cyclopedia of Education*, vol. 1, p. 499.)

following the French nomenclature, to prepare leaders for the ministry and the civil government through "instruction in the languages and humane science." In the colleges (secondary schools) which he organized at Geneva and in neighboring places to give such training, and which became models of their kind which were widely copied, the usual humanistic curriculum was combined with intensive religious instruction. These colleges became famous as institutions from which learned men came forth. The course of study in the seven classes of one of the Geneva colleges, which has been preserved for us, reveals the nature of the instruction (**R. 175**). The lowest class began with the letters, reading was taught from a French-Latin Catechism, and the usual Latin authors were read. Greek was begun in the fourth class, and, in addition to the usual Greek authors, the New Testament was read in Greek. In the higher classes, as was common also in German *gymnasia*, logic and rhetoric were taught to prepare pupils to analyze, argue, and defend the faith. Elocution was also given much importance in the upper classes as preparation for the ministry, two original orations being required each month. Psalms were sung, prayers offered, sermons preached and questioned on, and the Bible carefully studied. The men who went forth from the colleges of Geneva to teach and to preach the Calvinistic gospel were numbered by the hundreds.[1]

Calvin's great educational work at Geneva has been well summarized by a recent writer,[2] as follows:

> The strenuous moral training of the Genevese was an essential part of Calvin's work as an educator. All were trained to respect and obey laws, based upon Scripture, but enacted and enforced by representatives of the people, and without respect of persons. How fully the training of children, not merely in sound learning and doctrine, but also in manners, "good morals," and common sense was carried out is pictured in the delightful human *Colloquies* of Calvin's old teacher, Corderius (once a teacher at the College of Guyenne, p. 269), whom he twice established at Geneva. . . .
>
> Calvin's memorials to the Genevan magistrates, his drafts for civil law and municipal administration, his correspondence with reformers and statesmen, his epoch-making defense of interest taking, his growing tendency toward civil, religious, and economic liberty, his development of primary and university education, his intimate knowledge of the dialect and ways of thought of the common people of Geneva, and his

---

[1] In 1625 a list of the famous men of the city of Louvain, in Belgium, was printed. More than one fourth of those listed had studied in the colleges of Geneva.

[2] Foster, H. D., Monroe's *Cyclopedia of Education*, vol. 1, p. 401.

broad understanding of European princes, diplomats, and politics mark him out as a great political, economic, and educational as well as a religious reformer, a constructive social genius capable of reorganizing and moulding the whole life of a people.

The world owes much to the constructive, statesman-like genius of Calvin and those who followed him, and we in America probably most of all. Geneva became a refuge for the persecuted Protestants from other lands, and through such influences the ideas of Calvin spread to the Huguenots in France, the Walloons

FIG. 98. A FRENCH SCHOOL OF THE SEVENTEENTH CENTURY
(From an old woodcut by Abraham Bosse, 1611–78)

of the Dutch and Belgian Netherlands, the Germans in the Palatinate, the Presbyterians of Scotland, the Puritans in England, and later to the American colonies.

Calvinism in other lands. The great educational work done by the Calvinists in France, in the face of heavy persecution, deserves to be ranked with that of the Lutherans in Germany in its importance. Had the Calvinists had the same opportunity for free development the Lutherans had, and especially their state support, there can be little doubt that their work would have greatly exceeded the Lutherans in importance and influence on the future history of mankind. Beginning with one church in 1538, they had 2150 churches by 1561, when the severe persecutions and religious wars began.

True to the Calvinistic teaching of putting principles into practice, they organized an extensive system of schools, extending from elementary education for all, through secondary schools or colleges, up to eight Huguenot universities. As a people they were thrifty and capable of making great sacrifices to carry out their educational ideals. The education they provided was not only religious but civil; not only intellectual but moral, social, and economic. Education was for all, rich and poor alike. Their synods made liberal appropriations for the universities, while municipalities provided for colleges and elementary education. They emphasized, in the lower schools, the study of the vernacular and arithmetic, and in the colleges Greek and the New Testament. The long list of famous teachers found in their universities reveals the character of their instruction. Foster has well summarized the distinguishing characteristics of Huguenot education in France, before they were driven from the land, as follows: [1]

> The significant characteristics of Huguenot education were: an emphasis on the education of the laity; training for "the republic" and "society" as well as for the Church; insistence upon virtue as well as knowledge; the wide-spread demand for education, and a view of it as essential to liberty of conscience; a comprehensive working system of elementary, collegiate, and university training for all, poor as well as rich; an astonishing familiarity with Scripture, even among the lowest classes; utilization of representative church organization for founding, supporting, and unifying education; readiness to sacrifice for education, a spirit of carrying a thing through at any cost; business-like supervision of money, and systematic supervision of both professors and students; a notable emphasis on vernacular, arithmetic, Greek, use of full texts, and libraries; and finally a progressive spirit of inquiry and investigation.

In the Palatinate (see map, Figure 88) some progress in founding churches and schools was made, especially about Strassburg, and the universities of Heidelberg and Marburg became the centers of Huguenot teaching. In the Dutch Netherlands, and in that part of the Belgian Netherlands inhabited by the Walloons, Calvinist ideas as to education dominated. The universities of Leyden (f. 1575), Groningen (f. 1614), Amsterdam (f. 1630), and Utrecht (f. 1636) were Calvinistic, and closely in touch with the Calvinists and Huguenots of German lands and France. Popular education was looked after among these people as it was in

[1] In Monroe's *Cyclopedia of Education*, vol. 1, p. 498.

Calvinistic France and Geneva. The Church Synod of The Hague (1586) ordered the establishment of schools in the cities, and in 1618 the Great Synod held at Dort (R. 176) ordered that:

> Schools in which the young shall be properly instructed in piety and fundamentals of Christian doctrine shall be instituted not only in cities, but also in towns and country places where heretofore none have existed. The Christian magistracy shall be requested that honorable stipends be provided for teachers, and that well-qualified persons may be employed and enabled to devote themselves to that function; and especially that the children of the poor may be gratuitously instructed by them and not be excluded from the benefits of schools.

Further provisions were made as to the certificating of schoolmasters, and the pastors were made superintendents of the schools, to visit, examine, encourage, advise, and report (R. 176). Provision for the free education of the poor became common, and elementary education was made accessible to all. The careful provision for education made by the province of Utrecht (1590, 1612) (R. 178) was typical of Dutch activity. The province of Drenthe ordered (1630) a school tax paid for all children over seven, whether attending school or not. The province of Overyssel levied (1666) a school tax for all children from eight to twelve years of age. The province of Groningen constituted the pastors the attendance officers to see that the children got to school. Amsterdam and many other Dutch cities demanded an examination of all teachers before being licensed to teach. By the middle of the seventeenth century a good system of schools

FIG. 99. A DUTCH VILLAGE SCHOOL
(After a painting by Adrian Ostade, dated 1662, now in the Louvre, at Paris)

seems to have been provided generally[1] by the Dutch and the Belgian Walloons (R. 178). That the teaching of religion was the main function of the Dutch elementary schools, as of all other vernacular schools of the time, is seen from the official lists of the textbooks used (R. 178).

John Knox, the leader of the Scottish Reformation (1560), who had spent some time at Geneva and who was deeply impressed by the Calvinistic religious-state found there, introduced the Calvinistic religious and educational ideas into Scotland. His *Book of Discipline for the Scottish Church* (1560), framed closely on the Genevan model, contained a chapter devoted to education in which he proposed:

> That everie severall churche have a schoolmaister appointed, such a one as is able at least to teach Grammar and the Latin tung, yf the Town be of any reputation. Yf it be upaland . . . then must either the Reider or the Minister take cayre over the children . . . to instruct them in their first rudementie and especially in the catechisme.

FIG. 100. JOHN KNOX (1505?–72)

The educational plan proposed by Knox would have called for a large expenditure of money, and this the thrifty Scotch were not ready for. Knox and his followers then proposed to endow the new schools from the old church and monastic foundations, but the Scottish nobles hoped to share in these, as had the English nobility under Henry VIII, and Knox's plan was not approved. This delayed the establishment of a real national system of education for Scotland until the nineteenth century. The new Church, however, took over the superintendence of education in Scotland, and when parish schools were finally established by decree of the Privy Council, in 1616, and by the legislation of 1633 and 1646 (R. 179), the Church was given an important share in their organization and management. These schools, while not always sufficient in number to meet the educational needs, were well taught, and have deeply influenced the national character.

[1] "That public schools abounded throughout the Netherlands is evident. Every study of the archives of town or province discloses their presence. The minutes of every religious body bear overwhelming testimony not only to the existence of schools, but also a zealous interest in their maintenance." (Kilpatrick, W. H. *Dutch Schools of New Netherlands*, p. 37.)

4. *The Counter-Reformation of the Catholics*

The Jesuit Order. The Protestant Revolt made but little headway in Italy, Spain, Portugal, much of France, or southern Belgium (see map, p. 296). Italy was scarcely disturbed at all, while in France, where of all these countries the reform ideas had made greatest progress, nine tenths of the people remained loyal to Rome. In a general way it may be stated that those parts of western Europe which had once formed an integral part of the old Roman Empire remained loyal to the Roman Church, while those which had been the homes of the Germanic tribes revolted. Now it naturally happened that the countries which remained loyal to the old Church experienced none of the feelings of the necessity for education as a means to personal salvation which the Lutherans and Calvinists felt. There, too, the church system of education which had developed during the long Middle Ages remained undisturbed and largely unchanged. The Church as an institution, though, learned from the Protestants the value of education as a means to larger ends, and soon set about using it.[1]

After the Church Council of Trent (1545–63), where definite church reform measures were carried through (p. 303), the Catholics inaugurated what has since been called a counter-reformation, in an effort to hold lands which were still loyal and to win back lands which had been lost. Besides reforming the practices and outward lives of the churchmen, and reforming some church practices and methods, the Church inaugurated a campaign of educational propaganda. In this last the chief reliance was upon a new and a very useful organization officially known as the "Society of Jesus," but more commonly called the "Jesuit Order." This had been founded, in 1534, by a Spanish knight, pilgrim, man of large ideas, and scholar by the name of Ignatius Loyola, and had been sanctioned as an Order of the Church by Pope Paul III, in 1540. It was organized along strictly military lines, all members being responsible to its General, and he in turn alone to the Pope. The quiet life of the cloister was abandoned for a life

[1] For long the Church had had the Inquisition, but, while it had rendered loyal and iniquitous service, the results had been in no way commensurate with the bitter hatred which its work awakened. Excommunication, persecution, imprisonment, the stake, and the sword had been tried extensively, but with only partial success. In education the reformers had shown the Church a new method, which was positive and effective and did not awaken opposition, and from the reformer's zeal for Latin grammar schools to provide an intelligent ministry the Church took its cue of establishing schools to train its future leaders. It was a long-headed and far-sighted plan, and its success was proportionately large.

of open warfare under a military discipline. The Jesuit was to live in the world, and all peculiarities of dress or rule which might prove an obstacle to worldly success were suppressed. The purposes of the Order were to combat heresy, to advance the interests of the Church, and to strengthen the authority of the Papacy. Its motto was *Omnia ad Majorem Dei Gloriam* (that is, All for the greater glory of God), and the means to be employed by it to accomplish these ends were the pulpit, the confessional, the mission, and the school. Of these the school was given the place of first importance. Realizing clearly that the real cause of the Reformation had been the ignorance, neglect, and vicious lives of so many monks and priests and the extortion and neglect practiced by the Church, and that the chief difficulty was in the higher places of authority, it became the prime principle of the Order to live upright and industrious lives themselves, and to try to reach and train those likely to be the future leaders in Church and State. With the education of the masses of the people the Order was not concerned.[1] Our interest lies only with the educational work of this Order, a work in which it was remarkably successful and through which it exercised a very large influence.

FIG. 101. IGNATIUS DE LOYOLA (1491–1556)

Great success of the Order. The service of the Order to the Church in combating Protestant heresies was very marked. Beginning in a small way, the Order, by 1600, had established two hundred colleges (Latin secondary schools), universities, and training seminaries; by 1640, 372; by 1706 (150 years after the death of its founder), 769; and by 1756, 728. In 1773, when the Order was for a time abolished,[2] after it had been driven out of a

[1] This is not true of their missions in foreign lands, where the mission priests usually gave elementary instruction. Elementary schools were maintained in the Jesuit missions of North and South America. Thus a mission school was established at Quebec as early as 1635, and one at Newtown, in Catholic Maryland, in 1640. After 1740 elementary parish schools were opened by the Jesuits among the German Catholics in Pennsylvania. From these beginnings Catholic parish schools have been developed in the United States.

[2] The Order was reëstablished in 1814 and it has since been allowed to reëstablish itself in most countries, though not in France or Germany. There are 41 Jesuit colleges in America, in 21 states. (For list see Monroe's *Cyclopedia of Education* vol. III, p. 540.) In the revision of its course of instruction, in 1832, modern studies were added, but the Society has never played any such conspicuous part in education since its reëstablishment as it did during the seventeenth and eighteenth centuries.

number of European countries because of the unscrupulous methods it adopted and the continual application of its doctrine that the end justifies the means, the Order had 22,589 members, about half of whom were teachers. Its colleges (secondary schools) and universities were most numerous and its work most energetically carried on in northern France, Belgium, Holland, the German States, Austria, Poland, and Hungary. Here was the great battle line, and here the Jesuits deeply entrenched themselves. In these portions of Europe alone there were, in 1750, 217 colleges, 55 seminaries, 24 houses for novitiates, and 160 missions. In France alone there were 92 colleges. They did much, single-handed, to roll back the tide of Protestantism which had advanced over half of western Europe, and to hold other countries true to the ancient faith.

The colleges were usually large and well-supported institutions with dormitories, classrooms, dining-halls, and play-grounds. The usual number of scholars in each was about 300, though some had an attendance of 600 to 800, and a few as high as 2000. At their period of maximum influence the colleges and universities of the Order probably enrolled a total of 200,000 students. Their graduates were prominent in every scholarly and governmental activity of the time. As far as possible the pupils were a selected class to whom the Order offered free instruction. The children of the nobility and gentry, and the brightest and most promising youths of the different lands were drawn into their schools. The children of many Protestants, also, were attracted by the high quality of the instruction offered. There they were given the best secondary-school education of the time, and received, at an impressionable age, the peculiar Jesuit stamp.[1] Bacon gave his opinion as to the success of their instruction in the following sentence: "As for the pedagogical part, the shortest rule would be, Consult the schools of the Jesuits; for nothing better has been put in practice." (*De Augmentis*, VI, 4.)[2]

[1] It is an interesting speculation as to whether the fact that the Jesuits made such headway in German lands, and so deeply impressed their training on the children of the nobility there, had any connection with the attitude of German and Austrian political leaders in their governmental and political policies up to the time of the World War.

[2] By the middle of the eighteenth century the Jesuits had lost much of their former vigor, and their colleges their former large influence. They had become powerful and arrogant, mixed deeply in political intrigues, quarreled with any one who crossed their path, and refused to change their instruction to meet new intellectual needs. They were finally driven from France, Spain, Portugal, and German lands, and were ultimately abolished as an Order.

Success of the Jesuit schools. Displaying a genius for organization worthy of Rome, Loyola and his followers absorbed the best educational ideas of the time as to school organization and management and curriculum, and incorporated these into their educational plan. Too practical to make many changes, but with a keen eye for what was best, they accepted the best and used it much as others had worked it out. From the municipal college of Guyenne (p. 269), the colleges of Calvin (p. 331), and Sturm's organization at Strassburg (p. 273), they adopted the plan of class organization, with a teacher for each class. From the Calvinists they obtained the idea of the careful supervision of instruction, which was worked out in the Prefect of Studies for their colleges. In their course of study they incorporated the Ciceronian ideal of the humanistic learning, and as careful religious instruction as was provided by any of the reformers. From the Italian court schools they took the idea of physical training. The method of instruction and classroom management which they worked out was detailed, practical, and for their purposes excellent. The reasons for their educational work gave them a clearly defined aim and purpose. The military brotherhood type of organization, the lifetime of celibate service, and the opportunity to sort the carefully selected members according to their ability for service in the different lines of the Order gave them the best-selected teaching force in Europe, and these men they trained for the teaching service with a thoroughness unknown before and seldom equaled since. Knowing why they were at work and what ends they should achieve, intolerant of opposition, intensely practical in all their work, and possessed of an indefatigable zeal in the accomplishment of their purpose, they gave Europe in general and northern continental Europe in particular a system of secondary schools and universities possessed of a high degree of effectiveness, which, combined with religious warfare and persecution, in time drove out or dwarfed all competing institutions in the countries they were able to control.

That their educational system, viewed from a modern liberal-education standpoint, equaled in effectiveness for liberal-education ends such institutions as the court schools of Vittorino da Feltre, Battista da Guarino, or other Italian humanistic educators of the Renaissance (p. 267); the French and Swiss colleges of Calvin (p. 331); Colet's school at Saint Paul's (p. 275), and the better English grammar schools; or the schools of the Brethren of the

Common Life in the Netherlands (p. 271); would hardly be contended for to-day. Such, though, was not their purpose. To proselyte for the Church rather than to liberalize — from their point of view there had been too much liberalizing already — was their ultimate aim, and their educational work was organized to suppress rather than to awaken more Protestant heresy. The work of this Order was so successful, and for two centuries so dominated secondary and higher education in Europe, that it will pay us to examine a little more closely their educational organization to see more fully the reasons for their large success. In so doing we will examine three points — their school organization, their methods of instruction, and the training of their teachers.

Jesuit school organization. Each college was presided over by a *Rector*, who was in effect the president of the institution, and a *Prefect of Studies*, who was the superintendent of instruction. Below these were the *Professors* or teachers, the *House Prefect*, the official disciplinarian of the institution, known as the *Corrector*, the monitors, and the students. There were two classes of students, *interns* and *externs*. Their schools were divided into two courses. The *studia inferiora*, or lower school, which covered the six years from ten to twelve years of age up to sixteen to eighteen; and the *studia superiora*, which followed, and included the higher college and university courses, with philosophy and theology as the important subjects. For the whole, there was a very carefully worked-out manual of instruction (R. 180) known as the *Ratio Studiorum*.[1]

The boy entering a Jesuit college was supposed to have previously learned how to read Latin. The first three years were given to learning Latin grammar and a little Greek. In the fourth year Latin and Greek authors were begun, and in the fifth and sixth years a rhetorical study of the Latin authors was made. Latin was the language of the classroom and the playground as well, the mother tongue being used only by permission. Greek was studied through the medium of the Latin. The retention of Latin as the language of all scholarly and political intercourse, and the cultivation of the style and speech of Cicero as the standard of purity and elegance, were the ends aimed at. Careful at-

[1] The care with which the *Ratio Studiorum* was worked out is typical of the thoroughness of the Order. A preliminary outline of work was followed for many years, the whole being experimental. Reports on it were made, and finally a preliminary *Ratio* was issued, in 1586. This was again revised and cast into final form, in 1599. In this form it remained until 1832, when some modern studies were added.

PLATE 8. MAP SHOWING THE SPREAD OF JESUIT SCHOOLS IN NORTHERN TERRITORY BY THE YEAR 1725

(After Pachtler, v, 524)

SCALE OF MILES: 0, 50, 100, 200, 300

⊙ Academies. ○ Colleges. K. Konvikt. • Residences or Missions. S. Seminaries.

I	FLANDREAU-BELGIAN PROVINCE	V	UPPER GERMAN PROVINCE	IX	RUSSIAN PROVINCE (LITTAU)
II	GALLO-BELGIAN PROVINCE	VI	BOHEMIAN PROVINCE	X	ENGLISH PROVINCE
III	LOWER RHINE PROVINCE	VII	AUSTRIAN PROVINCE	XI	SCOTTISH PROVINCE
IV	UPPER RHINE PROVINCE	VIII	POLISH PROVINCE	XII	IRISH PROVINCE

▫ Cities without Academies

NAME OF THE PROVINCE	NUMBER OF			
	MEMBERS	ACAD. & COL.	RES.	SEM.
I FLANDREAU-BELGIAN PROVINCE	550	20	1	1
II GALLO-BELGIAN PROVINCE	403	20	2	2
III LOWER RHINE PROVINCE	781	19	7	2
IV UPPER RHINE PROVINCE	430	16	0	1
V UPPER GERMAN PROVINCE	981	27	7	12
VI BOHEMIAN PROVINCE	1,330	28	13	28
VII AUSTRIAN PROVINCE	1,508	31	23	31
VIII POLISH PROVINCE	874	24	7	6
IX RUSSIAN PROVINCE (LITTAU)	830	23	7	5
X ENGLISH PROVINCE	?	12	6	2
TOTALS	7,765+	220	70	90

tention was given to the health and sports of the pupils, and special regard was paid to moral and religious training.

Following this lower school of six years came the so-called philosophical course of three years (sometimes two). The study of the Latin classics and rhetoric was continued, and dialectics (logic) and some metaphysics were added. The nine years together covered about the same scope as Sturm's school (**R. 137**) at Strassburg (p. 273), but was more formal in character and partook more of the nature of the later formalized humanistic schools. Slight variations were allowed in places, to meet particular local needs, but this course of study remained practically unchanged until 1832, when some history, geography, and elementary mathematics and science were added to the lower schools, and advanced mathematics and science to the philosophical course. In 1906 each Province of the Order was permitted to change the *Ratio* further, if necessary to adjust it better to local needs. Above the philosophical course a course of four or six years in philosophy and theology prepared for the higher work of the Order, the four-year course for preaching and the six-year course for teaching.

Jesuit school methods. The characteristic method of the schools was oral, with a consequent closeness of contact of teacher and pupils. This closeness of contact and sympathy was further retained by the system whereby all punishment was given by the official Corrector of the institution. Their method, like that of the modern German *Volkschule*, was distinctly a teaching and not a questioning method. The teacher planned and gave the instruction; the pupils received it. In the upper classes the teacher explained the general meaning of the entire passage; then the construction of each part; then gave the historical, geographical, and archæological information needed further to explain the passage; then called attention to the rhetorical and poetical forms and rules; then compared the style with that of other writers; and finally drew the moral lesson. The memory was drilled; but little training of the judgment or understanding was given. Thoroughness, memory drills, and the disciplinary value of studies were foundation stones in the Jesuit's educational theory. Repetition, they said, was the mother of memory. Each day the work of the previous day was reviewed, and there were further reviews at the end of each week, month, and year.

To retain the interest of the pupils amid such a load of memoriz-

ing various school devices were resorted to, chief among which were prizes, ranks, emulations, rivals, and public disputations. The system of rivals, whereby each boy had an opponent constantly after him, as shown in Figure 102, was one of the peculiar features of their schools. While the schools were said to have been made pleasant and attractive, the idea of the absolute au-

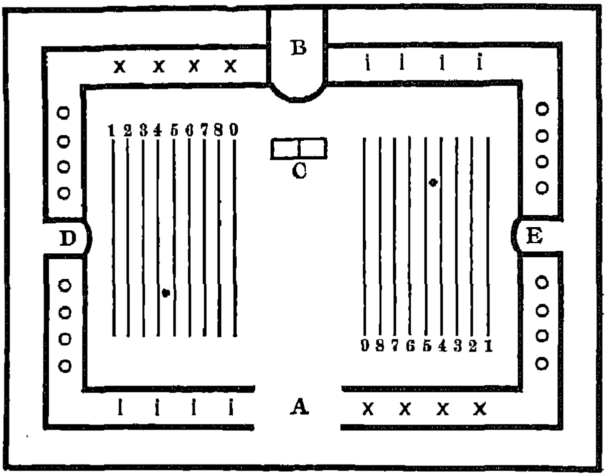

FIG. 102. PLAN OF A JESUIT SCHOOLROOM

The pupils were arranged in equal numbers in opposite rows, known as *decuriæ*, and designated by the numbers. Each boy in each row had a "rival" in the similarly numbered opposite row (one pair is designated by dots), who rose whenever he was called on to recite, and who tried to correct him in some error. A monitor for each group sat at *C*, and the regular teacher at *B*. *A*, *D*, *E*, *i*, *o*, and *x* represent various student officials.

thority of the Church which they represented pervaded them and repressed the development of that individuality which the court schools of the Italian Renaissance, the schools of the northern humanists, and the Calvinistic colleges had tried particularly to foster. This, however, is a criticism made from a modern point of view. That the school represented well the spirit of the times is indicated by their marked success as teaching institutions.

Training of the Jesuit teacher. The newest and the most distinguishing feature of the Jesuit educational scheme, as well as the most important, was the care with which they selected and the thoroughness with which they trained their teachers. To begin with, every Jesuit was a picked man, and of those who entered the Order only the best were selected for teaching. Each entered

the Order for life, was vowed to celibacy, poverty, chastity, uprightness of life, and absolute obedience to the commands of the Order. The six-year inferior course had to be completed, which required that the boy be sixteen to eighteen years of age before he could take the preliminary steps toward joining the Order. Then a two-year novitiate, away from the world, followed. This was a trial of his real character, his weak points were noted, and his will and determination tested. Many were dismissed before the end of the novitiate. If retained and accepted, he took the preliminary vows and entered the philosophical course of study. On completing this he was from twenty-one to twenty-three years of age. He was now assigned to teach boys in the inferior classes of some college, and might remain there. If destined for higher work he taught in the inferior classes for two or three years, and then entered the theological course at some Jesuit university. This required four years for those headed for the ministry, and six for those who were being trained for professorships in the colleges. On completing this course the final vows were taken, at an age of from twenty-nine to thirty-two. The training to-day is still longer. To become a teacher in the inferior classes required training until twenty-one at least, and for college (secondary) classes training until at least twenty-nine. The training was in scholarship, religion, theology, and an apprenticeship in teaching, and was superior to that required for a teaching license in any Protestant country of Europe, or in the Catholic Church itself outside of the Jesuit Order.

With such carefully selected and well-educated teachers, themselves models of upright life in an age when priests and monks had been careless, it is not surprising that they wielded an influence wholly out of proportion to their numbers, and supplied Europe with its best secondary schools during the seventeenth and early eighteenth centuries. In the loyal Catholic countries they were virtually the first secondary schools outside of the monasteries and churches, and the real introduction of humanism into Spain, Portugal, and parts of France came with the establishment of the Jesuit humanistic colleges. For their schools they wrote new school books — the Protestant books, the most celebrated of which were those of Erasmus, Melanchthon, Sturm, and Lily, were not possible of use — and for a time they put new life into the humanistic type of education. Before the eighteenth century, however, their secondary schools had become as formal

as had those in Protestant lands (R. 146), and their universities far more narrow and intolerant.

The elements of strength and weakness in the Jesuit system of education has been well summarized by Dabney,[1] in the following words:

> The order of the Jesuits was anti-democratic, and was founded to uphold authority, and to antagonize the right of private judgment. With masterly skill they ruled the Catholic world for about two centuries; and, in the beginning of their activity, performed services of great value to mankind. For, although they aimed, in their system of education, to fit pupils merely for so-called practical avocations, and to avoid all subjects likely to stimulate them to independent thought, it was nevertheless the best system which had then appeared. In dropping the old scholastic methods, and teaching new and fresher subjects, although with the intention of perverting them to their own ends, they sowed, in fact, the germs of their own decay. In spite of their wonderful organization, and their indefatigable industry as courtiers in royal palaces, as professors in the universities, as teachers in the schools, as preachers, as confessors, and as missionaries, they were utterly unable to crush the spirit of doubt and inquiry. During the first half century of their existence they were intellectually in advance of their age; but after that they gradually dropped behind it, and, instead of diffusing knowledge, saw that the only hope of retaining their dominion was to oppose it with all their might.

The Church and elementary education. As was stated on a preceding page, the countries which remained loyal to the Church experienced none of the Protestant feeling as to the necessity for universal education for individual salvation. In such lands the church system of education which had grown up during the Middle Ages remained undisturbed, and was expanded but slowly with the passage of time. The Church, never having made general provision for education, was not prepared for such work. Teachers were scarce, there was no theory of education except the religious theory, and few knew what to do or how to do it. Many churchmen, too, did not see the need for doing anything. Nevertheless the Church, spurred on by the new demands of a world fast becoming modern, and by the exhortations of the official representatives of the people,[2] now began to make extra efforts, in the large cathedral cities, to remedy the deficiency or

[1] Dabney, R. H., The Causes of the French Revolution, p. 203.

[2] For example, the "States-General" of France met four times during the seventeenth century, with weighty problems of religion and state for consideration, yet in three of the four meetings resolutions were passed urging the clergy to establish schoolmasters in all the towns and villages, and a general system of compulsory education for all.

more than a thousand years. In Paris, for example, which was typical of other French cities, the Church organized a regular system of elementary schools, with teachers licensed by the Precentor of the cathedral of Notre Dame and nominally under his supervision, in which instruction was offered to children of the artisan and laboring classes, of both sexes, "in reading, writing, reckoning, the rudiments of Latin Grammar, Catechism, and singing." By 1675 these "Little Schools" in Paris came to contain "upwards of 5000 pupils, taught by some 330 masters and mistresses." All such schools, of course, remained under the immediate control of the Church, and modern state systems of education in the Catholic States are late nineteenth-century productions. In Spain, Portugal, Poland, and the Balkan States, general state systems of education have not even as yet been evolved.

The general effect of the Reformation, though, was to stimulate the Church to greater activity in elementary, as well as in secondary and higher education. In the sixteenth and seventeenth centuries we find a large number of decrees by church councils and exhortations by bishops urging the extension of the existing church system of education, so as to supply at least religious training to all the children of the faithful. As a result a number of teaching orders were organized, the aim of which was to assist the Church in providing elementary and religious education for the children of the laboring and artisan classes in the cities.

Teaching orders established. The teaching orders for elementary education, founded before the eighteenth century, with the dates of their foundation, were:

*1535 — The Order of Ursulines. (U.S., 1729.)
1592 — The Congregation of Christian Doctrine.
*1598 — The Sisters of Notre Dame. (U.S., 1847.)
*1610 — The Visitation Nuns. (U.S., 1799.)
1621 — Patres piarum scholarum (Piarists). First school opened in 1597; authorized by the Pope, 1662.
1627 — The Daughters of the Presentation.
*1633 — The Sisters of Charity of Saint Vincent de Paul. (U.S., 1809.)
1637 — The Port Royalists (Jansenists). (Suppressed in 1661.)
1643 — The Sisters of Providence.
*1650 — The Sisters of Saint Joseph. Rule based on Jesuits. (U.S., 19th C.)
1652 — The Sisters of Mary of Saint Charles Borromeo.
1684 — The Sisters of the Presentation of the Blessed Virgin.
*1684 — The Brothers of the Christian Schools. (U.S., 1845.)

* Have communities in the United States, the date being that of the first one established. See Monroe, *Cyclopedia of Education*, vol. v, p. 528.

All of these, except the Ursulines and the Piarists, were founded in France, many of them originating in Paris. The first has long been prominent in Italy, and is now found in all lands. The second was founded by Father César de Bus, at Cavaillon, Avignon, in southern France, and its purpose was to teach the Catechism to the young. The catechetical schools of this Order were prominent in southern France up to the time of the French Revolution. The third was founded by the Blessed Peter Fourier (1565–1640), in 1598, and played an important part in the education of girls in France, particularly in Lorraine, where Calvinism had made much headway. This noted Order offered free instruction to tradesmen's daughters, not only in religion but in "that which concerns this present life and its maintenance" as well. The girls were taught "reading, writing, arithmetic, sewing, and divers manual arts, honorable and peculiarly suitable for girls" of their station of life. At a time when handwork had not been thought of for boys, the beginnings of such work were here introduced for girls. In 1640 Fourier gave the sisterhood a constitution and a rule, which were revised and perfected in 1694. In this he laid down rules for the organization and management of schools, methods of teaching the different branches, and provided for a rudimentary form of class organization. The following extract from the Rule illustrates the approach to class organization which he devised:

FIG. 103.
AN URSULINE
Order founded, 1535

> The inspectress, or mistress of the class, shall endeavor, as far as it possibly can be carried out, that all the pupils of the same mistress have each the same book, in order to learn and read therein the same lesson; so that, whilst one is reading hers in an audible and intelligible voice before the mistress, all the others, following her and following this lesson, in their books at the same time, may learn it sooner, more readily, and more perfectly.[1]

The Piarists were established in Italy, the first school being opened in Rome, in 1597, by a Spanish priest who had studied at

[1] *Les vrais Constitutions des Religieuses de la Congrégation de Nostre Dame*, chap. XI, sec. 6, 2d ed., Toul, 1694.

Lerida, Valencia, and Alcalá. Being struck by the lack of educational opportunities for the poor, he opened a free school for their instruction. By 1606 he had 900 pupils in his schools, and by 1613 he had 1200. In 1621 Pope Gregory XV gave his work definite recognition by establishing it a teaching Order for elementary (reading, writing, counting, religion) education, modeled on that of the Jesuits. The Order did some work in Italy and Spain, but its chief services were in border Catholic lands. In 1631 it began work in Moravia, in 1640 in Bohemia, in 1642 in Poland, and after 1648 in Austria and Hungary. The members wore a habit much like that of the Jesuits, had a scheme of studies similar to their *Ratio*, and were organized by provinces and were under discipline as were the members of the older Order.

The Jansenists, founded by Saint Cyran, at Port Royal, conducted a very interesting and progressive educational experiment, and their schools have become known to history as the "Little Schools of Port Royal." The congregation was a reaction against the work and methods of the Jesuits. It included both elementary and secondary education, but never extended itself, and probably never had more than sixty pupils and teachers. After seventeen years of work it was suppressed through the opposition of the Jesuits, and its members fled to the Netherlands. There they wrote those books which have explained to succeeding generations what they attempted,[1] and which have revealed what a modern type of educational experiment they conducted. The progressive and modern nature of their teaching, in an age of suspicion and intolerance, condemned them to extinction. Yet despite the progressive nature of their instruction, the intense religious atmosphere which they threw about all their work (**R. 181**) reveals the dominant characteristic of most education for church ends at the time.

The Brothers of the Christian Schools. The largest and most influential of the teaching orders established for elementary education was the "Institute of the Brothers of the Christian Schools," founded by Father La Salle at Rouen, in 1684, and sanctioned by the King and Pope in 1724. As early as 1679 La Salle had begun a school at Rheims, and in 1684 he organized his disciples, prescribed a costume to be worn, and outlined the work of the brotherhood (**R. 182**). The object was to provide free ele-

[1] See especially Felix Cadet, *Port-Royal Education* (Scribners, New York, 1898), for translations of many of the brief pedagogical writings of members of the Order.

mentary and religious instruction in the vernacular for the children of the working classes, and to do for elementary education what the Jesuits had done for secondary education. La Salle's *Conduct of Schools*, first published in 1720, was the *ratio studiorum* of his order. His work marks the real beginning of free primary instruction in the vernacular in France. In addition to elementary schools, a few of what we should call part-time continuation schools were organized for children engaged in commerce and industry. Realizing better than the Jesuits the need for well-trained rather than highly educated teachers for little children, and unable to supply members to meet the outside calls for schools, La Salle organized at Rheims, in 1685, what was probably the second normal school for training teachers in the world.[1] Another was organized later at Paris. In addition to a good education of the type of the time and thorough grounding in religion, the student teachers learned to teach in practice schools, under the direction of experienced teachers.

The pupils in La Salle's schools were graded into classes, and the class method of instruction was introduced.[2] The curriculum was unusually rich for a time when teaching methods and text-books were but poorly developed, the needs for literary education small, and when children could not as yet be spared from work longer than the age of nine or ten. Children learned first to read, write, and spell French, and to do simple composition work in the vernacular. Those who mastered this easily were taught the Latin Psalter in addition. Much prominence was given to writing, the instruction being applied to the writing of bills, notes, receipts, and the like. Much free questioning was allowed in arithmetic and the Catechism, to insure perfect understanding of what was taught. Religious training was made the most prominent feature of the school, as was natural. A half-hour daily was given to the Catechism, mass was said daily, the crucifix was always on the wall, and two or three pupils were always to be found kneeling, telling their beads. The discipline, in contradistinction to the customary practice of the time, was mild, though all pun-

[1] Father Démia, at Lyons, had organized what was probably the first training-school for masters, in 1672. La Salle's training-school dates from 1684. Francke's German *Seminarium Præceptorum*, at Halle, the first in German lands, dates from 1696.

[2] The numerous pictures of schools and educational literature well into the nineteenth century show the general prevalence of the individual method of instruction. It was the method in American schools until well toward the middle of the nineteenth century. To have graded the children and introduced class instruction in 1684 was an important advance which the world has been slow in learning.

FIG. 104. A SCHOOL OF LA SALLE AT PARIS, 1688
A visit of James II and the Archbishop of Paris to the School
(From a bas-relief on the statue of La Salle, at Rouen)

ishments were carefully prescribed by rule.[1] The rule of silence in the school was rigidly enjoined, all speech was to be in a low tone of voice, and a code of signals replaced speech for many things.

Though the Order met with much opposition from both church and civil authorities, it made slow but steady headway. At the time of the death of La Salle, in 1719, thirty-five years after its foundation, the Order had one general normal school, four normal schools for training teachers, three practice schools, thirty-three primary schools, and one continuation school. The Order re-

[1] Everything was according to rule, even the ferule, which must be made of two strips of leather, ten to twelve inches long, sewed together. All offenses, and the number and location of the blows for each, were specified. Later the corporal punishment was replaced by penances.

mained largely French, and at the time of its suppression, in 1792, had schools in 121 communities in France and 6 elsewhere, about 1000 brothers, and approximately 30,000 children in its schools. This was approximately 1 child in every 175 of school age of the population of France at that time. While relatively small in numbers, their schools represented the best attempt to provide

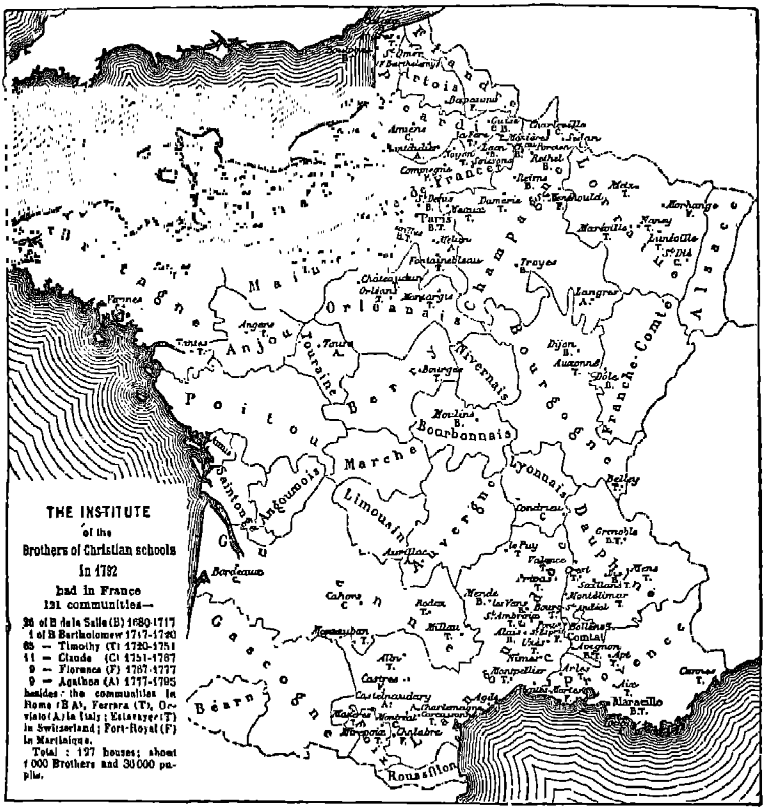

FIG. 105. THE BROTHERS OF THE CHRISTIAN SCHOOLS BY 1792
Map, showing the locations of their communities

elementary education in any Catholic country before well into the nineteenth century. The distribution of their schools throughout France, by 1792, is shown on the map above. In 1803 the Order was reëstablished, by 1838 it had schools in 282 communities, and in 1887, when La Salle was declared a Saint of the Church, it had 1898 communities on four continents, 109 of which

were in the United States, and was teaching a total of approximately 300,000 primary children.

5. *General Results of the Reformation on Education*

Destruction and creation of schools. Any such general overturning of the established institutions and traditions of a thousand years as occurred at the time of the Protestant Revolts, with the accompanying bitter hatreds and religious strife, could not help but result in extensive destruction of established institutions. Monasteries, churches, and schools alike suffered, and it required time to replace them. Even though they had been neglectful of their functions, inadequate in number, and unsuited to the needs of a world fast becoming modern, they had nevertheless answered partially the need of the times. In all the countries where revolts took place these institutions suffered more or less, but in England probably most of all. The old schools which were not destroyed were transformed into Protestant schools, the grammar schools to train scholars and leaders, and the parish schools into Protestant elementary schools to teach reading and the Catechism, but the number of the latter, in all Protestant lands, was very far short of the number needed to carry out the Protestant religious theory. This, as we have seen, proposed to extend the elements of an education to large and entirely new classes of people who never before in the history of the world had had such advantages. Out of the Protestant religious conception that all should be educated the popular elementary school of modern times has been evolved. The evolution, though, was slow, and long periods of time have been required for its accomplishment.

In place of the schools destroyed, or the teachers driven out if no destruction took place, the reformers made an earnest effort to create new schools and supply teachers. This, though, required time, especially as there was as yet in the world no body of vernacular teachers, no institutions in which such could be trained, no theory as to education except the religious, no supply of educated men or women from which to draw, no theory of state support and control, and no source of taxation from which to derive a steady flow of funds. Throughout the long Middle Ages the Church had supplied gratuitous or nearly gratuitous instruction. This it could do, to the limited number whom it taught, from the proceeds of its age-old endowments and educational foundations. In the process of transformation from a Catholic

to a Protestant State, and especially during the more than a century of turmoil and religious strife which followed the rupture of the old relations, many of the old endowments were lost or were diverted from their original purposes. As the Protestant reformers were supported generally by the ruling princes, many of these tried to remedy the deficiency by ordering schools established. The landed nobility though, unused to providing education for their villein tenants and serfs,[1] were averse to supplying the deficiency by any form of general taxation. Nor were the rising merchant classes in the cities any more anxious to pay taxes to provide for artisans and servants what had for ages been a gratuity or not furnished at all.

No real demand for elementary schools. The creation of a largely new type of schools, and in sufficient numbers to meet the needs of large classes of people who before had never shared in the advantages of education, in consequence proved to be a work of centuries. The century of warfare which followed the reformation movement more or less exhausted all Europe, while the Thirty Years' War which formed its culmination left the German States, where the largest early educational progress had been made, a ruin. In consequence there was for long little money for school support, and religious interest and church tithes had to be depended on almost entirely for the establishment and support of schools. Out of the parish sextons or clerks a supply of vernacular teachers had to be evolved, a system of school organization and supervision worked out and added to the duties of the minister, and the feeling of need for education awakened sufficiently to make people willing to support schools. In consequence what Luther and Calvin declared at the beginning of the sixteenth century to be a necessity for the State and the common right of all, it took until well into the nineteenth century actually to create and make a reality.

The great demand of the time, too, was not so much for the education of the masses, however desirable or even necessary this might be from the standpoint of Protestant religious theory, but for the training of leaders for the new religious and social order which the Revival of Learning, the rise of modern nationalities, and the Reformation movements had brought into being. For this secondary schools for boys, largely Latin in type, were demanded rather than elementary vernacular schools for both sexes.

[1] See footnote 1, page 207.

We accordingly find the great creations of the period were secondary schools.

Lines of future development established. Still more, certain lines of future development now became clearly established. The drawing given here will help to make this evident. It will be seen from this that not only was the secondary school still the dominant type, though elementary schools began for the first

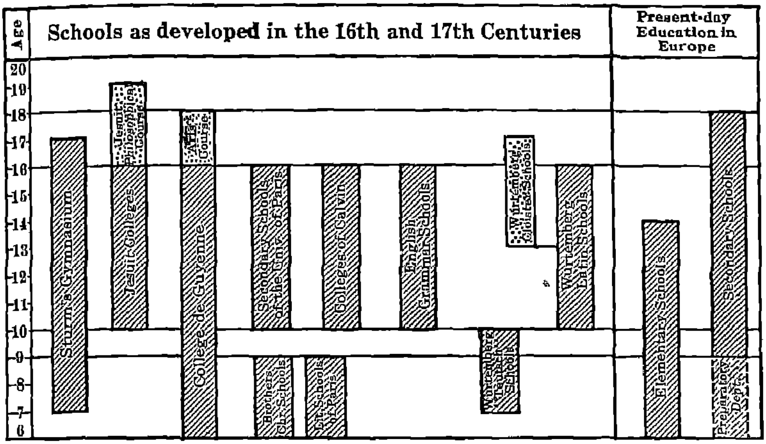

FIG. 106. TENDENCIES IN EDUCATIONAL DEVELOPMENT IN EUROPE, 1500 to 1700

time to be considered as important also, but that the secondary schools were wholly independent of the elementary schools which now began to be created. The elementary schools were in the vernacular and for the masses; the secondary schools were in the Latin tongue and for the training of the scholarly leaders. Between these two schools, so different in type and in clientèle, there was little in common. This difference was further emphasized with time. The elementary schools later on added subjects of use to the common people, while the secondary schools added subjects of use for scholarly preparation or for university entrance. The secondary schools also frequently provided preparatory schools for their particular classes of children. As a result, all through Europe two school systems — an elementary-school system for the masses, and a secondary-school system for the classes — exist to-day side by side. We in America did not develop such a class school system, though we started that way. This was because the conception of education we finally developed

was a product of a new democratic spirit, as will be explained later on.

QUESTIONS FOR DISCUSSION

1. Compare the attention to careful religious instruction in the secondary schools provided by the Lutherans, Calvinists, and English. What analogous instruction do we provide in the American high schools? Is it as thorough or as well done?
2. Compare the scope and ideals of the educational system provided by the Calvinists with the same for the Lutherans and Anglicans.
3. Compare the characteristics of Calvinistic (Huguenot) education, as summarized by Foster, with present-day state educational purposes.
4. Just what kind of a school system did Knox propose (1560) for Scotland?
5. Show how the educational program of the Jesuits reveals Ignatius Loyola as a man of vision.
6. Viewed from the purposes the Order had in mind, was it warranted in neglecting the education of the masses?
7. Does the success of the Order show the importance to society of finding and educating the future leader? Can all men be trained for leadership?
8. What does the statement that the Jesuits were "too practical to make many changes," but had "a keen eye for what was best" in the work of others, indicate as to the nature of school administration and educational progress?
9. Indicate the advantages which the Jesuits had in their teachers and teaching-aim over us of to-day. How could we develop an aim as clearly defined and potent as theirs? Could we select teachers with such care? How?
10. Compare the religious and educational propaganda of the Jesuits with the recent political propaganda of the Germans.
11. What is meant by the statement that the Jesuit teaching method, like that of the modern German *Volksschule*, was a teaching and not a questioning method?
12. Compare present American standards for teacher-training for elementary and secondary teaching with those required by the Jesuits: — (*a*) as to length of preparation; (*b*) as to nature and scope of preparation.
13. How do you explain the introduction of sewing into the elementary vernacular Catholic schools for girls, so long before handiwork for boys was thought of?
14. In schools so formally organized as those of La Salle, how do you explain the great freedom allowed in questioning on arithmetic and the Catechism?
15. Why should La Salle's work have been so opposed by both Church and civil authorities? Do you consider that his Order ever made what would be called rapid progress?
16. Why must the education of leaders always precede the education of the masses?
17. Explain how European countries came naturally to have two largely independent school systems — a secondary school for leaders and an elementary school for the masses — whereas we have only one continuous system.
18. Explain why modern state systems of education developed first in the German States, and why England and the Catholic nations of Europe were so long in developing state school systems.

SELECTED READINGS

In the accompanying *Book of Readings* the following selections are reproduced:

175. Woodward: Course of Study at the College of Geneva.
176. Synod of Dort: Scheme of Christian Education adopted.
177. Kilpatrick: Work of the Dutch in developing Schools.
178. Kilpatrick: Character of the Dutch Schools of 1650.
179. Statutes: The Scotch School Law of 1646.
180. Pachtler: The *Ratio Studiorum* of the Jesuits.
181. Gérard: The Dominant Religious Purpose in the Education of French Girls.
182. La Salle: Rules for the "Brothers of the Christian Schools."

QUESTIONS ON THE READINGS

1. Was the College at Geneva (175) a true humanistic-revival school?
2. Just what did the Synod of Dort provide for (176) in the matter of schools, school supervision, and ministerial duties?
3. Compare the work of the Dutch (177) and the Lutherans (159–163) in creating schools.
4. Just what type of school is indicated by selection 178?
5. Just what did the Scotch law of 1646 provide for (179)?
6. Characterize the schools provided for by La Salle (182).
7. Compare the religious care at Port Royal (181) with that suggested by Saint Jerome (R. 45).

SUPPLEMENTARY REFERENCES

Baird, C. W. *History of the Rise of the Huguenots of France.*
Baird, C. W. *Huguenot Emigration to America.*
Grant, Jas. *History of the Burgh Schools of Scotland.*
Hughes, Thos. *Loyola, and the Educational System of the Jesuits.*
Kilpatrick, Wm. H. *The Dutch Schools of New Netherlands and Colonial New York.*
Laurie, S. S. *History of Educational Opinion since the Renaissance.*
Ravelet, A. *Blessed J. B. de la Salle.*
Schwickerath, R. *Jesuit Education; its History and Principles in the Light of Modern Educational Problems.*
Woodward, W. H. *Education during the Renaissance.*

CHAPTER XV

EDUCATIONAL RESULTS OF THE PROTESTANT REVOLTS

III. THE REFORMATION AND AMERICAN EDUCATION

The Protestant settlement of America. Columbus had discovered the new world just twenty-five years before Luther nailed his theses to the church door at Wittenberg, and by the time the northern continent had been roughly explored and was ready for settlement, Europe was in the midst of a century of warfare in a vain attempt to extirpate the Protestant heresy. By the time that the futility of fire and sword as means for religious conversion had finally dawned upon Christian Europe and found expression in the Peace of Westphalia (1648), which closed the terrible Thirty Years' War (p. 301), the first permanent settlements in a number of the American colonies had been made. These settlements, and the beginnings of education in America, are so closely tied up with the Protestant Revolts in Europe that a chapter on the beginnings of American education belongs here as still another phase of the educational results of the Protestant Revolts.

Practically all the early settlers in America came from among the peoples and from those lands which had embraced some form of the Protestant faith, and many of them came to America to found new homes and establish their churches in the wilderness, because here they could enjoy a religious freedom impossible in their old home-lands. This was especially true of the French Huguenots, many of whom, after the revocation of the Edict of Nantes[1] (1685), fled to America and settled along the coast of the Carolinas; the Calvinistic Dutch and Walloons, who settled in and about New Amsterdam; the Scotch and Scotch-Irish

[1] Representing not over one tenth of the population, the Protestants in France had from the first been subjected to much persecution. In the Massacre of Saint Bartholomew (1572) over one thousand had been massacred in Paris and ten thousand more in the provinces. After some warfare, a treaty was made, in 1598, under which the so-called "Edict of Nantes" guaranteed religious toleration for the Protestants. In 1685 this was revoked, and their ministers were given fifteen days to leave France. The members were, however, forbidden to leave. Many, though got away, escaping to the Low Countries, England, and to America.

Presbyterians, who settled in New Jersey, and later extended along the Allegheny Mountain ridges into all the southern colonies; the English Quakers about Philadelphia, who came under the leadership of William Penn, and a few English Baptists and Methodists in eastern Pennsylvania; the Swedish Lutherans, along the Delaware; the German Lutherans, Moravians, Mennonites, Dunkers, and Reformed-Church Germans, who settled in large numbers in the mountain valleys of Pennsylvania; and the Calvinistic dissenters from the English National Church, known as Puritans, who settled the New England colonies, and who, more than any others, gave direction to the future development of education in the American States. Very many of these early religious groups came to America in little congregations, bringing their ministers with them. Each set up, in the colony in which it settled, what were virtually little religious republics, that through them they might the better perpetuate the religious principles for which they had left the land of their birth. Education of the young for membership in the Church, and the perpetuation of a learned ministry for the congregations, from the first elicited the serious attention of these pioneer settlers.

Englishmen who were adherents of the English national faith (Anglicans) also settled in Virginia and the other southern colonies, and later in New York and New Jersey, while Maryland was founded as the only Catholic colony, in what is now the United States, by a group of persecuted English Catholics who obtained a charter from Charles I, in 1632. These settlements are shown on the map on the following page. As a result of these settlements there was laid, during the early colonial period of American history, the foundation of those type attitudes toward education which subsequently so materially shaped the educational development of the different American States during the early part of our national history.

The Puritans in New England. Of all those who came to America during this early period, the Calvinistic Puritans who settled the New England colonies contributed most that was valuable to the future educational development of America, and because of this will be considered first.

The original reformation in England, as was stated in chapters XII and XIII, had been much more nominal than real. The English Bible and the English Prayer-Book had been issued to the churches (R. 170), and the King instead of the Pope had been

declared by the Act of Supremacy (R. 153) to be the head of the English National Church. The same priests, though, had continued in the churches under the new régime, and the church service had not greatly changed aside from its transformation from

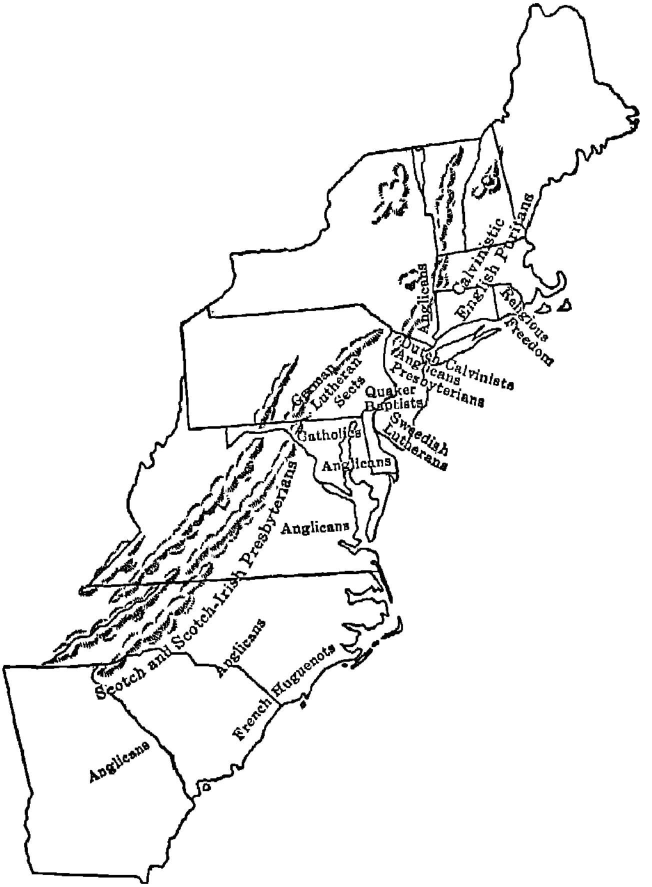

FIG. 107. MAP SHOWING THE RELIGIOUS SETTLEMENTS IN AMERICA

Latin into English. Neither the Church as an organization nor its members experienced any great religious reformation. Not all Englishmen, though, took the change in allegiance so lightly (R. 183), and in consequence there came to be a gradually increasing number who desired a more fundamental reform of the English Church. By 1600 the demand for Church reform had

become very insistent, and the question of Church purification (whence the name "Puritans") had become a burning question in England.

The English Puritans, moreover, were of two classes. One was a moderate but influential "low-church" group within the "high" State Church, possessed of no desire to separate Church and State, but earnestly insistent on a simplification of the Church ceremonial, the elimination of a number of the vestiges of the old Romish-Church ritual, and particularly the introduction of more preaching into the service. The other class constituted a much more radical group, and had become deeply imbued with Calvinistic thinking. This group gradually came into open opposition to any State Church, stood for the local independence of the different churches or congregations, and desired the complete elimination of all vestiges of the Romish faith from the church services.[1] They became known as Independents, or Separatists, and formed the germs of the later Congregational groups of early New England. Both Elizabeth (1558–1603) and James I (1603–25) savagely persecuted this more radical group, and many of their congregations were forced to flee from England to obtain personal safety and to enjoy religious liberty (**R.** 184). One of these fugitive congregations, from Scrooby, in north-central England, after living for several years at Leyden, in Holland, finally set sail for America, landed on Plymouth Rock, in 1620, and began the settlement of that "bleak and stormy coast." Other congregations soon followed, it having been estimated that twenty thousand English Puritans migrated[2] to

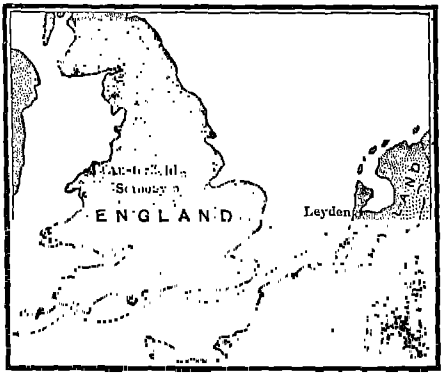

FIG. 108. HOMES OF THE PILGRIMS, AND THEIR ROUTE TO AMERICA

[1] The culmination of this dissatisfaction came in 1649, when Charles I was beheaded and "The Commonwealth" was established under Cromwell. During the troubled times which followed (1649–60) much damage was done to the churches of England by way of eliminating vestiges of "popery."

[2] Some of these went back to England — many after the establishment of the Protestant Commonwealth under Cromwell (1649). It has been estimated, for

the New England wilderness before 1640. These represented a fairly well-to-do type of middle-class Englishmen, practically all of whom had had good educational advantages at home.

Settling along the coast in little groups or congregations, they at once set up a combined civil and religious form of government, modeled in a way after Calvin's City-State at Geneva, and which became known as a New England town.[1] In time the southern portion of the coast of New England was dotted with little self-governing settlements of those who had come to America to obtain for themselves that religious freedom which had been denied them at home. These settlements were loosely bound together in a colony federation, in which each town was represented in a General Court, or legislature. The extent of these settlements by 1660 is shown on the map on the opposite page.

Beginnings of schools in New England. Having come to America to secure religious freedom, it was but natural that the perpetuation of their particular faith by means of education should have been one of the first matters to engage their attention, after the building of their homes and the setting up of the civil government (R. 185). Being deeply imbued with Calvinistic ideas as to government and religion, they desired to found here a religious commonwealth, somewhat after the model of Geneva (p. 298), or Scotland (p. 335), or the Dutch provinces (p. 334), the corner-stones of which should be religion and education.

At first, English precedents were followed. Home instruction, which was quite common in England among the Puritans, was naturally much employed to teach the children to read the Bible and to train them to participate in both the family and the congregational worship. After 1647, town elementary schools under a master, and later the English "dame schools" (chapter XVIII), were established to provide this rudimentary instruction. The English apprentice system was also established (R. 201), and the masters of apprentices gave similar instruction to boys entrusted

three of the early colonies, that the population by decades was approximately as follows:

	1630	*1640*	*1650*	*1660*
New Netherlands	500	1000	3000	6000
Massachusetts	1300	14000	18000	25000
Virginia	3000	8000	17000	33000

[1] The name and the form came alike from old England, where an irregular area known as a "town" or a "township," constituted the unit of representation in the shiremoats and the membership of the church parish. Almost every town and parish officer known in England was created by the new towns in New England, with practically the same functions as in the old home.

to their care. The town religious governments, under which all the little congregations organized themselves, much as the little religious parishes had been organized in old England, also began the voluntary establishment of town grammar schools, as a few towns in England had done (R. 143) before the Puritans migrated. The "Latin School" at Boston dates from 1635, and has had a continuous existence since that time. The grammar school at

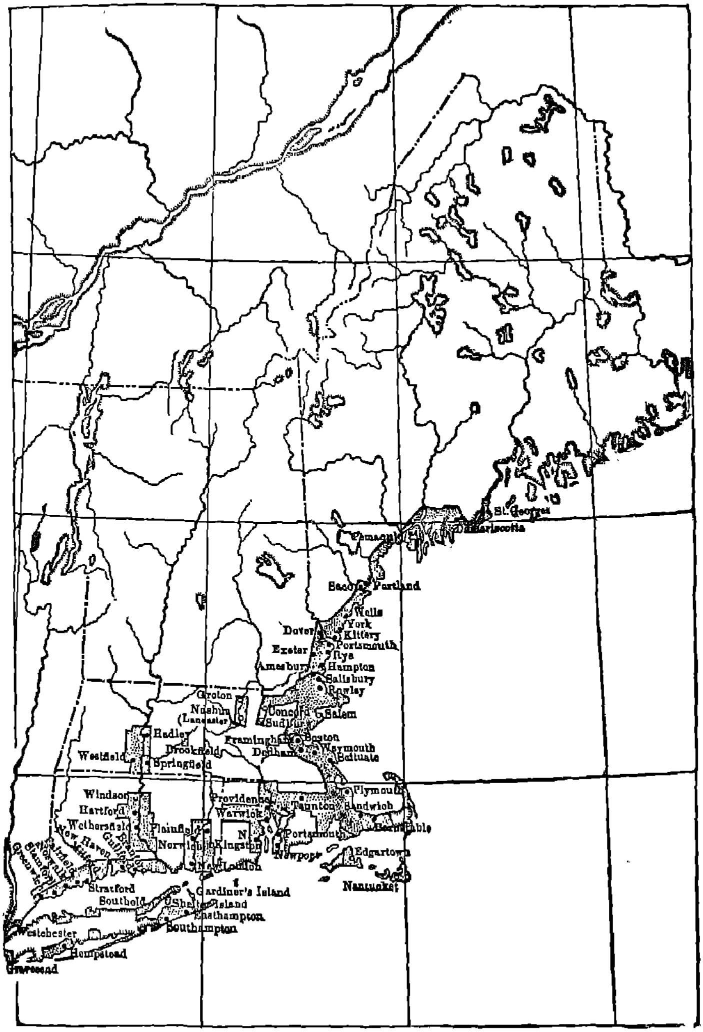

FIG. 109. NEW ENGLAND SETTLEMENTS, 1660

Charlestown dates from 1636, that at Ipswich from the same year, and the school at Salem from 1637. In 1639 Dorchester voted:

that there shall be a rent of 20 lb a year for ever imposed vpon Tomsons Island . . . toward the mayntenance of a schoole in Dorchester. This rent of 20 lb yearly to bee payd to such a schoole-master as shall vndertake to teach english, latine, and other tongues, and also writing. The said schoole-master to bee chosen from tyme to tyme pr the freemen.

Newbury, in 1639, voted "foure akers of upland" and "sixe akers of salt marsh" to Anthony Somerby "for his encouragement to keepe schoole for one yeare," and later levied a town rate of £24 for a "schoole to be kepte at the meeting house." Cambridge also early established a Latin grammar school "for the training up of Young Schollars, and fitting them[1] for *Academicall Learning*" (R. 185).

FIG. 110. THE BOSTON LATIN GRAMMAR SCHOOL
The original school, on School Street, with King's Chapel on the left

The support for the town schools thus founded was derived from various sources, such as the levying of tuition fees, the income from town lands or fisheries set aside for the purpose,[2] voluntary contributions from the people of the town,[3] a town tax, or a combination of two or more of these methods. The founding of the "free (grammar) school" at Roxburie, in 1645, is representative (R. 188) of the early methods. There was no uniform plan as yet, in either old or New England.

[1] "The settlers were in the first freshness of their Utopian enthusiasm, and their church establishment was the very heart of their enterprise. It became therefore a matter of primary importance to educate preachers. For ages preparation for the ministry had consisted mainly in acquiring a knowledge of Latin, the sacred tongue of western Christendom. Though the Latin service was no longer used by Protestants, and the Vulgate Bible had been dethroned by the original text, and though the main stream of English theology was by this time flowing in the channel of the mother tongue, the notion that all ministers should know Latin had still some centuries of tough life in it." (Eggleston, E., *The Transit of Civilization*, p. 225.)

[2] For example, the town of Boston, in 1641, devoted the income from Deere Island to the support of schools, and Plymouth, in 1670, appropriated the income from the Cape Cod fishing industry to the support of grammar schools (R. 194 c). These are among the earliest of the permanent endowments for education in America.

[3] See *The Development of School Support in Colonial Massachusetts*, by George I. Jackson, for a careful study of the different early methods of school support.

Founding of Harvard College. In addition to establishing Latin grammar schools, a college was founded, in 1636, by the General Court (legislature) of the Massachusetts Bay Colony, to perpetuate learning and insure an educated ministry (R. 185) to the churches after "our present ministers shall lie in the dust." This new college, located at Newtowne, was modeled after Emmanuel College at Cambridge, an English Puritan college in which many of the early New England colonists had studied,[1] and in loving memory of which they rechristened Newtowne as Cambridge. In 1639 the college was christened Harvard College, after a graduate of Emmanuel College, Cambridge, by the name of John Harvard, who died in Charlestown, a year after his arrival in the colony, and who left the college his library of two hundred and sixty volumes and half his property, about £850.

The instruction in the new college was a combination of the arts and theological instruction given in a mediæval university, though at Harvard the President, Master Dunster (R. 185), did all the teaching. For the first fifty years at Harvard this continued to be true, the attendance during that time seldom exceeding twenty. The entrance requirements for the college (R. 186 a) call for the completion of a typical English Latin grammar-school education; the rules and precepts for the government of the college (R. 186 b) reveal the deep religious motive; and the schedule of studies (R. 186 c) and the requirements for degrees (R. 186 d) both show that the instruction was true to the European type. In the charter for the college, granted by the colonial legislature in 1650 (R. 187 a), we find exemptions and conditions which remind one strongly of the older European foundations. A century later Brown College, in Rhode Island, was granted even more extensive exemptions (R. 187 b).

The first colonial legislation: the Law of 1642. We thus see manifested early in New England the deep Puritan-Calvinistic zeal for learning as a bulwark of Church and State. We also see the establishment in the wilderness of New England of a typical English educational system — that is, private instruction in reading and religion by the parents in the home and by the masters of apprentices, and later by a town schoolmaster; the Latin grammar

[1] The Puritan emigrants to New England represented a sturdy and well-educated class of English country squires and yeomen. They came of thrifty and well-to-do stock, the shiftless and incompetent not being represented. All had had good educational advantages, and many were graduates of Cambridge University. It has been asserted that probably never since has the proportion of college men in the community been so large.

school in the larger towns, to prepare boys for the college of the colony; and an English-type college to prepare them for the ministry. As in England, too, all was clearly subordinate to the Church. Still further, as in England also, the system was voluntary, the deep religious interest which had brought the congregations to America being depended upon to insure for all the necessary education and religious training.

It early became evident, though, that these voluntary efforts on the part of the people and the towns would not be sufficient to insure that general education which was required by the Puritan religious theory. Under the hard pioneer conditions, and the suffering which ensued, many parents and masters of apprentices evidently proved neglectful of their educational duties. Accordingly the Church appealed to its servant, the State, as represented in the colonial legislature (General Court) to assist it in compelling parents and masters to observe their religious obligations. The result was the famous Massachusetts Law of 1642 (**R. 190**), which directed "the chosen men" (Selectmen; Councilmen) of each town to ascertain, from time to time, if the parents and masters were attending to their educational duties; if the children were being trained "in learning and labor and other employments . . . profitable to the Commonwealth"; and if children were being taught "to read and understand the principles of religion and the capital laws of the country," and empowered them to impose fines on "those who refuse to render such accounts to them when required." In 1645 the General Court further ordered that all youth between ten and sixteen years of age should also receive instruction "in ye exercise of arms, as small guns, halfe pikes, bowes & arrows, &c."

The Law of 1642 is remarkable in that, for the first time in the English-speaking world, a legislative body representing the State ordered that all children should be taught to read. The law shows clearly not only the influence of the Reformation theory as to personal salvation and the Calvinistic conception of the connection between learning and religion, but also the influence of the English Poor-Law legislation which had developed rapidly during the half-century immediately preceding the coming of the Puritans to America (**R. 173**). On the foundations of the English Poor Law of 1601 (**R. 174**) our New England settlers moulded the first American law relating to education, adding to the principles there established (p. 326) a distinct Calvinistic contri-

bution to our new-world life that, the authorities of the civil town should see that all children were taught "to read and understand the principles of religion and the capital laws of the country." This law the Selectmen, or the courts if they failed to do so, were ordered to enforce, and the courts usually looked after their duties in the matter (**R. 192**).

The Law of 1647. The Law of 1642, while ordering "the chosen men" of each town to see that the education and training of children was not neglected, and providing for fines on parents and masters who failed to render accounts when required, did not, however, establish schools, or direct the employment of schoolmasters. The provision of education, after the English fashion, was still left with the homes. After a trial of five years, the results of which were not satisfactory, the General Court enacted another law by means of which it has been asserted that "the Puritan government of Massachusetts rendered probably its greatest service to the future."

After recounting in a preamble (**R. 191**) that it had in the past been "one cheife proiect of y^{t} ould deluder, Satan, to keepe men from the knowledge of y^{e} Scriptures, . . . by keeping y^{m} in an unknowne tongue," so now "by pswading from y^{e} use of tongues," and "obscuring y^{e} true sence & meaning of y^{e} originall" by "false glosses of saint-seeming deceivers," learning was in danger of being "buried in y^{e} grave of o^{r} fath^{rs} in y^{e} church and comonwealth"; the Court ordered:

1. That every town having fifty householders should at once appoint a teacher of reading and writing, and provide for his wages in such manner as the town might determine; and
2. That every town having one hundred householders must provide a grammar school to fit youths for the university, under a penalty of £5 (afterwards increased to £20) for failure to do so.

This law represents a distinct step in advance over the Law of 1642, and for this there are no English precedents. It was not until the latter part of the nineteenth century that England took such a step. The precedents for the compulsory establishment of schools lie rather in the practices of the different German States (p. 318), the actions of the Dutch synods (**R. 176**) and provinces (p. 335), the Acts of the Scottish parliament of 1633 and 1646 (p. 334; **R. 179**), and the general Calvinistic principle that education was an important function of a religious State.

Principles established. The State here, acting again as the

servant of the Church, enacted a law and fixed a tradition which prevailed and grew in strength and effectiveness after State and Church had parted company. Not only was a school system ordered established — elementary for all towns and children, and secondary for youths in the larger towns — but, for the first time among English-speaking people, there was an assertion of the right of the State to require communities to establish and maintain schools, under penalty if they refused to do so. It can be safely asserted, in the light of later developments, that the two laws of 1642 and 1647 represent the foundations upon which our American state public-school systems have been built. Mr. Martin, the historian of the Massachusetts public-school system, states the fundamental principles which underlay this legislation, as follows:[1]

1. The universal education of youth is essential to the well-being of the State.
2. The obligation to furnish this education rests primarily upon the parent.
3. The State has a right to enforce this obligation.
4. The State may fix a standard which shall determine the kind of education, and the minimum amount.
5. Public money, raised by general tax, may be used to provide such education as the State requires. The tax may be general, though the school attendance is not.
6. Education higher than the rudiments may be supplied by the State. Opportunity must be provided, at public expense, for youths who wish to be fitted for the university.

"It is important to note here," adds Mr. Martin, "that the idea underlying all this legislation is neither paternalistic nor socialistic. The child is to be educated, not to advance his personal interests, but because the State will suffer if he is not educated. The State does not provide schools to relieve the parent, nor because it can educate better than the parent can, but because it can thereby better enforce the obligation which it imposes." To prevent a return to the former state of religious ignorance it was important that education be provided. To assure this the colonial legislature enacted a law requiring the maintenance and support of schools by the towns. This law became the corner-stone of our American state school systems.

Influence on other New England colonies. Connecticut Colony, in its Law of 1650 establishing a school system, combined the

[1] Martin, Geo. H., *The Evolution of the Massachusetts Public-School System*, pp. 14–16.

spirit of the Massachusetts Law of 1642, though stated in different words (**R. 193**), and the Law of 1647, stated word for word. New Haven Colony, in 1655, ordered that children and apprentices should be taught to read, as had been done in Massachusetts, in 1642, but on the union of New Haven and Connecticut Colonies, in 1665, the Connecticut Code became the law for the united colonies. In 1702 a college was founded (Yale) and finally located at New Haven, to offer preparation for the ministry in the Connecticut colony, as had been done earlier in Massachusetts, and Latin grammar schools were founded in the Connecticut towns to prepare for the new college, as also had been done earlier in Massachusetts. The rules and regulations for the grammar school at New Haven (**R. 189**) reveal the purpose and describe the instruction provided in one of the earliest and best of these.

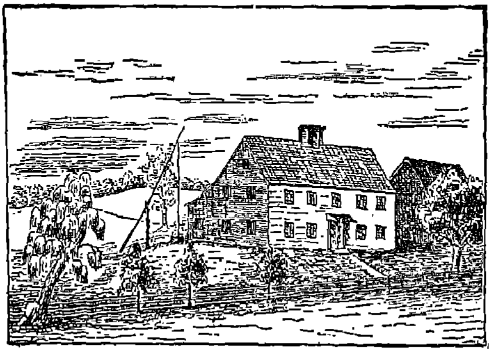

FIG. 111. WHERE YALE COLLEGE WAS FOUNDED

The home of the Reverend Samuel Russell, at Branford, Conn. The first meeting to organize the college was held there, in September, 1701

Plymouth Colony, in 1658 and again in 1663, proposed to the towns that they "sett vp" a schoolmaster "to traine vp children to reading and writing" (**R. 194 a**). In 1672 the towns were asked to aid Harvard College by gifts (**R. 194 b**). In 1673–74 the income from the Cape Cod fisheries was set aside for the support of a (grammar) school (**R. 194 c**). Finally, in 1677, all towns having over fifty families and maintaining a grammar school were ordered aided from the fishery proceeds (**R. 194 d**).

The Massachusetts laws also applied to Maine, New Hampshire, and Vermont, as these were then a part of Massachusetts Colony. After New Hampshire separated, in 1680, the Massachusetts Law of 1647 was virtually readopted in 1719–21. In Maine and Vermont there were so few settlers, until near the beginning of our national life, that the influence of the Massachusetts legislation on these States was negligible until a later period.

Only in Rhode Island and Providence Plantations, of all the New England colonies, did the Massachusetts legislation fail to exert a deep influence. Settled as these two had been by refugees from New England, and organized on a basis of hospitality to all who suffered from religious oppression elsewhere, the religious stimulus to the founding of schools naturally was lacking. As the religious basis for education was as yet the only basis, the first development of schools in Rhode Island awaited the humanitarian and economic influences which did not become operative until early in the nineteenth century.

Outside of the New England colonies, the appeal to the State as the servant of the Church was seldom made during the early colonial period, the churches handling the educational problem in their own way. As a result the beginnings of State oversight and control were left to New England. In the central colonies a series of parochial-school systems came to prevail, while in Episcopalian Virginia and the other colonies to the south the no-business-of-the-State attitude assumed toward education by the mother country was copied.

The church schools of New York. New Netherland, as New York Colony was called before the English occupation, was settled by the Dutch West India Company, and some dozen villages about New York and up the Hudson had been founded by the time it passed to the control of the English, in 1664. In these the Dutch established typical home-land public parochial schools, under the control of the Reformed Dutch Church. The schoolmaster was usually the reader and precentor in the church as well (**R.** 195), and often acted, as in Holland, as sexton besides. Girls attended on equal terms with boys, but sat apart and recited in separate classes. The instruction consisted of reading and writing Dutch, sometimes a little arithmetic, the Dutch Catechism, the reading of a few religious books, and certain prayers. The rules (1661) for a schoolmaster in New Amsterdam (**R.** 196), and the contract with a Dutch schoolmaster in Flatbush (**R.** 195), dating from 1682, reveal the type of schools and school conditions provided. All except the children of the poor paid fees to the schoolmaster.[1]

[1] The charging of a tuition fee to those who could afford to pay was a common European practice of the time, nevertheless the public authorities — at that time a mixture of civil and church officials — provided the school, employed and licensed the teacher, determined the textbooks to be used, and laid down the conditions under which the school should be conducted. The schoolmaster assisted the church by participating in the Sunday services. The elementary school of the Dutch, which was copied in the New Netherland, was thus a combination of a public and parochial, and a free and pay school.

He was licensed by the Dutch church authorities. As the Dutch had not come to America because of persecution, and were in no way out of sympathy with religious conditions in the home-land, the schools they developed here were typical of the Dutch European parochial schools of the time (R. 178). A *trivial* (Latin) school was also established in New York, in 1652.

After the English occupation the English principle of private and church control of education, with schooling on a tuition or a charitable basis, came to prevail, and this continued up to the beginning of our national period.[1] Of the English colonial schools of New York Draper has written:[2]

> All the English schools in the province from 1700 down to the time of the Declaration of Independence were maintained by a great religious society organized under the auspices of the Church of England — and, of course, with the favor of the government — called "The Society for the Propagation of the Gospel in Foreign Parts." The law governing this Society provided that no teacher should be employed until he had proved "his affection for the present government" and his "conformity to the doctrine and discipline of the Church of England." Schools maintained under such auspices were in no sense free schools. Indeed, humiliating as it is, no student of history can fail to discern the fact that the government of Great Britain, during its supremacy in this territory, did nothing to facilitate the extension or promote the efficiency of free elementary schools among the people.

The parochial schools of Pennsylvania. Pennsylvania was settled by Quakers, Baptists, Methodists, Presbyterians, German Lutherans, Moravians, Mennonites, and members of the German Reformed Church, all of whom came to America to secure greater religious liberty and had been attracted to this colony by the freedom of religious worship which Penn had provided for there. All these were Protestant sects, all believed in the necessity of learning to read the Bible as a means to personal salvation, and all made efforts looking toward the establishment of schools as a part of their church organization. Unlike New England, though, no sect was in a majority; church control for each denomination was considered as most satisfactory; and no appeal was made to the State to have it assist the churches in the enforcement of their religious purposes. The clergymen were usually the teachers in the parochial schools established,[3] while private pay schools were

[1] This was, of course, much more true of New York City and Island than of the outlying Dutch villages. In these latter a public school was for long maintained.

[2] Draper, A. S., *Origin and Development of the New York Common School System.*

[3] Among the German Lutherans, who constituted nearly one fourth of the total population of the colony, a school is claimed to have been established alongside the

opened in the villages and towns. These were taught in English, German, or in the Moravian tongue, according to the original language of the different immigrants. The Quakers seem to have taken particular interest in schools (**R. 199**), a Quaker school in Philadelphia (**R. 198**) having been established the year the city was founded. Girls were educated as well as boys, and the emphasis was placed on reading, writing, counting, and religion, rather than upon any higher form of training.

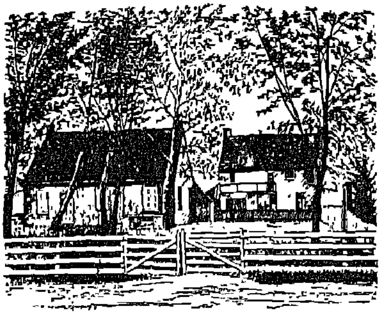

FIG. 112. AN OLD QUAKER MEETING-HOUSE AND SCHOOL AT LAMPETER, PENNSYLVANIA

(From an old drawing)

The result was the development in this colony of a policy of depending on church and private effort, and the provision of education, aside from certain rudimentary and religious instruction, was left largely for those who could afford to pay for the privilege. Charitable education was extended to but a few, for a short time, while, under the freedom allowed, many communities made but indifferent provisions or suffered their schools to lapse. Under the primitive conditions of the time the interest even in religious education often declined almost to the vanishing point. So lax in the matter of providing schooling had many communities become that the second Provincial Assembly, sitting in Philadelphia, in 1683, passed an ordinance requiring (**R. 197**) that all persons having children must cause them to be taught to read and write, so that they might be able to read the Scriptures by the time they were twelve years old, and also that all children be taught some useful trade. A fine of £5 was to be assessed for failure to comply with the law. So much in advance of English ideas as to what was fitting and proper was this compulsory law that it was vetoed by William and Mary, when submitted to their

church by each of the congregations "at the earliest possible period after its formation." The close connection between these Lutheran congregations and their schools may be seen from the following contract, dated at Lancaster, in 1774:

"I, the undersigned, John Hoffman, parochial teacher of the church at Lancaster, have promised in the presence of the congregation, to serve as choirister, and, as long as we have no pastor, to read sermons on Sunday. In summer I promise to hold cathechetical instruction with the young, as becomes a faithful teacher, and also to lead them in the singing and attend to the clock."

majesties for approval. Ten years later it was reënacted by the Governor and Assembly of the colony, but proved so difficult of enforcement that it was soon dropped, and the chance of starting education in Pennsylvania somewhat after the New England model was lost. The colony now settled down to a policy of non-state action, and this in time became so firmly established that the do-as-you-please idea persisted in this State up to the establishment of the first free state school system, in 1834.

Mixed conditions in New Jersey. In New Jersey, situated as it was near the center of the different colonies, the early development of education there was the product of a number of different influences. The Dutch crossed from New Amsterdam, the English came from Connecticut and later from New York, Scotch and Scotch-Irish Presbyterians came from the mother country, Swedish Lutherans settled along the Delaware, and Quakers and German Lutherans came over from Pennsylvania. The educational practice of the colony or land from which each group of settlers came was reproduced in the colony. After the English succeeded the Dutch in New Amsterdam (1664), English methods and practice in education gradually came into control throughout most of New Jersey, and as a result here, as in New York, but little was accomplished in providing schools for other than a select few until well after the beginning of the nineteenth century. Neither New Jersey, New York, nor Pennsylvania may be said to have developed any colonial educational policy aside from that of allowing private and parochial effort to provide such schools as seemed desirable.

Virginia and the southern type. Almost all the conditions attending the settlement of Virginia were in contrast to those of the New England colonies. The early settlers were from the same class of English yeomen and country squires, but with the important difference that whereas the New England settlers were Dissenters from the Church of England and had come to America to obtain freedom in religious worship, the settlers in Virginia were adherents of the National Church and had come to America for gain. The marked differences in climate and possible crops led to the large plantation type of settlement, instead of the compact little New England town; the introduction of large numbers of "indentured white servants," and later negro slaves, led to the development of classes in society instead of to the New England type of democracy; and the lack of a strong religious motive for

education naturally led to the adoption of the customary English practices instead of to the development of colonial schools. The tutor in the home, education in small private pay schools, or education in the mother country were the prevailing methods adopted among the well-to-do planters, while the poorer classes were left with only such advantages as apprenticeship training or charity schools might provide. Throughout the entire colonial period Virginia remained most like the mother country in spirit and practice, and stands among the colonies as the clearest example of the English attitude toward school support and control. As in the mother country, education was considered to be no business of the State. Rhode Island, New York, New Jersey, Delaware, and the Carolinas followed the English attitude, much after the fashion of Virginia.

Practically all the Virginia colonial legislation relating to education refers either to William and Mary College (founded in 1693), or to the education of orphans and the children of the poor. Both these interests, as we have previously seen, were typically English. All the seventeenth-century legislation relating to education is based on the English Poor-Law legislation,[1] previously described (p. 325), and included the compulsory apprenticeship of the children of the poor, training in a trade, the requirement that the public authorities must provide opportunities for this type of education, and the use of both local and colony funds for the purpose (**R. 200 a**), all, as the Statutes state, "according to the aforesaid laudable custom in the Kingdom of England." It was not until 1705 that Virginia reached the point, reached by Massachusetts in 1642, of requiring that "the master of the [apprenticed] orphan shall be obliged to teach him to read and write." In all the Anglican colonies the apprenticing of the children of the poor (see **R. 200 b** for some interesting North Carolina records) was a characteristic feature. During the entire colonial period the indifference of the mother country to general education was steadily reflected in Virginia and in the colonies which were essentially Anglican in religion, and followed the English example.

[1] The seventeenth-century Virginia legislation relating to education is as follows:
1643. Orphans to be educated "according to the competence of their estate."
1646. "If the estate be so meane and inconsiderate that it will not reach to a free education, then that orphan [shall] be bound to some manuall trade . . . except some friends or relatives be willing to keep them."
1660–61. "To avoid sloth and idleness . . . as also for the relief of parents whose poverty extends not to giving [their children] breeding, the justices of the peace should . . . bind out children to tradesmen or husbandmen to be brought up in some good and lawful calling."

Type plans represented by 1750. The seventeenth century thus witnessed the transplanting of European ideas as to government, religion, and education to the new American colonies, and by the eighteenth century we find three clearly marked types of educational practice or conception as to educational responsibility established on American soil.

The first was the strong Calvinistic conception of a religious State, supporting a system of common vernacular schools, higher Latin schools, and a college, for both religious and civic ends. This type dominated New England, and is best represented by Massachusetts. From New England this attitude was carried westward by the migrations of New England people, and deeply influenced the educational development of all States to which the New Englander went in any large numbers. This was the educational contribution of Calvinism to America.[1] Out of it our state school systems of to-day, by the separation of Church and State, have been evolved.

The second was the parochial-school conception of the Dutch, Moravians, Mennonites, German Lutherans, German Reformed Church, Quakers, Presbyterians, Baptists, and Catholics. This type is best represented by Protestant Pennsylvania and Catholic Maryland. It stood for church control of all educational efforts, resented state interference, was dominated only by church purposes, and in time came to be a serious obstacle in the way of rational state school organization and control.

The third type, into which the second type tended to fuse, conceived of public education, aside from collegiate education, as intended chiefly for orphans and the children of the poor, and as a charity which the State was under little or no obligation to assist in supporting. All children of the upper and middle classes in society attended private or church schools, or were taught by tutors in their homes, and for such instruction paid a proper tuition fee. Paupers and orphans, in limited numbers and for a limited time, might be provided with some form of useful education at the expense of either Church or State. This type is best represented by Anglican Virginia, which typified well the *laissez-*

[1] "Perhaps the most remarkable, because the most widespread and complex illustration of the educational genius of Calvinism is to be found in the American colonies, where the various European streams of Calvinism so converged that the seventeenth-century colonists were predominantly Calvinists — not merely the Puritans of New England, but the Dutch, Walloons, Huguenots, Scotch, and Scotch-Irish, with a considerable Puritan admixture in Anglican Virginia and Catholic Maryland." (Foster, H. D., in Monroe's *Cyclopedia of Education*, vol. I, p. 498.)

faire policy which dominated England from the time of the Protestant Reformation until the latter half of the nineteenth century.

These three types of attitude toward the provision of education became fixed American types, and each deeply influenced subsequent American educational development, as we shall point out in a later chapter.

Dominance of the religious motive. The seventeenth century was essentially a period of the transplanting, almost unchanged in form, of the characteristic European institutions, manners, religious attitudes, and forms of government to American shores. Each sect or nationality on arriving set up in the new land the characteristic forms of church and school and social observances known in the old home-land. Dutch, Germans, English, Scotch, Calvinists, Lutherans, Anglicans, Presbyterians — reproduced in the American colonies the main type of schools existing at the time of their migration in the mother land from which they came. They were also dominated by the same deep religious purpose.

The dominance of this religious purpose in all instruction is well illustrated by the great beginning-school book of the time, *The New England Primer.* A digest of the contents of this, with a few pages reproduced, is given in **R. 202.** This book, from which all children learned to read, was used by Dissenters and Lutherans alike in the American colonies. This book Ford well characterizes in the following words:

> As one glances over what may truly be called "The Little Bible of New England," and reads its stern lessons, the Puritan mood is caught with absolute faithfulness. Here was no easy road to knowledge and salvation; but with prose as bare of beauty as the whitewash of their churches, with poetry as rough and stern as their storm-torn coast, with pictures as crude and unfinished as their own glacial-smoothed boulders, between stiff oak covers which symbolized the contents, the children were tutored, until, from being unregenerate, and as Jonathan Edwards said, "young vipers, and infinitely more hateful than vipers" to God, they attained that happy state when, as expressed by Judge Sewell's child, they were afraid that they "should goe to hell," and were "stirred up dreadfully to seek God." God was made sterner and more cruel than any living judge, that all might be brought to realize how slight a chance even the least erring had of escaping eternal damnation.

One learned to read chiefly that one might be able to read the Catechism and the Bible, and to know the will of the Heavenly Father. There was scarcely any other purpose in the mainte-

nance of elementary schools. In the grammar schools and the colleges students were "instructed to consider well the main end of life and studies." These institutions existed mainly to insure a supply of learned ministers for service in Church and State. Such studies as history, geography, science, music, drawing, secular literature, and organized play were unknown. Children were constantly surrounded, week days and Sundays, by the somber Calvinistic religious atmosphere in New England,[1] and by the careful religious oversight of the pastors and elders in the colonies where the parochial-school system was the ruling plan for education. Schoolmasters were required to "catechise their scholars in the principles of the Christian religion," and it was made "a chief part of the schoolmaster's religious care to commend his scholars and his labors amongst them unto God by prayer morning and evening, taking care that his scholars do reverently attend during the same." Religious matter constituted the only reading matter, outside the instruction in Latin in the grammar schools. The Catechism was taught, and the Bible was read and expounded. Church attendance was required, and grammar-school pupils were obliged to report each week on the Sunday sermon. This insistence on the religious element was more prominent in Calvinistic New England than in the colonies to the south, but everywhere the religious purpose was dominant. The church parochial and charity schools were essentially schools for instilling the church practices and beliefs of the church maintaining them. This state of affairs continued until well toward the beginning of the nineteenth century.

QUESTIONS FOR DISCUSSION

1. Compare the conservative and radical groups in the English purification movement with the conservative and radical groups, as typified by Erasmus and Luther, at the time of the Reformation.
2. Show how, for each group, the schools established were merely homeland foreign-type religious schools, with nothing distinctively American about them.

---

[1] "To illustrate how omnipresent this religious atmosphere was, I cannot do better than to cite the occasion when Judge Sewell found that the spout which conducted the rain water from his roof did not perform its office. After patient searching, a ball belonging to the small children was found lodged in the spout. Thereupon the father sent for the minister and had a season of prayer with his boys that their mischief or carelessness might be set in its proper aspect and that the event might be sanctified to their spiritual good. Powers of darkness and of light were struggling for the possession of every soul, and it was the duty of parents, ministers, and teachers to lose no opportunity to pluck the children as brands from the burning." (Johnson Clifton, *Old-Time Schools and Schoolbooks*, p. 12.)

3. Show why such copying of home-land types, even to the Latin grammar school, was perfectly natural.
4. The provision of the Law of 1642 requiring instruction in "the capital laws of the country" was new. How do you explain this addition to mother-land practices?
5. Show why the Law of 1642 was Calvinistic rather than Anglican in its origin.
6. Explain the meaning of the preamble to the Law of 1647.
7. Show how the Law of 1647 must go back for precedents to German, Dutch, and Scotch sources.
8. Apply the six principles stated by Mr. Martin, as embodied in the legislation of 1647, to modern state school practice, and show how we have adopted each in our laws.
9. Show also that the Law of 1647, as well as modern state school laws, is neither paternalistic nor socialistic in essential purpose.
10. Show that, though the mixture of religious sects in Pennsylvania made colonial legislation difficult, still it would have been possible to have enforced the Massachusetts Law of 1642, or the Pennsylvania laws of 1683 or 1693, in the colony. How do you explain the opposition and failure to do so?
11. Show how the charity schools for the poor, and church missionary-society schools, were the natural outcome of the English attitude toward elementary education.
12. Which of the three type plans in the American colonies by 1750 most influenced educational development in your State?
13. State the important contribution of Calvinism to our new-world life.
14. Explain the indifference of the Anglican Church to general education during the whole of our colonial period.
15. Explain what is meant by "The Puritan Church applied to its servant, the State," etc.

SELECTED READINGS

In the accompanying *Book of Readings* the following selections are reproduced:

183. Nichols: The Puritan Attitude.
184. Gov. Bradford: The Puritans leave England.
185. First Fruits: The Founding of Harvard College.
186. First Fruits: The First Rules for Harvard College.
    (*a*) Entrance Requirements.
    (*b*) Rules and Precepts.
    (*c*) Time and Order of Studies.
    (*d*) Requirements for Degrees.
187. College Charters: Extracts from, showing Privileges.
    (*a*) Harvard College, 1650.
    (*b*) Brown College, 1764.
188. Dillaway: Founding of the Free School at Roxburie.
189. Baird: Rules and Regulations for Hopkins Grammar School.
190. Statutes: The Massachusetts Law of 1642.
191. Statutes: The Massachusetts Law of 1647.
192. Court Records: Presentment of Topsfield for Violating the Law of 1642.
193. Statutes: The Connecticut Law of 1650.
194. Statutes: Plymouth Colony Legislation.
195. Flatbush: Contract with a Dutch Schoolmaster.

196. New Amsterdam: Rules for a Schoolmaster in.
197. Statutes: The Pennsylvania Law of 1683.
198. Minutes of Council: The First School in Philadelphia.
199. Murray: Early Quaker Injunctions regarding Schools.
200. Statutes: Apprenticeship Laws in the Southern Colonies.
    (*a*) Virginia Statutes.
    (*b*) North Carolina Court Records.
201. Stiles: A New England Indenture of Apprenticeship.
202. The New England Primer: Description and Digest.

QUESTIONS ON THE READINGS

1. What does the selection on The Puritan Attitude (183) reveal as to the extent and depth of the Reformation in England?
2. Characterize the feelings and emotions and desires of the Puritans, as expressed in the extract (184) from Governor Bradford's narrative.
3. Characterize the spirit behind the founding of Harvard College, as expressed in the extract from New England's First Fruits (185).
4. What was the nature and purpose of the Harvard College instruction as shown by the selection 186 a–d?
5. Point out the similarity between the exemptions granted to Harvard College by the Legislature of the colony (187 a) and those granted to mediæval universities (103–105). Compare the privileges granted Brown (187 b) and those contained in 104.
6. Compare the founding of the Free School at Roxbury (188) with the founding of an English Grammar School (141–43).
7. What does the distribution of scholars at Roxbury (188) show as to the character of the school?
8. State the essentials of the Massachusetts Law of 1642 (190).
9. Compare the Massachusetts Law of 1642 and the English Poor-Law of 1601 (190 with 174) as to fundamental principles involved in each.
10. What does the court citation of Topsfield (192) show?
11. What new principle is added (191) by the Law of 1647, and what does this new law indicate as to needs in the colony for classical learning?
12. Show how the Connecticut Law of 1650 (193) was based on the Massachusetts Law (190) of 1642.
13. What does the Plymouth Colony appeal for Harvard College (194 b) indicate as to community of ideas in early New England?
14. What type of school was it intended to endow from the Cape Cod fisheries (194 c)?
15. What is the difference between the Plymouth requirement as to grammar schools (194 d) and the Massachusetts requirement (191)?
16. Compare the rules for the New Haven Grammar School (189) with those for Colet's London School (138 a–c).
17. Characterize the early Dutch schools as shown by the rules for the schoolmaster (196) and the Flatbush contract (195).
18. Just what type of education did the Quakers mean to provide for, as shown in the extract from their Rules of Discipline (199)?
19. What kind of a school was the first one established in Philadelphia (198)?
20. Compare the proposed Pennsylvania Law of 1683 (197) and the Massachusetts Law of 1642 (190).
21. What conception of education is revealed by the Virginia apprenticeship laws (200 a, 1–3) and the North Carolina court records (200 b, 1–3)?
22. Characterize the New England Indenture of Apprenticeship given in 201.

SUPPLEMENTARY REFERENCES

Boone, R. G. *Education in the United States.*

Brown, S. W. *The Secularization of American Education.*

Cheyney, Edw. P. *European Background of American Education.*

Dexter, E. G. *A History of Education in the United States.*

*Eggleston, Edw. *The Transit of Civilization.*

Fisk, C. R. "The English Parish and Education at the Beginning of American Civilization"; in *School Review*, vol. 23, pp. 433–49. (September, 1915.)

*Ford, P. L. *The New England Primer.*

*Heatwole, C. J. *A History of Education in Virginia.*

Jackson, G. L. *The Development of School Support in Colonial Massachusetts.*

*Kilpatrick, Wm. H. *The Dutch Schools of New Netherlands and Colonial New York.*

*Knight, E. W. *Public School Education in North Carolina.*

*Martin, Geo. H. *Evolution of the Massachusetts Public School System.*

Seybolt, R. F. *Apprenticeship and Apprentice Education in Colonial New York and New England.*

*Small, W. H. "The New England Grammar School"; in *School Review*, vol. 10, pp. 513–31. (September, 1902.)

Small, W. H. *Early New England Schools.*

CHAPTER XVI

THE RISE OF SCIENTIFIC INQUIRY

New attitudes after the eleventh century. From the beginning of the twelfth century onward, as we have already noted, there had been a slow but gradual change in the character of human thinking, and a slow but certain disintegration of the Mediæval System, with its repressive attitude toward all independent thinking. Many different influences and movements had contributed to this change — the Moslem learning and civilization in Spain, the recovery of the old legal and medical knowledge, the revival of city life, the beginnings anew of commerce and industry, the evolution of the universities, the rise of a small scholarly class, the new consciousness of nationality, the evolution of the modern languages, the beginnings of a small but important vernacular literature, and the beginnings of travel and exploration following the Crusades — all of which had tended to transform the mediæval man and change his ways of thinking. New objects of interest slowly came to the front, and new standards of judgment gradually were applied. In consequence the mediæval man, with his feeling of personal insignificance and lack of self-confidence, came to be replaced by a small but increasing number of men who were conscious of their powers, possessed a new self-confidence, and realized new possibilities of intellectual accomplishment.

The Revival of Learning, first in Italy and then elsewhere in western Europe, was the natural consequence of this awakening of the modern spirit, and in the careful work done by the humanistic scholars of the Italian Renaissance in collecting, comparing, questioning, inferring, criticizing, and editing the texts, and in reconstructing the ancient life and history, we see the beginnings of the modern scientific spirit. It was this same critical, questioning spirit which, when applied later to geographical knowledge, led to the discovery of America and the circumnavigation of the globe; which, when applied to matters of Christian faith, brought on the Protestant Revolts; which, when applied to the problems of the universe, revealed the many wonderful fields of modern science; and which, when applied to government, led to a ques-

tioning of the divine right of kings and the rise of constitutional government. The awakening of scientific inquiry and the scientific spirit, and the attempt of a few thinkers to apply the new method to education, to which we now turn, may be regarded as only another phase of the awakening of the modern inquisitive spirit which found expression earlier in the rise of the universities, the recovery and reconstruction of the ancient learning, the awakening of geographical discovery and exploration, and the questioning of the doctrines and practices of the Mediæval Church.

Insufficiency of ancient science. From the point of view of scientific inquiry, all ancient learning possessed certain marked fundamental defects. The Greeks had — their time and age in world-civilization considered — made many notable scientific observations and speculations, and had prepared the way for future advances. Thales (636?–546? B.C.), Xenophanes (628?–520? B.C.), Anaximenes (557–504 B.C.), Pythagoras (570–500 B.C.), Heraclitus (c. 500 B.C.), Empedocles (460?–361? B.C.), and Aristotle (384–322 B.C.) had all made interesting speculations as to the nature of matter,[1] Aristotle finally settling the question by naming the world-elements as earth, water, air, fire, and ether. Hippocrates (460–367? B.C.), as we have seen (p. 197), had observed the sick and had recorded and organized his observations in such a manner[2] as to form the foundations upon which the science of medicine could be established. The Greek physician, Galen (130–200 A.D.) added to these observations, and their combined work formed the basis upon which modern medical science has slowly been built up.

On the other hand, some of what each wrote was mere speculation and error,[3] and modern physicians were compelled to begin all over and along new lines before any real progress in medicine

[1] Thales had guessed that water was the primal element from which all had been derived; Anaximanes guessed air; Heraclitus fire; Pythagoras held that number was the essence of all things; Empedocles thought that fire and heat, accompanied by "indestructible forces," formed the basis; Xenophanes had guessed air, fire, water, and earth, and had worked out a complete scheme of creation. For an interesting discussion of these early attempts to explain creation, see J. W. Draper, *History of the Intellectual Development of Europe*, vol. I, chap. IV.

[2] Among the treatises by him accepted as genuine are *On Airs, Waters, and Places; On Epidemics; On Regimen in Acute Diseases; On Fractures;* and *On Injuries of the Head.*

[3] For example, Hippocrates had held that the human body contains four "humors" — blood, phlegm, yellow bile, and black bile — and that disease was caused by the undue accumulation of some one of these humors in some organ, which it was the business of the physician to get rid of by blood-letting, blistering, purging, or other means.

could be made. Aristotle had done a notable work in organizing and codifying Greek scientific knowledge, as the list of his many scientific treatises in use in Europe by 1300 (**R.** 87) will show, but his writings were the result of a mixture of keen observation and brilliant speculation, contained many inaccuracies, and in time, due to the reverence accorded him as an authority by the mediæval scholars and the church authorities, proved serious obstacles to real scientific progress.

At Alexandria the most notable Greek scientific work had been done. Euclid (323–283 B.C.) in geometry; Aristarchus (third century B.C.), who explained the motion of the earth; Eratosthenes (270–196 B.C.), who measured the size of the earth; Archimedes (270?–212 B.C.), a pupil of Euclid's, who applied science in many ways and laid the foundations of dynamics; Hipparchus (160–125 B.C.), the father of astronomy, who studied the heavens and catalogued the stars, were among the more famous Greeks who studied and taught there in the days when Alexandria had succeeded Athens as the intellectual capital of the Greek world. Some remarkable advances also were made in the study of human anatomy and medicine by two Greeks, Herophilus (335–280 B.C.) and Erasistratus (d. 280 B.C.), who apparently did much dissecting.

But even at Alexandria the promise of Greek science was unfulfilled. Despite many notable speculations and scientific advances, the hopeful beginnings did not come to any large fruitage, and the great contribution made by the Greeks to world civilization was less along scientific lines than along the lines of literature and philosophy. Their great strength lay in the direction of philosophic speculation, and this tendency to speculate, rather than to observe and test and measure and record, was the fundamental weakness of all Greek science. The Greeks never advanced in scientific work to the invention and perfection of instruments for the standardization of their observations. As a result they passed on to the mediæval world an extensive "book science" and not a little keen observation, of which the works of Aristotle and the Alexandrian mathematicians and astronomers form the most conspicuous examples, but little scientific knowledge of which the modern world has been able to make much use. The "book science" of the Greeks, and especially that of Aristotle, was highly prized for centuries, but in time, due to the many inaccuracies, had to be discarded and done anew by modern scholars.

The Romans, as we have seen (chapter III), were essentially a practical people, good at getting the work of the world done, but not much given to theoretical discussion or scientific speculation. They were organizers, governors, engineers, executives, and literary workers rather than scientists. They executed many important undertakings of a practical character, such as the building of roads, bridges, aqueducts, and public buildings; organized government and commerce on a large scale; and have left us a literature and a legal system of importance, but they contributed little to the realm of pure science. The three great names in science in all their history are Strabo the geographer (63 B.C.–24 A.D.); Pliny the Elder (23–79 A.D.), who did notable work as an observer in natural history; and Galen (a Roman-Greek), in medicine. They, like the Greeks, were pervaded by the same fear that their science might prove useful, whereas they cultivated it largely as a mental exercise (R. 203).

The Christian reaction against inquiry. The Christian attitude toward inquiry was from the first inhospitable, and in time became exceedingly intolerant. The tendency of the Western Church, it will be remembered (p. 94), was from the first to reject all Hellenic learning, and to depend upon emotional faith and the enforcement of a moral life. By the close of the third century the hostility to pagan schools and Hellenic learning had become so pronounced that the *Apostolic Constitutions* (R. 41) ordered Christians to abstain from all heathen books, which could contain nothing of value and only served "to subvert the faith of the unstable." In 401 A.D. the Council of Carthage forbade the clergy to read any heathen author, and Greek learning now rapidly died out in the West. For a time it was almost entirely lost. In consequence Greek science, then best represented by Alexandrian learning, and which contained much that was of great importance, was rejected along with other pagan learning. The very meager scientific knowledge that persisted into the Middle Ages in the great mediæval textbooks (p. 162), as we have seen in the study of the Seven Liberal Arts (chapter VII), came to be regarded as useful only in explaining passages of Scripture or in illustrating the ways of God toward man. The one and only science worthy of study was Theology, to which all other learning tended (see Figure 44, p. 154).

The history of Christianity throughout all the Dark Ages is a history of the distrust of inquiry and reason, and the emphasis of

blind emotional faith. Mysticism, good and evil spirits, and the interpretation of natural phenomena as manifestations of the Divine will from the first received large emphasis. The worship of saints and relics, and the great development of the sensuous and symbolic, changed the earlier religion into a crude polytheism. During the long period of the Middle Ages the miraculous flourished. The most extreme superstition pervaded all ranks of society. Magic and prayers were employed to heal the sick, restore the crippled, foretell the future, and punish the wicked. Sacred pools, the royal touch, wonder-working images, and miracles through prayer stood in the way of the development of medicine (R. 204). Disease was attributed to satanic influence, and a regular schedule of prayers for cures was in use. Sanitation was unknown. Plagues and pestilences were manifestations of Divine wrath, and hysteria and insanity were possession by the devil to be cast out by whipping and torture. One's future was determined by the position of the heavenly bodies at the time of birth. Eclipses, meteors, and comets were fearful portents of Divine displeasure:

> Eight things there be a Comet brings,
>   When it on high doth horrid rage;
> Wind, Famine, Plague, and Death to Kings,
>   War, Earthquakes, Floods, and Direful Change.[1]

The literature on magic was extensive. The most miraculous happenings were recorded and believed. Trial by ordeal, following careful religious formulæ, was common before 1200, though prohibited shortly afterward by papal decrees (1215, 1222). The insistence of the Church on "the willful, devilish character of heresy," and the extension of heresy to cover almost any form of honest doubt or independent inquiry, caused an intellectual stagnation along lines of scientific investigation which was not relieved for more than a thousand years. The many notable advances in physics, chemistry, astronomy, and medicine made by Moslem scholars (chapter VIII) were lost on Christian Europe, and had to be worked out again centuries later by the scholars of the western world. Out of the astronomy of the Arabs the Christians got only astrology; out of their chemistry they got only alchemy. Both in time stood seriously in the way of real scientific thinking and discovery.

[1] From a collection of doggerel rhymes put out by two pastors and doctors of theology at Basle, in 1618, by the names of Grassner and Gross, to interpret the orthodox theory of comets to peasants and school children.

Growing tolerance changed by the Protestant Revolts. After the rise of the universities, the expansion of the minds of men which followed the Crusades and the revival of trade and industry, the awakening which came with the revival of the old learning and the rise of geographical discovery, the church authorities assumed a broader and a more tolerant attitude toward inquiry and reason than had been the case for hundreds of years. It would have been surprising, with the large number of university-trained men entering the service of the Church, had this not been the case. By the middle of the fifteenth century it looked as though the Renaissance spirit might extend into many new directions, and by 1500 the world seemed on the eve of important progress in almost every line of endeavor. As was pointed out earlier (p. 259), the Church was more tolerant than it had been for centuries, and about the year 1500 was the most stimulating time in the history of our civilization since the days of Alexandria and ancient Rome.

In 1517 Luther nailed his theses to the church door in Wittenberg. The Church took alarm and attempted to crush him, and soon the greatest contest since the conflict between paganism and Christianity was on. Within half a century all northern lands had been lost to the ancient Church (see map, p. 296); the first successful challenge of its authority during its long history.

The effect of these religious revolts on the attitude of the Church toward intellectual liberty was natural and marked. The tolerance of inquiry recently extended was withdrawn, and an era of steadily increasing intolerance set in which was not broken for more than a century. In an effort to stop the further spread of the heresy, the Church Council of Trent (1545–63) adopted stringent regulations against heretical teachings (p. 303), while the sword and torch and imprisonment were resorted to to stamp out opposition and win back the revolting lands. A century of merciless warfare ensued, and the hatreds engendered by the long and bitter struggle over religious differences put both Catholic and Protestant Europe in no tolerant frame of mind toward inquiry or new ideas. The Inquisition, a sort of universal mediæval grand jury for the detection and punishment of heretics, was revived, and the Jesuits, founded in 1534–40, were vigorous in defense of the Church and bitter in their opposition to all forms of independent inquiry and Protestant heresy.

It was into this post-Reformation atmosphere of suspicion and

distrust and hatred that the new critical, inquiring, questioning spirit of science, as applied to the forces of the universe, was born. A century earlier the first scientists might have obtained a respectful hearing, and might have been permitted to press their claims; after the Protestant Revolts had torn Christian Europe asunder this could hardly be. As a result the early scientists found themselves in no enviable position. Their theories were bitterly assailed as savoring of heresy; their methods and purposes were alike suspected; and any challenge of an old long-accepted idea was likely to bring a punishment that was swift and sure. From the middle of the sixteenth to the middle of the seventeenth century was not a time when new ideas were at a premium anywhere in western Europe. It was essentially a period of reaction, and periods of reaction are not favorable to intellectual progress. It was into this century of reaction that modern scientific inquiry and reasoning, itself another form of expression of the intellectual attitudes awakened by the work of the humanistic scholars of the Italian Renaissance, made its first claim for a hearing.

The beginnings of modern scientific method. One of the great problems which has always deeply interested thinking men in all lands is the nature and constitution of the material universe, and to this problem people in all stages of civilization have worked out for themselves some kind of an answer. It was one of the great speculations of the Greeks, and it was at Alexandria, in the period of its decadence, that the Egyptian geographer Ptolemy (138 A.D.) had offered an explanation which was accepted by Christian Europe and which dominated all thinking on the subject during the Middle Ages. He had concluded that the earth was located at the center of the visible universe, immovable, and that the heavenly bodies moved around the earth, in circular motion, fixed in crystalline spheres.[1] This explanation accorded perfectly with Christian ideas as to creation, as well as with Christian conceptions as to the position and place of man and his relation to the heavens above and to a hell beneath. This theory

[1] "The earth is a sphere, situated in the center of the heavens; if it were not, one side of the heavens would appear nearer to us than the other, and the stars would be larger there. The earth is but a point in comparison to the heavens, because the stars appear of the same magnitude and at the same distance *inter se*, no matter where the observer goes on the earth. It has no motion of translation. . . . If there were a motion, it would be proportionate to the great mass of the earth and would leave behind animals and objects thrown into the air. This also disproves the suggestion made by some, that the earth, while immovable in space, turns round on its own axis." (Ptolemy, Digest of argument of Book 1 of the *Almagest.*)

was obviously simple and satisfactory, and became sanctified with time. As we see it now the wonder is that such an explanation could have been accepted for so long. Only among an uninquisitive people could so imperfect a theory have endured for over fourteen centuries.

In 1543 a German-Polish church canon and physician named Nicholas Copernicus published his *De Revolutionibus Orbium Celestium*, in which he set forth the explanation of the universe which we now know. He piously dedicated the work to Pope Paul III, and wisely refrained from publishing it until the year of his death.[1] Anything so completely upsetting the Christian conception as to the place and position of man in the universe could hardly be expected to be accepted, particularly at the time of its publication, without long and bitter opposition.

FIG. 113.
NICHOLAS KOPERNIK
(Copernicus),
(1473–1543)

In the dedicatory letter (**R. 205**), Copernicus explains how, after feeling that the Ptolemaic explanation was wrong, he came to arrive at the conclusions he did. The steps he set forth form an excellent example of a method of thinking now common, but then almost unknown. They were:

1. Dissatisfaction with the old Ptolemaic explanation.
2. A study of all known literature, to see if any better explanation had been offered.
3. Careful thought on the subject, until his thinking took form in a definite theory.
4. Long observation and testing out, to see if the observed facts would support his theory.
5. The theory held to be correct, because it reduced all known facts to a systematic order and harmony.

This is as clear a case of inductive reasoning as was L. Valla's exposure of the forgery of the so-called "Donation of Constantine," an example of deductive reasoning. Both used a new method — the method of modern scholarship. In both cases the results were revolutionary. As Valla stands forth as the first critical classical scholar of modern times, so Copernicus stands

[1] In the dedicatory letter Copernicus states that he had had the completed manuscript in his study for thirty-six years, and published it now only on the urging of friends.

forth as the first modern scientific thinker. The beginnings of all modern scientific investigation date from 1543. Of his work a recent writer (E. C. J. Morton) has said:

> Copernicus cannot be said to have flooded with light the dark places of nature — in the way that one stupendous mind subsequently did — but still, as we look back through the long vista of the history of science, the dim Titanic figure of the old monk seems to rear itself out of the dull flats around it, pierces with its head the mists that overshadow them, and catches the first gleam of the rising sun, . . .
>
> Like some iron peak, by the Creator
> Fired with the red glow of the rushing morn.

The new method of inquiry applied by others. At first Copernicus' work attracted but little attention. An Italian Dominican by the name of Giordano Bruno (1548–1600), deeply impressed by the new theory, set forth in Latin and Italian the far-reaching and majestic implications of such a theory of creation, and was burned at the stake at Rome for his pains. A Dane, Tycho Brahe, after twenty-one years of careful observation of the heavens, during which time he collected "a magnificent series of observations, far transcending in accuracy [1] and extent anything that had been accomplished by his predecessors," showed Aristotle to be wrong in many particulars. His observations of the comet of 1577 led him to conclude that the theory of crystalline spheres was impossible, and that the common view of the time as to their nature [2] was absurd. In 1609 a German by the name of Johann Kepler (1571–1630), using the records of observations which Tycho Brahe had accumulated and applying them to the planet Mars, proved the truth of the Copernican theory and framed his famous three laws for planetary motion.

FIG. 114. TYCHO BRAHE (1546–1601)

[1] To secure the greatest possible accuracy he constructed a wooden outdoor quadrant some ten feet in radius, with a brass scale, thus permitting readings to a fraction of an inch.

[2] "The current view was that comets were formed by the ascending of human sins from the earth, that they were changed into a kind of gas, and ignited by the anger of God. This poisoned stuff then fell down on people's heads, causing all kinds of mischief, such as pestilence, sudden death, storms, etc." (Dryer, J. L. E., *Tycho Brahe.*)

Finally an Italian, Galileo Galilei, a professor at the University of Pisa, developing a telescope that would magnify to eight diameters, discovered Jupiter's satellites and Saturn's rings. The story of his discovery of the satellites of Jupiter is another interesting illustration of the careful scientific reasoning of these early workers (**R. 206**). Galileo also made a number of discoveries in physics, through the use of new scientific methods, which completely upset the teachings of the Aristotelians, and made the most notable advances in mechanics since the days of Archimedes. For his pronounced advocacy of the Copernican theory he was called to Rome (1615) by the Cardinals of the Inquisition, the Copernican theory was condemned as "absurd in philosophy" and as "expressly contrary to Holy Scripture," and Galileo was compelled to recant (1616) his error.[1] For daring later (1632) to assume that he might, under a new Pope, defend the Copernican theory, even in an indirect manner, he was again called before the inquisitorial body, compelled to recant and abjure his errors (**R. 207**) to escape the stake, and was then virtually made a prisoner of the Inquisition for the remainder of his life. So strongly had the forces of mediævalism reasserted themselves after the Protestant Revolts!

FIG. 115. GALILEO GALILEI (1564–1642)

FIG. 116. SIR ISAAC NEWTON (1642–1727)

Finally the English scholar Newton (1642–1727), in his *Principia* (1687), settled permanently all discussions as to the Copernican theory by his wonderful mathematical studies. He demonstrated mathematically the motions of the planets and comets, proved Kepler's laws to be true, explained gravitation and the tides, made clear the nature of light,

[1] "For over fifty years he was the knight militant of science, and almost alone did successful battle with the hosts of Churchmen and Aristotelians who attacked him on all sides — one man against a world of bigotry and ignorance. If then . . . when face to face with the terrors of the Inquisition he, like Peter, denied his Master, no honest man, knowing all the circumstances, will be in a hurry to blame him." (Fahie, J. J., *Galileo, His Life and Work.*)

and reduced dynamics to a science. Of his work a recent writer, Karl Pearson, has said:

> The Newtonian laws of motion form the starting point of most modern treatises on dynamics, and it seems to me that physical science, thus started, resembles the mighty genius of an Arabian tale emerging amid metaphysical exhalations from the bottle in which for long centuries it had been corked down.

So far-reaching in its importance was the scientific work of Newton that Pope's couplet seems exceedingly applicable:

> Nature and Nature's laws lay hid in night;
> God said, "Let Newton be," and all was light.

The new method applied in other fields. The new method of study was soon applied to other fields by scholars of the new type, here and there, and always with fruitful results. The Englishman, William Gilbert (1540–1603) published, in 1600, his *De Arte Magnetica*, and laid the foundations of the modern study of electricity and magnetism. A German-Swiss by the name of Hohenheim, but who Latinized his name to Paracelsus (1493–1541), and who became a professor in the medical faculty at the University of Basle, in 1526 broke with mediæval traditions by being one of the first university scholars to refuse to lecture in Latin. He ridiculed the medical theories of Hippocrates (p. 197) and Galen (p. 198), and, regarding the human body as a chemical compound, began to treat diseases by the administration of chemicals. A Saxon by the name of Landmann, who also Latinized his name to Agricola (1494–1555), applied chemistry to mining and metallurgy, and a French potter named Bernard Palissy (c. 1500–88) applied chemistry to pottery and the arts. To Paracelsus, Agricola, and Palissy we are indebted for having laid, in the sixteenth century, the foundations of the study of modern chemistry.

FIG. 117. WILLIAM HARVEY (1578–1657)

A Belgian by the name of Vesalius (1514–64) was the first modern to dissect the human body, and for so doing was sentenced by the Inquisition to perform a penitential journey to Jerusalem. One of his disciples discovered the valves in the veins and was the teacher of the Englishman, William Harvey, who discovered the circulation of the blood and

later (1628) dared to publish the fact to the world. These men established the modern studies of anatomy and physiology. Another early worker was a Swiss by the name of Conrad Gessner (1516–65), who observed and wrote extensively on plants and animals, and who stands as the first naturalist of modern times.

The sixteenth century thus marks the rise of modern scientific inquiry, and the beginnings of the study of modern science. The number of scholars engaged in the study was still painfully small, and the religious prejudice against which they worked was strong and powerful, but in the work of these few men we have not only the beginnings of the study of modern astronomy, physics, chemistry, metallurgy, medicine, anatomy, physiology, and natural history, but also the beginnings of a group of men, destined in time to increase greatly in number, who could see straight, and who sought facts regardless of where they might lead and what preconceived ideas they might upset. How deeply the future of civilization is indebted to such men, men who braved social ostracism and often the wrath of the Church as well, for the, to them, precious privilege of seeing things as they are, we are not likely to over-estimate. In time their work was destined to reach the schools, and to materially modify the character of all education.

Human reason in the investigation of nature. To the English statesman and philosopher, Francis Bacon, more than to any one else, are we indebted for the proper formulation and statement of this new scientific method. Though not a scientist himself, he has often been termed "the father of modern science." Seeing clearly the importance of the new knowledge, he broke entirely with the old scholastic deductive logic as expressed in the *Organon*, of Aristotle, and formulated and expressed the methods of inductive reasoning in his *Novum Organum*, published in 1620. In this he showed the insufficiency of the method of argumentation; analyzed and formulated the inductive method of reasoning, of which his study as to the nature of heat [1] is a good

FIG. 118. FRANCIS BACON (1561–1626)

[1] See Routledge, R., *A Popular History of Science*, pp. 135–36, for a good digest of Bacon's inductive investigation, as a result of which he arrived at the conclusion that Heat is an expansive bridled motion, struggling in the small particles of bodies."

example; and pointed out that knowledge is a process, and not an end in itself; and indicated the immense and fruitful field of science to which the method might be applied. By showing how to learn from nature herself he turned the Renaissance energy into a new direction, and made a revolutionary break with the disputations and deductive logic of the Aristotelian scholastics which had for so long dominated university instruction.

In formulating the new method he first pointed out the defects of the learning of his time, which he classified under the head of "distempers," three in number, and as follows:

1. *Fantastic learning:* Alchemy, magic, miracles, old-wives' tales, credulities, superstitions, pseudo-science, and impostures of all sorts inherited from an ignorant past, and now conserved as treasures of knowledge.

2. *Contentious learning:* The endless disputations of the Scholastics about questions which had lost their significance, deductive in character, not based on any observation, not aimed primarily to arrive at truth, "fruitful of controversy, and barren of effect."

3. *Delicate learning:* The new learning of the humanistic Renaissance, verbal and not real, stylish and polished but not socially important, and leading to nothing except a mastery of itself.

As an escape from these three types of distempers, which well characterized the three great stages in human progress from the sixth to the fifteenth centuries, Bacon offered the inductive method, by means of which men would be able to distinguish true from false, learn to see straight, create useful knowledge, and fill in the great gaps in the learning of the time by actually working out new knowledge from the unknown. The collecting, organizing, comparing, questioning, and inferring spirit of the humanistic revival he now turned in a new direction by organizing and formulating for the work a new *Organum* to take the place of the old *Organon* of Aristotle. In Book I he sets forth some of the difficulties (R. 208) with which those who try new experiments or work out new methods of study have to contend from partisans of old ideas.

The *Novum Organum* showed the means of escape from the errors of two thousand years by means of a new method of thinking and work. Bacon did not invent the new method — it had been used since man first began to reason about phenomena, and was the method by means of which Wycliffe, Luther, Magellan, Copernicus, Brahe, and Gilbert had worked—but he was the first to formulate it clearly and to point out the vast field of new and use-

ful knowledge that might be opened up by applying human reason, along inductive lines, to the investigation of the phenomena of nature. His true service to science lay in the completeness of his analysis of the inductive process, and his declaration that those who wish to arrive at useful discoveries must travel by that road. As Macaulay well says, in his essay on Bacon:

> He was not the maker of that road; he was not the discoverer of that road; he was not the person who first surveyed and mapped that road. But he was the person who first called the public attention to an inexhaustible mine of wealth which had been utterly neglected, and which was accessible by that road alone.

To stimulate men to the discovery of useful truth, to turn the energies of mankind — even slowly — from assumption and disputation to patient experimentation,[1] and to give an impress to human thinking which it has retained for centuries, is, as Macaulay well says, "the rare prerogative of a few imperial spirits." Macaulay's excellent summary of the importance of Bacon's work (R. 209) is well worth reading at this point.

The new method in the hands of subsequent workers. By the middle of the seventeenth century many important advances had been made in many different lines of scientific work. In the two centuries between 1450 and 1650, the foundations of modern mathematics and mechanics had been laid. At the beginning of the period Arabic notation and the early books of Euclid were about all that were taught; at its end the western world had worked out decimals, symbolic algebra, much of plane and spherical trigonometry, mechanics, logarithms (1614) and analytic geometry (1637), and was soon to add the calculus (1667–87). Mercator had published the map of the world (1569) which has ever since born his name, and the Gregorian calendar had been introduced (1572). The barometer, thermometer, air-pump, pendulum clock, and the telescope had come into use in the period. Alchemy had passed over into modern chemistry; and the astrologer was finding less and less to do as the astronomer took his place. The English Hippocrates, Thomas Sydenham (1624–89), during this period laid the foundations of modern medical study, and the microscope was applied to the study of organic forms. Modern ideas as to light and optics and gases, and the theory of gravita-

[1] Bacon himself died a victim of one of his inductive experiments. Wishing to try out his theory that cold would prevent or retard putrefaction, he killed a chicken, cleaned it, and packed it in snow. In so doing he contracted a cold which caused his death.

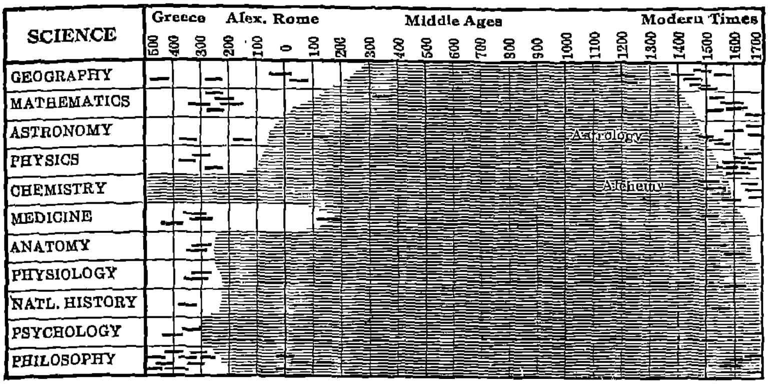

FIG. 119. THE LOSS AND RECOVERY OF THE SCIENCES

Each short horizontal line indicates the life-span of a very distinguished scholar in the science. Mohammedan scientists have not been included. The relative neglect or ignorance of a science has been indicated by the depth of the shading. The great loss to civilization caused by the barbarian inroads and the hostile attitude of the early Church is evident.

tion, were about to be set forth. All these advances had been made during the century following the epoch-making labors of Copernicus, the first modern scientific man to make an impression on the thinking of mankind.

Accompanying this new scientific work there arose, among a few men in each of the western European countries, an interest in scientific studies such as the world had not witnessed since the days of the Alexandrian Greek. This interest found expression in the organization of scientific societies, wholly outside the universities of the time, for the reporting of methods and results, and for the mingling together in sympathetic companionship of these seekers after new truth. The most important dates connected with the rise of these societies are:

1603. The Lyncean Society at Rome.
1619. Jungius founded the Natural Science Association at Rostock.
1645. The Royal Society of London began to meet; constituted in 1660; chartered in 1662.
1657. The Academia del Cimento at Florence.
1662. The Imperial Academy of Germany.
1666. The Academy of Sciences in France.
1675. The National Observatory at Greenwich established.

After 1650 the advance of science was rapid. The spirit of modern inquiry, which in the sixteenth century had animated but a few minds, by the middle of the seventeenth had extended to all

the principal countries of Europe. The striking results obtained during the seventeenth century revealed the vast field waiting to be explored, and filled many independent modern-type scholars with an enthusiasm for research in the new domain of science. By the close of the eighteenth century the main outlines of most of the modern sciences had been established.

Leading thinkers outside the universities. During the seventeenth century, and largely during the eighteenth as well, the extreme conservatism of the universities, their continued control by their theological faculties, and their continued devotion to theological controversy and the teachings of state orthodoxy rather than the advancement of knowledge, served to make of them such inhospitable places for the new scientific method that practically all the leading workers with it were found outside the universities. This was less true of England than other lands, but was in part true of English universities as well. As civil servants, court attachés, pensioners of royalty, or as private citizens of means they found, as independent scholars reporting to the recently formed scientific societies, a freedom for investigation and a tolerance of ideas then scarcely possible anywhere in the university world.

Tycho Brahe and Kepler were pensioners of the Emperor at Prague. Lord Bacon was a lawyer and political leader, and became a peer of England. Descartes, the mathematician and founder of modern philosophy, to whom we are indebted for conic sections; Napier, inventor of logarithms; and Ray and Willoughby, who did the first important work in botany and zoölogy in England, were all independent scholars. The air-pump was invented by the Burgomaster of Madgeburg. Huygens, the astronomer and inventor of the clock was a pensioner of the King of France. Cassini, who explained the motion of Jupiter's satellites, was Astronomer Royal at Paris. Halley, who demonstrated the motions of the moon and who first predicted the return of a comet, held a similar position at Greenwich. Van Helmont and Boyle, who together laid the foundations of our chemical knowledge, were both men of noble lineage who preferred the study of the new sciences to a life of ease at court. Harvey was a physi-

FIG. 120. RENÉ DESCARTES (1596–1650)

cian and demonstrator of anatomy in London. Sydenham, the English Hippocrates, was a pensioner of Cromwell and a physician in Westminster. The German mathematical scholar, Leibnitz, who jointly with Newton discovered the calculus, scorned a university professorship and remained an attaché of a German court. Newton, though for a time a professor at Cambridge, during most of his mature life held the royal office of Warden of the Mint. These are a few notable illustrations of scientific scholars of the first rank who remained outside the universities to obtain advantages and freedom not then to be found within their walls. Much these same conditions continued throughout most of the eighteenth century, during which many remarkable advances in all lines of pure science were made. By the close of this century the universities had been sufficiently modernized that scientific workers began to find in them an atmosphere conducive to scientific teaching and research; during the nineteenth century they became the homes of scientific progress and instruction; to-day they are deeply interested in the promotion of scientific research.

QUESTIONS FOR DISCUSSION

1. Show that the rise of scientific inquiry was but another manifestation of the same inquiring spirit which had led to the recovery of the ancient literatures and history.
2. What do you understand to be meant by the failure of the Greeks to standardize their observations by instruments?
3. Show that it would be possible largely to determine the character of a civilization, if one knew only the prevailing ideas and conceptions as to scientific and religious matters.
4. Show the two different types of reasoning involved in the deduction of L. Valla (p. 246) and the induction of Copernicus.
5. Of which type was the reasoning of Galileo as to Jupiter's satellites?
6. Show that the three "distempers" described by Bacon characterize the three great stages in human progress from the sixth to the fifteenth centuries.
7. How do you explain the long rejection of the new sciences by the universities?

SELECTED READINGS

In the accompanying *Book of Readings* the following selections are reproduced:

203. Macaulay: Attitude of the Ancients toward Scientific Inquiry.
204. Franck: The Credulity of Mediæval People.
205. Copernicus: How he arrived at the theory he set forth.
206. Brewster: Galileo's Discovery of the Satellites of Jupiter.
207. Inquisition: The Abjuration of Galileo.
208. Bacon: On Scientific Progress.
209. Macaulay: The Importance of Bacon's Work.

QUESTIONS ON THE READINGS

1. How do you explain the attitude of the ancients toward scientific inquiry (203, 208)?
2. State the ancient purpose in pursuing scientific studies (203).
3. Contrast Bacon and Plato as to aims (203).
4. Show that the thinking of Copernicus as to the motions of the heavenly bodies (205) was an excellent example of inductive thinking.
5. Show that the discovery and reasoning of Galileo (206) was an example of the common method of reasoning of to-day.
6. Were the difficulties that surrounded scientific inquiry and progress, as described by Bacon (208), easily removed?
7. Explain the readiness with which the clergy have so commonly opposed scientific inquiry for fear that the results might upset preconceived theological ideas.

SUPPLEMENTARY REFERENCES

Ball, W. R. R. *History of Mathematics at Cambridge.*
*Libby, Walter. *An Introduction to the History of Science.*
Ornstein, Martha. *Rôle of the Scientific Societies in the Seventeenth Century.*
*Routledge, Robert. *A Popular History of Science.*
*Sedgwick, W. T. and Tyler, H. W. *A Short History of Science.*
*White, A. D. *History of the Warfare of Science with Theology*, 2 vols.
Wordsworth Christopher. *Scholæ Academicæ; Studies at the English Universities in the Eighteenth Century.*

CHAPTER XVII

THE NEW SCIENTIFIC METHOD AND THE SCHOOLS

The rise of realism in education. As will be remembered from our study of the educational results of the Revival of Learning (chapter XI), the new schools established, in the reaction against mediævalism, to teach pure Latin and Greek, in time became formal and lifeless (p. 283), and their aim came to be almost entirely that of imparting a mastery of the Ciceronian style, both in writing and in speech. This idea, first clearly inaugurated by Sturm at Strassburg (R. 137), had now become fixed, and in its extreme is illustrated by the teachings of the Jesuit Campion at Prague (R. 146). As a reaction against this extreme position of the humanistic scholars there arose, during the sixteenth century, and as a further expression of the new critical spirit awakened by the Revival of Learning, a demand for a type of education which would make truth rather than beauty, and the realities of the life of the time rather than the beauties of a life of Roman days, the aim and purpose of education. This new spirit became known as Realism, was contemporaneous with the rise of scientific inquiry, and was an expression of a similar dissatisfaction with the learning of the time. As applied to education this new spirit may be said to have manifested itself in three different stages, as follows:

1. Humanistic realism.
2. Social realism.
3. Sense realism.

We will explain each of these, briefly, in order.

I. HUMANISTIC REALISM

A new aim in instruction. Humanistic realism represents the beginning of the reaction against form and style and in favor of ideas and content. The humanistic realists were in agreement with the classical humanists that the old classical literatures and the Bible contained all that was important in the education of youth. The ancient literatures, they held, presented "not only the widest product of human intelligence, but practically all that was worthy of man's attention." The two groups differed, however, in that the classical humanists conceived the aim of educa-

tion to be the mastery of the vocabulary and style of Cicero, and the production of a new race of Roman youths for a revived Latin scholarly world, while the new humanistic realists wanted to use the old literatures as a means to a new end — that of teaching knowledge that would be useful in the world in which they lived. Monroe has so well expressed the humanistic-realist attitude that a passage from his History is worth quoting here. He says:

> Not only did ancient philosophy contain the true philosophy of this life, but languages were the key to the real understanding of the Christian religion. Not only did mastery of these languages give power of speech, and hence influence over one's fellows; but, if military science was to be studied, it could in no place be better searched for than in Cæsar and in Xenophon; was agriculture to be practiced, no better guide was to be found than Virgil or Columella; was architecture to be mastered, no better way existed than through Vitruvius; was geography to be considered, it must be through Mela or Solinus; was medicine to be understood, no better means than Celsus existed; was natural history to be appreciated, there was no more adequate source of information than Pliny and Seneca. Aristotle furnished the basis of all the sciences, Plato of all philosophy, Cicero of all institutional life, and the Church Fathers and the Scriptures of all religion.

Exponents of humanistic realism. The Dutch international scholar Erasmus (1467?–1536) (p. 274), the Frenchman Rabelais (1483–1553), and the English poet Milton (1608–74) stand as the clearest representatives of this new humanistic realism.

Erasmus had clearly distinguished between the education of words and the education of things, had pointed out the ease with which real truth is learned and retained, and had urged the study of the content rather than the form of the ancient authors. In his *System of Studies* he said:

> From these very authors (Latin and Greek), whom we read for the sake of improving our language, incidentally, in no small degree is a knowledge of things gathered.

In his *Ciceronian* he had ridiculed those who mistook the form for the spirit of the ancients.

The French non-conforming monk, curé, physician, and university scholar, François Rabelais, in his satirical *Life of Gargantua* (1535) and *The Heroic Deeds of Pantagruel* (1533) had set forth, even more clearly, the idea of obtaining from a study of the ancient authors (R. 210) knowledge that would be useful. Writing largely in the character of a clown and a fool, because such was a safer method, he protested against the formal, shallow, and in-

sincere life of his age. He made as vigorous a protest against mediævalism and formalism as he dared, for he lived in a time when new ideas were dangerous commodities for one to carry about or to try to express. He ridiculed the old scholastic learning, set forth the idea of using the old classics for realistic as well as humanistic ends, and also advocated physical, moral, social, and religious education in the spirit of the best writers and teachers of the Italian Renaissance. His book was extensively read and had some influence in shaping thinking, though Rabelais's importance in the history of education lies rather in his influence on later educational thinkers than on the life of his time.

FIG. 121. FRANÇOIS RABELAIS (1483–1553)

Perhaps the clearest example of humanistic realism is found in the writings of the English poet and humanitarian, John Milton. His *Tractate on Education* (1644) was extensively read, and was influential in shaping educational practice in the non-conformist secondary academies which arose a little later in England. Still later his ideas indirectly somewhat influenced American development.

Milton first gives us an excellent statement of the new religious-civic aim of post-Reformation education (**R. 211**), and then points out the defects of the existing education, whereby boys "spend seven or eight years merely in scraping together so much miserable Latine and Greek, as might be learnt otherwise easily and delightfully in one year." He then presents his plan for "a compleat and generous Education" for "noble and gentle youths," and tells "how all this may be done between twelve and one and twenty, less time than is now bestowed in pure trifling at Grammar and Sophistry." The course of study he outlines (**R. 212**) is enormous. The first year, that is beginning at twelve, the boy is to learn Latin grammar, arithmetic, and geometry, and to read simple Latin and Greek. During the next three or four years the pupil is to master Greek, and to study agriculture, geography, natural philosophy, physiology, mathematics, fortification, engineering, architecture, and natural history, all by reading the chief writings of the ancients, in prose and poetry, on these subjects. During the remaining years to twenty-one the pupil, similarly, is to obtain ethical instruction from the Greeks and the

Bible; learn Hebrew, Greek, Roman, and Saxon law; learn Italian and Hebrew; and study economics, politics, history, logic, rhetoric, and poetry by reading selected ancient authors. What Rabelais suggested in jest for his giant, Milton adopted as a program for the school. In addition, in thoroughly characteristic modern English fashion, he makes careful provision for daily exercise and play. Aside, though, from its impossibility of accomplishment except by a superior few, Milton's plan is thoroughly representative of the new humanistic-realistic point of view—that is, that education should impart useful information, though the information as Milton conceived it was to be drawn almost entirely from the books of the ancients.

FIG. 122. JOHN MILTON (1608–74)

Educational results of humanistic realism. The importance of humanistic realism in the history of education lies largely in that it was the first of a series of reactions that led later to sense-realism—that is, to the study of science and the application of scientific method in the schools.

In England it possesses still larger importance. Milton had called his institution an "Academy."[1] After the restoration of the Stuarts (Charles II, 1660), some two thousand non-conforming clergymen were "dispossessed" by the Act of Conformity (1662; **R.** 166), and soon after this the children of Non-Conformists were excluded from the grammar schools and universities. Many of these clergymen now turned to teaching as a means of earning a livelihood and serving their people, and the ideas of the non-conformist Milton were influential in turning the schools thus established even further toward the study of useful subjects. Many of the new schools offered instruction in the modern languages, logic, rhetoric, ethics, geography, astronomy, algebra, geometry, trigonometry, surveying, navigation, history, oratory,

[1] See footnote 1, p. 272, on the origin of the term. Six years before the publication of the *Tractate*, Milton had visited Italy, and had been much entertained in Florence by members of the Academy and University there. In the *Tractate* he outlined a plan for a series of classical Academies for England, many of which were established. From England the term was carried to America, and became the name for a great development of semi-private secondary schools which flourished during the late eighteenth and early nineteenth centuries.

economics, and natural and moral philosophy, as well as the old classical subjects. All teaching, too, was done in English, and the study of English language and literature was emphasized. This made these non-conformist academies in many respects superior to the older Latin grammar schools. After the enactment of the Toleration Act, in 1689, these schools were allowed to incorporate and were gradually absorbed into the existing Latin grammar-school system of England, but unfortunately without producing much change in the character of these older institutions.

The idea of offering instruction in these new studies was in time carried to America, where better results were obtained. At first a few of the subjects, such as the mathematical studies, surveying, navigation, and English, were introduced into the existing Latin grammar or other schools of secondary grade. Especially was this true in the colonies south of New England. After 1751, and especially after about 1780, distinct Academies arose in the United States (chapter XVIII), whose purpose was to offer instruction in all these new subjects of study. From these our modern high schools have been derived.

II. SOCIAL REALISM

Montaigne and Locke. Social realism represents a still further reaction away from the humanistic schools. It was the natural reaction of practical men of the new world against a type of education that tended to perpetuate the pedantry of an earlier age, by devoting its energies to the production of the scholar and professional man to the neglect of the man of affairs. The social realists were small in number, but powerful because of their important social connections and wealth, and they were very determined to have an education suited to their needs, even if they had to create it themselves (R. 213). The French nobleman, scholar, author, and civic officer, M. de Montaigne (1533–92), and the English philosopher, John Locke (1632–1704), were the clearest exponents of this new point of view, though it found expression in the writings of many others. Each declared for a practical, useful type of education for the

FIG. 123. MICHEL DE MONTAIGNE (1533–92)

young boy who was to live the life of a gentleman in the world of affairs.

Neither had any sympathy with the colleges and grammar schools of the time (**R.** 214), and both rejected the school for the private tutor. This tutor must be selected with great care, and first of all must be a well-bred gentleman — a man, as Montaigne says, "who has rather a well-made than a well-filled head" (**R.** 215). Locke cautions that "one fit to educate and form the Mind of a young Gentleman is not every where to be found," and of the common type of teacher he asks, "When such an one has empty'd out into his Pupil all the Latin and Logick he has brought from the University, will that Furniture make him a fine Gentleman?" (**R.** 216).

Both condemn the school training of their time, and both urge that the tutor train the judgment and the understanding rather than the memory. To impart good manners rather than mere information, and to train for life in the world rather than for the life of a scholar, seem to both of fundamental importance in the education of a boy. "The great world," says Montaigne, "is the mirror wherein we are to behold ourselves. In short, I would have this to be the book my young gentleman should study with the most attention." "Latin and Learning," says Locke, "make all the Noise; and the main Stress is laid upon Proficiency in Things a great Part whereof belong not to a Gentleman's Calling; which is to have the Knowledge of a Man of Business, a Carriage suitable to his Rank, and to be eminent and useful to his Country, according to his Station" (**R.** 216). Both emphasized the importance of travel abroad as an important factor in the education of a gentleman.

Their place in the history of education. Both Montaigne and Locke were concerned alone with the education of the sons of gentlemen, individuals now coming rapidly into prominence to dispute place in the world of affairs with the higher nobility on the one hand and the clergy on the other. With the education of any other class Montaigne never concerned himself. As for Locke, he was later appointed a King's Commissioner, with certain oversight of the poor, and for the education of the children of such he drew up a careful report which, in true English fashion, provided for their training in workhouses and their apprenticeship to a trade (**R.** 217). He wrote nothing with regard to the education of the children of middle-class workers and tradesmen

Both authors also deal entirely with the work of a tutor, and not with the work of a teacher in a school. Neither deals specifically with elementary education, but rather with what, in Europe, would be called the secondary-school period in the education of a boy. Locke was extensively read by the gentry of England, as expressive of the best current practice of their class, and his ideas as to education were also of some influence in shaping the instruction of the non-conformist teachers in the academies there. His place in the history of education is also of some importance, as we shall point out later, for the disciplinary theory of education which he set forth. Still more, Locke later exerted a deep influence on the writings of Rousseau (chapter XXI), and hence helped materially to shape modern educational theory.

FIG. 124. JOHN LOCKE (1632–1704)

The new schools for the sons of the gentry. Both Montaigne and Locke, in their emphasis on the importance of a practical education for the social and political demands of a gentleman concerned with the affairs of the modern world, represent a still further reaction against the humanistic schools of the time than did the humanistic realists whom we have just considered. Still more, both are expressive of the attitude of the nobility and gentry of the time, who had almost deserted the schools as pedantic institutions of little value. France was then the great country of Europe, and French language, French political ideas, French manners, and French tutors found their way into all neighboring lands. A new social and political ideal was erected — that of the polished man of the world, who could speak French, had traveled, knew history and politics, law and geography, heraldry and genealogy, some mathematics and physics with their applications, could use the sword and ride, was adept in games and dancing, and was skilled in the practical affairs of life.

To give such training the French created numerous Academies in their cities. A writer of 1649 states that there were twelve such institutions at that time in Paris alone. Not infrequently some nobleman was at the head. Boys were first educated at home by tutors, and then sent to the Academy to be trained in riding, the military arts, fortification, mathematics, the modern languages,

FIG. 125. AN ACADEMIE DES ARMES
From an early eighteenth-century Parisian poster, advertising an Academy

and the many graces of a gentleman. The Englishman, John Evelyn, who was in France in 1644, thus describes the French Academies:

At the Palais Cardinal in Paris I frequently went to see them ride and exercise the Greate Horse, especially at the Academy of Monsieur du Plessis, and de Veau, whose scholes of that art are frequented by the Nobility; and here also young gentlemen are taught to fence, daunce, play on musiq, and something in fortifications and mathematics.

At Richelieu, near Tours, belongs an Academy where besides the exercise of the horse, armes, dauncing, etc., all the sciences are taught in the vulgar French by Professors stipendiated by the great Cardinal.

The Academy of Juilly included some study of physical science, mathematics, geography, heraldry, French history, Italian, and Spanish, besides the riding and gentlemanly arts.

In England the tutor in the home became the type form for the education of the sons of a gentleman, the boys frequently being sent abroad to complete their education. In German lands, which in the seventeenth century were in close sympathy with

French life and thought, Heidelberg being a center for the dissemination of French ideas, the French academy idea was copied, and what were called *Ritterakademieen* (knightly academies) were founded in the numerous court cities [1] for the education, along such lines, of the sons of the many grades of the German nobility. Between 1620 and 1780, before the rise of the German nationalistic movement which sought to replace French ideas by native German culture, was the great period of these German court schools, and during this period they bestowed on the sons of the German nobility the courtly and military education of the French academies. The education of the nobility was in consequence segregated from the intellectual life of other classes. "Gallants" and "pedants" were the respective outputs of the two types of schools.

III. SENSE REALISM

The new educational aims of this group. This represented a still further and more important step in advance than either of the preceding. In a very direct way sense realism in education was an outgrowth of the organizing work of Francis Bacon. Its aim was:

(1) To apply the same inductive method formulated by Bacon for the sciences to the work of education, with a view to organizing a general method which would greatly simplify the instructional process, reduce educational work to an organized system, and in consequence effect a great saving of time; and

(2) To replace the instruction in Latin by instruction in the vernacular,[2] and to substitute new scientific and social studies, deemed of greater value for a modern world, for the excessive devotion to linguistic studies.

The sixteenth century had been essentially a period of criticism in education, and the leading thinkers on education, as in other lines of intellectual activity, were not in the schools. In the seven-

[1] Unlike England and France, the German lands long remained feudal and not united. As late as the beginning of the nineteenth century Germany was made up of more than three hundred little principalities, of which sixty were free cities. Each little principality was self-governing and maintained its little court.

[2] Richard Mulcaster (1531–1611), for forty-eight years a famous London Latin grammar-school master, often classed as a precursor of the sense realists, in two books, published in 1581 and 1582, had urged the great importance of a study of the English tongue, and of using it as a medium for instruction. In his *Elementarie* (1582) he had said: "Our own language bears the joyful title of our liberty and freedom, the Latin remembers us of our thralldom and bondage. I love Rome, but London better; I favor Italy, but England more. I honor the Latin, but I worship the English." (R. 226.)

teenth century we come to a new group of men who attempted to think out and work out in practice the ideas advanced by the critics of the preceding period. In the seventeenth century we have, in consequence, the first serious attempt to formulate an educational method since the days of the Athenian Greeks and the treatise of Quintilian.

The possibility of formulating an educational method that would simplify the educational process and save time in instruction, appealed to a number of thinkers, in different lands. This group of thinkers, due to their new methods of attack and thought, the German historian of education, Karl von Raumer, has called *Innovators*. The chief pedagogical ideas of the Innovators were:

1. That education should proceed from the simple to the complex, and the concrete to the abstract.
2. That things should come before rules.
3. That students should be taught to analyze, rather than to construct.
4. That each student should be taught to investigate for himself, rather than to accept or depend upon authority.
5. That only that should be memorized which is clearly understood and of real value.
6. That restraint and coercion should be replaced by interest in the studies taught.
7. That the vernacular should be used as the medium for all instruction.
8. That the study of real things should precede the study of words about things.
9. That the order and course of Nature be discovered, and that a method of teaching based on this then be worked out.
10. That physical education should be introduced for the sake of health, and not merely to teach gentlemanly sports.
11. That all should be provided with the opportunity for an education in the elements of knowledge. This to be in the vernacular.
12. That Latin and Greek be taught only to those likely to complete an education, and then through the medium of the mother tongue.
13. That a uniform and scientific method of instruction could be worked out, which would reduce education to a science and serve as a guide for teachers everywhere.

The Englishman, Francis Bacon, whom we have previously considered; the German, Wolfgang Ratichius (or Ratke); and the Moravian bishop and teacher, Johann Amos Comenius, stand as perhaps the clearest examples of this organizing tendency in education. Ratke and Comenius will be considered here as types.

Wolfgang Ratke. Bacon had believed that the new scientific knowledge should be incorporated into the instruction of the schools, and had suggested, in his *Advancement of Learning* (1603–05), a broader course of study for them, and better facilities for scientific investigation and teaching. While Bacon was not a teacher and did not write specifically on school instruction, his writings nevertheless deeply influenced many of those who followed his thinking.

The first writer to apply Bacon's ideas to education and to attempt to evolve a new method and a new course of instruction was a German, by the name of Wolfgang Ratke (1571–1635). While studying in England he had read Bacon's *Advancement of Learning*, and from Bacon's suggestions Ratke tried to work out a new method of instruction. This he offered, and with much secrecy, unsuccessfully for sale at various German courts. Finally he issued an "Address" to the princes of Germany, assembled at an Electoral Diet at Frankfurt-am-Main, in 1612. In this he told them of his new method, which followed Nature, and declared that it was "fraught with momentous consequences" for mankind. He claimed that he could:

1. By using the German language in the earlier years:
   (*a*) Bring about the use of one common language among the German people, and thus lay the basis for unity in government and religion;
   (*b*) Impart to children a knowledge of the useful arts and sciences.
2. Teach Latin, Greek, and Hebrew better, and in far less time, than had previously been required for one language only.

This method he offered to sell to the princes, and he would impart it only on the promise that it be not revealed to others. Two professors were appointed to examine Ratke, and they reported very favorably on his plan.

In 1617 Ratke published, in Leipzig, his *Methodus Nova*, which was the pioneer work on school method, and is Ratke's chief claim to mention here. In this he laid down the fundamental rules for teaching, as he had thought them out. They were as follows:

1. The order of Nature was to be sought and followed.
2. One thing at a time, and that mastered thoroughly.
3. Much repetition to insure retention.
4. Use of the mother tongue for all instruction, and the languages to be taught through it.

5. Everything to be taught without constraint. The teacher to teach, and the scholars to keep order and discipline.
6. No learning by heart. Much questioning and understanding.
7. Uniformity in books and methods a necessity.
8. Knowledge of things to precede words about things.
9. Individual experience and contact and inquiry to replace authority.

We see here the essentials of the Baconian ideas, as well as the foreshadowings of many other subsequent reforms in teaching method.

During the next half-dozen years Ratke was a much-interviewed person, as the idea of a more general education of the people, advanced by the Protestant reformers, had appealed strongly to the imagination of many of the German princes. Finally the necessary money was raised to establish an experimental school,[1] printing-presses were set up to print the necessary books, the people of the village of Köthen, in Anhalt, were ordered to send their children for instruction, and the school opened with Ratke in charge and amid great expectations and enthusiasm. A year and a half later the school had failed, through the bad management of Ratke and his inability to realize the extravagant hopes he had aroused, and he himself had been thrown into prison as an impostor by the princes. This ended Ratke's work. He is important chiefly for his pioneer work as the forerunner of the greatest educator of the seventeenth century.

Johann Amos Comenius. We now reach not only the greatest representative of sense realism, both in theory and practice, before the latter part of the eighteenth century, but also one of the commanding figures in the history of education. Comenius was born at Nivnitz, in Moravia, in 1592. As a member, pastor, and later bishop of the Moravian church, and as a follower of John Huss, he suffered greatly in the Catholic-Protestant warfare which raged over his native land during the period of the Thirty Years' War. His home twice plundered, his books and manuscripts twice burned, his wife and children murdered, and himself at times a fugitive and later an exile, Comenius gave his long life

[1] The school was opened with 433 boys and girls enrolled. It was divided into six classes. In the first three German only was used. In the first two classes the children were taught to read and write German, Genesis being the reading book of the second class. In the third class German grammar was studied. Music, religion, and the elements of arithmetic were also taught in these classes. In the fourth class Latin was begun, studying Terence, and Latin grammar was worked out from the constructions. In the sixth and highest class Greek was taught. A good education was to be given in six years, through the saving of time.

to the advancement of the interests of mankind through religion and learning. Driven from his home and country, he became a scholar of the world.

While a student at the University of Nassau, at the age of twenty, he read and was deeply impressed by the "Address" of Ratke. Bacon's *Novum Organum*, which appeared when he was twenty-eight, made a still deeper impression upon him. He seems to have been familiar also with the writings of the educational reformers of his time in all European lands. He traveled extensively, and maintained a large correspondence with the scholars of his time. He was master of a Latin school in Moravia from the age of twenty-two to twenty-four, when he was ordained as a pastor of the Moravian Church. Eight years later, in 1632, he was banished, with all Protestant ministers, from his native land, and while an exile for a time took charge of a school at Lissa, in Poland. Here he worked out, in practice, the great work on method which he later published. In 1638 he was invited to reform the schools of Sweden; in 1641 he visited England, in connection with a plan for the organization of all knowledge; he spent the next eight years working at school reform in Sweden; from 1650 to 1654 he was in charge of a school at Saros-Patak, in Hungary, where he worked out his famous textbooks for teaching language; he was consulted with reference to the presidency of Harvard College, in 1654; the same year he returned to Lissa, and once more lost his books and manuscripts and was made a homeless exile; and finally he found a patron and asylum in Amsterdam, where he died in 1671, at the age of seventy-nine. The verse beneath his portrait seems an especially appropriate commentary on his life.

Comenius and educational method. While teaching at Lissa, in Poland, Comenius had formulated for himself the principles underlying school instruction, as he saw it, in a lengthy book which he called *The Great Didactic.*[1] The title page (**R.** 218) and the table of contents (**R.** 219) will give an idea as to its scope. In this work Comenius formulated and explained his two fundamental ideas, namely, that all instruction must be carefully graded and arranged to follow the order of nature, and that, in imparting knowledge to children, the teacher must make constant

[1] This was written out in his native Czech tongue, but was not published at the time. A quarter of a century later it appeared in Latin, with his collected works, as published by his patron at Amsterdam (1657). It was then forgotten for two centuries. In 1841 the manuscript was found at Lissa, and published in the original at Prague, in 1848. The first English edition appeared in 1896.

appeal through sense-perception to the understanding of the child. We have here the fundamental ideas of Bacon applied to the school, and Comenius stands as the clearest exponent of sense realism in teaching up to his time, and for more than a century afterward.

Deeply religious by nature and training, Comenius held the Holy Scriptures to contain the beginning and end of all learning; to know God aright he held to be the highest aim; and with true Protestant fervor he contended that the education of every human being was a necessity if mankind was to enter into its religious inheritance, and piety, virtue, and learning were to be brought to their fruition. Unlike those who were enthusiasts for religious education only, Comenius saw further, and held an ideal of service to the State and Church here below for which proper training was needed. Still more, he believed in the education of human beings simply because they were human beings, and not merely for salvation, as Luther had held.

Comenius was the first to formulate a practicable school method, working along the new lines marked out by Bacon. He had no psychology to guide him, and worked largely by analogies from nature. A great idea with him was that we should study and follow nature, and this led him to the conclusions that education should proceed from the easy to the difficult, the near to the remote, the general to the special, and the known to the unknown, and that the great business of the teacher was imparting and guiding, and not storing the memory. These conclusions seem commonplaces to us of to-day, but what is commonplace to-day was genius three hundred years ago. To select the subject-matter of instruction carefully and on the basis of utility, to eliminate needless materials, not to attempt too much at a time, to use concrete examples, to have frequent repetitions to fix ideas, to advance by carefully graded steps, to tie new knowledge to old, to learn by observing and doing, and to learn by use rather than by precept — were still other of the present-day commonplaces which Comenius worked out and formulated in his *Didactica Magna*.[1] His plea for a mild and gentle discipline in place of the brutality of his time, his emphasis of the vernacular and the realities of life, his conception as to the importance of early education, his careful gradation of the school, and his ability to see the use-

[1] See the English edition edited by M. W. Keatinge, A. and C. Black, London 1896.

fulness of Latin without over-emphasizing its importance — all stamp him as a capable and practical schoolmaster who saw deeply into the nature of the educational process.

Comenius' ideas as to the organization of schools. In his *Didactica Magna* Comenius divided the school life of a child into four great divisions. The first concerned the period from infancy to the age of six, which he called The Mother School. For this period he wrote *The School of Infancy* (1628), a book intended primarily for parents, and one of such deep insight and fundamental importance that parents and teachers may still read it with interest and profit. In it he anticipated many of the ideas of the kindergarten of to-day. The next division was The Vernacular School, which covered the period from the ages of six to twelve. For this period six classes were to be provided, and the emphasis was to be on the mother tongue. This school was to be for all, of both sexes, and in it the basis of an education for life was to be given. It was to teach its pupils to read and write the mother tongue; enough arithmetic for the ordinary business of life, and the commonly used measures; to sing, and to know certain songs by rote; to know about the real things of life; the Catechism and the Bible; a general knowledge of history, and especially the creation, fall, and redemption of man; the elements of geography and astronomy; and a knowledge of the trades and occupations of life; all of which, says Comenius, can be taught better through the mother tongue than through the medium of the Latin and Greek. In scope this school corresponds with the vernacular school of modern Europe.

The next school was The Latin School, covering the years from twelve to eighteen, and in this German, Latin, Greek, and Hebrew were to be taught, by improved methods, and with physics and mathematics added. This school he divided into six classes, named from the principal study in each, as follows: (1) Grammar, (2) Physics, (3) Mathematics, (4) Ethics, (5) Dialectics, (6) Rhetoric. He also later outlined a plan for a six-class *Gymnasium* for Saros-Patak (R. 220), culminating in a seventh year for preparation for the ministry, which was an improvement on the Latin School and very modern in character. Had such a school become common, secondary education in Europe might have been a century in advance of where the nineteenth century found it. The Latin school was to be attended only by those of ability who were likely to enter the service of Church or State, or who

intended to pass on to the University. This last was to cover the period from eighteen to twenty-four. Unlike all educational practice of his time and later, Comenius here provides for an educational ladder of the present-day American type, wholly unlike the European two-class school system which (p. 353) later evolved.

Comenius' work in reforming language teaching. At the time Comenius lived and wrote, the languages constituted almost the only subject of study, and Latin grammar was the great introductory subject. The mediæval grammars (Donatus; Alexander de Villa Dei; pp. 156, 155) had been so poor that the instruction was difficult and, in consequence, long drawn out. Lily's Latin Grammar (p. 276), published in 1513, and Melanchthon's Latin Grammar, published in 1525, had represented marked advances. Still the subject remained difficult, even when taught from these new types of grammars. Comenius early became convinced, as a result of his teaching and studies in educational method, that the ancient classical authors were not only too difficult for boys beginning the study of Latin, but that they also did not contain the type of real knowledge he felt should be taught in the schools. He accordingly set to work to construct a series of introductory Latin readers which would form a graded introduction to the study of Latin, and which would also introduce the pupil to the type of world knowledge and scientific information he felt should be taught.

His plan eventually embraced a graded series of five books, as follows:

1. The *Orbis Sensualium Pictus*, or the World of Sense Objects Pictured. This was an illustrated primer and first reader, which appeared in 1658, and was the first illustrated book ever written for children (R. 221).

2. The *Vestibulum* (Vestibule, or gate). An easy first reader, consisting of but a few hundred of the most commonly used Latin words and sentences, with a translation into the vernacular in parallel columns. This book required about a half-year for its completion.

3. The *Janua Linguarum Reserata*, or Gate of Languages Unlocked. This was the first of the series printed (1631), the *Vestibulum* being an easy introduction to it, and the *Orbis Pictus* being the *Janua* simplified and illustrated. The *Janua* contained some eight thousand Latin words, arranged in simple sentences, with the vernacular equivalent in parallel columns; included information on a variety of subjects; [1] and

[1] The following is illustrative:
"Sec. 518 (Geometria). Ex concursu linearum fit angulus qui est vel rectus, quem linea incidens perpendicularis efficit, ut est (in subjecto schemate) angulus A C B; vel acutus, minor recto, ut B C D; vel obtusus, major recto, ut A C D."

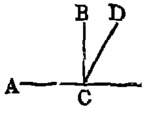

was a regular Noah's Ark for vocabulary purposes. It embraced sufficient reading material and grammar for a year.

4. The *Atrium*. This was an expansion of the *Janua*, and treated the same topics more in detail. It was intended to be an advanced reader, based, as was the *Janua*, on studies about the real things of life. The vocabulary now was Latin-Latin, instead of Latin-vernacular.

5. The *Thesaurus*, which was never completed, but was planned to be a collection of graded extracts from easy Latin authors — Cornelius Nepos, Cæsar, Cicero, Sallust, Vergil, Horace, Pliny — to furnish the needed reading material for the three upper years of the Latin School.

The textbooks illustrated. Beginning in the *Janua*, and afterwards in the *Vestibulum* and *Orbis Pictus* as well, Comenius not only simplified the teaching of Latin by producing the best textbooks for instruction in the subject the world had ever known, but he also shifted the whole emphasis in instruction from words to things, and made the teaching of scientific knowledge and useful world information the keynote of his work. The hundred different chapters of the *Janua*, and the hundred and fifty-one chapters of the *Orbis Pictus*, were devoted to imparting information as to all kinds of useful subjects. The following selections from the chapter titles of the *Orbis Pictus* illustrate how large a place the new scientific studies occupied in his conception of the school:

The World	Birds	Weaving	Philosophy
The Heavens	Cattle	Tailor	Prudence
Fire	Fish	Barber	Diligence
Wind	Parts of Man	Schoolmaster	Temperance
Water	Flesh and Bowels	Shoemaker	Fortitude
Clouds	Chanels and Bones	Carpenter	Humanity
Earth	Senses	Potter	Justice
Fruits	Deformities	Printing	Consanguinity
Metals	Husbandry	Geometry	A City
Trees	Bees and Honey	The Planets	Merchandizing
Herbs	Butchery	Eclipses	A Burial
Flowers	Cookery	Europe	Religious Forms

The accompanying illustrations (Figs. 126, 127) reveal the nature of the text-books he prepared. (See also R. 221 for four additional pages of illustrations from the *Orbis Pictus*.)

The success of these textbooks was immediate and very great. Within a short time after the publication of the *Janua* it had been translated into Flemish, Bohemian, English, French, German, Greek, Hungarian, Italian, Latin, Polish, Spanish, and Swedish, as well as into Arabic, Mongolian, Russian, and Turkish. The

The Barbers Shop. LXXV. *Tonstrina.*

The Barber, 1.	*Tonsor*, 1.
in the Barbers-shop, 2.	in *Tonstrina*, 2.
cutteth off the Hair	tondet *Crines*
and the Beard	& *Barbam*
with a pair of Sizzars, 3.	*Forcipe*, 3.
or shaveth with a Razor,	vel radit *Novaculâ*,
which he taketh out of his Case, 4.	quam è *Theca*, 4. depromit.
And he washeth one	Et lavat
over a Bason, 5.	super *Pelvim*, 5.
with Suds *running*	*Lixivio* defluente
out of a Laver, 6.	è *Gutturnio*, 6.
and also with Sope, 7.	ut & *Sapone*, 7.
and wipeth him	& tergit
with a Towel, 8.	*Linteo*, 8.
combeth him with a Comb, 9.	pectit *Pectine*, 9.
and curleth him	crispat
with a Crisping Iron, 10.	*Calamistro*, 10.
Sometimes he cutteth a Vein	Interdum Venam secat
with a Pen-knife, 11.	*Scalpello*, 11.
where the Blood spirteth out, 12.	ubi Sanguis propullulat, 12.

The

Fig. 126. A Sample Page from the "Orbis Pictus"

The illustration and Latin text is from the first edition of 1658; the English translation from the English edition of 1727

Orbis Pictus was an even greater success.[1] It went through many editions, in many languages; stood without a competitor in Europe for a hundred and fifteen years; and was used as an introductory textbook for nearly two hundred years. An American edition was brought out in New York City, as late as 1810.

The Portal to the Gate of Tongues.

Quatuor Evangeliſtæ, quinque ſenſus, ſex profeſti dies.	*Four Evangeliſts, five ſenſes, ſix "working dayes.*	"Not hal- lowed.
Septem petitiones in Oratione Dominica.	*" Seven petitions in the Lord's Prayer.*	"So the L Biſhop of Landaff in his Treatiſe of the Sacrament of the Lords Supper divides them.
Octo dies ſunt ſeptimana.	*Eight dayes are a week.*	
Ter tria ſunt novem.	*Thrice three are nine.*	
Decem præcepta Dei.	*Ten Commandements of God,*	
Undecim Apoſtoli, dempto Judâ.	*Eleven Apoſtles, Judas being excepted.*	
Duodecim fidei articuli.	*Twelve Articles of the Faith.*	
Triginta dies ſunt menſis.	*Thirty dayes are a moneth.*	
Centum anni ſunt ſeculum.	*A hundred years are an age.*	
Satanas eſt mille fraudum artifex.	*Satan is the forger of a thouſand deceits.*	

FIG. 127. PART OF A PAGE FROM A LATIN-ENGLISH EDITION OF THE "VESTIBULUM"

Thousands of parents, who knew nothing of Comenius and cared nothing for his educational ideas, bought the book for their children because they found that they liked the pictures and learned the language easily from it.[2]

Place and influence of Comenius. Comenius stands in the history of education in a position of commanding importance. He introduces the whole modern conception of the educational process, and outlines many of the modern movements for the improvement of educational procedure. What Petrarch was to the revival of learning, what Wycliffe was to religious thought, what Copernicus was to modern science, and what Bacon and Descartes were to modern philosophy, Comenius was to educational practice and thinking (R. 222). The germ of almost all eighteenth- and nineteenth-century educational theory is to be found in his work, and he, more than any one before him and for at least two centuries after him, made an earnest effort to introduce the

[1] A very good reprint of the 1727 English edition, with pictures from the first edition of 1658, was brought out by C. W. Bardeen, of Syracuse, New York, in 1887. This ought to be in all libraries where the history of education is taught.

[2] Basedow's *Elementarwerk mit Kupfern* (Elementary Reading Book, with copperplate pictures), published in 1773 (see p. 535), was the first attempt, and not a particularly successful one either, to improve on the *Orbis Pictus*.

new science studies into the school. Far more liberal than his Lutheran or Calvinistic or Anglican or Catholic contemporaries, he planned his school for the education of youth in religion and learning and to fit them for the needs of a modern world. Unlike the textbooks of his time, and for more than a century afterward, his were free from either sectarian bigotry or the intense and gloomy atmosphere of the age.

Yet Comenius lived at an unfortunate period in the history of human progress. The early part of the seventeenth century was not a time when an enthusiastic and aggressive and liberal-minded reformer could expect much of a hearing anywhere in western Europe. The shock of the contest into which western Christendom had been plunged by the challenge of Luther had been felt in every corner of Europe, and the culmination of a century of warfare was then raging, with all the bitterness and brutality that a religious motive develops. Christian Europe was too filled with an atmosphere of suspicion and distrust and hatred to be in any mood to consider reforms for the improvement of the education of mankind. As a result the far-reaching changes in method formulated by Comenius made but slight impression on his contemporaries; his attempt to introduce scientific studies awakened suspicion, rather than interest; and the new method which he formulated in his *Great Didactic* was ignored and the book itself was forgotten for centuries. His great influence on educational progress was through the reform his textbooks worked in the teaching of Latin, and the slow infiltration into the schools of the scientific ideas they contained. As a result, many of the fundamentally sound reforms for which he stood had to be worked out anew in the nineteenth century. It is sad to contemplate how far our western world might have been advanced in its educational organization and scientific progress, by the close of the eighteenth century, had it been in a mood to receive and utilize the reforms in aims and methods, and to accept the new scientific subject-matter, proposed and worked out by this far-sighted Moravian teacher. Religious bigotry has, in all lands and ages, proved itself one of the most serious of all obstacles in the path of human progress.

IV. REALISM AND THE SCHOOLS

The vernacular schools. The ideas for which the realists just described had stood were adopted in the people's schools but

slowly, and came only after long waiting. The final incorporation of science instruction into elementary education did not come until the nineteenth century, and then was an outgrowth of the reform work of Pestalozzi on the one hand, and the new social, political, economic, and industrial forces of a modern world on the other.

The Peace of Westphalia (1648), which closed a century of bitter and vindictive religious warfare, was followed by another century of hatred, suspicion, and narrow religious intolerance and reaction. All parties now adopted an extremely conservative attitude in matters of religion and education, and the protection of orthodoxy became the chief purpose of the school. Reading, religion, a little counting and writing, and, in Teutonic lands, music, came to constitute the curriculum of such elementary vernacular schools as had come to exist, and the religious Primer and the Bible became the great school textbooks. The people were poor, much of Europe was impoverished and depopulated as a result of long-continued religious strife, the common people still occupied a very low social position, there were as yet no qualified teachers, and no need for general education aside from religion. Still more, during more than a thousand years the Church had established the tradition of providing free education, and when the governing authorities of the States which turned to Protestantism had taken from the Church both the opportunity to continue the schools and the wealth with which to maintain them, they were seldom willing to tax themselves to set up institutions to continue the work formerly done *gratis* by the Church. In consequence, regardless of Protestant educational theory as to the need for general education, but little progress in providing vernacular schools was made during the whole of the seventeenth and eighteenth centuries.

Here and there in Teutonic lands, however, the new studies found an occasional patron. In 1619 schools were organized for the little Duchy of Weimar (p. 317) by a pupil of Ratke, and sense realism was given a place in them. The schoolmaster, Andreas Reyher, who in 1642 drew up the *Schule Methodus* for Duke Ernest of Saxe-Gotha and Altenburg, was familiar with the work of both Ratke and Comenius, and made provision for instruction in "the natural and useful sciences" (R. 163) for Duke Ernest's children. Here and there a few other attempts to provide schools and add instruction in the new *Realien* were made.

The number of such attempts was not large, but their work was influential, and as a result vernacular schools and science instruction finally became established among German-speaking peoples before they did in any other land.

The secondary schools. The influence of Milton's *Tractate* on the non-conformist Academies of England has been traced, and the transfer of the idea of instruction in the new mathematical, scientific, literary, historical, and political subjects to the new American Academies has been mentioned. That these new studies also entered into the education of a gentleman in England and France, under the private-tutor and the courtly-academy system, and were copied from the French and constituted a large part of the instruction organized for the *Ritterakademieen* of the numerous court cities in German lands, has also been mentioned. In both England and France such private instruction exerted but little influence on the existing Latin grammar schools, and in consequence the schools of both countries remained largely unchanged in direction and purpose until the second half of the nineteenth century. In German lands the *Ritterakademieen* idea experienced a further development, which proved to be of large importance for the future of German education.

Francke's "Institutions." With the introduction of French ideas and training into the German courts, French skepticism in matters of religion developed in the court circles. Under the influence of a pious Lutheran clergyman, Philip Spener (1635–1705), who tried to emphasize religion as an affair of the heart rather than the head; and especially as a result of the work of his spiritual successor, Augustus Hermann Francke, a movement arose in German lands, during the closing years of the seventeenth century, which became known as *Pietism*.[1] Disgusted with the lifeless and insincere religion of the time, these two strove to substitute a religion of both head and heart. In 1695, moved by pity for the poor, Francke established at Halle the first of his famous "Institutions," — a school for poor children. A pay school for the well-to-do was soon added, and soon another school for the children of nobility. An orphan school also was in time provided. The school for the poor developed into a vernacular or *Burgher* (*volks;* peoples) school; the school for the pay pupils into a Latin School, or *Gymnasium;* and the school for

[1] This term was at first applied in derision, just as Methodism was applied to the English religious reformers in the eighteenth century, but the term was soon made reputable by the earnestness and ability of those who accepted it.

nobles into a higher scientific school, or *Pädagogium* as it was called. At first Francke encountered some theological opposition, but the "Institutions" prospered, and at the time of his death contained over 2200 pupils, and over 300 teachers, workers, and attendants.

The interesting thing about Francke's work was the courses of instruction he provided for his schools.[1] In the Burgher School he gave the children instruction in history, geography, and animal life, in addition to the reading, writing, counting, music, and religion of the usual German vernacular school. Into the *Gymnasium* he introduced instruction in history, geography, music, science, and mathematics, in addition to the usual Latin, Greek, and Hebrew. He also changed the purpose of the language instruction. Greek was studied to be able to read the New Testament in the original, and Hebrew better to understand the Old. The *Pädagogium* was provided with a botanical garden, a cabinet of natural history, physical apparatus, a laboratory for the study of chemistry and anatomy, and a workshop for turning and glass-cutting. Independent of the work of Comenius, but as an outgrowth of the new movement for the study of science now beginning to influence educational thought, we have here the most important attempt at the introduction into the school of sense realism, or *Realien*, as the Germans say, that the modern world had so far witnessed. In 1697 Francke added a *Seminarium Præceptorium*, to train teachers in his new ideas. This was the first teachers' training-school in German lands, and the teachers he trained served to scatter his educational ideas over the German States.[2]

FIG. 128. AUGUSTUS HERMANN FRANCKE (1663-1727)

[1] Francke's father had been counselor to Duke Ernest of Gotha, who had created for his little duchy the most modern-type school system of the seventeenth century. How much Francke's progressive ideas in educational matters go back to the work of Duke Ernest forms an interesting speculation.

[2] "Francke had the rare ability to see clearly what needed doing, and then to do it regardless of obstacles or consequences. The magnitude of his work in Halle is simply marvelous, and yet what he actually accomplished is insignificant in comparison with what he inspired others to do. He showed how practical Christianity could be incorporated in the work of the common schools; his plan was immediately adopted by Frederick William I and made well-nigh universal in Prussia. He

The first Realschule. Associated with Francke as a teacher was one Christopher Semler (1669–1740), who became deeply interested in the new studies of the secondary school. In 1706 Semler had submitted a plan to the government of Magdeburg for the teaching of the practical studies. This was referred to the Berlin Society of Sciences, which approved the plan, and later elected Semler to membership in the Society. For years Semler continued as a teacher at Halle, but without carrying the idea far enough to create a new type of school. In 1739 Semler published a paper "Upon the Mathematical, Mechanical, and Agricultural Real School in the City of Halle," in which he described the instruction given there. This was probably the first use of the term "real school" (*Realschule*). The important subjects described as taught, aside from religion, were "the useful and in daily life wholly indispensable sciences," such as mathematics, drawing, geography, history, natural history, agriculture, and economics, with much emphasis on observation by the pupils.

The work at Halle soon stimulated complaints as to the existing Latin schools, where children, destined for business or the service of the State, were kept trying to learn Latin, "to the neglect of more practical and more useful studies." The usefulness of the new *real* studies now began to be more correctly estimated, and the conviction gradually grew that those boys who were destined for trade — now a rapidly increasing number — should not be obliged to follow the same course as those destined to be scholars. In 1720 Rector Gesner, of the gymnasium at Rotenburg, wrote, rather sarcastically:

> The one class, who will not study, but will become tradesmen, merchants, or soldiers, must be instructed in writing, arithmetic, writing letters, geography, description of the world, and history. The other class may be trained for studying.

In 1742 the Rector at Dresden, Schöttgen, issued a "Humble proposal for the special class in public city schools" to provide for those children "who are to remain without (that is, cannot learn) Latin." Instead of forcing them to attempt to learn Donatus, which he said was useless for them, he urged that a special class (school) be organized to train them to become useful merchants,

showed how the *Realien* could be profitably employed in a Latin school, and even made a constituent part of a university preparatory course; as a result of his methods, and especially of his suggestion that schools should be founded for the exclusive purpose of fitting the youth of the citizen class for practical life, there has since grown up in Germany a class of *Real*-schools." (Russell, J. E., *German Higher Schools*, p. 64.)

artists, and mechanics. In 1751 Rector Henzky, of Prenzlau, issued a treatise to show "That Real schools can and must become common." In 1756 Gesner, professor at the new University of Göttingen, in a pamphlet "On the organization of a gymnasium" (**R. 223**), urged that there were three classes of youths for whom schools should be provided, one of which needed the *Realschule*.

In 1747 a clergyman by the name of Julius Hecker (1707–1768), who had been a pupil in, and later had taught in Francke's "Institutions," went to Berlin and opened there the first distinct German *Realschule*. In this school Hecker provided instruction in religion, ethics, German, French, Latin, mathematics, drawing, history, geography, mechanics, architecture, and a knowledge of nature and of the human body. Classes were organized in architecture, agriculture, bookkeeping, manufacturing, and mining. The school prospered from the first, and in time became the "Royal *Realschule*" of Berlin. In answer to a growing demand for advanced education for that constantly increasing number of youths destined for the trades or a mercantile career, the *realschule* idea was copied in a number of the important cities of Germany. Thus early — a century in advance of other nations, and a century and a quarter ahead of the United States — did Prussia lay the foundations of that scientific and technical education which, later on, did so much toward creating modern industrial Germany.

The universities and the new scientific learning. Though the theological persecution of scientific workers largely died out after about the middle of the seventeenth century, and was never much of a factor in lands which had embraced some form of Protestantism, the new sciences nevertheless made but little headway in the universities until after the beginning of the eighteenth century. Up to the close of the seventeenth century the universities in all lands continued to be dominated by their theological faculties, and instruction still remained largely encompassed by mediævalism. England represents perhaps the most notable exception to this statement, scientific studies having been received with greater tolerance by the universities there than in other lands. In both Catholic and Protestant lands the need was felt for orthodox training, through fear of further heresy, and many petty restrictions were thrown about study and teaching which were stifling to free thinking and investigation. Each little King-

dom or State now took over the supervision of some old university within its borders, or established a new one, that it might more completely control orthodoxy and prepare its own civil servants. Of the seventeenth century, Paulsen [1] well says:

It was essentially the period of the territorial-confessional university, and is characterized by a preponderance of theological-confessional interest. . . . Many new foundations, both Catholic and Protestant, now appeared. The chief impetus leading to these numerous foundations was the accentuation of the principle of territorial sovereignty, from the ecclesiastical as well as the political point of view. The consequence was that the universities began to be *instrumentia denominationis* of the government as professional schools for its ecclesiastical and secular officials. Each individual government endeavored to secure its own university in order — (1) to make sure of wholesome instruction, which meant, of course, instruction in harmony with the confessional standards of its established church; (2) to retain training of its secular officials in its own hands; and finally (3) render attendance at foreign universities unnecessary on the part of its subjects, and thus keep the money in the country.

Large amounts of money were not needed to establish a new university. A few thousand guilders or thalers sufficed for the salaries of ten or fifteen professors, a couple of preachers and physicians would undertake the theological and medical lectures, and some old monastery would supply the needed buildings.

After the Reformation the law faculty increased to the place of first importance in Protestant lands, because the Reformation had created a new demand for judges and higher court officials to replace the rule of the clergy. The medical faculty continued to be, as in the mediæval universities, the smallest of all the faculties and amounted to little before the nineteenth century.[2] The arts faculty, or philosophical as it came to be termed in German lands, offered lectures in Latin, Greek, and Hebrew, and a general course in philosophy, but the Aristotelian texts and to some extent mediæval methods in instruction continued to be used until the beginning of the eighteenth century.

Here and there some professor "read" on mathematics, and in Protestant lands on the new astronomy, and the study of botany began as the study of herbs in the medical faculty,[3] but during

[1] Paulsen, Fr., *The German Universities*, p. 36.

[2] As late as 1805, according to Paulsen, of the whole number of students in the universities of Prussia, there were but 144 in the combined medical faculties, as against 555 in theology, and 1036 in law.

[3] Francke relates that, as a student at Erfurt (c. 1675), he was able to study physics and botany, along with his theological studies. Oxford records show the publication of a list of plants in the "Physick Garden" there as early as 1648. The garden was endowed about that time by the Earl of Danby, and in 1764 lectures on

the sixteenth and seventeenth centuries few professors or students were interested in the scientific subjects. By 1675 Bacon's *Novum Organum* had begun to be taught at both Oxford and Cambridge, and by 1700 the Newtonian physics had begun to displace Aristotle at Oxford. By 1740 it was well established there. At first instruction in the new subjects was offered as an extra and for a fee by men not having professional rank (R. 224), and later the instruction was given full recognition by the university. By 1700 Cambridge had become a center for mathematical study (R. 225), and with the growth in popularity of the Newtonian philosophy, mathematical studies there took the place held by logic in the mediæval university. Cambridge has ever since remained a center for mathematical and, since the beginning of the nineteenth century, for scientific studies as well. Between 1680 and 1700 the University of Paris was reformed, and the mathematical and philosophical studies of Descartes (p. 394) began to be taught there. The universities of the Netherlands began to teach the new mathematical and scientific studies even earlier.

Aside from the above described *Realschule* development, the new scientific movement for a time largely passed over German lands, and in consequence the German universities remained unreformed until the eighteenth century. During the seventeenth century they sank to their lowest intellectual level. In 1694, largely in protest against the narrowness of the old universities, the new University of Halle was founded. It received into its faculty certain forward-looking men who had been driven from the old universities,[1] and is generally considered as the first modern university. The new scientific and mathematical subjects and a reformed philosophy were introduced; the instruction in Greek and Latin was reformed; German was made the medium of classroom instruction; and a scientific magazine in German was begun. In 1737 the University of Göttingen became a second center of modern influence, and from these two institutions the new scientific spirit gradually spread to all the Protestant univer-

botany were begun there. Lord Bacon, in his *Advancement of Learning* (1605), had written: "We see likewise that some places instituted for physic (medicinæ) have annexed the commodity of gardens for simples of all sorts, and do likewise command the use of dead bodies for anatomies."

[1] Thomasius was made professor of theology, and Francke professor of Greek and Oriental languages. Both had been expelled from the University of Leipzig. Christian Wolff, who had been banished by Frederick William I, was recalled and made professor of philosophy. It was he who "made philosophy talk German."

sities of German lands. A century later they were the leading universities of the world.

The transition now practically complete. From the time Petrarch made his first "find" at Liège (1333), in the form of two previously unknown orations of Cicero (p. 244), to the publication of the *Principia* (p. 388) of Newton (1687), is a period of approximately three and a half centuries. During these three and a half centuries a complete transformation of world-life had been effected, and the mediæval man, with his eyes on the past, had given place to the modern man with his eyes on the future. During these three and a half centuries revolutionary forces had been at work in the world of ideas, and the transition from mediæval to modern attitudes had been accomplished. From 1333 to 1433 was the century of "literary finds," and during this period the monastic treasures were brought to light and edited and the classical literature of Rome restored. Greek also was restored to the western world, and a reformed Latin, Greek, and Hebrew were given the place of first importance in the new humanistic school. The invention of printing took place in 1423; 1456 witnessed the appearance of the first printed book, and the perfection of the new means for the multiplication of books and the dissemination of ideas. Before 1500 the great era of geographical discovery had been inaugurated; a sea-route to India was found in 1487; and a new continent in 1492. In 1519–22 Magellan's ships rounded the world.

In 1517 Luther issued the challenge, the shock of which was felt in every corner of Christian Europe, and within a half-century much of northern and western Europe had been lost to the original Roman Church. Soon independence in thinking had been extended to the problem of the organization of the universe, and in 1543 Copernicus issued the book that clearly marks the beginning of modern scientific thinking and inquiry. Bacon had done his organizing work by 1620, and Newton's *Principia* (1687) finally established modern scientific thought and work. Comenius died in 1671, his great organizing work done, and his textbooks, with their many new educational ideas, in use all over Europe. The mediæval attitude still continued in religion and government, but the world as a whole had left mediæval attitudes behind it, and was facing the future of modern world organization and life. To the educational organization of this modern world we now turn, though before doing so we shall try to present a

cross-section, as it were, of the development in educational theory and practice which had been attained by about the middle of the eighteenth century.

QUESTIONS FOR DISCUSSION

1. Explain why the scholars of the time were so intent on producing a new race of Roman youths for a revived Latin scholarly world.
2. Show that a reaction against humanism was certain to arise, and why.
3. How do you explain the very small influence exerted on the Latin grammar schools of England by the non-conformist Academies, after they had been absorbed into the existing English non-state system of higher schools?
4. Compare Milton and Montaigne.
5. What would be the most probable effect on education of the erection of the polished-man-of-the-world ideal?
6. Enumerate the forces favoring and opposing the change of the language of instruction from Latin to the vernacular.
7. How many of the thirteen principles of the Innovators do we still hold to be valid?
8. Just what was new in the nine fundamental rules laid down by Ratke, in his *Methodus Nova?*
9. What is your estimate of the vernacular schools as outlined by Comenius? Of the plans for a gymnasium at Saros-Patak?
10. Compare Comenius' Latin school with the College of Calvin (p. 330).
11. State the new ideas in instruction embodied in the textbooks of Comenius.
12. Show that Comenius dominates modern educational ideas, even though his work was largely lost, in the same way that Petrarch or Wycliffe or Copernicus do modern work in their fields.
13. Explain the very slow development of vernacular schools after the Protestant Revolts.
14. Why would the introduction of *real* studies into them be especially slow?
15. What explanation can you offer for the much earlier beginnings in scientific instruction in German lands than in England or America, when much more of the important early scientific work was done by Englishmen than by Germans? and the failure of science for a time to find a home in the German universities?
16. Explain the continued dominance of the theological faculty in the universities of the seventeenth century.

SELECTED READINGS

In the accompanying *Book of Readings* the following illustrative selections are reproduced:

210. Rabelais: On the Nature of Education.
211. Milton: The Aim and Purpose of Education.
212. Milton: His Program for Study.
213. Adamson: Discontent of the Nobility with the Schools.
214. Montaigne: Ridicule of the Humanistic Pedants.
215. Montaigne: His Conception of Education.
216. Locke: Extracts from his Thoughts on Education.
217. Locke: Plan for Working Schools for Poor Children.
218. Comenius: Title-Page of the *Great Didactic*.

219. Comenius: Contents of the *Great Didactic*.
220. Comenius: Plan for the Gymnasium at Saros-Patak.
221. Comenius: Sample pages from the *Orbis Pictus*.
    (*a*) A page from a Latin-German edition of 1740.
    (*b*) Two pages from a Latin-English edition of 1727.
    (*c*) A page from the New York edition of 1810.
222. Butler: Place of Comenius in the History of Education.
223. Gesner: Need for *Realschulen* for the New Classes to be Educated.
224. Handbill: How the Scientific Studies began at Cambridge.
225. Green: Cambridge Scheme of Study of 1707.

QUESTIONS ON THE READINGS

1. Show that Rabelais (210) was in close sympathy with the best of the new humanists of his age.
2. Would Milton's definition of the purpose of education (211) be true, still?
3. Show from Milton's program of studies (212) that he represents a transition type, and also that his program contains the nucleus of the more modern studies of the secondary school.
4. Explain the discontent of the nobility (213) with the existing Church schools.
5. Assuming Montaigne's description of the education of his time (214) to be true, explain why this might naturally be the case.
6. Just what kind of an education does Montaigne outline (215), and how great a reaction was this from existing conditions?
7. In how far would Locke's ideas (216) still apply to the education of a boy of the leisure class?
8. Show that Locke's plan for work-house schools (217) was in thorough accord with English post-Reformation ideas as to the duty of the State in matters of education, and also that it contained the beginnings of the pauper-school idea of education which we later had to combat.
9. From the title-page (218) and the table of contents (219) of Comenius' *Great Didactic*, point out the originality and novelty of his ideas.
10. Compare Comenius' plan for the Saros-Patak *Gymnasium* (220) with such schools as Sturm's (137), the college of Guyenne (136), the college of Calvin (175), and the Jesuits (p. 340).
11. Compare Comenius' plan (220) with the instruction in an American high school of seventy-five years ago.
12. Compare the Alphabet page of Comenius' *Orbis Pictus* (221) with the same page in the *New England Primer* (202).
13. When so many educational reforms were inaugurated so early by Comenius (222), explain their neglect, and our having to work them out anew in the nineteenth century.
14. What does the need for *Realschulen* (223) indicate as to the evolution of German society and the recuperation from the ravages of war?
15. Compare the beginnings of scientific study at Cambridge (224) with beginnings of new subjects to-day in our schools.
16. Just what does the Cambridge Scheme of Study (225) indicate as being taught there?

SUPPLEMENTARY REFERENCES

*Adamson, J. W. *Pioneers of Modern Education, 1600–1700.*
Barnard, Henry. *German Teachers and Educators.*

*Butler, N. M. "The Place of Comenius in the History of Education": in *Proc. N. E. A.*, 1892, pp. 723-28.
Browning, Oscar, Editor. *Milton's Tractate on Education.*
*Comenius, J. A. *Orbis Pictus* (Bardeen; Syracuse).
Hanus, Paul H. "The Permanent Influence of Comenius"; in *Educational Review*, vol. 3, pp. 226-36 (March, 1892).
Laurie, S. S. *History of Educational Opinion since the Renaissance.*
*Laurie, S. S. *John Amos Comenius.*
Quick, R. H., Editor. *Locke's Thoughts on Education.*
*Quick, R. H. *Essays on Educational Reformers.*
*Vostrovsky, Clara. "A European School of the Time of Comenius (Prague, 1609)"; in *Education*, vol. 17, pp. 356-60 (February, 1897.)
Wordsworth, Christopher. *Scholæ Academicæ; Studies at the English Universities in the Eighteenth Century.*

CHAPTER XVIII

THEORY AND PRACTICE BY THE MIDDLE OF THE EIGHTEENTH CENTURY

We have now reached, in our history of the transition age which began with the Revival of Learning — the great events of which were the recovery of the ancient learning, the rediscovery of the historic past, the reawakening of scholarship, and the rise of religious and scientific inquiry — the end of the transition period, and we are now ready to pass to a study of the development and progress of education in modern times. Before doing so, however, we desire to gather up and state the progress in both educational theory and practice which had been attained by the end of this transition period, and to present, as it were, a cross-section of education at about the middle of the eighteenth century. To do this, then, before passing to a consideration of educational development in modern times, will be the purpose of this chapter. We shall first review the progress made in evolving a theory as to the educational purpose, and then present a cross-section view of the schools of the time under consideration.

I. PRE-EIGHTEENTH-CENTURY EDUCATIONAL THEORIES

The state purpose of the Greeks and Romans. As we saw, early in our study of the rise and progress of the education of peoples, the City-States of Greece were the first consciously to evolve a systematic plan of schooling and a prolonged course of training for those who were to guide and direct the State. In Sparta the training was almost wholly for military efficiency and tribal safety, but in Athens we found a people using a well-worked-out system of training to develop individual initiative, advance civilization, and promote the welfare of the State. The education provided was for but a class, to be sure, and a small ruling class at that, but it was the first evidence of the new western, individualistic, and democratic spirit expressing itself in the education of the young. There also we found, for the first time, the thinkers of the State deeply concerned with the education of the youth of the State, and viewing education as a necessity to make life worth living and to secure the State from dangers, both without and

within. The training there given produced wonderful results, and for two centuries the men educated by it ably guided the destinies of Athens.

The essentials of this Greek training were later embodied in the private-adventure school system that arose in Rome, which was adapted to conditions and needs there, and which was used for the training of a few Roman youths of the wealthier families for a political career. Schooling at Rome, though, never attained the importance or rendered the service that characterized education at Athens, and never became an instrument of the State used consciously for State ends. One Roman writer, Quintilian, as we have seen (R. 25), worked out a careful statement of the whole process of educating a youth for a public career, and this, the first practical treatise on education, was for long highly prized as the best-written statement of the educational art.

The future-life conception of the Christians. With the decline of Roman power and influence, and the victory of Christianity throughout the Roman world, the State conception of education was entirely lost to western Europe, and more than a thousand years elapsed before it again arose in the western world. The Church now became the State, and the need for any education for secular life almost entirely passed away. For centuries the aim was almost entirely a preparation for life in the world to come. Throughout all the early Middle Ages this attitude continued, supplemented only by the meager education of a few to carry on the work of the Church here below.

After the tenth century we noted the rise of some more or less independent study in some of the monastery and cathedral schools, and after the twelfth century the rise of *studia generalia* marked the congregation into groups of the few interested in a studious life. These in turn gave rise to the university foundations, and to the beginning of independent and secular study once more in the western world. The Revival of Learning, the recovery of the ancient manuscripts, the revival of the study of Greek in the West, the founding of libraries, the invention of paper and printing, and the revival of trade and commerce — all were new forces tending to give a new direction to scholarly study, and as a result a new race of scholars, more or less independent of the Church, now arose in western Europe. They were, however, a class, and a very small class at that, and though the result of their work was the creation of a new humanistic secondary school

this still ministered to the needs of but a few. This few was intended either for the service of the Church, for the governmental service of the towns which had by this time attained their independence, or for the governments of the rising principalities or states.

For the great mass of the people, whose purpose in life was to work and believe and obey, agriculture, warfare, the rising trades with their guilds (p. 209), and the services of the Church (p. 121) constituted almost all in the way of education which they ever received. To be useful to his overlord and master here and to be saved hereafter were the chief life-purposes of the common man. The former he must himself undertake in order to be able to live at all; the latter the Church undertook to supply to those who followed her teachings.

The rise of the vernacular religious school. For the first time in history, if we except the schools of the early Christian period, the Protestant Revolts created a demand for some form of an elementary religious school for all. The Protestant theory as to personal *versus* collective salvation involved as a consequence the idea of the education of all in the essentials of the Christian faith and doctrine. The aim was the same as before — personal salvation — but the method was now changed from that of the Church as intermediary to personal knowledge and faith and effort. To be saved, one must know something of the Word of God, and this necessitated instruction. To this end, in theory at least, schools had to be established to educate the young for membership in the new type of Church relationship. Reading the vernacular, a little counting and writing, in Teutonic countries a little music, and careful instruction in a religious Primer (**R. 202**), the Catechism, and the Bible, now came to constitute the subject-matter of a new vernacular school for the children of Protestants, and to a certain extent in time for the children of Catholics as well. As we pointed out earlier (p. 353), between this new type of school for religious ends and the older Latin grammar school for scholarly purposes there was almost no relationship, and the two developed wholly independently of one another. In the Latin grammar schools one studied to become a scholar and a leader in the political or ecclesiastical world; in the vernacular religious school one learned to read that he might be able to read the Catechism and the Bible, and to know the will of the Heavenly Father. There was scarcely any other purpose to the maintenance of the ele-

mentary vernacular schools. This condition continued until well into the eighteenth century.

Early unsuccessful educational reformers. Back in the seventeenth century, as we have pointed out in the preceding chapter, a very earnest effort was made by Ratke and Comenius to introduce a larger conception of the educational process into the ele-

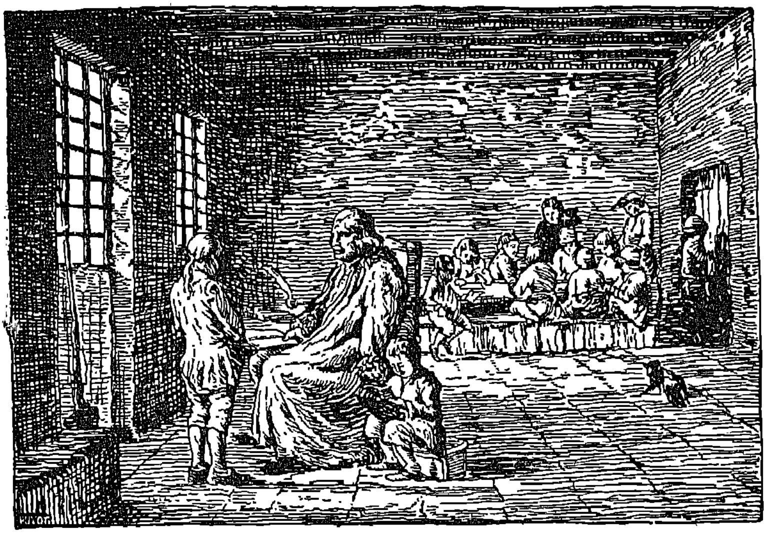

FIG. 129. A FRENCH SCHOOL BEFORE THE REVOLUTION
(After an etching by Boisseau, 1730–1809)

mentary vernacular school, to eliminate the gloomy religious material from the textbooks, to substitute a human-welfare purpose for the exclusively life-beyond view, and to transform the school into an institution for imparting both learning and religion. Comenius in particular hoped to make of the new elementary religious school a potent instrument for human progress by introducing new subject-matter, and by formulating laws and developing methods for its work which would be in harmony with the new scientific procedure so well stated by Francis Bacon. Comenius stands as the commanding figure in seventeenth-century pedagogical thought. He reasoned out and introduced us to the whole modern conception of the educational process and purpose (p. 415), and gave to the school of the people a solid theoretical and practical basis. Living, though, at an unfortunate period in human history, he was able to awaken little interest either in ra-

tional teaching-method or in reforms looking to the advancement of the welfare of mankind. Instead he roused suspicion and distrust by the innovations and progressive reforms he proposed; his now-celebrated book on teaching method (**Rs. 218, 219**) was not at the time understood and was for long forgotten, while the fundamentally sound ideas and pedagogical reforms which he proposed and introduced were lost amid the hatreds of his time, and had to be worked out again and reëstablished in a later and a more tolerant age.

Another unsuccessful reformer of some importance, and one whose work antedated that of both Ratke and Comenius, was the London schoolmaster, Richard Mulcaster (1531–1611), for twenty-five years headmaster of the famous Merchant Taylors' School (p. 278), and later Master of Saint Paul's School (p. 275). In 1581 he issued his *Positions*, a pedagogical work so far in advance of his time, and written in such a heavy and affected style, that it passed almost unnoticed in England, and did not become known at all in other lands. Yet the things he stood for became the fundamental ideas of nineteenth-century educational thought. These were:

1. That the end and aim of education is to develop the body and the faculties of the mind, and to help nature to perfection.
2. That all teaching processes should be adapted to the pupil taught.
3. That the first stage in learning is of large importance, and requires high skill on the part of the teacher.
4. That the thing to be learned is of less importance than the pupil learning.
5. That proper brain development demands that pressure and one-sided education alike be avoided.
6. That the mother tongue should be taught first and well, and should be the language of the school from six to twelve.
7. That music and drawing should be taught.
8. That reading and writing at least should be the common right of all, and that girls should be given equal opportunity with boys.
9. That training colleges for teachers should be established and maintained.

The modern nature of many of Mulcaster's proposals may be seen from the table of contents of his volume (**R. 226**). Mulcaster, like Comenius, thought far in advance of his age, and in consequence his book was soon and for long forgotten. Yet what Quick [1] says of him is very true:

[1] Quick, R. H, *Essays on Educational Reformers*, 2d ed., p. 97.

It would have been a vast gain to all Europe if Mulcaster had been followed instead of Sturm. He was one of the earliest advocates of the use of the vernacular instead of Latin, and good reading and writing in English were to be secured before Latin was begun. His elementary course included five things: English reading, English writing, drawing, singing, playing a musical instrument. If this were made to occupy the school time up to twelve, Mulcaster held that more would be done between twelve and sixteen than between seven and seventeen in the ordinary (Latin grammar school) way. There would be a further gain in that the children would not be set against learning.

John Locke, and the disciplinary theory of education. Another commanding figure in seventeenth-century pedagogical thought was the English scholar, philosopher, teacher, physician, and political writer, John Locke (1632–1704). In the preceding chapter we pointed out the place of Locke as a writer on the education of the sons of the English gentry, and illustrated by an extract from his *Thoughts* (**R. 216**) the importance he placed on such a practical type of education as would prepare a gentleman's son for the social and political demands of a world fast becoming modern. Locke's place in the history of education, though, is of much more importance than was there (p. 402) indicated. Locke was essentially the founder of modern psychology, based on the application of the methods of modern scientific investigation to a study of the mind,[1] and he is also of importance in the history of educational thought as having set forth, at some length and with much detail, the disciplinary conception of the educational process.

Locke had served as a tutor in an English nobleman's family, had worked out his educational theories in practice and thought them through as mind processes, and had become thoroughly convinced that it was the process of learning that was important, rather than the thing learned. Education to him was a process of disciplining the body, fixing good habits, training the youth in moral situations, and training the mind through work with stud-

[1] Locke was the first to lay the basis for modern scientific psychology to supersede the philosophic psychology of Plato and Aristotle. In his *Essay on the Conduct of the Human Understanding* (1690) upon which he spent many years of labor, he first applied the methods of scientific observation to the mind, analyzed experiences, and employed introspection and comparative mental study. He thus built up a psychology based on the analysis of experiences, and came to the conclusion that our knowledge is derived by reflection on experience coming through sensation. He is consequently called the founder of empirical psychology, and the forerunner of modern experimental psychology and child study. His philosophy, and his theory of education as well, thus came to be a philosophy of experience — a rejection of mere authority, and a constant appeal to reason as a guide.

ies selected because of their disciplinary value. This conception of education he sets forth well in the following paragraph, taken from his *Thoughts:*

> The great Work of the Governor is to fashion the Carriage and form the Mind; to settle in his Pupils good Habits and the Principles of Virtue and Wisdom; to give him by little and little a View of Mankind, and work him into a Love and Imitation of what is excellent and praiseworthy; and in the Prosecution of it, to give him Vigor, Activity, and Industry. The Studies which he sets him upon, are but as it were the Exercise of his Faculties, and Employment of his Time, to keep him from Sauntering and Idleness, to teach him Application, and accustom him to take Pains, and to give him some little Taste of what his own Industry must perfect (§ 94).

In his *Thoughts* Locke first sets forth at length the necessity for disciplining the body by means of diet, exercise, and the hardening process. "A sound mind in a sound body" he conceives to be "a short but full description of a happy state in this world," and a fundamental basis for morality and learning. The formation of good habits and manners through proper training, and the proper adjustment of punishments and rewards next occupies his attention, and he then explains his theory as to making all punishments the natural consequences of acts. Similarly the mind, as the body, must be disciplined to virtue by training the child to deny, subordinate desires, and apply reason to acts. The formation of good habits and the disciplining of the desires Locke regards as the foundations of virtue. On this point he says:

> As the Strength of the Body lies chiefly in being able to endure Hardship, so also does that of the Mind. And the great Principle and Foundation of all Virtue and Worth is plac'd in this: — That a Man is able to *deny himself* his own Desires, cross his own Inclinations, and purely follow what Reason directs as best, tho' the Appetite lean the other Way (§ 33).

Similarly, in intellectual education, good thinking and the employment of reason is the aim, and these, too, must be attained through the proper discipline of the mind. Good intellectual education does not consist merely in studying and learning, he contends, as was the common practice in the grammar schools of his time, but must be achieved by a proper drilling of the powers of the mind through the use of selected studies. The purpose of education, he holds, is above all else to make man a reasoning creature. Nothing, in his judgment, trains to reason closely so well as the study of mathematics, though Locke would have his

boy "look into all sorts of knowledge," and train his understanding with a wide variety of exercises. In the education given in the grammar schools of his time he found much that seemed to him wasteful of time and thoroughly bad in principle, and he used much space to point out defects and describe better methods of teaching and management, giving in some detail reasons therefor. His ideas as to needed reforms in the teaching of Latin (R. 227) are illustrative.

Locke on elementary education. For the beginnings of education, and for elementary education in general, Locke sticks close to the prevailing religious conception of his time. As for the education of the common people, he writes:

> The knowledge of the Bible and the business of his own calling is enough for the ordinary man; a Gentleman ought to go further.

Continuing regarding the beginnings of education and the studies and textbooks of his day, he says:

> The Lord's Prayer, the Creeds, and the Ten Commandments, 't is necessary he should learn perfectly by heart. . . . What other Books there are in *English* of the Kind of those above-mentioned (besides the Primer) fit to engage the Liking of Children, and tempt them to *read*, I do not know; . . . and nothing that I know has been considered of this Kind out of the ordinary Road of the Horn Book, Primer, Psalter, Testament, and Bible (§ 157).

Locke does, however, give some very sensible suggestions as to the reading of the Bible (R. 228), the imparting of religious ideas to children, and the desirability of transforming instruction so as to make it pleasant and agreeable, with plenty of natural playful activity.[1] On this point he writes:

> He that has found a Way how to keep up a Child's Spirit easy, active, and free, and yet at the same time to restrain him from many Things he has a Mind to, and to draw him to Things that are uneasy to him; he, I say, that knows how to reconcile these seeming Contradictions, has, in my Opinion, got the true Secret of Education (§ 46).

Influence of Locke's *Thoughts*. The volume by Locke contains much that is sensible in the matter of educating a boy. The

[1] "Freedom and self-reliance, these are the watchwords of these two marvelously modern men (Montaigne and Locke). Expansion, real education, drawing out, widening out, that is the burden of their preaching; and voices in the wilderness theirs were! Narrowness, bigotry, flippancy, inertia, these were the rule until Rousseau's time, and even his voice was to fall upon deaf ears in England." (Monroe, Jas. P., *Evolution of the Educational Ideal*, p. 122.)

emphasis on habit formation, reasoning, physical activities and play, the individuality of children, and a reformed method in teaching are its strong points. The thoroughly modern character of the book, in most respects, is one of its marked characteristics. The volume seems to have been much read by middle and upper-class Englishmen, and copies of it have been found in so many old colonial collections that it was probably well known among early eighteenth-century American colonists. That the book had an important influence on the attitude of the higher social classes of England toward the education of their sons and, consciously or unconsciously, in time helped to redirect the teaching in that most characteristic of English educational institutions, the English Public (Latin Grammar) School, seems to be fairly clear. On elementary religious and charity-school education it had practically no influence.

Locke's great influence on educational thought did not come, though, for nearly three quarters of a century afterward, and it came then through the popularization of his best ideas by Rousseau. Karl Schmidt[1] well says of his work:

> Locke is a thorough Englishman, and the principle underlying his education is the principle according to which the English people have developed. Hence his theory of education has in the history of pedagogy the same value that the English nation has in the history of the world. He stood in strong opposition to the scholastic and formalized education current in his time, a living protest against the prevailing pedantry; in the universal development of pedagogy he gives impulse to the movement which grounds education upon sound psychological principles, and lays stress upon breeding and the formation of character.

Restating and expanding the leading ideas of Locke in his *Émile* (chapter XXI), and putting them into far more attractive literary form, Rousseau scattered Locke's ideas as to educational reform over Europe. In particular Rousseau popularized Locke's ideas as to the replacement of authority by reason and investigation, his emphasis on physical activity and health, his contention that the education of children should be along lines that were natural and normal for children, and above all Locke's plea for education through the senses rather than the memory. In so popularizing Locke's ideas, and at a time when all the political tendencies of the period were in the direction of the rejection of

[1] Schmidt, Karl, *Geschichte der Pädagogik*, translated in Barnard's *American Journal of Education*.

authority and the emphasis of the individual, those educational reformers who were inspired by the writings of Rousseau created and applied, largely on the foundations laid down by John Locke, a new theory as to educational aims and procedure which dominated all early nineteenth-century instruction. This we shall trace further in a subsequent chapter (chapter XXI).

It was at this point that the educational problem stood, in so far as a theory as to educational aims and the educational process was concerned, when Rousseau took it up (1762). Before passing to a consideration of his work, though, and the work of those inspired by him and by the French revolutionary writers and statesmen, let us close this third part of our history by a brief survey of the development so far attained, the purpose, character, aims, and nature of instruction in the schools, and their means of support and control at about the middle of the century in which Rousseau wrote, and before the philosophical and political revolutions of the latter half of the eighteenth century had begun to influence educational aims and procedure and control.

II. MID-EIGHTEENTH-CENTURY EDUCATIONAL CONDITIONS

The purpose. The purpose of maintaining the elementary vernacular school, in all European lands, remained at the middle of the eighteenth century much as it was a century before, though in the German States and in the American Colonies there was a noticeable shifting of emphasis from the older exclusively religious purpose toward a newer conception of education as preparation for life in the world here. Still, one learned to read chiefly "to learn some orthodox Catechism," "to read fluently in the New Testament," and to know the will of God, or, as stated in the law of the Connecticut Colony (**R. 193**), "in some competent measure to understand the main grounds and principles of Christian religion necessary to salvation." The teacher was still carefully looked after as to his "soundness in the faith" (**R. 238 a**); he was required "to catechise his scholars in the principles of the Christian religion," and "to commend his labors amongst them unto God by prayer morning and evening,[1] taking care that his scholars do reverently attend during the same." The minister in practically all lands examined the children as to their knowledge of the Catechism and the Bible, and on his visits quizzed them as to the Sunday sermon. In Boston (1710) the ministers were required,

[1] Rules for the schools of Dorchester, Massachusetts.

on their school visits, to pray with the pupils, and "to entertain them with some instructions of piety adapted to their age." In Church-of-England schools "the End and Chief Design" of the schools established continued to be instruction in "the Knowledge and Practice of the Christian Religion as Professed and Taught in the Church of England" (R. 238 b). In German lands the elementary vernacular school was still regarded as "the portico of the Temple," "Christianity its principal work," and not as "mere establishments preparatory to public life, but be pervaded by the religious spirit."[1] The uniform system of public schools ordered established for Prussia by Frederick the Great, in 1763, were after all little more than religious schools (R. 274), conducted for purposes of both Church and State. As Frederick expressed it, "we find it necessary and wholesome to have a good foundation laid in the schools by a rational and a Christian education of the young for the fear of God, and other useful ends." In the schools of La Salle's organization, which was most prominent in elementary vernacular education in Catholic France, the aim continued to be (R. 182) "to teach them to live honestly and uprightly, by instructing them in the principles of our holy religion and by teaching them Christian precepts."

Weakening of the old religious theory. By the middle of the eighteenth century, however, there is a noticeable weakening of the hold of the old religious theory on the schools in most Protestant lands. In England there was a marked relaxation of the old religious intolerance in educational matters as the century proceeded, and new textbooks, embodying but little of the old gloomy religious material, appeared and began to be used. By a series of decisions, between 1670 and 1701 (chapter XXIV), the English courts broke the hold of the bishops in the matter of the licensing of elementary schoolmasters, and by the Acts of 1713 and 1714 the Dissenters were once more allowed to conduct schools of their own. Coincident with this growth of religious tolerance among the English we find the Church of England redoubling its efforts to hold the children of its adherents, by the organization of parish schools and the creation of a vast system of charitable religious schools. In German lands, too, a marked shifting of emphasis away from solely religious ends and toward the needs of the government began, toward the end of the eight-

[1] Duke Eberhard Louis's *Renewed Organization of the German School*, 1729: republished 1782.

eenth century, to be evident. In Württemberg, which was somewhat typical of late eighteenth-century action by other German States, a Circular of the General Synod, of November 1787, declares the German schools to be "those nurseries in which should be taught the true and genuine idea of the duties of men — created with a reasoning soul — toward God, government, their fellow-men, and themselves, and also at least the first rudiments of useful and indispensable knowledge."

It was in the American Colonies, though, that the waning of the old religious interest was most notable. Due to rude frontier conditions, the decline in force of the old religious-town governments, the diversity of sects, the rise of new trade and civil interests, and the breakdown of old-home connections, the hold on the people of the old religious doctrines was weakened there earlier than in the old world. By 1750 the change in religious thinking in America had become quite marked. As a consequence many of the earlier parochial schools had died out, while in the New England Colonies the colonial governments had been forced to exercise an increasing state oversight of the elementary school to keep it from dying out there as well.

Studies and textbooks. The studies of the elementary vernacular school remained, throughout the whole of the eighteenth century, much as before, namely, reading, a little writing and ciphering, some spelling, religion, and in Teutonic countries a little music. La Salle (**R. 182**) had prescribed, for the Catholic vernacular schools of France, instruction in French, some Latin, "orthography, arithmetic, the matins and vespers, le Pater, l'Ave Maria, le Credo et le Confiteor, the Commandments, responses, Catechism, duties of a Christian, and maxims and precepts drawn from the Testament." The Catechism was to be taught one half-hour daily. The schoolbooks in England in Locke's day, as he tells us (p. 435), were "the Horn Book, Primer, Psalter, Testament, and Bible." These indicate merely a religious vernacular school. The purpose stated for the English Church charity-schools (**R. 238 b**), schools that attained to large importance in England and the American Colonies during the eighteenth century, shows them to have been, similarly, religious vernacular schools. The *School Regulations* which Frederick the Great promulgated for Prussia (1763), fixed the textbooks to be used (**R. 274**, § 20), and indicate that the instruction in Prussia was still restricted to reading, writing, religion, singing, and a little

arithmetic. In colonial America, Noah Webster's description (R. 230) of the schools he attended in Connecticut, about 1764–70, shows that the studies and textbooks were "chiefly or wholly Dilworth's Spelling Books, the Psalter, Testament, and Bible," with a little writing and ciphering. A few words of description of these older books may prove useful here.

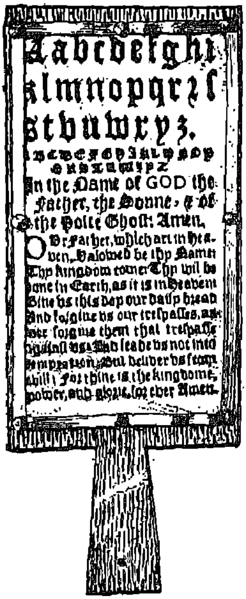

FIG. 130. A HORN BOOK

The Horn Book. The Horn Book goes back to the close of the fifteenth century,[1] and by the end of the sixteenth century was in common use throughout England. Somewhat similar alphabet boards, lacking the handle, were also used in Holland, France, and in German lands. This, a thin oak board on which was pasted a printed slip, covered by translucent horn, was the book from which children learned their letters and began to read, the mastery of which usually required some time. Cowper thus describes this little book:

> Neatly secured from being soiled or torn
> Beneath a pane of thin translucent horn,
> A book (to please us at a tender age
> 'T is called a book, though but a single page)
> Presents the prayer the Savior designed to teach,
> Which children use, and parsons — when they preach.

The Horn Book was much used well into the eighteenth century, but its reading matter was in time incorporated into the school Primer, now evolved out of an earlier elementary religious manual.

The Primer. Originally the child next passed to the Catechism and the Bible, but about the middle of the seventeenth century the Primer began to be used. The Primer in its original form was a simple manual of devotion for the laity, compiled

[1] One of the earliest horn books known appears in the illuminated manuscript shown in Figure 44, which dates from 1503. The first definitely known horn book in England dates from 1587, while most of the specimens found in museums date from about the middle of the eighteenth century. As improvements or variations of the horn book, cardboard sheets and wooden squares, known as battledores, appeared after 1770. On these the illustrated alphabet was printed. (See Tuer, A. W., *History of the Horn Book*, 2 vols., illustrated, London, 1886, for detailed descriptions.)

without any thought of its use in the schools. It contained the Creed, the Lord's Prayer, the Ten Commandments, and a few of the more commonly used prayers and psalms.[1] The Catechism soon was added, and with the prefixing of the alphabet and a few syllables and words it was transformed, as schools arose, into the first reading book for children. There was at first no attempt at grading, illustration, or the introduction of easy reading material. About the close of the seventeenth century the illustrated Primer, with some attempt at grading and some additional subject-matter, made its appearance, both in England and America, and at once leaped into great popularity.

The idea possibly goes back to the *Orbis Pictus* (1654) of Comenius (p. 413: **R. 221**), the first illustrated schoolbook ever written. The first English Primer adapted to school use was *The Protestant Tutor*, a rather rabid anti-Catholic work which appeared in London, about 1685. A later edition of this contained the alphabet, some syllables and words, the figures and letters, the list of the books of the Bible, an alphabet of lessons, the Lord's Prayer, the Creed, the Ten Commandments, and a poem, long famous, on the death of the martyr, John Rogers.[2] It was an abridgement of this book which the same publisher brought out in Boston, about 1690, under the name of *The New England Primer* (**R. 202**). This at once leaped into great popularity, and became the accepted reading book in all the schools of the American Colonies except those under the Church of England. For the next century and a quarter it was the chief school and reading book in use among the Dissenters and Lutherans in America. Schoolmasters drilled the children on the reading matter and the Catechism it contained, and the people recited from it yearly in the churches. It was also used for such spelling as was given. It was the first great American textbook success, and was still in use in the Boston dame schools as late as 1806. It was reprinted in England, and enjoyed a great sale among Dissenters there. Its sales in America alone have been estimated at least three million copies. The sale in Europe was also large. It was followed in

[1] The diversity of religious primers which had grown up by 1565 led Henry VIII to cause to be issued a unified and official Primer, containing the Pater Noster, Ave Maria, Credo, and the Ten Commandments.

[2] The title-page of an edition of 1715 declares that edition to be: "*The Protestant Tutor*, instructing Youth and Others, in the compleat method of *Spelling, Reading*, and *Writing True English:* Also discovering to them the Notorious *Errors*, Damnable *Doctrines*, and cruel *Massacres* of the bloody *Papists* which *England* **may expect from a** ***Popish*** Successor."

England by other Primers and other introductory reading books, of which *The History of Genesis* (1708), a series of simple stories retold from the first book of the Bible, and *The Child's Weeks-Work* (1712), containing proverbs, fables, conundrums, lessons on behavior, and a short catechism, are types. Frederick the Great, in his list of required textbooks for Prussian schools (**R. 274**, § 20), does not mention a Primer.

The Catechism. In all Protestant German lands the Shorter Catechism prepared by Luther, or the later Heidelberg Catechism; in Calvinistic lands the Catechism of Calvin; and in England and the American Colonies the Westminster Catechism,[1] formed the backbone of the religious instruction. Teachers drilled their pupils in these as thoroughly as on any other subject, writing masters set as copies sentences from the book, children were required to memorize the answers, and the doctrines contained were emphasized by teacher and preacher so that the children were saturated with the religious ideas set forth. No book except the Bible did so much to form the character, and none so much to fix the religious bias of the children. Almost equal importance was given to the Catechism in Catholic lands (**R. 182**, §§ 21–22), though there supplemented by more religious influences derived from the ceremonial of the Church.

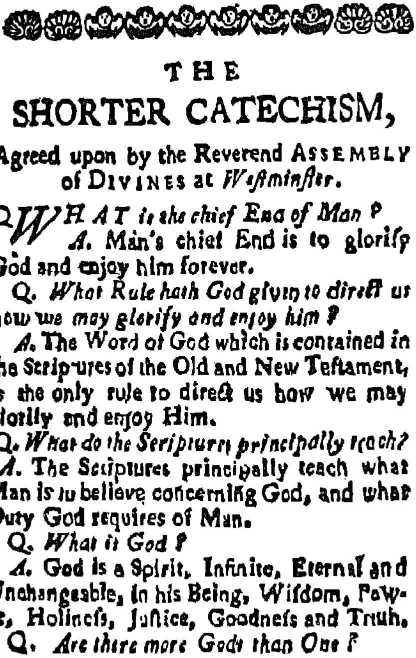
THE
SHORTER CATECHISM,
Agreed upon by the Reverend ASSEMBLY of DIVINES at *Weſtminſter.*

Q. *WHAT is the chief End of Man?*
A. Man's chief End is to glorify God and enjoy him forever.
Q. *What Rule hath God given to direct us how we may glorify and enjoy him?*
A. The Word of God which is contained in the Scriptures of the Old and New Teſtament, is the only rule to direct us how we may glorify and enjoy Him.
Q. *What do the Scriptures principally teach?*
A. The Scriptures principally teach what Man is to believe concerning God, and what Duty God requires of Man.
Q. *What is God?*
A. God is a Spirit, Infinite, Eternal and Unchangeable, in his Being, Wiſdom, Power, Holineſs, Juſtice, Goodneſs and Truth.
Q. *Are there more Gods than One?*

FIG. 131. THE WESTMINSTER CATECHISM
(A page from *The New England Primer*, natural size)

[1] This was compiled by the Westminster Assembly of Divines, called together by Parliament, in 1643, composed of 121 clergymen, 30 of the laity, and 5 special commissioners from Scotland. It held 1163 sessions, extending over six years, and framed the series of 107 questions and answers which appeared in the Primer as "The Shorter Catechism."

Spellers. The next step forward, in the transition from the religious Primer to secular reading matter for school children, came in the use of the so-called Spellers. Probably the first of these was *The English School-Master* of Edmund Coote (R. 229), first issued in 1596. This gave thirty-two pages to the alphabet and spelling; eighteen to a shorter Catechism, prayers, and psalms; five to chronology; two to writing copies; two to arithmetic; and twenty to a list of hard words, alphabetically arranged and explained. As will be seen from this analysis of contents, this was a schoolmaster's general manual and guide. After about 1740 such books became very popular, due to the publication that year of Thomas Dilworth's *A New Guide to the English Tongue.* This book contained, as the title-page (R. 229) declared, selected lists of words with rules for their pronunciation, a short treatise on grammar, a collection of fables with illustrations for reading, some moral selections, and forms of prayer for children. It became very popular in New as well as in old England, and was followed by a long line of imitators, culminating in America in the publication of Noah Webster's famous blue-backed *American Spelling Book*, in 1783. This was after the plan of the English Dilworth, but was put in better teaching form. It contained numerous graded lists of words, some illustrations, a series of graded reading lessons, and was largely secular in character. It at once superseded the expiring *New England Primer* in most of the American cities, and continued popular in the United States for more than a hundred years.[1]

FIG. 132. THOMAS DILWORTH (?–1780)

The most celebrated English text-book writer of his day.
(From the Frontispiece of his *Schoolmaster's Assistant*, 1743)

[1] So great was the sale of this book that the author was able to support his family, during the twenty years (1807–27) he was at work on his *Dictionary of the English Language*, entirely from the royalties from the *Speller* though the copyright returns were less than one cent a copy. At the time of his death (1843), the sales were still approximatelv a million copies a year, and the book is still on sale.

It was the second great American textbook success, and was followed by a long list of popular Spellers and Readers, leading up to the excellent secular Readers of the present day.

FIG. 133. FRONTISPIECE TO NOAH WEBSTER'S "AMERICAN SPELLING BOOK"

This is from the 1827 edition, reduced one third in size.

Arithmetic and Writing. The first English Arithmetic, published about 1540 to 1542, has been entirely lost, and was probably read by few. The first to attain any popularity was *Cocker's Arithmetic* (1677), this "Being a Plain and Familiar Method suitable to the meanest Capacity, for the understanding of that incomparable Art." A still more popular book was *Arithmetick: or that Necessary Art Made Most Easie*, by J. Hodder, Writing Master, a reprint of which appeared in Boston, in 1719. The first book written by an American author was Isaac Greenwood's *Arithmetick, Vulgar and Decimal*, which appeared in Boston, in 1729. In 1743 appeared Dilworth's *The Schoolmaster's Assistant*, a book which retained its popularity in both England and America until after the beginning of the nineteenth century.

No text in Arithmetic is mentioned in the School Regulations of Frederick the Great (R. 274, § 20), or in scarcely any of the descriptions left us of eighteenth-century schools. The study itself was common, but not universal, and was one that many teachers were not competent to teach. To possess a reputation as an "arithmeticker" was an important recommendation for a teacher, while for a pupil to be able to do sums in arithmetic was unusual, and a matter of much pride to parents. The subject was frequently taught by the writing master, in a separate school,[1] while the reading teacher confined himself to reading, spelling, and religion. Thus, for example, following earlier English practice, the Town Meeting of Boston, in 1789, ordered "three reading schools

[1] In Nuremberg, as an example of German practice, the guild of writing and arithmetic masters continued, throughout all of the eighteenth century, and even into the nineteenth, as an organization separate from that of other types of teachers.

and three writing schools established in the town" for the instruction of children between the ages of seven and fourteen, the subjects to be taught in each being:

The writing schools	*The reading schools*
Writing	Spelling
Arithmetic	Accentuation
	Reading of prose and verse
	English grammar and composition

The teacher might or might not possess an arithmetic of his own, but the instruction to the pupil was practically always dictated and copied instruction. Each pupil made up his own book of rules and solved problems, and few pupils ever saw a printed arithmetic. Many of the early arithmetics were prepared after the catechism plan. There was almost no attempt to use the subject for drill in reasoning or to give a concrete type of instruction, before about the middle of the eighteenth century,[1] and but little along such reform lines was accomplished until after the beginning of the nineteenth century.

Writing, similarly, was taught by dictation and practice, and the art of the "scrivener," as the writing master was called, was one thought to be difficult to learn. The lack of practical value of the art, the high cost of paper, and the necessity usually for special lessons, all alike tended to make writing a much less commonly known art than reading. Fees also were frequently charged for instruction in writing and arithmetic; reading, spelling, and religion being the only free subjects. The scrivener and the arithmetic teacher also frequently moved about,

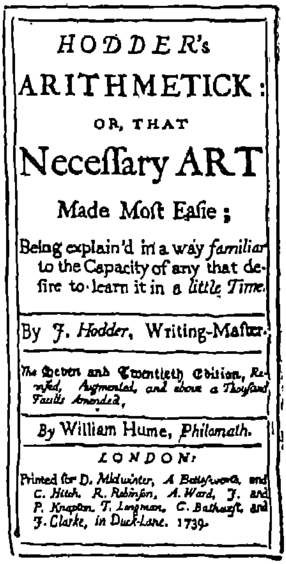
HODDER's ARITHMETICK: OR, THAT Neceſſary ART Made Moſt Eaſie; Being explain'd in a way *familiar* to the Capacity of any that deſire to learn it in a *little Time.*

By *J. Hodder*, Writing-Maſter.

The Seven and Twentieth Edition, *Reviſed, Augmented, and above a Thouſand Faults Amended,*

By William Hume, *Philomath.*

LONDON: Printed for *D. Midwinter, A. Bettesworth,* and *C. Hitch, R. Robinson, A. Ward, J.* and *P. Knapton, T. Longman, C. Bathurst,* and *J. Clarke, in Duck-Lane.* 1739.

FIG. 134. TITLE-PAGE OF HODDER'S ARITHMETIC

An early reprint of this famous book appeared in Boston in 1719.

[1] Francke, in his Institutions at Halle (p. 418), had tried to develop a number-concept, and apply the teaching. In the Braunschweig-Lüneburg school decree of 1737 appeared directions for beginning number work by counting the fingers, apples, etc., and basing the multiplication table on addition. A few German writers during the eighteenth century suggested better instruction; Basedow (chapter XXII) tried to institute reform in the teaching of the subject, but it was left for Pestalozzi (chapter XXI) to give the first real impetus to the rational teaching of the subject.

as business warranted, and was not fixed as was the teacher of the reading school.

The teachers. The development of the vernacular school was retarded not only by the dominance of the religious purpose of the school, but by the poor quality of teachers found everywhere in the schools. The evolution of the elementary-school teacher of to-day out of the church sexton, bell-ringer, or grave-digger,[1] or out of the artisan, cripple, or old dame who added school teaching to other employment in order to live, forms one of the interesting as well as one of the yet-to-be-written chapters in the history of the evolution of the elementary school.

Teachers in elementary schools everywhere in the eighteenth century were few in number, poor in quality, and occupied but a lowly position in the social scale. School dames in England (R. 235) and later in the American Colonies, and on the continent of Europe teachers who were more sextons, choristers, beadles, bell-ringers, grave-diggers, shoemakers, tailors, barbers, pensioners, and invalids than teachers, too often formed the teaching body for the elementary vernacular school (Rs. 231, 232, 233). In Switzerland, the Netherlands, and some of the American Colonies, where schools had become or were becoming local semi-civic affairs, the standards which might be imposed for teaching also were low. The grant of the tailoring monopoly to the elementary teachers of Prussia,[2] in 1738, and Krüsi's recollections of how he became a schoolmaster in Switzerland, in 1793 (R. 234), were quite typical of the time. In Catholic France, and in some German Catholic lands as well, teaching congregations (p. 345), some of whose members had some rudimentary training for their work, were in charge of the existing parish schools. These provided a somewhat better type of teaching body than that frequently found in Protestant lands, though by the latter part of the eighteenth century the beginnings of teacher-training are to be seen in some of the German States. The Church of England, too, had by this

[1] Such offices were not considered in any sense as degrading, and the attaching of the new duty of instructing the young of the parish in reading and religion dignified still more the other church office. As schools grew in importance there was a gradual shifting of emphasis, and finally a dropping of the earlier duties. Many early school contracts in America (Rs. 105; 236) called for such church duties on the part of the parish teacher. See also footnote, p. 370.

[2] In 1722 country schoolmasters in Prussia were ordered selected from tailors, weavers, blacksmiths, wheelwrights, and carpenters, and in 1738 they were granted the tailoring monopoly in their villages, to help them to live. Later Frederick the Great ordered that his crippled and superannuated soldiers should be given teaching positions in the elementary vernacular schools of Prussia.

time organized strong Societies [1] for the preparation of teachers for Church-of-England schools, both at home and abroad. In Dutch, German, and Scandinavian lands, and in colonies founded by these people in America, the parish school, closely tied up with and dependent upon the parish church, was the prevailing type of vernacular school, and in this the teacher was regarded as essentially an assistant to the pastor (R. 236) and the school as a dependency of the Church.

FIG. 135. A "CHRISTIAN BROTHERS" SCHOOL

La Salle teaching at Grenoble. Note the adult type of dress of the boys.

In England, in addition to regular parish schools and endowed elementary schools, three peculiar institutions, known as the Dame School, the religious charity-school, and the private-adventure or "hedge school" had grown up, and the first two of these had reached a marked development by the middle of the eighteenth century. Because these were so characteristic of early English educational effort, and also played such an important part in the American Colonies as well, they merit a few words of description at this point.

The Dame School. The Dame School arose in England after the Reformation. By means of it the increasing desire for a rudimentary knowledge of the art of reading could be satisfied, and at the same time certain women could earn a pittance. This type of school was carried early to the American Colonies, and out of it was in time evolved, in New England, the American elementary school. The Dame School was a very elementary school, kept in a kitchen or living-room by some woman who, in her youth, had obtained the rudiments of an education, and who now desired to earn a small stipend for herself by imparting to the children of her neighborhood her small store of learning. For a few pennies a week the dame took the children into her home and explained to them the mysteries connected with learning the beginnings of reading and spelling. Occasionally a little writing and counting

[1] The "Society for the Promotion of Christian Knowledge," organized in 1699 to aid the Church and provide schools at home, and the "Society for the Propagation of the Gospel in Foreign Parts," organized in 1702 to supply ministers and teachers for churches and schools in the English colonies.

also were taught, though not often in England. In the American Colonies the practical situations of a new country forced the employment as teachers of women who could teach all three subjects, thus early creating the American school of the so-called "3 Rs"—"Reading, Riting, Rithmetic." The Dame School ap-

FIG. 136. AN ENGLISH DAME SCHOOL
(From a drawing of a school in the heart of London, after Barclay)

pears so frequently in English literature, both poetry and prose, that it must have played a very important part in the beginnings of elementary education in England. Of this school Shenstone (1714–63) writes (R. 235):

> In every village marked with little spire,
> Embowered in trees, and hardly known to fame,
> There dwells, in lowly shed and mean attire,
> A matron old, whom we schoolmistress name,
> Who boasts unruly brats with birch to tame.

The Reverend George Crabbe (1754–1832), another poet of homely life, writes (R. 235) of a deaf, poor, patient widow who sits

> And awes some thirty infants as she knits;
> Infants of humble, busy wives who pay,
> Some trifling price for freedom through the day.

This school flourished greatly in America during the eighteenth century, but with the coming of Infant Schools, early in the nine-

teenth, was merged into these to form the American Primary School.

The religious charity-school. Another thoroughly characteristic English institution was the church charity-school. The first of these was founded in Whitechapel, London, in 1680. In 1699, when the School of Saint Anne, Soho (**R. 237**), was founded by "Five Earnest Laymen for the Poore Boys of the Parish," it was the sixth of its kind in England. In 1699 the "Society for the Promotion of Christian Knowledge" (S.P.C.K.) was founded for the purpose, among other things, of establishing catechetical schools for the education of the children of the poor in the principles of the Established Church (**R. 238 b**). In 1701 the "Society for the Propagation of the Gospel in Foreign Parts" (S.P.G.) was also founded to extend the work of the Anglican Church

FIG. 137. GRAVEL LANE CHARITY-SCHOOL, SOUTHWARK

Founded in 1687, and one of the earliest of the Non-Conformist English charity-schools. Still carrying on its work in the original schoolroom at the time this picture appeared, in *Londina Illustrata*, in 1819.

abroad, supply schoolmasters and ministers, and establish schools, to train children to read, write, know and understand the Catechism, and fit into the teachings and worship of the Church. To develop piety and help the poor to lead industrious, upright, self-respecting lives, "to make them loyal Church members.

and to fit them for work in that station of life in which it had pleased their Heavenly Father to place them," were the principal objects of the Society.

FIG. 138. A CHARITY-SCHOOL GIRL IN UNIFORM
Saint Anne's, Soho, England

All were taught reading, spelling, and the Catechism, and instruction in writing and arithmetic might be added. The training might also be coupled with that of the "schools of industry" (workhouse schools, as described by Locke [R. 217]) to augment the economic efficiency of the boy. Girls seem to have been provided for almost equally with boys, and, in addition to being taught to read and spell, were taught "to knit their Stockings and Gloves, to Mark, Sew, and make and mend their Cloathes." Both boys and girls were usually provided with books and clothing,[1] a regular uniform being worn by the boys and girls of each school.

The chief motive in the establishment of these schools, though, was to decrease the "Prophaness and Debauchery . . . owing to a gross Ignorance of the Christian Religion" (R. 237) and to educate "Poor Children in the Rules and Principles of the Christian Religion as professed and taught in the Church of England." Writing, in 1742, Reverend Griffith Jones, an organizer for the S.P.C.K. in Wales, said:

> It is but a cheap education that we would desire for them [the poor], only the moral and religious branches of it, which indeed is the most necessary and indispensable part. The sole design of this charity is to inculcate upon such . . . as can be prevailed upon to learn, the knowledge and practice, the principles and duties of the Christian religion; and to make them good people, useful members of society, faithful servants of God, and men and heirs of eternal life.

These schools multiplied rapidly and soon became regular institutions, as the following table, showing the growth of the S.P.C.K. schools in London alone, shows:

[1] In 1704 the ordinary charge in London for a "School of 50 Boys Cloathed comes to about £75 per Annum, for which a School-Room, Books, and Firing are provided, a Master paid, and to each Boy is given yearly, 3 Bands, 1 Cap, 1 Coat, 1 Pair of Stockings, and one Pair of Shooes." A girls' school of the same size cost £60 per annum, which paid for the room, books, mistress, fixing and providing each girl with "2 Coyfs, 2 Bands, 1 Gown and Petticoat, 1 Pair of knit Gloves, 1 Pair of Stockings, and 2 Pair of Shooes."

Year	*Schools*	*Boys*	*Girls*	*Total*
1699	0	0	0	0
1704	54	1386	745	2131
1709	88	2181	1221	3402
1714	117	3077	1741	4818

In England and Ireland combined the Society had, by 1714, a total of 1073 schools, with 19,453 pupils enrolled, and by 1729 the number had increased to 1658, with approximately 34,000 pupils. From England the charity-school idea was early carried to the Anglican Colonies in America and became a fixed institution in New Jersey, Pennsylvania, Delaware, Maryland, and somewhat in the Colonies farther south. In the Pennsylvania constitution of 1790 we find the following directions for the establishment of a state charity-school system to supplement the parish schools of the churches:

Sec. 1. The legislature shall, as soon as conveniently may be, provide, by law, for the establishment of schools throughout the State, in such manner that the poor may be taught *gratis*.

FIG. 139.
A CHARITY-SCHOOL BOY IN UNIFORM
Saint Anne's, Soho, England

The first Pennsylvania school law of 1802 carried this direction into effect by providing for pauper schools in the counties, a condition that was not done away with until 1834. In New Jersey the system lasted until 1838.

The private-adventure, or "hedge," school. This was a school analogous to the Dame School, but was kept by a man instead of a woman, and usually at his home or shop. Plate 15, showing a shoe cobbler teaching, represents one type of such schools. The term "hedge schools" arose in Ireland, where teaching was forbidden the Catholics, and secret schools arose in which priests and others taught what was possible. Of these McCarthy writes:[1]

On the highways and on the hillsides, in ditches and behind hedges, in the precarious shelter of the ruined walls of some ancient abbey, or under the roof of a peasant's cabin, the priests set up schools and taught the children of their race.

The term soon came to be applied to any kind of a poor school, taught in an irregular manner or place. Similar irregular schools,

[1] McCarthy, Justin H., *Ireland since the Union*, p. 13.

under equivalent names, also were found in German lands,[1] the Netherlands, and in France, while in the American Colonies "indentured white servants" were frequently let out as schoolmasters. The following advertisement of a teacher for sale is typical of private-adventure elementary school-keeping during the colo-

To Be DISPOSED of,

A Likely Servant Mans Time for 4 Years who is very well Qualified for a Clerk or to teach a School, he Reads, Writes, underſtands Arithmetick and Accompts very well, Enquire of the Printer hereof.

FIG. 140. ADVERTISEMENT FOR A TEACHER TO LET
(From the *American Weekly Mercury* of Philadelphia, 1735)

nial period. These schools were taught by itinerant school-keepers, artisans, and tutors of the poorer type, but offered the beginnings of elementary education to many a child who otherwise would never have been able to learn to read. In the early eighteenth century these schools attained a remarkable development in England.

A new influence of tremendous future importance — general reading — was now coming in; the vernacular was fast supplanting Latin; newspapers were being started; little books or pamphlets (tracts) containing general information were being sold; books for children and beginners were being written; the popular novel and story had appeared;[2] and all these educative forces were creating a new and a somewhat general desire for a knowledge of the art of reading. This in turn caused a new demand for schools to teach the long-locked-up art, and this demand was capitalized to the profit of many types of people.

The apprenticing of orphans and children of the poor. The compulsory apprenticing of the children of the poor, as we have seen (p. 326), was an old English institution, and workhouse training, or the so-called "schools of industry," became, by the eighteenth century, a prominent feature of the English care of the poor. These represented the only form of education supported

[1] Frederick the Great, in the General School Regulations issued in 1763 (R. 274, § 15), strictly prohibited the keeping of "hedge schools" in the towns and rural districts of Prussia.

[2] Bunyan's *Pilgrim's Progress* (1678,) Defoe's *Robinson Crusoe* (1719), and *Gulliver's Travels* (1726). The publication of these tremendously stimulated the desire to read.

by taxation, and the only form of education to which Parliament gave any attention during the whole of the eighteenth century. This type of institution also was carried to the Anglican Colonies in America, as we have seen in the documents for Virginia (**R. 200 a**), and became an established institution in America as well.

The apprenticing of boys to a trade, a still older institution, was also much used as a means for training youths for a life in the trades, not only in England and the American Colonies, but throughout all European lands as well. The conditions surrounding the apprenticing of a boy had by the eighteenth century become quite fixed. The "Indenture of Apprenticeship" was drawn up by a lawyer, and by it the master was carefully bound to clothe and feed the boy, train him properly in his trade, look after his morals, and start him in life at the end of his apprenticeship. This is well shown in the many records which have been preserved, both in England (**R. 242**) and the American Colonies (**R. 201**). For many boys this type of education was the best possible at the time, and worthily started the possessor in the work of his trade.

In the eighteenth century different English church parishes began to set up workhouse schools of various types, and to maintain these out of parish "rates." The one established in Bishopsgate Street, London, in 1701, is typical. This cared for about 375 children and in it, by 1720, there had been educated and placed forth 1420 children, and in addition 123 had died. Of this school it is recorded that poor children

"being taken into the said Workhouse are there taught to Read and Write, and kept to Work until they are qualified to be put out to be Apprentices, and for the Sea Service, or otherwise disposed; . . . The Habit of the Children is all the same, being made of Russit Cloth, and a round Badge worn upon their Breast, representing a poor Boy, and a Sheep; the Motto: '*God's Providence is our Inheritance.*'" . . . In this workhouse children were "taught to spin Wool and Flax, to Sow and Knit, to make their own Cloaths, Shoes, and Stockings, and the like Employments; to inure them betimes to labour. They are also taught to read, and such as are capable, to write and cast Accounts; and also the Catechism, to ground them in Principles of Religion and Honesty."[1]

The school established by Saint John's parish, Southwark, London, in 1735, and designed to train and "put out" girls for domestic service (**R. 241**), and which cared for, clothed, and trained forty girls, is also typical of these parish schools "for the children of the industrious poor."

[1] Strype, John, *Stowe's Survey of London*, 1720; bk. 1, pp. 199, 201–02.

Methods of instruction. Throughout the eighteenth century the method of instruction commonly employed in the vernacular schools was what was known as the individual method. This was wasteful of both time and effort, and unpedagogical to a high degree (R. 244). Everywhere the teacher was engaged chiefly in hearing recitations, testing memory, and keeping order. The pupils came to the master's desk, one by one (see Figures 98, 99), and recited what they had memorized. Aside from imposing discipline, teaching was an easy task. The pupils learned the assigned lessons and recited what they had learned. Such a thing as methodology — technique of instruction — was unknown. The dominance of the religious motive, too, precluded any liberal attitude in school instruction, the individual method was time-consuming, school buildings often were lacking, and in general there was an almost complete lack of any teaching equipment, books, or supplies. Viewed from any modern standpoint the schools of the eighteenth century attained to but a low degree of efficiency (R. 244). The school hours were long, the schoolmaster's residence or place of work or business was commonly used as a schoolroom, and such regular schoolrooms as did exist were dirty and noisy and but poorly suited to school purposes. Schools everywhere, too, were ungraded, the school of one teacher being like that of any other teacher of that class.

So wasteful of time and effort was the individual method of instruction that children might attend school for years and get only a mere start in reading and writing. Paulsen,[1] writing of schools in German lands at an even later date, says that even in the better type of vernacular schools

> many children never achieved anything beyond a little reading and knowing a few things by heart. . . . The instruction in reading was never anything else but a torture, protracted through years, from saying the alphabet and formation of syllables to the deciphering of complete words, without any real success in the end, while writing was nothing but a wearisome tracing of the letters, the net result of all the toil being the gabbling of the Catechism and a few Bible texts and hymns, learned over and over again.

The imparting of information by the teacher to a class, or a class discussion of a topic, were almost unknown. Hearing lessons, assigning new tasks, setting copies, making quill pens, dictating sums, and imposing order completely absorbed the time and the attention of the teacher.

[1] Paulsen, Friedrich, *German Education*, p. 141.

School discipline. The discipline everywhere was severe. "A boy has a back; when you hit it he understands," was a favorite pedagogical maxim of the time. Whipping-posts were sometimes set up in the schoolroom, and practically all pictures of the schoolmasters of the time show a bundle of switches near at hand. Boys in the Latin grammar schools were flogged for petty offenses (R. 245). The ability to impose order on a poorly taught and, in consequence, an unruly school was always an important requisite of the schoolmaster. A Swabian schoolmaster, Häuberle by name, with characteristic Teutonic attention to details, has left on record[1] that, in the course of his fifty-one years and seven months as a teacher he had, by a moderate computation, given 911,527 blows with a cane, 124,010 blows with a rod, 20,989 blows and raps with a ruler,

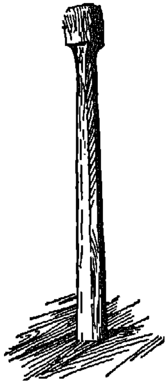

FIG. 141. A SCHOOL WHIPPING-POST

Drawn from a picture of a five-foot whipping-post which once stood in the floor of a school-house at Sunderland, Massachusetts. Now in the Deerfield Museum.

FIG. 142. AN EIGHTEENTH-CENTURY GERMAN SCHOOL

Reproduction of an engraving by J. Mettenleiter, now in the Kupferstichkabinet, Munich, and printed in Joh. Ferd. Schlez's *Dorfschulen zu Langenhausen.* Nuremberg, 1795.

[1] Barnard, Henry. Translated from Karl von Raumer; in his *American Journal of Education,* vol. v, p. 509.

136,715 blows with the hand, 10,235 blows over the mouth, 7,905 boxes on the ear, 1,115,800 raps on the head, and 22,763 *notabenes* with the Bible, Catechism, singing book, and grammar. He had 777 times made boys kneel on peas, 613 times on a triangular piece of wood, had made 3001 wear the jackass, and 1707 hold the rod up, not to mention various more unusual punishments he had contrived on the spur of the occasion. Of the blows with the cane, 800,000 were for Latin words; of the rod 76,000 were for texts from the Bible or verses from the singing book. He also had about 3000 expressions to scold with, two thirds of which were native to the German tongue and the remainder his invention.

Another illustration of German school discipline, of many that might be cited, was the reform work of Johann Ernest Christian Haun, who was appointed, in 1783, as inspector of schools in the once famous Gotha (p. 317). Due to warfare and neglect the schools there had fallen into disrepute. Haun drove the incapable teachers from the work, and for a time restored the schools to something of their earlier importance. Among other reforms it is recorded that he forbade teachers to put irons around the boys' necks, to cover them with mud, to make them kneel on peas, or to brutally beat them. Diesterweg (**R. 244**) describes similar punishments as characteristic of eighteenth-century German schools. The eighteenth-century German schoolmaster shown in Fig. 142 was probably a good sample of his class.

Pedagogical writers of the time uniformly complain of the severe discipline of the schools, and the literature of the period abounds in allusions to the prevailing harshness of the school discipline. A few writers condemn, but most approve heartily of the use of the rod. "Spare the rod and spoil the child" had for long been a well-grounded pedagogical doctrine. Among many literary extracts that might be cited illustrating this belief, the following poem by the English poet Crabbe (1754–1832) is interesting. He puts the following words into the mouth of his early schoolmaster:

> Students like horses on the road,
> Must be well lashed before they take the load;
> They may be willing for a time to run,
> But you must whip them ere the work be done;
> To tell a boy, that if he will improve,
> His friends will praise him, and his parents love,
> Is doing nothing — he has not a doubt
> But they will love him, nay, applaud without;
> Let no fond sire a boy's ambition trust,
> To make him study, let him learn he must.

Conditions surrounding childhood. It is difficult for us of to-day to re-create in imagination the pitiful life-conditions which surrounded children a century and a half ago. Often the lot of the children of the poor, who then constituted the great bulk of all children, was little less than slavery. Wretchedly poor, dirty, unkempt, hard-worked, beaten about, knowing strong drink early, illiterate, often vicious — their lot was a sad one. For the children of the poor there were few, if any, educational opportunities. Writing on the subject David Salmon says:[1]

> The imagination of the twentieth century cannot fathom the poverty of the eighteenth. The great development of mines and manufactures, which has brought ease and independence within the reach of industrious labour everywhere, had hardly begun; employment was so scarce and intermittent, and wages were so low, that the working classes lived in hovels, dressed in rags, and were familiar with the pangs of hunger; while those who were forced to look to the rates for hovels, rags, and food sufficient to maintain a miserable life numbered a sixth of the whole population.

In the towns children were apprenticed out early in life, and for long hours of daily labor. Child welfare was almost entirely neglected, children were cuffed about and beaten at their work, juvenile delinquency was a common condition, child mortality was heavy, and ignorance was the rule. Schools generally were pay institutions or a charity, and not a birthright, and usually existed only for the middle and lower-middle classes in the population who were attendants at the churches and could afford to pay a little for the schooling given. Reading and religion were usually the only free subjects. Only in the New England Colonies, where the beginnings of town and colony school systems were evident, and in a few of the German States where state control was beginning to be exercised, was a better condition to be found.

Among the middle and upper social classes, particularly on the continent of Europe, a stiff artificiality everywhere prevailed. Children were dressed and treated as miniature adults, the normal activities of childhood were suppressed, and the natural interests and emotions of children found little opportunity for expression Wearing powdered and braided hair, long gold-braided coats, embroidered waistcoats, cockaded hats, and swords, boys were treated more as adults than as children. Girls, too, with their long dresses, hoops, powdered hair, rouged faces, and demure

[1] Salmon, David, "The Education of the Poor in the Eighteenth Century"; in *Educational Record*, London, 1908.

FIG. 143. CHILDREN AS MINIATURE ADULTS
Children leaving school, from an eighteenth-century drawing by Saint Aubin.

manner, were trained in a, for children, most unnatural manner.[1] The dancing master for their manners and graces, and the religious instructor to develop in them the ability to read and to go through a largely meaningless ceremonial, were the chief guides for the period of their childhood.

[1] "If you would comprehend the success of Rousseau's *Émile*, call to mind the children we have described, the embroidered, gilded, dressed-up, powdered little gentlemen, decked with sword and sash, . . . alongside of these, little ladies of six years, still more artificial, — so many veritable dolls to which rouge is applied, and with which a mother amuses herself for an hour and then consigns them to her maids for the rest of the day. This mother reads *Émile*. It is not surprising that she immediately strips the poor little thing (of its social harness of whalebone, iron, and hair) and determines to nurse her next child herself." (Taine, H. A., *The Ancien Régime*, vol. II, p. 273.)

School support. No uniform plan, in any country, had as yet been evolved for even the meager support which the schools of the time received. The Latin grammar schools were in nearly all cases supported by the income from old "foundations" and from students' fees, with here and there some state aid. The new elementary vernacular schools, though, had had assigned to them few old foundations upon which to draw for maintenance, and in consequence support for elementary schools had to be built up from new sources, and this required time.

In England the Act of Conformity of 1662 (R. 166), it will be remembered (p. 324), had laid a heavy hand on the schools by driving all Dissenters from positions in them, and the Five-Mile Act of 1665 had borne even more severely on the teachers in the schools of the Dissenters. Fortunately for elementary education in England, however, the English courts, in 1670, had decided in a test case that the teacher in an elementary school could not be deprived of his position by failure of the bishop to license him, if he were a nominee of the founder or the lay patron of the school. The result of this decision was that, between 1660 and 1730, 905 endowed elementary schools were founded in England, and 72 others previously founded had their endowments increased. The number continued to increase throughout the eighteenth century, and by 1842 had reached a total of 2194. These new foundations probably gave the best schooling of the time, and tended to stir the Established Church to action. Accordingly we find that during the eighteenth century the vestries of the different church parishes began the creation of parish elementary schools for the children of the poor of the parish, supporting a teacher for them out of the parish rates, and without specific legal authorization to do so. These new parish schools also contributed somewhat to the provision of elementary education, and mark the beginning of the church "voluntary schools" which were such a characteristic feature of nineteenth-century English education. We thus have, in England, endowed elementary schools, parish schools, dame schools, private-adventure schools of many types, and charity-schools, all existing side by side, and drawing such support as they could from endowment funds, parish rates, church tithes, subscriptions, and tuition fees. The support of schools by subscription lists (R. 240) was a very common proceeding. Education in England, more than in any other Protestant land, early came to be regarded as a benevolence which the State was under

no obligation to support. Only workhouse schools were provided for by the general taxation of all property.

In the Netherlands and in German lands church funds, town funds, and tuition fees were the chief means of support, though here and there some prince had provided for something approaching state support for the schools of his little principality. Frederick the Great had ordered schools established generally (1763) and had decreed the compulsory attendance of children (**R. 274**), but he had depended largely on church funds and tuition fees (§7) for maintenance, with a proviso that the tuition of poor and orphaned children should be paid from "any funds of the church or town, that the schoolmaster may get his income" (§8). In Scotland the church parish school was the prevailing type. In France the religious societies (p. 345) provided nearly all the elementary vernacular religious education that was obtainable.

In the Dutch Provinces, in the New England Colonies, and in some of the minor German States, we find the clearest examples of the beginnings of state control and maintenance of elementary schools — something destined to grow rapidly and in the nineteenth century take over the school from the Church and maintain it as a function of the State. The Prussian kings early made grants of land and money for endowment funds and support, and state aid was ordered granted by Maria Theresa for Austria (**R. 274 a**), in 1774. In the New England Colonies the separation of the school from the Church, and the beginnings of state support and control of education, found perhaps their earliest and clearest exemplification. In the other Colonies the lottery was much used (**R. 246**) to raise funds for schools, while church tithes, subscription lists, and school societies after the English pattern also helped in many places to start and support a school or schools.

Only by some such means was it possible in the eighteenth century that the children of the poor could ever enjoy any opportunities for education. The parents of the poor children, themselves uneducated, could hardly be expected to provide what they had never come to appreciate themselves. On the other hand, few of the well-to-do classes felt under any obligation to provide education for children not their own. There was as yet no realization that the diffusion of education contributed to the welfare of the State, or that the ignorance of the masses might be in any way a public peril. This attitude is well shown for England by the fact that not a single law relating to the education of the people, aside

from workhouse schools, was enacted by Parliament during the whole of the eighteenth century. The same was true of France until the coming of the Revolution. It is to a few of the German States and to the American Colonies that we must turn for the beginnings of legislation directing school support. This we shall describe more in detail in later chapters.

The Latin Secondary School. The great progress made in education during the eighteenth century, nevertheless, was in elementary education. Concerning the secondary schools and the universities there is little to add to what has previously been said. During this century the secondary school, outside of German lands, remained largely stationary. Having become formal and lifeless in its teaching (p. 283), and in England and France crushed by religious-uniformity legislation, the Latin grammar school of England and the surviving colleges in France practically ceased to exert any influence on the national life. The Jesuit schools, which once had afforded the best secondary education in Europe, had so declined in usefulness everywhere that they were about to be driven from all lands. The Act of Conformity of 1662 (**R. 166**) had dealt the grammar schools of England a heavy blow, and the eighteenth century found them in a most wretched condition, with few scholars, and their endowments shamefully abused. The Law of 1662, says Montmorency, "involved such a peering into the lives of schoolmasters, such a course of inquisitorial folly, that the position became intolerable. Men would not become schoolmasters. . . . Education had no meaning when none but political and religious hypocrites were allowed to teach. . . . National education was destroyed," and the grammar schools of England were "practically withdrawn during more than two centuries (1662–1870) from the national life." [1]

In German lands the old Latin schools continued largely unchanged until near the middle of the eighteenth century, with Latin, taught as it had been for a century or more, as the chief subject of study. Shortly after the coming of Frederick the Great to the throne (1740) the Latin schools of Prussia, and after them the Latin schools in other German States, were reorganized and given a new life. The influence of Francke's school at Halle (p. 418), and the new types of teaching developed there and by his followers elsewhere, began to be felt. German, French, and mathematics were given recognition, and some science work was

[1] Montmorency, J. E. G. de., *The Progress of Education in England*, pp. 46, 50.

here and there introduced. Above all, though, Greek now attained to the place of first importance in the reorganized Latin schools.

It was not until after 1740 that the German people awakened to the possibility of an independent national life. Then, under the new impulse toward nationality, French influence and manners were thrown off, German literature attained its Golden Age, the *Ritterakademieen* (p. 405) were discarded, and a number of the German Principalities and States revised their school regulations and erected, out of the old Latin schools, a series of humanistic *gymnasia* in which the study of Greek life and culture occupied the foremost place. New methods in classical study were thought out and applied, and a new pedagogical purpose — culture and discipline — was given to the regenerated Latin schools. A new Renaissance, in a way, took place in German lands,[1] and a knowledge of Greek was proclaimed by German university and gymnasial teachers as indispensable to a liberal education with an earnestness of conviction not exceeded by Battista Guarino (p. 268) four centuries before. To know Greek and to have some familiarity with Greek literature and history now came to be regarded as necessary to the highest culture,[2] and a pedagogical theory for such study was erected, based on the discipline of the mind,[3] which dominated the German classical school throughout the entire nineteenth century. It was in the eighteenth century

[1] A change now took place in the intellectual life of Germany: "The nation began to make itself independent of French influence. In literature Klopstock and Lessing broke the fetters of French classicism. An ardent desire for a deeper culture peculiar to the German people asserted itself. But the soil of the national life was too poor in genus for a purely German culture, hence scholars looked for new models and found them in classical antiquity. The ancient authors became again the masters of culture and taste; with this difference, though, that it was not desired to learn how to express their thoughts as well as the learner's thoughts in Latin, but to become familiar with their manner of thinking and feeling, for the purpose of enlarging and ennobling German thought and speech. From this standpoint Greek, on account of its more valuable literature, assumed a higher importance, and, by degrees, a superiority over Latin." (Nohle, E., *History of the German School System*, pp. 48–49.)

[2] "If any one be destined for a studious career, let him not shirk his Greek lessons, inasmuch as he would thereby suffer irretrievable loss. . . . He who reads the classic writers, studying mathematical reasoning at the same time, trains his mind to distinguish what is true or false, beautiful or unsightly, fills his memory with manifold fine thoughts, attains skill in grasping the ideas of others as well as in fluently expressing his own, acquires a number of excellent maxims for the improvement of the understanding and the will, and thus learns by practice nearly all that a good compendium of philosophy could teach him in systematic order and dogmatic form." (School Regulations for Braunschweig-Lüneburg, of 1737.)

[3] "Be assured that if you forget your Greek, yes, even your Latin too, you still have the advantage of having given your mind a training and discipline that will go with you into your future occupation." (Friedrich Gedike, 1755–1803.)

also that the German States began the development of the scientific secondary school (*Realschule*), see p. 420, as described in a preceding chapter.

Rise of the Academy in America. As we have seen (p. 361), the English Latin grammar school was early (1635) carried to New England, and set up there and elsewhere in the Colonies, but after the close of the seventeenth century its continued maintenance was something of a struggle. Particularly in the central and southern colonies, where commercial demands early made themselves felt, the tendency was to teach more practical subjects. This tendency led to the evolution, about the middle of the eighteenth century, of the distinctively American Academy, with a more practical curriculum, and by the close of the century it was rapidly superseding the older Latin grammar school. Franklin's Academy at Philadelphia, which began instruction in 1751, and which later evolved into the University of Pennsylvania, was probably the first American Academy. The first in Massachusetts was founded in 1761, and by 1800 there were seventeen in Massachusetts alone. The great period of academy development was the first half of the nineteenth century. The Phillips Academy, at Andover, Massachusetts, founded in 1788, reveals clearly the newer purpose of these American secondary schools. The foundation grant of this school gives the purpose to be:

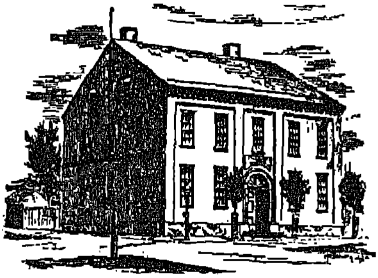

FIG. 144. A PENNSYLVANIA ACADEMY
York Academy, York, Pennsylvania, founded by the Protestant Episcopal Church, in 1787.

> to lay the foundation of a public free school or ACADEMY for the purposes of instructing Youth, not only in English and Latin Grammar, Writing, Arithmetic, and those Sciences wherein they are commonly taught; but more especially to learn them the GREAT END AND REAL BUSINESS OF LIVING . . . it is again declared that the *first* and *principle* object of this Institution is the promotion of TRUE PIETY and VIRTUE; the *second*, instruction in the English, Latin, and Greek Languages, together with Writing, Arithmetic, Music, and the Art of Speaking; the *third*, practical Geometry, Logic, and Geography; and the *fourth*, such other liberal Arts and Sciences or Languages, as opportunity and ability may hereafter admit, and as the TRUSTEES shall direct.

Though still deeply religious, these new schools usually were free from denominationalism. Though retaining the study of Latin, they made most of new subjects of more practical value. A study of real things rather than words about things, and a new emphasis on the native English and on science were prominent features of their work. They were also usually open to girls, as well as boys, — an innovation in secondary education before almost wholly unknown. Many were organized later for girls only. These institutions were the precursors of the American public high school, itself a type of the most democratic institution for secondary education the world has ever known.

The universities. The condition of the universities by the middle of the eighteenth century we traced in the preceding chapter. They had lost their earlier importance as institutions of learning, but in a few places the sciences were slowly gaining a foothold, and in German lands we noted the appearance of the first two modern universities — institutions destined deeply to influence subsequent university development, as we shall point out in a later chapter.

End of the transition period. We have now reached, in our study of the history of educational progress, the end of the transition period which marked the change in thinking from mediæval to modern attitudes. The period was ushered in with the beginnings of the Revival of Learning in Italy in the fourteenth century, and it may fittingly close about the middle of the eighteenth.

We now stand on the threshold of a new era in world history. The same questioning spirit that animated the scholars of the Revival of Learning, now full-grown and become bold and self-confident, is about to be applied to affairs of politics and government, and we are soon to see absolutism and mediæval attitudes in both Church and State questioned and overthrown. New political theories are to be advanced, and the divine right of the people is to be asserted and established in England, the American Colonies, and in France, and ultimately, early in the twentieth century, we are to witness the final overthrow of the divine-right-of-kings idea and a world-wide sweep of the democratic spirit. A new human and political theory as to education is to be evolved; the school is to be taken over from the Church, vastly expanded in scope, and made a constructive instrument of the State; and the wonderful nineteenth century is to witness a degree of human

scientific, political, and educational progress not seen before in all the days from the time of the Crusades to the opening of the nineteenth century. It is to this wonderful new era in world history that we now turn.

QUESTIONS FOR DISCUSSION

1. Contrast a religious elementary school, with the Catechism as its chief textbook, with a modern public elementary school.
2. Contrast the elementary schools of Mulcaster and Comenius.
3. To what extent did the religious teachings of the time support Locke's ideas as to the disciplinary conception of education?
4. Do we to-day place as much emphasis on habit formation as did Locke? On character? On good breeding?
5. State some of the reasons for the noticeable weakening of the hold of the old religious theory as to education, in Protestant lands, by the middle of the eighteenth century.
6. How do you explain the slow evolution of the elementary teacher into a position of some importance? Is the evolution still in process? Illustrate.
7. What were the motives behind the organization of the religious charity-schools?
8. Show how tax-supported workhouse schools represented, for England, the first step in public-school maintenance.
9. Show that teaching under the individual method of instruction was school keeping, rather than school teaching.
10. How do you explain the general prevalence of harsh discipline well into the nineteenth century?
11. Did any other country have, in the eighteenth century, so mixed a type of elementary education as did England? Why was it so badly mixed there?
12. Show how the English Act of Conformity, of 1662, stifled the English Latin grammar schools.
13. What reasons were there for the development of the more practical Academy in America, rather than in England?
14. Compare the American Academy with the German *Realschule*.

SELECTED READINGS

In the accompanying *Book of Readings* the following selections, illustrative of the contents of this chapter, are reproduced:

226. Mulcaster: Table of Contents of his *Positions*.
227. Locke: On the Teaching of Latin.
228. Locke: On the Bible as a Reading Book.
229. Coote-Dilworth: Two early "Spelling Books."
230. Webster: Description of Pre-Revolutionary Schools.
231. Raumer: Teachers in Gotha in 1741.
232. Raumer: An 18th Century Swedish People's School.
233. Raumer: Schools of Frankfurt-am-Main during the Eighteenth Century.
234. Krüsi: A Swiss Teacher's Examination in 1793.
235. Crabbe; White; Shenstone: The English Dame School described.
236. Newburgh: A Parochial-School Teacher's Agreement.

237. Saint Anne: Beginnings of an English Charity School.
238. Regulations: Charity-School Organization and Instruction.
    (a) Qualifications for the Master.
    (b) Purpose and Instruction.
239. Allen and McClure: Textbooks used in English Charity-Schools.
240. England: A Charity-School Subscription Form.
241. Southwark: The Charity-School of Saint John's Parish.
242. Gorsham: An Eighteenth-Century Indenture of Apprenticeship.
243. Indenture: Learning the Trade of a Schoolmaster.
244. Diesterweg: The Schools of Germany before Pestalozzi.
245. England: Free School Rules, 1734.
246. Murray: A New Jersey School Lottery.

QUESTIONS ON THE READINGS

1. State the main points in Mulcaster's scheme (226) for education.
2. Characterize Locke's criticism (227) on the teaching of Latin.
3. State Locke's ideas as to the use of the Bible (228).
4. Characterize the nature and contents of the so-called "Spellers" by Coote and Dilworth (229).
5. Compare the Connecticut common school, as described by Webster (230), with an English charity-school (238 b), or a Swedish popular school (232) of the time.
6. Just what state of vernacular education in Teutonic lands is indicated by the three selections (231, 232, 233)?
7. Compare the proprietary right of the teachers at Frankfort (233) with the right of control claimed over song schools by the Precentor of a mediæval cathedral (83).
8. Do such conditions as Krüsi describes (234) exist anywhere to-day?
9. Characterize the Dame School of England, as to instruction and control, from the descriptions given in the selections (235) reproduced.
10. State the relationship of teacher and minister at Newburgh (236), and indicate the nature and probable extent of his income.
11. State the purpose of the founders of Saint Anne of Soho (237), and characterize the type of school they created.
12. What does the qualification for a charity-school teacher (238 a) indicate as to the nature of the teacher's calling in such schools? Outline the instruction (238 b) in such a school.
13. What instruction did the textbooks as printed (239) provide for?
14. Show the voluntary and benevolent character of the charity-school by comparing the subscription form (240) with some voluntary subscription form used to-day.
15. How did the school in Saint John's parish (241) differ from apprenticeship training?
16. What changes do you note between the mediæval Indenture of Apprenticeship (99) and the eighteenth-century English form (242)?
17. Compare Readings 201 and 242 on apprenticeship.
18. Compare conditions described in 244 with 231–233.
19. What do the Free School Rules of 1734 (245) indicate as to duties and discipline?
20. What does the use of the lottery for school support (246) indicate as to the conception and scope of education at the time?

SUPPLEMENTARY REFERENCES

Allen, W. O. B., and McClure, E. *Two Hundred Years; History of the S.P.C.K., 1698–1898.*

Barnard, Henry. *English Pedagogy,* Part II, The Teacher in English Literature.

*Birchenough, C. *History of Elementary Education in England and Wales.*

Brown, E. E. *The Making of our Middle Schools.*

Cardwell, J. F. *The Story of a Charity School.*

Davidson, Thos. *Rousseau.*

*Earle, Alice M. *Child Life in Colonial Days.*

Field, Mrs. E. M. *The Child and his Book.*

Ford, Paul L. *The New England Primer.*

Godfrey, Elizabeth. *English Children in the Olden Time.*

*Johnson, Clifton. *Old Time Schools and School Books.*

*Kemp, W. W. *The Support of Schools in Colonial New York by the Society for the Propagation of the Gospel in Foreign Parts.*

Kilpatrick, Wm. H. *Dutch Schools of New Netherlands and Colonial New York.*

Locke, John. *Some Thoughts Concerning Education* (1693).

*Montmorency, J. E. G. de. *Progress of Education in England.*

Montmorency, J. E. G. de. *State Intervention in English Education.*

Mulcaster, Richard. *Positions.* (London, 1581.)

*Paulsen, Friedrich. *German Education, Past and Present.*

*Salmon, David. "The Education of the Poor in the Eighteenth Century"; reprinted from the *Educational Record.* (London, 1908.)

*Scott, J. F. *Historic Essays on Apprenticeship and Vocational Education.* (Ann Arbor, 1914.)

PART IV

MODERN TIMES

THE ABOLITION OF PRIVILEGE

THE RISE OF DEMOCRACY

A NEW THEORY FOR EDUCATION EVOLVED

THE STATE TAKES OVER THE SCHOOL

CHAPTER XIX

THE EIGHTEENTH A TRANSITION CENTURY

The eighteenth century a turning-point. The eighteenth century, in human thinking and progress, marks for most western nations the end of mediævalism and the ushering-in of modern forms of intellectual liberty. The indifference to the old religious problems, which was clearly manifest in all countries at the beginning of the century, steadily grew and culminated in a revolt against ecclesiastical control over human affairs. This change in attitude toward the old problems permitted the rise of new types of intellectual inquiry, a rapid development of scientific thinking and discovery, the growth of a consciousness of national problems and national welfare, and the bringing to the front of secular interests to a degree practically unknown since the days of ancient Rome. In a sense the general rise of these new interests in the eighteenth century was but a culmination of a long series of movements looking toward greater intellectual freedom and needed human progress which had been under way since the days when *studia generalia* and guilds first arose in western Europe. The rise of the universities in the thirteenth and fourteenth centuries, the Revival of Learning in the fourteenth and fifteenth centuries, the Protestant Revolts in the sixteenth, the rise of modern scientific inquiry in the sixteenth and seventeenth, and Puritanism in England and Pietism in Germany in the seventeenth, had all been in the nature of protests against the mediæval tendency to confine and limit and enslave the intellect. In the eighteenth century the culmination of this rising tide of protest came in a general and determined revolt against despotism in either Church or State, which, at the close of the century, swept away ancient privileges, abuses, and barriers, and prepared the way for the marked intellectual and human and political progress which characterized the nineteenth century.

Significance of the change in attitude. The new spirit and interests and attitudes which came to characterize the eighteenth century in the more progressive western nations meant the ultimate overthrow of the tyranny of mediæval supernatural theology, the evolution of a new theory as to moral action which

should be independent of theology, the freeing of the new scientific spirit from the fetters of church control, the substituting of new philosophical and scientific and economic interests for the old theological problems which had for so long dominated human thinking, the substitution of natural political organization for the older ecclesiastical foundations of the State, the destruction of what remained of the old feudal political system, the freeing of the serf and the evolution of the citizen, and the rise of a modern society interested in problems of national welfare — government in the interest of the governed, commerce, industry, science, economics, education, and social welfare. The evolution of such modern-type governments inevitably meant the creation of entirely new demands for the education of the people and for far-reaching political and social reforms.

This new eighteenth-century spirit, which so characterized the mid-eighteenth century that it is often spoken of as the "Period of the Enlightenment," [1] expressed itself in many new directions, a few of the more important of which will be considered here as of fundamental concern for the student of the history of educational progress. In a very real sense the development of state educational systems, in both European and American States, has been an outgrowth of the great liberalizing forces which first made themselves felt in a really determined way during this important transition century. In this chapter we shall consider briefly five important phases of this new eighteenth-century liberalism, as follows:

1. The work of the benevolent despots of continental Europe in trying to shape their governments to harmonize them with the new spirit of the century.
2. The unsatisfied demand for reform in France.
3. The rise of democratic government and liberalism in England.
4. The institution of constitutional government and religious freedom in America.
5. The sweeping away of mediæval abuses in the great Revolution in France.

[1] "The Period of the Enlightenment" had two main aims: (1) the perfection of the individual, which gave a new emphasis to education, and (2) the mastery of man over his environment, which expressed itself through the new scientific studies. In German lands elementary education, a regenerated classical education, and the *Realschule* were the fruits of this period.

I. WORK OF THE BENEVOLENT DESPOTS OF CONTINENTAL EUROPE

The new nationalism leads to interested government. In England, as we shall trace a little further on, a democratic form of government had for long been developing, but this democratic life had made but little headway on the continent of Europe. There, instead, the democratic tendencies which showed some slight signs of development during the sixteenth century had been stamped out in the period of warfare and the ensuing hatreds of the seventeenth, and in the eighteenth century we find autocratic government at its height. National governments to succeed the earlier government of the Church had developed and grown strong, the kingly power had everywhere been consolidated, Church and State were in close working alliance, and the new spirit of nationality — in government, foreign policy, languages, literature, and culture — was being energetically developed by those responsible for the welfare of the States. Everywhere, almost, on the continent of Europe, the theory of the divine right of kings to rule and the divine duty of subjects to obey seemed to have become fixed, and this theory of government the Church now most assiduously supported. Unlike in England and the American Colonies, the people of the larger countries of continental Europe had not as yet advanced far enough in personal liberty or political thinking to make any demand of consequence for the right to govern themselves. The new spirit of nationality abroad in Europe, though, as well as the new humanitarian ideas beginning to stir thinking men, alike tended to awaken a new interest on the part of many rulers in the welfare of the people they governed. In consequence, during the eighteenth century, we find a number of nations in which the rulers, putting themselves in harmony with the new spirit of the time, made earnest attempts to improve the condition of their peoples as a means of advancing the national welfare. We shall here mention the four nations in which the most conspicuous reform work was attempted.

The rulers of Prussia. Three kings, to whom the nineteenth-century greatness of Prussia was largely due, ruled the country during nearly the whole of the eighteenth century. They were fully as despotic as the kings of France, but, unlike the French kings, they were keenly alive to the needs of the people, anxious to advance the welfare of the State, tolerant in religion, and in

sympathy with the new scientific studies. The first, Frederick William I (1713–40), labored earnestly to develop the resources of the country, trained a large army, ordered elementary education made compulsory, and made the beginnings in the royal provinces of the transformation of the schools from the control of the Church to the control of the State. His son, known to history as Frederick the Great, ruled from 1740 to 1786. During his long reign he labored continually to curtail ancient privileges, abolish old abuses, and improve the condition of his people. During the first week of his reign he abolished torture in trials, made the administration of law more equitable, instituted a limited freedom for the press,[1] and extended religious toleration.[2] He also partially abolished serfdom on the royal domains, and tried to uplift the peasantry and citizen classes, but in this he met with bitter opposition from the nobles of his realm. He built roads, canals, and bridges, encouraged skilled artisans to settle in his dominions, developed agriculture and industry, encouraged scientific workers, extended an asylum to thousands of Huguenots fleeing from religious persecution in France,[3] and did more than any previous ruler to provide common schools throughout his kingdom. By the general regulation of education in his kingdom (chapter XXII) he laid the foundations upon which the nineteenth-century Prussian school system was later built.

FIG. 145. FREDERICK THE GREAT

His rule, though, was thoroughly autocratic. "Everything for the people, but nothing by the people," was the keynote of his policies. He had no confidence in the ability of the people to rule, and gave them no opportunity to learn the art. He employed the strong army his father built up to wage wars of conquest, seize territory that did not belong to him, and in conse-

[1] Frederick used to say that his subjects might think as they pleased so long as they behaved as he ordered.

[2] Though Prussia was primarily Lutheran, Catholics, Mennonites, Jews, and Huguenots early found a home in the kingdom. Frederick used to say that "all religions must be tolerated, for in this country every man must go to heaven in his own way."

[3] After the revocation of the Edict of Nantes (p. 301; 1685), over 20,000 French Huguenots — merchants, manufacturers, skilled workmen — found an asylum in Prussia alone. Settling in the Rhine countries, they contributed much to the future development of this region.

quence made himself a great German hero.[1] He may be said to have laid the foundations of modern militarized, socialized, obediently educated, and subject Germany, and also to have begun the "grand-larceny" and "scrap-of-paper" policy which has characterized Prussian international relationships ever since. Frederick William II, who reigned from 1786 to 1797, continued in large measure the enlightened policies of his uncle, reformed the tax system, lightened the burdens of his people, encouraged trade, emphasized the German tongue, quickened the national spirit, actively encouraged schools and universities, and began that centralization of authority over the developing educational system which resulted in the creation in Prussia of the first modern state school system in Europe. The educational work of these three Prussian kings was indeed important, and we shall study it more in detail in a later chapter (chapter XXII).

The Austrian reformers. Two notably benevolent rulers occupied the Austrian throne for half a century, and did much to improve the condition of the Austrian people. A very remarkable woman, Maria Theresa, came to the throne in 1740, and was followed by her son, Joseph II, in 1780. He ruled until 1790. To Maria Theresa the Austria of the nineteenth century owed most of its development and power. She worked with seemingly tireless energy for the advancement of the welfare of her subjects, and toward the close of her reign laid, as we shall see in a later chapter, the beginnings of Austrian school reform.

FIG. 146.
MARIA THERESA

Joseph II carried still further his mother's benevolent work, and strove to introduce "enlightenment and reason" into the administration of his realm. A student of the writings of the eighteenth-century reform philosophers, and deeply imbued with the reform spirit of his time, he attempted to abolish ancient

[1] "For the first time since Luther, the German people could call a great hero their own, whether they were the subjects of Frederick or not. Joyous pride in this prince, whose achievements in times of peace were no less than those in time of war, brought national consciousness to life again and this national feeling found expression in literature. It was the restoration of confidence in themselves that gave the Germans the courage to break with French rules and French models, and to seek independently after ideals of beauty. And this self-confidence they owed to Frederick the Great." (Priest, G. M., *History of German Literature*, p. 116.)

privileges, establish a uniform code of justice, encourage education, free the serfs, abolish feudal tenure, grant religious toleration, curb the power of the Pope and the Church, break the power of the local Diets, centralize the State, and "introduce a uniform level of democratic simplicity under his own absolute sway." He attempted to alter the organization of the Church, abolished six hundred monasteries,[1] and reduced the number of monastic persons in his dominion from 63,000 to 27,000. Attempting too much, he brought down upon his head the wrath of both priest and noble and died a disappointed man. The abolition of feudal tenure and serfdom on the distinctively Austrian lands, of all his attempted reforms, alone was permanent. His work stands as an interesting commentary on the temporary character of the results which follow attempts rapidly to improve the conditions surrounding the lives of people, without at the same time educating the people to improve themselves.

The Spanish reformers. A very similar result attended the reform efforts of a succession of benevolent rulers thrust upon Spain, during the eighteenth century, by the complications of foreign politics. Over a period of nearly ninety years, extending from the accession of Philip V (1700) to the death of Charles III (1788), remarkable political progress was imposed by a succession of able ministers and with the consent of the kings.[2] The power of the Church, always the crying evil of Spain, was restricted in many ways; the Inquisition was curbed; the Jesuits were driven from the kingdom; the burning of heretics was stopped; prosecution for heresy was reduced and discouraged; the monastic orders were taught to fear the law and curb their passions; evils in public administration were removed; national grievances were redressed; the civil service was improved; science and literature were encouraged, in place of barren theological speculations; and an earnest effort was made to regenerate the national life and improve the lot of the common people.

All these reforms, though, were imposed from above, and no attempt was made to introduce schools or to educate the people in the arts of self-government. The result was that the reforms never went beneath the surface, and the national life of the peo-

[1] Though Joseph II claimed to be a good Catholic, he felt that monasticism had outlived its usefulness as an institution, and that its continuance was inimical to the interests of organized society and the State. This view has since been taken by the rulers of every progressive modern nation.

[2] The Cortes, or National Parliament, met but three times during the century, and when it did meet possessed but few powers and exercised but little influence.

ple remained largely untouched. Within five years of the death of Charles III all had been lost. Under a native Spanish king, thoroughly orthodox, devout, and lacking in any broad national outlook, the Church easily restored itself to power, the priests resumed their earlier importance, the nobles again began to exact their full toll, free discussion was forbidden, scientific studies were abandoned, the universities were ordered to discontinue the study of moral philosophy, and the political and social reforms which had required three generations to build up were lost in half a decade. Not meeting any well-expressed need of the people, and with no schools provided to show to the people the desirable nature of the reforms introduced, it was easy to sweep them aside. In this relapse to mediævalism, the chance for Spain — a country rich in possibilities and natural resources — to evolve early into a progressive modern nation was lost. So Spain has remained ever since, and only in the last quarter of a century has reform from within begun to be evident in this until recently priest-ridden and benighted land.

The intelligent despots of Russia. The greatest of these were Peter the Great, who ruled from 1689 to 1725, and Catherine II, who ruled from 1762 to 1796. Catching something of the new eighteenth-century western spirit, these rulers tried to introduce some western enlightenment into their as yet almost barbarous land. Each tried earnestly to lift their people to a higher level of living, and to start them on the road toward civilization and learning. By a series of edicts, despotically enforced, Peter tried to introduce the civilization of the western world into his country. He brought in numbers of skilled artisans, doctors, merchants, teachers, printers, and soldiers; introduced many western skills and trades; and made the beginnings of western secondary education for the governing classes by the establishment in the cities of a number of German-type *gymnasia*.[1] Later Catherine II had the French philosopher Diderot (p. 482) draw up a plan for her for the organization of a state system of higher schools, but the plan was never put into effect. The beginnings of Russian higher civilization really date from this eighteenth-century work. The power of the formidable Greek or Eastern Church remained, however, untouched, and this continued, until after the Russian revolution of 1917, as one of the most serious obstacles to Russian

[1] The first Russian university was established at Kiev, in 1588; the second at Dorpat, in 1632; the third at Moscow, in 1755; and the fourth at Kasan, in 1804. The University of Petrograd dates from 1819.

intellectual and educational progress. The serfs, too, remained serfs — tied to the land, ignorant, superstitious, and obedient.

By the close of the eighteenth century Russia, largely under Prussian training, had become a very formidable military power, and by the close of the nineteenth century was beginning to make some progress of importance in the arts of peace. Just at present Russia is going through a stage of national evolution quite comparable to that which took place in France a century and a quarter ago, and the educational importance of this great people, as we shall point out further on, lies in their future evolution rather than in any contribution they have as yet made to western development.

II. THE UNSATISFIED DEMAND FOR REFORM IN FRANCE

The setting of eighteenth-century France. Eighteenth-century France, on the contrary, developed no benevolent despot to mitigate abuses, reform the laws, abolish privileges, temper the rule of the Church,[1] (R. 247), curb the monastic orders, develop the natural resources, begin the establishment of schools, and alleviate the hard lot of the serf and the peasant. There, instead, absolute monarchy in Europe reached its most complete triumph during the long reigns of Louis XIV (1643–1715) and Louis XV (1715–74), and the splendor of the court life of France captivated all Europe and served to hide the misery which made the splendor possible. There the power of the nobles had been completely broken, and the power of the parliaments completely destroyed. "I am the State," exclaimed Louis XIV, and the almost unlimited despotism of the King and his ministers and favorites fully supported the statement. Local liberties had been suppressed, and the lot of the common people — ignorant, hard-working, downtrodden, but intensely patriotic — was wretched in the extreme. Approximately 140,000 nobles[2] and 130,000 monks, nuns, and clergy owned two fifths of the landed property of France, and controlled the destinies of a nation of approximately 25,000,000 people. Agriculture was the great industry of the time, but this

[1] The great difference between a church and true religion must always be kept in mind. Religion is a thing of the spirit, and its principle represents the loftiest thoughts of the race; a church is a human governing institution, and clearly subject to its own ambitions and the human frailties of its age.

[2] That is, 25,000 to 30,000 families. There were also, in even numbers, 83,000 monks in 2500 monasteries (one for every ninety square miles in France), 37,000 nuns in 1500 convents, and 60,000 priests. Of the soil of France, the King and towns owned one fifth, the clergy and the monks one fifth, the nobility one fifth, the bourgeoisie one fifth, and the peasantry one fifth.

was so taxed by the agents of King and Church that over one half of the net profits from farming were taken for taxation.

Church and State were in close working alliance. The higher offices of the Church were commonly held by appointed noblemen, who drew large incomes,[1] led worldly lives, and neglected their priestly functions much as the Italian appointees in German lands had done before the Reformation. Between the nobles and upper clergy on the one hand and the peasant-born lower clergy and the masses of the people on the other a great gulf existed. The real brains of France were to be found among a small bourgeois class of bankers, merchants, shopkeepers, minor officials, lawyers, and skilled artisans, who lived in the cities and who, ambitious and discontented, did much to stimulate the increasing unrest and demand for reform which in time pervaded the whole nation. A king, constantly in need of increasing sums of money; an idle, selfish, corrupt, and discredited nobility and upper clergy, incapable of aiding the king, many of whom, too, had been influenced by the new philosophic and scientific thinking and were willing to help destroy their own orders; an aggressive, discontented, and patriotic bourgeoisie, full of new political and social ideas, and patriotically anxious to reform France; and a vast unorganized peasantry and city rabble, suffering much and resisting little, but capable of a terrible fury and senseless destruction, once they were aroused and their suppressed rage let loose; — these were the main elements in the setting of eighteenth-century France.

The French reform philosophers. During the middle decades of the eighteenth century a small but very influential group of reform philosophers in France attacked with their pens the ancient abuses in Church and State, and did much to pave the way for genuine political and religious reform. In a series of widely read articles and books, characterized for the most part by clear reasoning and telling arguments, these political philosophers attacked the power of the absolute monarchy on the one hand, and the existing privileges of the nobles and clergy on the other, as both unjust and inimical to the welfare of society (R. 248). The leaders in the reform movement were Montesquieu (1689–

[1] In 1788 the 131 bishops and archbishops of France had an average income of 100,000 francs, and 33 abbots and 27 abbesses had incomes ranging from 80,000 to 500,000 francs. The Cardinal de Rohan, Archbishop of Strasbourg, had an income of more than 1,000,000 francs, and the 300 Benedictine monks at Cluny had an income of more than 1,800,000 francs.

1755), Turgot (1727–81), Voltaire (1694–1778), Diderot (1713–84), and Rousseau (1712–78).

Montesquieu. In 1748 appeared Montesquieu's famous book, the *Spirit of Laws*. In this he pointed out the many excellent features of the constitutional government which the English had developed, and compared English conditions with the many abuses to which the French people were subject. He argued that laws should be expressive of the wishes and needs of the people governed, and that the education of a people "ought to be relative to the principles of good government." Montesquieu also stands, with Turgot as the founder of the sciences of comparative politics [1] and the philosophy of history — new studies which helped to shape the political thinking of eighteenth-century France.

FIG. 147. MONTESQUIEU (1689–1755)

Turgot. Two years after the publication of Montesquieu's book, Turgot delivered (1750) a series of lectures at the Sorbonne, in Paris, in which he virtually created the science of history. Looking at human history comprehensively, seeing clearly that there had been a hitherto unrecognized regularity of march amid the confusion of the past, and that it was possible to grasp the history of the progress of man as a whole, he saw and stated the possibility of society to improve itself through intelligent government, and the need for wise laws and general education to enable it to do so.[2]

[1] "The real importance of *Esprit des lois* is not that of a formal treatise on law, or even on polity. It is that of an assemblage of the most fertile, original, and inspiriting views on legal and political subjects, put in language of singular suggestiveness and vigour, illustrated by examples which are always apt and luminous, permeated by the spirit of temperate and tolerant desire for human improvement and happiness, and almost unique in its entire freedom at once from doctrinairism, visionary enthusiasm, egotism, and an undue spirit of system. The genius of the author for generalization is so great, his instinct in political science so sure, that even the falsity of his premises frequently fails to vitiate his conclusions." (Saintsbury, George, in *Encyclopædia Britannica*, vol. XVIII, p. 777.)

[2] "By the captivating prospects which he held out of future progress, and by the picture which he drew of the capacity of society to improve itself, Turgot increased the impatience which his countrymen were beginning to feel against the despotic government, in whose presence amelioration seemed to be hopeless. These, and similar speculations of the time, stimulated the activity of the intellectual classes, cheered them under the persecutions to which they were exposed, and emboldened them to attack the institutions of their native land." (Buckle, H. T., *History of Civilization in England*, vol. I, p. 597.)

In 1774 Turgot was appointed Minister of Finance by the new King, Louis XVI, and during the two years before he was removed

FIG. 148. TURGOT (1727–81)

FIG. 149. VOLTAIRE (1694–1778)

from office he attempted to carry out many needed political and social reforms. Duruy [1] has summarized his suggested reforms as follows:

1. Gradual introduction of a complete system of local self-government.
2. Imposition of a land tax on nobility and clergy.
3. Suppression of the greater part of the monasteries.
4. Amelioration of the condition of the minor clergy.
5. Equalization of the burdens of taxation.
6. Liberty of conscience, and the recall of the Protestants to France.
7. A uniform system of weights and measures.
8. Freedom for commerce and industry.
9. A single and uniform code of laws.
10. A vast plan for the organization of a system of public instruction throughout France.

This list is indicative of the reform philosophy in the light of which he worked. Arousing the natural hostility of the nobility and higher clergy, he was soon dismissed, and the reforms he had proposed were abandoned by the King.

Voltaire. The keenest and most unsparing critic of the old order was Voltaire. In clear and forceful French he exposed existing conditions in society and government, and particularly the control of affairs exercised by the most ancient and most

[1] Duruy, V., *History of France*, p. 523.

powerful organization of his day — the Church. For this he was execrated and hated by the clergy, and in return he made it the chief task of his life to destroy the reign of the priest. Having lived for a time in England, he appreciated the vast difference between the English and French forms of government. With a keen and unsparing pen he exposed the scholasticism, despotism, dogmatism, superstition, hypocrisy, servility, and deep injustice of his age, and poured out the vials of his scorn upon the grubbing pedantry of the Academicians who doted upon the past because ignorant of the present. In particular he stood for the abolition of that relic of feudalism — serfdom — which still seriously oppressed the peasantry of France; for liberty in thought and action for the individual; for curbing the powers and privileges of both State and Church; for an equalization of the burdens of taxation between the different classes in French society; and for the organization of a system of public education throughout the nation. He died before the outbreak of the Revolution he had done so much to bring about, but by the time he died the "Ancient Régime" of privilege and corruption and oppression was already tottering to its fall. His conception of the relations that should exist between Church and State are well set forth in a short article from his pen on the subject (**R. 248**) reprinted from the *Encyclopædia* of Diderot.

Diderot. Another able thinker and writer was Diderot. Besides other works of importance, he gave twenty years of his life (1751–72) to the editing (with D'Alembert) of an *Encyclopædia* of seventeen volumes of text and eleven of plates. Many of the articles were written by himself, and were expressive of his ideas as to reform. Many were frankly critical of existing privileges, abuses, and pretensions. Many interpreted to the French the science of Newton and the discoveries of the age, and awakened a new interest in scientific study. Because of its reform ideas the publication was suppressed, in 1759, after the publication of the seventh volume, and had to be carried on surreptitiously thereafter. Viscount Morley, writing recently on Diderot, summarizes the nature and influence of the *Encyclopædia* in the following words:

FIG. 150. DIDEROT (1713–84)

The ecclesiastical party detested the *Encyclopædia* in which they

saw a rising stronghold for their philosophical enemies. To any one who turns over the pages of these redoubtable volumes now, it seems surprising that their doctrine should have stirred such portentous alarm. There is no atheism, no overt attack on any of the cardinal mysteries of the faith, no direct denunciation even of the notorious abuses of the Church. Yet we feel that the atmosphere of the book may well have been displeasing to authorities who had not yet learnt to encounter the modern spirit on equal terms. The *Encyclopædia* takes for granted the justice of religious toleration and speculative freedom. It asserts in distinct tones the democratic doctrine that it is the common people in a nation whose lot ought to be the chief concern of the nation's government. From beginning to end it is one unbroken process of exaltation of scientific knowledge on the one hand, and pacific industry on the other. All these things were odious to the old governing classes of France.[1]

Rousseau. The fifth reform writer mentioned as exercising a large influence was Rousseau. In 1749 the Academy at Dijon offered a prize for the best essay on the subject: *Has the progress of the sciences and arts contributed to corrupt or to purify morals?* Rousseau took the negative side and won the prize. His essay attracted widespread attention. In 1753 he competed for a second prize on *The Origin of Inequality among Men*, in which he took the same negative attitude. In 1762 appeared both his *Social Contract* and *Émile.* In the former he contended that early men had given to selected leaders the right to conduct their government for them, and that these had in time become autocratic and had virtually enslaved the people (**R.** 249 a). He held that men were not bound to submit to government against their wills, and to remedy existing abuses he advocated the overthrow of the usurping government and the establishment of a republic, with universal suffrage based on "liberty, fraternity, and equality." The ideal State lay in a society controlled by the people, where artificiality and aristocracy and the tyranny of society over man did not exist. Nor could Rousseau distinguish between political and ecclesiastical tyranny, holding that the former inevitably followed from the latter (**R.** 249 b).

Crude as were his theories, and impractical as were many of his ideas, to an age tired of absurdities and pretensions and injustice, and suffering deeply from the abuses of both Church and State, his attractively written book seemed almost inspired. The *Social Contract* virtually became the Bible of the French Revolutionists. In the *Émile,* a book which will be referred to more at

[1] *Encyclopædia Britannica*, 11th ed., vol. VIII, p. 204.

length in chapter XXI, Rousseau held that we should revert, in education, to a state of nature to secure the needed educational reforms, and that education to prepare for life in the existing society was both wrong and useless.

A revolution in French thinking. These five men — Montesquieu, Turgot, Voltaire, Diderot, and Rousseau — and many other less influential followers, portrayed the abuses of the time in Church and State and pointed out the lines of political and ecclesiastical reform. Those who read their writings understood better why the existing privileges of the nobility and clergy were no longer right, and the need for reform in matters of taxation and government. Their writings added to the spirit of unrest of the century, and were deeply influential, not only in France, but in the American Colonies as well. Though the attack was at first against the evils in Church and State, the new critical philosophy soon led to intellectual developments of importance in many other directions.

At the death of Louis XIV (1715) France was intellectually prostrate. Great as was his long reign from the point of view of the splendor of his court, and large as was the quantity of literature produced, his age was nevertheless an age of misery, religious intolerance, political oppression, and intellectual decline. It was a reign of centralized and highly personal government. Men no longer dared to think for themselves, or to discuss with any freedom questions either of politics or religion. "There was no popular liberty; there were no great men; there was no science; there was no literature; there were no arts. The largest intellects lost their energy; the national spirit died away." Between the death of Louis XIV and the outbreak of the French Revolution (1789) an intellectual revolution took place in France, and for this revolution English political progress and political and scientific thinking were largely responsible.

Great English influence on France. In 1715 the English language was almost unspoken in France, English science and political progress were unknown there, and the English were looked down upon and hated. Half a century later English was spoken everywhere by the scholars of the time; the English were looked upon as the political and scientific leaders of Europe; and the scholars of France visited England to study English political, economic, and scientific progress. Locke, an uncompromising advocate of political and religious liberty; Hobbes, the specula-

tive moral philosopher; and the great scientist Newton were the teachers of Voltaire. More than any other single man, Voltaire moulded and redirected eighteenth-century thought in France.[1] Numerous French writers of importance — Helvetius, Diderot, Morellet, Voltaire, Rousseau, to mention but a few — drew their inspiration from English writers. In the eighteenth century England became the school for political liberty for France.[2]

The effect of the work of Isaac Newton (p. 388), as popularized by the writings of Voltaire, was revolutionary on a people who had been so tyrannized over by the clergy as had the French during the reign of Louis XIV. An interest in scientific studies before unknown in France now flamed up, and a new generation of French scientists arose. Physics, chemistry, zoölogy, and anatomy received a great new impetus, while botany, geology, and mineralogy were raised to the rank of sciences. Popular scientific lectures became very common. The classics were almost abandoned for the new studies.

Economic questions now also began to be discussed, such as questions of money, food, finance, and government expenditure. In 1776 the Englishman, Adam Smith, laid the foundations of the new science of political economy by the publication of his *Wealth of Nations*, and this was at once translated into French and eagerly read. In 1781 a French banker by the name of Necker published his *Compte Rendu*, a statistical report on the finances of France. So feverishly eager were men to study problems of government that six thousand copies were sold the day it was published, and eighty thousand had to be printed before the demand for it was satisfied. A half-century earlier it would have been read scarcely at all.

[1] "The real king of the eighteenth century was Voltaire; but Voltaire, in his turn, was a pupil of the English. Before Voltaire became acquainted with England, through his travels and his friendships, he was not Voltaire, and the eighteenth century was still undeveloped." (Cousin, *History of Philosophy*.)

[2] "The first Frenchmen who in the eighteenth century turned their attention to England were amazed at the boldness with which, in that country, political and religious questions of the deepest moment were discussed — questions which no Frenchman in the preceding age had dared to broach. With wonder they discovered in England a comparative freedom of the public press, and saw with astonishment how in Parliament itself the government of the Crown was attacked with impunity, and the management of its revenues actually kept under control. To see the civilization and prosperity of England increasing, while the power of the upper classes and the King diminished, was to them a revelation. . . . England, said Helvetius, is a country where the people are respected, a country where each citizen has a part in the management of affairs, where men of genius are allowed to enlighten the public upon its true interests." (Dabney, R. H.. *Causes of the French Revolution*, p. 141.)

In the meantime taxes piled up, reforms were refused, the power and arrogance of the clergy and nobility showed no signs of diminution, the nation was burdened with debt, commerce and agriculture declined, the lot of the common people became ever more hard to bear, and the masses grew increasingly resentful and rebellious. As national affairs continued to drift from bad to worse in France, a series of important happenings on the American continent helped to bring matters more rapidly to a crisis. Before describing these events, however, we wish to sketch briefly the rise of government by the people and the extension of liberalism in England — the first great democratic nation of the western world.

III. ENGLAND THE FIRST DEMOCRATIC NATION

Early beginnings of English liberty. The first western nation created from the wreck of the Roman Empire to achieve a measurement of self-government was England. Better civilized than most of the other wandering tribes, at the time of their coming to English shores, the invading Angles, Saxons, and Jutes early accepted Christianity (p. 120) and settled down to an agricultural life. On English shores they soon built up a for-the-time substantial civilization. This was later largely destroyed by the pillaging Danes, but with characteristic energy the English set to work to assimilate the newcomers and build up civilization anew. The work of Alfred (p. 146) in reëstablishing law and order, at a time when law and order scarcely existed anywhere in western Europe, will long remain famous. Later on, and at a time when German and Hun and Slav had only recently accepted Christianity in name and had begun to settle down into rude tribal governments (p. 120), the English barons were extorting *Magna Charta* from King John and laying the firm foundations of English constitutional liberty. In the meadow at Runnymede, on that justly celebrated June day, in 1215, government under law and based on the consent of the governed began to shape itself once more in the western world. Of the sixty-three articles of this Charter of Liberties, three possess imperishable value. These provided:

1. That no free man shall be imprisoned or proceeded against except by his peers, or the law of the land, which secured trial by jury.
2. That justice should neither be sold, denied, nor delayed.

3. That dues from the people to the king could be imposed only with the consent of the National Council (after 1246 known as Parliament).

So important was this charter to such a liberty-loving people as the English have always been, and so bitterly did kings resent its hampering provisions, that within the next two centuries kings had been forced to confirm it no less than thirty-seven times.

By 1295 the first complete Parliament, representative of the three orders of society — Lords, Clergy, and Commons — assembled, and in 1333 the Commons gained the right to sit by itself. From that time to the present the Commons, representing the people, has gradually broadened its powers, working, as Tennyson has said,[1] "from precedent to precedent," until to-day it rules the English nation. In 1376 the Commons gained the right to impeach the King's ministers, and in 1407 the exclusive right to make grants of money for any governmental purpose. Centuries ahead of other nations, this insured an almost continual meeting of the national assembly and a close scrutiny of the acts of both kings and ministers.

In 1604 King James I, imitating continental European precedents, proclaimed his theory as to the "divine right of kings" to rule,[2] and a struggle at once set in which carried the English into Civil War (1642–49); led to the beheading of Charles I (1649); the overthrow and banishment of James II (1688); and the ultimate firm establishment, instead, of the "divine right of the common people."[3] In an age when the autocratic power and the

[1] Tennyson, in his "You ask me why," well describes the growth of constitutional liberty in England when he says that England is:

> "A land of settled government,
> A land of just and old renown,
> Where freedom broadens slowly down,
> From precedent to precedent."

[2] James I, in 1604, had declared: "As it is atheism to dispute what God can do, so it is presumption and a high contempt in a subject to dispute what a king can do." For this attitude the Commons continually contested his authority, his son lost his crown and his head, and his grandson was driven from the throne and from England. By contrast, and as showing the different attitude toward self-government of the two peoples, the German Emperor William II, three centuries later, so continually boasted of his rule by divine right that "Me and God" became an international joke, and to his assumption the German people took little or no exception.

[3] The passage of the Bill of Rights (1689) ended the divine-right-of-kings idea in England for all time. This prohibited the King from keeping a standing army in times of peace, gave every subject the right to petition for a redress of grievances, gave Parliament the right of free debate, prohibited the King from interfering in any way with the proper execution of the laws, declared that members ought to be elected to Parliament without interference, and gave the Commons control of all forms of taxation.

divine right of kings to rule was almost unquestioned elsewhere in Europe, the English people compelled their king to recognize that he could rule over them only when he ruled in their interests and as they wished him to do. Though there was a period of struggle later on with the Hanoverian Georges (I, II, and III), and especially with the honest but stupid George III, England has, since 1688, been a government of and by the people.[1] France did not rid itself of the "divine-right" conception until the French Revolution (1789), and Germany, Austria, and Russia not until 1918.

Growth of tolerance among the English. The results of the long struggle of the English for liberty under law showed itself in many ways in the growth of tolerance among the people of the English nation. At a time when other nations were bound down in blind obedience to king and priest, and when dissenting minorities were driven from the land, the English people had become accustomed to the idea of individual liberty, regulated by law, and to the toleration of opinions with which they did not agree. These characteristically English conceptions of liberty under law and of the toleration of minorities have found expression in many important ways in the life and government of the people (R. 250), and have been elements of great strength in England's colonial policy. One of the important ways in which this growth of tolerance among the English showed itself was in the extension of a larger freedom to those unable to subscribe to the state religion.

Though the Reformation movement had stirred up bitter hatreds in England, as on the Continent, the English were among the first of European peoples to show tolerance of opposition in religious matters. The high English State Church, which had succeeded the Roman, had made but small appeal to many Englishmen. The Puritans had early struggled to secure a simplification of the church service and the introduction of more preaching (p. 359), and in the seventeenth century the organization of three additional dissenting sects, which became known as Unitarians, Baptists, and Quakers, took place. These sects divided off rather quietly, and their separation resulted only in the enactment of new laws regarding conformity, prayers, and teaching.

[1] Though the English first developed regulated or constitutional government, they themselves have no single written constitution. Instead, the foundations of English constitutional government rest on *Magna Charta* (1215), the Petition of Rights (1628), and the Bill of Rights (1689), these three constituting "the Bible of English Liberty."

During the latter half of the seventeenth century, after the execution of Charles I (1649), the Puritans had temporarily risen to power, and during their control of affairs had imposed their strict Calvinistic standards as to Sabbath observance and piety on the nation. This was very distasteful to many, and from such strict observances the people in time rebelled. The standards of the English in personal morality, temperance, amusements, and manners at the beginning of the eighteenth century were not especially high, and in the reaction from Puritan control and strict religious observances the great mass of the people degenerated into positive irreligion and gross immorality. Drunkenness, rowdyism, robbery, blasphemy, brutality, lewdness, and prostitution became very common. This moral decline of the people the Church of England seemed powerless to arrest.

About 1730 a reform movement was begun under the able leadership of a young Oxford student by the name of John Wesley, ably seconded by George Whitefield (1714–70), with a view to reaching the classes so completely untouched by the high State Church. By traveling over the country and preaching a gospel of repentance, personal faith, and better living, these two young men made a deep emotional appeal, and soon gained a strong hold on the poorer and more ignorant classes of the people. Forbidden to preach in Anglican churches, and at times threatened with personal violence, these two men were in time forced into open rebellion against the Established Church. Finally they founded a new Church, which became known as the Methodist.[1] This new organization bore the same relation to the Church of England that the Anglican Church two hundred years before had borne to the Church of Rome. Thus was accomplished a second spiritual reformation in England, and one destined in time to spread to the colonies and deeply affect the lives of a large portion of the English people.[2] That such a well-

FIG. 151. JOHN WESLEY (1703–91)
Founder of Methodism

[1] At first used as a term of ridicule, from the very methodical manner in which the Wesleyans organized their campaigns.

[2] "If we except the great Puritan movement of the seventeenth century, no such appeal had been heard since the days when Augustine and his band of monks landed in Kent and set forth on their mission among the barbarous Saxons. The results answered fully to the zeal that awakened them. Better than the growing prosper-

organized sect could arise, such a moral reformation be preached, and the power of the Established Church be challenged so openly and without serious persecution, speaks much for the growth of religious tolerance among the English people since the days of the great Elizabeth. In 1778 the Roman Catholic Relief Act was adopted, and in 1779 dissenting ministers and schoolmasters were relieved from the disabilities under which they had so long remained. These acts indicate a further marked growth in religious tolerance on the part of the English nation.[1]

New emancipating and educative influences. In 1662 the first regular newspaper outside of Italy was established in England, and in 1702 the first daily paper. Small in size, printed on but one side of the sheet, and dealing wholly with local matters, these nevertheless marked the beginnings of that daily expression of popular opinion with which we are now so familiar.[2] After about 1705 the cheap political pamphlet made its appearance, and after 1710, instead of merely communicating news, the papers began the discussion of political questions.

By 1735 a revolution had been effected in England, and papers and presses began to be established in the chief cities and towns outside of London; the freedom of the press was in a large way

ity of extending commerce, better than all the conquests of the East or the West, was the new religious spirit which stirred the people of both England and America, and provoked the National Church to emulation in good works — which planted schools, checked intemperance, and brought into vigorous activity all that was best and bravest in a race that when true to itself is excelled by none." (Montgomery, D. H., *English History*, p. 322.)

[1] The contrast between eighteenth-century England and France, in the matter of religious liberty, is interesting. In France the Church took care, during the whole of the eighteenth century, that the persecution process should go on. "In 1717 an assembly of seventy-four Protestants having been surprised at Andure, the men were sent to the galleys and the women to prison. An edict of 1724 declared that all who took part in a Protestant meeting, or who had any direct or indirect communication with a Protestant preacher, should have their heads shaved and be imprisoned for life, and the men condemned to perpetual servitude in the galleys. In 1745 and 1746, in the province of Dauphine, 277 Protestants were condemned to the galleys and a number of women flogged. From 1744 to 1752 six hundred Protestants in the east and south of France were condemned to various punishments. In 1774 the children of a Calvinist of Rennes were taken from him. Up to the very eve of the Revolution Protestant ministers were hanged in Languedoc, and dragoons were sent against their congregations." (Dabney, R. H., *Causes of the French Revolution*, p. 42.)

[2] Back as early as 1695 the Commons had refused to renew the press-licensing act, enacted in 1637, to control heresy. This had confined printing to London, Oxford, and Cambridge, and to twenty master printers and four letter founders for the realm. This refusal marks the beginning of the freedom of the press in England. In 1709 the copyright law was enacted, and in 1776 the redress against publishers of libelous articles was confined to the ordinary courts of law. A century ahead of France, and more than two centuries ahead of Teutonic and Romanic lands, England provided for a free press and open discussion.

completed, and newspapers, for the first time in the history of the world, were made the exponents of public opinion. The press in England in consequence became an educative force of great intellectual and political importance, and did much to compensate for the lack of a general system of schools for the people. In 1772 the right to publish the debates in Parliament was finally won, over the strenuous objections[1] of George III. In 1780 the first Sunday newspaper appeared, "on the only day the lower orders had time to read a paper at all," and, despite the efforts of religious bodies to suppress it, the Sunday paper has continued to the present and has contributed its quota to the education and enlightenment of mankind. In 1785 the famous London *Times* began to appear. In the middle of the eighteenth century debating societies for the consideration of public questions arose, and in 1769 "the first public meeting ever assembled in England, in which it was attempted to enlighten Englishmen respecting their political rights" was held, and such meetings soon became of almost daily occurrence. All these influences stimulated political thinking to a high degree, and contributed not only to a desire for still larger political freedom but for the more general diffusion of the ability to read as well (**R. 250**).

Still other important new influences arose during the early part of the eighteenth century, each of which tended to awaken new desires for schools and learning. In 1678 the first modern printed story to appeal to the masses, Bunyan's *Pilgrim's Progress*, appeared from the press. Written, as it had been, by a man of the people, its simple narrative form, its passionate religious feeling, its picture of the journey of a pilgrim through a world of sin and temptation and trial, and its Biblical language with which the common people had now become familiar — all these elements combined to make it a book that appealed strongly to all who read or heard it read, and stimulated among the masses a desire to read comparable to that awakened by the chaining of the English Bible in the churches a century before (**R. 170**). In 1719 the first great English novel, Defoe's *Robinson Crusoe*, and in 1726 *Gulliver's Travels*, added new stimulus to the desires awakened by Bunyan's book. All three were books of the common

[1] George III, always consistently wrong, opposed this extension of popular rights. In 1771 he wrote the Prime Minister, Lord North: "It is highly necessary that this strange and lawless method of publishing debates in the papers should be put a stop to. But is not the House of Lords the best court to bring such miscreants before; as it can fine, as well as imprison, and has broader shoulders to support the odium of so salutary a measure."

people, whereas the dramas, plays, essays, and scholarly works previously produced had appealed only to a small educated class. In 1751 what was probably the first circulating library of modern times was opened at Birmingham, and soon thereafter similar institutions were established in other English cities.

Science and manufacturing; the new era. England, too, from the first, showed an interest in and a tolerance toward the new scientific thinking scarcely found in any other land. This in itself is indicative of the great intellectual progress which the English people had by this time made.[1] At a time when Galileo, in Italy (p. 388), was fighting, almost alone, for the right to think along the lines of the new scientific method and being imprisoned for his pains, Englishmen were reading with deep interest the epoch-making scientific writings of Lord Francis Bacon (p. 390). Earlier than in other lands, too, the Newtonian philosophy found a place in the instruction of the national universities (p. 423), and English scholars began to employ the new scientific method in their search for new truths. The British Royal (Scientific) Society [2] had begun to meet as early as 1645, and ever since has published in its proceedings the best of English scientific thinking. By the reign of George I (1714–27) scientific work began to be popularized, and the first little booklets on scientific subjects began to appear. These popular presentations of what had been worked out were sold at the book stalls and by peddlers and were eagerly read; by the beginning of the reign of George III (1760) they had become very common. In 1704–10 the first "Dictionary of Arts and Sciences" was printed, and in 1768–71 the first edition (three volumes) of the now famous *Encyclopædia Britannica* appeared. In 1755 the famous British Museum was founded.

[1] "It is evident that a nation perfectly ignorant of physical laws will refer to supernatural causes all the phenomena by which it is surrounded. But as soon as natural science begins to do its work there are introduced the elements of a great change. Each successive discovery, by ascertaining the law that governs events, deprives them of that apparent mystery in which they were formerly involved. The love of the marvelous becomes proportionally diminished; and when any science has made such progress as to enable it to foretell the events with which it deals, it is clear that the whole of those events are at once withdrawn from the jurisdiction of the supernatural, and brought under the authority of natural powers. . . . Hence it is that, supposing other things equal, the superstition of a nation must always bear an exact proportion to the extent of its physical knowledge." (Buckle, H. T., *History of Civilization in England*, vol. 1, p. 269.)

[2] The Charter of this Society stated the purpose to be to increase knowledge by direct experiment, and that the object of the Society was the extension of natural knowledge, as opposed to that which is supernatural. As an institution embodying the idea of intellectual progress it was most bitterly assailed by partisans of the old thinking.

As early as 1698 a rude form of steam engine had been patented in England, and by 1712 this had been perfected sufficiently to be used in pumping water from the coal mines. In 1765 James Watt made the real beginning of the application of steam to industry by patenting his steam engine; in 1760 Wedgwood established the pottery industry in England; in 1767 Hargreaves devised the spinning-jenny, which banished the spindle and distaff and the old spinning-wheel; in 1769 Arkwright evolved his spinning-frame; and in 1785 Cartwright completed the process by inventing the power loom for weaving. In 1784 a great improvement in the smelting of iron ores (puddling) was worked out. These inventions, all English, were revolutionary in their effect on manufacturing. They meant the displacement of hand power by machine labor, the breakdown of home industry through the concentration of labor in factories, the rise of great manufacturing cities,[1] and the ultimate collapse of the age-old apprenticeship system of training, where the master workman with a few apprentices in his shop (p. 210) prepared goods for sale. They also meant the ultimate transformation of England from an agricultural into a great manufacturing and exporting nation, whose manufactured products would be sold in every corner of the globe.

By 1750 a change in attitude toward all the old intellectual problems had become marked in England, and by 1775 attention before unknown was being given there to social, political, economic, and educational questions. Religious intolerance was dying out, the harsh laws of earlier days had begun to be modified, new social and political interests[2] were everywhere attracting attention, and the great commercial expansion of England was rapidly taking shape. With England and France leading in the new scientific studies; England in the van in the development of manufacturing and the French to the fore in social influences and polite literature; England and the new American Colonies setting new standards in government by the people; the French

[1] Birmingham, Sheffield, Leeds, and Manchester, for example, great manufacturing cities early in the nineteenth century, were insignificant villages in Cromwell's day. The steam engine made the coal and iron deposits of northern England of immense value, and the "smoky mill towns" that arose in the north began to displace southern agricultural England in population, wealth, and importance.

[2] For example, in 1774 John Howard began his great work in prison reform; in 1772 pressing to death was abolished; in 1780 the ducking-stool was used for the last time; and soon thereafter the earlier laws relating to the death penalty were modified, and the slave trade abolished. Up to the middle of the eighteenth century as many as one hundred and sixty offenses were punishable by death.

theorists and economists giving the world new ideas as to the function of the State; enlightened despots on the thrones of Prussia, Austria, Spain, and Russia; and the hatreds of the hundred years of religious warfare dying out; the world seemed to many, about 1775, as on the verge of some great and far-reaching change in methods of living and in government, and about ready to enter a new era and make rapid advances in nearly all lines of human activity. The change came, but not in quite the manner expected.

IV. INSTITUTION OF CONSTITUTIONAL GOVERNMENT AND RELIGIOUS FREEDOM IN AMERICA

Englishmen in America establish a Republic. Though the early settlement of America, as was pointed out in chapter xv, was made from among those people and from those lands which had embraced some form of the Protestant faith, and represented a number of nationalities and several religious sects, the thirteen colonies, nevertheless, were essentially English in origin, speech, habits, observances, and political and religious conceptions. This is well shown for the white population by the results of the first Federal census, taken in 1790, as given in the adjoining figure. This shows that of all the people in the thirteen original States, 83.5 per cent possessed names indicating pure English origin, and that 91.8 per cent had names which pointed to their having come from the British Isles. The largest non-British name-nationality was the German, with 5.6 per cent of the whole, and these were found chiefly in Pennsylvania where they constituted 26.1 per cent of the State's population. Next were those having Dutch names, who constituted but 2 per cent of the total population, and but 16.1 per cent of the population of New York. No other name-nationality constituted over one

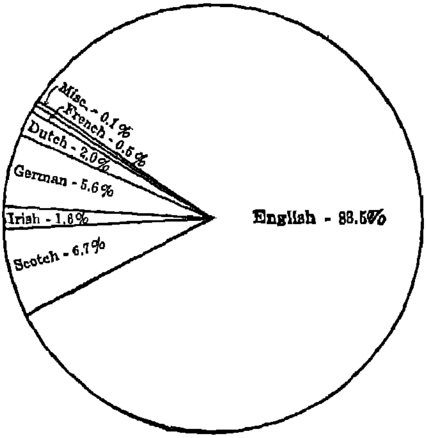

FIG. 152. NATIONALITY OF THE WHITE POPULATION, AS SHOWN BY THE FAMILY NAMES IN THE CENSUS OF 1790

half of one per cent of the total. The New England States were almost as English as England itself, 93 to 96 per cent of the names being pure English, and 98.5 to 99.8 per cent being from the British Isles.

We thus see that it was from England, the nation which had done most in the development of individual and religious liberty, that the great bulk of the early settlers of America came, and in the New World the English traditions as to constitutional government and liberty under law were early and firmly established. The centuries of struggle for representative government in England at once bore fruit here. Colony charters, charters of rights and liberties, public discussion, legislative assemblies, and liberty under law were from the first made the foundation stones upon which self-government in America was built up.

From an early date the American Colonies showed an independence to which even Englishmen were scarcely accustomed, and when the home government attempted to make the colonists pay some of the expenses of the Seven Years' War, and a larger share of the expenses of colonial administration, there was determined opposition. Having no representation in Parliament and no voice in levying the tax, the colonists declared that taxation without representation was tyranny, and refused to pay the taxes assessed. Standing squarely on their rights as Englishmen, the colonists were gradually forced into open rebellion. In 1765, and again in 1774, Declarations of Rights were drawn up and adopted by representatives from the Colonies, and were forwarded to the King. In 1774 the first Continental Congress met and formed a union of the Colonies; in 1776 the Colonies declared their independence. This was confirmed, in 1783, by the Treaty of Paris; in 1787, the Constitution of the United States was drafted; and in 1789, the American government began. In the preamble to the twenty-seven charges of tyranny and oppression made against the King in the Declaration of Independence, we find a statement of political philosophy [1] which is a combination of the results of the long English struggle for liberty and the French eighteenth-century reform philosophy and revolutionary demands.[2] This preamble declared:

[1] The Declaration of Independence was written by Thomas Jefferson, a great admirer of French life and a propagandist for French ideas.

[2] Compare the American preamble with the following sentence from the *Social Contract* (Book I, chap. ix) of Rousseau:

"I shall close this chapter and this book with a remark which ought to serve as a

We hold these truths to be self-evident — that all men are created equal; that they are endowed by their Creator with certain unalienable rights; that among these are life, liberty, and the pursuit of happiness. That, to secure these rights, governments are instituted among men, deriving their just powers from the consent of the governed; that, whenever any form of government becomes destructive of these ends, it is the right of the people to alter or to abolish it, and to institute a new government, laying its foundation on such principles, and organizing its powers in such form, as to them shall seem most likely to effect their safety and happiness.

American contributions to world history. The American Revolution and its results were fraught with great importance for the future political and educational progress of mankind. Before the close of the eighteenth century the new American government had made at least four important contributions to world liberty and progress which were certain to be of large political and educational value for the future.

In the first place, the people of the Colonies had erected independent governments and had shown the possibility of the self-government of peoples on a large scale, and not merely in little city-states or communities, as had previously been the case where self-government had been tried. Democratic government was here worked out and applied to large areas, and to peoples of diverse nationalities and embracing different religious faiths. The possibility of States selecting their rulers and successfully governing themselves was demonstrated.

In the second place, the new American government which was formed did something new in world history when it united thirteen independent and autonomous States into a single federated Nation, and without destroying the independence of the States. What was formed was not a league, or confederacy, as had existed at different times among differing groups of the Greek City-States, and from time to time in the case of later Swiss and temporary European national groupings, but the union into a substantial and permanent Federal State of a number of separate States which still retained their independence, and with provision for the expansion of this national Union by the addition of new States. This federal principle in government is probably the greatest political contribution of the American Union to world

basis for the whole social system; it is that instead of destroying natural equality, the fundamental pact, on the contrary, substitutes a moral and lawful equality for the physical inequality which nature imposed upon men, so that, although unequal in strength or intellect, they all become equal by convention and legal right."

development. In the twentieth-century conception of a League of Nations it has borne still further fruit.

In the third place, the different American States changed their old Colonial Charters into definite written Constitutions, each of which contained a Preamble or Bill of Rights which affirmed the fundamental principles of democratic liberty (R. 251). These now became the fundamental law for each of the separate States, and the same idea was later worked out in the Constitution of the United States. These were the first written constitutions of history, and have since served as a type for the creation of constitutional government throughout the world. In such documents to-day free peoples everywhere define the rights and duties and obligations which they regard as necessary to their safety and happiness and welfare.

Finally, the Federal Constitution provided for the inestimable boon of religious liberty, and in a way that was both revolutionary and wholesome. At the beginning of the War for Independence the Anglican (Episcopal) faith had been declared "the established religion" in seven of the Colonies, and the Congregational was the established religion in three of the New England Colonies, while but three Colonies had declared for religious freedom and refused to give a preference to any special creed. This religious problem had to be met by the Constitutional Convention, and this body handled it in the only way it could have been intelligently handled in a nation composed of so many different religious sects as was ours. It simply incorporated into the Federal Constitution provisions which guaranteed the free exercise of their religious faith to all, and forbade the establishment by Congress of any state religion, or the requirement of any religious test as a prerequisite to holding any office under the control of the Federal Government. The American people thus took a stand for religious liberty at a time when the hatreds of the Reformation still burned fiercely, and when tolerance in religious matters was as yet but little known.

Importance of the religious-liberty contribution. The solution of the religious question arrived at was only second in importance for us to the establishment of the Federal Union, and the far-reaching significance to our future national life of the sane and for-the-time extraordinary provisions incorporated into our National Constitution can hardly be overestimated. This action led to the early abandonment of state religions, religious tests, and

public taxation for religion in the old States, and to the prohibition of these in the new. The importance of this solution of the religious question for the future of popular education in the United States was great, for it laid the foundations upon which our systems of free, common, public, tax-supported, non-sectarian schools have since been built up. How we could have erected a common public-school system on a religious basis, with the many religious sects among us, it is impossible to conceive. Instead, we should have had a series of feeble, jealous, antagonistic, and utterly inefficient church-school systems, chiefly confined to elementary education, and each largely intent on teaching its peculiar church doctrines and struggling for an increasing share of public funds.

How much the American people owe to the Fathers of the Republic for this most enlightened and intelligent provision, few who have not thought carefully on the matter can appreciate. To it we must trace not only the great blessing of religious liberty, which we have so long enjoyed, but also the final establishment of our common, free, public-school systems. The beginning of the new state motive for education, which was soon to supersede the religious motive, dates from the establishment with us of republican governments; and the beginning of the emancipation of education from church domination goes back to this wise provision inserted in our National Constitution.

This national attitude was later copied in the state constitutions, and as a preamble to practically all we find a Bill of Rights, which in almost every case included a provision for freedom of religious worship (**Rs.** 251, 260). After the middle of the nineteenth century a further provision prohibiting sectarian teaching or state aid to sectarian schools was everywhere added.

V. THE FRENCH REVOLUTION SWEEPS AWAY ANCIENT ABUSES

New demands for reform that could not be resisted. More than in any other continental European country France had, by 1783, become a united nation, conscious of a modern national feeling. Yet in France mediæval abuses in both State and Church had survived, as we have seen, to as great an extent almost as in any European nation. So determined were the clergy and nobility to retain their old powers, not only in France but throughout the continent of Europe as well, that progressive reform seemed well-nigh impossible. The work of the benevolent

despots had, after all, been superficial. By the last quarter of the eighteenth, though, a progressive change was under way which was certain to produce either evolution or revolution. The influence of the American experiment in nation-building now became pronounced. In 1779 Franklin took a copy of the new Pennsyl-

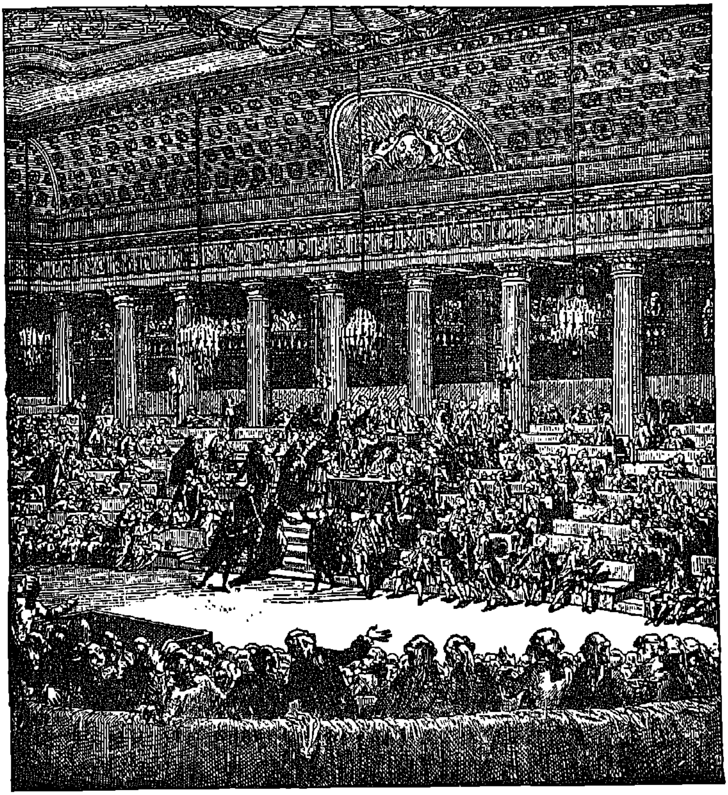

FIG. 153. THE STATES-GENERAL IN SESSION AT VERSAILLES
(After a contemporary drawing by Monnet)

vania Constitution with him to Paris, and in 1780 John Adams did the same with the Massachusetts Constitution. Frenchmen instantly recognized here, in concrete form, the ideas with which their own heads were filled. In 1783 Franklin published in France a French translation of all the American Constitutions, and the National Constitution of 1787 was as eagerly read and discussed in Paris as in New York or Philadelphia or Boston. America

appeared to the French of that stormy period as an ideal land, where the dreams of Rousseau about the social contract had been transformed into realities. Two years later the *cahiers* of the Third Estate demanded a written constitution for France. The French, too, had aided the American Colonies in their struggle for liberty, and French soldiers returning home carried back new political ideas drawn from the remarkable political progress of the new American Nation. By 1788 the demand for reform in France had become so insistent, and the condition of the treasury of the State was so bad, that it was finally felt necessary to summon a meeting of the States-General — a sort of national parliament consisting of representatives of the three great Estates: clergy, nobility, and commons — which had not met in France since 1614.

Besides electing its representatives, each locality and order was allowed to draw up a series of instructions, or *cahiers* (**R. 252**), for the guidance of its delegates. These *cahiers* are a mine of information as to the demands and hopes and interests of the French people,[1] and it is interesting to know that the *cahiers* of nobility, clergy, and commons alike included, among their demands, the organization of a comprehensive plan of education for France.[2]

France establishes constitutional government. The States-General met May 5, 1789, and soon (June 20) resolved itself into

[1] "I read attentively the *cahiers* drawn up by the three Orders before their union in 1789. I see that here the change of a law is demanded, and there of a custom — and I make note of them. I continue thus to the end of this immense task, and, when I come to put side by side all these particular demands, I see, with a sort of terror, that what is called for is the simultaneous and systematic abolition of all the laws and of all the customs existing in the country; whereupon I instantly perceive the approach of the vastest and most dangerous revolutions that have taken place in the world." (De Tocqueville, A. C., *State of Society in France before the Revolution of 1789*, p. 219.)

[2] For example, the clergy of Rodez and Saumur demanded "that there may be formed a plan of national education for the young"; the clergy of Lyons that education be restricted "to a teaching body whose members may not be removable except for negligence, misconduct, or incapacity; that it may no longer be conducted according to arbitrary principles, and that all public instructors be obliged to conform to a uniform plan adopted by the States-General"; the clergy of Blois that a system of colleges under church control be formed (**R. 252**); the nobility of Lyons that "a national character be impressed on the education of both sexes"; the nobility of Paris that "public education be perfected and extended to all classes of citizens"; the nobility of Blois that "better facilities for the education of children, and elementary textbooks adapted to their capacity, wherein the rights of man and the social duties shall be clearly set forth" shall be provided, and to this end that "there be established a council composed of the most enlightened scholars of the capital and of the provinces and of the citizens of the different orders, to formulate a plan of national education, for the benefit of all classes of society, and to edit elementary textbooks." The Third Estate of Blois demanded the establishment of free schools in all the rural parishes.

the National or Constituent Assembly. Terrified by the uprisings and burnings of châteaux throughout France, on the night of August fourth, in a few hours, it adopted a series of decrees which virtually abolished the *Ancien Régime* of privileges for France. The nobility gave up most of their old rights, the serfs [1] were freed, and the special privileges of towns were surrendered. Later the Assembly adopted a "Declaration of Rights of Man and of the Citizen" (R. 253), much like the American Declaration of Independence. This declared, among other things, that all men were born free and have equal rights, that taxes should be proportional to wealth, that all citizens were equal before the law and have a right to help make the laws, and that the people of the nation were sovereign. These principles struck at the very foundations of the old system.

Soon a Constitution for France, the first ever promulgated in modern Europe, was prepared and adopted (1791). This abolished the ancient privileges and reorganized France as a self-governing nation, much after the American plan. Local government was created, and the absolute monarchy was changed to a limited constitutional one. Next the property of the Church was taken over by the State, the monasteries were suppressed, and the priests and bishops were made state officials and paid a fixed state salary. The Jesuits had been expelled from France in 1764; and in 1792 the Brothers of the Christian Schools were not allowed longer to teach. Among other important matters, the Constitution of 1791 declared that:

> There shall be created and organized a system of public instruction common to all citizens, and gratuitous, with respect to those branches of instruction which are indispensable for all men.

Up to this point the Revolution in France had proceeded relatively peacefully, considering the nature of the long-standing abuses which were to be remedied. In August, 1792, the King was imprisoned, and in January, 1793, he was executed and a Republic proclaimed.[2] Then followed a reign of terror, which we do

[1] See footnote 1, page 165. One of the great results of the French Revolution was the abolition of serfdom in central and western Europe. The last European nation to emancipate its serfs was Russia, where they were freed in 1861.

[2] "Great was the difference between France at the end of 1791 and at the end of 1793. At the former date all looked hopeful for the future; the king was the father of his people; the Constitution of 1791 was to regenerate France, and set an example to Europe; all old institutions had been renovated; everything was new, and popular on account of its novelty. . . . By the end of 1793 all looked threatening for the future; for the purpose of repelling her foreign foes, who included nearly the whole of

not need to follow, and which ended only when Napoleon became master of France.

Beneficent results of the Revolution. The French Revolution was not an accident or a product of chance, but rather the inevitable result of an attempt to dam up the stream of human progress and prevent its orderly onward flow. The Protestant Revolts were the first great revolutionary wave, the Puritan revolution in England was another, the formation of the American Republic and the institution of constitutional government and religious freedom another, while the French Revolution brought the rising movement to a head and swept away, in a deluge of blood, the very foundations of the mediæval system. Along with much that was disastrous, the French Revolution accomplished after all much that was of greatest importance for human progress. The world at times seems to be in need of such a great catharsis. Progress was made in a decade that could hardly have been made in a century by peaceful evolution. The old order of privilege came to an end, mediævalism was swept away, and the serf was evolved into the free farmer and citizen. One fifth of the soil of France was restored to the use of the people from the monasteries, and an additional one third from the Church and nobility. The new principles of citizenship — Liberty, Equality, and Fraternity — were for France revolutionary in the extreme, while the assertion that the sovereignty of a nation rests with the people rather than with the king, here successfully promulgated, ended for all time the "divine-right-of-kings" idea for France. After political theory had for a time run mad, the organizing genius of Napoleon consolidated the gains, gave France a strong government, a uniform code of laws,[1] and began that organization of schools for the nation which ultimately meant the taking over of education from the Church and its provision at the expense of and in the interests of the nation.

Europe, France submitted to be ground down by the most despotic and arbitrary government ever known in modern history, — the Great Committee of Public Safety; the Reign of Terror was in full exercise, and it was doubtful whether the energy, audacity, and concentrated vigour of the Great Committee would enable France to be victorious over Europe, and thus secure for her the right of deciding on the character of their own government. She was to be successful, but at what a cost!" (Stephens, H. M., *The French Revolution*, vol. II, p. 512.)

[1] The *Code Napoléon*, prepared in 1804, was the first modern code of civil laws, though Frederick the Great had earlier prepared a partial code of Prussian laws. What the *Justinian Code* was to ancient Rome, this, organized into better form, was to modern France. This *Code*, prepared under Napoleon's direction, substituted one uniform code of laws worthy of a modern nation for the thousands of local laws which formerly prevailed in France.

The national idea extends to other lands. The reform work in France, together with the examples of English and American liberty, soon began to have their influence in other lands as well People everywhere began to see that the old régime of privilege and misgovernment ought to be replaced. Other countries abolished serfdom, introduced better laws, and made reforms in the abuses of both Church and State. French armies and rulers carried the best of French ideas to other lands, and, where the French rule continued long enough, these ideas became fixed. In particular was the *Code Napoléon* copied in the Netherlands, the Italian States, and the States of southern and western Germany. The national spirit of Italy was awakened, and the Italian liberals began to look forward to the day when the small Italian States might be reunited into an Italian Nation, with Rome as its capital. This became the work of nineteenth-century Italian statesmen. For the first time in Spanish history, too, the people became conscious, under French occupation, of a feeling of national unity, and similarly the national spirit of German lands was stirred by the conquests of Napoleon.

A constitution was obtained in Spain, in 1812, and between 1815 and 1821 all of Spain's South American colonies — Argentina, Bolivia, Chile, Colombia, Ecuador, Panama, Paraguay, Uruguay, and Venezuela — revolted, became independent, and set up republics with constitutional governments, some of the larger ones based on the federal principle, as in the United States. Brazil similarly freed itself from Portugal and set up a constitutional and federated monarchy, in 1822. The Kingdom of Naples obtained constitutional government in 1820, and Sardinia in 1821. In 1823, when Spain with Austria's aid prepared to reconquer the Spanish South American Republics, President Monroe transmitted to the American Congress his message in which he declared that any attempt on the part of European nations to suppress republicanism on the American continent would be considered by the United States as an unfriendly act. This has since been known as the *Monroe Doctrine.* In 1829 Greece obtained her independence from Turkey, and in 1843 a constitutional form of government was obtained.

Important consequences of the democratic movement. Since the closing decades of the eighteenth century, when democratic government and written constitutions began, the sweep of democratic government has become almost world wide. Nation after

nation has changed to democratic and constitutional forms of government, the latest additions being Portugal (1911), China (1912), Russia (1917), and Germany (1918). New English colonies, too, have carried English self-government into almost every continent. The World War of 1914–18 gave a new emphasis to democracy, and there is good reason to believe that government of and by and for the people is ultimately destined to prevail among all the intelligent nations and races of the earth.

With the development of democratic government there has everywhere been a softening of old laws, the growth of humanitarianism, the wider and wider extension of the suffrage, important legislation as to labor, a previously unknown attention to the poor and the dependents of society, a vast extension of educational advantages, and the taking over of education from the Church by the State and the erection of the school into an important institution for the preservation and advancement of the national welfare. These consequences of the onward sweep of new-world ideas we shall trace more in detail in the chapters which follow.

QUESTIONS FOR DISCUSSION

1. Show the importance, for human progress, of each of the meanings of the new eighteenth-century liberalism, as enumerated on pages 471–72.
2. How do you explain the lack of any permanent influence on Spanish life of the work of the benevolent despots in Spain?
3. Show the liberalizing influence of the rise of scientific investigation and economic studies, for a nation still oppressed by mediævalism and bad government.
4. Enumerate the new sciences which arose in the eighteenth century.
5. Indicate the importance of the freedom of the press in the development of English political liberty.
6. Explain how the religious-freedom attitude of the American national constitution conferred an inestimable boon on the States in the matter of public education.

SELECTED READINGS

In the accompanying *Book of Readings* the following illustrative selections are reproduced:

247. Dabney: Ecclesiastical Tyranny in France.
248. Voltaire: On the Relation of Church and State.
249. Rousseau: Extract from the Social Contract.
250. Buckle: Changes in English Thinking in the Eighteenth Century.
251. Pennsylvania Constitution: Bill of Rights in.
252. Clergy of Blois: *Cahier* of 1779.
253. France: Declaration of the Rights of Man.

QUESTIONS ON THE READINGS

1. Explain why ecclesiastical tyranny should have awakened such a spirit of rebellion in France (247), and not in Spain or in Italian lands.
2. Just what attitude toward religion is shown in the extract from Voltaire (248)?
3. Bolshevists in Russia and in America talk to-day as did Rousseau in the Social Contract (249). Compare the justification of each with the eighteenth-century France of Rousseau.
4. What do all the changes enumerated by Buckle (250) indicate as to the spread of general education, irrespective of schools, among the English people?
5. Compare the Pennsylvania Bill of Rights of 1776 (251) with that of your own present-day state constitution.
6. Just what type of educational provisions, and what administrative organization, did the recommendations of the Clergy of Blois (252) contemplate? Indicate its shortcomings for eighteenth-century France.
7. Compare the main ideas of 251 and 253.

SUPPLEMENTARY REFERENCES

*Dabney, R. H. *The Causes of the French Revolution.*
Taine, H. A. *The Ancient Régime.*

CHAPTER XX

THE BEGINNINGS OF NATIONAL EDUCATION

I. NEW CONCEPTIONS OF THE EDUCATIONAL PURPOSE

The State as servant of the Church. With the rise of the Protestant sects we noted, in the fifteenth and sixteenth centuries, and for the first time since Christianity became supreme in the western world, the beginnings of a state connection with the education of the young. The Protestant reformers, obtaining the support of the Protestant princes and kings, had successfully used this support to assist them in the organization of church schools as an aid to the reformed faith. Luther, it will be recalled (p. 312), had made a strong appeal to the mayors and magistrates of all German lands to establish schools as a part of their civic duties (**R.** 156), and had contended that a solemn obligation rested upon them to do so. The Dutch Provinces had worked closely with the Dutch Protestant synods (p. 334) in ordering schools established and in providing for their financing; Calvin had organized a religious City-State at Geneva (p. 330), of which religion and learning had been the corner-stones; the Scottish Parliament, by the laws of 1633 and 1646 (p. 335), had ordered schools for Scottish children in connection with the churches; and in the Scandinavian countries and in Finland the beginnings of a connection with the State had also been made (p. 315). Finally, in the new Massachusetts Colony the laws of 1642 and 1647 (p. 366) had, for the first time in the English-speaking world, ordered that children be taught "to read and understand the principles of religion and the capital laws of the country" (p. 364), and that schools be established by the towns, under penalty if they refused to do so. In all Protestant lands we saw that the reformers appealed, from time to time, to what were then the servants of the churches — the rising civil governments and principalities and States — to use their civil authority to force the people to meet their new religious obligations in the matter of schooling.

The purpose of the schooling ordered established, however, was almost wholly religious. Massachusetts, in ordering instruction in the "capital laws of the country," as well as reading and religion, had formed a marked exception. In nearly all lands the rising state governments merely helped the Protestant churches

to create the elementary vernacular religious school, and to make of it an auxiliary for the protection of orthodoxy and the advancement of the faith. Even in the new state school systems of the German States — Saxony, Würtemberg (p. 317), Brunswick, Weimar, Gotha — the elementary schools established were for religious rather than for state ends. This condition continued until well toward the middle of the eighteenth century.

The new state theory of education. After about the middle of the eighteenth century a new theory as to the purpose of education, and one destined to make rapid headway, began to be advanced. This theory had already made marked progress, as we shall see, in the New England Colonies, and had also found expression, as we shall also see in a later chapter, in the organizing work of Frederick the Great in Prussia. It was from the French political philosophers of the eighteenth century, though, that its clearest definition came. They now advanced the idea that schools were essentially civil affairs, the purpose of which should be to promote the everyday interests of society and the welfare of the State, rather than the welfare of the Church, and to prepare for a life here rather than a life hereafter.

After about 1750 a critical and reformatory pedagogy rapidly began to take shape in France, and the second half of the eighteenth century became a period of criticism and discontent and reconstruction in education, as well as in politics and religion.

This criticism and discontent in France was greatly stimulated by the decline in character and influence of the Jesuit schools. Unwilling to change their instruction to meet the needs of a changing society, their schools had become formal in character (**R. 146**), and were now engaged chiefly in stifling thinking rather than in promoting it. In consequence the schools had fallen into disrepute throughout all France. The Society, too, in the eighteenth century, came to be a powerful political organization which strove to dominate the State. So bad had the situation become by 1762, that the different parliaments in the provinces and in Paris had formulated complaints against the Jesuits and their schools,[1]

[1] The complaints were largely along such lines as that the instruction was confined to a few Latin authors; that instruction in the French language was neglected; that instruction in the history and geography of France should be introduced; that time was wasted "in copying and learning notebooks filled with vain distinctions and frivolous questions"; that training in the use of the French language should be substituted for the disputations in Latin; that in religion the study of the Bible was neglected for books of devotion and propaganda compiled by the members of the Order; that moral casuistry and religious bigotry were taught; and that the discipline was unnecessarily severe and wrong in character.

and, in 1764, the king was induced to suppress the Order.[1] This decline in influence and final suppression of the Society gave rise to some rather remarkable pedagogical literature, which looked to the creation of a system of state secondary schools in France to replace those of the Jesuits.

The outcome was the rise of a new national and individual conception of the educational purpose. This was destined in time to spread to other lands and to lead to the rise of complete state school systems, financed and managed by the State and conducted for state ends, and to the ultimate divorce of Church and State, in all progressive lands, in the matter of the education of the young. Teachers trained and certificated by the State were in time to supplant the nuns and brothers of the religious congregations in Catholic lands, as well as teachers who served as assistants to the pastors in Protestant lands and whose chief purpose was to uphold the teachings and advance the interests of the sect; citizens were to supplant the ecclesiastic in the supervision of instruction; and the courses of instruction were to be changed in direction and vastly broadened in scope to make them minister to the needs of the State rather than the Church, and to prepare pupils for useful life here rather than for life in another world.

II. THE NEW STATE THEORY IN FRANCE

The French political theorists. The leading French political theorists of the two decades between 1760 and 1780 now began to discuss education as in theory a civil affair, intimately connected with the promotion of the welfare of the State. The more important of these, and their chief ideas were:

FIG. 154. ROUSSEAU (1712–78)

1. *Rousseau.* The first of the critical and reformatory pedagogical writers to awaken any large interest and obtain a general hearing was Jean-Jacques Rousseau. The same year (1762) that his *Social Contract* appeared and attacked the foundations of the old political system (p. 483), his *Émile* also appeared and attacked with equal vigor the religious and

[1] In 1759 the Jesuits were expelled from Portugal, in 1767 from Spain, and in 1773 the Pope at Rome, "recognizing that the members of this Society have not a little troubled the Christian commonwealth, and that for the welfare of Christendom it were better that the Order should disappear," abolished the Society entirely. Forty years later it was reconstituted in a modernized form.

social theory as to education then prevailing throughout western Europe. For the stiff and unnatural methods in education, under which children were dressed and made to behave as adults,[1] the harsh discipline of the time, and the excessive emphasis on religious instruction and book education, he preached the substitution of life amid nature, childish ways and sports, parental love, and an education that considered the instincts and natural development of children.

Gathering up the political and social ideas of his age as to ecclesiastical and political despotism; the nature of the social contract; that the "state of nature" was the ideal one, and the one in which men had been intended to live; that human duty called for a return to the "state of nature," whatever that might be; and that the artificiality and hypocrisy of his age in manners, dress, religion, and education were all wrong — Rousseau restated his political philosophy in terms of the education of the boy, Émile. Despite its many exaggerations, much faulty reasoning, and many imperfections, the book had a tremendous influence upon Europe in laying bare the limitations and defects and abuses of the formal and ecclesiastical education of the time.[2] He may be regarded as the first important writer to sap the foundations of the old system of religious education, and to lay a basis for a new type of child training (R. 254). Though Rousseau's enthusiasm took the form of theory run mad, and the educational plan he proposed was largely impossible, he nevertheless popularized education, not only in France, but among the reading public of the progressive European States as well. After he had written, the old limited and narrow religious education was on the defensive, and, though time was required, the transition to a more secular type of education was inevitable as fast as nations and peoples could shake off the dominance of the Church in state affairs.

2. *La Chalotais.* The year following the publication of Rousseau's *Émile* appeared La Chalotais's *Essai d'éducation nationale* (1763). René de la Chalotais, a Solicitor-General for the Parliament of Bretagne, was one of the notable French parliamentari-

[1] Little boys wore their hair long and powdered, carried a sword, and had coats with gilded cuffs, while little girls were dressed in imitation of the lady of fashion. Proper deportment was an important part of a child's training.

[2] The iconoclastic nature of Rousseau's volume may be inferred from its opening sentence, in which he says: "Everything is good as it comes from the hand of the author of nature; everything degenerated in the hand of man." In another place he breaks out: "Man is born, lives, and dies in a state of slavery. At his birth he is stitched into swaddling clothes, at his death he is nailed in his coffin; and as long as he preserves the human form he is held captive by our institutions."

a system of people's schools, which shall be free and obligatory for all, and in which instruction in reading, writing, arithmetic, morals, civics, and religion shall be taught. "From the Prime Minister to the lowest peasant," he says, "it is good for every one to know how to read, write, and count." For the series of secondary schools to be established, he condemns the usual practice of devoting so much of the instruction to the humanities and a mediæval type of logic and ethics, and urges instead the introduction of instruction in mathematics, in the modern sciences, literature, and the work of governments. Classical studies he would confine to the last years of the course. Science, history, drawing, and music find a place in his scheme.

All this instruction Diderot would place under the supervisory control of an administrative bureau to be known as the *University of Russia*, at the head of which should be a statesman, who should exercise control of all the work of public instruction beneath. Though never carried out in Russia, the University of France of 1808 is largely an embodiment of the ideas he proposed in 1776.

Legislative proposals to embody these ideas. During the quarter of a century between the publication of Rousseau's *Émile* and the summoning of the States-General to reform France (1762–88), the educational as well as the political ideas of the French reformers had taken deep root with the thinking classes of the nation. The *cahiers* of 1789, of all Orders (p. 500), gave evidence of this in their somewhat general demand for the creation of some form of an educational system for France (**R. 252**). From the first days of the Revolution pedagogical literature became plentiful, and the successive National Assemblies found time, amid the internal reorganization of France, constitution-making, the troubles with and trial of the King, and the darkening cloud of foreign intervention, to listen to reports and addresses on education and to enact a bill for the organization of a national school system. The more important of these educational efforts were:

1. *The Constituent Assembly* (June 17, 1789, to September 30, 1791). In the Constituent Assembly, into which the States-General resolved itself, June 17, 1789, and which continued until after it had framed the constitution of 1791, two notable addresses and one notable report on the organization of education were made. The Count de Mirabeau, a nobleman turned against his class and elected to the States-General as a representative of the Third Estate, made addresses on the "Organization of a Teaching

Body," and on the "Organization of a National *Lycée*." In the first he advocated the establishment of primary schools throughout France. In the second he proposed the establishment of colleges of literature in each department, with a National *Lycée* at Paris for higher (university) education, and to contain the essentials of a national normal school or teachers' college as well.

FIG. 157
COUNT DE MIRABEAU
(1749–91)

Mirabeau's proposals represent rather a transition in thinking from the old to the new, but the Report of Talleyrand (1791), former Bishop of Autun, now turned revolutionist, embodies the full culmination of revolutionary educational thought. Public instruction he termed "a power which embraces everything, from the games of infancy to the most imposing fêtes of the Nation." He definitely proposed the organization of a complete state system of public instruction for France, to consist of a primary school in every canton (community, district), open to the children of peasants and workmen — classes heretofore unprovided with education; a secondary school in every department (county); a series of special schools in the chief French cities, to prepare for the professions; and a National Institute, or University, to be located at Paris. Inspired by Montesquieu's principle that "the laws of education ought to be relative to the principles of government," Talleyrand proposed a bill designed to give effect to the provisions of the Constitution of 1791 relating to education (p. 501), and to provide an education for the people of France who were now to exercise, through elected representatives, the legislative power for France. Instruction he held to be the necessary counterpoise of liberty, and every citizen was to be taught to know, obey, love, and protect the new constitution. Political, social, and personal morality were to take the place of religion in the cantonal schools, which were to be free and equally open to

FIG. 158. TALLEYRAND
(1758–1838)

all. As the Constituent Assembly was succeeded by the newly elected Legislative Assembly within three weeks after Talleyrand submitted his Report, no action was taken on his bill.

2. *The Legislative Assembly* (October 1, 1791, to September 21, 1792). This new legislative body was far more radical in character than its predecessor, and far more radical than was the sentiment of France at the time. Among other acts it abolished (1792) the old universities and confiscated (1793) their property to the State. To it was submitted (April 20–21, 1792) by the mathematician, philosopher, and revolutionist, Marquis de Condorcet,[1] on behalf of the Committee on Public Instruction and as a measure of reconstruction, a Report and draft of a Law for the organization of a complete democratic system of public instruction for France (R. 256). It provided for the organizing of a primary school for every four hundred inhabitants, in which each individual was "to be taught to direct his own conduct and to enjoy the plenitude of his own rights," and where principles would be taught, calculated to "insure the perpetuation of liberty and equality." The bill also provided, for the first time, for the organization of higher primary schools in the principal towns; colleges (secondary schools) in the chief cities (one for every four thousand inhabitants); a higher school for each "department"; *Lycées*, or institutions of still higher learning, at nine places in France; and a National Society of Sciences and Arts to crown the educational system at Paris. The national system of education he proposed was to be equally open to women, as well as men, and to be gratuitous throughout. Teachers for each grade of school were to be prepared in the school next above. Sunday lectures for workingmen and peasants were to be given by teachers everywhere. Public morality, political intelligence, human progress, and the preservation of liberty and equality were the aims of the instruction. The necessity for education in a constitutional government he saw clearly. "A free constitution," he writes.

FIG. 159. CONDORCET (1743–94)

[1] Condorcet had not been a member of the Constituent Assembly, but for some years had been deeply interested in the idea of public education, and had published five articles on the subject. His Report was a sort of embodiment, in legal form of his previous thinking on the question.

"which should not be correspondent to the universal instruction of citizens, would come to destruction after a few conflicts, and would degenerate into one of those forms of government which cannot preserve the peace among an ignorant and corrupt people." Anarchy or despotism he held to be the future for peoples who become free without being enlightened. He held it to be a fundamental principle that:

> The order of nature includes no distinctions in society beyond those of education and wealth. To establish among citizens an equality in fact, and to realize the equality confirmed by law, ought to be the primary object of national instruction.

The bill proposed by Condorcet, while too ambitious for the France of his day, was thoroughly sound as a democratic theory of education, and an accurate prediction of what the nineteenth century brought generally into existence. Condorcet's Report was discussed, but not acted upon.

3. *The National Convention* (September 21, 1792, to October 26, 1795). The Convention was also a radical body, deeply interested in the creation of a system of state schools for the people of France. To higher education there was for a time marked opposition, though later in its history the Convention erected a number of important higher technical institutions and schools, among the most important of which was the Institute of France. There was also in the Convention marked opposition to all forms of clerical control of schools. The schools of the Brothers of the Christian Schools were suppressed by it, in 1792, and all secular and endowed schools and colleges were abolished and their property confiscated, in 1793. The complete supremacy of the State in

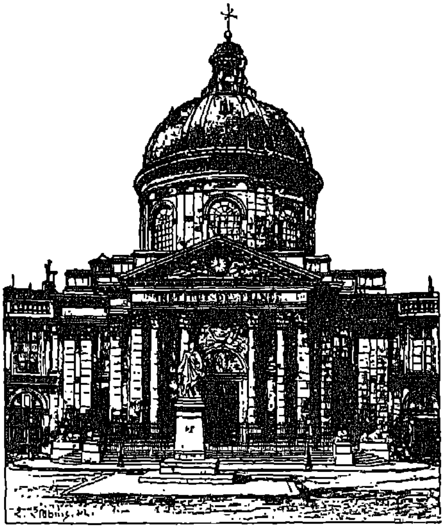

FIG. 160. THE INSTITUTE OF FRANCE
Founded by Article 298 of the Constitution of Year III (1793)

all educational matters was now asserted. Great enthusiasm was manifested for the organization of state primary schools, which were ordered established in 1793 (R. 258 a), and in these:

Children of all classes were to receive that first education, physical, moral, and intellectual, the best adapted to develop in them republican manners, patriotism, and the love of labor, and to render them worthy of liberty and equality.

The course of instruction was to include: "to speak, read, and write correctly the French language; the geography of France; the rights and duties of men and citizens;[1] the first notions of natural and familiar objects; the use of numbers, the compass, the level, the system of weights and measures, the mechanical powers, and the measurement of time. They are to be taken into the fields and the workshops where they may see agricultural and mechanical operations going on, and take part in the same so far as their age will allow."

What a change from the course of instruction in the religious schools just preceding this period!

A multiplicity of reports, bills, and decrees, often more or less contradictory but still embodying ideas advanced by Condorcet and Talleyrand, now appeared. Whereas the preceding legislative bodies had considered the subject carefully, but without taking action, the Convention now acted. The nation, though, was so engrossed by the internal chaos and foreign aggression that there was neither time nor funds to carry the decrees into effect.

FIG. 161. LAKANAL (1762–1845)

The most extreme proposal of the period was the bill of Lepelletier le Saint-Fargeau to create a national system of education modeled closely after that of ancient Sparta. The best of the proposals probably was the Lakanal Law, of November 17, 1794, which ordered a school for every one thousand inhabitants, with special divisions for boys and girls, and which provided for instruction in:

1. Reading and writing the French language.
2. The Declaration of the Rights of Man, and the Constitution.
3. Lessons on republican morals.

[1] All the educational aims of the past were now relegated to a second place, and man became a political animal, "brought into the world to know, to love, and to obey the Constitution." The *Declaration of the Rights of Man* became the new Catechism of childhood.

4. The rules of simple calculation and surveying.
5. Lessons in geography and the phenomena of nature.
6. Lessons on heroic actions, and songs of triumph.

Lakanal also carefully prescribed the method of instruction, and advocated the founding of a national normal school (Latin *norma;* a rule), which idea the Convention adopted in 1794, the school opening [1] in January, 1795. Supplementing this was the law of February 25, 1795, ordering central or higher schools established to replace the former colleges,[2] one for every three hundred thousand of the population, which were to offer instruction from twelve to eighteen. The course was to include:

12 to 14 — Drawing, natural history, ancient and living languages.
14 to 16 — Mathematics, natural philosophy, experimental chemistry.
16 to 18 — Grammar, literature, history, legislation.

Organized on a soviet principle, each professor declared the equal of every other, and lacking any effective administration or discipline, these institutions soon fell into disrepute and were displaced when Napoleon reorganized secondary education in France.

The law of October 25, 1795, closed the work of the Convention. This made less important provisions for primary education (R. 258 b) than had preceding bills, but was the only permanent contribution of this period to the organization of primary schools. It placed greater emphasis than had the legislative Assembly on the creation of secondary and higher institutions (R. 258 a), of more value to the bourgeois class. This bill of 1795 represents a reaction from the extreme republican ideas of a few years earlier, and the triumph of the conservative middle-class elements in the nation over the radical republican elements previously in control.

The Convention also, in the latter part of its history, created a number of higher technical institutions of importance, which

[1] This was created on a grand and visionary scale. Its purpose was to supply professors for the higher institutions. It opened with a large attendance, and lectures on mathematics, science, politics, and languages were given by the most eminent scholars of the time. A normal school, though, it hardly was, and in 1795 it closed — a virtual failure. In 1808 Napoleon re-created it, on a less pretentious and a more useful scale, and since then it has continued and rendered useful service as a training-school for teachers for the higher secondary schools of France.

[2] A total of 105 of these Central Schools were to be established, five in Paris, and one in each of the one hundred chief towns in the departments. By 1796 there were 40, by 1797 there were 52, by 1798 there were 59, by 1799 there were 86, and by 1800 there were 91 such schools in existence. This, times considered, was a remarkable development.

were expressive alike of the French interest in scientific subjects which arose during the latter part of the eighteenth century, and of the new French military needs. Many of these institutions have persisted to the present, so well have they answered the scientific interests and needs of the nation. A mere list of the institutions created is all that need be given. These were:

Museum or Conservatory of Arts (Jan. 16, 1794).
Conservatory of Arts and Trades (Oct. 10, 1794).
New medical schools (*Schools of Health*) ordered (Dec. 4, 1794).
Museum of Natural History (Dec. 11, 1794).
Central Schools to succeed the former Colleges (secondary schools) (Feb. 25, 1795).
School of Living Oriental Languages (March 30, 1795).
Veterinary Schools (April 21, 1795).
Course in Archæology, National Library (June 8, 1795).
Bureau of Longitude (June 29, 1795).
Conservatory of Music (Aug. 3, 1795).
The National Library (Oct. 17, 1795).
Museum of Archæological Monuments (Oct. 20, 1795).
Polytechnic Schools (R. 257); School of Civil Engineering; School of Hydrographic Engineers; and School of Mining (Oct. 22, 1795).

The Convention also adopted the metric system of weights and measures; enacted laws under which the peasants could acquire title to the lands they had tilled for so long; and began the unification of the laws of the different parts of the country into a single set, which later culminated in the *Code Napoléon.*

4. *The Directory* (1795–99) *and the Consulate* (1799–1804). The Revolution had by this time largely spent itself, the Directory followed, and in 1799 Napoleon became First Consul and for the next sixteen years was master of France. The Law of 1795 for primary schools (R. 258 b) was but feebly administered under the Directory, as foreign wars absorbed the energies and resources of the Government. Napoleon's chief educational interest, too, was in opening up opportunities for talent to rise, in encouraging scientific work and higher specialized institutions, and in developing schools of a type that would support the kind of government he had imposed upon France. The secondary and higher schools he established and promoted cost him money at a time when money was badly needed for national defense, and primary education was accordingly neglected during the time he directed the destinies of the nation. His educational organizations and work we shall refer to again in a later chapter.

The Revolutionary enthusiasts had stated clearly their theory

of republican education, but had failed to establish a permanent state school system according to their plans. This now became the work of the nineteenth century. In the meantime, in the new United States of America the same ideas were taking shape and finding expression, and to the developments there we next turn.

III. THE NEW STATE THEORY IN AMERICA

Waning of the old religious interest. As early as 1647 Rhode Island Colony had enacted the first law providing for freedom of religious worship ever enacted by an English-speaking people, and two years later Maryland enacted a similar law. Though the Maryland law was later repealed, and a rigid Church-of-England rule established there, these laws were indicative of the new spirit arising in the New World. By the beginning of the eighteenth century a change in attitude toward the old problem of personal salvation had become evident. Frontier conditions; the gradual rise of a civil as opposed to a religious form of town government; the rising interests in trade and shipping; the beginnings of the breakdown of the old aristocratic traditions and customs transplanted from Europe; the rising individualism in both Europe and America — these all helped to weaken the hold on the people of the old religious doctrines.

By 1750 the change in religious thinking in the American Colonies had become quite marked.[1] Especially was this change evidenced in the dying-out of the old religious fervor and intolerance, and the breaking-up of the old religious solidarity. While most of the Colonies continued to maintain an "established Church," other sects had to be admitted to the Colony and given freedom of worship. The Puritan monopoly in New England was broken, as was also that of the Anglican faith in the central Colonies. The day of the monopoly of any sect in a Colony was over. New secular interests began to take the place of religion as the chief topic of thought and conversation, and secular books began to dispute the earlier predominance of the Bible. A few colonial newspapers had begun (seven by 1750), and these became expressive of the new colony interests.

Changing character of the schools. These changes in attitude toward the old religious problems materially affected both the

[1] "The commercial depression of 1740 fell upon a generation of New Englanders whose minds no longer dwelt preëminently upon religious matters, but who were, on the contrary, preëminently commercial in their interests." (Green, M. L., *Development of Religious Liberty in Connecticut*, p. 226.)

support and the character of the education provided in the Colonies. The Law of 1647, requiring the maintenance of the Latin grammar schools, had been found to be increasingly difficult of enforcement, not only in Massachusetts, but in all the other New England Colonies which had followed the Massachusetts example. With the changing attitude of the people, which had become clearly manifest by 1750, the demand for relief from the maintenance of this school in favor of a more practical and less aristocratic type of higher school, if higher school were needed at all, became marked. By the close of the colonial period the new American Academy (p. 463), with its more practical studies, had begun to supersede the old Latin grammar school.

The elementary school experienced something of the same difficulties. Many of the parochial schools died out, while others declined in character and importance. In Church-of-England Colonies all elementary education was left to private initiative and philanthropic and religious effort (p. 373). In the southern Colonies the classes in society and the character of the plantation life made common schools impossible, and the feeling of any need for elementary schools almost entirely died out. In New England the eighteenth century was a continual struggle on the one hand to prevent the original religious town school from disappearing and on the other to establish in its place a series of scattered and inferior district schools, while either church or town support and tuition fees became ever harder to obtain. Among other changes of importance the reading school and the writing school now became definitely united, in all the smaller places and in the rural districts, as a measure of economy, to form the American school of the "3 Rs." New textbooks, too, containing less of the gloomily religious than the *New England Primer*, and secular rather than religious in character (p. 443), appeared after 1750 and began to be used in the schools. After 1750, too, it was increasingly evident that the old religious enthusiasm for schools had largely died out; that European traditions and ways and types of schools no longer completely satisfied; and that the period of the transplanting of European educational ideas and schools and types of instruction was coming to an end. Instead, the evolution of a public or state school out of the original religious school, and the beginnings of the evolution of distinctly American types of schools, better adapted to American needs, became increasingly evident in the Colonies as the eighteenth century progressed.

Rise of the civil or state school. As has been stated earlier, the school everywhere in America arose as a child of the Church. In the Middle Colonies, where the parochial-school conception of education was the prevailing type, the school remained under church control until after the foundation of our national government. In New England, though — and the New England evolution in time became the prevailing American practice — the school passed through a very interesting development during colonial times.

As we have seen (p. 360), each little New England town was originally established as a little religious republic, with the Church in complete control. The governing authorities for church and civil affairs were much the same. When acting as church officers they were known as Elders and Deacons; when acting as civil or town officers they were known as Selectmen. The State, as represented in the colony legislature or the town meeting, was clearly the servant of the Church, and existed in large part for religious ends. It was the State acting as the servant of the Church which enacted the Massachusetts laws of 1642 and 1647 (Rs. 190, 191), requiring the towns to maintain schools for religious ends. Now, so close was the connection between the religious town, which controlled church affairs, and the civil town, which looked after roads, fences, taxes, and defense — the constituency of both being one and the same, and the meetings of both being held at first in the meeting-house — that when the schools were established the colony legislature placed them under the civil — as involving taxes, and being a public service — rather than under the religious town. The interests of one were the interests of both, and, being the same in constituency and territorial boundaries, there seemed no occasion for friction or fear. From this religious beginning the civil school and the civil school-town and school-township, with all their elaborate school administrative machinery, were later evolved.

The erection of a town hall, separate from the meeting-house, was a first step in the process. School affairs now were discussed at the town hall, instead of in the church. The town authorities now appointed committees to locate and build schoolhouses, select and certificate the teachers, and visit and examine the school. Next a regular town school committee was provided for. To this was given the management of the town school, and town taxes, instead of church taxes, were voted for buildings and maintenance. The minister continued to certificate the grammar-school master

until the close of the colonial period, but the power to certificate the elementary-school teachers passed to the town authorities early in the eighteenth century. By the close of the century all that the minister — as the only surviving representative of church control — had left to him was the right to accompany the town authorities in the visitation of schools. Thus gradually but certainly did the earlier religious school in America pass out from under the control of the Church and come under the control of the State. When our national government and the different state governments were established, the States were ready to accept, in principle at least, the theory gradually worked out in New England that schools are state institutions, and should be under the control of the State.

The early state constitutions and laws. In framing the Federal Constitution, in 1787, education, then being regarded largely as a local matter, was left to the States to handle as they saw fit; so we turn to the early state constitutions and laws to see how far the new American States had, by the close of the eighteenth century, advanced toward the conception of education as an affair of the State.

During the period from the Declaration of Independence to the close of the eighteenth century (1776–1800), all the States, except Rhode Island and Connecticut, which considered their colonial charters as satisfactory, formulated and adopted new state constitutions. Three new States — Vermont, Kentucky, and Tennessee — were admitted to the Union before 1800, and these framed constitutions also. Of the sixteen States forming the Union by 1800, seven had incorporated into their constitutions a clause setting forth the State's duty in the matter of education (**R. 259**). As in the earlier period of American education, it was Calvinistic New England which incorporated into the constitutions the best provisions regarding learning. In the parochial-school central Colonies the mention was much less emphatic, while the old Anglican-Church Colonies and the new States of Kentucky and Tennessee remained silent on the subject. Massachusetts, Vermont, and New Hampshire, in particular, incorporated strong sections directing the encouragement of learning and virtue, the protection and fostering of school societies, and the establishment of schools. The Massachusetts provision, afterwards copied by New Hampshire, is so explicit in the matter of state duty that it is worth quoting in full.

Chap. V, Sec. 2. Wisdom and knowledge, as well as virtue, diffused generally among the body of the people, being necessary for the preservation of their rights and liberties; and as these depend on spreading the opportunities and advantages of education in the various parts of the country, and among the different orders of the people, it shall be the duty of the legislatures and magistrates, in all future periods of this Commonwealth, to cherish the interests of literature and the sciences, and all seminaries of them; especially the university at Cambridge, public schools, and grammar schools in the towns; to encourage private societies and public institutions, by rewards and immunities, for the promotion of agriculture, arts, sciences, commerce, trades, manufactures, and a natural history of the country; to countenance and inculcate the principles of humanity and general benevolence, public and private charity, industry and frugality, honesty and punctuality in their dealings; sincerity, good humor, and all social affections and generous sentiments among the people.

Though the Federal Constitution made no provision for education or aid to schools, when the Congress of the Confederation, in 1787, adopted the Ordinance for the organization and government of the Northwest Territory, out of which the States of Ohio, Indiana, Illinois, Michigan, and Wisconsin were later carved, it prefixed to this Ordinance the following significant provision:

Art. 3. Religion, morality, and knowledge being necessary to good government and the happiness of mankind, schools and the means of education shall forever be encouraged [in the States to be formed from this Territory].

By the time the first State formed from this western territory was ready to be admitted to the Union (Ohio, 1802), the theory that education is a function of the State had come to be so thoroughly accepted, in principle at least, by the new American people that Congress now began a policy, ever since continued, of aiding each new State to establish and maintain a state system of schools. To this end Congress gave the new State for this purpose a generous endowment of national land, and in addition three townships of land to endow a state university. We also find that the constitutions of the first States created from this new Northwest Territory (Ohio, 1802; Indiana, 1816[1]) contain for the time good provisions relating to public education. The Ohio provisions (R. 260) are noteworthy for the strong stand for religious freedom and against

[1] Prominent in the Indiana constitutional convention of 1816 were a number of Frenchmen of bearing and ability, then residing in the old territorial capital — Vincennes. How much they influenced the statement of the article on education is not known, but it reads as though French revolutionary ideas had been influential in shaping it.

any discrimination in the schools between rich and poor, while the Indiana provisions (R. 261) are marked for their broad and generous conception of the scope and purpose of a state system of public instruction.

Many of the older States enacted general state school laws early in their history (R. 262). Connecticut continued the general school laws of 1700, 1712, and 1714 unchanged, and in 1795 added $1,200, 000, derived from land sales, to a permanent state school endowment fund, created as early as 1750. Vermont enacted a general school law in 1782. Massachusetts and New Hampshire enacted new general school laws, in 1789, which restated and legalized the school development of the preceding hundred and fifty years. All these required the maintenance of schools by the towns for a definite term each year, ordered taxation, and fixed the school studies required by the State. New York, in 1784, created an administrative organization, known as the University of the State of New York, to supervise secondary and higher education throughout the State — an institution clearly modeled after the centralizing ideas of Condorcet, Rolland, and Diderot (p. 477), and very similar to the ideas proposed by Talleyrand and Condorcet and later (1808) embodied in the University of France by Napoleon. In 1795 New York also provided for a state system of elementary education. Georgia created a state system of academies, as early as 1783. Delaware created a state school fund, in 1796, and Virginia enacted an optional school law the same year. North Carolina created a state university, as early as 1795.

The new political motive for schools. We thus see, in the new United States, the theories of the French revolutionary thinkers and statesmen actually being realized in practice. The constitutional provisions, and even the legislation, often were in advance of what the States, impoverished as they were by the War of Independence, could at once carry out, but they mark the evolution in America of a clearly defined state theory as to education, and the recognition of a need for general education in a government whose actions were so largely influenced by the force of public opinion. The Federal Constitution had extended the right to vote for national officers to all, and the older States soon began to remove their earlier property qualifications for voting and to extend general manhood suffrage to all citizens.

This new development in government by the people, which

meant the passing of the rule of a propertied and educated class and the establishment of a real democracy, caused the leading American statesmen to turn early to general education as a necessity for republican safety. In his Farewell Address to the American people, written in 1796, Washington said:

> Promote, then, as an object of primary importance, institutions for the general diffusion of knowledge. In proportion as the structure of a government gives force to public opinion, it is essential that public opinion should be enlightened.

Jefferson spent the years 1784 to 1789 in Paris, and became a great propagandist in America for French political ideas. Writing to James Madison from France, as early as 1787, he said:

> Above all things, I hope the education of the common people will be attended to; convinced that on this good sense we may rely with the most security for the preservation of a due sense of liberty.

In 1779, then, as a member of the Virginia legislature, Jefferson tried unsuccessfully to secure the passage of a comprehensive bill, after the plan of the French Revolutionary proposals, for the organization of a complete system of public education for Virginia. The essential features of the proposed bill (R. 263) were that every county should be laid off into school districts, five to six miles square, to be known as "hundreds," and in each of these an elementary school was to be established to which any citizen could send his children free of charge for three years, and as much longer as he was willing to pay tuition; that the leading pupil in each school was to be selected annually and sent to one of twenty grammar (secondary) schools to be established and maintained at various points in the State; after two years the leaders in each of these schools were to be selected and further educated free for six years, the less promising being sent home; and at the completion of the grammar-school course, the upper half of the pupils were to be given three years more of free education at the State College of William and

FIG. 162. THOMAS JEFFERSON (1743–1826)

Mary, and the other half were to be employed as teachers for the schools of the State.[1]

Though the scheme failed of approval, Jefferson never lost interest in the education of the people for intelligent participation in the functions of government. Writing from Monticello to Colonel Yancey, in 1816, after his retirement from the presidency, he wrote:

> If a nation expects to be ignorant and free in a state of civilization it expects what never was and never will be. . . . There is no safe deposit (for the functions of government) but with the people themselves; nor can they be safe with them without information.

In 1819 the founding of the University of Virginia crowned Jefferson's efforts for education by the State. This institution, the Declaration of Independence, and the statute for religious freedom in Virginia stand to-day as the three enduring monuments to his memory.[2]

Other of the early American statesmen expressed similar views as to the importance of general education by the State. John Jay, first Chief Justice of the United States, in a letter to his friend, Dr. Benjamin Rush, wrote:

> I consider knowledge to be the soul of a Republic, and as the weak and the wicked are generally in alliance, as much care should be taken to diminish the number of the former as of the latter. Education is the way to do this, and nothing should be left undone to afford all ranks of people the means of obtaining a proper degree of it at a cheap and easy rate.

James Madison, fourth President of the United States, wrote:

> A satisfactory plan for primary education is certainly a vital desideratum in our republics.
>
> A popular government without popular information or the means of acquiring it is but a prologue to a farce or a tragedy, or, perhaps, both. Knowledge will forever govern ignorance; and a people who mean to be their own governors must arm themselves with the power which knowledge gives.

John Adams, with true New England thoroughness, expressed the new motive for education still more forcibly when he wrote:

[1] For the original Bill of 1779 in full, in the original spelling, see the *Biennial Report of the Superintendent of Public Instruction for Virginia*, 1900–01, pp. lxx–lxxv.

[2] Though Jefferson had been Governor of Virginia during the Revolutionary War, had repeatedly served in the Virginia legislature and in Congress; and had twice been President of the United States, he counted all these as of less importance than the three services mentioned, and in preparing the inscription to be placed on his tomb he included only these three.

The instruction of the people in every kind of knowledge that can be of use to them in the practice of their moral duties as men, citizens, and Christians, and of their political and civil duties as members of society and freemen, ought to be the care of the public, and of all who have any share in the conduct of its affairs, in a manner that never yet has been practiced in any age or nation. The education here intended is not merely that of the children of the rich and noble, but of every rank and class of people, down to the lowest and poorest. It is not too much to say that schools for the education of all should be placed at convenient distances and maintained at the public expense. The revenues of the State would be applied infinitely better, more charitably, wisely, usefully, and therefore politically in this way than even in maintaining the poor. This would be the best way of preventing the existence of the poor. . . .

Laws for the liberal education of youth, especially of the lower classes of people, are so extremely wise and useful that, to a humane and generous mind, no expense for this purpose would be thought extravagant.

Having founded, as Lincoln so well said later at Gettysburg, "on this continent a new nation, conceived in liberty, and dedicated to the proposition that all men are created equal," and having built a constitutional form of government based on that equality, it in time became evident to those who thought at all on the question that that liberty and political equality could not be preserved without the general education of all. A new motive for education was thus created and gradually formulated in the United States, as well as in revolutionary France, and the nature of the school instruction of the youth of the State came in time to be colored through and through by this new political motive. The necessary schools, though, did not come at once. On the contrary, the struggle to establish these necessary schools it will be our purpose to trace in subsequent chapters, but before doing so we wish first to point out how the rise of a political theory for education led to the development of a theory as to the nature of the educational process which exercised a far-reaching influence on all subsequent evolution of schools and teaching.

QUESTIONS FOR DISCUSSION

1. What do the proposals of La Chalotais, Rolland, and Turgot indicate as to the degree of unification of France attained by the time they wrote?
2. What new subjects did Diderot add to the religious elementary school of his time?
3. Show how the decline in efficiency of the Jesuits was a stimulating force for the evolution of a system of public instruction in France.

4. Show the statesman-like character of the proposals made in the legislative assemblies of France for the organization of national education.
5. Assuming that there had been peace, and funds to carry out the law (1793) of the Convention for primary instruction, what other difficulties would have been met that would have been hard to surmount?
6. Compare the Lakanal school with an American elementary school of a half-century ago.
7. Show that many of the important educational reforms of Napoleon were foreshadowed in the National Convention.
8. Was Napoleon right in his attitude toward education and schools?
9. Explain the lack of success of the revolutionary theorists in the establishment of a state system of education.
10. Explain why the breakdown of the old religious intolerance came earlier in the American Colonies than in the Old World.
11. Show the great value of the Laws of 1642 and 1647 in holding New England true to the maintenance of schools during the period of decline.
12. What might have been the result in America had the New England Colonies established the school as a parish institution, as did the central Colonies?
13. Analyze the Massachusetts constitutional provision for education, and show what it provided for.
14. Show the similarity of the University of the State of New York to the proposals for governmental control in France.
15. Explain why the French revolutionary ideas as to education were realized so easily in the new United States, whereas France did not realize them until well into the nineteenth century.
16. Compare Jefferson's proposed law with the proposals of Talleyrand for France.
17. Just what type of educational institutions did Washington have in mind in the quotation from his Farewell Address? John Jay? John Adams?

SELECTED READINGS

In the accompanying *Book of Readings* the following selections are reproduced:

254. Dabney: The Far-Reaching Influence of Rousseau's Writings.
255. La Chalotais: Essay on National Education.
256. Condorcet: Outline of a Plan for Organizing Public Instruction in France.
257. Report: Founding of the Polytechnic School at Paris.
258. Barnard: Work of the National Convention in France.
    (*a*) Various legislative proposals.
    (*b*) The Law of 1795 organizing Primary Instruction.
259. American States: Early Constitutional Provisions relating to Education.
260. Ohio: Educational Provisions of First Constitution.
261. Indiana: Educational Provisions of First Constitution.
262. American States: Early School Legislation in.
263. Jefferson: Plan for Organizing Education in Virginia.

QUESTIONS ON THE READINGS

1. Explain the conditions of society under which the emotional writings of a man of the type of Rousseau could have made such a deep impression (254) on the nation.

2. In how far do nations to-day accept the theories of La Chalotais (255)?
3. What type of administrative organization was proposed by Condorcet (256)?
4. What does the founding of the Polytechnic School (257) indicate as to the French interest in science?
5. What real progress was made by the National Convention (258 a), and to what degree did it fail?
6. Explain the type of school system proposed and the conception of education lying behind the early constitutional provisions (259) for education in each of the American States.
7. In what respects were the educational provisions of the first Ohio constitution (260) remarkable?
8. In what respects were the educational provisions of the first Indiana constitution (261) remarkable?
9. Characterize the early school legislation reproduced (262).
10. Just what type of educational system did Jefferson propose to organize in Virginia (263)?

SUPPLEMENTARY REFERENCES

Barnard, Henry. *American Journal of Education*, vol. 22, pp. 651–64.
Compayré, G. *History of Pedagogy*, chapters 15, 16, 17.
Cubberley, E. P. *Public Education in the United States*, chapter 3.

CHAPTER XXI

A NEW THEORY AND SUBJECT-MATTER FOR THE ELEMENTARY SCHOOL

In chapters XVII and XVIII we traced the development of educational theory up to the point where John Locke left it (p. 436) after outlining his social and disciplinary theory for the educational process, and in the chapter preceding this one we traced the evolution of a new state theory as to the purpose of education to replace the old religious theory. The new theory as to state control, and the erection of a citizenship purpose for education, made it both possible and desirable that the instruction in the school, and particularly in the vernacular school, should be recast, both in method and content, to bring the school into harmony with the new secular purpose. In consequence, an important reorganization of the vernacular school now took place, and to this transformation of the elementary school we next turn.

I. THE NEW THEORY STATED

Iconoclastic nature of the work of Rousseau. The inspirer of the new theory as to the purpose of education was none other than the French-Swiss iconoclast and political writer, Jean-Jacques Rousseau, whose work as a political theorist we have previously described. Happening to take up the educational problem as a phase of his activity against the political and social and ecclesiastical conditions of his age, drawing freely on Locke's *Thoughts* for ideas, and inspired by a feeling that so corrupt and debased was his age that if he rejected everything accepted by it and adopted the opposite he would reach the truth, Rousseau restated his political theories as to the control of man by society and his ideas as to a life according to "nature" in a book in which he described the education, from birth to manhood, of an imaginary boy, Émile, and his future wife, Sophie. In the first sentence of the book Rousseau sets forth his fundamental thesis:

All is good as it comes from the hand of the Creator; all degenerates under the hands of man. He forces one country to produce the fruits of another, one tree to bear that of another. He confounds climates, elements, and seasons; he mutilates his dog, his horse, his slave; turns

everything topsy-turvy, disfigures everything. He will have nothing as nature made it, not even man himself; he must be trained like a managed horse, trimmed like a tree in a garden.

His book, published in 1762, in no sense outlined a workable system of education. Instead, in charming literary style, with much sophistry, many paradoxes, numerous irrelevant digressions upon topics having no relation to education, and in no systematic order, Rousseau presented his ideas as to the nature and purpose of education. Emphasizing the importance of the natural development of the child (R. 264 a), he contended that the three great teachers of man were nature, man, and experience, and that the second and third tended to destroy the value of the first (R. 264 b); that the child should be handled in a new way, and that the most important item in his training up to twelve years of age was to do nothing (R. 264 c, d) so that nature might develop his character properly (R. 264 e); and that from twelve to fifteen his education should be largely from things and nature, and not from books (R. 264 f). As the outcome of such an education Rousseau produced a boy who, from his point of view, would at eighteen still be natural (R. 264 g) and unspoiled by the social life about him, which, after all, he felt was soon to pass away (R. 264 i). The old religious instruction he would completely supersede (R. 264 h).

FIG. 163. THE ROUSSEAU MONUMENT AT GENEVA

So depraved was the age, and so wretched were the educational practices of his time, that, in spite of the malevolent impulse which was his driving force, what he wrote actually contained many excellent ideas, pointed the way to better practices, and became an inspiration for others who, unlike Rousseau, were deeply interested in problems of education and child welfare. One cannot study Rousseau's writings as a whole, see him in his eighteenth-century setting, know of his personal life, and not feel that the far-reaching reforms produced by his *Émile* are among the strangest facts in history.

The valuable elements in Rousseau's work. Amid his glitter-

ing generalities and striking paradoxes Rousseau did, however, set forth certain important ideas as to the proper education of children. Popularizing the best ideas of the Englishman, Locke (p. 433), Rousseau may be said to have given currency to certain conceptions as to the education of children which, in the hands of others, brought about great educational changes. Briefly stated, these were:

1. The replacement of authority by reason and investigation.
2. That education should be adapted to the gradually unfolding capacities of the child.
3. That each age in the life of a child has activities which are normal to that age, and that education should seek for and follow these.
4. That physical activity and health are of first importance.
5. That education, and especially elementary education, should take place through the senses, rather than through the memory.
6. That the emphasis placed on the memory in education is fundamentally wrong, dwarfing the judgment and reason of the child.
7. That catechetical and Jesuitical types of education should be abandoned.
8. That the study of theological subtleties is unsuited to child needs or child capacity.
9. That the natural interests, curiosity, and activities of children should be utilized in their education.
10. That the normal activities of children call for expression, and that the best means of utilizing these activities are conversation, writing, drawing, music, and play.
11. That education should no longer be exclusively literary and linguistic, but should be based on sense perception, expression, and reasoning.
12. That such education calls for instruction in the book of nature, with home geography and the investigation of elementary problems in science occupying a prominent place.
13. That the child be taught rather than the subject-matter; life here rather than hereafter; and the development of reason rather than the loading of the memory, were the proper objects of education.
14. That a many-sided education is necessary to reveal child possibilities; to correct the narrowing effect of specialized class education; and to prepare one for possible changes in fortune.

A new educational ideal presented. Rousseau's *Émile* presented a new ideal in education. According to his conception it was debasing that man should be educated to behave correctly in an artificial society, to follow blindly the doctrines of a faith, or to be an obedient subject of a king. Instead he conceived the function of education to be to evolve the natural powers, cultivate the human side, unfold the inborn capacities of every human being,

and to develop a reasoning individual, capable of intelligently directing his life under diverse conditions and in any form of society. A book setting forth such ideas naturally was revolutionary[1] in matters of education. It deeply influenced thinkers along these lines during the remaining years of the eighteenth century, and became the inspiring source of nineteenth-century reforms. As Rousseau's *Social Contract* became the political handbook of the French Revolutionists, so his *Émile* became the inspiration of a new theory as to the education of children.

Coming, as it did, at a time when political and ecclesiastical despotisms were fast breaking down in France, when new forces were striving for expression throughout Europe, and when new theories as to the functions of government were being set forth in the American Colonies and in France, it gave the needed inspiration for the evolution of a new theory of non-religious, universal, and democratic education which would prepare citizens for intelligent participation in the functions of a democratic State, and for a reorganization of the subject-matter of education itself. A new theory as to the educational purpose was soon to arise, and the whole nature of the educational process, in the hands of others, was soon to be transformed as a result of the fortunate conjunction of the iconoclastic and impractical discussion of education by Rousseau and the more practical work of English, French, and American political theorists and statesmen. Out of the fusing of these, modern educational theory arose.

II. GERMAN ATTEMPTS TO WORK OUT A NEW THEORY

Influence of the *Émile* in German lands. The *Émile* was widely read, not only in France, but throughout the continent of Europe as well. In German lands its publication coincided with the rising tide of nationalism — the "Period of Enlightenment"

[1] "As a man who sought after glory, and whose gloomy temper took umbrage at everything, Rousseau complained that his *Émile* did not obtain the same success as his other writings. He was truly hard to please! The anger of some, the ardent sympathy of others; on the one hand, the parliamentary decrees condemning the book and issuing a warrant for the author's arrest, the thunders of the Church, and the famous mandate of the Archbishop of Paris; on the other hand, the applause of the philosophers, of Clairant, Duclos, and d'Alembert, — what more, then, did he want? *Émile* was burned in Paris and Geneva, but it was read with passion; it was twice translated in London, an honor which no French work had received up to then. In truth never did a book make more noise and thrust itself so much on the attention of men. By its defects, no less than by its qualities, by the inspired and prophetic character of its style, as well as by the paradoxical audacity of its ideas, *Émile* swayed opinion and stirred up the more generous parts of the human soul." (Compayré, G., *Jean-Jacques Rousseau*, p. 100.)

— and the book was warmly welcomed by such (then young) men as Goethe, Schiller, Herder, Richter, Fichte, and Kant. It presented a new ideal of education and a new ideal for humanity, and its ideas harmonized well with those of the newly created aristocracy of worth which the young German enthusiasts were busily engaged in proclaiming for their native land. The ideal of the perfected individual, strong in the consciousness of his powers, now found expression in the new "classics of individualism" which marked the outburst of the best that German literature has ever produced. As Paulsen[1] well says:

> Rousseau exercised an immense influence on his times, and Germany was stirred perhaps even more deeply than France. In France Voltaire continued to be regarded as the great man of his time, whereas, in Germany, his place in the esteem of the younger generation had been taken by the enthusiast of Geneva. Kant, Herder, Goethe, Schiller, Fichte, all of them were roused by Rousseau to the inmost depths of their natures. He gave utterance to the passionate longing of their souls: to do away with the imitation of French courtly culture, by which Nature was suppressed and perverted in every way, to do away with the established political and social order, based on court society and class distinctions, which was felt to be lowering to man in his quality as a reasonable being, and to return to Nature, to simple and unsophisticated habits of life, or rather to find a way through Nature to a better civilisation, which would restore the natural values of life to their rightful place and would be compatible with truth and virtue, sincerity and probity of character.

The great German philosopher, Immanuel Kant (1724–1804), was so deeply stirred by the *Émile* that the regularity of his daily walks and the clearness of his thinking were disturbed by it. Goethe called the book "the teacher's Gospel." Schiller praised Rousseau as "a new Socrates, who of Christians wished to make men." Herder acclaimed Rousseau as a German, and his "divine work" as his guide. Jean-Paul Richter confessed himself indebted to Rousseau for the best ideas in his *Levana.* Lavater declared himself ready for a Reformation in education along the lines laid down by Rousseau.

Basedow and his work. Perhaps the most important practical influence exerted by the *Émile* in German lands came in the work of Johann Bernard Basedow and his followers. Basedow was a North German who had been educated in the *Gymnasium* at Hamburg, had studied in the theological faculty at Leipzig, had been a tutor in a nobleman's family, and had been a teacher in a

[1] Paulsen, Fr., *German Education, Past and Present*, p. 157.

Ritterakademie in Denmark and the *Gymnasium* at Altona. Deeply imbued with the new scientific spirit, in thorough revolt against the dominance of the Church in human lives, and incited to new efforts by his reading of the *Émile*, Basedow thought out a plan for a reform school which should put many of Rousseau's ideas into practice. In 1768 he issued his *Address to Philanthropists and Men of Property on Schools and Studies and their Influence on the Public Weal*, in which he appealed for funds to enable him to open a school to try out his ideas, and to enable him to prepare a new type of textbooks for the use of schools. He proposed in this appeal to organize a school which should be non-sectarian, and also advocated the creation of a National Council of Education to have charge of all public instruction. These were essentially the ideas of the French political reformers of the time. The appeal was widely scattered, awakened much enthusiasm, and subscriptions to assist him poured in from many sources.[1]

FIG. 164. BASEDOW (1723–90)

In 1774 Basedow published two works of more than ordinary importance. The first, a *Book of Method for Fathers and Mothers of Families and of Nations*, was a book for adults, and outlined a plan of education for both boys and girls. The keynotes were "following nature," "impartial religious instruction," children to be dealt with as children, learning through the senses, language instruction by a natural method, and much study of natural objects. The ideas were a combination of those of Bacon, Comenius, and Rousseau. The second book, in four volumes, and containing one hundred copper-plate illustrations, was the famous *Elementary Work* (*Elementarwerk mit Kupfern*) (R. 266), the first illustrated school textbook since the *Orbis Pictus* (1654) of Comenius. This work of Basedow's became, in German lands,

[1] Within three years Basedow had collected seven thousand *Reichsthaler*, subscriptions coming to him from such widely scattered sources as Joseph II of Austria, Empress Catherine of Russia, King Christian VII of Denmark, "the wealthy class in Basle," the Abbot of the monastery of Einsiedel in Switzerland, "the royal government of Osnabruck," the Grand Prince Paul, and others. Jews and Freemasons seem to have taken particular interest in his ideas. Freemason lodges in Hamburg, Leipzig, and Göttingen were among the generous contributors.

the *Orbis Pictus* of the eighteenth century. By means of its "natural methods" (**R. 265**) children were to be taught to read, both the vernacular and Latin, more easily and in less time than had been done before, and in addition were to be given a knowledge of morals, commerce, scientific subjects, and social usages by "an incomparable method," founded on experience in teaching children. The book enjoyed a wide circulation among the middle and upper classes in German lands.

Basedow's *Philanthropinum*. In 1774 Prince Leopold, of Dessau, a town in the duchy of Anhalt, in northern Germany, gave Basedow the use of two buildings and a garden, and twelve thousand thalers in money, with which to establish his long-heralded *Philanthropinum*, which was to be an educational institution of a new type. Great expectations were aroused, and a widespread interest in the new school awakened. Education according to nature, with a reformed, time-saving, natural method for the teaching of languages, were to be its central ideas. Children were to be treated as children, and not as adults. Powdered hair, gilded coats, swords, rouge, and hoops were to be discarded for short hair, clean faces, sailor jackets, and caps, while the natural plays of children and directed physical training were to be made a feature of the instruction. The languages were to be taught by conversational methods. Each child was to be taught a handicraft — turning, planing, and carpentering were provided — for both social and educational reasons. Instruction in real things — science, nature — was to take the place of instruction in words, and the vernacular was to be the language of instruction. The institution was to have the atmosphere of religion, but was not to be Catholic, Lutheran, Reformed, or Jewish, and was to be free from "theologizing distinctions." Latin, German, French, mathematics, a knowledge of nature (geography, physics, natural history), music, dancing, drawing, and physical training were the principal subjects of instruction. The children were divided into four classes, and the instruction for each, with the textbooks to be used, was outlined (**R. 265**).

The school opened with Basedow and three assistants as teachers, and two of Basedow's children and twelve others as pupils. Later the school came to have many boarding pupils, drawn from as far-distant points as Riga and Spain. In 1776 a public examination was held, to which many distinguished men were invited, and the work which Basedow's methods could produce was ex-

hibited. These methods seem to have been successful, judging from the rather full accounts which have been left us.[1] The school represented a new type of educational effort, and was frankly experimental in purpose. It was an attempt to apply, in practice, the main ideas of Rousseau's *Émile*. Basedow tried the plan of education outlined by Rousseau with his own daughter, whom he named Émilie.

FIG. 165
IMMANUEL KANT
(1724–1804)

As a promising experiment the school awakened widespread interest, and Basedow was supported by such thinkers of the time as Goethe and Kant. The year following the "Examination" Kant, then professor of philosophy at the University of Königsberg, contributed an article to the *Königsberg Gazette* explaining the importance of the experiment Basedow was making. Still later, in his university lectures *On Pedagogy*, he further stated the importance of such a new experiment, in the following words:

> It was imagined that experiments in education were not necessary; and that, whether any thing in it was good or bad, could be judged of by the reason. But this was a great mistake; experience shows very often that results are produced precisely the opposite to those which had been expected. We also see from experiment that one generation cannot work out a complete plan of education. The only experimental school which has made a beginning toward breaking the path was the Dessau institution. This praise must be given to it, in spite of the many faults which may be charged against it; faults which belong to all conclusions based upon such undertakings; and which make new experiments always necessary. It was the only school in which the teachers had the liberty to work after their own methods and plans, and where they stood in connection, not only with each other, but with men of learning throughout all Germany.

Basedow's influence, and followers. Basedow, though, was an impractical theorist, boastful and quarrelsome, vulgar and coarse, given to drunkenness and intemperate speech, and fond of making claims for his work which the results did not justify. In a few years he had been displaced as director, and in 1793 the *Philanthropinum* closed its doors. The school, nevertheless, was a very

[1] See Barnard's *American Journal of Education*, vol. v, pp. 487–520, for an account of the examinations and the institution.

important educational experiment, and Basedow's work for a time exerted a profound influence on German pedagogical thought He may be said to have raised instruction in the *Realien* in German lands to a place of distinct importance, and to have given a turn to such instruction which it has ever since retained.[1] The methods of instruction, too, worked out in arithmetic, geography, geometry, natural history, physics, and history were in many ways as revolutionary as those evolved by Pestalozzi later on in Switzerland. In his emphasis on scientific subject-matter Basedow surpassed Pestalozzi, but Pestalozzi possessed a clearer, intuitive insight into the nature and purpose of the educational process. The work of the two men furnishes an interesting basis for comparison (R. 271), and the work of each gave added importance to that of the other.

From Dessau an interest in pedagogical ideas and experiments spread over Europe, and particularly over German lands. Other institutions, modeled after the *Philanthropinum*, were founded in many places, and some of Basedow's followers [2] did as important work along certain lines as did Basedow himself. His followers were numerous, and of all degrees of worth. They urged acceptance of the new ideas of Rousseau as worked out and promulgated by Basedow; vigorously attacked the old schools, making converts here and there; and in a way helped to prepare northern German lands for the incoming, later, of the better-organized ideas of the German-Swiss reformer Pestalozzi, to whose work we next turn.

[1] "The pedagogical character of the *Real*-school was established by Basedow and his followers. Originally the plan was to provide for the middle classes what would be called nowadays manual training schools, in which the scientific principles underlying the various trades and business vocations should have a prominent place. These schools were to be one step removed from the trade schools for the lower classes. But under the influence of the Philanthropinists the *Real*-school was transformed into a modern humanistic school, and placed in competition with the humanistic *Gymnasium*." (Russell, J. E., *German Higher Schools*, pp. 65–66.)

[2] His two most important followers were Joachim Heinrich Campe (1746–1818), who succeeded Basedow at Dessau and later founded a Philanthropinum at Hamburg, and Christian Gotthilf Salzmann (1744–1811), who founded a school at Schnepfenthal, in Saxe-Gotha. Both these men had for a time been teachers with Basedow at Dessau. Campe translated Locke's *Thoughts* and Rousseau's *Émile* into German, wrote a number of books for children (chief among which was the famous *Robinson der Jünger*), and also prepared a number of treatises for teachers. Salzmann's school, opened in 1784 in the Thuringen forest, made much of gardening, agricultural work, animal study, home geography, nature study, gymnastics, and recreation, as well as book study. It was distinctively a small but high-grade experimental school, so successful that in 1884 it celebrated its one hundredth anniversary. A pupil in the school was Carl Ritter, the founder of modern geographical study.

III. THE WORK AND INFLUENCE OF PESTALOZZI

The inspiration of Pestalozzi. Among those most deeply influenced by Rousseau's *Émile* was a young German-Swiss by the name of Johann Heinrich Pestalozzi, who was born (1746) and brought up in the ancient city of Zurich. Inspired by Rousseau's writings he spent the early part of his life in trying to render service to the poor, and the latter part in working out for himself a theory and a method of instruction based on the natural development of the child. To Pestalozzi, more than to any one else, we owe the foundations of the modern secular vernacular elementary school, and in consequence his work is of commanding importance in the history of the development of educational practice.

Trying to educate his own child according to Rousseau's plan, he not only discovered its impracticability but also that the only way to improve on it was to study the children themselves. Accordingly he opened a school and home on his farm at Neuhof, in 1774. Here he took in fifty abandoned children, to whom he taught reading, writing, and arithmetic, gave them moral discourses, and trained them in gardening, farming, and cheese-making. It was an attempt to regenerate beggars by means of education, which Pestalozzi firmly believed could be done. At the end of two years he had spent all the money he and his wife possessed, and the school closed in failure — a blessing in disguise — though with Pestalozzi's faith in the power of education unshaken. Of this experiment he wrote: "For years I have lived in the midst of fifty little beggars, sharing in my poverty my bread with them, living like a beggar myself in order to teach beggars to live like men."

Turning next to writing, while continuing to farm, Pestalozzi now tried to express his faith in education in printed form. His *Leonard and Gertrude* (1781) was a wonderfully beautiful story of Swiss peasant life, and of the genius and sympathy and love of a woman amid degrading surroundings. From a wretched place the village of Bonnal, under Pestalozzi's pen, was transformed by the power of education.[1] The book was a great success from the

[1] "The picture shown in *Leonard and Gertrude* is very crude. Everywhere is visible the rough hand of the painter, a strong, untiring hand, painting an eternal image, of which this in paper and print is the merest sketch. . . . Read it and see how puerile it is, how too obvious are its moralities. Read it a second time, and note how earnest it is, how exact and accurate are its peasant scenes. Read it yet again, and recognize in it the outpouring of a rare soul, working, pleading, ready to be despised, for fellow souls." (J. P. Monroe, *The Educational Ideal*, p. 182.)

first, and for it Pestalozzi was made a "citizen" of the French Republic, along with Washington, Madison, Kosciusko, Wilberforce, and Tom Paine. He continued to farm and to think, though nearly starving, until 1798, when the opportunity for which he was really fitted came.

Pestalozzi's educational experiments. In 1798 "The Helvetic Republic" was proclaimed, an event which divided Pestalozzi's life into two parts. Up to this time he had been interested wholly in the philanthropic aspect of education, believing that the poor could be regenerated through education and labor. From this time on he interested himself in the teaching aspect of the problem, in the working-out and formulation of a teaching method based on the natural development of the child, and in training others to teach. Much to the disgust of the authorities of the new Swiss Government, citizen Pestalozzi applied for service as a schoolteacher. The opportunity to render such service soon came.

That autumn the French troops invaded Switzerland, and, in putting down the stubborn resistance of the three German cantons, shot down a large number of the people. Orphans to the number of 169 were left in the little town of Stanz, and citizen Pestalozzi was given charge of them. For six months he was father, mother, teacher, and nurse. Then, worn out himself, the orphanage was changed into a hospital. A little later he became a schoolmaster in Burgdorf; was dismissed; became a teacher in another school; and finally, in 1800, opened a school himself in an old castle there. He now drew about him other teachers interested in improving instruction, and in consequence could specialize the work. He provided separate teachers for drawing and singing, geography and history, language and arithmetic, and gymnastics. The year following the school was enlarged into a teachers' training-school, the government extending him aid in return for giving Swiss teachers one month of training as teachers in his school. Here he wrote and published *How Gertrude teaches her Children*, which explained his methods and forms his most important pedagogical work (**R.** 267); a *Guide for teaching Spelling and Reading;* and a *Book for Mothers*, devoted to a description of "object teaching." In 1803, the castle being needed by the government, Pestalozzi moved first to Munchenbuchsee, near Hofwyl, opening his Institute temporarily in an old convent there. For a few months, in 1804, he was associated with Emanuel von

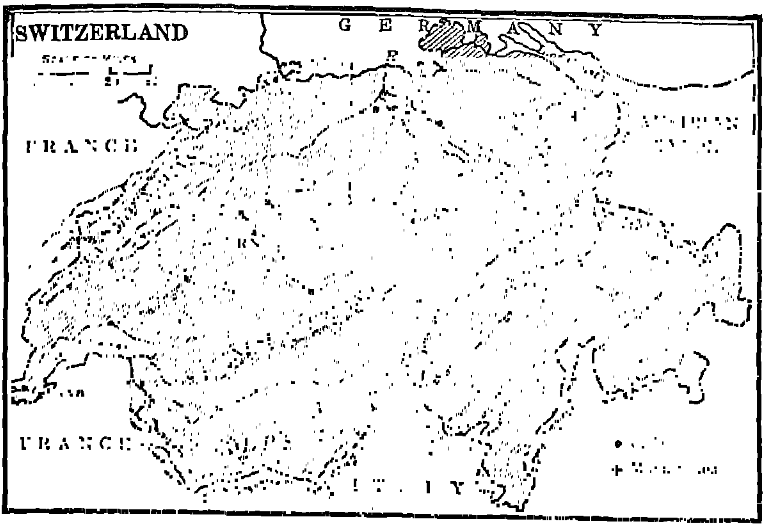

FIG. 166. THE SCENE OF PESTALOZZI'S LABORS

Fellenberg, at Hofwyl (p. 546), but in October, 1804, he moved to Yverdon, where he reëstablished the Institute, and where the next twenty years of his life were spent and his greatest success achieved.

The contribution of Pestalozzi. The great contribution of Pestalozzi lay in that, following the lead of Rousseau, he rejected the religious aim and the teaching of mere words and facts, which had characterized all elementary education up to near the close of the eighteenth century, and tried instead to reduce the educational process to a well-organized routine, based on the natural and orderly development of the instincts, capacities, and powers of the growing child. Taking Rousseau's idea of a return to nature, he tried to apply it to the education of children. This led to his rejection of what he called the "empty chattering of mere words" and "outward show" in the instruction in reading and the catechism, and the introduction in their place of real studies, based on observation, experimentation, and reasoning. "Sense impression" became his watchword.[1] As he expressed it, he

[1] "When I now look back and ask myself: What have I specially done for the very being of education, I find I have fixed the highest supreme principle of instruction in the recognition of *sense impression as the absolute foundation of all knowledge*. Apart from all special teaching I have sought to discover the *nature of teaching itself*, and the prototype, by which nature herself has determined the instruction of our race." (Pestalozzi, *How Gertrude teaches her Children*, x, § 1.)

"tried to organize and psychologize the educational process" by harmonizing it with the natural development of the child (**R.** 267). To this end he carefully studied children, and developed his methods experimentally as a result of his observation. To this end, both at Burgdorf and Yverdon, all results of preceding teachers and writers on education were rejected, for fear that error might creep in. Read nothing, discover everything, and prove all things, came to be the working guides of himself and his teachers.

The development of man he believed to be organic, and to proceed according to law. It was the work of the teacher to discover these laws of development and to assist nature in securing "a natural, symmetrical, and harmonious development" of all the "faculties" of the child. Real education must develop the child as a whole — mentally, physically, morally — and called for the training of the head and the hand and the heart. The only proper means for developing the powers of the child was use, and hence education must guide and stimulate self-activity, be based on intuition and exercise, and the sense impressions must be organized and directed. Education, too, if it is to follow the organic development of the child, must observe the proper progress of child development and be graded, so that each step of the process shall grow out of the preceding and grow into the following stage. To accomplish these ends the training must be all-round and harmonious; much liberty must be allowed the child in learning; education must proceed largely by doing instead of by words, the method of learning must be largely analytical; real objects and ideas must precede symbols and words; and, finally, the organization and correlation of what is learned must be looked after by the teacher.

Still more, Pestalozzi possessed a deep and abiding faith, new at the time, in the power of education as a means of regenerating society. He had begun his work by trying to "teach beggars to live like men," and his belief in the potency of education in working this transformation, so touchingly expressed in his *Leonard and Gertrude*, never left him. He believed that each human being could be raised through the influence of education to the level of an intellectually free and morally independent life, and that every human being was entitled to the right to attain such freedom and independence. The way to this lay through the full use of his developing powers, under the guidance of a teacher, and not through a process of repeating words and learning by heart. Not

only the intellectual qualities of perception, judgment, and reasoning need exercise, but the moral powers as well. To provide such exercise and direction was the work of the school.

Pestalozzi also resented the brutal discipline which for ages had characterized all school instruction, believed it by its very nature immoral, and tried to substitute for this a strict but loving discipline — a "thinking love," he calls it — and to make the school as nearly as possible like a gentle and refined home. To a Swiss father, who on visiting his school exclaimed, "Why, this is not a school, but a family," Pestalozzi answered that such a statement was the greatest praise he could have given him.

The consequences of these ideas. The educational consequences of these new ideas were very large. They in time gave aim and purpose to the elementary school of the nineteenth century, transforming it from an instrument of the Church for church ends, to an instrument of society to be used for its own regeneration and the advancement of the welfare of all.[1] The introduction of the study of natural objects in place of words, and much talking about what was seen and studied instead of parrot-like reproductions of the words of a book, revolutionized both the methods and the subject-matter of instruction in the developing elementary school. Observation and investigation tended to supersede mere memorizing; class discussion and thinking to supersede the reciting of the words of the book; thinking about what was being done to supersede routine learning; and class instruction to supersede the wasteful individual teaching which had for so long characterized all school work. It meant the reorganization of the work of the vernacular school on a modern basis, with class organization and group instruction, and a modern-world purpose (**R. 269**).

The work of Pestalozzi also meant the introduction of new subject-matter for instruction, the organization of new teaching subjects for the elementary school, and the redirection of the elementary education of children. Observation led to the development of elementary-science study, and the study of home geography; talking about what was observed led to the study of

[1] "What he did was to emphasize the new purpose in education, but vaguely perceived, where held at all, by others; to make clear the new meaning of education which existed in rather a nebulous state in the public mind; to formulate an entirely new method, based on new principles, both of which were to receive a further development in subsequent times, and to pass under his name; and finally, to give an entirely new spirit to the schoolroom." (Monroe, Paul, *Text Book in the History of Education*, p. 600.)

language usage, as distinct from the older study of grammar; and counting and measuring led to the study of number, and hence to a new type of primary arithmetic. The reading of the school also changed both in character and purpose. In other words, in place of an elementary education based on reading, a little writing and spelling, and the catechism, all of a memoriter type and with religious ends in view, a new primary school, essentially secular in character, was created by the work of Pestalozzi. This new school was based on the study of real objects, learning through sense impressions, the individual expression of ideas, child activity, and the development of the child's powers in an orderly way. In fact, "the development of the faculties" of the child became a by-word with Pestalozzi and his followers.

Pestalozzi's deep abiding faith in the power of education to regenerate society was highly influential in Switzerland, throughout western Europe, and later in America in showing how to deal with orphans, vagrants, and those suffering from physical defects or in need of reformation, by providing for such a combination of intellectual and industrial training.

The spread and influence of Pestalozzi's work. So famous did the work of Pestalozzi become that his schools at Burgdorf and Yverdon came to be "show places," even in a land filled with natural wonders. Observers and students came from America (R. 268) and from all over Europe to see and to teach in his school, and draw inspiration from seeing his work (R. 270) and talking with him.[1] In particular the educators of Prussia were attracted by his work, and, earlier than other nations, saw the far-reaching significance of his discoveries. Herbart visited his school as early as 1799, when but a young man of twenty-three, and wrote a very sympathetic description of his new methods. Froebel spent the years 1808 to 1810 as a teacher at Yverdon, when he was a young

[1] In 1809 the German, Carl Ritter, a former pupil of Salzmann (see footnote 2, p. 538) and the creator of modern geographical study, visited Pestalozzi at Yverdon. Of this visit he writes:

"I have seen more than the paradise of Switzerland, I have seen Pestalozzi, I have learned to know his heart and his genius. Never have I felt so impressed with the sanctity of my vocation as when I was with this noble son of Switzerland. I cannot recall without emotion this society of strong men, struggling with the present, with the aim of clearing the way for a better future, men whose only joy and reward is the hope of raising the child to the dignity of man.

"I left Yverdon resolved to fulfill my promise made to Pestalozzi to carry his method into geography. . . . Pestalozzi did not know as much geography as a child in our Primary Schools, but, none the less, have I learned that science from him, for it was in listening to him that I felt awaken within me the instinct of the natural methods; he showed me the way." (Guimps, Baron de, *Pestalozzi, his Aim and Work*, p. 167.)

man of twenty-six to eight. "It soon became evident to me," wrote Froebel, "that 'Pestalozzi' was to be the watchword of my life." The philosopher Fichte, whose Addresses (1807–08) on the condition of the German people (page 568), after their humiliating defeat by Napoleon, did much to reveal to Prussia the possibilities of national regeneration by means of education, had taught in Zurich, knew Pestalozzi, and afterward exploited his work and his ideas in Berlin.[1] As early as 1803 an envoy, sent by the Prussian King,[2] reported favorably on Pestalozzi's work, and in 1804 Pestalozzian methods were authorized for the primary schools of Prussia. In 1808 seventeen teachers were sent to Switzerland, at the expense of the Prussian Government, to spend three years in studying Pestalozzi's ideas and methods. On their return, these and others spread Pestalozzian ideas throughout Prussia. A pastor and teacher from Würtemberg, Karl August Zeller (1774–1847), came to Burgdorf in 1803 to study. In 1806 he opened a training-school for teachers in Zurich, and there worked out a plan of studies based on the work of Pestalozzi. This was printed and attracted much attention. In 1808 the King of Würtemberg listened to five lectures on Pestalozzian methods by Zeller, and invited him to a position as school inspector in his State. Before he had done but a few months' work he was called to Prussia, to organize a normal school and begin the introduction of Pestalozzian ideas there. From Prussia the ideas and methods of Pestalozzi gradually spread to the other German States.

Many Swiss teachers were trained by Pestalozzi, and these also helped to extend his work and ideas over Switzerland. Particularly in German Switzerland did his ideas take root and reorganize education. As a result modern systems of education made an early start in these cantons. One of Pestalozzi's earliest and most faithful teachers, Hermann Krüsi, became principal of the Swiss normal school at Gais, and trained teachers there in Pestalozzian

[1] The young German student of geology and mineralogy, Karl George von Raumer (1783–1865), was in Paris, in 1808. While there he read Pestalozzi's *How Gertrude teaches her Children*, and what Fichte had said of his work in his *Addresses to the German Nation* (see chapter XXII). These sent him to Yverdon to see for himself. He remained two years, and returned to Germany as a teacher. In 1846 he published his four-volume *Geschichte der Pädagogik*, the first important history of education to be written.

[2] In 1814 King Frederick William III himself visited Pestalozzi, at Neufchatel. His queen, Louise, was deeply touched by reading the *Émile*, and frequently spent hours in the Prussian schools witnessing work conducted after the ideas of Pestalozzi.

methods. Zeller's pupils, too, did much to spread his influence among the Swiss. Pestalozzi's ideas were also carried to England, but in no such satisfactory manner as to the German States. Where German lands received both the method and the spirit, the English obtained largely the form. Later Pestalozzian ideas came to the United States, at first largely through English sources, and, after about 1860, resulted in a thoroughgoing reorganization of American elementary education.

After Pestalozzi's institution had become celebrated, and visitors and commissions from many countries had visited him and it, and after governments had vied with one another in introducing Pestalozzian methods and reforms, the vogue of the Pestalozzian ideas became very extended. Many excellent private schools were founded on the Pestalozzian model, while on the other hand self-styled Pestalozzian reformers sprang up on all sides. All this imitation was both natural and helpful; the foolishness and charlatanism in time disappeared, leaving a real advance in the educational conception.

The manual-labor school of Fellenberg. Of the Swiss associates and followers of Pestalozzi one of the most influential was Phillip Emanuel von Fellenberg (1771–1844). The son of a Swiss official of high political and social position, possessed of wealth, having traveled extensively, Fellenberg, having become convinced that correct early education was the only means whereby the State might be elevated and the lot of man made better, resolved (1805) to devote his life and his fortune to the working-out of his ideas. For a short time associated with Pestalozzi, he soon withdrew and established, on his own estate, an Institution which later (1829) came to comprise the following:

1. A farm of about six hundred acres.
2. Workshops for manufacturing clothing and tools.
3. A printing and lithographing establishment.
4. A literary institution for the education of the well-to-do.
5. A lower or *real* school, which trained for handicrafts and middle-class occupations.
6. An agricultural school for the education of the poor as farm laborers, and as teachers for the rural schools.

By 1810 the Institution had begun to attract attention, and soon pupils and visitors came from distant lands to study in and to examine the schools. The agricultural school in particular aroused interest. More than one hundred Reports (R. 272) were pub-

lished, in Europe and America, on this very successful experiment in a combined intellectual and manual-labor type of education. Fellenberg died in 1844, and his family discontinued the school in 1848.

Fellenberg's work was a continuation of the social-regeneration conception of education held by Pestalozzi, and contained the germ-idea of all our agricultural and industrial education. His plan was widely copied in Switzerland, Germany, England, and the United States. It was well suited to the United States because of the very democratic conditions then prevailing among an agricultural people possessed of but little wealth. The plan of combining farming and schooling made for a time a strong appeal to Americans, and such schools were founded in many parts of the country. The idea at first was to unite training in agriculture with schooling, but it was soon extended to the rapidly rising mechanical pursuits as well. The plan, however, was rather short-lived in the United States, due to the rise of manufacturing and the opening of rich and cheap farms to the westward, and lasted with us scarcely two decades. A generation later it reappeared in the Central West in the form of a new demand for colleges to teach agricultural and mechanical arts, but with the manual-labor idea omitted. This we shall refer to again, later on (chapter XXIX).

FIG. 167. FELLENBERG (1771–1844)

IV. REDIRECTION OF THE ELEMENTARY SCHOOL

Significance of this work. Though some form of parish school for the elements of religious instruction had existed in many places during the later Middle Ages, and foundations providing for some type of elementary instruction had appeared here and there in almost all lands, the elementary vernacular school, as we have previously pointed out, was nevertheless clearly the outcome of the Protestant movement in the sixteenth century, and in its origin was essentially a child of the Church. A child of the Church, too, for more than two centuries the elementary vernacular school remained. During these two centuries the elementary

school made slow but rather unsatisfactory progress, due largely to there being no other motive for its maintenance or expansion than the original religious purpose. Only in the New England Colonies in North America, in some of the provinces of the Netherlands, and in a few of the German States had any real progress been made in evolving any different type of school out of this early religious creation, and even in these places the change was in form of control rather than in subject-matter or purpose. The school remained religious in purpose, even though its control was beginning to pass from the Church to the State.

Now, within half a century, beginning with the work of Rousseau (1762), and by means of the labors of the political philosophers of France, the Revolutionary leaders in the American Colonies, the legislative Assemblies and Conventions in France, and the experimental work of Basedow and his followers in German lands and of Pestalozzi and his disciples in Switzerland, the whole purpose and nature of the elementary vernacular school was changed. The American and French political revolutions and the more peaceful changes in England had ushered in new conceptions as to the nature and purpose and duties of government. As a consequence of these new ideas, education had come to be regarded in a new light, and to assume a new importance in the eyes of statesmen. In place of schools to serve religious and sectarian ends, and maintained as an adjunct of the parishes or of a State Church, the elementary vernacular school now came to be conceived of as an instrument of the State, the chief purpose of which was to serve state ends. Some time would, of course, be required to develop the state support necessary to effect the complete transformation in control, and the forces of reaction would naturally delay the process as much as possible, but the theory of state purpose had at last been so effectively proclaimed, and the forces of a modern world were pushing the idea so steadily forward, that it was only a question of time until the change would be effected.

A new impetus for change in control. Basedow and Pestalozzi, too, had given the movement for a transfer of control a new impetus by working out new methods in instruction and in organizing new subject-matter for the school, and methods and subject-matter which harmonized with the spirit and principles of the new democracy that had been proclaimed. Pestalozzi in particular had sought, guided by a clearer insight into the educational prob-

lem than Basedow possessed (**R.** 271), to create a school in which children might, under the wise guidance of the teacher, develop and strengthen their own "faculties" and thus evolve into reasoning, self-directing human beings, fitted for usefulness and service in a modern world. To make intelligent and reasoning individuals of all citizens, to develop moral and civic character, to train for life in organized society, and to serve as an instrument by means of which an ignorant, drunken, immoral, and shiftless working-class and peasantry might be elevated into men and women of character, intelligence, and directive power, was in Pestalozzi's conception the underlying meaning of the school. After Pestalozzi, the earlier conception as to the religious purpose of the elementary vernacular schools, by means of which children were to be trained almost exclusively "in the principles of our holy religion" and to become "loyal church members," and to "fit them for that station in life in which it hath pleased their Heavenly Father to place them," was doomed. In its stead there was certain to arise a newer conception of the school as an instrument of that form of organized society known as the State, and maintained by the State to train its future citizens for intelligent participation in the duties and obligations of citizenship, and for social, moral, and economic efficiency.

The way now becoming clear. After two hundred and fifty years of confusion and political failure, the way was now at last becoming clear for the creation of national instead of church systems of elementary education, and for the firm establishment of the elementary vernacular school as an important obligation to its future citizens of every progressive modern State and the common birthright of all. This became distinctively the work of the nineteenth century. It also became the work of the nineteenth century to gather up the old secondary-school and university foundations, accumulated through the ages, and remould them to meet modern needs, fuse them into the national school systems created, and connect them in some manner with the people's schools. To see how this was done we next turn to the beginnings of the organization of national school systems in the German States, France, Italy, England, and the United States. These may be taken as types. As Prussia was the first modern State to grasp the significance of national education, and to organize state schools, we shall begin our study by first tracing the steps by which this transformation was effected there.

QUESTIONS FOR DISCUSSION

1. Compare the statement of the valuable elements in the theories of Rousseau (p. 530) with the main ideas of Basedow (p. 535); Ratke (p. 607); Comenius (p. 409).
2. Do we accept all the fourteen points of Rousseau's theory to-day?
3. Might a Rousseau have done work of similar importance in Russia, early in the twentieth century? Why?
4. Explain the educational significance of "self-activity," "sense impressions," and "harmonious development."
5. What were the strong points in the experimental work of Basedow?
6. Explain the great enthusiasm which his rather visionary statements and plans awakened.
7. Show the importance of such work as that of Basedow in preparing the way for better-organized reform work.
8. How far was Pestalozzi right as to the power of education to give men intellectual and moral freedom?
9. What do you understand Pestalozzi to have meant by "the development of the faculties"?
10. State the importance of the work of Pestalozzi from the point of view of showing the world how to deal with orphans and defectives.
11. Show how the germs of agricultural and technical education lay in the work of Fellenberg.
12. Explain the greater popularity of the *Émile* in German lands.
13. State the change in subject-matter and aims from the vernacular church school to the school as thought out by Pestalozzi.
14. Show that it was a fortunate conjunction that brought the work of Pestalozzi alongside of that of the political reformers of France.
15. What differences might there have been had Comenius lived and done his work in the time of Pestalozzi?

SELECTED READINGS

In the accompanying *Book of Readings* the following selections, illustrative of the contents of this chapter, are reproduced:

264. Rousseau: Illustrative Selections from the *Émile.*
265. Basedow: Instruction in the *Philanthropinum.*
266. Basedow: A Page from the *Elementarwerk.*
267. Pestalozzi: Explanation of his Work.
268. Griscom: A Visit to Pestalozzi at Yverdon.
269. Woodbridge: An Estimate of Pestalozzi's Work.
270. Dr. Mayo: On Pestalozzi.
271. Woodbridge: Work of Pestalozzi and Basedow compared.
272. Griscom: Hofwyl as seen by an American.

QUESTIONS ON THE READINGS

1. Show the fallacy of Rousseau's reasoning (264 d) as to society being a denominator which prevents man from realizing himself.
2. What are the elements of truth and falsity in Rousseau's idling-to-the-twelfth-year (264 d) idea?
3. Would such a training up to twelve (264 e) be possible, or desirable?
4. What type of education is presupposed in 264 f?
5. Show the similarity in the conceptions of the *Orbis Pictus* (221) and the *Elementarwerk* (266).

6. What types of schools and conceptions of education were combined in the Philanthropinum (265)?
7. Just what did Pestalozzi attempt (267) to accomplish?
8. Compare the accounts as to purpose and instruction given by Pestalozzi (267) and Griscom (268).
9. What do the tributes of Woodbridge (269) and Mayo (270) reveal as to the character of Pestalozzi and his influence?
10. Analyze the courses of instruction (272) at Hofwyl.
11. State the points of similarity and difference between the work of Basedow and Pestalozzi (271), and the points of superiority in the work of Pestalozzi.

SELECTED REFERENCES

*Anderson, L. F. "The Manual-Labor-School Movement"; in *Educational Review*, vol. 46, pp. 369–88. (November, 1913.)
Barnard, Henry. *Pestalozzi and his Educational System.*
*Compayré, G. *Jean-Jacques Rousseau.*
*Compayré, G. *Pestalozzi and Elementary Education.*
*Guimps, Roger de. *Pestalozzi: his Aim and Work.*
*Krüsi, Hermann, Jr. *Life and Work of Pestalozzi.*
*Parker S. C. *History of Modern Education*, chaps. 8, 9, 13–16.
*Pestalozzi, J. H. *Leonard and Gertrude.*
Pestalozzi, J. H. *How Gertrude teaches her Children.*
Pinloche, A. *Pestalozzi and the Foundations of the Modern Elementary School.*

CHAPTER XXII

NATIONAL ORGANIZATION IN PRUSSIA

I. THE BEGINNINGS OF NATIONAL ORGANIZATION

Early German progress in school organization. The first modern nation to take over the school from the Church, and to make of it an instrument for promoting the interests of the State was Prussia, and the example of Prussia was soon followed by the other German States. The reasons for this early action by the German States will be clear if we remember the marked progress made in establishing state control of the churches (p. 318) which followed the Protestant Revolts in German lands. Figure 96, page 319, reëxamined now, will make the reason for the earlier evolution of state education in Germany plain. Würtemberg, as early as 1559, had organized the first German state-church school system, and had made attendance at the religious instruction compulsory on the parents of all children. The example of Würtemberg was followed by Brunswick (1569), Saxony (1580), Weimar (1619), and Gotha (1642). In Weimar and Gotha the compulsory-attendance idea had even been adopted for elementary-school instruction to all children up to the age of twelve.

By the middle of the seventeenth century most of the German States, even including Catholic Bavaria, had followed the example of Würtemberg, and had created a state-church school system which involved at least elementary and secondary schools and the beginnings of compulsory school attendance. Notwithstanding the ravages of the Thirty Years' War (1618–48), the state-church schools of German lands contained, more definitely than had been worked out elsewhere, the germs of a separate state school organization. Only in the American Colonies (p. 364) had an equal development in state-church organization and control been made. As state-church schools, with the religious purpose dominant, the German schools remained until near the middle of the eighteenth century. Then a new movement for state control began, and within fifty years thereafter they had been transformed into institutions of the State, with the state purpose their most essential characteristic. How this transformation was effected in Prussia

the leader among the German States, and the forces which brought about the transformation, it will be the purpose of this chapter to relate.

The new University of Halle. The turning-point in the history of German educational progress was the founding of the University of Halle, in 1694. This institution, due to its entirely new methods of work, has usually been designated as the first modern university. A few forward-looking men, men who had been expelled from Leipzig because of their critical attitude and modern ways of thinking, were made professors here. Its creation was due to the sympathy for these men felt by the Elector Friedrich III of Brandenburg, later the first King of Prussia. The King clearly intended that the new institution should be representative of modern tendencies in education. To this end he installed as professors men who could and would reform the instruction in theology, law, medicine, and philosophy.

In consequence Aristotle was displaced for the new scientific philosophy of Descartes and Bacon, and Latin in the classrooms for the German speech. The sincere pietistic faith of Francke (p. 418) was substituted for the Lutheran dogmatism which had supplanted the earlier Catholic. The instruction in law was reformed to accord with the modern needs and theory of the State. Medical instruction, based on observation, experimentation, and deduction, superseded instruction based on the reading of Hippocrates and Galen. The new sciences, especially mathematics and physics, found a congenial home in the philosophical or arts faculty. Free scientific investigation and research, without interference from the theological faculty, were soon established as features of the institution, and in place of the fixed scientific knowledge taught for so long from the texts of Aristotle (**Rs.** 113-15) and other ancients, a new and changing science, that must prove its laws and axioms, and which might at any time be changed by the investigation of any teacher or student, here now found a home. Under the leadership of Christian Wolff, who was Professor of Philosophy from 1707 to 1723, when he was banished by a new King at the instigation of the Pietists for his too great liberalism in religion, and again from 1740 to 1754, after his recall by Frederick the Great,[1] philosophy was "made to speak German" and the Aristotelian philosophy was permanently dis-

[1] One of the first acts of the reign of Frederick the Great was to recall Wolff from banishment. In doing so he said: "A man that seeks truth, and loves it, must be reckoned precious in any human society."

placed. "Nothing without sufficient cause" was the ruling principle of Wolff's teaching.

Changes wrought in old established procedure. The introduction of the new scientific and mathematical and philosophical studies soon changed the arts or philosophy faculty from a preparatory faculty for the faculties of law, medicine, and theology, as it had been for centuries, to the equal of these three professional faculties in importance, while the elementary instruction in Latin and Greek was now relegated to the *Gymnasia* below. These were now in turn changed into preparatory schools for all four faculties of the university. The university instruction in the ancient languages was now placed on a much higher plane, and a new humanistic renaissance took place (p. 462) which deeply influenced both university and gymnasial training. New standards of taste and judgment were drawn from the ancient literatures and applied to modern life, and students were trained to read and enjoy the ancient classics. This reawakening of the best spirit of the Italian Renaissance marked the first outburst of a national feeling of a people as yet possessed of no national literature of importance, but unwilling longer to depend on foreign (French) influences for the cultural elements in their intellectual life.

It was at Halle, too, that Gundling, in 1711, discussed "the office of a university" and laid down the modern university theory of *Lehrfreiheit und Lernfreiheit* — that is, freedom from outside interference in teaching and studying, both teachers and students to be free to follow the truth wherever the truth might lead, and without reference to what preconceived theories might be upset thereby. This was a revolution in university procedure,[1] and the importance of the establishment of this new conception of university work can scarcely be overestimated. It was a contribution to intellectual progress of large future value. It meant the end of the old-type university, ruled by a narrow theological dogmatism and maintained to give support to a particular religious faith, and the ultimate transformation of the old university foun-

[1] "It was a bold declaration, but one which exactly described the great change which had taken place. The older university instruction was everywhere based upon the assumption that the truth had already been given, that instruction had to do with its transmission only, and that it was the duty of the controlling authorities to see to it that no false doctrines were taught. The new university instruction began with the assumption that the truth must be discovered, and that it was the duty of instruction to qualify and guide the student in this task. By assuming this attitude the university was the first to accept the consequences of the conditions which the Reformation had created." (Paulsen, Fr., *The German Universities*, p. 46.)

dations into institutions actuated by the methods and purposes of a modern world.

In 1734 another new university was founded at Göttingen, and in this Johann Matthias Gesner (1691–1761) raised the new humanistic learning to the place of first importance. This new university became a nursery for the new literary humanism, ably supplementing the work done at Halle. From these two universities teachers of a new type went out, filled with the spirit of "The Enlightenment," as this eighteenth-century German renaissance was called, and they in time regenerated all the German universities. Still more, they regenerated the secondary schools of German lands as well, and gave Greek literature and life that place of first importance in their instruction which was retained until the latter part of the nineteenth century. Gesner at Göttingen, and later Ernesti at Leipzig, did much to formulate the new pedagogical purpose [1] of instruction in the ancient languages and literatures for the higher schools of German lands.

The earliest school laws for Prussia. In 1713 there came to the kingship of Prussia an organizing genius in the person of Frederic William I (1713–40). Under his direction Prussia was given, for the first time, a centralized and uniform financial administration, and the beginnings of state school organization were made. He freed the State from debt, provided it with a good income, developed a strong army, and began a vigorous colonization and commercial policy. Though he cared nothing and did nothing for the universities, the religious reform movement of Francke, as well as his educational undertakings (p. 419), found in the new King a warm supporter. Largely in consequence of this the King became deeply interested in attempts to improve and advance the education of the masses of his people.

The first year of his reign he issued a Regulatory Code for the Reformed Evangelical and Latin schools of Prussia, and in 1717 he issued the so-called "Advisory Order," relating to the people's schools. In this latter parents were urged, under penalty of "vigorous punishment," to send their children to school to learn

[1] "He who reads the works of the ancients will enjoy the acquaintance of the greatest men and the noblest souls who ever lived, and will get in this way, as it happens in all refined conversation, beautiful thoughts and expressive words.

"We thus receive, in early childhood, doctrines and philosophy and wisdom of life from the wisest and best educated men of all ages; we thus learn to recognize and understand clearness, dignity, charm, ingenuity, delicacy, and elegance in language and action, and gradually accustom ourselves to them." (Gesner, Johann Matthias.)

religion, reading, writing, to calculate, and "all that could serve to promote their happiness and welfare." The tuition fees of poor children he ordered paid out of the community poor-box (R. 273). The following year he directed the authorities of Lithuania to relieve the existing ignorance there, and sent commissioners to provide the villages with schoolmasters. From time to time he

FIG. 168. THE SCHOOL OF A HANDWORKER
Conducted in his home. A gentleman visiting the school. After a drawing in the German School Museum in Berlin.

renewed his directions. To insure a better class of teachers for the towns and rural schools, he, in 1722, directed that no one be admitted to the office of sacristan-schoolmaster[1] except tailors, weavers, smiths, wheelwrights, and carpenters, and in 1738 he further restricted the position of teacher in the town and rural schools to tailors.

Becoming especially interested in providing schools for the previously neglected province of East Prussia, he gave the sum of

[1] The sacristan or custodian of the church was frequently also the teacher of the elementary school, the two offices being combined in one person. Out of this combination the elementary teacher was later evolved. (See p. 446.)

fifty thousand thalers as an endowment fund, the interest to be used in assisting communities to build schoolhouses and maintain schools, and he also set aside large tracts of land for school uses. Within a few years over a thousand elementary schools had been established, and some eighteen hundred new schools in Prussia owed their origin to the interest of this King. He also took a similar interest in the establishment of schools in Pomerania (**R.** 273), a part of which had but recently been wrested from Sweden.

In 1737 the King issued his celebrated *Principia Regulative,* which henceforth became the fundamental School Law for the province of East Prussia. This prescribed conditions for the building of schoolhouses, the support of the schoolmaster, tuition fees, and government aid. The following digest of the section of the *Principia* relating to these matters gives a good idea as to the nature of the school regulations the King sought to enforce:

1. The parishes forming school societies were obliged to build schoolhouses and to keep them in repair.
2. The State was to furnish the necessary timber and firewood.
3. The expenses for doors, windows, and stoves to be obtained from collections.
4. Every church to pay four thalers a year toward the support of the schoolmaster.
5. Tuition fees for each child, from four to twelve years of age, to be four groschen per year.
6. Government to pay the fee when a peasant sends more than one child to school.
7. The peasants to furnish the teacher with certain provisions.
8. The teacher to have the right of free pasture for his small stock and some fees from every child confirmed.
9. Government to give the teacher one acre of land, which villagers were to till for him.

In 1738 the King further regulated the private schools and teachers in and about Berlin, in particular dealing with their qualifications and fees. The King showed, for the time, an interest in and solicitude for the education of his people heretofore almost unknown. That his decrees were in advance of the possibilities of the people in the matter of school support is not to be wondered at. Still, they rendered useful service in preparing the way for further organizing work by his successors, and in particular in accustoming the people to the ideas of state oversight and local school support. Under his successor and son, Frederick the Great, the preparatory work of the father bore important fruit.

The organizing work of Frederick the Great. In 1740 Frederick II, surnamed the Great, succeeded his father, and in turn guided the destinies of Prussia for forty-six years. His benevolently despotic rule has been described on a preceding page (p. 474). Here we will consider only his work for education. In 1740, 1741, and again in 1743 he issued "regulations concerning the support of schools in the villages of Prussia," in which he directed that new schools should be established, teachers provided for them, and that "the existing school regulations and the arrangements made in pursuance thereto should be permanent, and that no change should be made under any pretext whatever."

In 1750 he effected a centralization of all the provincial church consistories, except that of Catholic Silesia, under the Berlin Consistory. This was a centralizing measure of large future importance, as it centralized the administration of the schools, as well as that of the churches, and transformed the Berlin Consistory into an important administrative agent of the central government. To this new centralized administrative organization the King issued instructions to pay special attention to schools, in order that they might be furnished with able schoolmasters and the young be well educated. One of the results of this centralization was the gradual evolution of the modern German *Gymnasien*, with uniform standards and improved instruction, out of the old and weakened Latin schools of various types within the kingdom.

From 1756 to 1763 Frederick was engaged in a struggle for existence, known as the Seven Years' War, but as soon as peace was at hand the King issued new regulations "concerning the maintenance of schools," and began employing competent schoolmasters for his royal estates. In April, 1763, he issued instructions to have a series of general school regulations prepared for all Prussia. These were drawn up by Julius Hecker, a former pupil and teacher in Francke's Institution (p. 418) and now a pastor in Berlin and counselor for the Berlin Consistory. After approval by the King, these were issued, September 23, 1763, under the title of *General Land-Schule Reglement* (general school regulations for the rural and village schools) of all Prussia (R. 274). These new regulations constituted the first general School Code for the whole kingdom, and mark the real foundation of the Prussian elementary-school system. Two years later (1765) a similar but stronger set of regulations or Code was drawn up and promulgated for the government of the Catholic elementary schools in

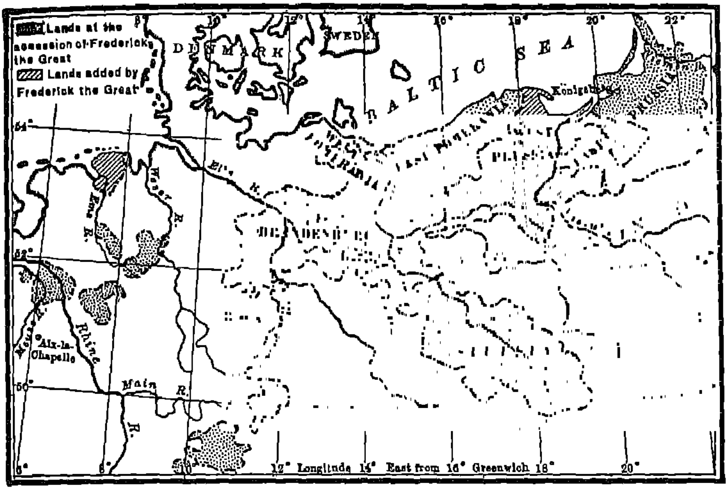

FIG. 169. THE KINGDOM OF PRUSSIA, 1740–86

the province of Silesia (R. 275). This was a new province which Frederick had wrested by force a few years previously (1748) from Maria Theresa of Austria, and the addition of a large number of Catholics to Prussia caused Frederick to issue specific regulations for schools among them.

These two School Codes did not so much bring already existing schools into a state system, but rather set up standards and obligations for an elementary-school system in part to be created in the future. The schools were still left under the supervision and direction of the Church, but the State now undertook to tell the Church what it must do. To enforce the obligation the State Inspectors of Prussia were directed to make an annual inspection (R. 274, § 26) of all schools, and to forward a report on their inspection to the Berlin Consistory, and for Catholic Silesia the following significant injunction was placed in the Code:

> § 51. In order to render as permanent as possible this reform of schools, which lies near our heart, we cannot be satisfied with committing the care of the schools to the clergy alone. We find it necessary that our bureau of War and Domain, the bureau of the Episcopal Vicariate, and the dioceses in our Silesian and Glatz districts, as well as our special school inspectors, give all due attention to this subject, so important to the State.

The Prussian School Codes of 1763 and 1765. The regulations of 1763 were issued, so the introduction reads (R. 274), because

"the instruction of youth" in the country had "come to be greatly neglected" and "the young people were growing up in stupidity and ignorance." The King, therefore, issued the new regulations "to the end that ignorance, so injurious and unbecoming to Christianity, may be prevented and lessened, and the coming time may train and educate in the schools more enlightened and virtuous subjects."

To this end the King ordered compulsory education for the children of all subjects from the ages of five to thirteen or fourteen, all apprentices to be taught, and leaving certificates to be issued on completion of the course (**R. 274**, §§ 1–4). The school hours were fixed, Sunday and summer instruction regulated, tuition fees standardized, and the fees of the children of the poor were ordered paid (**R. 274**, §§ 5–8). A school census, and fines on parents not sending their children to school were provided for (**R. 274**, §§ 10–11). The requirements for a teacher, his habits, his qualifications and examination, the license to teach, and the extent to which he might ply his trade or business, were all laid down in some detail (**R. 274** §§ 12–17). The organization, instruction, textbooks, order of exercises, and discipline for all schools were prescribed at some length (**R. 274**, §§ 19–21). The Code closed with a series of regulations covering the relations of the schoolmaster and clergyman, and the supervision of the instruction by the clergyman and clerical superintendents (**R. 274**, §§ 25–26). Incapable teachers were ordered suspended or deposed. As a final injunction relative to school attendance the Code closed with the following sentence:

> In general we here confirm and renew all wholesome laws, published in former times, especially, that no clergyman shall admit to confirmation and the sacrament, any children not of his parish, nor those unable to read, or who are ignorant of the fundamental principles of evangelical religion.

The Code of 1765 for the Catholic schools of Silesia followed much the same line as the Code of 1763, though in it the King placed special emphasis on the training of schoolmasters, a subject in which he had become much interested (**R. 275 a**); the regulation of the conditions under which teachers lived and worked (**R. 275 b**); and the supervision of instruction by the clergyman of the parish (**R. 275 e**). These directions throw much light on the conditions surrounding teaching near the middle of the eighteenth century. The nature of instruction in the Catholic schools,

and the compulsion to attend, were also definitely stated (**R.** 275 c–d).

These new Codes met with resistance everywhere. The money for the execution of such a comprehensive project was not as yet generally available; parents and churches objected to taxation and to the loss of their children from work; the wealthy landlords objected to the financial burden; the standards for teachers later on (1779) had to be lowered, and veterans from Frederick's wars installed; and the examinations of teachers had to be made easy [1] to secure teachers at all for the schools. While there continued for some decades to be a vast difference between the actual conditions in the schools and the requirements of these Codes, and while the real establishment of a state school system awaited the first decade of the nineteenth century for its accomplishment, much valuable progress in organization nevertheless was made. In principle, at least, Frederick the Great, by the Codes of 1763 and 1765, effected for elementary education a transition from the church school of the Protestant Reformation, and for Catholic Silesia from the parish school of the Church, to the state school of the nineteenth century. It remained only for his successors to realize in practice what he had made substantial beginnings of in law. Nowhere else in Europe that early had such progress in educational organization been made.

The Prussian example followed in other German States. The example of Prussia was in time followed by the other larger German States. Würtemberg issued a new School Code in 1792, which remained the ruling law for the church schools throughout the eighteenth century. The Saxon King, Augustus the Just, inspired by the example of Frederick, issued a mandate, in 1766, reminding parents as to their duty to send children to school, and in 1773 issued a new Regulation, filled with "generous enthusiasm for the cause." A teachers' training-school was founded at Dresden, in 1788, and four others before the close of the century. In 1805 a comprehensive Code was issued. This required that every child must be able to read, write, count, and know the truths of religion to receive the sacrament; clergymen were ordered to supervise the schools; school attendance was re-

[1] "When the schoolmaster had to pass an examination before the clergyman of the place by order of the inspector, the local authorities, owing to the lamentable life of a schoolmaster, were glad to find persons at all who were willing to accept an engagement for such a position. In consequence an otherwise intolerable indulgence in examining and employing teachers took place, especially in districts where large landholders had patriarchal sway." (Schmid, K. A., *Encyclopädie*, vol. VI, p. 287.)

quired from six to fourteen; the pay of teachers and the government appropriations for schools were increased; and a series of fines were imposed for violations of the Code. Bavaria issued new school Codes in 1770 and 1778, and additional schoolhouses were built and new textbooks written. After the suppression of the Jesuits (1773) a new progressive spirit animated the Catholic States, and Austria in particular, under the leadership of Maria Theresa and Joseph II (p. 475), made marked progress in school organization and educational reform.

In 1770 Maria Theresa appointed a School Commission to have charge of education in Lower Austria; in 1771 established the first Austrian normal school in Vienna; and in 1774 promulgated a General School Code (**R. 276**), drawn up by the Abbot Felbiger, who had been most prominent in school organization in Silesia. This Code provided for School Commissions in all provinces;[1] ordered the establishment of an elementary school in all villages and parishes, a "principal" or higher elementary school in the principal city of every canton, and a normal school in every province; laid down the course of study for each; and gave details as to teachers, instruction, compulsory attendance, support, and inspection similar to Frederick's Silesian Code (**R. 275**). Continuation instruction up to twenty years of age also was ordered. That such demands were much in advance of what was possible is evident, and it is not surprising that, in the reaction under Francis I, following the outburst of the French Revolution, we find a decree (1805) that the elementary school shall be curtailed to "absolutely necessary limits," and that

> the common people shall get in elementary school only such ideas as will not trouble them in their work, and which will not make them discontented with their condition; their intelligence shall be directed toward the fulfillment of their moral duties, and prudent and diligent fulfillment of their domestic and communal obligations.

The beginnings of teacher-training. The beginning of teacher-training in German lands was the *Seminarium Præceptorum* of Francke, established at Halle (p. 419), in 1697. In 1738 Johann Julius Hecker (1707–68), one of Francke's former students and teachers, and the author of the Prussian Code of 1763, established the first regular seminary for teachers in Prussia, to train intend-

[1] Austria at that time included not only the Austro-Hungarian Empire of 1914, but extended further into the German Empire and Italy, and included Belgium and Luxemburg as well.

ing theological students for the temporary or parallel occupation of teaching in the Latin schools. In 1747 he established a private *Lehrerseminar* in Berlin, in connection with his celebrated *Realschule* (p. 420), and there demonstrated the possibilities of teacher-training. Frederick the Great was so pleased with the result that, in 1753, he gave the school a subsidy and changed it into a royal institution, and on every fitting occasion recommended school authorities to it for teachers. Similar institutions were opened in Hanover, in 1751; Wolfenbüttel, in 1753; in the county of Glatz in Silesia, in 1764 (R. 275); in Breslau, in 1765 and 1767; and in Carlsruhe, in 1768. In the Silesian Code of 1765 Frederick specified (R. 275 a, § 2) six institutions which he had designated as teacher-training schools.

These early Prussian institutions laid the foundations upon which the normal-school system of the nineteenth century has been built. In Prussia first, but soon thereafter in other German States (Austria, at Vienna, 1771; Saxe-Weimar, at Eisenach, in 1783; and Saxony, at Dresden, 1788) the Teachers' Seminary was erected into an important institution of the State, and the idea has since been copied by almost all modern nations. This early development in Prussia was influential in both France and the United States, as we shall point out further on.

Despite these many important educational efforts, though, the type and the work of teachers remained low throughout the whole of the eighteenth century. In the rural and village schools the teachers continued to be deficient in number and lacking in preparation. Often the pastors had first to give to invalids, cripples, shoemakers, tailors, watchmen, and herdsmen the rudimentary knowledge they in turn imparted to the children. In the towns of fair size the conditions were not much better than in the villages. The elementary school of the middle-sized towns generally had but one class, common for boys and girls, and the magistrates did little to improve the condition of the schools or the teachers. In the larger cities, and even in Berlin, the number of elementary schools was insufficient, the schools were crowded, and many children had no opportunity to attend schools.[1] In Leipzig there was no public school until 1792, in which year the city free school was established. Even Sunday schools, supported by subscription, had been resorted to by Berlin, after 1798, to provide journeymen and apprentices with some of the rudiments

[1] Bassewitz, M. Fr. von. *Die Kurmark Brandenburg*, p. 342. (Leipzig, 1847.)

FIG. 170. A GERMAN LATE EIGHTEENTH-CENTURY SCHOOL
(After a picture in the German School Museum in Berlin)

of an education. The creation of a state school system out of the insufficient and inefficient religious schools proved a task of large dimensions, in Prussia as in other lands. Even as late as 1819 Dinter found discouraging conditions (R. 279) among the teachers of East Prussia.

Further late eighteenth-century progress. Frederick the Great died in 1786. In the reign of his successors his work bore fruit in a complete transfer of all schools from church to state control, and in the organization of the strongest system of state schools the world had ever known. The year following the death of Frederick the Great (1787), and largely as an outgrowth of the preceding centralizing work with reference to elementary education, the Superior School (*Oberschulcollegium*) Board was established to exercise a similar centralized control over the older secondary and higher schools of Prussia. Secondary and higher education were now severed from church control, in principle at least, as elementary education had been by the "Regulations" of 1763 and 1765. The year following (1788) "Leaving Examinations"

(*Maturitätsprüfung*) were instituted to determine the completion of the gymnasial course. These, for a time, were largely ineffective, due to clerical opposition, but the centralizing work of this Superior School Board for the supervision of higher education, and the state examinations for testing the instruction of the secondary schools, were from the first important contributing influences.

In 1794 came the culmination of all the preceding work in the publication of the General Civil Code (*Allgemeine Landrecht*) for the State, in which, in the section relating to schools, the following important declaration was made:

> Schools and universities are state institutions, charged with the instruction of youth in useful information and scientific knowledge. Such institutions may be founded only with the knowledge and consent of the State. All public schools and educational institutions are under the supervision of the State, and are at all times subject to its examination and inspection.

The secular authority and the clergy were still to share jointly in the control of the schools, but both according to rules laid down by the State. In all cases of conflict or dispute, the secular authority was to decide. This important document forms the *Magna Charta* for secular education in Prussia.

During the decade which followed the promulgation of this declaration of state control but little additional progress of importance was accomplished, though the Minister of Justice, to whom (1798) the administration of Lutheran church and school affairs had been given, maintained a correspondence for some years with the King regarding "provisions for a better education and instruction of the children of citizens and peasants," and stated to the King that "the object of reform is national education, and its field of operation, therefore, all provinces of the monarchy." The King, though, a weak, deeply religious, and unimaginative man (Frederick William III, 1797–1840), who lacked the energy and foresight of his predecessors, did little or nothing. Under Frederick William III the State lacked vigor and drifted; the Church regained something of its former power; and the army and the civil service became corrupt. In 1806 a blow fell which brought matters to an immediate crisis and forced important action.

II. A STATE SCHOOL SYSTEM AT LAST CREATED

The humiliation of Prussia. At the close of 1804 France, by vote, changed from the Republic to an Empire, with Napoleon Bonaparte as first Emperor of the French, and for some years he took pains that Frenchmen should forget "Liberty and Equality" amid the surfeit of "Glory" he heaped upon France. The great nations outside France, fearful of Napoleon's ambition and power, did not take his accession to the throne of France so complacently, and, in 1805, England, Sweden, Austria, and Russia formed the "Third Coalition" against Napoleon in an effort to restore the balance of power in Europe. Of the great powers of Europe only Prussia held aloof, refused to take sides, and in consequence enjoyed a temporary prosperity and freedom from invasion. For this, though, she was soon to pay a terrible price. Having humiliated the Austrians and vanquished the Russians, Napoleon now goaded the Prussians into attacking him, and then utterly humiliated them in turn. At the battle of Jena (October 14, 1806) the Prussian army was utterly routed, and forced back almost to the Russian frontier. Officered by old generals and political favorites who were no longer efficient, and backed by a state service honeycombed with inefficiency and corruption, the Prussian army that had won such victories under Frederick the Great was all but annihilated by the new and efficient fighting machine created by the Corsican who now controlled the destinies of France. By the Treaty of Tilsit (July 7, 1807) Prussia lost all her lands west of the Elbe and nearly all her stealings from Poland — in all about one half her territory and population — and was almost stricken from the list of important powers in Europe. In all its history Prussia had experienced no such humiliation as this. In a few months the constructive work of a century had been undone.

The regeneration of Prussia. The new national German feeling, which had been slowly rising for half a century, now burst forth and soon worked a regeneration of the State. In the school of adversity the King and the people learned much, and the task of national reorganization was entrusted to a series of able ministers whom the King and his capable Queen, Louise, now called into service. His chief minister, Stein, created a free people by abolishing serfdom and feudal land tenure (1807); eliminated feudal distinctions in business; granted local government to the

cities; and broke the hold of the clergy on the educational system. His successor, Hardenburg, extended the rights of citizenship, and laid the foundations of government by legislative assemblies. Another minister, Scharnhorst, reorganized the Prussian army (1807–13) by dismissing nearly all the old generals, and introducing the principle of compulsory military service. In all branches of the government service there were reorganizations, the one thought of the leaders being to so reorganize and revitalize the State as to enable it in time to overthrow the rule of Napoleon and regain its national independence.

Though the abolition of serfdom, the reform of the civil service, and the beginnings of local and representative government were important gains, nothing was of secondary importance to the complete reorganization of education which now took place. The education of the people was turned to in earnest for the regeneration of the national spirit, and education was, in a decade, made the great constructive agent of the State. Said the King:

> Though we have lost many square miles of land, though the country has been robbed of its external power and splendor, yet we shall and will gain in intrinsic power and splendor, and therefore it is my earnest wish that the greatest attention be paid to public instruction. . . . The State must regain in mental force what it has lost in physical force.

His minister Stein said:

> We proceed from the fundamental principle, to elevate the moral, religious, and patriotic spirit in the nation, to instil into it again courage, self-reliance, and readiness to sacrifice everything for national honor and for independence from the foreigner. . . . To attain this end, we must mainly rely on the education and instruction of the young. If by a method founded on the true nature of man, every faculty of the mind can be developed, every noble principle of life be animated and nourished, all one-sided education avoided, and those tendencies on which the power and dignity of men rest, hitherto neglected with the greatest indifference, carefully fostered — then we may hope to see grow up a generation, physically and morally vigorous, and the beginnings of a better time.

Fichte appeals to the leaders. Still more did the philosopher Fichte (1762–1814), in a series of "Addresses to the German Nation," delivered in Berlin during the winter [1] of 1807–08, appeal to the leaders to turn to education to rescue the State from the miseries which had overwhelmed it. Unable forcibly to resist,

[1] These lectures were listened to by Napoleon's police and passed to print by his censor, not being regarded as containing anything seditious or dangerous.

and with every phase of the government determined by a foreign conqueror, only education had been overlooked, he said, and to this the leaders should turn for national redemption (**R. 277**). He held that it rested with them to determine

> whether you will be the end and last of a race . . . or the beginnings and germ of a new time, glorious beyond all your imaginings, and those from whom posterity will reckon the years of their welfare. . . . A nation that is capable, if it were only in its highest representation and leaders, of fixing its eyes firmly on the vision from the spiritual world, Independence, and being possessed with a love of it, will surely prevail over a nation that is only used as a tool of foreign aggressiveness and for the subjugation of independent nations.

With a fervor of emotion that was characteristic of a romantic age, impelled by a conviction that the distinctive character of the German people was indispensable to the world, and holding that what was necessary also was possible, Fichte made the German leaders feel, with him, that

> to reshape reality by means of ideas is the business of man, his proper earthly task; and nothing can be impossible to a will confident of itself and of its aim.[1]

Fichte's Addresses stirred the thinkers among the German people as they had not been stirred since the days of the Reformation,[2] and a national reorganization of education, with national ends in view, now took place. As Duke Ernest remade Gotha, after the ravages of the Thirty Years' War, by means of education (p. 317), so the leaders of Prussia now created a new national spirit by taking over the school from the Church and forging it into one of the greatest constructive instruments of the State. The result showed itself in the "Uprising of Prussia," in the winter of 1812–13; the "War of Liberation," of 1813–15; the utter defeat of Napoleon at the battle of Leipzig by Russia, Prussia, and Austria, in 1813; and again at the battle of Waterloo by Eng-

[1] "He set all his hopes for Germany on a new national system of education. One German State was to lead the way in establishing it, making use of the same right of coercion to which it resorted in compelling its subjects to serve in the army, and for the exercise of which certainly no better justification could be found than the common good aimed at in national education." (Paulsen, Fr., *German Education, Past and Present*, p. 240.)

[2] "Never have the souls of men been so deeply stirred by the idea of raising the whole existence of mankind to a higher level. Something like the enthusiasm which had taken hold of the minds at the outbreak of the French Revolution was again at work, the only difference being that the strong current of national feeling directed it toward an aim which, if more limited, was, for that very reason, more practicable and more defined." (Paulsen, Fr., *German Education, Past and Present*, p. 183.)

land and Prussia,[1] in 1815. Still more clearly was the result shown in the humiliating defeat of France, in 1870, when it was commonly remarked that the schoolmaster of Prussia had at last triumphed. The regeneration of Prussia in the early part of the nineteenth century, as well as its more recent humiliation, stand as eloquent testimonials to the tremendous influence of education on national destiny, when rightly and when wrongly directed.

The reorganization of elementary education. The first step in the process of educational reorganization was the abolition (1807) of the *Oberschulcollegium* Board, established (p. 564) in 1787 to supervise secondary and higher education, in order to get rid of clerical influence and control. The next step was the creation instead (1808) of a Department of Public Instruction, organized as a branch of the Interior Department of the State.

One of the first steps of the acting head of the new department was to send seventeen Prussian teachers (1808) to Switzerland to spend three years, at the expense of the Government, in studying Pestalozzi's ideas and methods, and they were particularly enjoined that they were not sent primarily to get the mechanical side of the method, but to

> warm yourselves at the sacred fire which burns in the heart of this man, so full of strength and love, whose work has remained so far below what he originally desired, below the essential ideas of his life, of which the method is only a feeble product.
>
> You will have reached perfection when you have clearly seen that education is an art, and the most sublime and holy of all, and in what connection it is with the great art of the education of nations.

In 1809 Carl August Zeller (1774–1847), a pupil of Pestalozzi, who had established two Pestalozzian training-colleges in Switzerland and had just begun to hold Pestalozzian institutes in Würtemberg (p. 545), was called to Prussia to organize a Teachers' Seminary (normal school) to train teachers in the Pestalozzian methods. The seventeen Prussian teachers, on their return from study with Pestalozzi, were also made directors of training institutions, or provincial superintendents of instruction. In this way Pestalozzian ideas were soon in use in the elementary school rooms of Prussia, and so effective was this work, and so readily did the Prussian teachers catch the spirit of Pestalozzi's endeav-

[1] As a result of the overthrow of Napoleon, the Congress of Vienna restored to Prussia and France substantially the boundaries they had at the opening of the Napoleonic Wars. Still more important for the future was the consolidation of some four hundred States and petty German kingdoms into thirty-eight States.

ors, that at the Berlin celebration of the centennial of his birth, in 1846, the German educator Diesterweg [1] said:

By these men and these means, men trained in the Institution at Yverdon under Pestalozzi, the study of his publications, and the applications of his methods in the model and normal schools of Prussia, after 1808, was the present Prussian, or rather Prussian-Pestalozzian school system established, for he is entitled to at least one half the fame of the German popular schools.

FIG. 171. DINTER (1760–1831) Director of Teachers' Seminaries in Saxony; Superintendent of Education in East Prussia.

Similarly Gustavus Friedrich Dinter, who early distinguished himself as principal of a Teachers' Seminary in Saxony, was called to Prussia and made School Counselor (Superintendent) for the province of East Prussia. Wherever Prussia could find men, in other States, who knew Pestalozzian methods and possessed the new conception of education, they were called to Prussia and put to work, and the statement of Dinter was characteristic of the spirit which animated their work. He said: [2]

I promised God, that I would look upon every Prussian peasant child as a being who could complain of me before God, if I did not provide him with the best education, as a man and a Christian, which it was possible for me to provide.

Work of the Teachers' Seminaries. Napoleon had imposed heavy financial indemnities on Prussia, as well as loss of territory, and the material means with which to establish schools were scanty indeed. With a keen conception of the practical difficulties, the leaders saw that the key to the problem lay in the creation of a new type of teaching force, and to this end they began from the first to establish Teachers' Seminaries. Those who desired to enter these institutions were carefully selected, and out of them a steady stream of what Horace Mann described (**R. 278**) as a "beneficent order of men" were sent to the schools, "mould-

[1] Friedrich Adolph Wilhelm Diesterweg became a pupil in one of the earliest normal schools in Prussia, that at Frankfort; then a teacher; and in 1820 became a director of a Teachers' Seminary at Moers. From 1833 to 1849 he was head of the normal school at Berlin. He has often been called "der deutsche Pestalozzi."

[2] Made in a letter to Baron von Altenstein, Prussian Minister for Education.

ing the character of the people, and carrying them forward in a career of civilization more rapidly than any other people in the world are now advancing." Mann described, with marked approval, both the teacher and the training he received.

FIG. 172. DIESTERWEG (1790–1866)

Director of Teachers' Seminaries at Maurs (1820–33) and Berlin (1833–49). "Der deutsche Pestalozzi"

So successful were these institutions that within a decade, under the glow of the new national spirit animating the people, the elementary schools were largely transformed in spirit and purpose, and the position of the elementary-school teacher was elevated from the rank of a trade (R. 279) to that of a profession (R. 278). By 1840, when the earlier fervor had died out and a reaction had clearly set in, there were in Prussia alone thirty-eight Teachers' Seminaries for elementary teachers, approximately thirty thousand elementary schools, and every sixth person in Prussia was in school. In the other German States, and in Holland, Sweden, and France, analogous but less extensive progress in providing normal schools and elementary schools had been made; but in Austria, which did not for long follow the Prussian example, the schools remained largely stationary for more than half a century to come.

Nationalizing the elementary instruction. That the system of elementary vernacular or people's schools (the term *Volksschule* now began to be applied) now created should be permeated by a strong nationalistic tone was, the times and circumstances considered, only natural. Though the Pestalozzian theories as to the development of the mental faculties, training through the senses, and the power of education to regenerate society were accepted, along with the new Pestalozzian subject-matter and methods in instruction (p. 543,) all that could be rendered useful to the Prussian State in its extremity naturally was given special emphasis. Thus all that related to the home country — geography, history, and the German speech — was taught as much from the patriotic as from the pedagogical point of view. Music was given special emphasis as preparatory for participation in the

patriotic singing-societies and festivals, which were organized at the time of the "Uprising of Prussia" (1813). Drawing and arithmetic were emphasized for their practical values. Physical exercises were given an emphasis before unknown, because of their hygienic and military values. Finally religion was given an importance beyond that of Pestalozzi's school, but with the emphasis now placed on moral earnestness, humility, self-sacrifice, and obedience to authority, rather than the earlier stress on the Catechism and church doctrine.

Clearly perceiving, decades ahead of other nations, the power of such training to nationalize a people and thus strengthen the State, the Prussian leaders, in the first two decades of the nineteenth century, laid the foundations of that training of the masses, and of teachers for the masses (**R. 280**), which, more than any other single item, paved the way for the development of a national German spirit, the unification of German lands into an Imperial German Empire, and that blind trust in and obedience to authority which has recently led to a second national humiliation.

The reorganization of secondary education. Alongside this elementary-school system for the masses of the people, the older secondary and higher school system for a directing class (p. 553) also was largely reorganized and redirected. The first step in this direction was the appointment, in 1809, of Wilhelm von Humboldt (1767–1835), "a philosopher, scholar, philologist, and statesman" of the first rank, to the headship of the new Prussian Department of Public Instruction. During the two and a half years he remained in charge important work in the reorganization of secondary and higher education was accomplished. In 1817 the Department of Public Instruction was changed from a bureau to an independent Ministry for Spiritual and Instructional Affairs. By 1825, when governing school boards were ordered established in each province, and made responsible to the Ministry for Education at Berlin, the organization of the state school system was virtually complete. For the next half-century the changes made were in the nature of the perfection of bureaucratic organization, rather than any fundamental organizing change. During the early years improvements of great future importance for secondary education were effected in the creation of a well-educated, professional teaching body, and in the standardization of courses and of work.

In 1810 the examination of all secondary-school teachers, ac-

cording to a uniform state plan, was ordered. The examinations were to be conducted for the State by the university authorities; to be based on university training in the gymnasial subjects, with an opportunity to reveal special preparation in any subject or subjects; and no one in the future could even be nominated for a position as a gymnasial teacher who had not passed this examination. This meant the erection of the work of teaching in the secondary schools into a distinct profession; the elimination from the schools of the theological student who taught for a time as a stepping-stone to a church living; and the end of easy local examination and approval by town authorities or the patrons of a school. To insure still better preparation of candidates, Pedagogical Seminars were begun in the universities [1] for imparting to future gymnasial teachers some pedagogical knowledge and insight, while Philological Seminars also appeared, about the same time,[2] to give additional training in understanding the spirit of instruction in the chief subjects of the gymnasial course — the classics. In 1826 a year of trial teaching before appointment (*Probejahr*) was added for all candidates, and in 1831 new and more stringent regulations for the examination of teachers were ordered.[3] At least two generations ahead of other nations, Prussia thus developed a body of professional teachers for its secondary schools.

Unification of the secondary schools. In 1812 the Leaving Examinations (*Maturitätsprüfung*), instituted in 1788, but ineffective through clerical opposition, were revived and strictly enforced. In 1834 the passing of such an examination was made necessary to entering nearly all branches of the state civil service, thus securing an educated body of minor public officials. This same year the universities gave up their entrance examinations, and have since depended entirely on the Leaving Examinations of the State.

[1] "Herbart's seminar at the university of Königsberg was officially recognized, in 1810; Gedike's seminar in Berlin was formally taken over by the university, in 1812; the seminar in Stettin, founded in 1804, was reorganized in 1816; Breslau began pedagogical work, in 1813; and in 1817 it was stated that the purpose of the reorganized seminar in Halle was 'the training of skilled teachers for the *Gymnasien*.'" (Russell, James E., *German Higher Schools*, p. 97.)

[2] Gesner at Göttingen and Wolff at Halle laid down the lines for these in the middle eighteenth century. The early nineteenth-century foundations were at Königsberg, 1810; Berlin, 1812; Breslau, 1812; Bonn, 1819; Griefswald, 1820; and Münster, 1825.

[3] All prospective gymnasial teachers, whether graduates of the universities or not, were now required to take examinations in philosophy, pedagogy, theology, and the main gymnasial subjects, showing marked proficiency in one of the following groups, and a reasonable knowledge of the other two: namely, (1) Greek, Latin, German; (2) Mathematics and the Natural Sciences; (3) History and Geography.

The immediate effect of the reinstitution of the Leaving Examinations was to unify the work of all the different surviving types of classical secondary schools — *Gymnasium*, *Lyceum*, *Pädagogium*, *Collegium*, *Lateinische Schule*, *Akademie* — all standard nine-year schools henceforth taking the name of *Gymnasien*. Those institutions which could not meet the standards of a nine-year classical school were either permitted to do the first six years of the work, being known as *Pro-Gymnasien*, or the modern languages were substituted for the ancient, and they became middle-class institutions under the name of *Bürgerschulen*. A few *Realschulen* also were in existence, and these were permitted to continue, as middle-class institutions, but without any state recognition. Thus, without the destruction of institutions, the accumulated foundations of the centuries were transformed into a series of organized state schools to serve the needs of the State.

The next step was the promulgation of a uniform course of instruction for all *Gymnasien* and *Pro-Gymnasien*. This was done in 1816. The studies were Latin, Greek, German, mathematics, history, geography, religion, and science, the amount of time to be devoted to each ranging, in the order listed, from a maximum for Latin to a minimum for science. Up to 1824 Greek was not absolutely required; from 1824 to 1837 it was required, unless the substitution of a modern language was permitted; but after 1837, when the type of German secondary school had become fairly well fixed, and the devotion to humanistic studies had reached a climax, Greek became a fixed and unvarying requirement.[1]

Founding of the University of Berlin. One result of the Treaty of Tilsit (p. 566) was that Prussia had lost all her universities, except three along the Baltic coast. Both Halle and Göttingen were lost, and the loss of Halle was a severe blow. In 1807 Fichte, who had been a professor at Jena, drew up a plan and submitted it to the King for the organization of a new university at Berlin. When Humboldt came to the head of the Department of Public Instruction the idea at once won his enthusiastic approval. In May, 1809, he reported favorably on the project to the King, and three months later a Cabinet Order was issued creating the new university, giving it an annual money grant, and assigning a royal palace to it for a home. The spirit with which the new institution was founded may be inferred from the following extract

[1] See Russell, Jas. E., *German Higher Schools*, p. 101, for the detailed "Gymnasial Program" promulgated in 1837.

from a memorial, published by Humboldt, in 1810. In this he said:

> The State should not treat the universities as if they were higher classical schools or schools of special sciences. On the whole the State should not look to them at all for anything that directly concerns its own interests, but should rather cherish a conviction that, in fulfilling their real destination, they will not only serve its own purposes, but serve them on an infinitely higher plane, commanding a much wider field of operation, and affording room to set in motion much more efficient springs and forces than are at the disposal of the State itself.

This university was indeed a new creation, and of far more significance for the future of university work than even the founding of Halle had been. To the selection of its first faculty Humboldt devoted almost all his energies during the period he remained in office. From the first, high attainment in some branch of knowledge, and the ability to advance that knowledge, was placed ahead of mere teaching skill. The most eminent scholars in all lines were invited to the new "chairs," and when it opened (1810) its first faculty represented the highest attainment of scholarship in German lands. From the first the instruction divested itself of almost all that characterized the school. The lecture replaced the classroom recitation, and the seminar, in which small groups of advanced students investigate a problem under the direction of a professor, was given a place of large importance in the institution. Original research and contributions to knowledge marked the work of both students and professors, the object being, not to train teachers for the schools, but to produce scholars capable of advancing knowledge by personal research. Even more than at Halle, the institution was a place where professors and students worked to discover truth, uninfluenced by any preconceived notions and unmindful of what older ideas might be upset in the process. The value of such pioneer work for university scholars everywhere is not likely to be overestimated.

Specialization in university instruction emphasized. Specialization in some field of knowledge soon came to be the ruling idea, and this proved exceedingly fruitful in the years which followed. There Bopp developed the study of comparative grammar on the basis of the Sanskrit. There Dietz founded Romance philology. Ritschl turned his students to the study of Latin inscriptions to reconstruct the past. Lepsius began the study of Egyptology with a spade. Niebuhr's *Roman History* (1811) was the institution's first fruit, and his successor, Ranke, showed his students

how to study history from the sources. Hegel, Schopenhauer, and Lotze made over philosophy. Fechner and Wundt began there the study of experimental psychology. Stahl and von Savigny created new standards in the study of law. Müller introduced the microscope into the study of pathological anatomy. Schultze systematized zoölogy. Liebig, who had opened at Giessen (1824) what was probably the first chemical laboratory in the world open to students, was drawn to Berlin and created there a new chemistry. Still later, Helmholtz created there a new physics.

The effect of all this on the expansion of the work of the philosophical faculty was marked. The new philological and historical sciences, the biological sciences, and the mathematical sciences, were all greatly expanded in scope, and the new philosophical faculty, evolved out of the old arts faculty (p. 554), now attained to the place of first importance in the university — a position it has ever since retained. Law and medicine were also given a new direction and emphasis, and even the teaching of theology was greatly improved under the specialization in instruction and the freedom in teaching which now became the rule.

The effect on the other German universities was marked. Some of the older institutions (Erfurt, Wittenberg, Cologne, Mainz) died out, while new foundations (Breslau, 1811; Bonn, 1818; Munich, 1826) after the new model, took their place. Those that continued were changed in character,[1] and a new unity was established throughout the German university world. By 1850 exact scientific research, in both libraries and laboratories, and a sober search for truth, had become the watchword of all the German universities. In consequence they naturally assumed a world leadership, and were frequented by students from many lands. Especially has the United States been influenced in its university development by the large number of university teachers who received their specialized training in the German universities[2] during the latter half of the nineteenth century. The lec-

[1] In 1840 there were six Prussian universities; by 1900 the number had increased to eleven, and three technical universities in addition. In the other German States eleven additional universities and six technical universities were in existence, in 1900.

[2] Benjamin Franklin visited Göttingen, as early as 1766, but the first American student to take a degree at a German university was Benjamin S. Barton, of Philadelphia, who took his doctor's degree at Göttingen, in 1799. By 1825 ten American students had studied one or more semesters at Göttingen. That year the first American student registered at Berlin, and in 1827 the first at Leipzig. (See Hinsdale, B. A., in *Report, U.S. Commissioner of Education*, 1897–98, vol. I, pp. 603–16.)

ture, the seminar, laboratory investigation, research, the doctorate, and academic freedom in study and teaching are distinctive contributions to our university development drawn from German lands, and superimposed on our earlier English-type college. The founding of Johns Hopkins University, at Baltimore, in 1876, on the German model, marked the erection of the first distinctively research university in America.

A two-class state school system created. We thus see that Prussia by 1815, clearly by 1825, had taken over education from the Church and made of it an instrument of the State to serve State ends. For the masses there was the *Volksschule*, superseding the old religious vernacular school and clearly designed to create an intelligent but obedient and patriotic citizenship for the Fatherland, and in this school the great majority of the children of the State received their education for citizenship and for life. This was for both sexes, and was entirely a German school. Attendance upon this school was made compulsory, and beyond this some continuation education early began to be provided (**Rs. 274, § 6; 275 d; 276, § 15**). Within the past half-century continuation education, especially along vocational lines, as we shall point out in a subsequent chapter, has received in German lands a very remarkable development. To insure that this school should serve the State in the way desired, Teachers' Seminaries, for the training of *Volksschule* teachers, were from the first made a feature of the new state system.

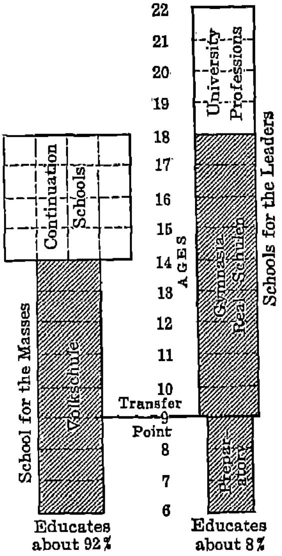

FIG. 173. THE PRUSSIAN STATE SCHOOL SYSTEM CREATED

Compare with Fig. 209 and note the difference between a European two-class school system and the American democratic educational ladder.

For those who were to form the official and directing class of society — a closely limited, almost entirely male, intellectual aristocracy — education in separate classical schools, with university or professional training superimposed, was provided, and this type of training offered a very thorough preparation for a small and a carefully selected class. Out of this class the leaders

of Germany for a century have been drawn.[1] For this classical school also the universities were early directed to prepare a well-educated body of teachers. The Prussian plan was followed in all its essentials in the other German States, so that the drawing given (Fig. 173) was true for Germany as a whole, as well as for Prussia, up at least to 1914.

New nineteenth-century tendencies manifested. In this early evolution of the Prussian state school systems we find two prominent nineteenth-century ideas expressing themselves. The first is the new conception of the State as not merely a government organized to secure national safety and protection from invasion, but rather an organization of the people to promote public welfare and realize a moral and political ideal. To this end state control of the whole range of education, to enable the State to promote intellectual and moral and social progress along lines useful to the State, became a necessity, and some form of this education, in the interests of the public welfare, must now be extended to all. Though France and the new American nation gave earlier political expression to this new conception of the State, it was in Prussia that the idea attained its earliest concrete and for long its most complete realization. Seeing further and more clearly than other nations the possibilities of education, the practical workers of Prussia, and after them the other German States, took over education as a function of the State for the propagation of the national ideas and the promotion of the national culture. Of this development Paulsen says:

> In the nineteenth century Germany took the lead in the educational movement among the nations of Europe. The German universities have become acknowledged centers of scientific research for the whole world. . . . In the domain of primary and technical education Germany has also become the universal teacher of Europe.
>
> But it must not be forgotten, in this connection, that the German people had been the pupils of their neighbors during a greater length of time and with greater assiduity than any other European nation. Thus, in the fifteenth and sixteenth centuries, Germany imported the culture of Humanism from Italy. During the seventeenth and eighteenth centuries she introduced the modern courtly culture and language of the French people, besides giving admission, since the middle

---

[1] The remark attributed to Bismarck is interesting in this connection. "Of the students who attend the German universities," he said, "one-third die prematurely as the result of disease arising from too great poverty and under-nourishment while students; another one-third die prematurely or amount to little due to bad habits and drinking and disease contracted while students; the remaining third rule Europe."

of the eighteenth century, to the philosophy, science, and literature of English middle-class society. Lastly, since the end of the eighteenth century, the Germans have yielded themselves to the influence of the Hellenic spirit with greater fervor than any other nation.

The second nineteenth-century idea which early found expression in the Prussian State, and one which became a dominant factor during the latter half of the century, was the idea of utilizing the schools, as state institutions, to promote national ends — to unify and nationalize peoples. National self-consciousness here first found concrete expression, and with wonderful practical results. From a geographical expression, consisting of nearly four hundred petty self-governing cities, principalities, and states, and some fourteen hundred independent noblemen and prelates, before the Napoleonic wars, their close found the German people free from serfdom, united in spirit, and organized politically into thirty-eight modern-type States. In 1870, largely as a result of the nationalizing efforts of government and education, working hand in hand, an Imperial Empire of twenty-two States and three Free Cities was formed. The struggle for national realization, begun by Prussia after 1807, and with education as the important constructive tool of the State, has since been copied by nation after nation and has become the dominant force of modern history. To awaken a national self-consciousness, to acquire national unity, and to infuse into all a common culture has supplanted the humanistic cosmopolitanism of the eighteenth century and become the dominant characteristic of nineteenth-century political history. In this Prussia led the way.

The period of reaction. Through the period preceding the Wars of Liberation (1813–15), and afterward for a few years, an educational zeal animated the Government. The schools during this period were free on the one hand from politics and on the other from minute official regulation. As one writer well stated:[1]

> It was difficult to decide whether the schools derived their importance from the life which surged around them, or whether their importance was due to their intrinsic power, very carefully fostered by the state authorities. . . . There was spirit and life in Prussia; there was much activity and liberty in contriving, with little outward parade. Any foreigner, visiting Prussia, might observe that the vitalizing breath of government, like the spirit of God, was acting upon the whole people.

[1] Barnard, Henry, *American Journal of Education*, vol. xx, p. 365.

Napoleon was finally vanquished at Waterloo (1815) and sent to Saint Helena, and the Congress of Vienna (1815) remade the map of Europe. In doing so it forgot that the people wanted constitutional government, instead of a return to absolute rulers. It restored old thrones, rights, and territories, and inaugurated a policy of political reaction which increased in intensity with time and dominated the governments of continental Europe until after the middle of the century. Under the lead of the Austrian minister, Metternich, and by "third-degree" methods, the so-called Holy Alliance [1] of continental Europe suppressed free speech, democratic movements, political liberties, university freedom, and liberalism in government and religion. The governments in this Alliance redirected and restricted the people's schools, as much as could be done, to make them conform in purpose to their reactionary ideas. In consequence, the development of popular education in Germany, as well as in France and other continental lands, was for a time checked. The great start obtained by Prussia and the German States before 1820, though, was such that what had been done there could not be wholly undone. In France, Spain, the Italian Kingdoms, the Austrian States, and Russia, on the other hand, what had not been developed to any extent could be prevented from developing, and in these lands popular education was given back to the Church to control and direct. In England, also, though for other reasons there, the Church retained its control over elementary education for half a century longer.

Change in the spirit of the schools. The King of Prussia, Frederick William III (1797–1840), though he had given full adherence to the movement for general education during the dark period of Prussian history, was after all never fully in sympathy with the liberal aspect of the movement. After Austria, by the settlement at Vienna, became the leader of the German States, and Metternich the dominating political personality of Europe, the King came more and more to favor a restriction of liberties and the holding of education to certain rather limited lines, fearful that too much education of the people might prove harmful to the Government. Accordingly, under the influence of the King and

[1] This was proposed by Czar Alexander I of Russia in 1815, and became a personal alliance of the Czar of Russia, the Emperor of Austria, and the King of Prussia, "to promote religion, peace, and order." Other princes were asked to join this continental League to enforce peace and, under the rule of Prince Metternich, chief minister of Austria, it dominated Europe until after the political revolutions of 1848.

against the desires of the liberal leaders, Prussia now changed direction and embarked on a policy of reaction which checked normal educational progress; led to the unsuccessful revolution of 1848 and the subsequent almost fanatical governmental opposition to reforms; and was in large part responsible for the disaster of 1918. It is an interesting speculation as to how different the future German and world history might have been had Prussia and the German States held to the liberal ideas of the earlier period, and drawn their political conceptions from England and the new American nation, rather than from Austria and Russia.

Accordingly, in November, 1817, the Department of Public Instruction was replaced by a Ministry for Spiritual, Educational, and Medical Affairs, and Karl, Baron von Altenstein, was made Minister. He continued in office until his death,[1] in 1840, and his administration was marked by an increasing state centralization and limitation of the earlier plans. In 1819 he codified all previous practices into a general school law for the kingdom. While the King never really approved and issued it, it nevertheless became a basis for future work and is the law so enthusiastically described by Cousin, in 1830 (R. 280). Under his administration the earlier creative enthusiasm and the energy for the execution of great ideas disappeared, and the earlier "stimulating and encouraging attitude on the part of the authorities was now replaced by the timid policy of the drag and the brake." The earlier preparatory work in the development of Teachers' Seminaries and the establishment of elementary schools was allowed to continue; Pestalozzian ideas were for a time not seriously restricted; compulsory attendance was more definitely ordered enforced, in 1825; the abolition of tuition fees for *Volksschule* education was begun in 1833, but not completed until 1888; and a more careful supervision of schools was instituted, in 1834. The great change was rather in the spirit and direction of the instruction. The early tendency to emphasize nationalism and religious instruction (p. 571) was now stressed, and the liberal aspects of Pestalozzianism were increasingly subordinated to the more formal instruction and to nationalistic ends. The soldier and the priest joined hands in diverting the schools to the

[1] As a young man Altenstein had been in charge of a subordinate division of the Department of Public Instruction under Humboldt, and was a man of somewhat liberal ideas. Now he was compelled to fall in with the ideas of the political leaders and the wishes of the king, though he still did something to hold back the reactionary forces and preserve much of what had been gained.

creation of intelligent, devout, patriotic, and, above all else, obedient Germans, while the universal military idea, brought in by the successful work of Scharnhorst (p. 567), and retained after the War of Liberation as a survival of the old dynastic and predatory conception of the State, was more and more emphasized in the work of the schools and the life of the citizen. When Horace Mann reported on his visit to the schools of the German States, in 1843, he called attention to this element of weakness (R. 281), as well as to their many elements of strength.

Further intolerance and reaction. The reactionary tendencies which set in after the settlement of Vienna had, by 1840, produced stagnation in the life of the Governments of Europe, and the revolutions of 1848, which broke out in France, Italy, Switzerland, and the different German and Austrian States, were revolts against the reactionary governmental rule and an expression of disappointment at the failure to secure constitutional government. The revolutions were both successful and unsuccessful — successful in that the greater liberty they sought came later on, but unsuccessful at the time. In consequence, immediately following 1848, an even more reactionary educational policy was instituted. University freedom was markedly restricted; the institutions lost their earlier vigor; and the number of students suffered a marked decline in consequence. The secondary schools also felt the new influences. Latin and Greek were made compulsory; uniform programs for work were insisted upon; and Latin in particular was reduced to a grammatical drill that destroyed the spirit of the earlier instruction and put gymnasial teaching back almost to the type made so popular by Sturm. The few *Realschulen*, which had continued to exist and were tolerated before, were now treated with positive dislike. In 1859 they were able to force their first official recognition, but only when changed from practical schools for the middle classes to secondary schools, on the same basis as the *Gymnasien*, and for parallel ends.

It was upon the elementary schools (*Volksschulen*) and the Teachers' Seminaries that the most severe official displeasure now fell. A number of *Volksschule* teachers had been connected with the revolutions of 1848, and "over-education" was regarded as responsible. The Teachers' Seminary at Preslau, which had for long given a high grade of training, was closed, and the head of the Seminary at Berlin, Diesterweg, was dismissed because of his

strong advocacy of Pestalozzian ideas. Anything savoring of individualism was especially under the ban. Bitter reproaches were heaped upon the elementary-school teachers, and the new King, Frederick William IV (1840–61) considered their work as the very root of the political evils of the State. To a conference of Seminary teachers, held in 1849 in Berlin, he said:[1]

> You and you alone are to blame for all the misery which the last year has brought upon Prussia! The irreligious pseudo-education of the masses is to be blamed for it, which you have been spreading under the name of true wisdom, and by which you have eradicated religious belief and loyalty from the hearts of my subjects and alienated their affections from my person. This sham education, strutting about like a peacock, has always been odious to me. I hated it already from the bottom of my soul before I came to the throne, and, since my accession, I have done everything I could to suppress it. I mean to proceed on this path, without taking heed of any one, and, indeed, no power on earth shall divert me from it.

Thus easily did an autocratic Hohenzollern cast upon the shoulders of others the burden of his own failure to grasp the evolution in political thinking[2] which had taken place in Europe, since 1789. Unfortunately for the future of the German people he was able to force his will upon them.

PROGRESS OF ELEMENTARY EDUCATION AS SHOWN BY THE DECREASE IN ILLITERACY IN PRUSSIA, BY PROVINCES

(From *Rep. U.S. Com. Educ.*, 1899–1900, I, p. 781)

Provinces	1841	1864–65	1881	1894–95
	Per cent.	*Per cent.*	*Per cent.*	*Per cent.*
East Prussia	15.33	16.54	7.05	0.99
West Prussia			8.79	1.23
Brandenburg	2.47	.96	.32	.06
Pomerania	1.23	1.47	.43	[illegible]
Posen	41.00	16.90	9.97	.98
Silesia	9.22	3.78	2.33	.43
Saxony	1.19	.49	.28	[illegible]
Westphalia	2.14	1.03	.60	.32
Rhenish Prussia	7.06	1.13	.23	.05
Hohenzollern	....	.00	.00	.00
The State	9.30	5.52	2.38	.23

In 1854 new "Regulations" were issued which put the course of instruction for elementary schools back to the days of Frederick the Great. The one-class rural elementary school was made the standard. Everything beyond reading, writing, a little arithmetic, and religious instruction in strict accordance with the creeds of the Church, was considered as superfluous, and was to be allowed only by special permit. The elimination of illiteracy,

[1] Paulsen, Fr., *German Education, Past and Present*, p. 246.

[2] It was this same Frederick William IV who had for a time refused to grant constitutional government to Prussia, saying: "No written sheet of paper shall ever thrust itself like a second providence between the Lord God in heaven and this land." In 1850, however, he was forced to grant a limited form of constitutional government to his people.

the creation of obedient citizens, and the nationalizing of new elements became the aim of the schools.

The instruction in the Teachers' Seminaries was reduced to the merest necessities, and they were given clearly to understand that they were to train teachers, and not to prepare educated men. All theory of education, all didactics, all psychology were eliminated. A return was made to the subject-matter theory of education, and a limited subject-matter at that, and it once more became the business of the teacher to see that this was carefully learned. Religious instruction naturally once more came to hold a place of first importance. Similar reactionary movements took place in other German States, all being sensitive to the reactionary spirit of the time and the leadership of Austria and Prussia.

The modern German educational purpose. After about 1860, largely in response to modern scientific and industrial forces among a people turning from agriculture toward industrialism, a slight relaxation of the reactionary legislation began to be evident. This expressed itself chiefly in a diminution of the time given to memoriter work in religion, and the introduction in its place of work in German history and geography, with some work in natural science. In the Teachers' Seminaries instruction in German literature, formerly rigidly excluded, was now added. It was not, however, until after the unification of Germany, following the Franco-Prussian War, and the creation of Imperial Germany under the directive guidance of Bismarck, that any real change took place. Then the changes were due to new political, religious, social, industrial, and economic forces which belong to the later period of German history.

In 1872 a new law gave to the Prussian elementary schools a new course of study; reasserted the authority of the State in education; extended the control of the public authorities; and made the State instead of the Church the authority even for their religious instruction.[1] The schools were now to be used as of old to build up and strengthen the nation, but particularly to support the new Prussian idea as to the work and function of the State.

[1] "The motive which dictated the law of 1872 on school supervision (namely, placing the State in complete control of the supervision of religious as well as other instruction) was, as is well understood, to strengthen the hands of the government in its struggle with the Catholic hierarchy, which was then prominently before the public. The law affirmed again the sovereign right of the State over the whole school system, including the elementary or people's schools." (Nohle, Dr. E., *History of the German School System*, p. 79.)

Realien were given a new prominence, because of new industrial needs, and the instruction in religion was revamped. The old memoriter work was greatly reduced, and in its place an emotional and political emphasis was given to the religious instruction. To make the school of the people an instrument for fighting the growth of social democracy, and a support for the throne and government, instruction in religion was "placed in the center of the teacher's work," and teachers were given to understand that they were "members of an educational army and expected loyally to follow the flag." The secondary schools also were redirected. A new emphasis on scientific subjects and modern languages replaced the earlier emphasis on Greek. The Emperor interfered (**R.** 368) to force a revision of the gymnasial programs better to adapt them to modern needs. In particular were the universities of all the States unified and nationalized, and great technical universities created. Science, commerce, technical work, modern languages, and government were stressed in the instruction of the leaders.

Deciding clearly where the nation was to go and the route it was to follow, and that education for national ends was one of the important means to be employed, the different parts of the educational systems in the States — elementary schools, secondary schools, universities, normal schools, professional schools, technical schools, continuation schools — were carefully integrated into a unified state system, thoroughly national in spirit, and given a definite function to perform in the work which the Nation set itself to carry through. Nowhere have teachers been so well trained to play their part in a national plan, and nowhere have teachers acquitted themselves more worthily, from the point of view of the Government. As Alexander [1] has well said:

> During the nineteenth century the leaders of Germany decided that Germany should assume leadership in the world in every line of endeavor, particularly in commerce and world power. They set this as the very definite goal of their national ambition. The next question was how that aim could be accomplished. It was to be done through education. Accordingly school systems were organized with this aim in view. In a State such as the Germans proposed building there were to be leaders and followers. The followers were to be trained for a docile, efficient German citizenship; that is, the lower classes were to be made into God-fearing, patriotic, economically-independent Germans. This was the task of the *Volksschule*, and it has been wonder-

[1] Alexander, Thomas, *The Prussian Elementary Schools*, pp. 537–38.

fully well accomplished. This type of German is created to do the manual labor of the State.

The leaders were to be trained in middle and higher schools and in the universities. There were to be different grades of leaders; leaders in the lower walks of life, leaders in the middle walks of life, and leaders of the nation. The higher schools and the universities were employed to produce these types of leaders. . . . The leaders think and do; the followers merely do. The schools were organized for the express purpose of producing just these types.

So well was this system and plan working that, had the Imperial Government not been so impatient of that slower but surer progress by peaceful means, and staked all on a gambler's throw, in another half-century the German nation might have held the world largely in fee. As it is, the results which the Germans attained by reason of definite aims and definite methods are both an encouragement and a warning to other nations.

QUESTIONS FOR DISCUSSION

1. Point out the extent of the educational reorganization which resulted from the reform work begun at Halle.
2. How do you explain the very early German interest in compulsory school attendance, when such was unknown elsewhere in Europe?
3. Compare the Prussian Regulations of 1737 with what was common at that time in practice in the parishes of the American Colonies.
4. Show the wisdom of the early Prussian kings in working at school reform through the Church. Could they well have worked otherwise? Why?
5. How do you explain such a slow development of a professional teaching body in Prussia, when all the state influences had for so long been favorable to educational development?
6. Show that the Oberschulcollegium Board marked the beginnings of a State Ministry for Education for Prussia.
7. Show that the spirit of the Prussian leaders, after 1806, was a further expansion of the German national feeling which arose in the Period of Enlightenment.
8. Show that the reorganization of elementary education, and the creation of the University of Berlin, were almost equally important events for the future of German lands.
9. Show that the work of Prussia, in using the schools for national ends, was: (*a*) in keeping with the work of the French Revolutionary leaders, and (*b*) only a further extension of the organizing work done by Frederick the Great.
10. Show how the universities of Germany early took the lead of the universities of the world, and the influence of this fact on national progress.
11. Enumerate the new nineteenth-century tendencies observable in the early educational organization in Prussia.
12. Explain the marked mid-nineteenth-century reaction to educational development which set in.
13. Explain the early and marked welcome accorded science-study in German lands.
14. Explain in what ways Prussia attained an educational leadership, ahead of other nations.

SELECTED READINGS

In the accompanying *Book of Readings* the following selections, illustrative of the contents of this chapter, are reproduced:

273. Barnard: The Organizing Work of Frederick William I.
274. Prussia: The School Code of 1763.
275. Prussia: The Silesian School Code of 1765.
276. Austria: The School Code of 1774.
277. Fichte: Addresses to the German Nation.
278. Mann: The Prussian Elementary Teacher and his Training.
279. Dinter: Prussian Schools and Teachers as he found them.
280. Cousin: Report on Education in Prussia.
281. Mann: The Military Aspect of Prussian Education.

QUESTIONS ON THE READINGS

1. Explain the interest of Frederick William I (273) in elementary education.
2. Characterize, from the Codes of 1763 (274) and 1765 (275), and cite paragraph to show: (*a*) The type of instruction ordered provided; (*b*) the type of teacher expected; (*c*) the character of the attendance required; and (*d*) the character of the continuation training ordered.
3. Show the similarity in their main lines of the Prussian (274) and Austrian (276) Codes.
4. Would the reasoning of Fichte (277) apply to any crushed nation? Illustrate.
5. Do we select teachers for training as carefully in the United States today as they did in Prussia eighty years ago (278)? Could we?
6. Did such conditions as Dinter describes (279) exist, even later, with us?
7. Was the Prussian school system, as described by Cousin (280), a centralized or a decentralized system?
8. Show that Mann's reasoning as to the strength of the Prussian school system (281) was thoroughly sound.

SELECTED REFERENCES

*Alexander, Thomas. *The Prussian Elementary Schools.*

*Barnard, Henry. "Public Instruction in Prussia"; in *American Journal of Education*, vol. xx, pp. 333–434.

Barnard, Henry. *German Teachers and Educators.*

*Cassell, Henry. "Adolph Diesterweg"; in *Educational Review*, vol. I, pp. 345–56. (April, 1891.)

Friedel, V. H. *The German School as a War Nursery.*

Lexis, W. *A General View of the History and Organization of Public Education in the German Empire.*

*Nohle, E. "History of the German School System"; in *Report U.S. Commissioner of Education*, 1897–98, vol. I, pp. 3–82. Translated from Rein's *Encyclopädisches Handbuch der Pädagogik.*

*Paulsen, Fr. *German Education, Past and Present.*

*Paulsen, Fr. *The German Universities.*

*Russell, James. *German Higher Schools.*

Seeley, J. R. *Life and Times of Stein*, vol. I.

CHAPTER XXIII

NATIONAL ORGANIZATION IN FRANCE AND ITALY

I. NATIONAL ORGANIZATION IN FRANCE

Lines of development marked out by the Revolution. The Revolution proved very disastrous to the old forms of education in France. The old educational foundations, accumulated through the ages, were swept away, and the teaching congregations, which had provided the people with whatever education they had enjoyed, were driven from the soil. The ruin of educational and religious institutions in Russia under the recent rule of the Bolshevists is perhaps comparable to what happened in France. Many plans were proposed by the Revolutionary philosophers and enthusiasts, as we have seen (chapter xx), to replace what had once been and to provide better than had once been done for the educational needs of the masses of the people, but with results that were small in comparison with the expectations of the legislative assemblies which considered or approved them. Nevertheless, the directions of future progress in educational organization were clearly marked out before Napoleon came to power, and the work which he did was largely an extension, and a reduction to working order, of what had been proposed or established by the enthusiasts of the pre-revolutionary and revolutionary periods. At the time of the Revolution the State definitely took over the control of education from the Church, and the work of Napoleon and those who came after him was to organize public instruction into a practical state-controlled system.

In effecting this organization, the preceding discussions of education as a function of the State and the desirable forms of organization to follow all bore important fruit, and the forms finally adopted embodied not only the ideas contained in the legislation of the revolutionary assemblies, but the earlier theoretical discussion of the subject by Rolland (p. 510), Diderot (p. 511), and Talleyrand (p. 513) as well. They embodied also the peculiar administrative genius of France — that desire for uniformity in organization and administration — and hence stand in contrast to the state educational organizations worked out about the same time in German lands. The German States, as we have seen, had

for long been working toward state control of education, but when this was finally attained they still permitted a large degree of local initiative and control. The French, on the contrary, made the transition in a few years, and the system of state control which they established provided for uniformity, and for centralized supervision and inspection in the hands of the State. The

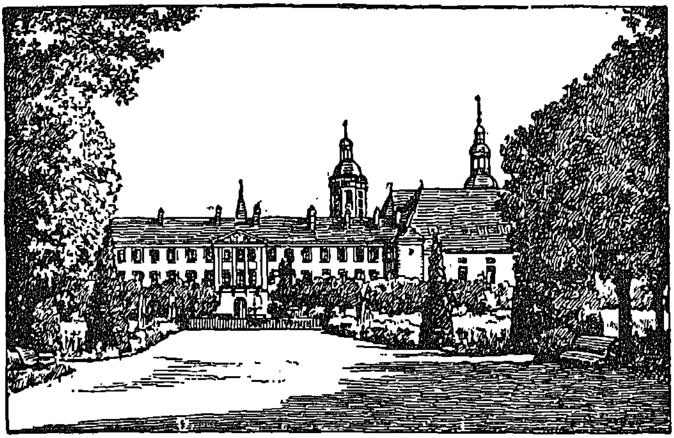

FIG. 174. AN OLD FOUNDATION TRANSFORMED

This was an ancient château in France. In 1604 Henry IV gave it to the Jesuits for a school. In 1791 it became national property, and was transformed into a Military College

forms for state control and education adopted in the two countries were also expressive of age-long tendencies in each. For three centuries German political organization, as we have seen, had been extremely decentralized on the one hand, and had been slowly evolving a system of education under the joint control of the small States and the Church on the other. In France, on the contrary, centralization of authority and subordination to a central government had been the tendency for an even longer period. When the time arrived for the State to take over education from the Church, it was but natural that France should tend toward a much more highly centralized control than did the German States, and the differing political situations of the two countries, at the opening of the nineteenth century, gave added emphasis to these differing tendencies.

In consequence, Prussia and the other German States early achieved a form of state educational organization which empha-

sized local interest and the spirit of the instruction, whereas France created an administrative organization which emphasized central control and, for the time, the form rather than the spirit of instruction. This was well pointed out by Victor Cousin (R. 280), in contrasting conditions in Prussia with those existing in France.

Napoleon begins the organization of education. In 1799 Napoleon became First Consul and master of France, and in 1804 France, by vote, changed from a Republic to an Empire, with Napoleon as first Emperor. Until his banishment to Saint Helena (1815) he was master of France. A man of large executive capacity and an organizing genius of great ability, whether he turned to army organization, governmental organization, the codification of the laws, or the organization of education, Napoleon's practical and constructive mind quickly reduced parts to their proper places in a well-regulated scheme. Shortly after he became Consul he took up, among other things, the matter of educational organization.

His first effort was in 1800, when he transformed the old humanistic Collège Louis le Grand (founded 1567) and created four military colleges from its endowment. One of these colleges he later, in characteristic fashion, transformed into a School of Arts and Trades (R. 282). In 1801 he signed the famous Concordat with the Pope. This restored the priests to the churches, with state aid for their stipends, and virtually turned over primary education again to the Church for care and control. The "Brothers of the Christian Schools" (p. 515) were recalled the next year and especially favored, and soon established themselves more firmly than before the Revolution.

FIG. 175.
COUNT DE FOURCROY
(1755-1809)

In 1802 Napoleon first turned his attention to a general organization of public instruction by directing Count de Fourcroy, a distinguished chemist who had been a teacher in the Polytechnic School, and whom he appointed Director of Public Instruction, to draw up, according to his ideas, an organizing law on the subject. This became the Law of 1802. It was divided into nine chapters, as follows:

I. Degrees of Instruction.	VI. The Military School.
II. Primary Schools.	VII. The National Pupils.
III. Secondary Schools.	VIII. The *nationales pensions*
IV. Lycées.	IX. General regulations.
V. Special Schools.	

1. Primary schools. The chapter on primary schools virtually reënacted the Law of 1795 (**R. 258 b**). Each commune[1] was required to furnish a schoolhouse and a home for the teacher. The teacher was to be responsible to local authorities, while the supervision of the school was placed under the prefect of the Department. The instruction was to be limited to reading, writing, and arithmetic, and the legal authorities were enjoined "to watch that the teachers did not carry their instructions beyond these limits." The teacher was to be paid entirely from tuition fees, though one fifth of the pupils were to be provided with free schooling. The State gave nothing toward the support of the primary schools.

The interest of Napoleon was not in primary or general education, but rather in training pupils for scientific and technical efficiency, and youths of superior ability for the professions and for executive work in the kind of government he had imposed upon France. To this end secondary and special education were made particular functions of the State, while primary education was left to the communes to provide as they saw fit. They could provide schools and the parents could pay for the teacher, or not, as they might decide. There was no compulsion to enforce the requirement of a primary school, and no state aid to stimulate local effort to create one. In consequence not many state primary schools were established, and primary education remained, for another generation, in the hands of private teachers and the Church.

2. Secondary schools. Chapters III and IV of the Law of 1802 made full provision for two types of secondary schools — the Communal Colleges and the Lycées[2] — to replace the Central Higher Schools established in 1795 (p. 518). These latter had lacked sadly in internal organization. They were merely day schools, lacking the dormitory and boarding arrangements which for over three centuries had characterized the French *collèges*. As

[1] The commune in France was the smallest unit for local government, and corresponded to the district, town, or township with us, or with the Church parish under the old régime. There were approximately 37,000 communes in France. The Department was a much larger unit, France being divided, for administrative purposes, into 82 Departments, these corresponding to a rather large county.

[2] By this term what is known elsewhere as secondary school must be understood. See footnote, page 272, for explanation of the term.

a result they had not prospered. The Law of 1802 now replaced them with two types of residential secondary schools, in which the youth of the country, under careful supervision and discipline, might prepare for entrance to the higher special schools. These fixed the lines of future French development in secondary schools.

The standard secondary school now became known as the *Lycée*. These institutions corresponded to the Colleges under the old régime, of which the College of Guyenne (**R. 136**) was a type. The instruction was to include the ancient languages, rhetoric, logic, ethics, belles-lettres, mathematics, and physical science, with some provision for additional instruction in modern languages and drawing. Each was to have at least eight "professors," an administrative head, a supervisor of studies, and a steward to manage the business affairs of the institution. The State usually provided the building, often using some former church school which had been suppressed, and the cities in which the Lycées were located were required to provide them with furniture and teaching equipment. The funds for maintenance came from tuition fees, boarding and rooming income, and state scholarships, of which six thousand four hundred were provided.

Besides the Lycées, every school established by a municipality, or kept by an individual, which gave instruction in Latin, French, geography, history, and mathematics was designated as a secondary school, or Communal College. These institutions usually offered but a partial Lycée course, and were tuition schools, being patronized by many parents whose tastes forbade the sending of their children to the lower-class primary schools. A license from the Government to operate was necessary before masters could be employed. They were to be maintained by the municipality without any state encouragement beyond some grants for capable teachers and scholarships in the Lycées for meritorious pupils.

Within two years after the enactment of the Law of 1802 there had been created in France 46 Lycées, 378 secondary schools of various degrees of completeness, and 361 private schools of secondary grade had been opened. A number of these disappeared later, in the reorganization of 1808. For the supervision of all these institutions the Director General of Public Instruction appointed three Superintendents of Secondary Studies; and for the work of the schools he outlined the courses of instruction in detail, laid down the rules of administration, prepared and selected the textbooks, and appointed the "professors."

Special or Higher Schools. The chapter of the Law of 1802 on Special Schools made provision for the creation of the following special "faculties" or schools for higher education for France:

3 medical schools, to replace the *Schools of Health* of 1794 (p. 518).
10 law schools; increased to 12 in 1804 (Date of *Code Napoléon*, p. 518).
4 schools of natural history, natural philosophy, and chemistry.
2 schools of mechanical and chemical arts.
1 mathematical school.
1 school of geography, history, and political economy.
A fourth school of art and design.
Professors of astronomy for the observatories.

In 1803 the School of Arts and Trades was added (**R. 282**), and in 1804, after Napoleon had signed the Concordat with the Pope, thus restoring the Catholic religion (abolished 1791), schools of theology were added to the above list.

We have here, clearly outlined, the main paths along which French state educational organization had been tending and was in future to follow. The State had definitely dispossessed the Church as the controlling agency in education, and had definitely taken over the school as an instrument for its own ends. Though primary education had been temporarily left to the communes, and was soon to be turned over in large part to be handled by the Church for a generation longer, the supervision was to remain with the State. The middle-class elements were well provided for in the new secondary schools, and these were now subject to complete supervision by the State. For higher education groups of Special Schools, or Teaching Faculties, replaced the older universities, which were not re-created until after the coming of the Third Republic (1871). The dominant characteristics of the state educational system thus created, aside from its emphasis on secondary and higher education, were its uniformity and centralized control. These characteristics were further stressed in the reorganization of 1808, and have remained prominent in French educational organization ever since.

Creation of the University of France. By 1806 Napoleon was ready for a further and more complete organization of the public instruction of the State, and to this end the following law was now enacted (May 10, 1806):

Sec. 1. There will be formed, under the name of Imperial University, a body exclusively commissioned with teaching and public education throughout the Empire.

Sec. 2. The members of this corporation can contract civil, special, and temporary obligations.

Sec. 3. The organization of this corps will be given in the form of a law to the legislative body in the session of 1810.

In 1808, without the formality of further legislation, Napoleon issued an Imperial Decree creating the University of France. This was not only Napoleon's most remarkable educational creation, but it was an administrative and governing organization for education so in harmony with French spirit and French governmental ideas that it has persisted ever since, though changed somewhat in form with time.

The Decree began by declaring that "public instruction, in the whole Empire, is confined exclusively to the University," and that "no school, nor establishment for instruction, can be formed independent of the Imperial University, and without the authority of its chief." Unlike the University of Berlin (p. 574), created a year later, this was not a teaching university at all, but instead a governing, examining, and disbursing corporation,[1] presided over by a Grand Master and a Council of twenty-six members, all appointed by the Emperor. This Council decided all matters of importance, and exercised supervision and control over education of all kinds, from the lowest to the highest, throughout France.[2] To assist the Council, general inspectors for medicine, law, theology, letters, and science were provided for, to visit and "examine the condition of instruction and discipline in the faculties, *lycées*, and colleges; to inform themselves in regard to the fidelity and ability of professors, regents, and ushers; to examine the students; and to make a complete survey of those institutions, in their whole administration." Beneath the Grand Master and Council the State was divided into twenty-seven "Academies" (administrative districts), each of which had a Rector, a Council of ten, and Inspectors, all appointed by the Grand Master. These

[1] The University had at its disposal approximately 2,500,000 francs a year. This was derived from a state grant of 400,000 francs, the income from the property still remaining from the old confiscated universities, and the remainder largely from examination fees. In 1850 its property was taken over by the State, and the University was changed into a state department.

[2] This type of administrative organization is at first not easy for the American student to understand. The University of the State of New York — virtually the department of public instruction for the State — is our closest American analogy. On the banishment of Napoleon and the restoration of the monarchy, in 1815, the Grand Master and Council were replaced by a Commissioner of Public Instruction, with Assistant Commissioners for the different divisions, and in 1820 this was further changed into a Royal Council of Public Instruction.

exercised jurisdiction over teachers and pupils in all schools, and decided all local matters, subject to appeal to the Grand Master and Council.

Under this new administrative organization but little change was made in the schools from that provided for in the law of 1802. Primary education remained as before, private schools and Church schools supplying most of the need. All were under the supervision of the University, and all were instructed to

make as a basis of their instruction: (1) the precepts of the Catholic religion; (2) fidelity to the Emperor, to the imperial monarchy, the depository of the happiness of the people, and to the Napoleonic dynasty, the conservator of the unity of France, and of all the ideas proclaimed by the Constitution.

The *Lycées* and Communal Colleges continued, much as before,[1] and during the half-century which followed, experienced a steady and substantial growth.

DEVELOPMENT OF THE LYCÉES

Year	1809	1811	1813	1829	1847	1866
Lycées	35	36	36	36	54	74
Pupils	9,068	10,926	14,492	15,087	23,207	34,442
Free pupils	4,199	4,008	3,500	1,600		

DEVELOPMENT OF THE COMMUNAL COLLEGES

Year	1809	1815	1830	1849	1855	1866
Colleges	273	323	332	306	244	251
Pupils	18,507	19,320	27,308	31,706	32,500	33,038

The Special Higher Schools were also continued, and to the list given (p. 593) Napoleon added (1808) a Superior Normal School (**R.** 283) to train graduates of the *Lycées* for teaching. This opened in 1810, with thirty-seven students and a two-year course of instruction, and in 1815 a third year of method and practice work was added. With some varying fortunes, this institution has continued to the present.

The new interest in primary education. The period from 1815 to 1830 in France is known as the Restoration. Louis XVIII was made King and ruled until his death in 1824, and his brother Charles X who followed until deposed by the Revolution of 1830. Though a representative of the old régime was recalled on the abdication of Napoleon, the great social gains of the Revolution were retained. There was no odious restoration of privilege and absolute monarchy. Frenchmen continued to be equal before

[1] In 1909 a decree restored Greek and Latin to their old place of first importance in the Lycées, thus destroying the strong interest in scientific instruction, in so far as the higher secondary schools were concerned, which had characterized the Revolution.

the law; a form of constitutional government was provided; the right of petition was recognized; and the system of public instruction as Napoleon had organized it continued almost unchanged. For a decade at least there was less political reaction in France than in other continental States.

In matters of education, what had been provided was retained, and there seems (**R. 285**) to have been an increasing demand for additions and improvements, particularly in the matter of primary and middle-class schools, and a willingness on the part of the communes to provide such advantages. Some small progress had been made in meeting these demands, before 1830.

In 1816 a small treasury grant (50,000 francs) was made for school books, model schools, and deserving teachers in the primary schools, and in 1829 this sum was increased to 300,000 francs. In 1818 the "Brothers of the Christian Schools" were permitted to be certificated for teaching on merely presenting their Letter of Obedience from the head of their Order, and in 1824 the cantonal school committees were remodeled so as to give the bishops and clergy entire control of all Catholic primary schools. Monitorial instruction was introduced from England by private teachers, in an effort to supply the beginnings of education at small expense, and for a time this had some vogue, but never proved very successful. In 1815 the *Lycées* were renamed Royal Colleges, but in 1848 the old name was restored, and has since been retained. In 1817 there were thirty-six *Lycées*, receiving an annual state subsidy of 812,000 francs; thirty years later the fifty-four in existence were receiving 1,500,000 francs. From 1822 to 1829 the Higher Normal School was suppressed, and twelve elementary normal schools were created in its stead.

Early work under the Monarchy of 1830. In July, 1830, Charles X attempted to suppress constitutional liberty, and the people rose in revolt and deposed him, and gave the crown to a new King, Louis-Philippe. He ruled until deposed by the creation of the Second Republic, in 1848. The "Monarchy of 1830" was supported by the leading thinkers of the time, prominent among whom were Thiers and Guizot, and one of the first affairs of State to which they turned their attention was the extension downward of the system of public instruction. The first steps were an increase of the state grant for primary schools (1830) to a million francs a year; the overthrow of the control by the priests of the cantonal school committees (1830); the abolition (1831) of

the exemption of the religious orders from the examinations for teaching certificates; and the creation (1830–31) of thirty new normal schools.

The next step was to send (1831) M. Victor Cousin — Director of the restored Higher Normal School of France — on a mission to the German States, and in particular to Prussia, to study and report on the system of elementary education, teacher training, and educational organization and administration which had done so much for its regeneration. So convincing was Cousin's *Report*[1] that, despite bitter national antipathies, it carried conviction throughout France. "It demonstrated to the government and the people the immense superiority of all the German States, even the most insignificant duchy, over any and every Department of France, in all that concerned institutions of primary and secondary education." Cousin pronounced the school law of Prussia (**R. 280**) "the most comprehensive and perfect legislative measure regarding primary education" with which he was acquainted, and declared his conviction that "in the present state of things, a law concerning primary education is indispensable in France." The chief question, he continued, was "how to procure a good one in a country where there is a total absence of all precedents and experience in so grave a matter." Cousin then pointed out the bases, derived from Prussian experience and French historical development, on which a satisfactory law could be framed (**R. 284 a-c**); the desirability of local control and liberty in instruction (**R. 284 f-g**); and strongly recommended the organization of higher primary schools (a new creation; first recommended (1792) by Condorcet, p. 514) as well as primary schools (**R. 284 e**) to meet the educational needs of the middle classes of the population of France.

FIG. 176
VICTOR COUSIN
(1792–1867)

The Law of 1833. On the basis of Cousin's *Report* a bill, making the maintenance of primary schools obligatory or every commune; providing for higher primary schools in the towns and cities; additional normal schools to train teachers for these schools; a

[1] *Report on the Condition of Public Instruction in Germany, and Particularly in Prussia.* Paris, 1831. Reprinted in London, 1834; New York City, 1835.

corps of primary-school inspectors, to represent the State; and normal training and state certification required to teach in any primary school, was prepared. In an address to the Chamber of Deputies, in introducing the bill (1832), M. Guizot,[1] the newly appointed Minister for Public Instruction, set forth the history of primary instruction in France up to 1832 (**R. 285 a**); described the two grades of primary instruction to be created (**R. 285 b**); and, emphasizing Cousin's maxim that "the schoolmaster makes the school," dwelt on the necessity for normal training and state certification for all primary teachers (**R. 285 c**). In preparing the bill it was decided not to follow the revolutionary ideas of free instruction, by lay and state teachers, or to enforce compulsion to attend, and for these omissions M. Guizot, in his *Mémoires* (**R. 286**), gives some very interesting reasons.

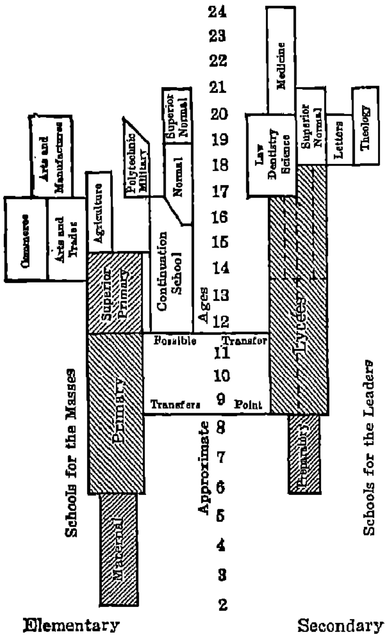

FIG. 177. OUTLINE OF THE MAIN FEATURES OF THE FRENCH STATE SCHOOL SYSTEM

The bill became a law the following year, and is known officially as the Law of 1833. This Law forms the foundations upon which the French system of national elementary education has been developed, as the Napoleonic Law of 1802 and the Decree of 1808 have formed the basis for secondary education and French state administrative organization. A primary school was to be established in every commune, which was to provide the building, pay a fixed minimum salary to the teacher, and where able maintain the school. The State reserved the right to fix the pay of the teacher, and even to approve his appointment. A tuition fee was to be paid for attendance, but those who could not pay were to

[1] François Pierre Guillaume Guizot was Minister for Public Instruction from 1832 to 1837, and head of the French government from 1840 to 1848. He was throughout his entire political career a conservative, anxious to preserve constitutional government under a monarchy and stem the tide of republicanism.

be provided with free places. The primary schools were to give instruction in reading, writing, arithmetic, the weights and measures, the French language, and morals and religion. The higher primary schools were to build on these subjects, and to offer instruction in geometry and its applications, linear drawing, surveying, physical science, natural history, history, geography, and music, and were to emphasize instruction in "the history and geography of France, and in the elements of science, as they apply it every day in the office, the workshop, and the field." [1] These latter were the *Bürgerschulen*, recommended by Cousin (**R.** 284 e) on the basis of his study of Prussian education.[2]

The primary schools were to follow a uniform plan, and as a guide a *Manual of Primary Instruction* was issued, giving detailed directions as to what was to be done. In sending out a copy of the Law to the primary teachers of France, M. Guizot enclosed a personal letter to each, informing him as to what the government expected of him in the new work (**R.** 287). During the four years that M. Guizot remained Minister of Public Instruction he rendered a remarkable service, well described by Matthew Arnold (**R.** 288), in awakening his countrymen to the new problem of popular education then before them.

The results under the Law of 1833 were large,[3] and the subsequent legislation under the monarchy of 1830 was important. For the first time in French history an earnest effort was made to provide education suited to the needs of the great mass of the people, and the marked development of schools which ensued showed how eagerly they embraced the opportunities offered their chil-

[1] We see here the beginnings of education in agriculture, in which the French were pioneers.

[2] The schools, though, were not very successful, because of social reasons. Parents who could afford to do so sent their children to the much higher-priced Communal Colleges or *Lycées*, where Latin was the main study, in preference to sending them to a scientific, modern-type, middle-class school, as conferring a better social distinction on both pupils and parents.

[3] By 1838 there were 14,873 public schools the property of the communes; by 1847 there were 23,761; and by 1851 but 2500 out of approximately 37,000 communes were without schools. There were also over six thousand religious schools by 1850. By 1834 the number of boys in the communal schools was 1,656,828, and a decade later over two millions. The thirteen normal schools of 1830 had grown to seventy-six by 1838, with over 2500 young men then in training for teaching. In 1836 the Law of 1833 was extended to include, where possible, schools for girls as well, and the creation of a new set of normal schools to train schoolmistresses was begun. By 1848 over three and a half millions of children, of both sexes, were receiving instruction in the primary schools. In 1835 primary inspectors, those "sinews of public instruction," as Guizot termed them, were established, one for every Department, by royal decree. By 1847 there were two inspectors-general, and 13 inspectors and sub-inspectors at work in France.

Development of Infant Schools

Year......	1827	1837	1840	1843	1846	1850	1863	1886	1897
Schools..	1	251	555	1489	1861	1735	3308	6696	5683

dren, though the schooling was neither compulsory nor gratuitous. In 1837 Infant Schools, for still younger children, were authorized, and in 1840 state aid for these was begun. In 1836 classes for adults, first begun in Paris in 1820, were authorized generally, but it was not until 1867 that these were formally incorporated into the state school system. In 1845 state aid for the Communal Colleges, as well as for the *Lycées*, was begun.

Reaction after 1848. In France, as in Europe generally, the people were steadily becoming more liberal, as they became better educated, while the rulers were becoming more autocratic. The result was the series of revolutions of 1848, which broke out first in France, and finally extended to most of the countries of continental Europe. In France the King, Louis-Philippe, was forced to abdicate; a Republic, based on universal manhood suffrage, was proclaimed; and Louis Napoleon, a nephew of Napoleon I, was elected President. In 1851 Napoleon established himself as Dictator; prepared a new constitution providing for an Empire; and, in 1852, dissolved the Second Republic and assumed the title of Emperor Napoleon III. This Second Empire lasted until 1870, when France was humiliated by the Prussians as the latter had been by Napoleon I in 1806. The Emperor and his armies were taken prisoners (1870) and, in 1871, the Prussians occupied Paris and crowned the new Emperor of united and Imperial Germany in the palace of the French Kings at Versailles. A Third Republic now succeeded, and this has lasted to the present time.

The period from 1848 to 1870 in France was a period of middle-class rule, and reaction in education as in government. In 1848 a Sub-Commission on Primary Education reported in opposition to the state primary schools. The troubles of 1848 had brought to view the political restlessness which had taken possession of the teachers, as well as other classes in society. The new schools were naturally suspected of being the source of the popular discontent. Many teachers had sympathized with, and some had taken part in the disturbances, and teachers generally were now placed under close surveillance. Some of the leaders were forced into exile until after 1870. Religious schools, regarded as more favorable to monarchical needs and purposes, were now encouraged, and the number of religious schools increased from 6464 in 1850, to 11,391

by 1864. Private schools, too, were given full freedom to compete with the state schools, and the pay of the primary teachers was reduced. The course in the normal schools was condemned as too ambitious, and, in 1851, was cut down. The course of instruction in the primary schools, on the other hand, was, unlike in Prussia, broadened instead of restricted, and in particular emphasis was placed, in keeping with nearly a century of French tradition, on scientific and practical subjects.[1] The law of 1850 stated the requirements for primary schools as follows:

> Art. 23. Primary instruction comprises moral and religious instruction, reading, writing, the elements of the French language, computation, and the legal system of weights and measures. It may comprise, in addition, arithmetic applied to practical operations, the elements of history (a required subject after 1867) and geography, notions of the physical sciences and of natural history applicable to the ordinary purposes of life, elementary instruction in agriculture, trade, and hygiene; and surveying, leveling, linear drawing, singing, and gymnastics.

Religious instruction prospered under the Second Empire, and the state primary schools lost in importance. The *Lycées* continued largely as classical institutions, though after 1865 the crowding of the rising sciences began to dispute the supremacy of classical studies. There were, however, many voices of discontent, particularly from exiled teachers (**R. 289**), and the way was rapidly being prepared for the creation of a stronger and better state school system as soon as political conditions were propitious.

Revolutionary ideals at last realized. With the creation of the Third Republic, in 1870, a change from the old conditions and old attitudes took place. Up to about 1879 the new government was in the control of those who were at heart sympathetic with the old conditions, but were forced to accept the new; from 1879 to 1890 was a transition period; and since 1890 the Republic has grown steadily in strength and regained its position among the great powers of the world. The first few years of the new Republic were devoted to paying the Prussian indemnity and clearing the soil of France of German armies, but, after about 1875, education became a great national interest among the leaders of France.[2] France saw, somewhat as did Prussia after 1806, the

[1] This was in large part due to manufacturing and business needs, as France was rapidly forging ahead during the period as a manufacturing and commercial nation.

[2] Prominent among these, perhaps most prominent, was Jules Ferry, Mayor of Paris during the trying period of 1870–71, then member of the French legislature, and Minister of Public Instruction in a number of cabinets between 1879 and 1885. Drawing his inspiration from Condorcet's *Plan of Education* (p. 514; **R. 256**) and

necessity for creating a strong state system of primary, secondary, and higher schools to train the youth of the land in the principles of the Republic, strengthen the national spirit, advance the welfare of the State, and protect it from dangers both within and without.

PROGRESS OF PRIMARY EDUCATION IN FRANCE, DURING THE NINETEENTH CENTURY, AS SHOWN BY THE REDUCTION IN THE PERCENTAGE OF ILLITERACY AMONG ARMY CONSCRIPTS, AND AMONG PERSONS SIGNING THE MARRIAGE RECORDS

Years	*Army conscripts*	*Marriage records*	
		Men	*Women*
1790		53.0%	73.0%
1827	58.0%		
1833	47.8		
1840	42.8		
1845	37.8		
1850	35.7		
1855	33.7	32.0	47.0
1860	30.0	30.4	44.8
1865	24.4	27.5	41.0
1870	19.7	26.8	39.4
1875	16.0	20.0	31 0
1880	14.7	16.1	24.5
1885	11.5	13.0	20.2
1890	7.8	8.7	12.8
1896	5.1	5.8	7.8
1901	4.4	4.4	6.3

Millions were put into the building of schoolhouses (1878–88); new normal schools were established; a normal school for women was created in each of the eighty-seven departments of France; the academic and superior councils of public instruction were reorganized to eliminate clerical influences (1881); religious instruction was replaced by moral and civic instruction (**R. 290**); and clerical "Letters of Obedience" were no longer accepted, and all teachers were required to be certificated by the State. The Law of 1881, eliminating instruction in religion from the elementary schools, was followed, in 1886, by a law providing for the gradual replacement of clerical by lay teachers. In 1904, the teaching congregations of France were suppressed. All elementary education now became public, free, compulsory, and secular,[1] and teachers were required to be neutral in religious matters.[2]

Edgar Quinet's *Instruction of the People* (**R.** 289), he brought about the enactment of a series of reform school laws commonly known as the "Ferry Laws." These provided for free, compulsory, elementary education, to be given by laymen; secondary education for girls; the extension of normal schools; and enlarged aid by the State in the building up of popular education.

[1] "The non-sectarian school is not the work of a few advanced thinkers imposed upon a docile country. They would not have been able to create anything enduring if the French conscience had not been ready to follow them. This is what the adversaries of our schools do not wish to understand, cannot understand, or are anxious to conceal from those whom they direct. Certainly they have the right to

[2] "To each man his proper sphere; to the minister of religion the liberty of preaching the doctrine of the different churches, to teachers who teach in the name of the State, that is, of society, the right of limiting themselves to the field of universal human morals, together with the duty of refraining from any attack on religious beliefs. Neutrality is guaranteed by the secularization of the teaching body, and it must be strictly observed." (Compayré, Gabriel.)

Since 1871, also, technical and scientific education has been emphasized; the primary and superior-primary schools have been made free (1881) and compulsory (1882); classes for adults have been begun generally; the state aid for schools has been very greatly increased; *lycées* and colleges for women have been created (1880); the *lycées* modernized in their instruction;[1] and the reorganization and reëstablishment of a series of fifteen state universities of a modern type, begun in 1885, was completed in 1896. The reorganization and expansion of education in France since 1875 is a wonderful example of republican interest and energy, and is along entirely different lines from those followed, since the same date, in German lands.

After the lapse of nearly a century we now see the French Revolutionary ideas of gratuity, obligation, and secularization finally put into effect, and the state system of public instruction outlined by Condorcet (p. 514), in 1792, at last an accomplished fact.

II. NATIONAL ORGANIZATION IN ITALY

Importance of the work of Napoleon. So much has been written about the deluge of blood that took place in Paris in the days of the Commune and the time of the National Conventions, and of the military victories and autocratic rule of Napoleon Bonaparte, that it is difficult to appraise the importance of either, from the point of view of the progress of civilization and of the organization of modern political institutions, at its true worth. The faults

attempt a reaction according to their own preferences. They have no right to believe, nor even to allow it to be believed, that the creation of the non-sectarian school was the *coup de force* of an audacious minority. The non-sectarian school has come because the nation wished it. The program of moral instruction, long prophesied, conceived, and hoped for, was in the traditions of France as she marched forward toward her republican aspirations. This program is not only the conscious effort of the men who gave the school a new mission — that of laying the foundation of social peace through elementary instruction; it is the expression of the republican conscience of 1882." (Moulet, Alfred, *D'une éducation morale démocratique.*)

[1] "The most striking feature is that, in place of the one single and uniform course for all pupils, several are provided for their selection. Here is obvious the influence of the elective courses common in the United States, whose existence and success were reported on to the Minister of Public Instruction by the Commission to the World Exposition at Chicago, in 1893. The courses last seven years. The school period is divided into two cycles, first one of four years, and then one of three. In the first cycle, the pupils have a choice of two sections, one emphasizing the ancient and modern languages, the other the modern languages and science. In the second cycle there are four sections, viz., Græco-Latin; Latin-modern languages; Latin-scientific; and scientific-modern languages." (Compayré, Gabriel, *Education in France.*)

of both are prominent and outstanding, but it nevertheless was the merit of the Revolution that it enabled France, and along with France a good portion of western Europe, to rid itself of the worst survivals of the Middle Ages, while to Napoleon much of western Europe is indebted for the foundation of its civil institu-

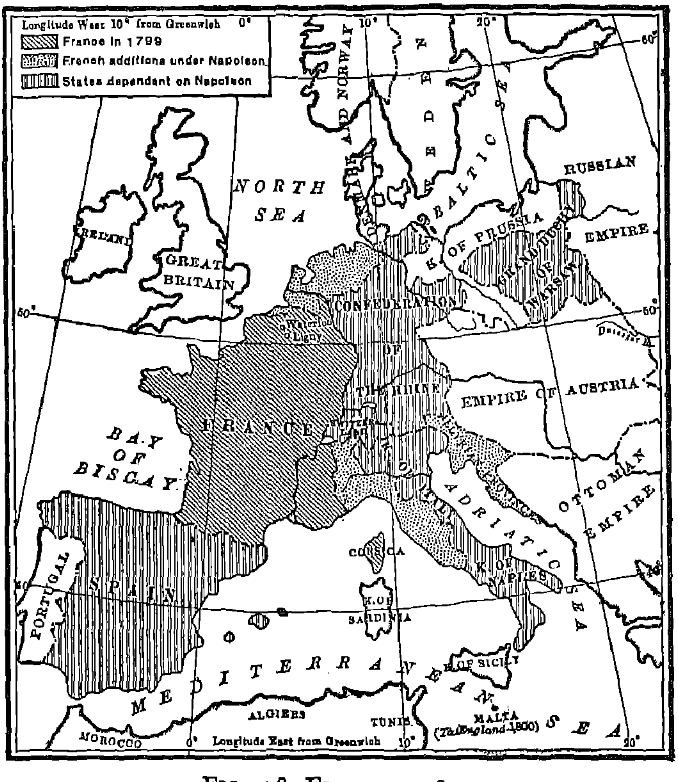

FIG. 178. EUROPE IN 1810
Showing the control of France when Napoleon was at the height of his power

tions, unified legal procedure, beginnings of state educational organization, and modern governmental forms. Writing on this subject, Matthew Arnold[1] well said:

> With all his faults, his [Napoleon's] reason was so clear and strong that he saw, in its general outlines at least, the just and rational type of civil organization which modern society needs, and wherever his armies went he instituted it.

[1] Arnold, Matthew, *Schools and Universities on the Continent*, p. 115. (London, 1868.)

That the French Revolution's merit and service was a real one is shown by all the world, as it improves, getting rid more and more of the Middle Ages. That Napoleon's merit and service was a real one is shown by the bad governments which succeeded him having always got rid, when they could, of his work, and by the progress of improvement, when these governments became intolerable, and are themselves got rid of, always bringing it back. Where governments were not wholly bad, and did not get rid of Napoleon's good work, this work turns out to have the future on its side, and to be more likely to assimilate the institutions round it to its pattern than to be itself assimilated by them.

In the Italian States, the Netherlands, some of the French cantons of Switzerland, the Rhine countries, and the Danish peninsula, in particular, the rule of Napoleon, imposed by his armies, carried out by rulers of his selection, and maintained for a long enough period that the legal organization, civil order, unified government, and taste of educational opportunities of a new type which his rule brought became attractive to the people, in time proved deeply influential in their political development.[1] All these nations still show traces of the French influence in their state educational organization. We shall take the Italian States as a type, and examine briefly the influence on the development of state educational organization there which resulted from contact with the forward-looking rule of "The Great Emperor."

Decline in importance of education in Italy. In a preceding chapter (p. 503), we mentioned that the rule of Napoleon in northern Italy awakened the national spirit from its long lethargy, and caused Italian liberals to look forward, for the first time since the days of the Revival of Learning, to the time when the Italian States might be united into one Italian nation, with Rome as its capital. This became the work of the mid-nineteenth century (see dates, Fig. 179), though not fully completed until the World War of 1914–18. Italy stands to-day a great united nation, with a large future ahead of it, but as such it is entirely a nineteenth-century creation. From the time of its intellectual decline following the Renaissance, to the middle of the nineteenth century, Italy remained "a geographical expression" and split up into a number of little independent States; up to the time of Napoleon it was a part of the German-ruled "Holy Roman Empire."

[1] For example, by the Peace of Lunéville (1801), by which Napoleon took from the Germans all territory west of the Rhine and consolidated it, he extinguished 118 free cities, principalities, and petty states. In addition, he extinguished the separate existence of 160 others east of the Rhine. The importance of such consolidations for the future of Germany has been large.

After the great patriotic effort of the period of the Revival of Learning (p. 264) in Italy, and the rather feeble and unsuccessful attempts at a reform of religion which followed, the intellectual development of Italy was checked and turned aside for centuries by the triumph of an unprogressive and anti-intellectual attitude on the part of the dominant Church. The persecution of Galileo (p. 388) was but a phase of the reaction in religion which had by that time set in. Education was turned over to the religious orders, such as the Jesuits and the Barnabites, and instruction was turned aside from liberal culture and the promotion of learning to the support of a religion and the stamping out of heresy. Though a number of educational foundations were made, and some important undertakings begun after the days when her universities were crowded and Florence and Venice vied with one another for the intellectual supremacy of the western world, the spirit nevertheless was gone, and both education and government settled down to a tenacious preservation of the existing order. Scholars ceased to frequent the schools of Italy; the universities changed from seats of learning to degree-conferring institutions;[1] the intellectual capitals came to be found north of the Alps; and the history of educational progress ceased to be traced in this ancient land. In the early part of the eighteenth century the schools there reached perhaps their lowest intellectual level.

The beginnings of reform in Savoy. The first and almost the only attempt to change this condition, before Napoleon's armies went crashing through the valley of the Po, was made in the eighteenth century by two Dukes of Savoy. By decrees of 1729 and 1772 they took the control of the secondary (Latin) schools in their little duchy from the religious orders, and established a Council of Public Instruction to reform the university examinations, see that teachers were prepared for the Latin schools, and take over in the name of the authorities of the duchy the control of education. Though inspired by a political interest, the two dukes brought into their little kingdom the much-needed ideas of honest work, effective administration, and public spirit, and laid the foundations for the control of education by the public authorities later on. The only other attempt to improve conditions

[1] Bologna, for example, had 166 professors in the early seventeenth century, but by 1737 it had but 62. The universities came chiefly to be places where young men obtained degrees but not learning. At Naples a noble family by the name of Avellino came to have the power of virtually selling degrees in law and medicine.

came in Lombardy, in 1774, which then was a part of the Austrian dominions and felt the short-lived reforms of Maria Theresa (p. 562; R. 276). Elsewhere in Italy conditions remained unchanged until the time of Napoleon.

Napoleon revives the national spirit. In 1796 Napoleon's armies invaded Sardinia, Lombardy, and the valley of the Po, and he soon extended his control to almost all the Italian peninsula. For nearly two decades thereafter this collection of little States felt the unifying, regenerating influence of the organizing French. Monasteries and convents and religious schools were transformed into modern teaching institutions, brigandage was put down, and efficient and honest government was established. The ideas of the French Law of 1802 as to education were applied. Every town was ordered to establish a school for boys, to teach the reading and writing of Italian and the elements of French and Latin; the secondary schools were modernized; and the universities were completely reorganized. Some of the universities were reduced to *licei* (*lycées;* secondary schools), while others were strengthened and their revenues turned to better purposes. The universities at Naples and Turin in particular were transformed into strong institutions, with a decided emphasis on scientific studies. A normal school was founded at Pisa, on the model of the one at Paris. New standards in education were set up, the study of the sciences was introduced into the secondary schools, and the study of medicine and law was regenerated.

With the fall of Napoleon his work was largely undone. The firm, just, and intelligent government which he had given Italy — something the land had not known for ages — came to an end. The little States were "handed back to the reactionary dynasts whose rule was neither benevolent nor intelligent, while the ever-ready Austrian army crushed out any local movement for liberal institutions." The laws regarding education were repealed, and the schools the French had established were closed as revolutionary and dangerous. The normal school at Pisa ceased to exist; the university at Naples was dismantled; the one at Turin was closed; and the Jesuits were allowed to return and reorganize instruction. The result was that a common discontent with ensuing conditions made Italians conscious of their racial and historical unity, and this finally expressed itself in the revolutions of 1848. These failed at the time, and the heel of the Austrian oppressor came down harder than before. Liberty of the press

practically ceased. The national leaders went into exile for safety. The prisons were filled with political offenders. The schools were closed or ceased to influence. The Pope, fearing the

FIG. 179. THE UNIFICATION OF ITALY, SINCE 1848

end of his earthly kingship approaching, united firmly with the Austrians to resist liberal movements. Finally, under the leadership of the enlightened King of Sardinia, Victor Emmanuel (1849–78) and his Prime Minister, Count of Cavour, the Austrians were driven out (1859–66) and all Italy was united (1870) under the rule of one king interested in promoting the welfare of his people.

Sardinia leads to national organization and control. The movement to free Italy was essentially a liberal movement. Many hoped to create a republic, but chose a liberal constitutional monarchy under Victor Emmanuel as the most feasible plan. Cavour understood the importance of public instruction, and from the

first began to build up schools [1] and put them under state control. In 1844, a normal school was opened in Turin. In 1847, a Minister of Public Instruction was appointed and a Council of Public Instruction created, after the plan of France. In 1848, a General School Law was enacted, and the organization and improvement of schools was begun with a will. In 1850, a commission was sent to study the school systems of Europe, and in particular those of France and of the German States. A Supreme Council of Public Instruction was now formed for Sardinia, and the process of creating primary schools, higher-primary schools, classical and technical secondary schools, colleges, and the reorganization of the universities was begun. In 1859, when the growth of Italian unity was rapidly extending the rule of Victor Emmanuel,[2] a new law, providing a still better state organization of public instruction, was enacted. A Minister of Public Instruction appointed by the King, a Supreme Council of Public Instruction, and a Department of Public Instruction as a branch of the government, were all provided for, after the French plan.

FIG. 180
COUNT OF CAVOUR
(1810–61)

This Law of 1859 was later extended to cover all Italy, and has formed the basis for all subsequent legislation. It clearly established a state system of education, though the religious schools were allowed to remain. It also established control after the French plan, with a high degree of centralization and uniformity. The schools established, too, were much after the French type, though much less extensive in scope. The primary and superior-primary at first were but two years each, though since extended in all the larger communities to a six-year combined course. The two-class school system was established, as in France and German lands. The secondary-school system consisted of a five-year *ginnasio*, established in many places (218 in Italy by 1865; 458 by

[1] Not only were schools built up, but commerce, roads, and in particular scientific agriculture were subjects of deep interest to Cavour. He saw, very clearly, that if Sardinia was to be the nucleus of a future Italy, Sardinia must show unmistakably her worthiness to lead.

[2] By 1859 Sardinia had come to include Savoy and Lombardy, and was the largest State in northern Italy. A year later all but Venetia and the States of the Church had been added.

1916) with a three-year *liceo* following, but found in a smaller number of places. Parallel with this a seven-year non-classical scientific and technical secondary school was also created, and these institutions have made marked headway (461 by 1916) in central and northern Italy. Pupils may pass to either of these on the completion of the ordinary four-year primary course, at the age of ten. Above the secondary schools are numerous universities. The normal-school system created prepared for teaching in the primary schools, while the university system followed the completion of the *liceo* course.

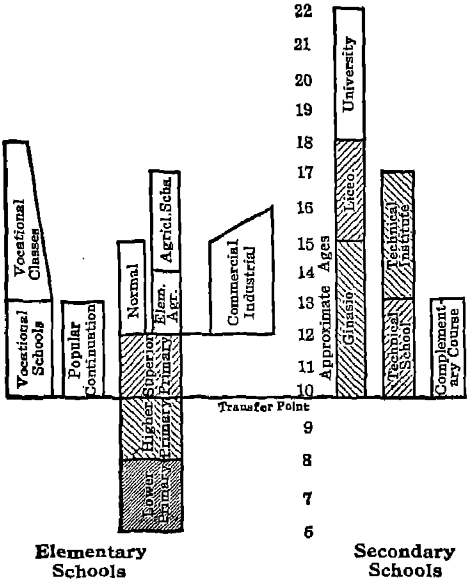

FIG. 181. OUTLINE OF THE MAIN FEATURES OF THE ITALIAN STATE SCHOOL SYSTEM

The influence of French ideas in Italian educational organization is clearly evident. Before the French armies brought French governmental ideas and organization to Italy almost nothing had been done. Then, during the first six decades of the nineteenth century, the transition from the church-school idea to the conception of education as an important function of the State was made, and the resulting system is largely French in organization and form.

Subsequent progress. From this point on educational progress has been chiefly a problem of increased finances and the slow but gradual extension of educational opportunities to more and more of the children of the people. The church schools have been allowed to continue side by side with the state schools, and the problem of securing satisfactory working relations has not always been easy of solution.

In 1877 primary education[1] was ordered made compulsory,

[1] The Law of 1877 fixed the instruction in the primary schools, for the three com-

and religious instruction was dropped from the state schools, but the slow progress of the nation in extending literacy indicates that but little had been accomplished in enforcing the compulsion previous to the new compulsory law of 1904. This made more stringent provisions regarding schooling, and provided for three thousand evening and Sunday schools for illiterate adults. In 1906, an earnest effort was begun to extend educational advantages in the southern provinces, where illiteracy has always been highest. In 1911, the state aid for elementary education was materially increased. In 1912, a new and more modern plan of studies for the secondary schools was promulgated. Since 1912 many important advances have been inaugurated, such as elementary schools of agriculture, vocational schools, continuation schools, the middle-class industrial and commercial schools. The World War directed new attention to the educational needs of the nation. Italy, at last thoroughly awakened, seems destined to be a great world power politically and commercially, and we may look forward to seeing education used by the Italian State as a great constructive force for the advancement of its national interests.

QUESTIONS FOR DISCUSSION

1. Show how the Revolution marked out the lines of future educational evolution for France.
2. Explain why France and Italy evolved a school system so much more centralized than did other European nations.
3. Explain Napoleon's lack of interest in primary education, in view of the needs of France in his day.
4. Show that Napoleon was right, time and circumstances considered, in placing the state emphasis on the types of education he favored.
5. Explain why middle-class education should have received such special attention in Cousin's Report, and in the Law of 1833.
6. Was the course of instruction provided for the primary schools in 1833, times and needs considered, a liberal one, or otherwise? Why?
7. Compare the 1833 and the 1850 courses.
8. Explain why all forms of education in France should have experienced such a marked expansion and development after 1875.
9. Explain why great military disasters, for the past 150 years, have nearly always resulted in national educational reorganization.
10. Appraise the work and the permanent influence of Napoleon.
11. Explain Napoleon's interest in establishing schools and universities, when the Austrian and Church authorities were so interested in abolishing what he had created.
12. What did the dropping of religious instruction from the primary schools of both France and Italy, both strong Catholic countries, indicate as to national development?

---

pulsory years, as reading, writing, the Italian language, elements of civics, arithmetic, and the metric system. The omission of religious instruction excited much opposition from church authorities, but without effect.

SELECTED READINGS

In the accompanying *Book of Readings* the following selections are reproduced:

282. Le Brun: Founding of the School of Arts and Trades.
283. Jourdain: Refounding of the Superior Normal School.
284. Cousin: Recommendations for Education in France.
285. Guizot: Address on the Law of 1833.
286. Guizot: Principles underlying the Law of 1833.
287. Guizot: Letter to the Primary Teachers of France.
288. Arnold: Guizot's Work as Minister of Public Instruction.
289. Quinet: A Lay School for a Lay Society.
290. Ferry: Moral and Civic Instruction replaces the Religious.

QUESTIONS ON THE READINGS

1. Just what attitude toward education did the action of Napoleon in changing the character of the school at Compiègne (282) express?
2. What type of school (283) was the re-created Superior Normal?
3. Just what did Victor Cousin recommend (284) as to (*a*) schools to be created; (*b*) control and administration; (*c*) compulsory attendance; (*d*) schools for the middle classes; and (*e*) education and control of teachers?
4. Was Guizot's Law of 1833 (285) in harmony with the recommendations of Cousin (284)?
5. Why have public opinion and legislative action, in France and elsewhere, so completely reversed the positions taken by Guizot and his advisers (286) in framing the Law of 1833?
6. From Guizot's letter to the teachers of France (287), and Arnold's description of his work (288), just what do you infer to have been the nature of his interest in advancing primary education in France?
7. Contrast the reasoning of Guizot (286) and Quinet (289) on lay instruction. Of the reasoning of the two men, which is now accepted in France and the United States?
8. Contrast the letters of Guizot (287) and Ferry (290) to the primary teachers of France.

SUPPLEMENTARY REFERENCES

Arnold, Matthew. *Popular Education in France.*
*Arnold, Matthew. *Schools and Universities on the Continent.*
*Barnard, Henry. *National Education in Europe.*
Barnard, Henry. *American Journal of Education*, vol. XX.
Compayré, G. *History of Pedagogy*, chapter XXI.
*Farrington, Fr. E. *The Public Primary School System of France.*
*Farrington, Fr. E. *French Secondary Schools.*
Guizot, F. P. G. *Mémoires*, Extracts from, covering work as Minister of Public Instruction, 1832–37, in Barnard's *American Journal of Education*, vol. XI, pp. 254–81, 357–99.

CHAPTER XXIV

THE STRUGGLE FOR NATIONAL ORGANIZATION IN ENGLAND

I. THE CHARITABLE-VOLUNTARY BEGINNINGS

English progress a slow but peaceful evolution. The beginnings of national educational organization in England were neither so simple nor so easy as in the other lands we have described. So far this was in part due to the long-established idea, on the part of the small ruling class, that education was no business of the State; in part to the deeply ingrained conception as to the religious purpose of all instruction; in part to the fact that the controlling upper classes had for long been in possession of an educational system which rendered satisfactory service in preparing leaders for both Church and State; and in part — probably in large part — to the fact that national evolution in England, since the time of the Civil War (1642–49) has been a slow and peaceful growth, though accompanied by much hard thinking and vigorous parliamentary fighting. Since the Reformation (1534–39) and the Puritan uprising led by Cromwell (1642–49), no civil strife has convulsed the land, destroyed old institutions, and forced rapid changes in old established practices. Neither has the country been in danger from foreign invasion since that memorable week in July, 1588, when Drake destroyed the Spanish Armada and made the future of England as a world power secure.

English educational evolution has in consequence been slow, and changes and progress have come only in response to much pressure, and usually as a reluctant concession to avoid more serious trouble. A strong English characteristic has been the ability to argue rather than fight out questions of national policy; to exhibit marked tolerance of the opinions of others during the discussion; and finally to recognize enough of the proponents' point of view to be willing to make concessions sufficient to arrive at an agreement. This has resulted in a slow but a peaceful evolution, and this slow and peaceful evolution has for long been the dominant characteristic of the political, social, and educational progress of the English people. The whole history of

the two centuries of evolution toward a national system of education is a splendid illustration of this essentially English characteristic.

Eighteenth-century educational efforts. England, it will be remembered (chapter XIX, § III), had early made marked progress in both political and religious liberty. Ahead of any other people we find there the beginnings of democratic liberty, popular enlightenment, freedom of the press, religious toleration,[1] social reform, and scientific and industrial progress. All these influences awakened in England, earlier than in any other European nation, a rather general desire to be able to read (**R.** 170), and by the opening of the eighteenth century we find the beginnings of a charitable and philanthropic movement on the part of the churches and the upper classes to extend a knowledge of the elements of learning to the poorer classes of the population.

As a result, as we have seen (chapter XVIII), the eighteenth century in England, educationally, was characterized by a new attitude toward the educational problem and a marked extension of educational opportunity. Even before the beginning of the century the courts had taken a new attitude toward church control of teaching,[2] and in 1700 had freed the teacher of the elementary school from control by the bishops through license.[3] In 1714 an Act of Parliament (13 Anne, c. 7) exempted elementary schools from the penalties of conformity legislation, and they were thereafter free to multiply and their teachers to teach.[4] The dame school (**R.** 235) now became an established English institution (p. 447). Private-adventure schools of a number of types arose (p. 451). The churches here and there began to provide elementary parish-schools for the children of their poorer mem-

[1] Prussia and Holland possibly form exceptions in the matter. Frederick the Great (p. 474) was noted for his liberality in religious matters. There different varieties of Protestants, Catholics, and Jews were all tolerated, and there they mingled and intermarried. So well were the Jews received that the type — German-Jew — is to-day familiar to the world.

[2] As early as 1670, in the celebrated Bates case, the English court held that a teacher could not be dispossessed from his school for teaching without the Bishop's license, if he were the nominee of the founder or patron. This led (p. 438) to a great increase in endowed schools.

[3] In the Cox case (1700), another important legal decision, the English court held that there was not and never had been any ecclesiastical control over any schools other than grammar schools, and that teachers in elementary schools did not need to have a license from the Bishop. The year following, in the case of *Rex* v. *Douse*, the same principle was affirmed in even clearer language.

[4] It was not until 1779 that an Act (19 Geo. III, c. 44) granted full freedom to Dissenters to teach. In 1791 a supplemental Act (31 Geo. III, c. 32, s. 13-14) granted similar liberty to Roman Catholics.

bers (p. 449), or training-schools for other children who were to go out to service (R. 241). Workhouse schools and "schools of industry" also were used to provide for orphans and the children of paupers (p. 453).

The Charity-School system. Most important of all was the organization, by groups of individuals (R. 237) and by Societies (S.P.C.K.; p. 449) formed for the purpose, and maintained by subscription (R. 240), collections (R. 291), and foundation incomes, of an extensive and well-organized system of Charity-Schools (p. 449). The "Society for the Promotion of Christian Knowledge" dates from the year 1699, and the "Society for the Propagation of the Gospel in Foreign Parts" from 1701. The first worked at home, and the second in the overseas colonies.[1] Both did much to provide schools for poor boys and girls, furnishing them with clothing and instruction (R. 292), and training them in reading, writing, spelling, counting, cleanliness, proper behavior, sewing and knitting (girls), and in "the Rules and Principles of the Christian Religion as professed and taught in the Church of England" (R. 238 b). The Charity-School idea was in a sense an application of the joint-stock-company principle to the organization and maintenance of an extensive system of schools for the education of the children of the poor, the stock being subscribed for by humanitarian-minded people. The upper classes had for long been well provided, through tutors in the home and grammar schools and colleges, with those means for education which have for centuries produced an able succession of gentlemen, statesmen, governors, and scholars for England, and many of the commercial middle-class had, by the eighteenth century, become able to purchase similar advantages for their sons. These now united to provide, as part of a great organized charity and under carefully selected teachers (R. 238 a), for the more promising children of their poorer neighbors, the elements of that education which they themselves had enjoyed.

The movement spread rapidly over England (p. 451), and soon developed into a great national effort to raise the level of intelligence of the masses of the English people. Thousands of persons gave their services as directors, organizers, and teachers. Traveling superintendents were employed. A rudimentary form of teacher-training was begun. The preaching of a Charity Sermon

[1] It was this second Society that did notable work in the Anglican Colonies of America, and particularly in and about New York City (p. 369). See Kemp, W. W. *Support of Schools in Colonial New York by the S.P.G.* (New York, 1913.)

each year,[1] with a special collection, became a general English practice.

The Voluntary System. The rise of the Methodist movement,[2] after 1730 (p. 489); the earthquake shocks of 1750; the rise of the popular novel and newspaper; the printing of political news, and cheap scientific pamphlets (p. 492); and the growing tendency to debate questions and to apply reason to their solution — all tended to give emphasis in England to these eighteenth-century charitable means for extending education to the children of those who could not afford to pay for it. Unlike the German States, where the State and the Church and the school had all worked together from the days of the Reformation on, the English had never known such a conception. The efforts, though, of the educated few, in the eighteenth and early nineteenth centuries, to extend the elements of learning, order, piety, cleanliness, and proper behavior to the children of the masses, formed an important substitute for the action by the Church-State which was so characteristic a feature of Teutonic lands.

We see in these eighteenth-century efforts the origin of what became known in England as "the voluntary system," and upon this voluntary support of education — private, parochial, charitable — the English people for long relied. Of action by the State there was none during the eighteenth century, aside from an Act of 1767 (7 Geo. III, c. 39) relating to the education of pauper children. This established the important principle — unfortunately not followed up — of providing that poor parish children of London might be maintained and educated "at the cost of the rates."

The Sunday-School movement. One other voluntary eighteenth-century movement of importance in the history of English educational development should be mentioned here, as it formed the connecting link between the parochial-charity-school move-

[1] Begun, in 1704, in London, these were continued yearly there until 1877. They were also preached for more than a century in many other places. To these sermons the children marched in procession, wearing their uniforms, and a collection for the support of the schools was taken. Of the first of these occasions in London, Strype, in his edition of Stow, says: "It was a wondrous surprising, as well as a pleasing sight, that happened June the 8th, 1704, when all the boys and girls maintained at these schools, in their habits, walked two and two, with their Masters and Mistresses, some from Westminster, and some through London; with many of the Parish ministers going before them; and all meeting at Saint Andrews', Holburn, Church, where a seasonable sermon was preached . . . upon Genesis xviii, 19, *I know him that he will command his children*, etc., the children (about 2000) being placed in the galleries."

[2] "The religious revival under Wesley owed, perhaps, more than is generally suspected to the Christian teaching in these new and humble elementary schools." (Montmorency, J. E. G. de, *The Progress of Education in England*, p. 54.)

ment of the eighteenth century and the philanthropic period of the educational reformers of the early nineteenth. This was the Sunday-School movement, first tried by John Wesley in Savannah, in 1737, but not introduced into England until 1763. The idea amounted to little, though, until practically worked out anew (1780) by Robert Raikes, a printer of Gloucester, and described by him (1783) in his *Gloucester Journal* (R. 293), after he had experimented with it for three years.[1] His printed description of the Sunday-School idea gave a national impulse to the movement, and Sunday Schools were soon established all over England to take children off the streets on Sunday and provide them with some form of secular and religious instruction.[2]

The movement coincided with new religious, social, and economic forces which were at work, and which awakened an interest not only in the education of the children of the poorer working-classes, but caused the upper and middle classes in society to feel a new sense of responsibility for social and educational reform. The cold and unemotional religion of the English Church in the early eighteenth century had created an indifference to the simple truths and duties of the Gospels. The great religious revival under Wesley and Whitefield had challenged such an attitude, and had done much to infuse a new spirit into religion and awaken a new sense of responsibility for social welfare. The rapid growth of population in the towns, following the beginnings of factory life (p. 493), had created new social and economic problems, and the neglect of children in the manufacturing towns had shocked many thinking persons. The way in which parents and children, freed from hard labor in the factories on Sundays, abandoned themselves to vice, drunkenness, and profanity caused many, among them Raikes himself (R. 293), to inquire if "something could not be done" to turn into respectable men and women "the little heathen of the neighborhood." The Sunday School was his answer, and the answer of many all over England.[3]

[1] He gathered together the children (90 at first) employed in the pin factories of Gloucester, and paid four women a shilling each to spend their Sundays in instructing these poor children "in reading and the Church Catechism."

[2] Sunday being a day of rest and the mills and factories closed, the children ran the streets and spent the day in mischief and vice. In the agricultural districts of England farmers were forced to take special precautions on Sundays to protect their places and crops from the depredations of juvenile offenders.

[3] "In a very special way they met the sentiment of the times. They were cheap — many were conducted by purely voluntary teachers — they did not teach too much, and they had the further merit of not interfering with the work of the week." (Birchenough, C., *History of Elementary Education in England and Wales*, p. 40.)

In 1785 "The Society for the Support and Encouragement of Sunday Schools in the different Counties of England" was formed with a view to establishing a Sunday School in every parish in the kingdom, and the Queen headed a subscription list, following a general appeal for funds. By 1787 it was estimated that 234,000 children in England and Wales were attending a Sunday School, and by 1792 the number had increased to half a million. The Parliamentary return for 1818 showed 5463 Sunday Schools in existence, and 477,225 scholars; in 1835 the returns showed 1,548,-890 scholars, half of whom attended no other school, and approximately 160,000 voluntary teachers.[1] In Manchester, then a city scourged with almost universal child-labor, the schools (1834) were in session five and a half hours on Sunday and two evenings a week. The moral and religious influence of these schools was important, and the instruction in reading and writing, meager as it was, filled a real need of the time.

FIG. 182. A RAGGED-SCHOOL PUPIL
(From a photograph of a boy on entering the school; later changed into a respectable tradesman. From Guthrie)

Other voluntary schools; "Ragged Schools." The Charity Schools and the Sunday Schools were the two most conspicuous of the voluntary-organization type of undertakings for providing the poor children of England with the elements of secular and religious education. Many other organizations of an educational and charitable nature, aided also by many individual efforts, too numerous to mention, were formed with the same charitable and humanitarian end in view. Others, similar in type, charged a small fee, and hence were of the private-adventure type. Sunday Schools, day schools, evening schools, children's churches, bands of hope, clothing clubs, messenger brigades, shoeblack brigades, orphans' schools, reformatory schools, industrial schools, ragged schools — these were some of the types that arose. Only one of these — "Ragged Schools" — will be described.

[1] In a Manchester Sunday School, in 1834, there were 2700 scholars and 120 unsalaried teachers, all but two or three of whom were former pupils in the Sunday Schools, now teaching others, free of charge, in return for the advantages once given them.

The originator of the "Ragged Schools" — schools for the education of destitute children, waifs and strays not reached by other agencies — was a large-hearted cobbler of Portsmouth, by the name of John Pounds (1766–1839), who divided his time between cobbling and rescue work among the poorest and most degraded children of his neighborhood. His school is shown in the picture facing this page. (Plate 15.) In his shoeshop he taught such children, free of charge, to read, write, count, cook their food, and mend their shoes. He was a schoolmaster, doctor, nurse, and playfellow to them all in one. His workshop was a room of only six by eighteen feet, yet in it he often had forty children under his instruction. His work set an example, and "Ragged Schools," or "Schools for the Destitute," began to be formed in many places by humanitarians. These took the form of day schools, night schools, Sunday Schools, and the so-called industrial schools (**R.** 294). The instruction in most of them was entirely free,[1] but some charged a small fee, in a few cases as high as a shilling a month. It was one of these schools that Crabbe described when he wrote:[2]

Poor Reuben Dixon has the noisiest school
Of ragged lads, who ever bowed to rule;
Low in his price — the men who heave our coals,
And clean our causeways, send him boys in shoals.
To see poor Reuben, with his fry beside —
Their half-check'd rudeness and his half-scorned pride —
Their room, the sty in which th' assembly meet,
In the close lane behind the Northgate street;
T' observe his vain attempts to keep the peace,
Till tolls the bell, and strife and trouble cease,
Calls for our praise; his labours praise deserves,
But not our pity; Reuben has no nerves.
'Mid noise and dirt, and stench, and play, and prate,
He calmly cuts the pen or views the slate.

In 1844 "The Ragged School Union" was formed in London, and maintained there many of the types of schools mentioned above. The "Constitution and Rules of the Association for the Establishment of Ragged Industrial Schools for Destitute Children in Edinburgh" (**R.** 294) gives a good idea as to the nature,

[1] "The amount of instruction rarely, if ever, exceeds the first four rules of arithmetic, with reading and writing. The class of children instructed is presumed to be of the very poorest, living in the most crowded districts. No doubt a large number come under this designation, but not a few better-to-do persons are found ready to take advantage for their children of the free instruction thus held out to them, and even at times almost pressed upon them." (Bartley, George C. T., *The Schools for the People*, p. 385.)

[2] The Reverend George Crabbe (1754–1832). "The schools of the Borough."

support, and instruction in such schools. As late as 1870, when national education was first begun in England, there were about two hundred of these Ragged Schools in London alone, with about 23,000 children in them. Upon many such forms of irregular schools England depended before the days of national organization.

Other eighteenth-century influences. During the latter half of the eighteenth century French Revolutionary thought[1] and American political action began to exert some influence on public opinion in England. The small upper ruling class, alarmed at the developments in France, became confirmed in its opposition to any general popular education aside from a little reading, writing, counting, and careful religious training, while on the other hand men of more liberal outlook felt that popular enlightenment was a necessity to prevent the masses from becoming stirred by inflammatory writings and speeches. The increasing distress in the agricultural regions, due to the rapid change of England from an agricultural to a manufacturing nation; the crowding of great numbers of working people into the manufacturing towns; and the social misery and political unrest following the Napoleonic wars all alike contributed to a feeling of need for any form of philanthropic effort that gave promise of alleviating the ills of society. There now grew up a small but influential body of thinkers who favored the maintenance of a system of general and compulsory education by the State, and the separation of the school from the Church. The most notable proponents of this new theory were Adam Smith, the Reverend T. R. Malthus, and the Anglo-American Thomas Paine. The first approached the question from an economic point of view, the second from an economic and biologic, and the third from the political.

In 1776 Adam Smith's *Wealth of Nations* appeared. This was one of the great books of all time. Among other matters he dealt with the question of education. He pointed out that English society was now becoming highly organized; that the new manufacturing life had completely changed the simple conditions of an earlier agricultural society; that in the narrow round of manufac-

[1] French Revolutionary thought "represented an attack on over-interference, vested interests, superstition, and tyranny of every form. It showed a marked propensity to ignore history, and to judge everything by its immediate reasonableness. It pictured a society free from all laws and coercion, freed from all clerical influence and ruled by benevolence, a society in which all men had equal rights and were able to attain the fullest self-realization. In its strictly educational aspects, it demanded the withdrawal of education from the Church and the setting up of a state system of secular instruction." (Birchenough, C., *History of Elementary Education in England and Wales*, p. 20.)

turing duties and town life people tended to lose their inventiveness and to stagnate; and that the individual degeneracy which set in in a more highly organized type of society became a social danger of large magnitude. Hence, he argued (**R. 295**), it was a matter of state interest that "the inferior ranks of the people" be instructed to make them socially useful and to render them "less apt to be misled into any wanton or unnecessary opposition to measures of government." Accordingly, he held, the State had every right, not only to take over elementary education as a state function and a public charge, but also to make it free and compulsory.

FIG. 183. ADAM SMITH (1723–90)

In 1798 the Reverend T. R. Malthus's *Essay on Population* appeared. This was a precursor of the work of Darwin, and another of the great books of all time. He pointed out that population everywhere tended to outrun the means of subsistence, and that it was only prevented from doing so by preventive checks which involved much misery and vice and pauperism. To prevent pauperism each individual must exercise moral restraint and foresight, and to enable all to do this a widespread system of public instruction was a necessity (**R. 296**). The money England had spent in poor-relief he regarded as largely wasted, because it afforded no cure. In the general education of a people the real solution lay. He said:

FIG. 184
REV. T. R. MALTHUS
(1766–1834)

> We have lavished immense sums on the poor, which we have every reason to think have constantly tended to aggravate their misery, . . . It is surely a great national disgrace that the education of the lowest classes in England should be left to a few Sunday Schools, supported by a subscription from individuals, who can give to the course of instruction in them any kind of bias which they may please. (**R 296.**)

Agreeing thoroughly with Adam Smith that a general diffusion of knowledge was a safeguard to society, he urged the teaching of the

elements of political economy in the common schools to enable people to live better in the new type of competitive society.[1]

In 1791–92 Thomas Paine published his widely read *Rights of Man.* He expressed the French Revolutionary political theory, holding that government, while capable of great good were its powers only properly exercised, was, as organized, an evil. In a well-governed nation none would be permitted to go uninstructed, he held, and he would cut off poor-relief and make a state grant of £4 a year for every child under fourteen for its education, and would compel parents to send all children to school to learn reading, writing, and arithmetic.

Each of these three books had a long and a slowly cumulative influence, and a small number of young and powerful champions of the idea of popular education as a public charge began, early in the nineteenth century, to urge action and to influence public opinion.

II. THE PERIOD OF PHILANTHROPIC EFFORT (1800–33)

Conditions at the beginning of the nineteenth century. This second period in the history of the organization of English education begins with the publication, in 1797, of Dr. Andrew Bell's *An Experiment in Education,* describing his work in educating large numbers of children by means of the so-called mutual system, at the Male Asylum at Madras, India. The period properly ends with the first Parliamentary grant for education, in 1833. In its main characteristics it belongs to the eighteenth rather than to the nineteenth century, as the prominent educational movements of the eighteenth (charity-schools, Sunday Schools, schools of industry) continue strong throughout the period, and many new undertakings of a similar charitable nature ("Ragged Schools"; associations for the improvement of the condition of the poor, etc.) were begun.

The period — during and after the Napoleonic wars — was one of marked social and political unrest, and of corresponding emphasis on social and philanthropic service. The masses were discontented with their lot, and were beginning to be with their lack

[1] The ideas of Malthus were especially offensive to his brother clergymen, and created quite a furor. Many regarded him as an insane and unorthodox fanatic. A prevailing idea of the time was that of a "beautiful order Providentially arranged," and it was the custom to give everything a rose-colored hue. The poor were thought to be contented in their poverty, and the rich and the aristocratic considered themselves divinely appointed to rule over them. Malthus saw the fallacy of such thinking, and stated matters in the light of biologic and political truths.

of political privileges. Numerous plans to quiet the unrest and improve conditions were proposed, of which schemes to increase employment (industrial schools; evening schools), to encourage thrift (savings banks; children's brigades), and to spread an elementary and religious education (mutual schools; infant schools) that would train the poor in self-help were the most prominent. "The Society for Bettering the Condition and Increasing the Comforts of the Poor," founded in 1796, became a very important early-nineteenth-century institution. Branches were established all over England. Soup-kitchens, clothing-stations, savings banks, and schools were among the chief lines of activity. In particular it extended and improved Sunday Schools, encouraged the formation of charity-schools and schools of industry, and later gave much aid in establishing the new monitorial schools. Educational interest steadily strengthened during the period, though as yet along lines that were deemed relatively harmless, were inexpensive, and were largely religious in character.

The eighteenth-century conception of education as a charity, designed where given to train the poor to "an honest, upright, grateful, and industrious poverty," still prevailed; there was as yet little thought of education as designed to train the poor to think for and help themselves. The eighteenth-century conception of the educational process, too, which regarded education as something external and determined by adult standards and needs, and to be imposed on the child from without, also continued. The purpose of the school was to manufacture the standard man, and the business of the teacher was to so organize and methodize instruction that the necessary knowledge could be acquired as economically, from a financial point of view, as possible. The Pestalozzian conception of education as a development of the individual, according to the law of his own nature, found but slow acceptance in England. Mental development, scientific instruction, the habit of thinking, the exercise of judgment, and free and enlightened opinion were ideas that found little favor there, and hence had to be handled carefully by those who had caught the new conception of the educational process.

In the political reaction following the end of Napoleon's rule the upper and ruling classes of England, in common with those of continental lands, became exceedingly suspicious of much education for the masses. To secure contributions for schools it became necessary "to avow and plead how little it was that the

schools pretended or presumed to teach."[1] England now experienced a great development of manufacturing and commerce, a great material prosperity ensued, and the growing demand for education was met by a counter-demand that the education provided should be systematized, economical, and should not teach too much. Such a system of training was now discovered and applied, in the form of mutual or monitorial instruction, and was hailed as "a new expedient, parallel and rival to the modern inventions in the mechanical departments."

Origin of mutual or monitorial instruction. In 1797 Dr. Andrew Bell, a clergyman in the Established Church, published the

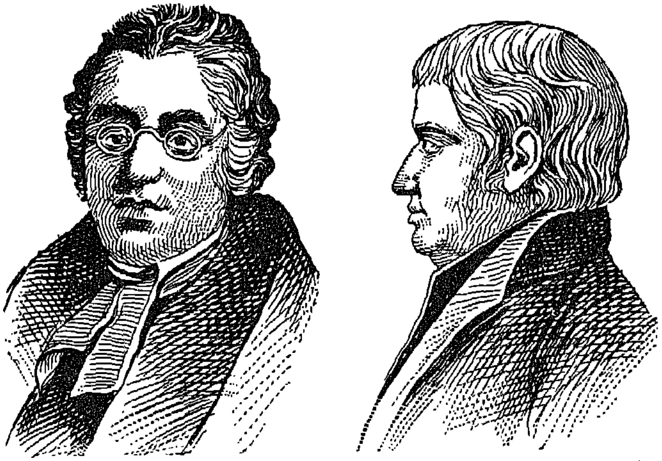

Rev. Andrew Bell (1753–1832) Joseph Lancaster (1778–1838)

Fig. 185. The Creators of the Monitorial System

results of his experiment in the use of monitors in India.[2] The idea attracted attention, and the plan was successfully introduced into a number of charity-schools. About the same time (1798) a young Quaker schoolmaster, Joseph Lancaster by name, was led independently to a similar discovery of the advantages of using monitors, by reason of his needing assistance in his school and being too poor to pay for additional teachers. In 1803 he published an account of his plan.[3] The two plans were quite similar,

[1] Foster, John, *An Essay on the Evils of Popular Ignorance*, p. 259.

[2] Bell, Reverend Dr. Andrew, *An Experiment in Education made at the Male Asylum at Madras, Suggesting a System by which a School or a Family may teach itself under the Superintendence of the Master or Parent.* London, 1797.

[3] Lancaster, Joseph, *Improvements in Education as it Respects the Industrial Classes of the Community.* London, 1803; New York, 1807.

attracted attention from the first, and schools formed after one or the other of the plans were soon organized all over England.

Increased attention was attracted to the new plans by a bitter church quarrel which broke out as to who was the real originator of the idea,[1] Bell being upheld by Church-of-England supporters, and Lancaster by the Dissenters. In 1808 "The Royal Lancastrian Institution" was formed, which in 1814 became "The British and Foreign School Society," to promote Lancastrian schools. This society had the close support of King George III, the Whigs, and the *Edinburgh Review*, while such liberals as Brougham, Whitbread, and James Mill were on its board of directors. This Society sent out Lancaster to expound his "truly British" system, and by 1810 as many as ninety-five Lancastrian schools had been established in England. His model school in Borough Road, Southwark, which became a training-school for teachers, is shown on the following page. Lancaster was a poor manager; became involved in financial difficulties; and in 1818 left for the United States, where he spent the remainder of his life in organizing such schools and expounding his system. For a time this attracted wide attention, as we shall point out in the following chapter.

Lancaster's work stimulated the Church of England into activity, and in 1811 "The National Society for Promoting the Education of the Poor in the Principles of the Established Church throughout England and Wales" was formed by prominent S.P.C.K. (p. 449) members and Churchmen, with the Archbishop of Canterbury as president. This Society was supported by the Tories, the Established Church, and the *Quarterly Review*, and was formed to promote the Bell system,[2] "which made religious instruction an essential and necessary part of the plan." Within a month £15,000 had been subscribed to establish schools. Among many other contributions were £500 each from the universities of Oxford and Cambridge. A training-school for teachers was organized; district societies were formed over England to establish schools; and a system of organized aid was extended for both buildings and maintenance. By 1831 there were 900,412

[1] Both Bell and Lancaster worked with great energy to organize schools after their respective plans, and quarreled with equal energy as to who originated the idea. While both probably did, the idea nevertheless is older than either. In 1790 Chevalier Paulet organized a monitorial school in Paris; while the English schoolmaster, John Brinsley (1587–1665), in his *Ludus Literarius, or the Grammar Schooles* (1612), laid down the monitorial principle in explicit language.

[2] This Society adopted, as a fundamental principle, "that the national religion should be made the foundation of national education, and according to the excellent liturgy and catechism adopted by our Church for that purpose."

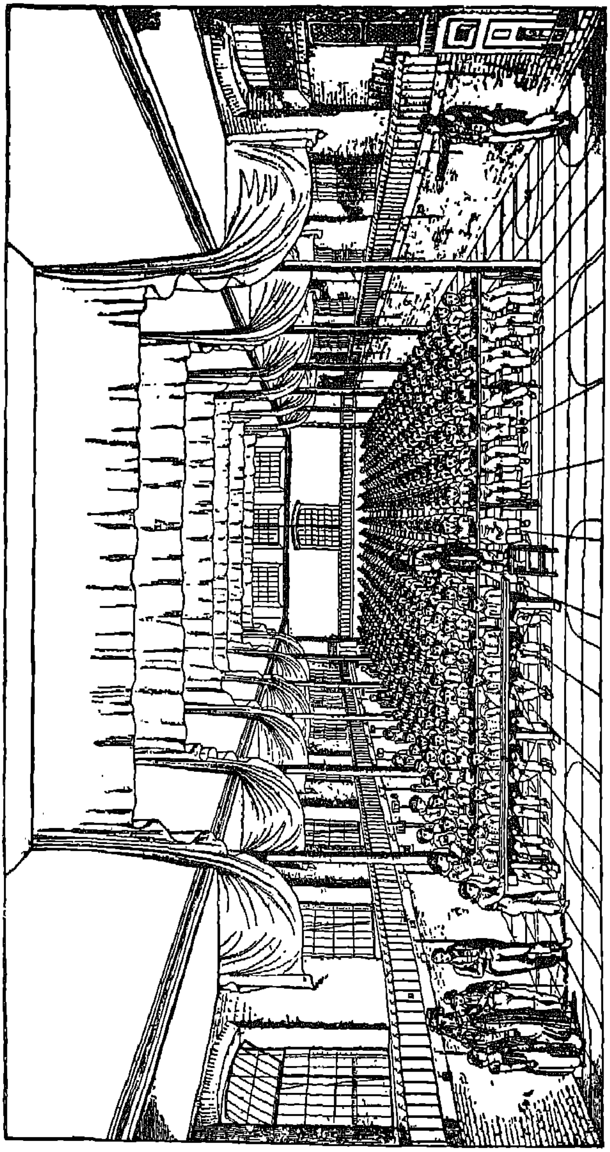

Fig. 186. The Lancastrian Model School in Borough Road, Southwark, London

This shows 365 pupils, seated for writing. The room was 40 x 90 feet in size, and contained 20 desks, each 25 feet long. The boys of each row were divided into two "drafts" of from eight to ten, each in charge of a monitor. Around the wall were 31 "stations," indicated by the semicircles on the floor.

children receiving instruction in the monitorial schools of the National Society alone.

The mutual-instruction idea spread to other lands — France, Belgium, Holland, Denmark — and seems to have been tried

even in German lands. In France and Belgium it was experimented with for a time because of its cheapness, but was soon discarded because of its defects. In Teutonic lands, where the much better Pestalozzian ideas had become established, the monitorial system made practically no headway. It was in the United States, of all countries outside of England, that the idea met with most ready acceptance.

The system of mutual or monitorial instruction. The great merit, aside from being cheap, of the mutual or monitorial system of instruction lay in that it represented a marked advance in school organization over the older individual method of instruction, with its accompanying waste of time and schoolroom disorder. Under the individual method only a small number of pupils could be placed under the control of one teacher, and the expense for such instruction made general education almost prohibitive. Pestalozzi, to be sure, had worked out in Switzerland the modern class-system of instruction, and following developmental lines in teaching, but of this the English were not only ignorant, but it called for a degree of pedagogical skill which their teachers did not then possess. Bell and Lancaster now evolved a plan whereby one teacher, assisted by a number of the brighter

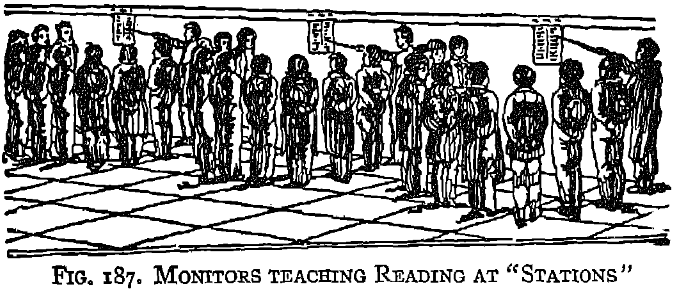

FIG. 187. MONITORS TEACHING READING AT "STATIONS"
Three "drafts" of ten each, with their toes to the semicircles painted on the floor, are being taught by monitors from lessons suspended on the wall.

pupils whom they designated as monitors, could teach from two hundred to a thousand pupils in one school (R. 297). The picture of Lancaster's London school (Figure 186) shows 365 pupils seated.[1] The pupils were sorted into rows, and to each row was

[1] "When Lancaster had his famous interview with King George III, that monarch was impressed, as he naturally might be, by the statement that one master 'could teach five hundred children at the same time.' 'Good,' said the King; 'Good,' echoed a number of wealthy subscribers to Lancaster's projects." (Binns, H. B., *A Century of Education*, p. 299.)

assigned a clever boy (monitor) to act as an assistant teacher. A common number for each monitor to look after was ten. The teacher first taught these monitors a lesson from a printed card, and then each monitor took his row to a "station" about the wall and proceeded to teach the other boys what he had just learned. At first used only for teaching reading and the Catechism, the plan was soon extended to the teaching of writing, arithmetic, and spelling, and later on to instruction in higher branches. The system was very popular from about 1810 to 1830, but by 1840 its popularity had waned.

Such schools were naturally highly organized, the organization being largely mechanical (R. 298). Lancaster, in particular, was

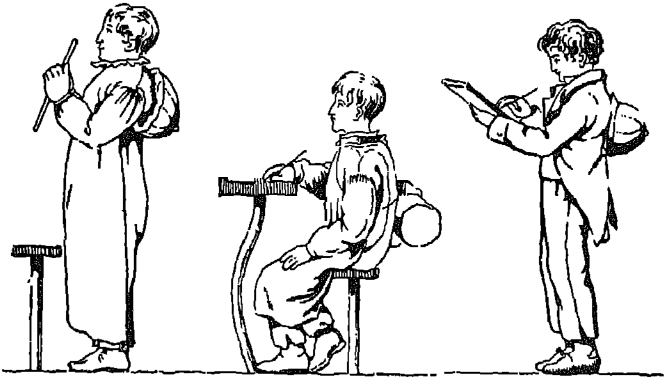

FIG. 188. PROPER MONITORIAL-SCHOOL POSITIONS
(From an engraved plate of 30 positions, in a Manual of the British and Foreign School Society, London, 1831)

an organizing genius. The *Manuals of Instruction* gave complete directions for the organization and management of monitorial schools, the details of recitation work, use of apparatus, order, position of pupils at their work, and classification being minutely laid down. By carefully studying and following these directions any reasonably intelligent person could soon learn to become a successful teacher in a monitorial school.

The schools, mechanical as they now seem, marked a great improvement over the individual method upon which schoolmasters for centuries had wasted so much of their own and their pupils' time. In place of earlier idleness, inattention, and disorder, Bell and Lancaster introduced activity, emulation, order, and a kind of military discipline which was of much value to the type of

children attending these schools. Lancaster's biographer, Salmon, has written of the system that so thoroughly was the instruction worked out that the teacher had only to organize, oversee, reward, punish, and inspire:

When a child was admitted a monitor assigned him his class; while he remained, a monitor taught him (with nine other pupils); when he was absent, one monitor ascertained the fact, and another found out the reason; a monitor examined him periodically, and, when he made progress, a monitor promoted him; a monitor ruled the writing paper; a monitor had charge of slates and books; and a monitor-general looked after all the other monitors. Every monitor wore a leather ticket, gilded and lettered, "Monitor of the First Class," "Reading Monitor of the Second Class," etc.

Value of the system in awakening interest. The monitorial system of instruction, coming at the time it did, exerted a very important influence in awakening interest in and a sentiment for schools. It increased the number of people who possessed the elements of an education; made schools much more talked about; and aroused thought and provoked discussion on the question of education. It did much toward making people see the advantages of a certain amount of schooling, and be willing to contribute to its support. Under the plans previously in use education had been a slow and an expensive process, because it had to be carried on by the individual method of instruction, and in quite small groups. Under this new plan it was now possible for one teacher to instruct 300, 400, 500, or more pupils in a single room, and to do it with much better results in both learning and discipline than the old type of schoolmaster had achieved.

All at once, comparatively, a new system had been introduced which not only improved and popularized, but tremendously cheapened education.[1] Lancaster, in his *Improvements in Education,* gave the annual cost of schooling under his system as only seven shillings sixpence ($1.80) per pupil, and this was later decreased to four shillings fivepence ($1.06) as the school was increased to accommodate a thousand pupils. Under the Bell system the yearly cost per pupil, in a school of five hundred, was only four shillings twopence ($1.00), in 1814. In the United States,

[1] In 1807 Mr. Whitbread, an ardent supporter of schools, said, in an address before the House of Commons: "I cannot help noticing that this is a period particularly favorable for the institution of a national system of education, because within a few years there has been discovered a plan for the instruction of youth which is now brought to a state of great perfection, happily combining rules by which the object of learning must be infallibly attained with expedition and cheapness, and holding out the fairest prospect of utility to mankind."

Lancastrian schools cost from $1.22 per pupil in New York, in 1822, up to $3.00 and $4.00 later on. At first begun as free schools,[1] the expansion of effort was more rapid than the income from contributions, and a small tuition fee was in time charged. Pupils were admitted at about the age of seven, and might remain until thirteen or fourteen, though an attendance of two years was considered "abundantly sufficient for any boy." To prepare skilled masters and mistresses for the schools — girls were provided for in many places — training or model schools were organized by both the national societies, and these represent the beginnings of normal-school training in England.

Infant Schools. Another type of school which became of much importance in England, and spread to other lands, was the Infant School. This owed its origin to Robert Owen, proprietor of the cotton mills at New Lanark, Scotland. Being of a philanthropic turn of mind, and believing that man was entirely the product of circumstance and environment, he held that it was not possible to begin too early in implanting right habits and forming character. Poverty and crime, he believed, were results of errors in the various systems of education and government. So plastic was child nature, that society would be able to mould itself "into the very image of rational wishes and desires." That "the infants of any one class in the world may be readily formed into men of any other class," was a fundamental belief of his.

FIG. 189
ROBERT OWEN
(1771–1858)

When he took charge of the mills at New Lanark (1799) he found the usual wretched social conditions of the time. Children of five, six, and seven years were bound out to the factory as apprentices (**R. 242**) for a period of nine years. They worked as apprentices and helpers in the factories twelve to thirteen hours a day, and at early manhood were turned free to join the ignorant mass of the population. Owen sought to remedy this condition.

[1] When Lancaster first hired the large hall in Borough Road which later became an important training-college, and opened it as a mutual-instruction school, he announced: "All that will may send their children, and have them educated freely, and those who do not wish to have education for nothing, may pay for it if they please."

He accordingly opened schools which children might enter at three years of age, receiving them into the schools almost as soon as they were able to walk, and caring for them while their parents were at work. Children under ten he forbade to work in the mills, and for these he provided schools. The instruction for the children younger than six was to be "whatever might be supposed useful that they could understand," and much was made of singing, dancing, and play. Moral instruction was made a prominent feature. By 1814 his work and his schools had become famous. In 1817 he published a plan for the organization of such industrial communities as he conducted. In 1818 he visited Switzerland, and saw Pestalozzi and Fellenberg.

In 1818 a number of Liberals — Brougham, James Mill, and others — combined to establish an Infant School in London, importing a teacher from New Lanark. The idea took root, was popularized, and the Infant School was soon adopted as an integral part of their schools by both the British and Foreign School Society (Lancastrians) and the National Society (Bell). In 1836 the "Home and Colonial Infant School Society" was formed to train teachers for and to establish Infant Schools. One of the organizers of this society was Charles Mayo who had worked with Pestalozzi at Yverdon (**R. 270**), and through his influence much of the bookishness which had crept in was removed and the better Pestalozzian procedure put in its place.

Unlike the monitorial schools, the Infant Schools were based on the idea of small-group work, and were usually conducted in harmony with the new psychological conceptions of instruction which had been worked out by Pestalozzi, and had by that time begun to be introduced into England. The Infant-School idea came at an opportune time, as the defects of the mechanical Lancastrian instruction were becoming evident and its popularity was waning. It gave a new and a somewhat deeper philosophical interpretation of the educational process, created a stronger demand than had before been known for trained teachers, established a preference for women teachers for primary work, and tended to give a new dignity to teaching and school work by revealing something of a psychological basis for the instruction of little children. It also contributed its share toward awakening a sentiment for national action.

Work of the educational societies. The work of the voluntary and philanthropic educational societies in establishing schools and

providing teachers and instruction before the days of national schools was enormous.[1] Though the State did nothing before 1833, and little before 1870, the work of the educational societies was large and important. What was done by the church societies alone may be seen from the following table:

STATISTICS AS TO 10,595 ELEMENTARY SCHOOLS FOUNDED BY THE RELIGIOUS SOCIETIES (BRITISH CENSUS RETURNS, 1851)

Date	*Total number of schools*	*The National Society, or Church of England, schools*	*British and Foreign Schools Society*	*Independents, or Congregationalists*	*Wesleyan Methodists*	*Roman Catholics*	*Baptists*	*Other religious bodies*
Before 1801	766	709	16	8	7	10		
1801–1811	410	350	28	9	4	10		
1811–1821	879	756	77	12	17	14		
1821–1831	1,021	897	45	21	17	28		
1831–1841	2,417	2,002	191	95	62	69		
1841–1851	4,604	3,448	449	269	239	166		
Not stated	498	409	46	17	17	14	131	331
Totals	10,595	8,571	852	431	363	311	131	331

After about 1820–25 the rising interest in elementary education expressed itself in the formation of a number of additional societies, the more important of which were:

1824. "London Infant School Society" founded by Brougham.
1826. "Society for the Diffusion of Useful Knowledge" founded by Brougham. The *Journal of Education* begun.
1836. "Central Society of Education" founded.
1836. "Home and Colonial Infant Society" founded. Beginning of a Pestalozzian Training College.
1837. "Educational Committee of the Wesleyan Conference established."
1843. "Congregational Board of Education" formed.
1844. "Ragged School Union" founded.
1845. "Catholic Institute."

[1] In 1820, Brougham, in introducing his "Bill for the Better Education of the Poor in England and Wales," gave statistics as to the progress of education at that time in England. His estimate as to the numbers being educated were:

430,000 in endowed and privately managed schools;
220,000 in monitorial schools;
50,000 being educated at home;
100,000 educated only in Sunday Schools;
53,000 being educated in dame schools.

From these figures he argued that one in fifteen of the population of England and one in twenty in Wales were attending some form of school, but with only one in twenty-four in London. The usual period of school attendance for the poorer classes was only one and a half to two years.

1847. The "Catholic Poor-School Committee."
1847. "Lancashire Public School Association" formed.
1850. The "National Public School Association."
1867. "Birmingham Education Aid Society."
1868. The Manchester Conference.
1869. Formation of "The League."

Some of these were formed to found and support schools, and some engaged primarily in the work of propaganda in an effort to secure some national action.

III. THE STRUGGLE FOR NATIONAL EDUCATION

The parliamentary struggle. During the whole of the eighteenth century Parliament had enacted no legislation relating to elementary education, aside from the one Act of 1767 for the education of pauper children in London, and the freeing of elementary schools, Dissenters, and Catholics, from inhibitions as to teaching. In the nineteenth century this attitude was to be changed, though slowly, and after three quarters of a century of struggle the beginnings of national education were finally to be made for England, as they had by then for every other great nation. In 1870 the "no-business-of-the-State" attitude toward the education of the people, which had persisted from the days of the great Elizabeth, was finally and permanently changed. The legislative battle began with the first Factory Act[1] of 1802, Whitbread's Parochial Schools Bill[2] of 1807, and Brougham's first Parliamentary Committee of Inquiry of 1816 (**R. 291**); it finally culminated with the reform of the old endowed Grammar Schools by the Act of 1869, the enactment of the Elementary Education Act of 1870 (**R. 304**), and the Act of 1871 freeing instruction in the universities from religious restrictions (**R. 305**). The first of these enactments declared clearly the right of the State to inquire into, reorganize, and redirect the age-old educational foundations for secondary education; the second made the definite though tardy beginnings of a national system of elementary education for England; and the third opened up a university

[1] Known as the Health and Morals of Apprentices Act. It limited the working hours of apprentices to twelve; forbade night work; required day instruction to be provided in reading, writing, and arithmetic; required church attendance once a month; and provided for the registration and inspection of factories. The Act was very laxly enforced, and its chief value lay in the precedent of state interference which it established.

[2] Whitbread proposed a national system of rate-aided schools to provide all children in England with two years of free schooling, between the ages of seven and fourteen.

career to the whole nation. The agitation and conflict of ideas was long drawn out, and need not be traced in detail. The following tabulated summary will give the main outlines of the struggle, and the selection on "The Educational Traditions of England" (R. 306) gives a good brief history of the long conflict.

THE PARLIAMENTARY STRUGGLE FOR NATIONAL EDUCATION IN ENGLAND

Dates	*Proposals, Reports, etc., and Results*
1802	First Factory Act for regulating employment of children. Adopted.
1807	Whitbread's Parochial Schools' Bill introduced. Rejected by the House of Lords.
1816	Broughman secured a Parliamentary Committee to inquire into the state of education of the lower classes in London, Westminster, and Southwark. Report — 130,000 children without school accommodations [1818]. (R. 291.)
1818	Brougham secured a Committee of Inquiry on Educational Charities. No report until 1837.
1820	Bill introduced proposing a tax for schools and the granting of Government aid in building schoolhouses. Opposed by Dissenters and Catholics. Withdrawn. Brougham's first Educational Bill.
1833	Government aid for building schoolhouses re-proposed. £20,000 a year granted. (R. 299.) Distributed through the two great Educational Societies.
1834	Committee of Inquiry appointed. No result beyond statistics.
1835 1837	Brougham introduced bills to organize a system of elementary education. Bills failed of passage. Educational Inquiry Committee appointed [1837].
1838	Committee report: the deplorable conditions existing. Bill of 1839. Education Department created.
1839	Bill to increase the Government grant to £30,000 and to allow all Societies to share. Inspectors to be appointed. Committee of Privy Council on Education established. Bitter opposition. Carried. Much discussion as to "undenominational education."
1841	Annual grant to establish schools of design in manufacturing districts Voted.
1843	Sir Jas. Graham's Factory Bill. Opposed by the Dissenters and defeated.
1843	Address to the Crown on condition of the working classes. No parliamentary action.
1846	Yearly grant extended to the maintenance of schools. Gradual increase in the yearly grants.
1846	Minute and Regulations on annual grants and pupil teachers. Foundation of a system laid. Pupil-teacher system definitely established. Certificates to teach Annual grant extended to maintenance.
1847	Government proposals for nationalizing education. Carried, despite violent religious opposition.
1850	Fox's Bill to make education free and compulsory. Defeated.

THE PARLIAMENTARY STRUGGLE FOR NATIONAL EDUCATION IN ENGLAND (*continued*)

Dates	*Proposals, Reports, etc., and Results*
1853	The Government proposed a small local rate in aid of schools. Bill dropped after the first reading.
1853	Department of Science and Art created, and National Art Training Schools established. Promotion of elementary education in art and science, particularly after 1859.
1855	Three educational Bills introduced. Local rate proposed. Failure to agree. All withdrawn.
1856	Commons asked to declare in favor of rate aid and local Boards. Two Educational Bills introduced. First bill tabled. Second bill withdrawn. Education Department formed.
1858	A Royal Commission to inquire into the state of popular education in England asked for. The Duke of Newcastle's Commission created. Its Report published in 1861. (R. 303.)
1861	No acceptable scheme reported. Code of 1861 proposed. No advance. "Payment by results" begun [1862]. Code adopted.
1864	Schools Inquiry Commission appointed on endowed schools. Report of the Schools Inquiry Commission in 1867.
1866	Report of a Select Committee of the House of Commons on Education.
1867	The Government introduced proposals as to education. Voted down.
1868	Government Bill proposing changes in distribution and larger grants. Parliament adjourned without action.
1869	Endowed Schools' Act passed.
1869	Two Educational Bills introduced. Withdrawn at the request of the Government.
1870	The Elementary Education Act of 1870 introduced. Much amended and passed. (R. 304.) Beginning of a National system of education.
1871	Religious Tests at universities withdrawn (R. 305).

The leaders in the conflict. The main leader in the parliamentary struggle to establish national education, from the death of Whitbread, in 1815, to about 1835, was Henry, afterwards Lord Brougham. He was aided by such men as Blackstone, and Bentham and his followers, and, after about 1837, by such men as Dickens, Carlyle, Macaulay, and John Stuart Mill. Dickens, by his descriptions, helped materially to create a sentiment favorable to education, as a right of the people rather than a charity. He stood strongly for a compulsory and non-sectarian state system of education that would transform the children of his day into generous, self-respecting, and intelligent men and women. Carlyle saw in education a cure for social evils, and held that one

of the first functions of government was to impart the gift of thinking to its future citizens. Writing, in 1840, he said:

> Who would suppose that education were a thing which had to be advocated on the ground of local expediency, or any ground? As if it stood not on the basis of everlasting duty as a prime necessity of man.

Brougham was untiring in his efforts for popular education, and some idea as to the interest he awakened may be inferred from the fact that his *Observations on the Education of the People*, published in 1825, went through twenty editions the first year. He introduced bills, secured committees of inquiry, made addresses,[1] and used his pen in behalf of the education of the people. His belief in the power of education to improve a people was very large. Warning the "Lawgivers of England" to take heed, he once said:

FIG. 190
LORD BROUGHAM
(1778–1868)

> Let the soldier be abroad, if he will; he can do nothing in this age. There is another personage abroad, a person less imposing—in the eye of some insignificant. The Schoolmaster is abroad, and I trust him, armed with his primer, against the soldier in full uniform array.
>
> The conqueror stalks onward with the "pride, pomp, and circumstance of war," banners flying, shouts rending the air, guns thundering, and martial music pealing, to drown the shrieks of the wounded and the lamentations for the slain. Not thus the schoolmaster in his peaceful vocation. He meditates and prepares in secret the plans which are to bless mankind; he slowly gathers around him those who are to further their execution; he quietly, though firmly, advances in his humble path laboring steadily, but calmly, till he has opened to the light all the recesses of ignorance, and torn up by the roots the weeds of vice. His is a progress not to be compared with anything like a march; but it leads to a far more brilliant triumph, and to laurels more imperishable than the destroyer of his species, the scourge of the world, ever won.

Parallel with the agitation for some state action for education was an agitation for social and political reform. The basis for the election of members to the House of Commons was still mediæ-

[1] See J. E. G. de Montmorency's *State Intervention in English Education*, pp. 248–85, for Brougham's address to the Commons in 1820 on "The Education of the Poor"; and pp. 285–324 for his address before the House of Lords in 1835, on "The Education of the People." Both addresses contain an abundance of data as to existing conditions and needs.

FIG. 191. AN ENGLISH VILLAGE SCHOOL IN 1840
(After a drawing by Hablôt K. Browne, and printed in Charles Dickens's "Master Humphrey's Clock")

val. Boroughs no longer inhabited still returned members, and sparsely settled regions returned members out of all proportion to the newly created city populations. Few, too, could vote. Only about 160,000 persons in a population of 10,000,000 had, early in the century, the right of the franchise. The city populations were practically disfranchised in favor of rural landlords, the nobility, and the clergy. In 1828 Protestant Non-Conformists were relieved of their political disability, and in 1829 a similar enfranchisement was extended to Catholics. In 1832 came the first real voting reform in the passage of the so-called *Third Reform Bill*,[1] after a most bitter parliamentary struggle. This reapportioned the membership of the House on a more equitable basis, and enfranchised those who owned or leased lands or buildings of a value of £10 a year. The result of this was to enfranchise the middle class of the population; increase the number of voters (1836) from about 175,000 to about 839,500 out of 6,023,000 adult males; and effectively break the power of the House of Lords to elect the House of Commons. Progressive

[1] So called because the House of Lords rejected the first two passed by the Commons, and finally accepted the third only because the King had agreed to create enough new Lords to pass the bill unless it were enacted by the upper House.

legislation now became much easier to secure, and in 1833 a Bill making a grant of £20,000 a year to aid in building schoolhouses for elementary schools — the first government aid for elementary education ever voted in England — became a law (R. 299). During the few years following the passage of the Reform Bill many progressive measures were enacted, among which should be mentioned the abolition of slavery in the colonies; the beginnings of legislation looking to a scientific treatment of poverty and non-employment; the Municipal Reform Act (1835); the institution of the penny post (1839); and the abolition of the Corn Laws (1846); while after 1837 education began to take a prominent place in the programs of the new working-class movement.

Progress after 1833. The Law of 1833, though, made but the merest beginnings, and up to 1840 the money granted was given to the two great national school societies, and without regulation. Beginning in 1840, and continuing up to the beginnings of national education, in 1870, the grants were state-controlled and distributed through the different educational societies. The total of these grants, by years, and the proportional share of the different educational societies are well shown in the chart (Fig. 192.) In 1846 the grants were extended to maintenance as well, and in 1847 Catholic and Wesleyan societies were admitted to share in the grants. Soon thereafter we note a sharp upward turn of the curve, though the Church-of-England schools obtained the greater proportion of the increased funds. Proposals to add local taxation, in 1853 and 1856, were dropped almost as soon as made. The commercial and manufacturing interests, though, secured separate aid for art and science instruction (1841, 1853), and the creation of national art training-schools (1853). Training-schools for teachers also were begun, and aided by grants. In 1845 the English "pupil-teacher" system[1] also was begun in an effort to supply teachers of some little training. A State Department of Education was created, in 1856, though without much power, and the various "Minutes" which were now adopted were organized into a system and presented to Parliament as a *School Code*, in 1861, and finally approved.

New Educational Commissions were created to inquire into educational conditions and needs in 1858 and 1864, and these reported in 1861 and 1867, but without important results. The

[1] This was a development of the monitorial system of training, and was virtually an apprenticeship form of teacher-training.

most notable of these was the Duke of Newcastle's Commission, appointed in 1858 to review conditions, progress, and needs, and to make recommendations for the future. This Commission reported in 1861. It stated that one in every eight of the population was then in some kind of school; gave statistics as to condi-

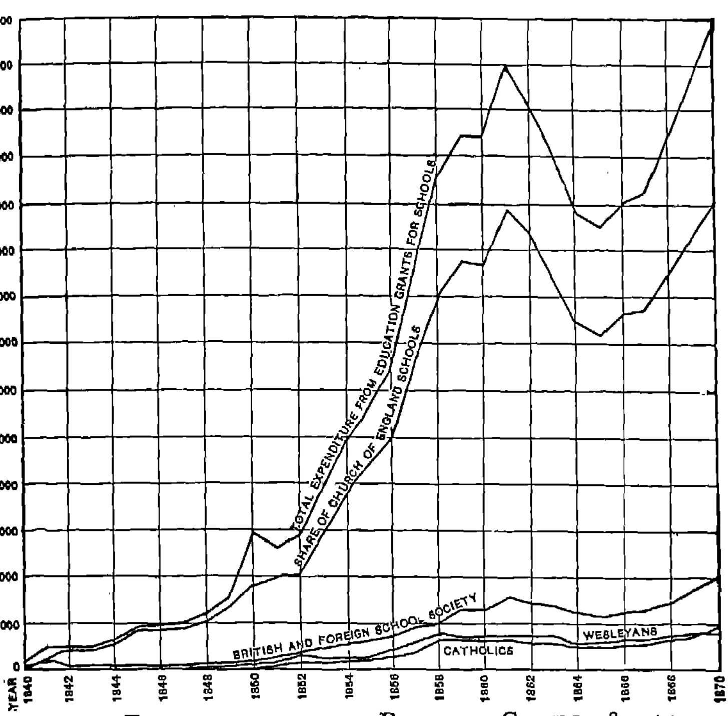

FIG. 192. EXPENDITURE FROM THE EDUCATION GRANTS, 1839–70

Between 1833 and 1839 no Government regulation of grants. The above figures do not include administration expenses, or grants made to Scotland (about the same in amount as the Br. & F. S. Soc.) or to the Parochial Schools Union (very small). The drop in the curve between 1862 and 1867 was due to the introduction of the "payment by results" plan.

tions (**R. 303 a**); and held that the plan of leaving popular education to the voluntary initiative of communities had been justified by the results. The report presented no plan for national organization, but recommended a number of minor changes in conditions. In particular it recommended the introduction of the system of "payment by results" — that is, of making money grants to schools on the basis of the number of pupils passing set examinations in reading, writing, and arithmetic (**R. 303 b**). This

plan was begun in 1862, and the consequent drop in money grants for a few years thereafter is shown in the curves of the chart. The other Commission, appointed, known as the Taunton Schools Inquiry Commission (1864–67), dealt with the old endowed schools, and in particular called attention to the lack of secondary-school facilities, especially in the cities, and recommended an extension of secondary-school facilities and a democratization of the whole system of secondary education. The important legislation of this period was the freeing of the old universities from Church-of-England control (**R. 305**) and making them national in spirit.

Difficulties encountered. In the meantime liberal leaders, Schools Inquiry Commissions, official reports, and educational propagandists continued to pile up evidence as to the inadequacy of the old voluntary system. A few examples, out of hundreds that might be cited, will be mentioned here. Lord Macaulay, in an address made in Parliament, in 1847 (**R. 300**), defending a "Minute" of the "Committee of Privy Council on Education" (created in 1839) proposing the nationalization of education, held it to be "the right and duty of the State to provide for the education of the common people," as an exercise of self-protection, and warned the Commons of dangers to come if the progressive tendencies of the time were not listened to. The Census Returns of 1851, as well as the abundance of data published by the Schools Inquiry Commissions, were effectively used to reveal the inadequate provisions for the education of the masses. The Reports of the school inspectors, too, revealed conditions in need of being remedied in all phases of educational effort. The Report on the Apprenticing of Pauper Children (**R. 301**) is selected as typical of many similar reports.

FIG. 193
LORD MACAULAY
(1800–59)

So deeply ingrained, though, was the English conception of education as a private and voluntary and religious affair and no business of the State; so self-contained were the English as a people; and so little did they know or heed the progress made in other lands, that the arguments for national action encountered tremendous opposition from the Conservative elements, and often

FACTS REVEALED BY THE CENSUS OF 1851

Items	1833	1851
(1) Population of England and Wales	14,400,000	17,927,609
(2) Middle and upper classes population	2,000,000	2,489,945
(3) Laboring class population	12,400,000	15,437,664
(4) Population 3–12 years of age of (2)	420,000	522,888
(5) Population 3–12 years of age of (3)	2,604,000	3,241,919
(6) Number of schools for children of (2)	14,897	16,324
(7) Number of schools for children of (3)	24,074	29,718
(8) Pupils of class (2) in schools	481,728	546,396
(9) Pupils of class (3) in schools	795,219	1,597,982
(10) Percentage of children of class (2) at school	114.6	104.4
(11) Percentage of children of class (3) at school	30.5	49.2

were opposed even by Liberals. The reasoning of Sir James Kay-Shuttleworth (**R. 302**), Secretary of the Committee of Council on Education and one of the clearest heads in England in his day, who held that a fee for instruction had a moral value and vindicated personal freedom, and who resented the interference of the State in the matter of a parent's relation to his child, was typical of thousands of others. Edward Baines (1774–1848), proprietor of the *Leeds Mercury*, the chief Liberal organ in northern England, bitterly opposed any action looking toward nationalizing education. He expressed the feeling of many when he wrote:

> Civil government is no fit agency for the training of families or of souls. . . . Throw the people on their own resources in education, as you did in industry; and be assured, that, in a nation so full of intelligence and spirit, Freedom and Competition will give the same stimulus to improvement in our schools, as they have done in our manufactures, our husbandry, our shipping, and our commerce.

The beginnings of national organization. By 1865 it had become evident to a majority that the voluntary system, whatever its merits, would never succeed in educating the nation, and from this time forth the demand for some acceptable scheme for the organization of national education became a part of a still more general movement for political and social reform. Once more, as in 1832–33, an education law was enacted following the passage of a bill for electoral reform and the extension of the suffrage.

Though the Liberal Party was in power, it was well satisfied with the Reform Act of 1832 because through it the middle classes of the population, which the Liberal Party represented, had gained control of the government. The country, though, was not — the

working-classes in particular demanding a share in the government. Finally the demand became too strong to be resisted, and the Second Reform Act, of 1867, became a law. This abolished a number of the remaining smaller boroughs, and greatly extended the right to vote. In the country the amount of property to be owned to vote was reduced from £10 to £5, and the leasehold value from £50 to £12. In the cities and towns the vote was now given to all householders, and to all lodgers who paid a yearly rental of £10. This legislation gave the vote to a vastly increased number of people, particularly city workers,[1] and was a political revolution for England of great magnitude.

From the passage of this new Reform Act to 1870, the organization of national education only awaited the formulation of some acceptable scheme. "We must educate our new masters," now became a common expression. The main question was how to create schools to do what the voluntary schools had shown themselves able to do for a part, but were unable to do for all, without at the same time destroying the vast denominational system[2] that, in spite of its defects, had "done the great service of rearing a race of teachers, spreading schools, setting up a standard of education, and generally making the introduction of a national system possible." The way in which these "vested interests" were cared for was typically English, and characteristic of the strong sense of obligation of the English people. In 1870 a compromise law was proposed and carried. Mr. Gladstone, then Prime Minister, stated the attitude of the Government in framing the new law, when he said:[3]

It was with us an absolute necessity — a necessity of honour and a necessity of policy — to respect and to favour the educational establishments and machinery we found existing in the country. It was impossible for us to join in the language or to adopt the tone which was conscientiously and consistently taken up by some members of the House, who look upon these voluntary schools, having generally a denominational character, as admirable passing expedients, fit, in-

[1] In 1885 the same liberty was extended to rural laborers. This added two million more voters, and gave England almost full manhood suffrage. Finally, in 1918, some five million women were added to the voting classes.

[2] Nearly two million children had been provided with school accommodations, three fourths of which had been done by those associated with the Church of England. In doing this the Church had spent some £6,270,000 on school buildings, and had raised some £8,500,000 in voluntary subscriptions for maintenance. The Government had also paid out some £6,500,000 in grants, since 1833. In 1870 it was estimated that 1,450,000 children were on the registers of the state-aided schools, while 1,500,000 children, between the ages of six and twelve, were unprovided for.

[3] Speech before the House of Commons. July 23, 1870.

deed, to be tolerated for a time, deserving all credit on account of the motives which led to their foundation, but wholly unsatisfactory as to their main purpose, and therefore to be supplanted by something they think better.... That has never been the theory of the Government. . . . When we are approaching this great work, which we desire to make complete, we ought to have a sentiment of thankfulness that so much has been done for us.

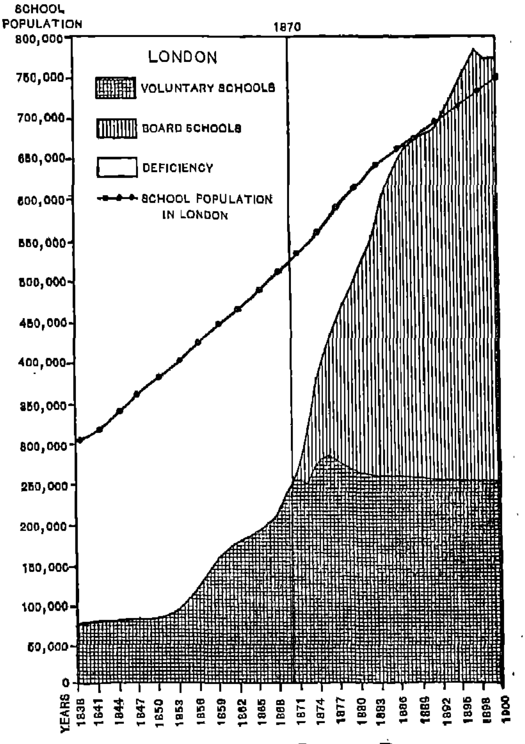

FIG. 194. WORK OF THE SCHOOL BOARDS IN PROVIDING SCHOOL ACCOMMODATIONS

London taken as a type. Note the deficiency in school accommodation in 1838, that the voluntary schools made no appreciable gain on this deficiency up to 1870, the attempt to cope with the situation between 1871 and 1874, and the long pull of the new Board schools necessary to provide sufficient schools and seats.

Accordingly the Elementary Education Bill of 1870 (**R.** 304) preserved the existing Voluntary Schools; divided the country up into school districts; gave the denominations a short period in which to provide schools, with aid for buildings;[1] and thereafter, in any place where a deficiency in school accommodations could be shown to exist, School Boards were to be elected, and they should

[1] "The clergy of the National Society exhibited amazing energy and succeeded, according to their own account, in doing in twelve months what in the normal course of events would have taken twenty years. By the end of the year they had lodged claims for 2885 building grants, out of a total of 3342. They also set to work, without any governmental assistance, to enlarge their schools and so increased denominational accommodation enormously. The voluntary contributions in aid of this work have been estimated at over £3,000,000. At the same time the annual subscriptions doubled. . . . By 1886, over 3,000,000 places had been added, one-half of which were due to voluntary agencies, and Voluntary Schools were providing rather more than two-thirds of the school places in the country. In 1897 the proportion had fallen to three-fifths." (Birchenough, C., *History of Elementary Education*, pp. 138, 140.)

have power to levy taxes and maintain elementary schools. Existing Voluntary Schools might be transferred to the School Boards, whose schools were to be known as Board Schools. The schools were not ordered made free, but the fees of necessitous children were to be provided for by the School Boards, and they might compel the attendance of all children between the ages of five and twelve. Inspection and grants were limited to secular subjects, though religious teaching was not forbidden. The central government was to be secular and neutral; the local boards might decide as they saw fit. Such were the beginnings of national education in England. That the new Board Schools met a real need, especially in the cities, is shown by the chart on the preceding page, giving the results in London.

IV. THE DEVELOPMENT OF A NATIONAL SYSTEM

Progress under the Law of 1870. Beginning in 1871 the Board Schools had, by 1893, come to enroll 41 per cent of the pupils in elementary schools in England, as against 44 per cent in Voluntary Schools, and by 1903 the proportions were 49 per cent to 39 per cent. By 1902 the government grants for maintenance had reached, for all schools, £8,000,000 a year, and the Board Schools were rapidly outrunning the Voluntary Schools both in numbers and in per-capita expenditures. The Board Schools had made their greatest headway in the cities. In 1895 there were still some 11,000 small parishes which had no Board Schools, and in consequence paid no direct taxes for schools. Of these, 8000 had only Church-of-England Voluntary Schools.

In 1880 elementary education had been made fully compulsory, and in 1891 largely free. In 1893 the age for exemption from attendance was fixed at eleven, and in 1899 this was raised to twelve. In 1888 county and borough councils had been created, better to enforce the Act and to extend supervision. The *Annual Codes*, from 1870 to 1902, gradually extended governmental control through more and more detailed instructions as to inspection, the addition of new subjects, and better compulsion to attend. In 1899 a Central Board of Education, under a President and a Parliamentary Secretary, was created, to consolidate in one body the work formerly done by:

a. The Committee of Council on Education (established 1839), which administered the grants for elementary education.

b. The Department of Science and Art (established 1853), which

administered the grants for special and evening instruction in science and art.

c. The Charity Commissioners, to which had been given (1874) supervision of the old educational trusts and endowments for education.

d. The educational functions of the Board of Agriculture.

This new Board unified the administration of elementary and secondary education for the first time in English history.

By about 1895 the strain on the Voluntary Schools had become hard to bear. The Church resented the encroachments of the State on its ancient privilege of training the young, and the larger resources which the Board Schools could command. In 1895 the Conservative party won the parliamentary elections, and remained in power for some years. This was the opportunity of the Voluntary Schools, and in 1897 a special national-aid grant of five shillings per pupil in average daily attendance was made to the Voluntary Schools. This simply increased the general dissatisfaction, and there was soon a general demand for new legislation that would reconcile the whole question of national education. The Law of 1902 was the ultimate result.

The Annexation Law of 1902. The Balfour Education Act of 1902 marks the beginning of a new period in English education. For the first time in English history education of all grades — elementary, secondary, and higher; voluntary and state — was brought under the control of one single local authority, and Voluntary Schools were taken over and made a charge on the "rates" equally with the Board Schools. New local Educational Committees and Councils replaced the old School Boards, and all secular instruction in state-aided schools of all types was now placed under their control. Religious instruction could continue where desired. In addition, one third of the property of England, which had heretofore escaped all direct taxation for education, was now compelled to pay its proper share. The foundation principle that "the wealth of the State must educate the children of the State" was now applied, for the first time.

The State now abandoned the old policy of merely supervising and assisting voluntary associations to maintain schools, in competition with state-provided schools, and assumed the whole responsibility for the secular instruction of the people. Though the law awakened intense opposition from those who felt that it "riveted the hand of the cleric on the schools of the land," it

nevertheless equalized and unified educational provisions; paved the way for much future progress; made the general provision of secondary education possible; and represented an important new step in the process of creating a national system of education for the people. Under this Law much has been done by the new Central Board of Education, and subsequent supplementary legislation, to increase materially the efficiency of the education provided.

Since 1902 the cost for education per pupil has been increased more than one half. The local authorities, to whom were given large powers of control, have levied taxes liberally, and the State has also increased its grants. Since 1902 also there has been a continual agitation for a resettlement of the educational question along broad national lines. Bills have been introduced, and important committees have considered the matter, but no affirmative action was taken. By the time of the opening of the World War it may be said that English opinion had about agreed upon the principle of public control of all schools, absolute religious freedom for teachers, local option as to religious instruction, large local liberty in management and control, well-trained and well-paid teachers, and the fusing of all types of schools into a democratic and truly national school system, strong in its unity and national elements, but free from centralized bureaucratic control. It was left for the World War to give emphasis to this national need and to permit the final creation of such an educational organization.

The incorporation of secondary education into the national system. For centuries the education of the small ruling class had been conducted by the private tutor and the endowed secondary school, and had been completed by a few years at Oxford or Cambridge. The Reform Bill of 1832 had raised the middle commercial and industrial classes to power, and had created new demands for secondary and higher education for the sons of this class. The old endowed schools were now no longer sufficient in numbers, and the result was the founding of many private and joint-stock-company secondary schools to minister to the new educational needs. The Second Reform Bill of 1867 enfranchised a very much greater number of citizens, and the increasing wealth and the increasing demands for educational advantages led to an insistence for a further extension along secondary and higher lines. The result was seen in the investigation of the nine "Great

Public Schools" of England,[1] by the Lord Clarendon Commission (1861–64); and the appointment of the British Schools Inquiry Commission of 1864–67, to inquire into the 820 other endowed schools and the 122 proprietary or joint-stock-company schools of the land. The Report of the first led to the Public Schools Act of 1868, reforming abuses and regulating the use of their old endowments. The second pointed out the great deficiency then existing in secondary education,[2] and led to the enactment of the Endowed Schools Act of 1869, placing all endowed schools under centralized supervision. We see here the beginnings of state supervision and control of the age-old endowments for Latin grammar schools and other types of schools for secondary training. The repeal of the old Religious-Tests-for-Degrees legislation, at the old universities (**R. 305**), in 1871, transformed these from Church-of-England into national institutions, and opened up the whole range of education to all who could meet the standards and pay the fees.

Under the Act of 1870 many local school boards, especially in the manufacturing cities, began to satisfy the new needs by the organization of Higher Grade Schools, or High Schools, to supplement the work of the elementary schools and to extend upward, in a truly democratic fashion, the educational ladder. In this movement the manufacturing cities of Sheffield, Birmingham, and Manchester were the leaders. In these three cities also, as well as in four others (Bristol, Leeds, Liverpool, and London)[3] new modern-type universities were created. The Department of Science and Art (created in 1853) also began, in 1872, to give large grants to the cities for the establishment of a three-years' course in science, for the encouragement of scientific training. These new secondary-type schools, providing for the direct passage of children from the elementary to the secondary schools, with many free places for capable students, served to increase the friction between rate-aided schools on the one hand, and voluntary and endowed and proprietary schools on the other. Carry-

[1] These were the seven endowed secondary boarding schools — Winchester (1382), Eton (1440), Shrewsbury (1552), Westminster (1560), Rugby (1567), Harrow (1571), and Charterhouse (1611) — and the two endowed day schools, — Saint Paul's (1510) and Merchant Taylors' (1561).

[2] At least one hundred towns, the Report showed, with a population of five thousand or over had no endowed secondary school, and London, with a population then (1867) of over three million, had but twenty-six schools and less than three thousand pupils enrolled. All the new manufacturing cities were in even worse condition than London.

[3] The University of London was originally founded in 1836, and reorganized in 1900.

ing out, as they did, Huxley's idea of a broad educational ladder, they also represented a very democratic innovation in English educational procedure.

In 1894 a Commission — a favorite English method for considering vexatious questions — was appointed, under the chairmanship of Mr. James (afterwards Lord) Bryce, "to consider the best methods of establishing a well-organized system of secondary education in England." The Report was important and influential. It recommended the creation of a general Board of Education under a responsible government Minister, with a permanent Secretary and a Consultative Educational Council (as was done in 1899); the establishment of local county and borough boards to provide adequate secondary-school accommodations, with aid from the "rates"; the inspection of secondary schools by the Central Board of Education; the professional training of secondary-school teachers; and a great extension of the free-scholarship plan to children from the elementary schools. On this last point the Report said: [2]

> We have to consider the means whereby the children of the less well-to-do classes of our population may be enabled to obtain such secondary education as may be suitable and needful for them. As we have not recommended that secondary education shall be provided free of cost to the whole community, we deem it all the more needful that ample provision be made by every local authority for enabling selected children of poorer parents to climb the educational ladder. . . . The assistance we have contemplated should be given by means of a carefully graduated system of scholarships, varying in value in the age at which they are awarded and the class of school or institution at which they are tenable.

The Act of 1902 unified control of both elementary and secondary education. Any private or endowed secondary school was left free to accept or reject government aid and inspection, but, if the aid were accepted, inspection and the following of government plans were required. Secondary education must provide for scholars up to or beyond the age of sixteen. No attempt was made to unify the work and character of the secondary schools, it being clearly recognized that, in England at least, these must be suited to the different requirements of the scholars, the means

[1] The scientist Thomas Huxley was a London School Board member, and, speaking as such, he expressed the views of many when he said: "I conceive it to be our duty to make a ladder from the gutter to the university along which any child may climb."

[2] *Royal (Bryce) Commission on Secondary Education*, vol. I, p. 299. London, 1895.

of the parents, the age at which schooling will stop, and the probable place in the social organism of England which the pupils will occupy. By 1910, out of 841 secondary schools in England receiving grants of state aid, 325 were supported by local authorities and were the creations of the preceding four decades. Most of the others represented old Latin grammar-school foundations, thus incorporated into the national system, and without that violence and destruction of endowments which characterized the transformations in France and Italy.

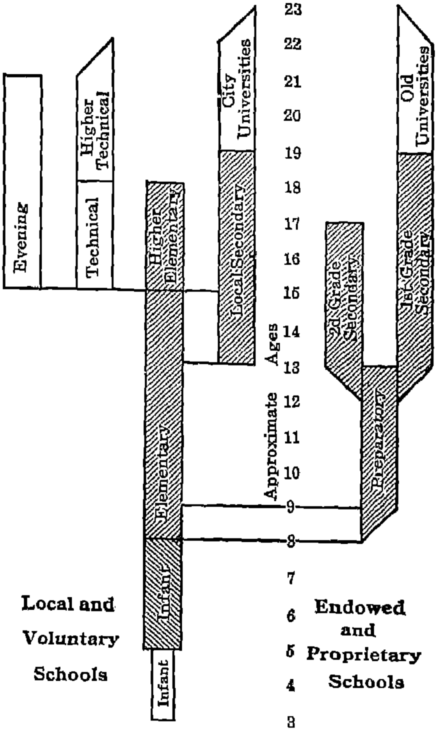

FIG. 195. THE ENGLISH EDUCATIONAL SYSTEM AS FINALLY EVOLVED

The years, for the divisions of English education, are only approximate, as English education is more flexible than that found in most other lands.

A national system at last evolved. It is a little more than two centuries from the founding of the Society for the Promotion of Christian Knowledge (1699) to the very important Fisher Education Act[1] of August, 1918. The first marked the beginnings of the voluntary system; the second "the first real attempt in England to lay broad and deep the foundations of a scheme of education which would be truly national." This Act, passed by Parliament in the midst of a war which called upon the English people for heavy sacrifices, completed the evolution of two centuries and organized the educational resources—elementary, secondary, evening, adult, technical, and higher—into one

[1] Known as the "Education Act, 1918" (8 and 9 Geo. V, ch. 39). The Act has been reprinted in full in the *Biennial Survey of Education, 1916–18*, of the United States Commissioner of Education, in the chapter on Education in Great Britain. It also has been reprinted as an appendix to Moore, E. C., *What the War teaches about Education*, New York, 1919.

national system, animated by a national purpose, and aimed at the accomplishment for the nation of twentieth-century ends on the most democratic basis of any school system in Europe. In so doing Huxley's educational ladder has not only been changed into a broad highway, but the educational traditions of England (R. 306) have been preserved and moulded anew.

The central national supervisory authority has been still further strengthened; the compulsion to attend greatly extended; and the voice of the State has been uttered in a firmer tone than ever before in English educational history. Taxes have been increased; the scope of the school system extended; all elements of the system better integrated; laggard local educational authorities subjected to firmer control; the training of teachers looked after more carefully than ever before; and the foundations for unlimited improvement and progress in education laid down. Still, in doing all this, the deep English devotion to local liberties has been clearly revealed. The dangers of a centralized French-type educational bureaucracy have been avoided; necessary, and relatively high, minimum standards have been set up, but without sacrificing that variety which has always been one of the strong points of English educational effort; and the legitimate claims of the State have been satisfied without destroying local initiative and independence. In this story of two centuries and more of struggle to create a really national system of education for the people we see strongly revealed those prominent characteristics of English national progress — careful consideration of new ideas, keen sensitiveness to vested rights, strong sense of local liberties and responsibilities, large dependence on local effort and good sense, progress by compromise, and a slow grafting-on of the best elements of what is new without sacrificing the best elements of what is old.

QUESTIONS FOR DISCUSSION

1. Show that the English method of slow progress and after long discussion would naturally result in a plan bearing evidence of many compromises.
2. What does the extensive Charity-School movement in eighteenth-century England indicate as to the comparative general interest in learning in England and the other lands we have previously studied?
3. Show how the Sunday-School instruction, meager as it was, was very important in England in paving the way for further educational progress.
4. What do all the different late eighteenth-century voluntary educational movements indicate as to comparative popular interest in education in England and Prussia? England and France?

5. Can you explain the much greater percentage of city poor in England in the late eighteenth and early nineteenth centuries than in French or German lands?
6. Can you explain why periods of prolonged warfare are usually followed by periods of social and political unrest?
7. Can you explain why Pestalozzian ideas found such slow acceptance in England?
8. Explain, on the basis of the English adult manufacturing conception of education, why monitorial instruction was hailed as "a new expedient, parallel and rival to the modern inventions in the mechanical departments."
9. To what extent do we now accept Robert Owen's conception of the influence of education on children?
10. Show how the many philanthropic societies for the education of the children of the poor came in as a natural transition from church to state education.
11. Show the importance of the School Societies in accustoming people to the idea of free and general education.
12. Show how the Lancastrian system formed a natural bridge between private philanthropy in education and tax-supported state schools.
13. Why were the highly mechanical features of the Lancastrian organization so advantageous in its day, whereas we of to-day would regard them as such a disadvantage?
14. Explain how the Lancastrian schools dignified the work of the teacher by revealing the need for teacher-training.
15. Assuming that there may be some validity to the arguments of Kay-Shuttleworth, what are the limitations to such reasoning?
16. What theory as to education would naturally lie behind a "payment-by-results" plan of distributing state aid?
17. Show how English educational development during the nineteenth century has been deeply modified by the progress of democracy.
18. Show how the English have attained to minimum standards without imposing uniform requirements that destroy individuality and initiative.

SELECTED READINGS

In the accompanying *Book of Readings* the following illustrative selections are reproduced:

291. Parliamentary Report: Charity-School Education described.
292. S.P.C.K.: Cost and Support of Charity-Schools.
293. Raikes: Description of the Gloucester Sunday Schools.
294. Guthrie: Organization, Support, and Work of a Ragged School.
295. Smith, A.: On the Education of the Common People.
296. Malthus: On National Education.
297. Smith, S.: The School of Lancaster described.
298. Philanthropist: Automatic Character of the Monitorial Schools.
299. Montmorency, de: The First Parliamentary Grant for Education.
300. Macaulay: On the Duty of the State to Provide Education.
301. Mosely: Evils of Apprenticing the Children of Paupers.
302. Kay-Shuttleworth: Typical Reasoning in Opposition to Free Schools.
303. Macnamera: The Duke of Newcastle Commission Report.
304. Statute: Elementary Education Act of 1870.
305. Statute: Abolition of Religious Tests at the Universities.
306. Times: The Educational Traditions of England.

QUESTIONS ON THE READINGS

1. Characterize the type of education described by the witness (291).
2. Considering equipment provided and comparative money values, then and now, about how much of an effort did support (292) involve?
3. What class of children did Raikes (293) make provision for?
4. Characterize the type of education provided (294) in the Ragged Schools.
5. Would Adam Smith's reasoning (295) still hold true?
6. Would that of Malthus (296)?
7. Indicate the improvements Lancaster had made (297, 298) in organization and teaching efficiency.
8. Was the first English parliamentary grant (299) expressive of deep national interest?
9. Would Macaulay's reasoning (300) still be true?
10. Is it probable that the apprenticing of paupers had always given such (301) results?
11. How sound was Kay-Shuttleworth's reasoning (302)?
12. What merit was there to the "payment-by-results" recommendation of the Duke of Newcastle Commission (303)?
13. Just what kind of schools did the Act of 1870 (304) make provision for?
14. Have we ever had such religious requirements as those so long maintained (305) at the English universities?

SUPPLEMENTARY REFERENCES

Allen, W. O. B. and McClure, E. *Two Hundred Years; History of S.P.C.K. 1698–1898.*

Adams, Francis. *History of the Elementary School Contest in England.*

*Binns, H. B. *A Century of Education, 1808–1908, History of the British and Foreign School Society.*

*Birchenough, C *History of Elementary Education in England and Wales since 1800.*

Escott, T. H. S. *Social Transformations of the Victorian Era.*

Harris, J. H. *Robert Raikes; the Man and his Work.*

*Holman, H. *English National Education.*

*Montmorency, J. E. G. de. *The Progress of Education in England.*

*Montmorency, J. E. G. de. *State Intervention in English Education to 1833.*

*Salmon, David. *Joseph Lancaster.*

CHAPTER XXV

AWAKENING AN EDUCATIONAL CONSCIOUSNESS IN THE UNITED STATES

I. EARLY NATIONAL ATTITUDES AND INTERESTS

The American problem. The beginnings of state educational organization in the United States present quite a different history from that traced for Prussia, France, Italy, or England. While the parochial school existed in the Central Colonies, and in time had to be subordinated to state ends; and while the idea of education as a charity had been introduced into all the Anglican Colonies, and later had to be stamped out; the problem of educational organization in America was not, as in Europe, one of bringing church schools and old educational foundations into harmonious working relations with the new state school systems set up. Instead the old educational foundations were easily transformed to adapt them to the new conditions, while only in the Central Colonies did the religious-charity conception of education give any particular trouble. The American educational problem was essentially that of first awakening, in a new land, a consciousness of need for general education; and second, that of developing a willingness to pay for what it finally came to be deemed desirable to provide.

By the middle of the eighteenth century, as we have pointed out (p. 438), the earlier religious interests in America had clearly begun to wane. In the New England Colonies the school of the civil town had largely replaced the earlier religious school. In the Middle Colonies many of the parochial schools had died out. In the Southern Colonies, where the classes in society and negro slavery made common schools impossible, and the lack of city life and manufacturing made them seem largely unnecessary, the common school had tended to disappear. Even in New England, where the Calvinistic conception of the importance of education had most firmly established the idea of school support, the eighteenth century witnessed a constant struggle to prevent the dying-out of that which an earlier generation had deemed it important to create.

Effect of the war on education. The effect of the American War for Independence, on all types of schools, was disastrous.

The growing troubles with the mother country had, for more than a decade previous to the opening of hostilities, tended to concentrate attention on other matters than schooling. Political discussion and agitation had largely monopolized the thinking of the time.

With the outbreak of the war education everywhere suffered seriously. Most of the rural and parochial schools closed, or continued a more or less intermittent existence. In New York City, then the second largest city in the country, practically all schools closed with British occupancy and remained closed until after the end of the war. The Latin grammar schools and academies often closed from lack of pupils, while the colleges were almost deserted. Harvard and Kings, in particular, suffered grievously, and sacrificed much for the cause of liberty. The war engrossed the energies and the resources of the peoples of the different Colonies, and schools, never very securely placed in the affections of the people, outside of New England, were allowed to fall into decay or entirely disappear. The period of the Revolution and the period of reorganization which followed, up to the beginning of the national government (1775–89), were together a time of rapid decline in educational advantages and increasing illiteracy among the people. Meager as had been the opportunities for schooling before 1775, the opportunities by 1790, except in a few cities and in the New England districts, had shrunk almost to the vanishing point. For Boston (**R. 307**), Providence (**Rs. 309, 310**), and a number of other places we have good pictures preserved of the schools which actually did exist.

The close of the war found the country both impoverished and exhausted. All the Colonies had made heavy sacrifices, many had been overrun by hostile armies, and the debt of the Union and of the States was so great that many thought it could never be paid. The thirteen States, individually and collectively, with only 3,380,000 people, had incurred an indebtedness of $75,000,000 for the prosecution of the conflict. Commerce was dead, the Government of the Confederation was impotent, petty insurrections were common, the States were quarreling continually with one another over all kinds of trivial matters, England still remained more or less hostile, and foreign complications began to appear. That during such a crucial period, and for some years following, but little or no attention was anywhere given to the question of education was only natural.

No real educational consciousness before about 1820. Regardless of the national land grants for education made to the new States (p. 523), the provisions of the different state constitutions (**R. 259**), the beginnings made here and there in the few cities of the time, and the early state laws (**R. 262**), it can hardly be said that the American people had developed an educational consciousness, outside of New England and New York, before about 1820, and in some of the States, especially in the South, a state educational consciousness was not awakened until very much later. Even in New England there was a steady decline in education during the first fifty years of the national history.

There were many reasons in the national life for this lack of interest in education among the masses of the people. The simple agricultural life of the time, the homogeneity of the people, the absence of cities, the isolation and independence of the villages, the lack of full manhood suffrage in a number of the States, the want of any economic demand for education, and the fact that no important political question calling for settlement at the polls had as yet arisen, made the need for schools and learning seem a relatively minor one. The country, too, was still very poor. The Revolutionary War debt still hung in part over the Nation, and the demand for money and labor for all kinds of internal improvements was very large. The country had few industries, and its foreign trade was badly hampered by European nations. Ways and means of strengthening the existing Government and holding the Union together,[1] rather than plans which could bear fruit only in the future, occupied the attention of the leaders of the time.

When the people had finally settled their political and commercial future by the War of 1812–14, and had built up a national consciousness on a democratic basis in the years immediately following, and the Nation at last possessed the energy, the money, and the interest for doing so, they finally turned their energies toward the creation of a democratic system of public schools. In the meantime, education, outside of New England, and in part even there, was left largely to private individuals, churches, incorporated school societies, and such state schools for the children

[1] "The Constitution," as John Quincy Adams expressed it, "was extorted from the grinding necessities of a reluctant people" to escape anarchy and the ultimate entire loss of independence, and many had grave doubts as to the permanence of the Union. It was not until after the close of the War of 1812 that belief in the stability of the Union and in the capacity of the people to govern themselves became the belief of the many rather than the very few, and plans for education and national development began to obtain a serious hearing.

of the poor as might have been provided by private or state funds, or the two combined.

The real interest in advanced education. In so far as the American people may be said to have possessed a real interest in education during the first half-century of the national existence, it was manifested in the establishment and endowment of academies and colleges rather than in the creation of schools for the people. The colonial Latin grammar school had been almost entirely an English institution, and never well suited to American needs. As democratic consciousness began to arise, the demand came for a more practical institution, less exclusive and less aristocratic in character, and better adapted in its instruction to the needs of a frontier society. Arising about the middle of the eighteenth century, a number of so-called Academies had been founded before the new National Government took shape. While essentially private institutions, arising from a church foundation, or more commonly a local subscription or endowment, it became customary for towns, counties, and States to assist in their maintenance, thus making them semi-public institutions. Their management, though, usually remained in private hands, or under boards or associations.[1]

Beside offering a fair type of higher training [2] before the days of high schools, the academies also became training-schools for teachers, and before the rise of the normal schools were the chief source of supply for the better grade of elementary teachers.

[1] After the beginning of the national life a number of States founded and endowed a state system of academies. Massachusetts, in 1797, granted land endowments to approved academies. Georgia, in 1783, created a system of county academies for the State. New York extended state aid to its academies, in 1813, having put them under state inspection as early as 1787. Maryland chartered many academies between 1801 and 1817, and authorized many lotteries to provide them with funds, as did also North Carolina. The Rhode Island General Assembly chartered many academies, and aided them by lotteries. Ohio, Kentucky, and Indiana, among western States, also provided for county systems of academies.

[2] The study of Latin and a little Greek had constituted the curriculum of the old Latin grammar school, and its purpose had been almost exclusively to prepare boys for admission to the colony colleges. In true English style, Latin was made the language of the classroom, and even attempted for the playground as well. As a concession, reading, writing, and arithmetic were sometimes taught. The new academies, while retaining the study of Latin, and usually Greek, though now taught through the medium of the English, added a number of new studies adapted to the needs of a new society. English grammar was introduced and soon rose to a place of great importance, as did also oratory and declamation. Arithmetic, algebra, geometry, geography, and astronomy were in time added, and surveying, rhetoric (including some literature), natural and moral philosophy, and Roman antiquities were frequently taught. Girls were admitted rather freely to the new academies, whereas the grammar schools had been exclusively for boys. For better instruction a "female department" was frequently organized.

These institutions rendered an important service during the first half of the nineteenth century, but were in time displaced by the publicly supported and publicly controlled American high school, the first of which dates from 1821. This evolution we shall describe more in detail a little later on.

The colleges of the time. Some interest also was taken in college education during this early national period. College attendance, however, was small, as the country was still new and the people were poor. As late as 1815, Harvard graduated a class of but 66; Yale of 69; Princeton of 40; Williams of 40; Pennsylvania of 15; and the University of South Carolina of 37. After the organization of the Union the nine old colonial colleges were reorganized, and an attempt was made to bring them into closer harmony with the ideas and needs of the people and the governments of the States. Dartmouth, Kings (now rechristened Columbia), and Pennsylvania were for a time changed into state institutions, and an unsuccessful attempt was made to make a state university for Virginia out of William and Mary. Fifteen additional colleges were organized by 1800, and fourteen more by 1820. Between 1790 and 1825 there was much discussion as to the desirability of founding a national university at the seat of government, and Washington in his will (1799) left, for that time, a considerable sum to the Nation to inaugurate the new undertaking. Nothing ever came of it, however. Before 1825 six States — Virginia, North Carolina, South Carolina, Georgia, Indiana, and Michigan — had laid the foundations of future state universities. The National Government had also granted to each new Western State two entire townships of land to help endow a university in each — a stimulus which eventually led to the establishment of a state university in every Western State.

A half-century of transition. The first half-century of the national life may be regarded as a period of transition from the church-control idea of education over to the idea of education under the control of and supported by the State. Though many of the early States had provided for state school systems in their constitutions (**R. 259**), the schools had not been set up, or set up only here and there. It required time to make this change in thinking. Up to the period of the beginnings of our national development education had almost everywhere been regarded as an affair of the Church, somewhat akin to baptism, marriage, the administration of the sacraments, and the burial of the dead.

Even in New England, which formed an exception, the evolution of the civic school from the church school was not yet complete.

The church charity-school had become, as we have seen (p. 449), a familiar institution before the Revolution. The English "Society for the Propagation of the Gospel in Foreign Parts" (p. 449), which maintained schools in connection with the Anglican churches in the Anglican Colonies and provided an excellent grade of charity-school master, withdrew at the close of the Revolutionary War from work in this country. The different churches after the war continued their efforts to maintain their church charity-schools, though there was for a time a decrease in both their numbers and their effectiveness.

In the meantime the demand for education grew rather rapidly, and the task soon became too big for the churches to handle. For long the churches made an effort to keep up, as they were loath to relinquish in any way their former hold on the training of the young. The churches, however, were not interested in the problem except in the old way, and this was not what the new democracy wanted. The result was that, with the coming of nationality and the slow but gradual growth of a national consciousness, national pride, national needs, and the gradual development of national resources in the shape of taxable property — all alike combined to make secular instead of religious schools seem both desirable and possible to a constantly increasing number of citizens.

II. AWAKENING AN EDUCATIONAL CONSCIOUSNESS

Between about 1810 and 1830 a number of new forces — philanthropic, political, social, economic — combined to change the earlier attitude by producing conditions which made state rather than church control and support of education seem both desirable and feasible. The change, too, was markedly facilitated by the work of a number of semi-private philanthropic agencies which now began the work of founding schools and building up an interest in education, the most important of which were: (1) the Sunday-School movement; (2) the City School Societies; (3) the Lancastrian movement; and (4) the Infant-School Societies. These will be described briefly, and their influence in awakening an educational consciousness pointed out.

The Sunday-School movement. The Sunday School, as a means of providing the merest rudiments of secular and religious

learning, had been made, through the initiative of Raikes of Gloucester (p. 617), a very important English institution for providing the beginnings of instruction for the children of the city poor. Raikes's idea was soon carried to the United States. In 1786 a Sunday School after the Raikes plan was organized in Hanover County, Virginia. In 1787 a Sunday School for African children was organized at Charleston, South Carolina. In 1791 "The First Day, or Sunday School Society," was organized at Philadelphia, for the establishment of Sunday Schools in that city. In 1793 Katy Ferguson's "School for the Poor" was opened in New York, and this was followed by an organization of New York women for the extension of secular instruction among the poor. In 1797 Samuel Slater's Factory School was opened at Pawtucket, Rhode Island.

Though there had been some Sunday instruction earlier at a few places in New England, the introduction of the Sunday School from England, in 1786, marked the real beginning of the religious Sunday School in America. After the churches had once caught the idea of a common religious school on Sundays for the instruction of any one, a number of societies were formed to carry on and extend the work. The most important of these were:

1808. The Evangelical Society of Philadelphia.
1816. The Female Union for the Promotion of Sabbath Schools (New York).
1816. The New York Sunday School Union.
1816. The Boston Society for the Moral and Religious Instruction of the Poor.
1817. The Philadelphia Sunday and Adult School Union.
1824. The American Sunday School Union.

These different types of American Sunday Schools, being open to all instead of only to the poor and lowly, had a small but an increasing influence in leveling class distinctions and in making a common day school seem possible. The movement for secular instruction on Sundays, though, soon met in America with the opposition of the churches, and before long they took over the idea, superseded private initiative and control, and changed the character of the instruction from a day of secular work to an hour or so of religious teaching. The Sunday School, in consequence, never exercised the influence in educational development in America that it did in England.

The City School Societies. These were patterned after the English charity-school subscription societies, and were formed in

a number of American cities during the first quarter of the nineteenth century for the purpose of providing the rudiments of an education to those too poor to pay for schooling. These Societies were usually organized by philanthropic citizens, willing to contribute something yearly to provide some little education for a few of the many children in the city having no opportunities for any instruction. A number of these Societies were able to effect some financial connection with the city or the State.

One of the first of these School Societies was "The Manumission Society," organized in New York, in 1785, for the purpose of "mitigating the evils of slavery, to defend the rights of the blacks, and especially to give them the elements of an education." Alexander Hamilton and John Jay were among its organizers. A free school for colored pupils was opened, in 1787. This grew and prospered and was aided from time to time by the city, and in 1801 by the State. Finally, in 1834, all its schools were merged with those of the "Public School Society" of the city. In 1801 the first free school for poor white children "whose parents belong to no religious society, and who, from some cause or other, cannot be admitted into any of the charity schools of the city," was opened. This was provided by the "Association of Women Friends for the Relief of the Poor," which engaged "a widow woman of good education and morals as instructor" at £30 per year. This Association also prospered, and received some city or state aid up to 1824. By 1823 it was providing free elementary education for 750 children. Its schools also were later merged with those of the "Public School Society."

"The Public School Society." Perhaps the most famous of all the early subscription societies for the maintenance of schools for the poor was the "New York Free School Society," which later changed its name to that of "The Public School Society of New York." This was organized, in 1805, under the leadership of De Witt Clinton, then mayor of the city, he heading the subscription list with a promise of $200 a year for support. On May 14, 1806, the following advertisement appeared in the daily papers:

FREE SCHOOL

The Trustees of the Society for establishing a Free School in the city of New York, for the education of such poor children as do not belong to, or are not provided for by any religious Society, having engaged a Teacher, and procured a School House for the accommodation of a School, have now the pleasure of announcing that it is

proposed to receive scholars of the descriptions alluded to without delay; applications may be made to, &c.

Four days later the officers of the Society issued a general appeal to the public (R. 311), setting forth the purposes of the Society and soliciting funds.

This Society was chartered by the legislature "to provide

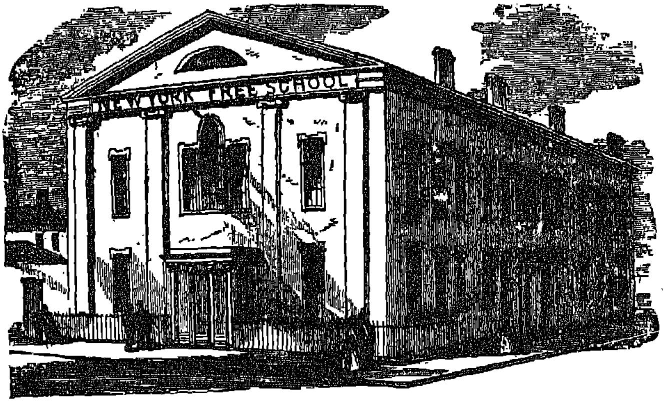

FIG. 196. THE FIRST SCHOOLHOUSE BUILT BY THE FREE SCHOOL SOCIETY IN NEW YORK CITY

Built in 1809, in Tryon Row. Cost, without site, $13,000

schooling for all children who are the proper objects of a gratuitous education." It organized free public education in the city, secured funds, built schoolhouses, provided and trained teachers, and ably supplemented the work of the private and church schools. By its energy and its persistence it secured for itself a large share of public confidence, and aroused a constantly increasing interest in the cause of popular education. In 1853, after it had educated over 600,000 children and trained over 1200 teachers, this Society, its work done, surrendered its charter and turned over its buildings and equipment to the public-school department of the city, which had been created by the legislature in 1842.

School Societies elsewhere. The "Benevolent Society of the City of Baltimore for the Education of the Female Poor," founded in 1799, and the "Male Free Society of Baltimore," organized a little later, were other of these early school societies, though neither became so famous as the Public School Society of New York. The schools of the city of Washington were started by subscription, in 1804, and for some time were in part supported by

subscriptions from public-spirited citizens.[1] This society did an important work in accustoming the people of the capital city to the provision of some form of free education.

In 1800 "The Philadelphia Society[2] for the Free Instruction of Indigent Boys" was formed, which a little later changed to "The Philadelphia Society for the Establishment and Support of Charity Schools." In 1814 "The Society for the Promotion of a Rational System of Education" was organized in Philadelphia, and four years later the public sentiment awakened by a combination of the work of this Society and the coming of the Lancastrian system of instruction enabled the city to secure a special law permitting Philadelphia to organize a system of city schools for the education of the children of its poor. Other societies which rendered useful educational service include the "Mechanics and Manufacturers Association," of Providence, Rhode Island, organized in 1789 (**Rs. 308, 310**); "The Albany Lancastrian School Society," organized in 1826, for the education of the poor of the city in monitorial schools; and the school societies organized in Savannah in 1818, and Augusta, in 1821, "to afford education to the children of indigent parents." Both these Georgia societies received some support from state funds.

The formation of these school societies, the subscriptions made by the leading men of the cities, the bequests for education, and the grants of some city and state aid to these societies, all of which in time became somewhat common, indicate a slowly rising interest in providing schools for the education of all. This rising interest in education was greatly stimulated by the introduction from England, about this time, of a new and what for the time seemed a wonderful system for the organization of education, the Lancastrian monitorial plan.

The Lancastrian monitorial schools. Church-of-England ideas were not in much favor in the United States for some time after the close of the Revolutionary War, and in consequence it was the Lancastrian plan which was brought over and popularized. In 1806 the first monitorial school was opened in New York City, and, once introduced, the system quickly spread from Massachu-

[1] Thomas Jefferson's name appears in the first subscription list as giving $200, and he was elected a member of the first governing board. The chief sources of support of the schools, which up to 1844 remained pauper schools, were subscriptions, lotteries, a tax on slaves and dogs, certain license fees, and a small appropriation ($1500) each year from the city council.

[2] This organization opened the first schools in Philadelphia for children regardless of religious affiliation, and for thirty-seven years rendered a useful service there.

setts to Georgia, and as far west as Cincinnati, Louisville, and Detroit. In 1826 Maryland instituted a state system of Lancastrian schools, with a Superintendent of Public Instruction, but in 1828 abandoned the idea and discontinued the office. A state Lancastrian system for North Carolina was proposed in 1832, but failed of adoption by the legislature. In 1829 Mexico organized higher Lancastrian schools for the Mexican State of Texas. In 1818 Lancaster himself went to America, and was received with much distinction. Most of the remaining twenty years of his life were spent in organizing and directing schools in various parts of the United States.

In many of the rising cities of the eastern part of the country the first free schools established were Lancastrian schools. The system provided education at so low a cost (p. 629) that it made the education of all for the first time seem possible.[1] The first free schools in Philadelphia (1818) were an outgrowth of Lancastrian influence, as was also the case in many other Pennsylvania cities. Baltimore began a Lancastrian school six years before the organization of public schools was permitted by law. A number of monitorial high schools were organized in different parts of the United States, and it was even proposed that the plan should be adopted in the colleges. A number of New England cities, that already had other type schools, investigated the new monitorial plan and were impressed with its many important points of superiority over methods then in use. The Report of the Investigating Committee (1828) for Boston (R. 312), forms a good example of such. As in England, the system was very popular from about 1810 to 1830, but by 1840 its popularity was over.

The interest the new plan awakened. It is not strange that the new plan aroused widespread enthusiasm in many discerning men, and for almost a quarter of a century was advocated as the best system of education then known. Two quotations will illustrate what leading men of the time thought of it. De Witt Clinton, for twenty-one years president of the New York "Free School Society," and later governor of the State, wrote, in 1809:

[1] All at once, comparatively, a new system had been introduced which not only improved but tremendously cheapened education. In 1822 it cost but $1.22 per pupil per year to give instruction in New York City, though by 1844 the per-capita cost, due largely to the decreasing size of the classes, had risen to $2.70, and by 1852 to $5.83. In Philadelphia, in 1817, the expense was $3, as against $12 in the private and church schools. One finds many notices in the newspapers of the time as to the value and low cost of the new system.

When I perceive that many boys in our school have been taught to read and write in two months, who did not before know the alphabet, and that even one has accomplished it in three weeks — when I view all the bearings and tendencies of this system — when I contemplate the habits of order which it forms, the spirit of emulation which it excites, the rapid improvement which it produces, the purity of morals which it inculcates — when I behold the extraordinary union of celerity in instruction and economy of expense — and when I perceive one great assembly of a thousand children, under the eye of a single teacher, marching with unexampled rapidity and with perfect discipline to the goal of knowledge, I confess that I recognize in Lancaster the benefactor of the human race. I consider his system as creating a new era in education, as a blessing sent down from heaven to redeem the poor and distressed of this world from the power and dominion of ignorance.

In a message to the legislature of Connecticut, a State then fairly well supplied with schools of the Massachusetts district type, Governor Wolcott said, in 1825:

If funds can be obtained to defray the expenses of the necessary preparations, I have no doubt that schools on the Lancastrian model ought, as soon as possible, to be established in several parts of this state. Wherever from 200 to 1000 children can be convened within a suitable distance, this mode of instruction in every branch of reading, speaking, penmanship, arithmetic, and bookkeeping, will be found much more efficient, direct, and economical than the practices now generally pursued in our primary schools.

The Lancastrian schools materially hastened the adoption of the free school system in all the Northern States by gradually accustoming people to bearing the necessary taxation which free schools entail. They also made the common school common and much talked of, and awakened thought and provoked discussion on the question of public education. They likewise dignified the work of the teacher by showing the necessity for teacher-training. The Lancastrian Model Schools, first established in the United States in 1818, were the precursors of the American normal schools.

Coming of the Infant School. A curious early condition in America was that, in some of the cities where public schools had been established, by one agency or another, no provision had been made for beginners. These were supposed to obtain the elements of reading at home, or in the Dame Schools. In Boston, for example, where public schools were maintained by the city, no children could be received into the schools who had not learned to read and write (**R. 314 a**). This made the common age of ad-

mission somewhere near eight years. The same was in part true of Hartford, New York, Philadelphia, Baltimore, and other cities. When the monitorial schools were established they tended to restrict their membership in a similar manner, though not always able to do so.

In 1816 there came to America, also from England, a valuable supplement to education as then known in the form of the so-called Infant Schools (p. 630). First introduced at Boston (**R. 313**), the Infant Schools proved popular, and in 1818 the city appropriated $5000 for the purpose of organizing such schools to supplement the public-school system. These were to admit children at four years of age, were to be known as primary schools, were to be taught by women, were to be open all the year round, and were to prepare the children for admission to the city schools, which by that time had come to be known as English grammar schools. Providence, similarly, established primary (Infant) schools in 1828 for children between the ages of four and eight, to supplement the work of the public schools, there called writing schools.

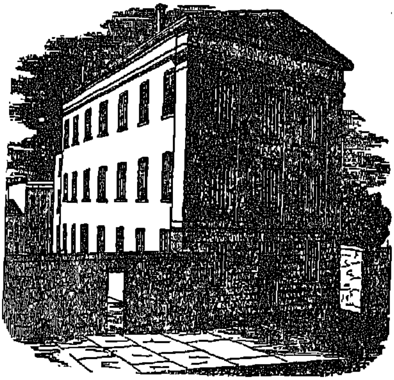

FIG. 197
"MODEL" SCHOOL BUILDING OF THE PUBLIC SCHOOL SOCIETY

Erected in 1843. Cost (with site), $17,000. A typical New York school building, after 1830. The infant or primary school was on the first floor, the second floor contains the girls' school, and the third floor the boys' school. Each floor had one large room seating 252 children; the primary school-room could be divided into two rooms by folding doors, so as to segregate the infant class. This building was for long regarded as the perfection of the builder's art, and its picture was printed for years on the cover of the Society's Annual Reports.

The Dame School absorbed. For New England the establishment of primary schools virtually took over the Dame School instruction as a public function, and added the primary grades to the previously existing school. We have here the origin of the division, often still retained at least in name in the Eastern States, of the "primary grades" and the "grammar grades" of the elementary school.

An "Infant-School Society" was organized in New York, in 1827. The first Infant School was established under the direction of the Public School Society as the "Junior Department" of

School No. 8, with a woman teacher in charge, and using monitorial methods. A second school was established the next year. In 1830 the name was changed from Infant School to Primary Department, and where possible these departments were combined with the existing schools. In 1832 it was decided to organize ten primary schools, under women teachers, for children from four to ten years of age, and after the Boston plan of instruction. This abandoned the monitorial plan of instruction for the new Pestalozzian form, which was deemed better suited to the needs of the smaller children. By 1844 fifty-six Primary Departments had been organized in connection with the upper schools of the city.

In Philadelphia three Infant-School Societies were founded in 1827–28, and such schools were at once established there. By 1830 the directors of the school system had been permitted by the legislature of the State to expend public money for such schools, and thirty such, under women teachers, were in operation in the city by 1837.

Primary education organized. The Infant-School idea was soon somewhat generally adopted by the Eastern cities, and

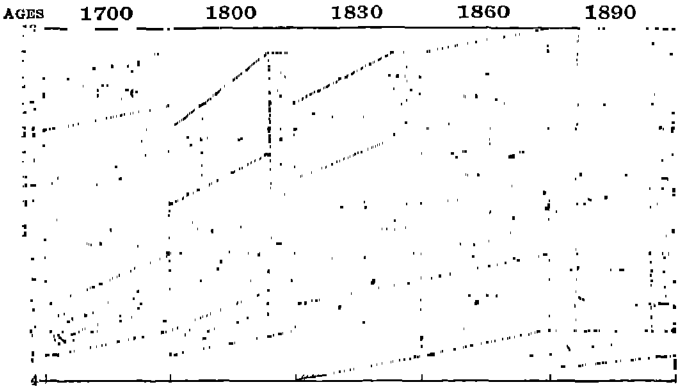

FIG. 198. EVOLUTION OF THE ESSENTIAL FEATURES OF THE AMERICAN PUBLIC SCHOOL SYSTEM

changed somewhat to make of it an American primary school. Where children had not been previously admitted to the schools without knowing how to read, as in Boston, they supplemented the work of the public schools by adding a new school beneath. Where the reverse had been the case, as in New York City, the organization of Infant Schools as Junior Departments enabled the existing schools to advance their work. Everywhere it resulted,

eventually, in the organization of primary and grammar school departments, often with intermediate departments in between, and, with the somewhat contemporaneous evolution of the first high schools, the main outlines of the American free public-school system were now complete.

These four important educational movements — the secular Sunday School, the semi-public city School Societies, the Lancastrian plan for instruction, and the Infant-School idea — all arising in philanthropy, came as successive educational ideas to America during the first half of the nineteenth century, supplemented one another, and together accustomed a new generation to the idea of a common school for all.

III. SOCIAL, POLITICAL, AND ECONOMIC INFLUENCES

It is hardly probable, however, that these philanthropic efforts alone, valuable as they were, could have resulted in the great American battle for tax-supported schools, at as early a date as this took place, had they not been supplemented by a number of other movements of a social, political, and economic character which in themselves materially changed the nature and direction of our national life. The more important of these were: (1) The rise of cities and of manufacturing, (2) the extension of the suffrage, and (3) the rise of new class-demands for schools.

Growth of city population and manufacturing. At the time of the inauguration of the National Government nearly every one in America lived on the farm or in some little village. The first forty years of the national life were essentially an agricultural and a pioneer period. Even as late as 1820 there were but thirteen cities of 8000 inhabitants or over in the whole of the twenty-three States at that time comprising the Union, and these thirteen cities contained but 4.9 per cent of the total population of the Nation.

After about 1825 these conditions began to change. By 1820 many little villages were springing up, and these frequently proved the nuclei for future cities. In New England many of these places were in the vicinity of some waterfall, where cheap power made manufacturing on a large scale possible. Lowell, Massachusetts, which in 1820 did not exist and in 1840 had a population of over twenty thousand people, collected there largely to work in the mills, is a good illustration. Other cities, such as Cincinnati and Detroit, grew because of their advantageous situation as exchange and wholesale centers. With the

revival of trade and commerce after the second war with Great Britain the cities grew rapidly both in number and size.

The rise of the new cities and the rapid growth of the older ones materially changed the nature of the educational problem, by producing an entirely new set of social and educational conditions for the people of the Central and Northern States to solve. The South, with its plantation life, negro slavery, and absence of manufacturing was largely unaffected by these changed conditions until well after the close of the Civil War. In consequence the educational awakening there did not come for nearly half a century after it came in the North. In the cities in the coast States north of Maryland, but particularly in those of New York and New England, manufacturing developed very rapidly. Cotton-spinning in particular became a New England industry, as did also the weaving of wool, while Pennsylvania became the center of the iron manufacturing industries.[1]

The development of this new type of factory work meant the beginnings of the breakdown of the old home and village industries, the eventual abandonment of the age-old apprenticeship system (**Rs. 200, 201**), the start of the cityward movement of the rural population, and the concentration of manufacturing in large establishments, employing many hands to perform continuously certain limited phases of the manufacturing process. This in time was certain to mean a change in educational methods. It also called for the concentration of both capital and labor. The rise of the factory system, business on a large scale, and cheap and rapid transportation, all combined to diminish the importance of agriculture and to change the city from an unimportant to a very important position in our national life. The 13 cities of 1820 increased to 44 by 1840, and to 141 by 1860. There were four times as many cities in the North, too, where manufacturing had found a home, as in the South, which remained essentially agricultural.

New social problems in the cities. The many changes in the nature of industry and of village and home life, effected by the development of the factory system and the concentration of manufacturing and population in the cities, also contributed materi-

[1] The cotton-spinning industry illustrates the rapid growth of manufacturing in the United States. The 15 cotton mills of 1807 had increased to 801, by 1831; and to 1240, by 1840. The South owed its prosperity chiefly to cotton-growing and shipping, and did not develop factories and workshops until a much more recent period.

ally in changing the character of the old educational problem. When the cities were as yet but little villages in size and character, homogeneous in their populations, and the many social and moral problems incident to the congestion of peoples of mixed character had not as yet arisen, the church and charity and private school solution of the educational problem was reasonably satisfactory. As the cities now increased rapidly in size, became more city-like in character, drew to them diverse elements previously largely unknown, and were required by state laws to extend the right of suffrage to all their citizens, the need for a new type of educational organization began slowly but clearly to manifest itself to an increasing number of citizens. The church, charity, and private school system completely broke down under the new strain. School Societies and Educational Associations, organized for propaganda, now arose in the cities; grants of city or state funds for the partial support of both church and society schools were demanded and obtained; and numbers of charity organizations began to be established in the different cities to enable them to handle better the new problems of pauperism, intemperance, and juvenile delinquency which arose.

The extension of the suffrage. The Constitution of the United States, though framed by the ablest men of the time, was framed by men who represented the old aristocratic conception of education and government. The same was true of the conventions which framed practically all the early state constitutions. The early period of the national life was thus characterized by the rule of a class — a very well-educated and a very capable class, to be sure — but a class elected by a ballot based on property qualifications and belonging to the older type of political and social thinking.

Notwithstanding the statements of the Declaration of Independence, the change came but slowly. Up to 1815 but four States had granted the right to vote to all male citizens, regardless of property holdings or other somewhat similar restrictions. After 1815 a democratic movement, which sought to abolish all class rule and all political inequalities, arose and rapidly gained strength. In this the new States to the westward, with their absence of old estates or large fortunes, and where men were judged more on their merits than in an older society, were the leaders. As will be seen from the map, every new State admitted east of the Mississippi River, except Ohio (admitted in 1802), where the

New England element predominated, and Louisiana (1812), provided for full manhood suffrage at the time of its admission to statehood. Seven additional Eastern States had extended the same full voting privileges to their citizens by 1845, while the old requirements had been materially modified in most of the other Northern States. This democratic movement for the leveling of all class distinctions between white men became very marked, after 1820; came to a head in the election of Andrew Jackson as President, in 1828; and the final result was full manhood suffrage in all the States. This gave the farmer in the West and the new manufacturing classes in the cities a preponderating influence in the affairs of government.

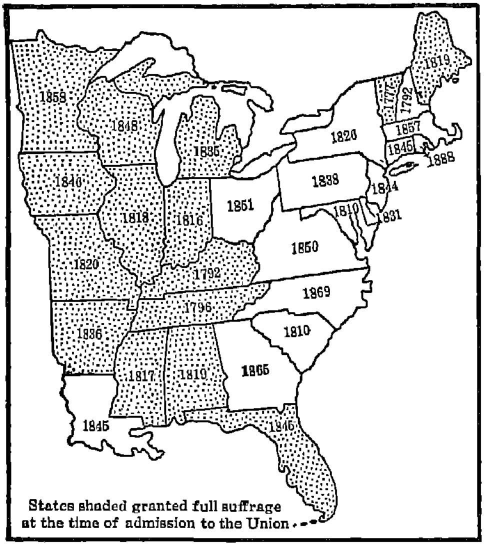

Fig. 199. Dates of the granting of Full Manhood Suffrage

Some of the older States granted almost full manhood suffrage at an earlier date, retaining a few minor restrictions until the date given on the map. States shaded granted full suffrage at the time of admission to the Union

Educational significance of the extension of suffrage. The educational significance of the extension of full manhood suffrage to all was enormous and far-reaching.

There now took place in the United States, after about 1825, what took place in England after the passage of the Second Reform Act (p. 642) of 1867. With the extension of the suffrage to all classes of the population, poor as well as rich, laborer, as well as employer, there came to thinking men, often for the first time, a realization that general education had become a fundamental necessity for the State, and that the general education of all in the elements of knowledge and civic virtue must now assume that importance in the minds of the leaders of the State that the education of a few for the service of the Church and of the many for

simple church membership had once held in the minds of ecclesiastics.

This new conception is well expressed in the preamble to the first (optional) school law enacted in Illinois (1825), which declares:

> To enjoy our rights and liberties, we must understand them; their security and protection ought to be the first object of a free people; and it is a well-established fact that no nation has ever continued long in the enjoyment of civil and political freedom, which was not both virtuous and enlightened; and believing that the advancement of literature always has been, and ever will be the means of developing more fully the rights of man, that the mind of every citizen in a republic is the common property of society, and constitutes the basis of its strength and happiness; it is therefore considered the peculiar duty of a free government, like ours, to encourage and extend the improvement and cultivation of the intellectual energies of the whole.

Utterances of public men and workingmen. Governors now began to recommend to their legislatures the establishment of tax-supported schools, and public men began to urge state action and state control. An utterance by De Witt Clinton, for nine years governor of New York, may be taken as an example of many. In a message to the legislature, in 1826, defending the schools established, he said:

> The first duty of government, and the surest evidence of good government, is the encouragement of education. A general diffusion of knowledge is a precursor and protector of republican institutions, and in it we must confide as the conservative power that will watch over our liberties and guard them against fraud, intrigue, corruption, and violence. I consider the system of our common schools as the palladium of our freedom, for no reasonable apprehension can be entertained of its subversion as long as the great body of the people are enlightened by education.

After about 1825 many labor unions were formed, and the representatives of these new organizations joined in the demands for schools and education, urging the free education of their children as a natural right. In 1829 the workingmen of Philadelphia asked each candidate for the legislature for a formal declaration of the attitude he would assume toward the provision of "an equal and a general system of education" for the State. In 1830 the Workingmen's Committee of Philadelphia submitted a detailed report (R. 315), after five months spent in investigating educational conditions in Pennsylvania, vigorously condemning the lack of provision for education in the State, and the utterly inadequate pro-

vision where any was made. Seth Luther, in an address on "The Education of Workingmen," delivered in 1832, declared that "a large body of human beings are ruined by a neglect of education, rendered miserable in the extreme, and incapable of self-government." Stephen Simpson, in his *A Manual for Workingmen*, published in 1831, declared that "it is to education, therefore, that we must mainly look for redress of that perverted system of society, which dooms the producer to ignorance, to toil, and to penury, to moral degradation, physical want, and social barbarism." Many resolutions were adopted by these organizations demanding free state-supported schools.[1]

IV. ALIGNMENT OF INTERESTS, AND PROPAGANDA

The alignment of interests. The second quarter of the nineteenth century may be said to have witnessed the battle for tax-supported, publicly controlled and directed, and non-sectarian common schools. In 1825 such schools were still the distant hope of statesmen and reformers; in 1850 they had become an actuality in almost every Northern State. The twenty-five years intervening marked a period of public agitation and educational propaganda; of many hard legislative fights; of a struggle to secure desired legislation, and then to hold what had been secured; of many bitter contests with church and private-school interests, which felt that their "vested rights" were being taken from them; and of occasional referenda in which the people were asked, at the next election, to advise the legislature as to what to do. Excepting the battle for the abolition of slavery, perhaps no question has ever been before the American people for settlement which caused so much feeling or aroused such bitter antagonisms. The friends of free schools were at first commonly regarded as fanatics, dangerous to the State, and the opponents of free schools were considered by them as old-time conservatives or as selfish members of society.

Naturally such a bitter discussion of a public question forced an alignment of the people for or against publicly supported and

[1] Among many resolutions adopted by the laboring organizations the following is typical: "At a General Meeting of Mechanics and Workingmen held in New York City, in 1829, it was

"*Resolved*, that next to life and liberty, we consider education the greatest blessing bestowed upon mankind.

"*Resolved*, that the public funds should be appropriated (to a reasonable extent) to the purpose of education upon a regular system that shall insure the opportunity to every individual of obtaining a competent education before he shall have arrived at the age of maturity."

controlled schools, and this alignment of interests may be roughly stated to have been about as follows:

I. For Public Schools.

Men considered as:

1. "Citizens of the Republic."
2. Philanthropists and humanitarians.
3. Public men of large vision.
4. City residents.
5. The intelligent workingmen in the cities.
6. Non-taxpayers.
7. Calvinists.
8. "New England men."

II. Lukewarm, or against Public Schools.

Men considered as:

1. Belonging to the old aristocratic class.
2. The conservatives of society.
3. Politicians of small vision.
4. Residents of rural districts.
5. The ignorant, narrow-minded, and penurious.
6. Taxpayers.
7. Lutherans, Reformed-Church, Mennonites, and Quakers.
8. Southern men.
9. Proprietors of private schools.
10. The non-English-speaking classes.

The work of propaganda. To meet the arguments of the objectors, to change the opinions of a thinking few into the common opinion of the many, to overcome prejudice, and to awaken the public conscience to the public need for free and common schools in such a democratic society, was the work of a generation. To convince the masses of the people that the scheme of state schools was not only practicable, but also the best and most economical means for giving their children the benefits of an education; to convince propertied citizens that taxation for education was in the interests of both public and private welfare; to convince legislators that it was safe to vote for free-school bills; and to overcome the opposition due to apathy, religious jealousies, and private interests, was the work of years. In time, though, the desirability of common, free, tax-supported, non-sectarian, state-controlled schools became evident to a majority of the citizens in the different American States, and as it did the American State School, free and equally open to all, was finally evolved and took its place as the most important institution in the national life working for

the perpetuation of a free democracy and the advancement of the public welfare.

For this work of propaganda hundreds of School Societies and Educational Associations were organized; many conventions were held, and many resolutions favoring state schools were adopted; many "Letters" and "Addresses to the Public" were written and published; public-spirited citizens traveled over the country, making addresses to the people explaining the advantages of free state schools; many public-spirited men gave the best years of their lives to the state-school propaganda; and many governors sent communications on the subject to legislatures not yet convinced as to the desirability of state action. At each meeting of the legislatures for years a deluge of resolutions, memorials, and petitions for and against free schools met the members.

The invention of the steam printing press came at about this time, and the first modern newspapers at a cheap price now appeared. These usually espoused progressive measures, and tremendously influenced public sentiment. Those not closely connected with church or private-school interests usually favored public tax-supported schools.

QUESTIONS FOR DISCUSSION

1. Explain why the development of a national consciousness was practically necessary before an educational consciousness could be awakened.
2. Show why it was natural, suffrage conditions considered, that the early interest should have been in advanced education.
3. Why did the Sunday-School movement prove of so much less usefulness in America than in England?
4. Show the analogy between the earlier school societies for educational work and other forms of modern associative effort.
5. Explain the great popularity of the Lancastrian schools over those previously common in America.
6. What were two of the important contributions of the Infant-School idea to American education?
7. Why are schools and education much more needed in a country experiencing a city and manufacturing development than in a country experiencing an agricultural development?
8. Show how the development of cities caused the old forms of education to break down, and made evident the need for a new type of education.
9. Show how each extension of the suffrage necessitates an extension of educational opportunities and advantages.
10. Explain the alignment of each class, for or against tax-supported schools, on historical and on economic grounds.

SELECTED READINGS

In the accompanying *Book of Readings* the following illustrative selections are reproduced:

307. Fowle: The Schools of Boston about 1790–1815.
308. Rhode Island: Petition for Free Schools, 1799.
309. Providence: Rules and Regulations for the Schools in 1820.
310. Providence: A Memorial for Better Schools, 1837.
311. Bourne: Beginnings of Public Education in New York City.
312. Boston Report: Advantages of the Monitorial System.
313. Wightman: Establishment of Primary Schools in Boston.
314. Boston: The Elementary-School System in 1823.
315. Philadelphia: Report of Workingmen's Committee on Schools.

QUESTIONS ON THE READINGS

1. Just what advantages for boys and for girls existed in Boston (**307 a, b**) before the creation of the reading schools?
2. What improvements and additions did the reading schools (**307 c**) introduce?
3. State the main features of the Rhode Island petition (**308**) of 1799.
4. Just what kind of schools do the Providence regulations (**309**) of 1820 provide for and describe?
5. Despite the many advances made in public schools since the date of the Providence Memorial (**310**), have relative public and private school expenditures materially changed?
6. Compare the New York Public School Society Address (**311**) with the English charity-school organization (**237, 238**) as to purpose and instruction.
7. Show that a report on modern classroom organization would present advantages over the monitorial plan, comparable with those outlined by the Boston Report (**312**) comparing the monitorial and individual plans.
8. Just what does the Boston Report on Primary Schools (**313**) reveal as to the character of education then provided?
9. Just what kind of elementary schools did Boston have (**314**) in 1823?
10. Just what kind of schools existed in the cities of Pennsylvania in 1830, judging from the Report (**315**) of the Workingmen's Committee? Was the Report correct with reference to "a monopoly of talent"?

SUPPLEMENTARY REFERENCES

Binns, H. B. *A Century of Education, 1808–1908.*
Boese, Thos. *Public Education in the City of New York.*
Cubberley, E. P. *Public Education in the United States.*
*Fitzpatrick, E. A. *The Educational Views and Influences of De Witt Clinton.*
McManis, J. T. "The Public School Society of New York City"; in *Educational Review*, vol. 29, pp. 303–11. (March, 1905.)
*Palmer, A. E. *The New York Public School System.*
*Reigart, J. F. *The Lancastrian System of Instruction in the Schools of New York City.*
*Salmon, David. *Joseph Lancaster.*
*Simcoe, A. M. *Social Forces in American History.*

CHAPTER XXVI

THE AMERICAN BATTLE FOR FREE STATE SCHOOLS

The problem which confronted those interested in establishing state-controlled schools was not exactly the same in any two States, though the battle in many States possessed common elements, and hence was somewhat similar in character. Instead of tracing the struggle in detail in each of the different States, it will be much more profitable for our purposes to pick out the main strategic points in the contest, and then illustrate the conflict for these by describing conditions in one or two States where the controversy was most severe or most typical. The seven strategic points in the struggle for free, tax-supported, non-sectarian, state-controlled schools in the United States were:

1. The battle for tax support.
2. The battle to eliminate the pauper-school idea.
3. The battle to make the schools entirely free.
4. The battle to establish state supervision.
5. The battle to eliminate sectarianism.
6. The battle to extend the system upward.
7. Addition of the state university to crown the system.

We shall consider each of these, briefly, in order.

I. THE BATTLE FOR TAX SUPPORT

Early support and endowment funds. In New England, land endowments, local taxes, direct local appropriations, license taxes, and rate-bills had long been common. Land endowments began early in the New England Colonies, while rate-bills date back to the earliest times and long remained a favorite means of raising money for school support. These means were adopted in the different States after the beginning of our national period, and to them were added a variety of license taxes, while occupational taxes, lotteries, and bank taxes also were employed to raise money for schools. A few examples of these may be cited:

Connecticut, in 1774, turned over all proceeds of liquor licenses to the towns where collected, to be used for schools. New Orleans, in 1826, licensed two theaters on condition that they each pay $3000 annually for the support of schools in the city. New York, in 1799, authorized four state lotteries to raise $100,000 for

schools, a similar amount again in 1801, and numerous other lotteries before 1810. New Jersey (**R. 246**) and most of the other States did the same. Congress passed fourteen joint resolutions, between 1812 and 1836, authorizing lotteries to help support the schools of the city of Washington. Bank taxes were a favorite source of income for schools, between about 1825 and 1860, banks being chartered on condition that they would pay over each year for schools a certain sum or percentage of their earnings. These all represent what is known as indirect taxation, and were valuable in accustoming the people to the idea of public schools without appearing to tax them for their support.

The National Land Grants, begun in the case of Ohio in 1802, soon stimulated a new interest in schools. Each State admitted after Ohio also received the sixteenth section for the support of common schools, and two townships of land for the endowment of a state university. The new Western States, following the lead of Ohio (**R. 260**) and Indiana (**R. 261**), dedicated these section lands and funds to free common schools. The sixteen older States, however, did not share in these grants, so most of them now set about building up a permanent school fund of their own, though at first without any very clear idea as to how the income from the fund was to be used.[1]

The beginnings of school taxation. The early idea, which seems for a time to have been generally entertained, that the income from land grants, license fees, and these permanent endowment funds would in time entirely support the necessary schools, was gradually abandoned as it was seen how little in yearly income these funds and lands really produced, and how rapidly the population of the States was increasing. By 1825 it may be said to have been clearly recognized by thinking men that the only safe reliance of a system of state schools lay in the general and direct taxation of all property for their support. "The wealth of

[1] Connecticut and New York both had set aside lands, before 1800, to create such a fund, Connecticut's fund dating back to 1750. Delaware, in 1796, devoted the income from marriage and tavern licenses to the same purpose, but made no use of the fund for twenty years. Connecticut, in 1795, sold its "Western Reserve" in Ohio for $1,200,000, and added this to its school fund. New York, in 1805, similarly added the proceeds of the sale of half a million acres of state lands, though the fund then formally created accumulated unused until 1812. Tennessee began to build up a permanent state school fund in 1806; Virginia in 1810; South Carolina in 1811; Maryland in 1812; New Jersey in 1816; Georgia in 1817; Maine, New Hampshire, Kentucky, and Louisiana in 1821; Vermont and North Carolina in 1825; Pennsylvania in 1831; and Massachusetts in 1834. These were established as permanent state funds, the annual income only to be used, in some way to be determined later, for the support of some form of schools.

the State must educate the children of the State" became a watchword, and the battle for direct, local, county, and state taxation for education was clearly on by 1825 to 1830 in all the Northern States, except the four in New England where the principle of taxation for education had for long been established.[1] Even in these States the struggle to increase taxation and provide better schools called for much argument and popular education (R. 316), and occasional backward movements (Rs. 317, 318) were encountered.

The struggle to secure the first legislation, weak and ineffective as it seems to us to-day, was often hard and long. "Campaigns of education" had to be prepared for and carried through. Many thought that tax-supported schools would be dangerous for the State, harmful to individual good, and thoroughly undemocratic. Many did not see the need for schools at all. Portions of a town or a city would provide a free school, while other portions would not. Often those in favor of taxation were bitterly assailed, and even at times threatened with personal violence. Often those in favor of improving the schools had to wait patiently for the opposition slowly to wear itself out (R. 319) before any real progress could be made.

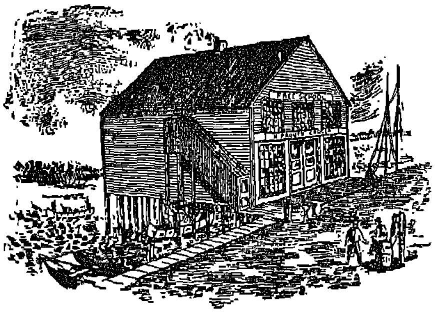

FIG. 200. THE FIRST FREE PUBLIC SCHOOL IN DETROIT

A one-room school, opened in the Second Ward, in 1838. No action was taken in any other ward until 1842

State support fixed the state system. With the beginnings of state aid in any substantial sums, either from the income from permanent endowment funds, state appropriations, or direct state

[1] Now for the first time direct taxation for schools was likely to be felt by the taxpayer, and the fight for and against the imposition of such taxation was on in earnest. The course of the struggle and the results were somewhat different in the different States, but, in a general way, the progress of the conflict was somewhat as follows:
1. Permission granted to communities so desiring to organize a school taxing district, and to tax for school support the property of those consenting and residing therein.
2. Taxation of all property in the taxing district permitted.
3. State aid to such districts, at first from the income from permanent endowment funds, and later from the proceeds of a small state appropriation or a state or county tax.
4. Compulsory local taxation to supplement the state or county grant.

taxation, the State became, for the first time, in a position to enforce quite definite requirements in many matters. Communities which would not meet the State's requirements would receive no state funds.

One of the first requirements to be thus enforced was that communities or districts receiving state aid must also levy a local tax for schools. Commonly the requirement was a duplication of state aid. Generally speaking, and recognizing exceptions in a few States, this represents the beginnings of compulsory local taxation for education. As early as 1797 Vermont had required the towns to support their schools on penalty of forfeiting their share of state aid. New York in 1812, Delaware in 1829, and New Jersey in 1846 required a duplication of all state aid received. Wisconsin, in its first constitution of 1848, required a local tax for schools equal to one half the state aid received. The next step in state control was to add still other requirements, as a prerequisite to receiving state aid. One of the first of such was that a certain length of school term, commonly three months, must be provided in each school district. Another was the provision of free heat, and later on free schoolbooks and supplies.

When the duplication-of-state-aid-received stage had been reached, compulsory local taxation for education had been established, and the great central battle for the creation of a state school system had been won. The right to tax for support, and to compel local taxation, was the key to the whole state system of education. From this point on the process of evolving an adequate system of school support in any State has been merely the further education of public opinion to see new educational needs.

II. THE BATTLE TO ELIMINATE THE PAUPER-SCHOOL IDEA

The pauper-school idea. The pauper-school idea was a direct inheritance from England, and its home in America was in the old Central and Southern Colonies, where the old Anglican Church had been in control. New Jersey, Pennsylvania, Delaware, Maryland, Virginia, and Georgia were the chief representatives, though the idea had friends among certain classes of the population in other of the older States. The new and democratic West would not tolerate it. The pauper-school conception was a direct inheritance from English rule, belonged to a society based on classes, and was wholly out of place in a Republic founded on the doctrine that "all men are created equal, and endowed by

their Creator with certain unalienable rights." Still more, it was a very dangerous conception of education for a democratic form of government to tolerate or to foster. Its friends were found among the old aristocratic or conservative classes, the heavy taxpayers, the supporters of church schools, and the proprietors of private schools. Citizens who had caught the spirit of the new Republic, public men of large vision, intelligent workingmen, and men of the New England type of thinking were opposed on principle to a plan which drew such invidious distinctions between the future citizens of the State. To educate part of the children in church or private pay schools, they said, and to segregate those too poor to pay tuition and educate them at public expense in pauper schools, often with the brand of pauper made very evident to them, was certain to create classes in society which in time would prove a serious danger to our democratic institutions.

Large numbers of those for whom the pauper schools were intended would not brand themselves as paupers by sending their children to the schools, and others who accepted the advantages offered, for the sake of their children, despised the system.[1]

The battle for the elimination of the pauper-school idea was fought out in the North in the States of Pennsylvania and New Jersey, and the struggle in these two States we shall now briefly describe.

The Pennsylvania legislation. In Pennsylvania we find the pauper-school idea fully developed. The constitution of 1790 (R. 259) had provided for a state system of pauper schools, but nothing was done to carry even this constitutional direction into effect until 1802. A pauper-school law was then enacted, directing the overseers of the poor to notify such parents as they deemed sufficiently indigent that, if they would declare themselves to be paupers, their children might be sent to some specified private or pay school and be given free education (R. 315). The expense for this was assessed against the education

[1] Concerning the system, "The Philadelphia Society for the Establishment and Support of Charity Schools," in an "Address to the Public," in 1818, said:

"In the United States the benevolence of the inhabitants has led to the establishment of Charity Schools, which, though affording individual advantages, are not likely to be followed by the political benefits kindly contemplated by their founders. In the country a parent will raise children in ignorance rather than place them in charity schools. It is only in large cities that charity schools succeed to any extent. These dispositions may be improved to the best advantage, by the Legislature, in place of Charity Schools, establishing Public Schools for the education of all children, the offspring of the rich and the poor alike."

poor-fund, which was levied and collected in the same manner as were road taxes or taxes for poor relief. No provision was made for the establishment of public schools, even for the children of the poor, nor was any standard set for the education to be provided in the schools to which they were sent. No other general provision for elementary education was made in the State until 1834.

With the growth of the cities, and the rise of their special problems, something more than this very inadequate provision for schooling became necessary. "The Philadelphia Society for the Establishment and Support of Charity Schools" had long been urging a better system, and in 1814 "The Society for the Promotion of a Rational System of Education" was organized in Philadelphia for the purpose of educational propaganda. Bills were prepared and pushed, and in 1818 Philadelphia was permitted, by special law, to organize as "the first school district" in the State of Pennsylvania, and to provide, with its own funds, a system of Lancastrian schools for the education of the children of its poor.[1]

The Law of 1834. In 1827 "The Pennsylvania Society for the Promotion of Public Schools" began an educational propaganda which did much to bring about the Free-School Act of 1834. In an "Address to the Public" it declared its object to be the promotion of public education throughout the State of Pennsylvania, and the "Address" closed with these words:

> This Society is at present composed of about 250 members, and a correspondence has been commenced with 125 members, who reside in every district in the State. It is intended to direct the continued attention of the public to the importance of the subject; to collect and diffuse all information which may be deemed valuable; and to persevere in their labors until they shall be crowned with success.

Memorials were presented to the legislature year after year, governors were interested, "Addresses to the Public" were prepared, and a vigorous propaganda was kept up until the Free-School Law of 1834 was the result.

This law, though, was optional. It created every ward, township, and borough in the State a school district, a total of 987 being created for the State. Each school district was ordered to vote that autumn on the acceptance or rejection of the law. Those accepting the law were to organize under its provisions,

[1] In 1821 the counties of Dauphin (Harrisburg), Allegheny (Pittsburg), Cumberland (Carlisle), and Lancaster (Lancaster) were also exempted from the state pauper-school law, and allowed to organize schools for the education of the children of their poor.

while those rejecting the law were to continue under the educational provisions of the old Pauper-School Act.

The results of the school elections of 1834 are shown, by counties, on the below map. Of the total of 987 districts created, 502, in 46 of the then 52 counties (Philadelphia County not voting), or

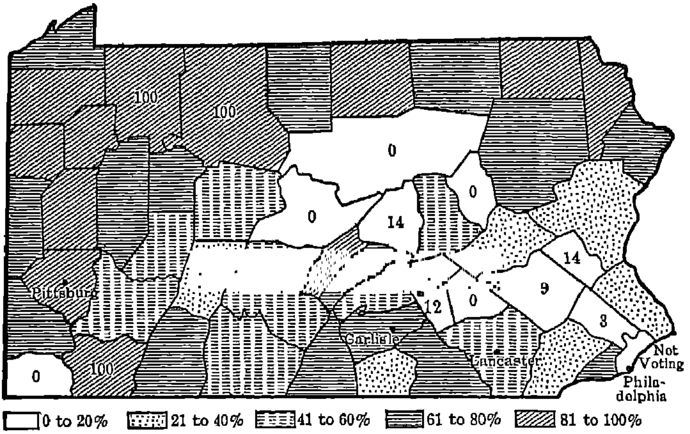

FIG. 201. THE PENNSYLVANIA SCHOOL ELECTIONS of 1835

Showing the percentage of school districts in each county organizing under and accepting the School Law of 1834. Percentage of districts accepting indicated on the map for a few of the counties.

52 per cent of the whole number, voted to accept the new law and organize under it; 264 districts, in 31 counties, or 27 per cent of the whole, voted definitely to reject the law; and 221 districts, in 46 counties, or 21 per cent of the whole, refused to take any action either way. In 3 counties, indicated on the map, every district accepted the law, and in 5 counties, also indicated, every district rejected or refused to act on the law. It was the predominantly German counties, located in the east-central portion of the State, which were strongest in their opposition to the new law. One reason for this was that the new law provided for English schools; another was the objection of the thrifty Germans to taxation; and another was the fear that the new state schools might injure their German parochial schools.

The real fight for free *versus* pauper schools, though, was yet to come. Legislators who had voted for the law were bitterly assailed, and, though it was but an optional law, the question of its repeal and the reinstatement of the old Pauper-School Law be-

came the burning issue of the campaign in the autumn of 1834. Many legislators who had favored the law were defeated for re-election. Others, seeing defeat, refused to run. Petitions for the repeal of the law,[1] and remonstrances against its repeal, flooded the legislature when it met. The Senate at once repealed the law, but the House, largely under the leadership of a Vermonter by the name of Thaddeus Stevens,[2] refused to reconsider, and finally forced the Senate to accept an amended and a still stronger bill. This defeat finally settled, in principle at least, the pauper-school question in Pennsylvania,[3] though it was not until 1873 that the last district in the State accepted the new system.

Eliminating the pauper-school idea in New Jersey. No constitutional mention of education was made in New Jersey until 1844, and no educational legislation was passed until 1816. In that year a permanent state school fund was begun, and in 1820 the first permission to levy taxes "for the education of such poor children as are paupers" was granted. In 1828 an extensive investigation showed that one third of the children of the State were without educational opportunities, and as a result of this investigation the first general school law for the State was enacted, in 1829. This provided for district schools, school trustees and visitation, licensed teachers, local taxation, and made a state appropriation of $20,000 a year to help establish the system. The next year, however, this law was repealed and the old pauper-school plan reëstablished, largely due to the pressure of church and private-school interests. In 1830 and 1831 the state appropriation was made divisible among private and parochial schools, as well as the public pauper schools, and the use of all public money was limited "to the education of the children of the poor."

Between 1828 and 1838 a number of conventions of friends of free public schools were held in the State, and much work in the nature of propaganda was done. At a convention in 1838 a committee was appointed to prepare an "Address to the People of New Jersey" on the educational needs of the State (R. 320), and

[1] Some 32,000 persons petitioned for a repeal of the law, 66 of whom signed by making their mark, and "not more than five names in a hundred," reported a legislative committee which investigated the matter, "were signed in English script." It was from among the parochial-school Germans that the strongest opposition to the law came.

[2] For Stevens's speech in defense of the Law of 1834, see *Report of the United States Commissioner of Education*, 1898–99, vol. I, pp. 516–24.

[3] By 1836 the new free-school law had been accepted by 75 per cent of the districts in the State, by 1838 by 84 per cent, and by 1847 by 88 per cent.

speakers were sent over the State to talk to the people on the subject. The campaign against the pauper school had just been fought to a conclusion in Pennsylvania, and the result of the appeal in New Jersey was such a popular manifestation in favor of free schools that the legislature of 1838 instituted a partial state school system. The pauper-school laws were repealed, and the best features of the short-lived Law of 1829 were reënacted. In 1844 a new state constitution limited the income of the permanent state school fund exclusively to the support of public schools.

With the pauper-school idea eliminated from Pennsylvania and New Jersey, the North was through with it. The wisdom of its elimination soon became evident, and we hear little more of it among Northern people. The democratic West never tolerated it. It continued some time longer in Maryland, Virginia, and Georgia, and at places for a time in other Southern States, but finally disappeared in the South as well in the educational reorganizations which took place following the close of the Civil War.

III. THE BATTLE TO MAKE THE SCHOOLS ENTIRELY FREE

The schools not yet free. The rate-bill, as we have previously stated, was an old institution, also brought over from England, as the term "rate" signifies. It was a charge levied upon the parent to supplement the school revenues and prolong the school term, and was assessed in proportion to the number of children sent by each parent to the school. In some States, as for example Massachusetts and Connecticut, its use went back to colonial times; in others it was added as the cost for education increased, and it was seen that the income from permanent funds and authorized taxation was not sufficient to maintain the school the necessary length of time. The deficiency in revenue was charged against the parents sending children to school, *pro rata*, and collected as ordinary tax-bills (**R. 321**). The charge was small, but it was sufficient to keep many poor children away from the schools.

The rising cities, with their new social problems, could not and would not tolerate the rate-bill system, and one by one they secured special laws from legislatures which enabled them to organize a city school system, separate from city-council control, and under a local "board of education." One of the provisions of these special laws nearly always was the right to levy a city tax for schools sufficient to provide free education for the children of the city.

The fight against the rate-bill in New York. The attempt to abolish the rate-bill and make the schools wholly free was most vigorously contested in New York State, and the contest there is most easily described. From 1828 to 1868, this tax on the parents produced an average annual sum of $410,685.66, or about one half of the sum paid all the teachers of the State for salary. While the wealthy districts were securing special legislation and

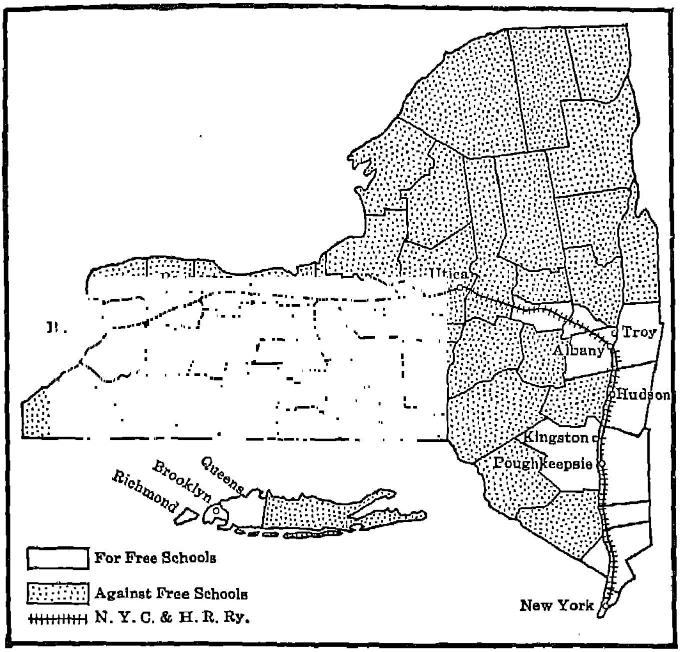

FIG. 202. THE NEW YORK REFERENDUM OF 1850
Total vote: For free schools, 17 counties and 209,346 voters; against free schools, 42 counties and 184,308 voters.

taxing themselves to provide free schools for their children, the poorer and less populous districts were left to struggle to maintain their schools the four months each year necessary to secure state aid. Finally, after much agitation, and a number of appeals to the legislature to assume the rate-bill charges in the form of general state taxation, and thus make the schools entirely free, the legislature, in 1849, referred the matter back to the people to be voted on at the elections that autumn. The legislature was to be thus advised by the people as to what action it should take.

The result was a state-wide campaign for free, public, tax-supported schools, as against partially free, rate-bill schools.

The result of the 1849 election was a vote of 249,872 in favor of making "the property of the State educate the children of the State," and 91,952 against it. This only seemed to stir the opponents of free schools to renewed action, and they induced the next legislature to resubmit the question for another vote, in the autumn of 1850.

The result of the referendum of 1850 is shown on the map on page 685. The opponents of tax-supported schools now mustered their full strength, doubling their vote in 1849, while the majority for free schools was materially cut down. The interesting thing shown on this map was the clear and unmistakable voice of the cities. They would not tolerate the rate-bill, and, despite their larger property interests, they favored tax-supported free schools. The rural districts, on the other hand, opposed the idea.

The rate-bill in other States. These two referenda virtually settled the question in New York, though for a time a compromise was adopted. The state appropriation for schools was very materially increased, the rate-bill was retained, and the organization of "union districts" to provide free schools by local taxation where people desired them was authorized. Many of these "union free districts" now arose in the more progressive communities of the State, and finally, in 1867, after rural and other forms of opposition had largely subsided, and after almost all the older States had abandoned the plan, the New York legislature finally abolished the rate-bill and made the schools of New York entirely free.

The dates for the abolition of the rate-bill in the other older Northern States were:

1834. Pennsylvania.	1867. New York.
1852. Indiana.	1868. Connecticut.
1853. Ohio.	1868. Rhode Island.
1855. Illinois.	1869. Michigan.
1864. Vermont.	1871. New Jersey.

The New York fight of 1849 and 1850 was the pivotal fight; in the other States it was abandoned by legislative act, and without a serious contest. In the Southern States free education came with the educational reorganizations following the close of the Civil War.

IV. THE BATTLE TO ESTABLISH SCHOOL SUPERVISION

Beginnings of state control. The great battle for state schools was not only for taxation to stimulate their development where none existed, but was also indirectly a battle for some form of state control of the local systems which had already grown up. The establishment of permanent state school funds by the older States, to supplement any other aid which might be granted, also tended toward the establishment of some form of state supervision and control of the local school systems. The first step was the establishment of some form of state aid; the next was the imposing of conditions necessary to secure this state aid.

State oversight and control, however, does not exercise itself, and it soon became evident that the States must elect or appoint some officer to represent the State and enforce the observance of its demands. It would be primarily his duty to see that the laws relating to schools were carried out, that statistics as to existing conditions were collected and printed, and that communities were properly advised as to their duties and the legislature as to the needs of the State. We find now the creation of a series of school officers to represent the State, the enactment of new laws extending control, and a struggle to integrate, subordinate, and reduce to some semblance of a state school system the hundreds of little community school systems which had grown up.

The first state school officers. The first American State to create a state officer to exercise supervision over its schools was New York, in 1812. In enacting the new law [1] providing for state aid for schools the first State Superintendent of Common Schools in the United States was created. So far as is known this was a distinctively American creation, uninfluenced by the practice in any other land. It was to be the duty of this officer to look after the establishment and maintenance of the schools throughout the State.[2] Maryland created the office in 1826, but two years later abolished it and did not re-create it until 1864. Illinois directed

[1] This State had enacted an experimental school law, and made an annual state grant for schools, from 1795 to 1800. Then, unable to reënact the law, the system was allowed to lapse and was not reëstablished until the New England element gained control, in 1812.

[2] By his vigorous work in behalf of schools the first appointee, Gideon Hawley, gave such offense to the politicians of the time that he was removed from office, in 1821, and the legislature then abolished the position and designated the Secretary of State to act, *ex officio*, as Superintendent. This condition continued until 1854, when New York again created the separate office of Superintendent of Public Instruction.

its Secretary of State to act, *ex officio*, as Superintendent of Schools in 1825, as did also Vermont in 1827, Louisiana in 1833, Pennsylvania in 1834, and Tennessee in 1835. Illinois did not create a real State Superintendent of Schools, though, until 1854, Vermont until 1845, Louisiana until 1847, Pennsylvania until 1857, or Tennessee until 1867. The first States to create separate school officials who have been continued to the present time were Michigan and Kentucky, both in 1837. Often quite a legislative struggle took place to secure the establishment of the office, and later on to prevent its abolition.

By 1850 there were *ex-officio* state school officers in nine and regular school officers in seven of the then thirty-one States, and

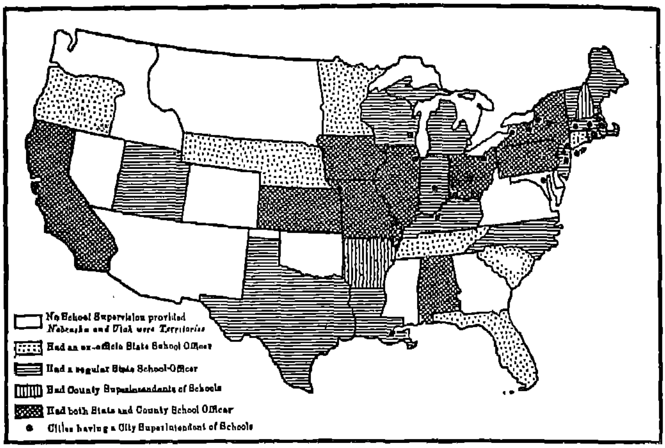

FIG. 203. STATUS OF SCHOOL SUPERVISION IN THE UNITED STATES BY 1861

For a list of the 29 City Superintendencies established up to 1870, see Cubberley's *Public School Administration*, p. 58. For the history of the state educational office in each State see Cubberley and Elliott, *State and County School Administration, Source Book*, pp. 283–87.

by 1861 there were *ex-officio* officers in nine and regular officers in nineteen of the then thirty-four States, as well as one of each in two of the organized Territories. The above map shows the growth of supervisory oversight by 1861 — forty-nine years from the time the first American state school officer was created. The map also shows the ten of the thirty-four States which had, by 1861, also created the office of County Superintendent of Schools, as well as the twenty-six cities which had, by 1861, created the office of City Superintendent of Schools. Only three more cities

— Albany, Washington, and Kansas City — were added before 1870, making a total of twenty-eight, but since that date the number of city superintendents has increased to something like fourteen hundred to-day.

The first State Board of Education. Another important form for state control which was created a little later was the State Board of Education, with an appointed Secretary, who exercised about the same functions as a State Superintendent of Schools. This form of organization first arose in Massachusetts, in 1837, in an effort to subordinate the district schools and reduce them to a semblance of an organized system. In 1826 each town (township) had been required to appoint a School Committee (School Board) to exercise general supervision over its schools, in 1834 the state permanent school fund was created, and in 1837 the reform movement reached its culmination in the creation of the first real State Board of Education in the United States. Instead of following the usual American practice of the time, and providing for an elected State School Superintendent, Massachusetts provided for a small appointed State Board of Education which in turn was to select a Secretary, who was to act in the capacity of a state school officer and report to the Board, and through it to the legislature and the people. Neither the Board nor the Secretary were given any powers of compulsion, their work being to investigate conditions, report facts, expose defects, and make recommendations as to action to the legislature. The permanence and influence of the Board thus depended very largely on the character of the Secretary it selected.

Horace Mann the first Secretary. A prominent Brown University graduate and lawyer in the State Senate, by the name of Horace Mann (1796–1859), who as president of the Senate had been of much assistance in securing passage of the bill creating the State Board of Education, was finally induced by the Governor and the Board to accept the position of Secretary. Mr. Mann now began a most memorable work of educating public opinion, and soon became the acknowledged leader in school organization in the United States. State after State called upon him for advice and counsel, while his twelve annual *Reports* to the State Board of Education will always remain memorable documents. Public men of all classes — lawyers, clergymen, college professors, literary men, teachers — were laid under tribute and sent forth over the State explaining to the people the need for a reawakening

of educational interest in Massachusetts. Every year Mr. Mann organized a "campaign," to explain to the people the meaning and importance of general education. So successful was he, and so ripe was the time for such a movement, that he not only started a great common school revival in Massachusetts which led to the regeneration of the schools there, but one which was felt and which influenced development in every Northern State.

His twelve carefully written *Reports* on the condition of education in Massachusetts and elsewhere, with his intelligent discussion of the aims and purposes of public education, occupy a commanding place in the history of American education, while he will always be regarded as perhaps the greatest of the "founders" of our American system of free public schools. No one did more than he to establish in the minds of the American people the conception that education should be universal, non-sectarian, and free, and that its aim should be social efficiency, civic virtue, and character, rather than mere learning or the advancement of sectarian ends. Under his practical leadership an unorganized and heterogeneous series of community school systems was reduced to organization and welded together into a state school system, and the people of Massachusetts were effectively recalled to their ancient belief in and duty toward the education of the people.

Henry Barnard in Connecticut and Rhode Island. Almost equally important, though of a somewhat different character, was the work of Henry Barnard (1811–1900) in Connecticut and Rhode Island. A graduate of Yale, and also educated for the law, he turned aside to teach and became deeply interested in education. The years 1835–37 he spent in Europe studying schools, particularly the work of Pestalozzi's disciples. On his return to America he was elected a member of the Connecticut legislature, and at once formulated and secured passage of the Connecticut law (1839) providing for a State Board of Commissioners for Common Schools, with a Secretary, after the Massachusetts plan. Mr. Barnard was then elected as its first Secretary, and reluctantly gave up the law and accepted the position at the munificent salary of $3 a day and expenses. Until the legislature abolished both the Board and the position, in 1842, he rendered for Connecticut a service scarcely less important than the better-known reforms which Horace Mann was at that time carrying on in Massachusetts.

In 1843 he was called to Rhode Island to examine and report

upon the existing schools, and from 1845 to 1849 acted as State Commissioner of Public Schools there, where he rendered a service similar to that previously rendered in Connecticut. In addition he organized a series of town libraries throughout the State For his teachers' institutes he devised a traveling model school, to give demonstration lessons in the art of teaching. From 1851 to 1855 he was again in Connecticut, as principal of the newly established state normal school and *ex-officio* Secretary of the Connecticut State Board of Education. He now rewrote the school laws, increased taxation for schools, checked the power of the districts, there known as "school societies," and laid the foundations of a state system of schools. The work of Mann and Barnard had its influence throughout all the Northern States, and encouraged the friends of education everywhere. Almost contemporaneous with them were leaders in other States who helped fight through the battles of state establishment and state organization and control, and the period of their labors has since been termed the period of the "great awakening."

V. THE BATTLE TO ELIMINATE SECTARIANISM

The secularization of American education. The Church, it will be remembered, was from the earliest colonial times in possession of the education of the young. Not only were the earliest schools controlled by the Church and dominated by the religious motive, but the right of the Church to dictate the teaching in the schools was clearly recognized by the State. Still more, the State looked to the Church to provide the necessary education, and assisted it in doing so by donations of land and money. The minister, as a town official, naturally examined the teachers and the instruction in the schools. After the establishment of the National Government this relationship for a time continued.[1] New York and the New England States specifically set aside lands to help both church and school. After about 1800 these land endowments for religion ceased, but grants of state aid for religious schools continued for nearly a half-century longer. Then it became common for a town or city to build a schoolhouse from city taxation, and let it out rent-free to any responsible person who

[1] When Connecticut sold its Western Reserve, in 1795, and added the sum to the Connecticut school fund, it was stated to be for the aid of "schools and the gospel." In the sales of the first national lands in Ohio (1,500,000 acres to The Ohio Company, in 1787; and 1,000,000 acres in the Symmes Purchase, near Cincinnati, in 1788), section 16 in each township was reserved and given as an endowment for schools, and section 29 "for the purposes of religion."

would conduct a tuition school in it, with a few free places for selected poor children. Still later, with the rise of the state schools, it became quite common to take over church and private schools and aid them on the same basis as the new state schools.

In colonial times, too, and for some decades into our national period, the warmest advocates of the establishment of schools were those who had in view the needs of the Church. Then gradually the emphasis shifted to the needs of the State, and a new class of advocates of public education now arose. Still later the emphasis has been shifted to industrial and civic and national needs, and the religious aim has been almost completely eliminated. This change is known as the secularization of American education. It also required many a bitter struggle, and was accomplished in the different States but slowly. The two great factors which served to produce this change were:

1. The conviction that the life of the Republic demanded an educated and intelligent citizenship, and hence the general education of all in common schools controlled by the State; and
2. The great diversity of religious beliefs among the people, which forced tolerance and religious freedom through a consideration of the rights of minorities.

The secularization of education must not be regarded either as a deliberate or a wanton violation of the rights of the Church, but rather as an unavoidable incident connected with the coming to self-consciousness and self-government of a great people.

The fight in Massachusetts. The educational awakening in Massachusetts, brought on largely by the work of Horace Mann, was to many a rude awakening. Among other things, it revealed that the old school of the Puritans had gradually been replaced by a new and purely American type of school, with instruction adapted to democratic and national rather than religious ends. Mr. Mann stood strongly for such a conception of public education, and being a Unitarian, and the new State Board of Education being almost entirely liberal in religion, an attack was launched against them, and for the first time in our history the cry was raised that "The public schools are Godless schools." Those who believed in the old system of religious instruction, those who bore the Board or its Secretary personal ill-will, and those who desired to break down the Board's authority and stop the development of the public schools, united their forces in this first big attack against secular education. Horace Mann was the

first prominent educator in America to meet and answer the religious onslaught.

A violent attack was opened in both the pulpit and the press It was claimed that the Board was trying to eliminate the Bible from the schools, to abolish correction, and to "make the schools a counterpoise to religious instruction at home and in Sabbath schools." The local right to demand religious instruction was insisted upon.

Mr. Mann felt that a great public issue had been raised which should be answered carefully and fully. In three public statements he answered the criticisms and pointed out the errors in the argument (**R. 322**). The Bible, he said, was an invaluable book for forming the character of children, and should be read without comment in the schools, but it was not necessary to teach it there. He showed that most of the towns had given up the teaching of the Catechism before the establishment of the Board of Education. He contended that any attempt to decide what creed or doctrine should be taught would mean the ruin of the schools. The attack culminated in the attempts of the religious forces to abolish the State Board of Education, in the legislatures of 1840 and 1841, which failed dismally. Most of the orthodox people of the State took Mr. Mann's side, and Governor Briggs, in one of his messages, commended his stand by inserting the following:

> Justice to a faithful public officer leads me to say that the indefatigable and accomplished Secretary of the Board of Education has performed services in the cause of common schools which will earn him the lasting gratitude of the generation to which he belongs.

The attempt to divide the school funds. As was stated earlier, in the beginning it was common to aid church schools on the same basis as the state schools, and sometimes, in the beginnings of state aid, the money was distributed among existing schools without at first establishing any public schools. In many Eastern cities church schools at first shared in the public funds. In Pennsylvania church and private schools were aided from poor-law funds up to 1834. In New Jersey the first general school law of 1829 had been repealed a year later through the united efforts of church and private-school interests, who unitedly fought the development of state schools, and in 1830 and 1831 new laws had permitted all private and parochial schools to share in the small state appropriation for education.

After the beginning of the forties, when the Roman Catholic in-

fluence came in strongly with the increase in Irish immigration to the United States, a new factor was introduced and the problem, which had previously been a Protestant problem, took on a somewhat different aspect in the form of a demand for a division of the school funds. Between 1825 and 1842 the fight was especially severe in New York City. In 1825 the City Council refused to grant public money to any religious Society,[1] and in 1840 the Catholics carried the matter to the State Legislature.

The legislature deferred action until 1842, and then did the unexpected thing. The heated discussion of the question in the city and in the legislature had made it evident that, while it might not be desirable to continue to give funds to a privately organized corporation, to divide them among the quarreling and envious religious sects would be much worse. The result was that the legislature created for the city a City Board of Education, to establish real public schools, and stopped the debate on the question of aid to religious schools by enacting that no portion of the school funds was in the future to be given to any school in which "any religious sectarian doctrine or tenet should be taught, inculcated, or practiced." Thus the real public-school system of New York City was evolved out of this attempt to divide the public funds among the churches. The Public School Society continued for a time, but its work was now done, and, in 1853, it surrendered its buildings and property to the City Board of Education and disbanded.

The contest in other States. As early as 1830, Lowell, Massachusetts, had granted aid to the Irish Catholic parochial schools in the city, and in 1835 had taken over two such schools and maintained them as public schools. In 1853 the representatives of the Roman Catholic Church made a demand on the state legislature for a division of the school fund of the State. To settle the question once for all a constitutional amendment was submitted by the legislature to the people, providing that all state and town moneys raised or appropriated for education must be expended only on regularly organized and conducted public schools, and that no religious sect should ever share in such funds. This measure failed of adoption at the election of 1853 by a vote of

[1] The Public School Society continued to receive money grants, it being regarded as a non-denominational organization, though chartered to teach "the sublime truths of religion and morality contained in the Holy Scriptures" in its schools. In 1828 the Society was even permitted to levy a local tax to supplement its resources, it being estimated that at that time there were 10,000 children in the city with no opportunities for education.

65,111 for and 65,512 against, but was re-proposed and adopted in 1855. This settled the question in Massachusetts, as Mann had tried to settle it earlier, and as New Hampshire had settled it in its constitution of 1792, Connecticut in its constitution of 1818, and Rhode Island in its constitution of 1842.

Other States now faced similar demands, but no demand for a share in or a division of the public-school funds, after 1840, was successful. The demand everywhere met with intense opposition, and with the coming of enormous numbers of Irish Catholics after 1846, and German Lutherans after 1848, the question of the preservation of the schools just established as unified state school systems now became a burning one. Petitions for a division of the funds deluged the legislatures (**R.** 323), and these were met by counter-petitions (**R.** 324). Mass meetings on both sides of the question were held. Candidates for office were forced to declare themselves. Anti-Catholic riots occurred in a number of cities. The Native-American Party was formed, in 1841, "to prevent the union of Church and State," and to "keep the Bible in the schools." In 1841 the Whig Party, in New York, inserted a plank in its platform against sectarian schools. In 1855 the national council of the Know-Nothing Party, meeting in Philadelphia, in its platform favored public schools and the use of the Bible therein, but opposed sectarian schools. This party carried the elections that year in Massachusetts, New Hampshire, Connecticut, Rhode Island, Maryland, and Kentucky.

To settle the question in a final manner legislatures now began to propose constitutional amendments to the people of their several States which forbade a division or a diversion of the funds, and these were almost uniformly adopted at the first election after being proposed. No State admitted to the Union after 1858, except West Virginia, failed to insert such a provision in its first state constitition.[1]

VI. THE BATTLE TO ESTABLISH THE AMERICAN HIGH SCHOOL

The elementary or common schools which had been established in the different States, by 1850, supplied an elementary or common school education to the children of the masses of the people,

[1] The question may be regarded as a settled one in our American States. Our people mean to keep the public-school system united as one state school system, well realizing that any attempt to divide the schools among the different religious denominations (the *World Almanac* for 1917 lists 49 different denominations and 171 different sects in the United States) could only lead to inefficiency and educational chaos.

and the primary schools which were added, after about 1820, carried this education downward to the needs of the beginners. In the rural schools the American school of the 3 Rs provided for all the children, from the little ones up, so long as they could advantageously partake of its instruction. Education in advance of this common school training was in semi-private institutions — the academies and colleges — in which a tuition fee was charged. The next struggle came in the attempt to extend the system upward so as to provide to pupils, free of charge, a more complete education than the common schools afforded.

The transition Academy. About the middle of the eighteenth century a tendency manifested itself, in Europe as well as in America, to establish higher schools offering a more practical curriculum than the old Latin schools had provided. In America it became particularly evident, after the coming of nationality, that the old Latin grammar-school type of instruction, with its limited curriculum and exclusively college-preparatory ends, was wholly inadequate for the needs of the youth of the land. The result was the gradual dying-out of the Latin school and the evolution of the tuition Academy, previously referred to briefly on page 463.

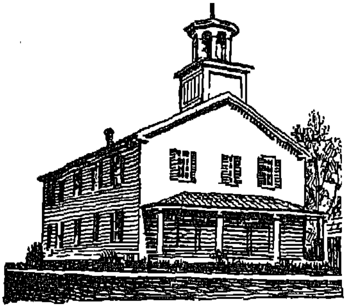

FIG. 204. A TYPICAL NEW ENGLAND ACADEMY
Pittsfield Academy, New Hampshire.

The academy movement spread rapidly during the first half of the nineteenth century. By 1800 there were 17 academies in Massachusetts, 36 by 1820, and 403 by 1850. By 1830 there were, according to Hinsdale, 950 incorporated academies in the United States, and many unincorporated ones, and by 1850, according to Inglis, there were, of all kinds, 1007 academies in New England, 1636 in the Middle Atlantic States, 2640 in the Southern States, 753 in the Upper Mississippi Valley States, and a total reported for the entire United States of 6085, with 12,260 teachers employed and 263,096 pupils enrolled.[1] The greatest period of

[1] The movement gained a firm hold everywhere east of the Missouri River, the States incorporating the largest number being New York with 887, Pennsylvania with 524, Massachusetts with 403, Kentucky with 330, Virginia with 317, North Carolina with 272, and Tennessee with 264. Some States, as Kentucky and Indiana

their development was from 1820 to 1830, though they continued to dominate secondary education until 1850, and were very prominent until after the Civil War.

Characteristic features. The most characteristic features of these academies were their semi-public control (**R. 325**), their broadened curriculum and religious purpose, and the extension of their instruction to girls. The Latin Grammar School was essentially a town free school, maintained by the towns for the higher education of certain of their male children. It was aristocratic in type, and belonged to the early period of class education. With the decline in zeal for education, after 1750, these tax-supported higher schools largely died out, and in their place private energy and benevolence came to be depended upon to supply the needed higher education.

One of the main purposes expressed in the endowment or creation of the academies was the establishment of courses which should cover a number of subjects having value aside from mere preparation for college, particularly subjects of a modern nature, useful in preparing youths for the changed conditions of society and government and business. The study of real things rather than words about things, and useful things rather than subjects merely preparatory to college, became prominent features of the new courses of study. Among the most commonly found new subjects were algebra, astronomy, botany, chemistry, general history, United States history, English literature, surveying, intellectual philosophy, declamation, and debating.[1]

Not being bound up with the colleges, as the earlier Latin grammar schools had largely been, the academies became primarily independent institutions, taking pupils who had completed the English education of the common school and giving them an advanced education in modern languages, the sciences, mathematics, history, and the more useful subjects of the time, with a view to "rounding out" their studies and preparing them for business

provided for a system of county academies, while many States extended to them some form of state aid. In New York State they found a warm advocate in Governor De Witt Clinton, who urged (1827) that they be located at the county towns of the State to give a practical scientific education suited to the wants of farmers, merchants, and mechanics, and also to train teachers for the schools of the State.

[1] The new emphasis given to the study of English, mathematics, and book-science is noticeable. New subjects appeared in proportion as the academies increased in numbers and importance. Of 149 new subjects for study appearing in the academies of New York, between 1787 and 1870, 23 appeared before 1826, 100 between 1826 and 1840, and 26 after 1840. Between 1825 and 1828 one half of the new subjects appeared. This also was the maximum period of development of the academies.

life and the rising professions. They thus built upon instead of running parallel to the common school course, as the old Latin grammar school had done (see Figure 198, p. 666) and hence clearly mark a transition from the aristocratic and somewhat exclusive college-preparatory Latin grammar school of colonial times to the more democratic high school of to-day. The academies also served a very useful purpose in supplying to the lower schools the best-educated teachers of the time.

The old Latin grammar school, too, had been maintained exclusively for boys. Girls had been excluded as "Improper & inconsistent wth such a Grammar Schoole as y^{e} law injoines, and is y^{e} Designe of this Settlem^{t}." The new academies soon reversed this situation. Almost from the first they began to be established for girls as well as boys, and in time many became co-educational. In New York State alone 32 academies were incorporated between 1819 and 1853 with the prefix "Female" to their title. In this respect, also, these institutions formed a transition to the modern co-educational high school. The higher education of women in the United States clearly dates from the establishment of the academies. Troy (New York) Seminary, founded by Emma Willard, in 1821, and Mt. Holyoke (Massachusetts) Seminary, founded by Mary Lyon, in 1836, though not the first institutions for girls, were nevertheless important pioneers in the higher education of women.

The demand for higher schools. The different movements tending toward the building-up of free public-school systems in the cities and States, which we have described in this and the preceding chapter, and which became clearly defined in the Northern States after 1825, came just at the time when the Academy had reached its maximum development. The settlement of the question of general taxation for education, the elimination of the rate-bill by the cities and later by the States, the establishment of the American common school as the result of a long native evolution, and the complete establishment of public control over the entire elementary-school system, all tended to bring the semi-private tuition academy into question. Many asked why not extend the public-school system upward to provide the necessary higher education for all in one common state-supported school.[1]

[1] The existence of a number of colleges, basing their entrance requirements on the completion of the classical course of the academy, and the establishment of a few embryo state universities in the new States of the West and the South, naturally raised the further question of why there should be a gap in the public-school sys-

The demand for an upward extension of the public school, which would provide academy instruction for the poor as well as the rich, and in one common public higher school, now made itself felt. As the colonial Latin grammar school had represented the

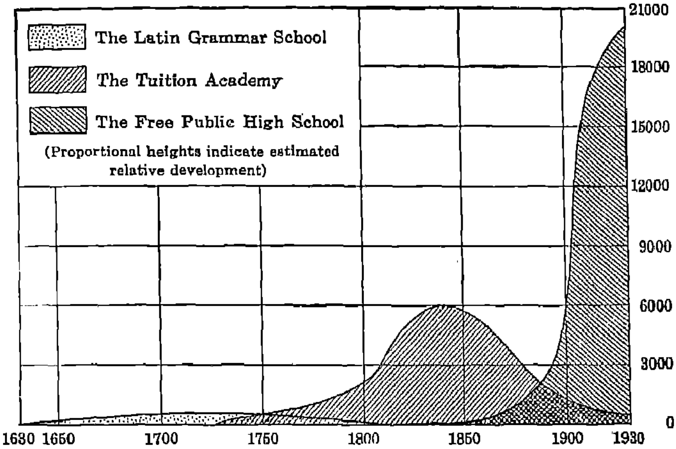

FIG. 205. THE DEVELOPMENT OF SECONDARY SCHOOLS IN THE UNITED STATES

The transitional character of the Academy is well shown in this diagram.

educational needs of a society based on classes, and the academies had represented a transition period and marked the growth of a middle class, so the rising democracy of the second quarter of the nineteenth century now demanded and obtained the democratic high school, supported by the public and equally open to all, to meet the educational needs of a new society built on the basis of a new and aggressive democracy. Where, too, the academy had represented in a way a missionary effort — that of a few providing something for the good of the people (**Rs.** 319, 325) — the high school on the other hand represented a coöperative effort on the part of the people to provide something for themselves.

The first American high school. The first high school in the United States was established in Boston, in 1821 (**R.** 326). For three years it was known as the "English Classical School"

tem. The increase of wealth in the cities tended to increase the number who passed through the elementary course and could profit by more extended education; the academies had popularized the idea of more advanced education; while the new manufacturing and commercial activities of the time called for more training than the elementary schools afforded, and of a different type from that demanded by the small colleges of the time for entrance

(**R.** 327), but in 1824 the school appears in the records as the "English High School." In 1826 Boston also opened the first high school for girls, but abolished it in 1828, due to its great popularity, and instead extended the course of study for girls in the elementary schools.

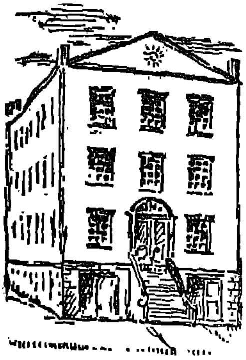

FIG. 206
THE FIRST HIGH SCHOOL IN THE UNITED STATES
Established at Boston in 1821

The Massachusetts Law of 1827. Though Portland, Maine, established a high school in 1821, Worcester, Massachusetts, in 1824, and New Bedford, Haverhill, and Salem, Massachusetts, in 1827, copying the Boston idea, the real beginning of the American high school as a distinct institution dates from the Massachusetts Law of 1827 (**R.** 328), enacted through the influence of James G. Carter. This law formed the basis of all subsequent legislation in Massachusetts, and deeply influenced development in other States. The law is significant in that it required a high school in every town having 500 families or over, in which should be taught United States history, bookkeeping, algebra, geometry, and surveying, while in every town having 4000 inhabitants or over, instruction in Greek, Latin, history, rhetoric, and logic must be added. A heavy penalty was attached for failure to comply with the law. In 1835 the law was amended so as to permit any smaller town to form a high school as well.

This Boston and Massachusetts legislation clearly initiated the public high-school movement in the United States. It was there that the new type of higher school was founded, there that its curriculum was outlined, there that its standards were established, and there that it developed earliest and best.

The struggle to establish and maintain high schools. The development of the American high school, even in its home, was slow. Up to 1840 not much more than a dozen high schools had been established in Massachusetts, and not more than an equal number in the other States. The Academy was the dominant institution, the cost of maintenance was a factor, and the same opposition to an extension of taxation to include high schools was manifested as was earlier shown toward the establishment of common schools. The early state legislation, as had been the case

with the common schools, was nearly always permissive and not mandatory. Massachusetts forms a notable exception in this regard. The support for the schools had to come practically entirely from increased local taxation, and this made the struggle to establish and maintain high schools in any State for a long time a series of local struggles. Years of propaganda and patient effort were required, and, after the establishment of a high school in a community, constant watchfulness was necessary to prevent its abandonment (R. 329).

In many States, legislation providing for the establishment of high schools was attacked in the courts. One of the clearest cases

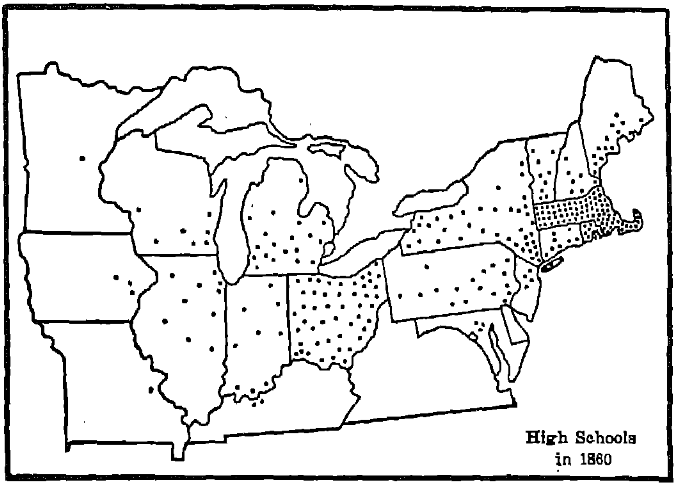

FIG. 207. HIGH SCHOOLS IN THE UNITED STATES BY 1860

Based on the table given in the *Report of the United States Commissioner of Education*, 1904, vol. II, pp. 1782–1989. This table is only approximately correct, as exact information is difficult to obtain. This table gives 321 high schools by 1860, and all but 35 of these were in the States shown on the above map. There were two schools in California and three in Texas, and the remainder not shown were in the Southern States. Of the 321 high schools reported, over half (167) were in the three States of Massachusetts (78), New York (41), and Ohio (48).

of this came in Michigan, in a test case appealed from the city of Kalamazoo, and commonly known as the Kalamazoo case. The opinion of the Supreme Court of the State (R. 330) was so favorable and so positive that this decision deeply influenced development in almost all of the Upper Mississippi Valley States.

The struggle to establish and maintain high schools in Massa-

chusetts and New York preceded the development in most other States, because there the common school had been established earlier. In consequence, the struggle to extend and complete the public-school system came there earlier also. The development was likewise more peaceful there, and came more rapidly. In Massachusetts this was in large part a result of the educational awakening started by James G. Carter and Horace Mann. In New York it was due to the early support of Governor De Witt Clinton, and the later encouragement and state aid which came from the Regents of the University of the State of New York. Maine, Vermont, and New Hampshire were like Massachusetts in spirit, and followed closely its example. In Rhode Island and New Jersey, due to old conditions, and in Connecticut, due to the great decline in education there after 1800, the high school developed much more slowly, and it was not until after 1865 that any marked development took place in these States. The democratic West soon adopted the idea, and established high schools as soon as cities developed and the needs of the population warranted. In the South the main high-school development dates from relatively recent times.

Gradually the high school has been accepted as a part of the state common-school system by all the American States, and the funds and taxation originally provided for the common schools have been extended to cover the high school as well. The new States of the West have based their legislation largely on what the Eastern and Central States earlier fought out.

VII. THE STATE UNIVERSITY CROWNS THE SYSTEM

The colonial colleges. The earlier colleges — Harvard, William and Mary, Yale — had been created by the religious-state governments of the earlier colonial period, and continued to retain some state connections for a time after the coming of nationality. As it early became evident that a democracy demands intelligence on the part of its citizens, that the leaders of democracy are not likely to be too highly educated, and that the character of collegiate instruction must ultimately influence national development, efforts were accordingly made to change the old colleges or create new ones, the final outcome of which was the creation of state universities in all the new and in most of the older States. The evolution of the state university, as the crowning head of the free public school system of the State, represents the last phase which

we shall trace of the struggle of democracy to create a system of schools suited to its peculiar needs.

The close of the colonial period found the Colonies possessed of nine colleges. These, with the dates of their foundation, the Colony founding them, and the religious denomination they chiefly represented were:

1636.	Harvard College	Massachusetts	Puritan
1693.	William and Mary	Virginia	Anglican
1701.	Yale College	Connecticut	Congregational
1746.	Princeton	New Jersey	Presbyterian
1753–55.	Academy and College	Pennsylvania	Non-denominational
1754.	King's College (Columbia)	New York	Anglican
1764.	Brown	Rhode Island	Baptist
1766.	Rutgers	New Jersey	Reformed Dutch
1769.	Dartmouth	New Hampshire	Congregational

The religious purpose had been dominant in the founding of each institution, though there was a gradual shading-off in strict denominational control and insistence upon religious conformity in the foundations after 1750. Still the prime purpose in the founding of each was to train up a learned and godly body of ministers, the earlier congregations at least "dreading to leave an illiterate ministry to the churches when our present ministers shall lie in the dust." In a pamphlet, published in 1754, President Clap of Yale declared that "Colleges are *Societies of Ministers*, for training up Persons for the Work of the *Ministry*," and that "The great design of founding this School (Yale), was to Educate Ministers in our *own Way*." In the advertisement published in the New York papers announcing the opening of King's College, in 1754, it was stated that:

IV. The chief Thing that is aimed at in this College, is, to teach and engage the Children *to know God in Jesus Christ*, and to love and serve him in all *Sobriety*, *Godliness*, and *Richness* of Life, with a perfect Heart and a Willing Mind: and to train them up in all Virtuous Habits, and all such useful Knowledge as may render them creditable to their Families and Friends, Ornaments to their Country, and useful to the Public Weal in their generation.

These colonial institutions were all small. For the first fifty years of Harvard's history the attendance at the college seldom exceeded twenty, and the President did all the teaching. The first assistant teacher (tutor) was not appointed until 1699, and the first professor not until 1721, when a professorship of divinity was endowed. By 1800 the instruction was conducted by the President and three professors — divinity, mathematics, and

"Oriental languages" — assisted by a few tutors who received only class fees, and the graduating classes seldom exceeded forty. The course was four years in length, and all students studied the same subjects. The first three years were given largely to the so-called "Oriental languages" — Hebrew, Greek, and Latin. In addition, Freshmen studied arithmetic; Sophomores, algebra, geometry, and trigonometry; and Juniors, natural (book) science; and all were given much training in oratory, and some general history was added. The Senior year was given mainly to ethics, philosophy, and Christian evidences.[1] The instruction in the eight other older colleges, before 1800, was not materially different.

Growth of colleges by 1860. Fifteen additional colleges were founded before 1800, and it has been estimated that by that date the two dozen American colleges then existing did not have all told over one hundred professors and instructors, not less than

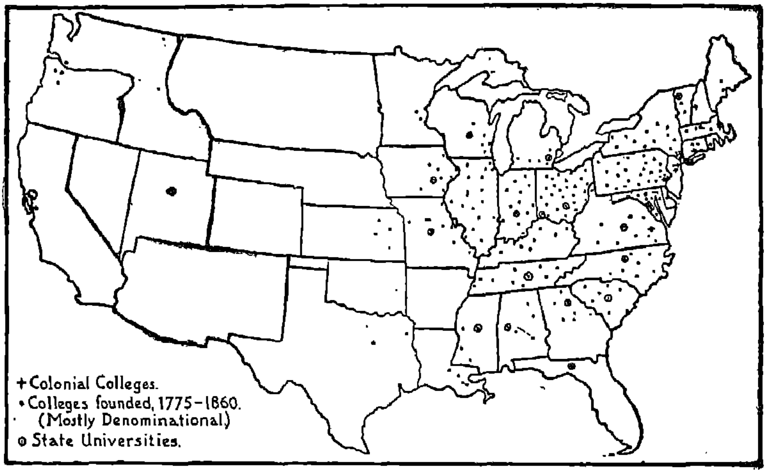

Fig. 208. Colleges and Universities established by 1860

Compiled from data given in the *Reports of the United States Commissioner of Education*. Of the 246 colleges shown on the map, but 17 were state institutions, and but two or three others had any state connections.

one thousand nor more than two thousand students, or property worth over one million dollars. Their graduating classes were small. No one of the twenty-four admitted women in any way to its privileges. After 1820, with the firmer establishment of the

[1] For an interesting table showing the simple entrance requirements of Harvard in 1642, 1734, 1803, 1825, 1850, 1875, and 1885, see *Report of the United States Commissioner of Education*, 1902, vol. I, pp. 930–33.

Nation, the awakening of a new national consciousness, the development of larger national wealth, and a court decision (p. 706) which safeguarded the endowments, interest in the founding of new colleges perceptibly quickened, as may be seen from the adjoining table, and between 1820 and 1880 came the great period of denominational effort. The map shows the colleges established by 1860, from which it will be seen how large a part the denominational colleges played in the early history of higher education in the United States. Up to about 1870 the provision of higher education, as had been the case earlier with the provision of secondary education by the academies, had been left largely to private effort. There were, to be sure, a few state universities before 1870, though usually these were not better than the denominational colleges around them, and often they maintained a non-denominational character only by preserving a proper balance between the different denominations in the employment of their faculties. Speaking generally, higher education in the United States before 1870 was provided very largely in the tuitional colleges of the different religious denominations, rather than by the State. Of the 246 colleges founded by the close of the year 1860, as shown on the map, but 17 were state institutions, and but two or three others had any state connections.

Before 1780	10
1780–89	7
1790–99	7
1800–09	9
1810–19	5
1820–29	22
1830–39	38
1840–49	42
1850–59	92
1860–69	73
1870–79	61
1880–89	74
1890–99	54
Total	494

COLLEGES FOUNDED UP TO 1900

(After a table by Dexter, corrected by U.S. Comr. Educ., data. Only approximately correct.)

The new national attitude toward the colleges. After the coming of nationality there gradually grew up a widespread dissatisfaction with the colleges as then conducted, because they were aristocratic in tendency, because they devoted themselves so exclusively to the needs of a class, and because they failed to answer the needs of the States in the matter of higher education. Due to their religious origin, and the common requirement that the president and trustees must be members of some particular denomination, they were naturally regarded as representing the interests of some one sect or faction within the State rather than the interests of the State itself. With the rise of the new democratic spirit after about 1820 there came a demand, felt least in

New England and most in the South and the new States in the West, for institutions of higher learning which should represent the State. It was argued that colleges were important instrumentalities for moulding the future, that the kind of education given in them must ultimately influence the welfare of the State, and that higher education cannot be regarded as a private matter. The type of education given in these higher institutions, it was argued, "will appear on the bench, at the bar, in the pulpit, and in the senate, and will unavoidably affect our civil and religious principles." For these reasons, as well as to crown our state school system and to provide higher educational advantages for its leaders, it was argued that the State should exercise control over the colleges.

This new national spirit manifested itself in a number of ways. In New York we see it in the reorganization of King's College, the rechristening of the institution as Columbia, and the placing of it under at least the nominal supervision of the governing educational body of the State. In Pennsylvania an attempt was made to bring the university into closer connection with the State, but this failed. In New Hampshire the legislature tried, in 1816, to transform Dartmouth College into a state institution. This act was contested in the courts, and the case was finally carried to the Supreme Court of the United States. There it was decided, in 1819, that the charter of a college was a contract, the obligation of which a legislature could not impair.

Effect of the Dartmouth College decision. The effect of this decision manifested itself in two different ways. On the one hand it guaranteed the perpetuity of endowments, and the great period of private and denominational effort (see table, p. 705) now followed. On the other hand, since the States could not change charters and transform old establishments, they began to turn to the creation of new state universities of their own. Virginia created its state university the same year as the Dartmouth case decision. The University of North Carolina, which had been established in 1789, and which began to give instruction in 1795, but which had never been under direct state control, was taken over by the State in 1821. The University of Vermont, originally chartered in 1791, was rechartered as a state university in 1838. The University of Indiana was established in 1820. Alabama provided for a state university in its first constitution, in 1819, and the institution opened for instruction in 1831. Michigan, in

framing its first constitution preparatory to entering the Union, in 1835, made careful provisions for the safeguarding of the state university and for establishing it as an integral part of its state school system, as Indiana had done in 1816. Wisconsin provided for the creation of a state university in 1836, and embodied the idea in its first constitution when it entered the Union in 1848, and Missouri provided for a state university in 1839, Mississippi in 1844, Iowa in 1847, and Florida in 1856. The state university is to-day found in every "new" State and in some of the "original" States, and practically every new Western and Southern State followed the patterns set by Indiana, Michigan, and Wisconsin and made careful provision for the establishment and maintenance of a state university in its first state constitution.

There was thus quietly added another new section to the American educational ladder, and the free public-school system was extended farther upward. Though the great period of state university foundation came after 1860, and the great period of state university expansion after 1885, the beginnings were clearly marked early in our national history. Of the sixteen States having state universities by 1860 (see Figure 208), all except Florida had established them before 1850. For a long time small, poorly supported by the States, much like the church colleges about them in character and often inferior in quality, one by one the state universities have freed themselves alike from denominational restrictions on the one hand and political control on the other, and have set about rendering the service to the State which a state university ought to render. Michigan, the first of our state universities to free itself, take its proper place, and set an example for others to follow, opened in 1841 with two professors and six students. In 1844 it was a little institution of three professors, one tutor, one assistant, and one visiting lecturer, had but fifty-three students, and offered but a single course of study, consisting chiefly of Greek, Latin, mathematics, and intellectual and moral science (R. 331). As late as 1852 it had but seventy-two students, but by 1860, when it had largely freed itself from the incubus of Baptist Latin, Congregational Greek, Methodist intellectual philosophy, Presbyterian astronomy, and Whig mathematics, and its remarkable growth as a state university had begun, it enrolled five hundred and nineteen.

The American free public-school system now established. By the close of the second quarter of the nineteenth century, certainly

by 1860, we find the American public-school system fully established, in principle at least, in all our Northern States (R. 332). Much yet remained to be done to carry into full effect what had been established in principle, but everywhere democracy had won its fight, and the American public school, supported by general taxation, freed from the pauper-school taint, free and equally open to all, under the direction of representatives of the people, free from sectarian control, and complete from the primary school through the high school, and in the Western States through the university as well, was established permanently in American public policy. It was a real democratic educational ladder that had been created, and not the typical two-class school system of continental European States. The establishment of the free public high school and the state university represent the crowning achievements of those who struggled to found a state-supported educational system fitted to the needs of great democratic States. Probably no other influences have done more to unify the American people, reconcile diverse points of view, eliminate state jealousies, set ideals for the people, and train leaders for the service of the States and of the Nation than the academies, high schools, and colleges scattered over the land. They have educated but a small percentage of the people, to be sure, but they have trained most of the leaders who have guided the American democracy since its birth.

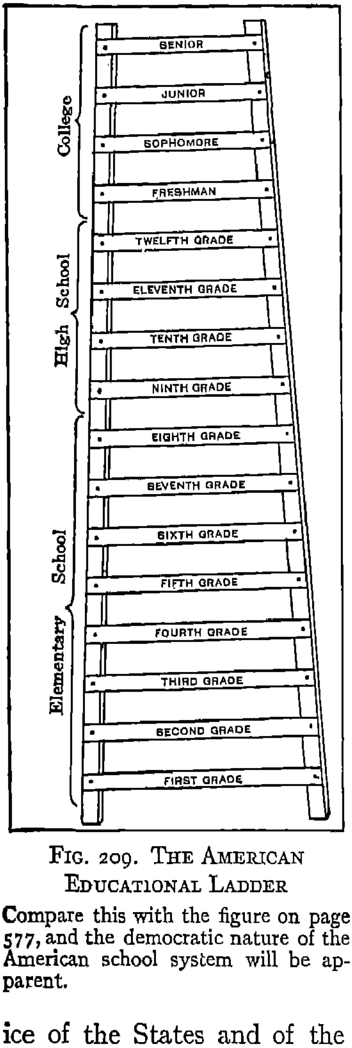

FIG. 209. THE AMERICAN EDUCATIONAL LADDER

Compare this with the figure on page 577, and the democratic nature of the American school system will be apparent.

QUESTIONS FOR DISCUSSION

1. Explain the theory of "vested rights" as applied to private and parochial schools.
2. Does every great advance in provisions for human welfare require a period of education and propaganda? Illustrate.
3. Explain just what is meant by "the wealth of the State must educate the children of the State."
4. Show how the retention of the pauper-school idea would have been dangerous to the life of the Republic.
5. Why were the cities more anxious to escape from the operation of the pauper-school law than were the towns and rural districts?
6. Why were the pauper-school and the rate-bill so hard to eliminate?
7. Explain why, in America, schools naturally developed from the community outward.
8. State your explanation for the older States beginning to establish permanent school funds, often before they had established a state system of schools.
9. Show the gradual transition from church control of education, through state aid of church schools, to secularized state schools.
10. Show why secularized state schools were the only possible solution for the United States.
11. Show that secularization would naturally take place in the textbooks and the instruction, before manifesting itself in the laws.
12. Show how the American academy was a natural development in the national life.
13. Show how the American high school was a natural development after the academy.
14. Show why the high school could be opposed by men who had accepted tax-supported elementary schools. Why has such reasoning been abandoned now?
15. Explain the difference, and illustrate from the history of American educational development, between establishing a thing in principle and carrying it into full effect.
16. Was the early argument as to the influence of higher education on the State a true argument? Why?
17. What would have been the probable results had the Dartmouth College case been decided the other way?
18. Show how the opening of collegiate instruction to women was a phase of the new democratic movement.
19. Show how college education has been a unifying force in the national life.

SELECTED READINGS

In the accompanying *Book of Readings* the following illustrative selections are reproduced:

316. Mann: The Ground of the Free-School System.
317. Governor Cleveland: Repeal of the Connecticut School Law.
318. Mann: On the Repeal of the Connecticut School Law.
319. Gulliver: The Struggle for Free Schools in Norwich.
320. Address: The State and Education.
321. Michigan: A Rate-Bill, and a Warrant for Collection.
322. Mann: On Religious Instruction in the Schools.
323. Michigan: Petition for a Division of the School Fund.

324. Michigan: Counter-Petition against a Division.
325. Connecticut: Act of Incorporation of Norwich Free Academy.
326. Boston: Establishment of the First American High School.
327. Boston: The Secondary-School System in 1823.
328. Massachusetts: The High School Law of 1827.
329. Gulliver: An Example of the Opposition to High Schools.
330. Michigan: The Kalamazoo Decision.
331. Michigan: Program of Studies at University, 1843.
332. Tappan: The Michigan State System of Public Instruction.

QUESTIONS ON THE READINGS

1. Do Mann's three propositions (316) hold equally true to-day?
2. Of what type of person is the reasoning of Governor Cleveland (317) typical?
3. Assuming Mann's description of Connecticut progress (318) to be correct, how do you account for the legislature following Governor Cleveland's recommendations so readily?
4. Did the leaders in Norwich (319) use good diplomacy?
5. Point out the essential soundness of the reasoning of the New Jersey Report (320).
6. Explain the willingness of people seventy-five years ago to conduct the school business on such a small basis (321) as the rate-bill indicates.
7. Show that, as Mr. Mann points out (322), sectarian schools and a State Church are near together.
8. Point out the weakness in the argument in the Michigan petition (323).
9. State the purpose and nature of the first American high school (326), and contrast it with the earlier academy.
10. Contrast the English Classical School (High School) of Boston of 1823, with the older Latin School (327), as to purpose and instruction.
11. Just what did the Massachusetts Law of 1827 (328) require?
12. Has such opposition as that described in 329 completely died out even now?
13. State the line of reasoning and the conclusions of the Court in the Kalamazoo Case (330). Point out how this decision might influence development elsewhere.
14. Compare the University of Michigan of 1843 (331) with a present-day high school.
15. Show that Michigan (332) had perfected an American educational ladder.

SUPPLEMENTARY REFERENCES

*Brown, E. E. *The Making of our Middle Schools.*
*Brown, S. W. *The Secularization of American Education.*
Cubberley, E. P. *Public Education in the United States.*
Dexter, E. G. *A History of Education in the United States.*
*Hinsdale, B. A. *Horace Mann, and the Common School Revival in the United States.*
*Inglis, A. J. *The Rise of the High School in Massachusetts.*
Martin, George H. *The Evolution of the Massachusetts Public School System.*
*Mead, A. R. *The Development of Free Schools in the United States, as Illustrated by Connecticut and Michigan.*
Taylor, James M. *Before Vassar Opened.*
*Thwing, Charles F. *A History of Higher Education in America.*

CHAPTER XXVII

EDUCATION BECOMES A NATIONAL TOOL

I. SPREAD OF THE STATE-CONTROL IDEA

The five type nations. We have now traced, in some detail, the struggles of forward-looking men to establish national systems of education in five great world nations. In each we have described the steps by means of which the State gradually superseded the Church in the control of education, and the motives and impulses which finally led the State to take over the school as a function of the State. The steps and impelling motives and rate of transfer were not the same in any two nations, but in each of the five the political necessities of the State in time made the transfer seem desirable. Time everywhere was required to effect the change. The movement began earliest and was concluded earliest in the German States, and was concluded last in England. In the German States, France, and Italy the change came rapidly and as a result of legislative acts or imperial decrees. In England and the United States the transfer took place, as we have seen, only in response to the slow development of public opinion.

This change in control and extension of educational advantages was essentially a nineteenth-century movement, and a resultant of the new political philosophy and the democratic revolutions of the later eighteenth century, combined with the industrial revolution of the nineteenth century. A new political impulse now replaced the earlier religious motive as the incentive for education, and education for literacy and citizenship became, during the nineteenth century, a new political ideal that has, in time, spread to progressive nations all over the world.

The five great nations whose educational evolution has been described in the preceding chapters may be regarded as having formed types which have since been copied, in more or less detail, by the more progressive nations in different parts of the world. The continental European two-class school system, the American educational ladder, and the English tendency to combine the two and use the best parts of each, have been reproduced in the different national educational systems which have been created by the various political governments of the world. The continental

European idea of a centralized ministry for education, with an appointed head or a cabinet minister in control, has also been widely copied. The Prussian two-class plan has been most influential among the Teutonic and Slavic peoples of Europe, and has also deeply influenced educational development among the Japanese; English ideas have been extensively copied in the English self-governing dominions; and the American plan has been clearly influential in Canada, the Argentine, and in China. The French centralized plan for organization and administration has been widely copied in the state educational organizations of the Latin nations of Europe and South America. In a general way it may be stated that the more democratic the government of a nation has become the greater has been the tendency to break away from the two-class school system, to introduce more of an educational ladder, and to bring in more of the English conception of granting to localities a reasonable amount of local liberty in educational affairs.

Spread of the state-control idea among northern nations. The development of schools under the control of the government, and the extension of state supervision to the existing religious schools, took place in the different cantons of Switzerland, and in Holland, Denmark, Norway, and Sweden, somewhat contemporaneously with the development described for the five type nations. The work of Pestalozzi and Fellenberg, and of their disciples and followers, had given an early impetus to the establishment of schools and teacher-training in the Swiss cantons, most being done in the German-speaking portions.

In Holland, where the Reformation zeal for schools largely died out in the eighteenth century, the organization of the "Society of Public Good," in 1784, by a Mennonite clergyman, did much to awaken a new interest in schools for the people and to inaugurate a new movement for educational organization. In 1795 a revolution took place in Holland, a republic was established, and the extension of educational advantages followed. From 1806 to 1815 Holland was under the rule of Napoleon. A school law of 1806 forms the basis of public education in Holland. This asserted the supremacy of the State in education, and provided for state inspection of schools. In 1812 the French scientist, M. Cuvier, reported to Napoleon that there were 4451 schools in little Holland, and that one tenth of the total population was in school. In 1816 a normal school was established at Haarlem.

Both the constitutions of 1815 and 1848 provided for state control of education, which has been steadily extended since the beginning of the revival in 1784. To-day Holland provides a good system of public instruction for its people.

In Denmark and Sweden the development of state schools has been worked out, much as in England, in coöperation with the Church, and the Church still assists the State in the administration and supervision of the school systems which were eventually evolved. In each of these countries, too, the continental two-class school system has been somewhat modified by an upward movement of the transfer point between the two and the development of people's high schools, so as to produce a more democratic type of school and afford better educational opportunities to all classes of the population. The annexed diagram, showing the organization of education in Denmark, is typical of this modification and extension.

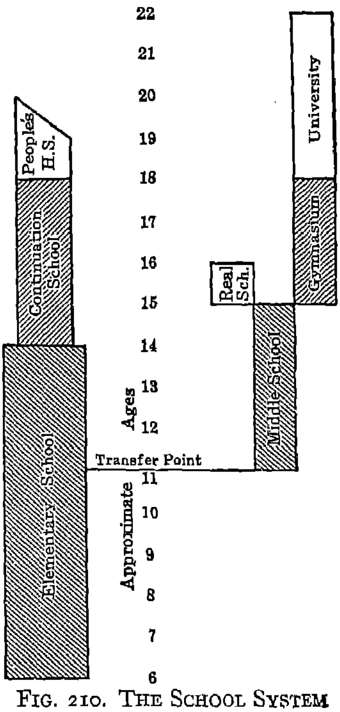

FIG. 210. THE SCHOOL SYSTEM OF DENMARK

Finland should also be classed with these northern nations in matters of educational development. Lutheran ideas as to religion and the need for education took deep hold there at an early date (p. 297). A knowledge of reading and the Catechism was made necessary for confirmation as early as 1686, and democratic ideas also found an early home among this people. In consequence the Finns have for long been a literate people. The law making elementary education a function of the State, however, dates only from 1866, and secondary education was taken over from the ecclesiastical authorities only in 1872.

Similarly, Scotland, another northern nation, began schools as a phase of its Reformation fervor. During the eighteenth century the parish schools, created by the Acts of 1646 (R. 179;

p. 335) and 1696, proved insufficient, and voluntary schools were added to supplement them. Together these insured for Scotland a much higher degree of literacy than was the case in England. The final state organization of education in Scotland dates from the Scottish Education Act of 1872.

The map reproduced here, showing the progress of general education by the close of the nineteenth century, as measured by

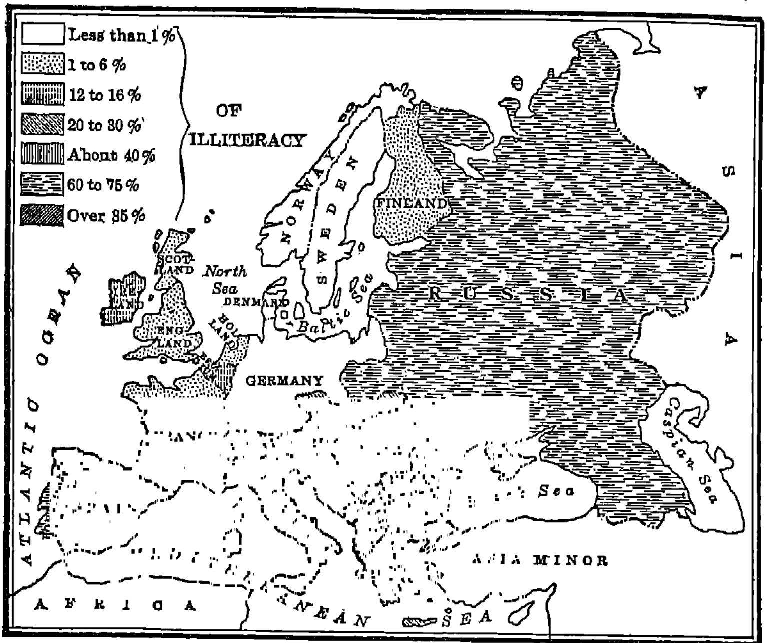

FIG. 211. THE PROGRESS OF LITERACY IN EUROPE BY THE CLOSE OF THE NINETEENTH CENTURY

the spread of the ability to read and write, reveals at a glance the high degree of literacy of the northern Teutonic and mixed Teutonic nations. It was among these nations that the Protestant Reformation ideas made the deepest impression; it was in these northern States that the Protestant elementary vernacular school, to teach reading and religion, attained its earliest start; it was there that the school was taken over from the Church and erected into an effective national instrument at an early date; and it was these nations which had been most successful, by the close of the nineteenth century, in extending the elements of education to all and thus producing literate populations.

The state-control idea in the south and east of Europe. As we pass to the south and east of Europe we pass not only to lands which remained loyal to the Roman Church, or are adherents of the Greek Church, and hence did not experience the Reformation fervor with its accompanying zeal for education, but also to lands untouched by the French-Revolution movement and where democratic ideas have only recently begun to make any progress. Greece alone forms an exception to this statement, a constitutional government having been established there in 1843. Removed from the main stream of European civilization, these nations have been influenced less by modern forces; the hold of the Church on the education of the young has there been longest retained; and the taking-over of education by the State has there been longest deferred. In consequence, the schools provided have for long been inadequate both in number and scope, and the progress of literacy and democratic ideas among the people has been slow.

Despite the beginnings made by Maria Theresa (p. 475) in the late eighteenth century, Austria dropped backward to a low place in matters of education during the period of reaction following the Napoleonic wars, and the real beginnings of state elementary-schools there date from the law of 1867. The beginnings in Hungary date from 1868. The beginnings of other state elementary school systems are: Greece, 1823; Portugal, 1844; Spain, 1857; Roumania, 1859; Bulgaria, 1881; and Serbia, 1882. In many of these States, despite early beginnings, but little real progress has even yet been made in developing systems of national education that will provide gratuitous elementary-school training for all and inculcate the national spirit. In many of these States the illiteracy of the people is still high,[1] the people are poor, the nations are economically backward, the military and clerical classes still dominate, and intelligent and interested governments have not as yet been evolved.

In Russia, though Catherine II (p. 477) and her successors made earnest efforts to begin a system of state education, the period following Napoleon was one of extreme repressive reaction.

[1] In Spain, for example, the percentage of illiteracy in 1860 was 75.52; in 1870 70.01 per cent; in 1887, 68.01 per cent; in 1890, 63.78 per cent; and in 1910, 59.35 per cent. The percentage for 1920 will probably not be less than for 1910, due to the closing of many schools for lack of teachers during the World War. In 1916 ten provinces had an illiteracy of over 70 per cent, and but five had less than 40 per cent. In Madrid and Barcelona, cities as large as Baltimore and Cleveland, the illiteracy approaches a third of the population in Madrid, and a half in Barcelona.

The military class and the clergy of the Greek Church joined hands in a government interested in keeping the people submissive and devout. In consequence, at the time of the emancipation of the serfs, in 1861, it was estimated that not one per cent of the total population of Russia was then under instruction, and the ratio of illiteracy by the close of the nineteenth century was the highest in Europe outside of Spain, Portugal, and the Balkan States.

The state-control idea in the English self-governing dominions. The English and French settlers in Ontario, Quebec, and the Maritime Provinces of Canada brought the English and French parochial-school ideas from their home-lands with them, but these home conceptions were materially modified, at an early date, by settlers from the northern States of the American Union. These introduced the New England idea of state control and public responsibility for education. In part copying precedents recently established in the new American States, as an outcome of the struggles there to establish free, tax-supported, and state-controlled schools, both Ontario and Quebec early began the establishment of state systems of education for their people. A superintendent of education was appointed in Ontario in 1844, and the Common School Act of 1846 laid the foundation of the state school system of the Province. In the law of 1871 a system of uniform, free, compulsory, and state-inspected schools was definitely provided for. Quebec, in 1845, made the ecclesiastical parish the unit for school administration; in 1852 appointed government inspectors for the church schools; and in 1859 provided for a Council of Public Instruction to control all schools in the Province. The Dominion Act of 1867 left education, as in the United States, to the several Provinces to control, and state systems of education, though with large liberty in religious instruction, or the incorporation of the religious schools into the state school systems, have since been erected in all the Canadian Provinces. Following American precedents, too, a thoroughly democratic educational ladder has almost everywhere been created, substantially like that shown in the Figure on page 708.

In Australia and New Zealand education has similarly been left to the different States to handle, but a state centralized control has been provided there which is more akin to French practice than to English ideas. In each State, primary education has been made free, compulsory, secular, and state-supported. The laws

making such provision in the different States date from 1872, in Victoria; 1875, in Queensland; 1878, in South Australia, West Australia, and New Zealand; and 1880, in New South Wales. Secondary education has not as yet been made free, and many excellent privately endowed or fee-supported secondary schools, after the English plan, are found in the different States.

In the new Union of South Africa all university education has been taken over by the Union, while the existing school systems of the different States are rapidly being taken over and expanded by the state governments, and transformed into constructive instruments of the States.

The state-control idea in the South American States. As we have seen in Chapter xx, the spirit of nationality awakened by the French Revolution spread to South America, and between 1815 and 1821 (p. 503) all of Spain's South American colonies revolted, declared their independence from the mother country, and set up constitutional republics. Brazil, in 1822, in a similar manner severed its connections from Portugal. The United States, through the Monroe Doctrine (1823), helped these new States to maintain their independence. For approximately half a century these States, isolated as they were and engaged in a long and difficult struggle to evolve stable forms of government, left such education as was provided to private individuals and societies and to the missionaries and teaching orders of the Roman Church. After the middle of the nineteenth century, the new forces stirring in the modern world began to be felt in South America as well, and, after about 1870, a well-defined movement to establish state school systems began to be in evidence.

The Argentine constitution of 1853 had directed the establishment of primary schools by the State, but nothing of importance was done until after the election of Dr. Sarmiento as President, in 1868. Under his influence an American-type normal school was established, teachers were imported from the United States, and liberal appropriations for education were begun. In 1873 a general system of national aid for primary education was established, and in 1884 a new law laid the basis of the present state school system. Though some earlier beginnings had been made in some of the other South American nations, Argentine is regarded as the leader in education among them. This is largely due to the democratic nature of the government which, in connec-

tion with the deep interest in education of President Sarmiento,[1] found educational expression in the creation of an American-type educational ladder, as the accompanying diagram shows. Large emphasis has been placed on scientific and practical studies in the secondary *colegios*. The normal school has been given large importance, and made a parallel and connecting link in the educational ladder between the primary schools and the universities. The Argentine school system, probably due to American influences acting through President Sarmiento, forms an exception to the usual South American state school system, as nearly all the other States have followed the French model and created a European two-class school system.

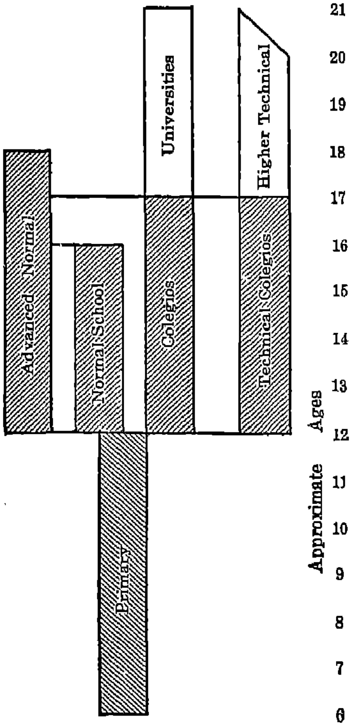

FIG. 212. THE SCHOOL SYSTEM OF THE ARGENTINE REPUBLIC

In Chili, the constitution of 1833 declared education to be of supreme importance, and a normal school was established in Santiago, as early as 1840. The basic law for the organization of a state system of primary instruction, however, dates from 1860, and the law organizing a state system of secondary and higher education from 1872.

In Peru, an educational reform movement was inaugurated in 1876, but the war with Chili (1879–84) checked all progress. In 1896 an Educational Commission was appointed to visit the United States and Europe, and the law of 1901 marked the creation of a ministry for education and the real beginnings of a state school system.

[1] While an exile from the Argentine, Dr. Sarmiento was commissioned by Chili to visit, study, and report on the state school systems of the United States and Europe. While in the United States he became intimately acquainted with Horace Mann. Later he was Minister from the Argentine to the United States, being recalled, in 1868, to assume the presidency of the Republic. He was deeply impressed with the type of educational opportunity provided in the schools of the United States and, through an appointed Minister of Education, impressed his ideas on the Argentine nation.

The Brazilian constitution of 1824 left education to the several States (twenty and one Federal District), and a permissive law of 1827 allowed the different States to establish schools. It was not until 1854, however, that public schools were organized in the Federal District, and these mark the real beginning of state education in Brazil. Since then the establishment of state schools has gradually extended to the coast States, and inland with the building of railway lines and the opening-up of the interior to outside influences. The basis for state-controlled education has now been laid in all the States, but the attendance at the schools as yet is small.[1]

In some of the other South American States, such as Bolivia, Ecuador, and Venezuela, but little progress in extending state-controlled schools has as yet been made, and the training of the young is still left largely to private effort, the Church, and the religious orders. The illiteracy in all the South American States is still high, in part due to the large native populations, and much remains to be done before education becomes general there. The state-control idea, though, has been definitely established in principle in these countries. With the establishment of stable governments, the building of railroads and steamship lines, and the development of an important international commerce — events which there have characterized the first two decades of the twentieth century — early and important progress in state educational organization and in the extension of educational advantages may be expected.

The state-school idea in eastern Asia. In 1854 Admiral Perry effected the treaty of friendship with Japan which virtually opened that nation to the influences of western civilization, and one of the most wonderful transformations of a people recorded in history soon began. In 1867 a new Mikado came to the throne, and in 1868 the small military class, which had ruled the nation for some seven hundred years, gave up their power to the new ruler. A new era in Japan, known as the *Meiji*, dates from this event. In 1871 the centuries-old feudal system was abolished, and all classes in the State were declared equal before the law. This same year the first newspaper in Japan was begun. In 1872 the first educational code for the nation was promulgated by the Mikado. This ordered the general establishment of schools, the compulsory education of the people (R. 334 a), and the

[1] In 1910 only about 3 per cent of the total population was in any type of school.

equality of all classes in educational matters. Students were now sent abroad, especially to Germany and the United States; foreign teachers were imported; an American normal-school teacher was placed in charge of the newly opened state normal school; the American class method of instruction was introduced; schoolbooks and teaching apparatus were prepared, after American models; middle schools were organized in the towns; higher schools were opened in the cities; and the old Academy of Foreign Languages was evolved (1877) into the University of Tokyo. In 1884 the study of English was introduced into the courses of the public schools. In 1889 a form of constitution was granted to the people, and a parliament established.[1]

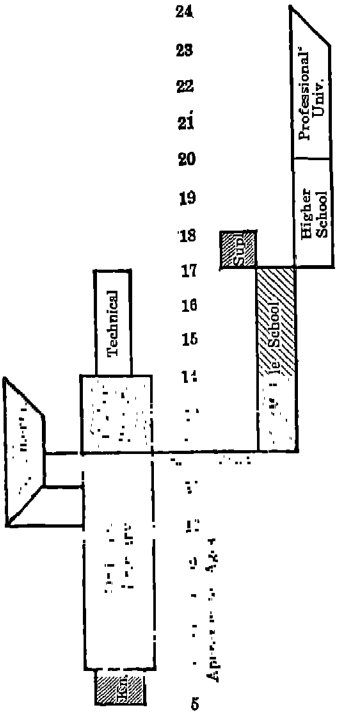

Fig. 213. The Japanese Two-Class School System

Adapting the continental European idea of a two-class school system to the peculiar needs of the nation, the Japanese have worked out, during the past half-century, a type of state-controlled school system which has been well adapted to their national needs.[2] Instruction in national morality, based on the ancestral virtues, brotherly affection, and loyalty to the constitution and the ruling class (R. 334 b-c), has been well worked out in their schools. Though the government has remained largely autocratic in form, the Japanese have, however, retained throughout all their educational development the fundamental democratic principle enunciated in the Preamble to the Educational Code of 1872

[1] The Mikado still retained, through his ministers, very large powers, while the parliament was a consultative assembly rather than a legislative one. The form of government has been much like that of the German Empire before the World War.

[2] The Japanese Government has so far been a military autocracy, and the Japanese have been the Prussians of the Orient. The two-class school system has accordingly met the needs of a benevolent autocracy fairly well. With the rise of a liberal party in Japan, and the beginning of some democratic life, we may look for progressive changes in their schools which will tend to produce a more democratic type of educational organization.

(R. 334 a), *viz.*, that every one without distinction of class or sex shall receive primary education at least, and that the opportunity for higher education shall be open to all children. So completely has the education of the people been conceived of as one of the most important functions of the State that all education has been placed under a centralized state control, with a Cabinet Minister in charge of all administrative matters connected with the education of the nation.

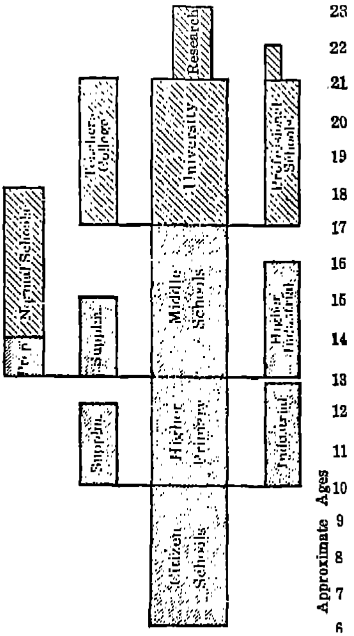

FIG. 214. THE CHINESE EDUCATIONAL LADDER

Since near the end of the nineteenth century what promises to be an even more wonderful transformation of a people—political, social, scientific, and industrial—has been taking place in China (R. 335). A much more democratic type of national school system than that of the Japanese has been worked out, and this the new (1912) Republic of China is rapidly extending in the provinces, and making education a very important function of the new democratic national life.[1] In the beginning, when displacing the centuries-old Confucian educational system,[2] the Chinese adopted Japanese ideas and organized their schools (1905) somewhat after the Japanese model. Later on, responding to the influence of many American-educated Chinese and to the more

[1] "The idea of education for all classes, the aim of all educators and statesmen of western countries, scarcely entered the minds of the leaders of China under the traditional system of education. With the introduction of the new educational system, however, the problem of universal education suddenly came into prominence. Indeed, it is the stated goal of the new educational policy." (Ping Wen Kuo, *The Chinese System of Public Education*, p. 149.)

[2] Education in China has been common, for a class, for over four thousand years. The schools were private, but a detailed national system of examinations was provided by the State, and all who expected any state preferment were required to pass these state examinations. The system was based on the old Confucian classics. Under it schools existed in all the chief towns, and the examination system exerted a strong unifying influence on the nation. In 1842 China opened five treaty ports to the ships and commerce of western nations, and from 1842 to 1903 a process of gradual transition from the ancient examination system to modern conditions took place.

democratic impulses of the Chinese people, the new government established by the Republic of 1912 changed the school system at first established so as to make it in type more like the American educational ladder. The new Chinese school system is shown in the drawing on page 721. The university instruction is modern and excellent, and the addition of the cultural and scientific knowledge worked out in western Europe to the intellectual qualities of this capable people can hardly fail to result, in time, in the production of a wonderful modern nation,[1] probably in one of the greatest nations of the mid-twentieth century.

In 1891 the independent Kingdom of Siam,[2] awakened from its age-long isolation by new world influences, sent a prince to Europe to study and report on the state systems of education maintained there. As a result of his report a department of public education was created, which later evolved into a ministry of public instruction, and elementary schools were opened by the State in the thirteen thousand old Buddhist temples. These schools offered a two-year course in Siamese, followed by a five-year course in English, given by imported English teachers. Schools for girls were provided, as well as for boys. Since this beginning, higher schools of law, medicine, agriculture, engineering, and military science have been added, taught largely by imported English and American teachers. In consequence of the new educational organization, and the new influences brought in, the whole life of this little kingdom has been transformed during the past three decades.

General acceptance of the state-function conception. The different national school systems, the creation of which has so far been briefly described, are typical and represent a great world movement which characterized the latter half of the nineteenth

[1] "A nation that has preserved its identity by peaceful means for three millenniums; that has made the soil produce subsistence for a multitudinous population during that long period, while Western peoples have worn out their soil in less than that many centuries; that has produced many of the most influential of modern inventions, such as printing, gunpowder, and the compass; that has developed such mechanical ingenuity and commercial ability as are shown in its everyday life, undoubtedly possesses the ability to accomplish results by the use of methods worked out by the Western world. When modern scientific knowledge is added by the Chinese to the skill which they already have in agriculture, in commerce, in industry, in government, and in military affairs, results will be achieved, on the basis of their physical stamina and moral qualities, which will remove the ignorance, the indifference, and the prejudice of the Western world regarding things Chinese." (Monroe, Paul, Editorial introduction to Ping Wen Kuo's *The Chinese System of Public Education.*)

[2] Though appearing small on the map, Siam is a nation of six millions of people and an area over three and a half times that of the six New England States.

century. This movement is still under way, and increasing in strength. Other state school organizations might be added to the list, but those so far given are sufficient. Beginning with the nations which were earliest to the front of the onward march of civilization, the movement for the state control of education, itself an expression of new world forces and new national needs, has in a century spread to every continent on the globe. To-day progressive nations everywhere conceive of education for their people as so closely associated with their social, political, and industrial progress, and their national welfare and prosperity (**R.** 336), that the control of education has come to be regarded as an indispensable function of the State. State constitutions (**R.** 333) have accordingly required the creation of comprehensive state school systems; legislators have turned to education with a new interest; bulky state school codes have given force to constitutional mandates; national literacy has become a goal; the diffusion of political intelligence by means of the school has naturally followed the extension of the suffrage; while the many new forces and impulses of a modern world have served to make the old religious type of education utterly inadequate, and to call for national action to a degree never conceived of in the days when religious, private, and voluntary educational effort sufficed to meet the needs of the few who felt the call to learn. What a few of the more important of these new nineteenth-century forces have been, which have so fundamentally modified the character and direction of education, it may be worth while to set forth briefly, before proceeding further.

II. NEW MODIFYING FORCES

The advance of scientific knowledge. The first and most important of these nineteenth-century forces, and the one which preceded and conditioned all the others, was the great increase of accurate knowledge as to the forces and laws of the physical world, arising from the application of scientific method to the investigation of the phenomena of the material world (**R.** 337). During the nineteenth century the intellect of man was stimulated to activity as it had not been before since the days when little Athens was the intellectual center of the world. What the Revival of Learning was to the classical scholars of the fifteenth and sixteenth centuries, the movement for scientific knowledge and its application to human affairs was to the nineteenth. It changed

the outlook of man on the problems of life, vastly enlarged the intellectual horizon, and gave a new trend to education and to scholarly effort. What the scholars of the seventeenth and eighteenth centuries had been slowly gathering together as interesting and classified phenomena, the scientific scholars of the nineteenth century organized, interpreted, expanded, and applied. Since the day of Copernicus (p. 386) and Newton (p. 388) a growing appreciation of the permanence and scope of natural law in the universe had been slowly developing, and this the scholars of the nineteenth century fixed as a principle and applied in many new directions. A few of the more important of these new directions may profitably be indicated here.

In the domain of the physical sciences very important advances characterized the century. Chemistry, up to the end of the first quarter of the nineteenth century largely a collection of unrelated facts, was transformed by the labors of such men as Dalton (1766–1844), Faraday (1791–1867), and Liebig into a wonderfully well-organized and vastly important science. Liebig carried chemistry over into the study of the processes of digestion and the functioning of the internal organs, and reshaped much of the instruction in medicine. Liebig is also important as having opened, at Giessen, in 1826, the first laboratory instruction in chemistry for students provided in any university in the world. By many subsequent workers chemistry has been so applied to the arts that it is not too much to say that a knowledge of chemistry underlies the whole manufacturing and industrial life of the present, and that the degree of industrial preëminence held by a nation to-day is largely determined by its mastery of chemical processes.

Fig. 215. Baron Justus von Liebig (1803–73)

Physics has experienced an equally important development. It, too, at the beginning of the nineteenth century was in the preliminary state of collecting, coördinating, and trying to interpret data. In a century physics has, by experimentation and the application of mathematics to its problems, been organized into a number of exceedingly important sciences. In dynamics, heat, light, and particularly in electricity, discoveries and extension of

previous knowledge of the most far-reaching significance have been made. What at the beginning of the nineteenth century was a small textbook study of natural philosophy has since been subdivided into the two great sciences of physics and chemistry, and these in turn into numerous well-organized branches. To-day these are taught, not from textbooks, but in large and costly laboratories, while manufacturing establishments and governments now find it both necessary and profitable to maintain large scientific institutions for chemical and physical research.

The great triumph of physics, from the point of view of the reign of law in the world of matter, was the experimental establishment (1849) of the fundamental principle of the conservation of energy. This ranks in importance in the world of the physical sciences with the theory of evolution in the biological. The perfection of the spectroscope (1859) revealed the rule of chemical law among the stars, and clinched the theory of evolution as applied to the celestial universe. The atomic theory of matter [1] was an extension of natural laws in another direction. In 1846 occurred the most spectacular proof of the reign of natural law which the nineteenth century witnessed. Two scientists, in different lands,[2] working independently, calculated the orbit of a new planet, Neptune, and when the telescope was turned to the point in the heavens indicated by their calculations the planet was there. It was a tremendous triumph for both mathematics and astronomy. Such work as this meant the firm establishment of scientific accuracy, and the ultimate elimination of the old theories of witchcraft, diabolic action, and superstition as controlling forces in the world of human affairs.

The publication by Charles Lyell (1797–1875) of his *Principles of Geology*, in 1830, marked another important advance in the knowledge of the operations of natural law in the physical world, and likewise a revolution in thinking in regard to the age and past history of the earth. Few books have ever more deeply influenced human thinking. The old theological conception of earthly

[1] "Through metaphysics first; then through alchemy and chemistry, through physical and astronomical spectroscopy, lastly through radio-activity, science has slowly groped its way to the atom." (Soddy, F., *Matter and Energy*.)

[2] Adams in England, and Leverrier in France. The planet Uranus had for long been known to be erratic in its movements, and Adams and Leverrier concluded, working from Newton's law for gravitation, that it must be due to the pull of an unknown planet. Both calculated the orbit of this unknown body, Adams sending his calculations to the Royal Observatory at Greenwich, and Leverrier to the observatory at Berlin. At both observatories the new planet — later named Neptune — was picked up by the telescope at the position indicated.

"catastrophes"[1] was overthrown, and in its place was substituted the idea of a very long and a very orderly evolution of the planet. Geology was created as a new science, and out of this has come, by subsequent evolution, a number of other new sciences[2] which have contributed much to human progress.

FIG. 216.
CHARLES DARWIN
(1809–82)

Another of the great books of all time appeared in 1859, when Charles Darwin (1809–1882) published the results of thirty years of careful biological research in his *Origin of Species.* This swept away the old theory of special and individual creation which had been cherished since early antiquity, and substituted in its place the reign of law in the field of biological life. This substitution of the principle of orderly evolution for the old theory of special creation marked another forward step in human thinking,[3] and gave an entirely new direction to the old study of natural history.[4] In the hands of such workers as Wallace (1823–1913), Asa Gray (1810–88), Huxley (1825–94), and Spencer (1820–1903) it now proved a fruitful field.

In 1856 the German Virchow (1821–1902) made his far-reaching contribution of cellular pathology to medical science; between 1859 and 1865 the French scientist Pasteur (1822–95) established the germ theory of fermentation, putrefaction, and disease; about the same time the English surgeon Lister (1827–1914) began to use antiseptics in surgery; and, in 1879, the bacillus of typhoid

[1] This theory of "catastrophes" held that at a number of successive epochs, of which the age of Noah was the latest, great revolutions or disasters had taken place on the earth's surface, in which all living things were destroyed. Later the world was restocked, and again destroyed. This explained the successive strata, and the fossils they contained. For this theory Lyell substituted a slow and orderly evolution, covering ages, and completely upset the Mosaic chronology.

[2] For example: — mineralogy, petrography, petrology, crystallography, stratigraphy, and paleontology.

[3] "Darwin's *Origin of Species* had come into the theological world like a plow into an ant-hill. Everywhere those thus rudely awakened from their old comfort and repose had swarmed forth angry and confused. Reviews, sermons, books, light and heavy, came flying at the new thinker from all sides." (White, A. D., *The Warfare of Science and Theology*, vol. I, p. 70.)

[4] Natural history as a study goes back to the days of Aristotle, in Greece, but it had always been a study of fixed forms. Darwin destroyed this conception, and vitalized the new subject of biology. From this botany and zoölogy have been derived, and from these again many other new sciences, such as physiology, morphology, bacteriology, anthropology, cytology, entomology, and all the different agricultural sciences.

fever was found. Out of this work the modern sciences of pathology, aseptic surgery, bacteriology, and immunity were created, and the cause and mode of transmission of the great diseases[1] which once decimated armies and cities — plague, cholera, malaria, typhoid, typhus, yellow fever, dysentery — as well as the scourges of tuberculosis, diphtheria, and lockjaw, have been determined. The importance of these discoveries for the future welfare and happiness of mankind can scarcely be overestimated. Sanitary science arose as an application of these discoveries, and since about 1875 a sanitary and hygienic revolution has taken place.

FIG. 217. LOUIS PASTEUR (1822–95)

The above represent but a few of the more important of the many great scientific advances of the nineteenth century. What the thinkers of the eighteenth century had sowed broadcast through a general interest in science, their successors in the nineteenth reaped as an abundant harvest. The three great master keys of science — the higher mathematics, the principle of the conservation of energy, and the principle of orderly evolution of life according to law — so long unknown to man, had at last been discovered, and, with these in their possession, men have since opened up many of the long-hidden secrets of cause and growth and form and function, both in the heavens and on the earth, and have revealed to a wondering world the prodigious and eternal forces of an orderly universe. The fruitfulness of the Baconian method (p. 390) in the hands of his successors has far surpassed his most sanguine expectations.

The applications of science and the result. All this work, as has been frequently pointed out (**R.** 338), had of necessity to precede the applications of science to the arts and to the advancement of the comforts and happiness of mankind. The new studies soon caught the attention of younger scholars; special schools for their study began to be established by the middle of the nineteenth century;[2] enthusiastic students of science began forcefully to challenge the centuries-long supremacy of classical studies;

[1] The bacillus of tuberculosis was isolated in 1882, Asiatic cholera in 1883, lockjaw and diphtheria in 1884, and bubonic plague in 1894.

[2] Schools of engineering, mining, agriculture, and applied science are types.

funds for scientific research began to be provided; the printing-press disseminated the new ideas; and thousands of applications of science to trade and industry and human welfare began to attract public attention and create a new demand for schools and for a new extension of learning. During the past century the applications of this new learning to matters that intimately touch the life of man have been so numerous and so far-reaching in their effects that they have produced a revolution in life conditions unlike anything the world ever experienced before. In all the days from the time of the Crusades to the end of the Napoleonic Wars the changes in living effected were less, both in scope and importance, than have taken place in the century since Napoleon was sent to Saint Helena.

This transformation we call the Industrial Revolution. This, as we pointed out earlier (p. 492), began in England in the late eighteenth century. France did not experience its beginnings until after the Napoleonic Wars, though after about 1820 the transformations there were rapid and far-reaching. In the United States it began about 1810–15, and between 1820 and 1860 the industrial methods of the people of the northeastern quarter of the United States were revolutionized. Between 1860 and 1900 they were revolutionized again. In the German States the transformation began about 1840, though it did not reach its great development until after the establishment of the Empire, in 1871. Since the middle of the nineteenth century, with the development of factories, the building of railroads, and the extension of steamship lines, even the most remote countries have been affected by the new forces. Nations long primitive and secluded have been modernized and industrialized; century-old trades and skills have been destroyed by machinery; the old home and village industries have been replaced by the factory system; cities for manufacturing and trade have everywhere experienced a rapid development; and even on the farm the agricultural methods of bygone days have been replaced by the discoveries of science and the products of invention. Almost nothing is done to-day as it was a century ago, and only in remote places do people live as they used to live. The nature and extent of the change which has been wrought, and some estimate as to its effect upon educational procedure, may perhaps be better comprehended if we first contrast living conditions before and after this industrial transformation.

Living conditions a century ago. A century ago people everywhere lived comparatively simple lives. The steam engine, while beginning to be put to use (p. 493), had not as yet been extensively applied and made the willing and obedient slave of man. The lightning had not as yet been harnessed, and the now omnipresent electric motor was then still unknown. Only in England had manufacturing reached any large proportions, and even there the methods were somewhat primitive. Thousands of processes which we now perform simply and effectively by the use of steam or electric power, a century ago were done slowly and painfully by human labor. The chief sources of power were then man and horse power. The home was a center in which most of the arts and trades were practiced, and in the long winter evenings the old crafts and skills were turned to commercial account. What every family used and wore was largely made in the home, the village, or the neighborhood.

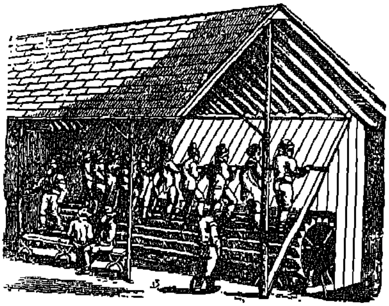

Fig. 218. Man Power before the Days of Steam

Foot power a century ago. (From a cut by Anderson, America's first important engraver)

Travel was slow and expensive and something only the well-to-do could afford. To go fifty miles a day by stage-coach, or one hundred by sailing packet on the water, was extraordinarily rapid. "One could not travel faster by sea or by land," as Huxley remarked, "than at any previous time in the world's history, and King George could send a message from London to York no faster than King John might have done." The steam train was not developed until about 1825, and through railway lines not for a quarter-century longer. It took four days by coach from London to York (188 miles); six weeks by sailing vessel from Southampton to Boston; and six months from England to India. People moved about but little. A journey of fifty miles was an event — for many something not experienced in a lifetime. To travel to a foreign land made a man a marked individual. Benjamin Franklin tells us that he was frequently pointed out on the streets of Philadelphia, then the largest city in the United States, as a man who had been to Europe. George Tick

nor has left us an interesting record (R. 339) of his difficulties in finding anything in print in the libraries of the time, about 1815, or any one who could tell him about the work of the German universities, which he, as a result of reading Madame de Staël's book on Germany, was desirous of attending.[1]

Everywhere it was a time of hard work and simple living. Every youngster had to become useful at an early age. The work of life, in town or on the farm, required hard and continual labor from all. Farm machinery had not been perfected, and

FIG. 219. THRESHING WHEAT A CENTURY AGO
(After a woodcut by Jacque, in *L'Illustration*)

hand labor performed all the operations of ploughing and sowing, reaping and harvesting. With the introduction of the factory system, men, women, and children were used to operate machinery, children being apprenticed to the mills at about eight years of age and working ten to twelve hours a day. This soon worked the life out of human beings, and in consequence sickness, wretchedness, juvenile delinquency, ignorance, drunkenness, pauperism, and crime increased greatly as cities grew and the factory system drew thousands from the farms to the towns. When Queen Victoria came to the throne (1837) one person in twelve in England was a pauper, and the lot of the poor was wretched in the extreme. In cities they lived in cellars and basements and hovels. There was practically no sanitation or drainage. Streets

[1] The book on Germany (*De l'Allemagne*) by Madame de Staël (1766–1817), a brilliant French novelist, was published and immediately confiscated in France in 1811, and republished in England in 1813. It is one of the most remarkable books on one country written by a native of another which had appeared up to that time. Through reading it many English and Americans discovered a new world.

and alleys were filthy. Graveyards were commonly located in the heart of a town. A pure water-supply through water-mains was unknown. Pumps and water-carriers supplied nearly all the needs. There was in consequence much sickness, and such diseases as typhoid and malaria ran rampant.

FIG. 220. A CITY WATER-SUPPLY ABOUT 1830
(After a lithograph by Bellangé)

Change in living conditions to-day. In a century all has been changed. Steam and electricity and sanitary science have transformed the world; the railway, steamship, telegraph, cable, and printing-press have made the world one. The output of the factory system has transformed living and labor conditions, even to the remote corners of the world; sanitary science and sanitary legislation have changed the primitive conditions of the home and made of it a clean and comfortable modern abode; men and women have been freed from an almost incalculable amount of drudgery and toil, and the human effort and time saved may now be devoted to other types of work or to enjoyment and learning. Thousands who once were needed for menial toil on farm or in shop and home are now freed for employment in satisfying new wants and new pleasures that mankind has come to know,[1] or may devote their time and energies to forms of service that advance the welfare of mankind or minister to the needs of the human spirit.

Labor-saving devices and the applications of scientific work have touched all phases of life and labor of men and women, and

[1] For example, it has been estimated that one fifteenth of the working population of modern industrial nations devotes itself to transportation; another one fifteenth to maintaining public services — light, gas, telephone, water, sewage, streets, parks — unknown in earlier times; and another one fifteenth to the manufacture and distribution and care of automobiles. Add still further the numbers employed in connection with theaters, moving-picture shows, phonographs, magazines and the newspapers, soft-drink places, millinery and dry goods, hospitals, and similar "appendages of civilization," and we get some idea of the increased labor efficiency which the applications of science have brought about.

under modern methods of transportation go everywhere. The American self-binding reaper is found in the grain-fields of Russia and the Argentine; one may buy cans of kerosene and tinned meats and vegetables almost anywhere in the world to-day; sewing machines and phonographs add to the comfort and pleasure of the African native and the dweller on the Yukon; "milady" in Siam uses cosmetics manufactured for the devotees of fashion in Paris; the Sultan of Sulu wears an elegant American wrist-watch; the Dahomeny tribesman has a safety razor, and a mirror of French plate; the Persian dandy wears shoes and haberdashery made in the United States; old Chinamen up the Yellow River Valley read their Confucius by the light of an Edison Mazda; the steam train wends its way up from Jaffa to Jerusalem; the gasoline power boat chugs its course up the Nile the Pharaohs sailed; and modern surgical methods and instruments are used in the hospitals of Manila and Singapore, Cairo and Cape Town. A rupee spent for thread at Calcutta starts the spindles going in Manchester; a new calico dress for a Mandalay belle helps the cotton-print mills of Leeds; a new carving set for a Fiji Islander means more labor for some cutlery works in Sheffield; a half-dollar for a new undershirt in Panama means increased work for a cotton mill in New England; a new blanket called for against the winter's cold of Siberia moves the looms of some Rhode Island town; a dime spent for a box of matches in Alaska means added labor and profit for a match factory in California; a new bath tub in Paraguay spells increased output for a factory at Milan or Turin; and the Christmas wishes of the children in Brazil give work to the toy factories of Nüremberg.

Trains and huge steamers move to-day along the great trade routes of the modern world, exchanging both the people and their products. The holds of the ships are filled with coal and grain and manufactured implements and commodities of every description, while their steerage space is crowded with modern Marco Polos and Magellans going forth to see the world. The Hindoo walks the streets of Cape Town, London, Sydney, New York, San Francisco, and Valparaiso; the Russian Jew is found in all the Old and New World cities; the Englishman and the American travel everywhere; the Japanese are fringing the Pacific with their laboring classes; toiling Italians and Greeks are found all over the world; peasants from the Balkans gather the prune and orange crops of California; the moujic from the Russian Cau-

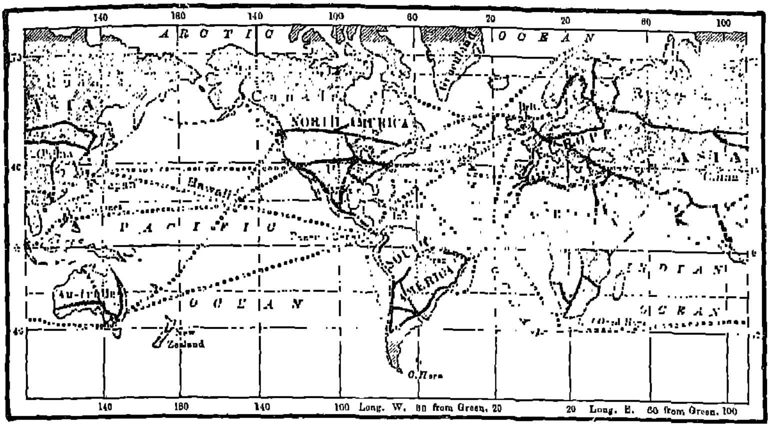

FIG. 221. THE GREAT TRADE ROUTES OF THE MODERN WORLD

Broken lines, on land, indicate gaps soon to be closed. Compare this with the maps on pages 161 and 258, and note the progress in discovery and intercommunication. Ships and trains are constantly passing over these routes, bearing both freight and peoples.

casus tills the wheat-fields of the Dakotas; while the Irish, Scandinavians, and Teutons form the political, farming, and commercial classes in many far-distant lands. In the recent World War Serbs from Montana and Colorado fought side by side with Serbs from Belgrade and Nisch; Greeks from New York and San Francisco helped their brothers from Athens drive the Bulgars back up the Vardar Valley; Italians from New Orleans and Rio de Janeiro helped their kinsmen from the valley of the Po hold back the Hun from the Venetian plain; Chinese from the valleys of the Tong-long and the Yang-tse-Kiang backed up the Allied armies by tilling the fields of France; and Algerian and Senegalese natives helped the French hold back the Teutonic hordes from the ravishment of Paris. So completely has the old isolation been broken down! So completely is the world in flux! So small has the world become!

It was almost a century from the time instruction in Greek was revived in Florence (1396) until Linacre first lectured on Greek at Oxford (c. 1492); six months after the X-ray was perfected in Germany it was in use in the hospitals of San Francisco. In the Middle Ages thousands might have died of starvation in Persia or Egypt, a famous city in Asia Minor might have been destroyed by an earthquake and many people killed, or war might have raged for years in the Orient without a citizen of western Europe know-

ing of it all his life. To-day any important event anywhere within the range of the telegraph or the cable would be reported in to-morrow morning's paper, and carefully described and illustrated in the magazines at an early date. Man is no longer a citizen of a town or a state, but of a nation and of the world. How intelligently he can use this larger citizenship depends to-day largely upon the character and the extent of the education he has received.

Effect of these changes on the laboring-classes. At first the effect of the introduction of factory-made goods and labor-saving devices was to upset the old established institutions. Trades practiced by the guilds since the Middle Ages were destroyed, because factories could turn out goods faster and cheaper than guild workmen could make them. The age-old apprenticeship system began to break down. Everywhere people were thrown out of employment, and a vast shifting of occupations took place. There was much discontent, and laborers began to unite, where allowed to do so,[1] with a view to improving their economic and political condition by concerted action. The political revolutions of 1848 throughout Europe were in part a manifestation of this discontent, and the right to organize was everywhere demanded and in time generally obtained. Among the planks in their platform were equality of all before the law; the limitation of child and woman labor; better working conditions and wages; the provision of schools for their children at public expense; and the extension of the right of suffrage.

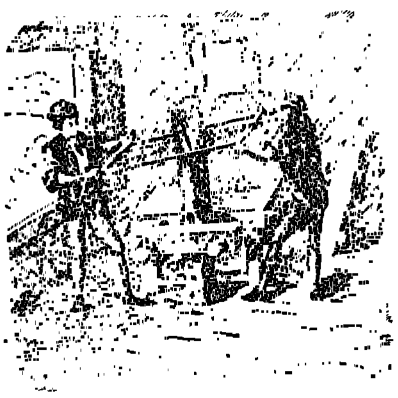

FIG. 222. AN EXAMPLE OF THE SHIFTING OF OCCUPATIONS

Sawing boards by hand, before the introduction of steam power.

[1] Labor unions were legalized in England in 1825. In the United States they arose about 1825–30, and for a time played an important part in securing legislation to better the condition of the workingman and to secure education for his children. In continental Europe, the reactionary governments following the downfall of Napoleon forbade assemblies of workingmen or their organization, as dangerous to government. In consequence, labor organizations in France were not permitted until 1848, and in Germany and Austria not until after the middle of the century. In Japan, as late as 1919, laborers were denied the right to organize.

Despite certain unfortunate results following the change from age-old working conditions, the century of transition has seen the laboring man making gains unknown before in history, and the peasant has seen the abolition of serfdom [1] and feudal dues. Homes have gained tremendously. The drudgery and wasteful toil have been greatly mitigated. To-day there is a standard of comfort and sanitation, even for those in the humblest circumstances, beyond all previous conceptions. The poorest workman to-day can enjoy in his home lighting undreamed of in the days of tallow candles; warmth beyond the power of the old smoky soft-coal grate; food of a variety and quality his ancestors never knew; kitchen conveniences and an ease in kitchen work wholly unknown until recently; and sanitary conveniences and conditions beyond the reach of the wealthiest half a century ago. The caste system in industry has been broken down, and men and their children may now choose their occupations freely,[2] and move about at will. Wages have greatly increased, both actually and relatively to the greatly improved standard of living. The work of women and children is easier, and all work for shorter hours. Child labor is fast being eliminated in all progressive nations. In consequence of all these changes for the better, people to-day have a leisure for reading and thinking and personal enjoyment entirely unknown before the middle of the nineteenth century, and governments everywhere have found it both desirable and necessary to provide means for the utilization of this leisure and the gratification of the new desires. Along with these changes has gone the development of the greatest single agent for spreading liberalizing ideas — the modern newspaper — "the most inveterate enemy of absolutism and reaction." Despite censorships, suppressions, and confiscations, the press has by now established its freedom in all enlightened lands, and the cylinder press, the telegraph, and the cable have become "indispensable adjuncts to

[1] Up to 1789 serfdom was the rule on the continent of Europe; by 1850 there was practically no serfdom in central and western Europe, and in 1866 serfdom was abolished in Russia. For the worker and farmer the years between 1789 and 1848 were years of rapid progress in the evolution from mediæval to modern conditions of living.

[2] Under conditions existing up to the close of the eighteenth century, in part persisting up to the middle of the nineteenth on the continent, and still found in unprogressive lands, a close limitation of the rights of labor was maintained. Children followed the trade of their fathers, and the right of an apprentice later to open a shop and better his condition was prohibited until after he had become an accepted master (p. 210) in his craft. Guild members, too, were not permitted to branch out into any other line of activity, or to introduce any new methods of work. All these old limitations the Industrial Revolution swept away.

the development of that power which every absolutist has come to dread, and with which every prime minister must daily reckon."

III. EFFECT OF THESE CHANGES ON EDUCATION

General result of these changes. The general result of the vast and far-reaching changes which we have just described is that the intellectual and political horizon of the working classes has been tremendously broadened; the home has been completely altered; children now have much leisure and do little labor; and the common man at last is rapidly coming into his own. Still more, the common man seems destined to be the dominant force in government in the future. To this end he and his children must be educated, his wife and children cared for, his home protected, and governments must do for him the things which satisfy his needs and advance his welfare. The days of the rule of a small intellectual class and of government in the interests of such a class have largely passed, and the political equality which the Athenian Greeks first in the western world gave to the "citizens" of little Athens, the Industrial Revolution has forced modern and enlightened governments to give to all their people. In consequence, real democracy in government, education, justice, and social welfare is now in process of being attained generally, for the first time in the history of the world.

The effect of all these changes in the mode of living of peoples is written large on the national life. The political and industrial revolutions which have marked the ushering-in of the modern age have been far-reaching in their consequences. The old home life and home industries of an earlier period are passing, or have passed, never to return. Peoples in all advanced nations are rapidly swinging into the stream of a new and vastly more complex world civilization, which brings them into contact and competition with the best brains of all mankind. At the same time a great and ever-increasing specialization of human effort is taking place on all sides, and with new and ever more difficult social, political, educational, industrial, commercial, and human-life problems constantly presenting themselves for solution. The world has become both larger and smaller than it used to be, and even its remote parts are now being linked up, to a degree that a century ago would not have been deemed possible, with the future welfare of the nations which so long bore the brunt of the struggle for the preservation and advancement of civilization.

These changes and the school. It is these vast and far-reaching political, industrial, and social changes which have been the great actuating forces behind the evolution and expansion of the state school systems which we have so far described. The American and French political revolutions, with their new philosophy of political equality and state control of education, clearly inaugurated the movement for taking over the school from the Church and the making of it an important instrument of the State. The extension of the suffrage to new classes gave a clear political motive for the school, and to train young people to read and write and know the constitutional bases of liberty became a political necessity. The industrial revolution which followed, bringing in its train such extensive changes in labor and in the conditions surrounding home and child life, has since completely altered the face of the earlier educational problem. What was simple once has since become complex, and the complexity has increased with time. Once the ability to read and write and cipher distinguished the educated man from the uneducated; to-day the man or woman who knows only these simple arts is an uneducated person, hardly fit to cope with the struggle for existence in a modern world, and certainly not fitted to participate in the complex political and industrial life of which, in all advanced nations, he or she [1] to-day forms a part.

It is the attempt to remould the school and to make of it a more potent instrument of the State for promoting national consciousness (**R.** 340) and political, social, and industrial welfare that has been behind the many changes and expansions and extensions of education which have marked the past half-century in all the leading world nations, and which underlie the most pressing problems in educational readjustment to-day. These changes and expansions and problems we shall consider more in detail in the chapters which follow. Suffice it here to say that from mere teaching institutions, engaged in imparting a little religious instruction and some knowledge of the tools of learning, the school, in all the leading nations, has to-day been transformed into an institution for advancing national welfare. The leading purpose now is to train for political and social efficiency in the

[1] Women in Europe have secured the ballot rapidly since the end of the nineteenth century. With manhood suffrage secured, universal suffrage is the next step. Women were given the right to vote and hold office in Finland in 1906; in Norway in 1907; in Denmark in 1916; in England in 1918; in Germany in 1919; and in the United States in 1920.

more democratic types of governments being instituted among peoples, and to impart to the young those industrial and social experiences once taught in the home, the trades, and on the farm, but which the coming of the factory system and city life have deprived them otherwise of knowing.

New problems to be met by education. As participation in the political life of nations has been extended to larger and larger groups of the people, and as the problems of government have become more and more complex, the schools have found it necessary to add instruction in geography, history, government, and national ideals and culture to the earlier instruction. In the less democratic nations which have evolved national school systems, this new instruction has often been utilized to give strength to the type of government and social conditions which the ruling class desired to have perpetuated. This has been the evident purpose in Japan (**R.** 334), though the government of Imperial Germany formed perhaps the best illustration of such perversion. This was seen and pointed out long ago by Horace Mann (**R.** 281). There the idea of nationality through education (**R.** 342) was carried to such an extreme as made the government oppressive to subject peoples and a menace to neighboring States.[1] On the other hand, the French have used their schools for national ends (**R.** 341) in a manner that has been highly commendable.

As the social life of nations has become broader and more complex, a longer period of guidance has become necessary to prepare the future citizens of the State for intelligent participation in it. As a result, child life everywhere has and is still experiencing a new lengthening of the period of dependence and training, and all national interests now indicate that the period devoted to preparing for life's work will need to be further lengthened. All recent thinking and legislation, as well as the interests of organized labor and the public welfare, have in recent decades set strongly against child labor. Economically unprofitable under modern industrial conditions, and morally indefensible, it has at last come to be accepted as a principle, by progressive nations, that it is better for children and for society that they remain under some form of instruction until they are at least sixteen years of age. To this end the common primary school has been continued upward, part-time continuation schools of various types have been organized

[1] See an excellent brief article "On German Education," by E. C. Moore, in *School and Society*, vol. I, pp. 886–89.

for those who must go to labor earlier, and people's high schools or middle schools have been added (see Figure 210, p. 713) to give the equivalent of a high-school education to the children of the classes not patronizing the exclusive and limited tuition secondary school.

As large numbers of immigrants from distant lands have entered some of the leading nations, notably England and the United States, and particularly immigrants from less advanced nations where general education is not as yet common, and where far different political, social, judicial, and hygienic conditions prevail, a new duty has been thrust upon the school of giving to such incoming peoples, and their children, some conception of the meaning and method and purpose of the national life of the people they have come among. The national schools have accordingly been compelled to give attention to the needs of these new elements in the population, and to direct their attention less exclusively to satisfying the needs of the well-to-do classes of society. Educational systems have in consequence tended more and more to become democratic in character, and to serve in part as instruments for the assimilation of the stranger within the nation's gates and for the perpetuation and improvement of the national life.

Education a constructive national tool. One result of the many political, social, and industrial changes of a century has been to evolve education into the great constructive tool of modern political society. For ages a church and private affair, and of no great importance for more than a few, it has to-day become the prime essential to good government and national progress, and is so recognized by the leading nations of the world. As people are freed from autocratic rule and take upon themselves the functions of government, and as they break loose from their age-old political, social, and industrial moorings and swing out into the current of the stream of modern world-civilization, the need for the education of the masses to enable them to steer safely their ship of state, and take their places among the stable governments of a modern world, becomes painfully evident. In the hands of an uneducated people a democratic form of government is a dangerous instrument, while the proper development of natural resources and the utilization of trade opportunities by backward peoples, without being exploited, is almost impossible. In Russia, Mexico, and the Central American "republics" we see the results of a

democracy in the hands of an uneducated people. There, too often, the revolver instead of the ballot box is used to settle public issues, and instead of orderly government under law we find injustice and anarchy. A general system of education that will teach the fundamental principles of constitutional liberty, and apply science to production in agriculture and manufacturing, is almost the only solution for such conditions. By contrast with the surrounding "republics" one finds in Guatemala[1] a country that has used education intelligently as a tool to advance the interests of its people.

When the United States freed Cuba, Porto Rico, and the Philippines from Spanish rule, a general system of public education, modeled after the American educational ladder, was created as a safeguard to the liberty just brought to these islands, and to education the United States added courts of justice and bureaus of sanitation as important auxiliary agencies. As a result the peoples of these islands have made a degree of progress in self-government and industry in three decades not made in three centu-

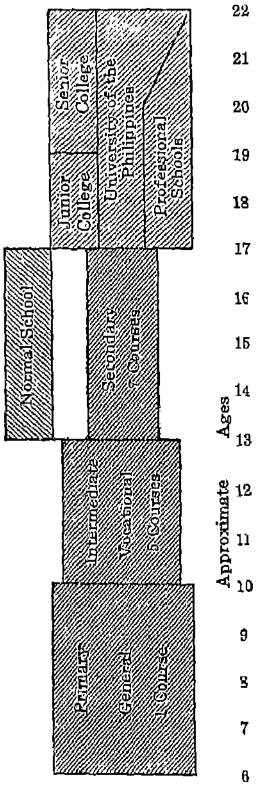

FIG. 223.
THE PHILIPPINE SCHOOL SYSTEM

A teacher-training course is given as one of the vocational courses in the Intermediate School, and the Normal School at Manila represents one of the secondary school courses. The University, besides the combined five-year college course, has eight professional courses of from three to five years in length.

[1] A State approximately the size of Illinois, and containing a population of about two million people. The great development of this country is in reality a history of the work of President Manuel Estrada Cabrera, who was president from 1898 to 1920. His ruling interest has been public education, believing that in universal education rests the future greatness of the State. He accordingly labored to establish schools, and to bring them up to as high a level as possible. The government has spent much in building modern-type schoolhouses and in subsidizing schools, holding that with the proper training of the younger generation the future position of the nation rests. A sincere admirer of the United States, American models have been copied. When the United States entered the World War, Guatemala was the first Central American republic to follow. During the War President Cabrera "would allow nothing to interfere with the advancement of free and compulsory education in the State." (See Domville-Fife, C. W., *Guatemala and the States of Central America*.)

ries under Spanish rule. The good results of the work done in these islands in establishing schools, building roads and bridges, introducing police courts, establishing good sanitary conditions, building hospitals and training nurses, applying science to agriculture, developing tropical medicine, and training the people in the difficult art of self-government, will for long be a monument to the political foresight and intelligent conceptions of government held by the American people. In a similar way the French have opened schools in Morocco, Algiers, Tunis, Senegal, Madagascar, and French Indo-China, as have the English in Egypt, India, Hong Kong,[1] the West Indies, and elsewhere. With the freeing of Palestine from the rule of the Turk, the English at once began the establishment of schools and a national university there, and doubtless they will do the same in time in Persia and Mesopotamia.

Germany, too, before the World War, but with less benevolent purposes than the Americans, the French, or the English, was also busily engaged in extending her influence through education. Her universities were thrown open to students from the whole world, and excellent instruction did they offer. The "Society for the Extension of Germanism in Foreign Countries" rendered an important service. Professors were "exchanged"; the introduction of instruction in the German language into the schools of other nations was promoted; and German schools were founded and encouraged abroad. Especially were *Realschulen* promoted to teach the wonders of German science, pure and applied. In southern Brazil and the Argentine, and in Roumania, Bulgaria, and Turkey, particular efforts were made to extend German influence and pave the way for German commercial and perhaps political expansion. Primary schools, girls' schools, and *Real*-schools in numbers were founded and aided abroad, and their progress reported to the colonial minister at home. All through the Near East the German was busily building, through trade

[1] "Imagine how the streams of Celestials circulating between Hong Kong and the mainland spread the knowledge of what a civilized government does for the people! At Shanghai and Tientsin, veritable fairylands for the Chinese, they cannot but contrast the throngs of rickshas, dog-carts, broughams, and motor cars that pour endlessly through the spotless asphalt streets with the narrow, crooked, filthy, noisome streets of their native city, to be traversed only on foot or in a sedan chair. Even the young mandarin, buried alive in some dingy walled town of the far interior, without news, events, or society, recalled with longing the lights, the gorgeous tea houses, and the alluring 'sing-song' girls of Foochow Road, and cursed the stupid policy of a government that penalized even enterprising Chinamen who tried to 'start something' for the benefit of the community." (Ross, E. A., *Changing America*, p. 22.)

and education, a new empire for himself. Had he been content to follow the slower paths of peaceful commercial and intellectual conquest, with his wonderful organization he would have been irresistible. With one gambler's throw he dashed his future to the ground, and unmasked himself before the world!

Expansion of the educational idea. In all lands to-day where there is an intelligent government, the education of the people through a system of state-controlled schools is regarded as of the first importance in moulding and shaping the destinies of the nation and promoting the country's welfare. Beginning with education to impart the ability to read and write and cipher, and as an aid to the political side of government, the education of the masses has been so expanded in scope during the century that to-day it includes aims, classes, types of schools, and forms of service scarcely dreamed of at the time the State began to take over the school from the Church, with a view to extending elementary educational advantages and promoting literacy and citizenship. What some of the more important of these expansions have been we shall state in a following chapter, but before doing so let us return to another phase of the problem — that of the progress of educational theory — and see what have been the main lines of this progress in the theory as to the educational purpose since the time when Pestalozzi formulated a theory for the secular school.

QUESTIONS FOR DISCUSSION

1. What does the emphasis on the People's High Schools in Denmark indicate as to the political status of the common people there?
2. Explain the educational prominence of Finland, compared with its neighbor Russia.
3. Show the close relation between the character of the school system developed in Japan and the character of its government. In China.
4. Show why the state-function conception of education is destined to be the ruling plan everywhere.
5. Show the close connection between the Industrial Revolution and a somewhat general diffusion of the fundamental principles revealed by the study of science.
6. Show how the Industrial Revolution has created entirely new problems in education, and what some of these are.
7. Show the connection between the Industrial Revolution and political enfranchisement.
8. Enumerate some of the educational problems we now face that we should not have had to deal with had the Industrial Revolution not taken place.
9. Why has the result of these changes been to extend the period of dependence and tutelage of children?
10. Outline an educational solution of the problem of Mexico. Of Russia. Of Persia.

11. Show how Germany found it profitable to establish *Realschulen* in such distant countries as Turkey, Mesopotamia, and the Argentine.
12. Describe the expansion of the educational idea since the days when Pestalozzi formulated the theory for the secular school.
13. What is the social significance of the development of parallel secondary schools and courses, in all lands?
14. Contrast the American and the European secondary school in purpose. Why should the American be a free school, while those in Europe are tuition schools?
15. Show why the essentially democratic school system maintained in the United States would not be suited to an autocratic form of government.
16. Show that the weight of a priesthood and the force of religious instruction in the schools would be strong supports for monarchical forms of government.
17. Homogeneous monarchical nations look after the training of their teachers much better than does such a cosmopolitan nation as the United States. Why?

SELECTED READINGS

In the accompanying *Book of Readings* the following illustrative selections are reproduced:

333. Switzerland: Constitutional Provisions as to Education and Religious Freedom.
334. Japan: The Basic Documents of Japanese Education.
    (*a*) Preamble to the Education Code of 1872.
    (*b*) Imperial Rescript on Moral Education.
    (*c*) Instructions as to Lessons on Morals.
335. Ping Wen Kuo: Transformation of China by Education.
336. Mann: Education and National Prosperity.
337. Huxley: The Recent Progress of Science.
338. Anon.: Scientific Knowledge must precede Invention.
339. Ticknor: Illustrating Early Lack of Communication.
340. Monroe: The Struggle for National Realization.
341. Buisson, F.: The French Teacher and the National Spirit.
342. Fr. de Hovre: The German Emphasis on National Ends.
343. Stuntz: Landing of the Pilgrims at Manila.

QUESTIONS ON THE READINGS

1. Compare the Swiss and American Federal organizations, and state just what the Swiss Constitution (333) provides as to education.
2. Suppose you knew nothing about the Japanese, what type of government would you take theirs to be from reading the Imperial Rescript (334 b)?
3. In comparing the Chinese transformation and the Renaissance (335), does Mr. Ping propose comparable events?
4. Show that Mr. Mann's argument (336) is still sound.
5. Does Huxley overdraw (337) our dependence on science?
6. From 338, show why the Middle Ages were so poor in inventions and discoveries.
7. Are there universities anywhere to-day of which we know as little as Ticknor was able to find out (339) a century ago?
8. Show that Monroe's statements are true that the struggle for national realization (340) has dominated modern history from the fifteenth century on.

9. Compare the conceptions as to the function of education in a State as revealed in the selections as to French (341) and German (342) educational purpose.
10. Show the entirely new character of the event (343) described by Stuntz.

SUPPLEMENTARY REFERENCES

*Buisson, F. and Farrington, F. E. *French Educational Ideals of To-day.*
Butler, N. M. "Status of Education at the Close of the Century"; in *Proceedings National Education Association*, 1900, pp. 188–96.
Davidson, Thos. "Education as World Building"; in *Educational Review*, vol. XX, pp. 325–45. (November, 1900.)
Doolittle, Wm. H. *Inventions of the Century.*
Foster, M. "A Century's Progress in Science"; in *Educational Review*, vol. XVIII, pp. 313–31. (November, 1899.)
*Friedel, V. H. *The German School as a War Nursery.*
Gibbons, H. de B. *Economic and Industrial Progress of the Century.*
Hughes, J. L., and Klemm, L. R. *Progress of Education in the Nineteenth Century.*
*Huxley, Thos. "The Progress of Science"; in his *Methods and Results.*
*Kuo, Ping Wen. *The Chinese System of Public Education.*
Lewis, R. E. *The Educational Conquest of the Far East.*
Macknight, Thos. *Political Progress of the Century.*
*Ross, E. A. "The World Wide Advance of Democracy"; in his *Changing America.*
Routledge, R. *A Popular History of Science.*
Sandiford, Peter, Editor. *Comparative Education.*
*Sedgwick, W. T., and Tyler, H. W. *A Short History of Science.*
*Thwing, C. F. *Education in the Far East.*
Webster, W. C. *General History of Commerce.*
White, A. D. *The Warfare of Science and Theology.*

CHAPTER XXVIII

NEW CONCEPTIONS OF THE EDUCATIONAL PROCESS

I. THE PSYCHOLOGICAL ORGANIZATION OF ELEMENTARY INSTRUCTION

The beginnings of normal-school training. The training of would-be teachers for the work of instruction is an entirely modern proceeding. The first class definitely organized for imparting training to teachers, concerning which we have any record, was a small local training group of teachers of reading and the Catechism, conducted by Father Démia, at Lyons, France, in 1672. The first normal school to be established anywhere was that founded at Rheims, in northern France, in 1685, by Abbé de la Salle (p. 347). He had founded the Order of "The Brothers of the Christian Schools" the preceding year, to provide free religious instruction for children of the working classes in France (**R. 182**), and he conceived the new idea of creating a special school to train his prospective teachers for the teaching work of his Order. Shortly afterward he established two similar institutions in Paris. Each institution he called a "Seminary for Schoolmasters." In addition to imparting a general education of the type of the time, and a thorough grounding in religion, his student teachers were trained to teach in practice schools, under the direction of experienced teachers. This was an entirely new idea.

The beginnings elsewhere, as we have previously pointed out were made in German lands, Francke's *Seminarium Præceptorum*, established at Halle (p. 419), in 1697, coming next in point of time. In 1738 Johann Julius Hecker (1707–68), one of Francke's teachers (p. 562), established the first regular Seminary for Teachers in Prussia, and in 1748 he established a private *Lehrerseminar* in Berlin. In these two institutions he first showed the German people the possibilities of special training for teachers in the secondary school. In 1753 the Berlin institution was adopted as a Royal Teachers' Seminary (p. 563) by Frederick the Great. After this, and in part due to the enthusiastic support of the Berlin institution by the King, the teacher-training idea for secondary teachers began to find favor among the Germans. We accordingly find something like a dozen Teachers' Seminaries

had been founded in German lands before the close of the eighteenth century.[1] A normal school was established in Denmark, by royal decree, as early as 1789, and five additional schools when the law organizing public instruction in Denmark was enacted, in 1814. In France the beginnings of state action came with the action of the National Convention, which decreed the establishment of the "Superior Normal School for France," in 1794 (p. 517). This institution, though, was short lived, and the real beginnings of the French higher normal school awaited the reorganizing work of Napoleon, in 1808 (p. 595; **R. 283**).

The schools just mentioned represent the first institutions in the history of the world organized for the purpose of training teachers to teach. The teachers they trained, though, were intended primarily for the secondary schools, and the training was largely academic in character. Only in Silesia was any effort made, before the nineteenth century, to give training in special institutions to teachers intended for the vernacular schools. There Frederick the Great, in his "Regulations for the Catholic Schools of Silesia" (**R. 275, a** § 2) designated six cathedral and monastery schools as model schools, where teachers could "have the opportunity for learning all that is needed by a good teacher." In another place he defined this as "skill in singing and playing the organ sufficient to perform the services of the Church," and "the art of instructing the young in the German language" (**R. 275, a** § 1). So long as the instruction in the vernacular school consisted chiefly of reading and the Catechism, and of hearing pupils recite what they had memorized, there was of course but little need for any special training for the teachers. It was not until after Pestalozzi had done his work and made his contribution that there was anything worth mentioning to train teachers for.

Pestalozzi's contribution. The memorable work done by Pestalozzi in Switzerland, during his quarter-century (1800–25) of effort at Burgdorf and Yverdon, changed the whole face of the preparation of teachers problem. His work was so fundamental that it completely redirected the education of children. Taking

[1] The earliest Teachers' Seminaries in German lands were:

1750. Alfeld, in Hanover.	1777. Bamberg, in Bavaria.
1753. Wolfenbüttel, in Brunswick.	1778. Halberstadt, in Prussia.
1764. Glatz, in Prussia.	1779. Coburg, in Gotha.
1765. Breslau, in Prussia.	1780. Segeberg, in Holstein.
1768. Carlsruhe, in Baden.	1785. Dresden, in Saxony.
1771. Vienna, in Austria.	1794. Weissenfels, in Prussia.

the seed-thought of Rousseau that sense-impression was "the only true foundation of human knowledge" (R. 267), he enlarged this to the conception of the mental development of human beings as being organic, and proceeding according to law. His extension of this idea of Rousseau's led him to declare that education was an individual development, a drawing-out and not a pouring-in; that the basis of all education exists in the nature of man; and that the method of education is to be sought and constructed.[1] These were his great contributions. These ideas fitted in well with the rising tide of individualism which marked the late eighteenth and the early nineteenth centuries, and upon these contributions the modern secular elementary school has been built.

These ideas led Pestalozzi to emphasize sense perception and expression; to formulate the rule that in teaching we must proceed from the concrete to the abstract; and to construct a "faculty psychology" which conceived of education as "a harmonious development" of the different "faculties" of the mind. He also tried, unsuccessfully to be sure, to so organize the teaching process that eventually it could be so "mechanized" that there would be a regular A, B, C, for each type of instruction, which, once learned, would give perfection to a teacher. In his Report of 1800 (R. 267), which forms a very clear statement of his aims, he had said:

> I know what I am undertaking; but neither the difficulties in the way, nor my own limitations in skill and insight, shall hinder me from giving my mite for a purpose which Europe needs so much. . . . The most essential point from which I start is this: — Sense-impression of Nature is the only true foundation of human knowledge. All that follows is the result of this sense-impression, and the process of abstraction from it. . . .
>
> Then the problem I have to solve is this: — How to bring the elements of every art into harmony with the very nature of mind, by following the psychological mechanical laws by which mind rises from physical sense-impressions to clear ideas.

Largely out of these ideas and the new direction he gave to instruction the modern normal school for training teachers for the elementary schools arose.

Oral and objective teaching developed. Up to the time of

[1] "My views of the subject," said he, "came out of a personal striving after methods, the execution of which forced me actively and experimentally to seek, to gain, and to work out what was not there, and what I yet really knew not."

Pestalozzi, and for years after he had done his work, in many lands and places the instruction of children continued to be of the memorization of textbook matter and of the recitation type. The children learned what was down in the book, and recited the answers to the teacher. Many of the early textbooks were constructed on the plan of the older Catechism — that is, on a question and answer plan (R. 351 a). There was nothing for children to do but to memorize such textbook material, or for the teacher but to see that the pupils knew the answers to the questions. It was school-keeping, not teaching, that teachers were engaged in.

The form of instruction worked out by Pestalozzi, based on sense-perception, reasoning, and individual judgment, called for a complete change in classroom procedure. What Pestalozzi tried most of all to do was to get children to use their senses and their minds, to look carefully, to count, to observe forms, to get, by means of their five important senses, clear impressions and ideas as to objects and life in the world about them, and then to think over what they had seen and be able to answer his questions, because they had observed carefully and reasoned clearly. Pestalozzi thus clearly subordinated the printed book to the use of the child's senses, and the repetition of mere words to clear ideas about things. Pestalozzi thus became one of the first real teachers.

This was an entirely new process, and for the first time in history a real "technique of instruction" was now called for. Dependence on the words of the text could no longer be relied upon. The oral instruction of a class group, using real objects, called for teaching skill. The class must be kept naturally interested and under control; the essential elements to be taught must be kept clearly in the mind of the teacher; the teacher must raise the right kind of questions, in the right order, to carry the class thinking along to the right conclusions; and, since so much of this type of instruction was not down in books, it called for a much more extended knowledge of the subject on the part of the teacher than the old type of school-keeping had done. The teacher must now both know and be able to organize and direct. Class lessons must be thought out in advance, and teacher-preparation in itself meant a great change in teaching procedure. Emancipated from dependence on the words of a text, and able to stand before a class full of a subject and able to question freely, teachers became conscious of a new strength and a professional skill unknown in the

days of textbook reciting. Out of such teaching came oral language lessons, drill in speech usage, elementary science instruction, observational geography, mental arithmetic, music, and drawing, to add to the old instruction in the Catechism, reading, writing, and ciphering, and all these new subjects, taught according to Pestalozzian ideas as to purpose, called for an individual technique of instruction.

The normal school finds its place. These new ideas of Pestalozzi proved so important that during the first five or six decades

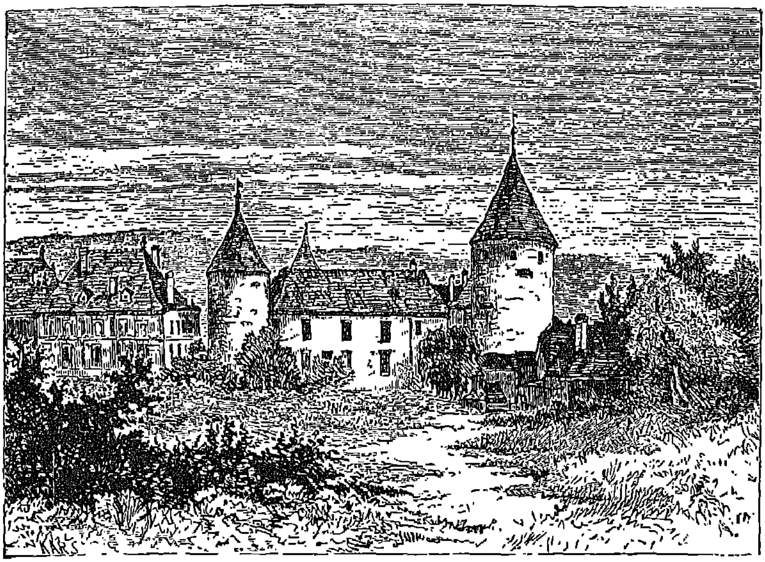

FIG. 224. THE FIRST MODERN NORMAL SCHOOL
The old castle at Yverdon, where Pestalozzi's Institute was conducted and his greatest success achieved.

of the nineteenth century the elementary school was made over. The new conception of the child as a slowly developing personality, demanding subject-matter and method suited to his stage of development, and the new conception of teaching as that of directing mental development instead of hearing recitations and "keeping school," now replaced the earlier knowledge-conception of school work. Where before the ability to organize and discipline a school had constituted the chief art of instruction, now the ability to teach scientifically took its place as the prime professional requisite. A "science and art" of teaching now arose

methodology soon became a great subject; the new subject of pedagogy began to take form and secure recognition; and psychology became the guiding science of the school.

As these changes took place, the normal school began to come into favor in the leading countries of Europe and in the United States, and in time has established itself everywhere as an important educational institution. Pestalozzi had himself conducted the first really modern teacher-training school, and his work was soon copied in a number of the Swiss cantons. Other cantons, on the contrary, for a time would have nothing to do with the new idea.

1. *The German States.* The first nation, though, to take up the teacher-training idea and establish it as an important part of its state school system was Prussia. Beginning in 1809 with the work of Zeller (p. 569), by 1840 there were thirty-eight Teachers' Seminaries, as the normal schools in German lands have been called, in Prussia alone. The idea was also quickly taken up by the other German States, and from the first decade of the nineteenth century on no nation has done more with the normal school, or used it, ends desired considered, to better advantage than have the Germans. One of the features of the Prussian schools which most impressed Professor Bache, when he visited the schools of the German States in 1838, was the excellence of the Seminaries for Teachers (**R. 344**), and these he described (**R. 345**) in some detail in his *Report.* Horace Mann, similarly, on his visit to Europe, in 1843, was impressed with the thoroughness of the training given prospective teachers in the Teachers' Seminaries of the German States (**R. 278**). University pedagogical seminars were also established early (c. 1810)[1] in the universities, for the training of secondary teachers, and this training was continued with increasing thoroughness up to 1914. Every teacher in the German States, elementary or secondary, before that date, was a carefully-trained teacher. This was a feature of the German state school systems of the pre-War period of which no other nation could boast.

2. *France.* After the German States, France probably comes next as the nation in which the normal school has been most used for training teachers. The Superior Normal School had been re-created in 1808 (**R. 283**), and after the downfall of Napoleon the creation of normal schools for elementary-school teachers was be-

[1] See footnote 1, page 573, for places and dates.

gun. Twelve had been established by 1830, and between 1830 and 1833 thirty additional schools for training these teachers were begun (**R.** 285). These rendered a service for France (**R.** 346) quite similar to that rendered by the Teachers' Seminaries in German lands. During the period of reaction, from 1848 to 1870, the normal school did not prosper in France, but since 1870 a normal school to train elementary teachers has been established for men and one for women in each of the eighty-seven departments into which France, for administrative purposes, has been divided. Satisfactory provision has also been made for the training of teachers for the secondary schools.

3. *The United States.* The United States has also been prominent, especially since about 1870, in the development of normal schools for the training of elementary teachers. The Lancastrian schools had trained monitors for their work, but the first teacher-training school in the United States to give training to individual teachers was opened privately,[1] in 1823, and the second in a similar manner,[2] in 1827. These were almost entirely academic institutions, being in the nature of tuition high schools, with a little practice teaching and some lectures on the "Art of Teaching" added in the last year of the course. In 1826 Governor Clinton recommended to the legislature of New York the establishment by the State of "a seminary for the education of teachers in the monitorial system of instruction." Nothing coming of this, in 1827 he recommended the creation of "a central school in each county for the education of teachers" (**R.** 349). That year (1827) the New York legislature appropriated money to aid the academies "to promote the education of teachers" — the first state aid in the United States for teacher-training.

The publication of an English edition of Cousin's *Report* (p. 597; **R.** 284) in New York, in 1835; Calvin E. Stowe's *Report on Elementary Education in Europe*,[3] in 1837; and Alexander D.

[1] By the Reverend Samuel R. Hall, who conducted the school as an adjunct to his work as a minister. The school accordingly traveled about, being held at Concord, Vermont, from 1823 to 1830; at Andover, Massachusetts, from 1830 to 1837; and at Plymouth, New Hampshire, from 1837 to 1840.

[2] By James Carter, at Lancaster, Massachusetts.

[3] In 1836, Calvin Stowe, a professor in the Lane Theological Seminary at Cincinnati, went to Europe to buy books for the library of the institution, and the legislature of Ohio commissioned him to examine and report upon the systems of elementary education found there. The result was his celebrated *Report on Elementary Education in Europe*, made to the legislature in 1837. In it chief attention was given to contrasting the schools of Würtemberg and Prussia with those found in Ohio. The report was ordered printed by the legislature of Ohio, and later by the legislatures of Pennsylvania, Massachusetts, Michigan, North Carolina, and Virginia, and did much to awaken American interest in advancing common school education.

Bache's *Report on Education in Europe* (**Rs.** 344, 345), in 1838, with their strong commendations of the German teacher-training system, awakened new interest in the United States, in the matter of teacher-training. Finally, in 1839, the legislature of Massachusetts duplicated a gift of $10,000, and placed the money in the hands of the newly created State Board of Education (p. 689) to be used "in qualifying teachers for the common schools of Massachusetts" (**R.** 350 **a**). After careful consideration it was decided to create special state institutions, after the German and French plans, in which to give the desired training, and the French term of Normal School was adopted and has since become general in the United States.

On July 3, 1839, the first state normal school in the United States opened in the town hall at Lexington, Massachusetts, with

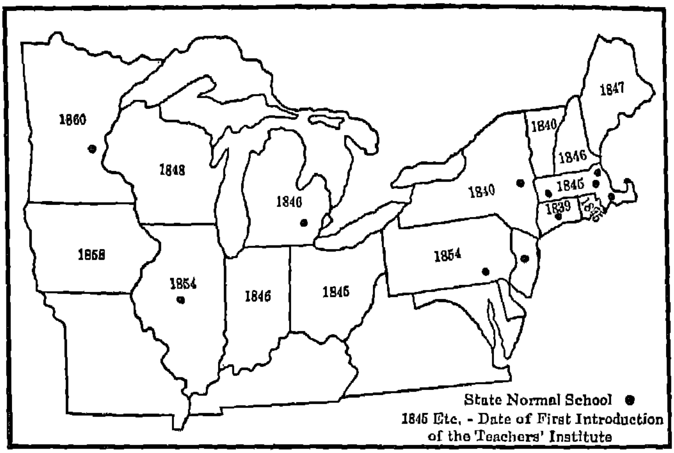

FIG. 225. TEACHER-TRAINING IN THE UNITED STATES BY 1860
A few private training-schools also existed, though less than half a dozen in all.

one teacher and three students. Later that same year a second state normal school was opened at Barre, and early the next year a third at Bridgewater, both in Massachusetts. For these the State Board of Education adopted a statement as to entrance requirements and a course of instruction (**R.** 350 **b**) which shows well the academic character of these early teaching institutions. Their success was largely due to the enthusiastic support given the new idea by Horace Mann. In an address at the dedication of the first building erected in America for normal-school purposes,

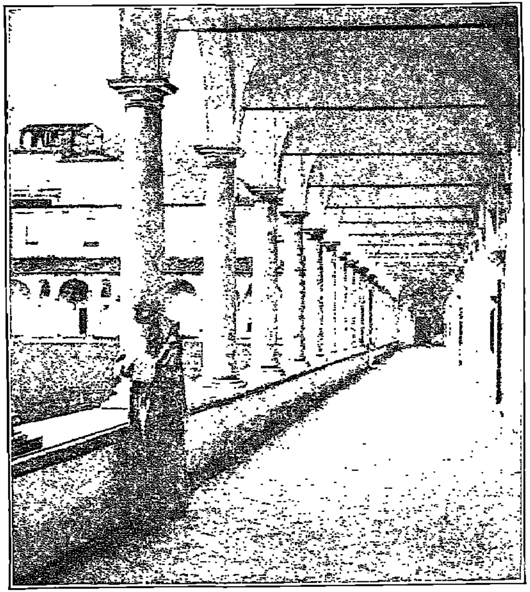

PLATE 1. THE CLOISTERS OF A MONASTERY, NEAR FLORENCE, ITALY

This monastery, La Certosa, located on a high hill and resembling a mediæval fortress as one approaches it, was founded in 1341 by a Florentine merchant. The picture shows the cloisters and interior court. Eighteen cells, two churches, and other rooms are entered from the cloisters. A few monks were still in residence there as late as 1905, one of whom is seen, but the monastery was then in process of being closed by the Italian Government.

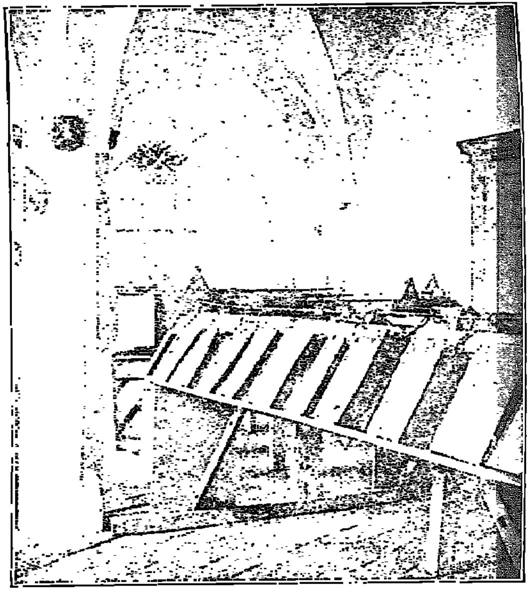

PLATE 2. THE LIBRARY OF THE CHURCH OF SAINT WALLBERG, AT ZUTPHEN, HOLLAND

"Ponderous folios for Scholastics made"

This shows the large oak-bound and chained books, as well as a common type of bookrack used in churches and monasteries during the earlier period.

Plate 3. Saint Thomas Aquinas in the School of Albertus Magnus

(After the painting by H. Lerolle)

PLATE 4. A LECTURE ON THEOLOGY BY ALBERTUS MAGNUS

An illuminated picture in a manuscript of 1310, now in the royal collection of copper engravings, at Berlin. The master in his chair is here shown "reading" to his students.

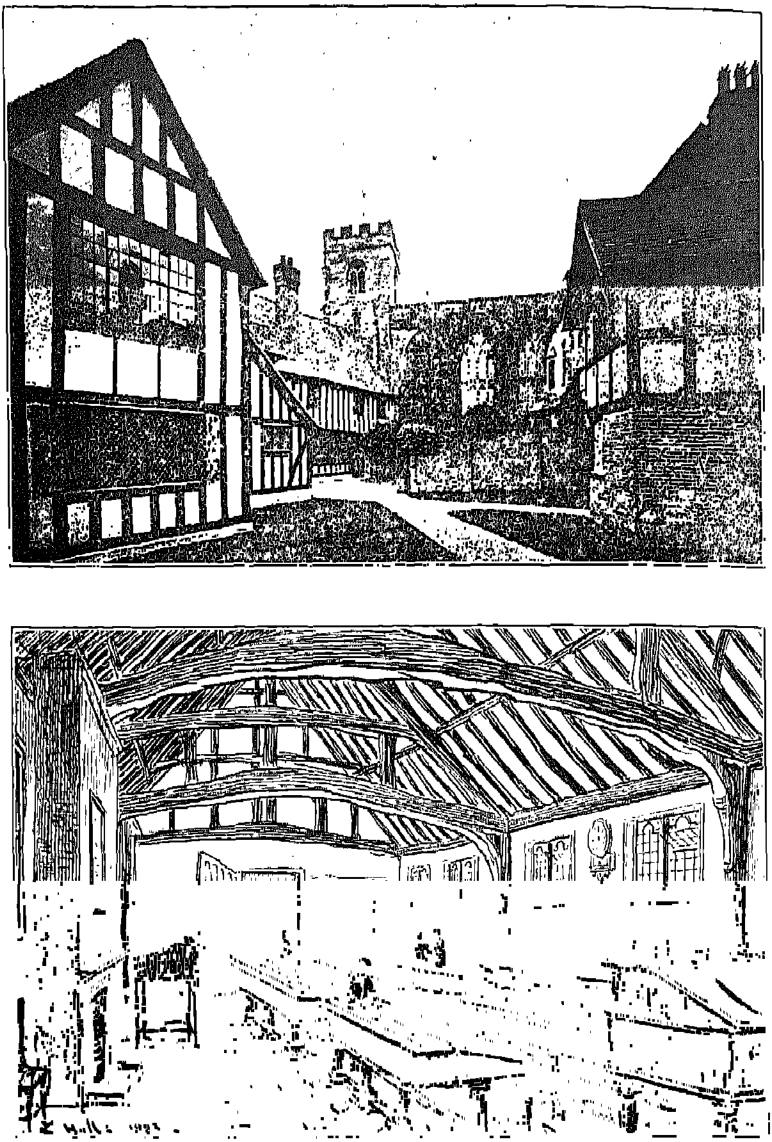

PLATE 5. STRATFORD-ON-AVON GRAMMAR SCHOOL

Established by the Holy Cross Guild of Stratford-on-Avon, at the beginning of the fifteenth century. The Grammar School was built in 1426, of wood, and at a cost of £10, 5*s.*, 3½*d.* The school was held on the upper floor, the lower being used as a guild-hall. Here Shakespeare went to school, and saw companies of strolling players in the hall below. The lower picture shows the grammar-school room after its "restoration," in 1892.

Martin Luther (1483–1546)
Professor of Theology at Wittenberg

Philipp Melanchthon (1497–1560)
Professor of Greek at Wittenberg

Plate 6. Educational Leaders in Protestant Germany

(From a painting dated 1543, by Lucas Cranach, a German contemporary of both men, and now in the Uffizi Gallery, at Florence)

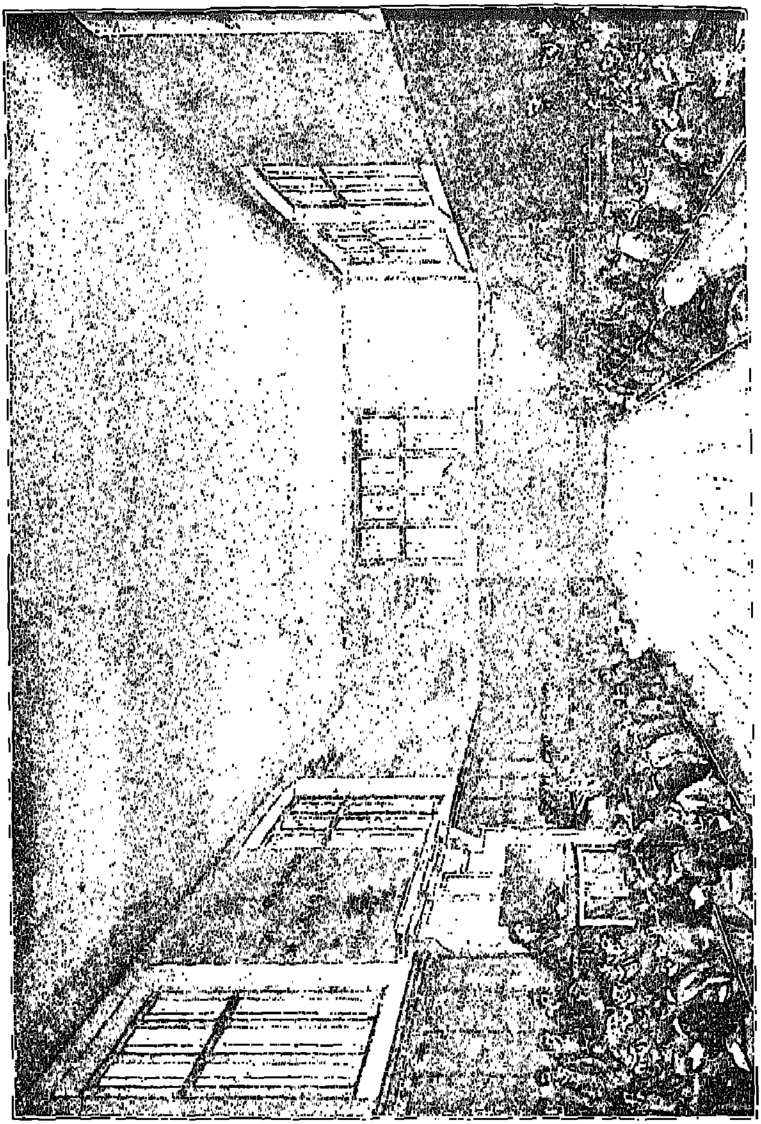

PLATE 7. THE FREE SCHOOL AT HARROW

One of the "Great Public" Grammar Schools of England. Founded in 1571, in the reign of Elizabeth; building finished in 1593. The names of famous "old boys" are seen lettered on the wall at the back. Pupils are seen seated in "forms," reciting to the masters. (From a picture published by Ackermann, in his illustrated *History of the Colleges of Winchester, Eton, Westminster*, etc. London, 1816.)

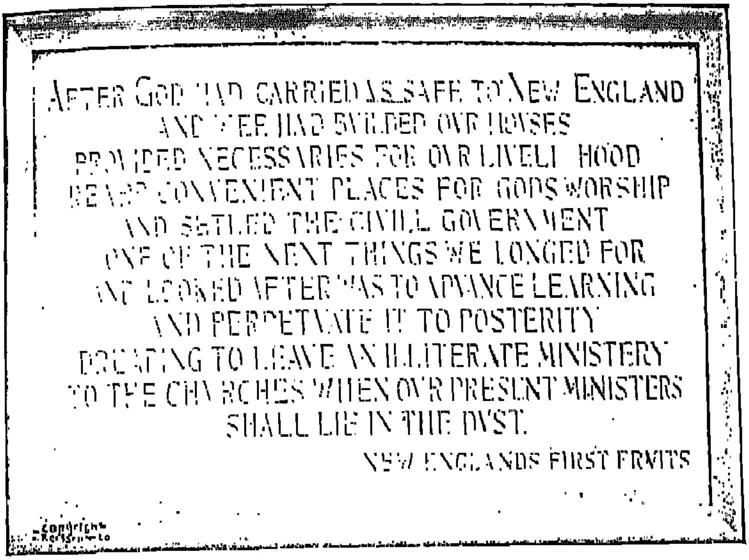

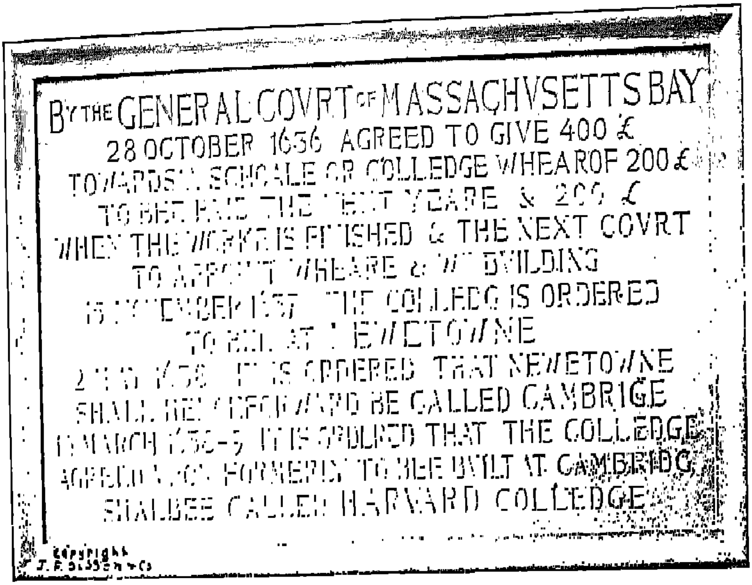

PLATE 9. TWO TABLETS ON THE WEST GATEWAY AT HARVARD UNIVERSITY

Reproducing colonial records relating to the founding of Harvard College

PLATE 10. JOHN AMOS COMENIUS (1592–1671)

The Moravian Bishop at the age of fifty. (After an engraving by Glover, printed as a frontispiece to Hartlib's *A Reformation of Schooles*. London, 1642.)

Plate 11. Pestalozzi Monument at Yverdon

A picture of this monument occupies a prominent place in every schoolroom in Switzerland.

PLATE 12. FELLENBERG'S INSTITUTE AT HOFWYL

The first Agricultural and Mechanical College. This school contained the germ-idea of all our agricultural education.

Johann Gottlieb Fichte (1762–1814)
Philosopher, university teacher

Wilhelm von Humboldt (1767–1835)
Philosopher, scholar, statesman

Plate 13. Two Leaders in the Regeneration of Prussia

PLATE 14. FRANÇOIS PIERRE GUILLAUME GUIZOT (1787–1874)
Creator of the French primary school system

Plate 15. John Pounds's Ragged School at Portsmouth

Plate 16. An English Village Voluntary School
(Reproduced from an early nineteenth-century engraving, through the courtesy of William G. Bruce)

Horace Mann (1796–1859)
(From a painting at the Westfield, Massachusetts, Normal School)

Henry Barnard (1811–1900)

Plate 17. Two Leaders in the Educational Awakening in the United States

Johann Friedrich Herbart (1776–1841)
Organizer of the Psychology of Instruction

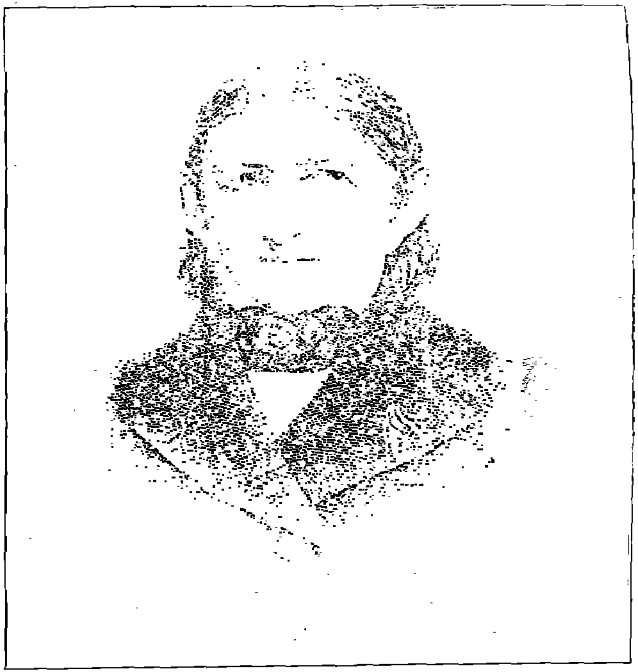

Friedrich Wilhelm Froebel (1782–1852)
Founder of the Kindergarten

Plate 18. Two Leaders in the Reorganization of Educational Theory

in 1846, he expressed his deep belief as to the fundamental importance of such institutions (**R. 350 c**). By 1860 eleven state normal schools had been established in eight of the States of the American Union, and six private schools were also rendering similar services. Closely related was the Teachers' Institute, first definitely organized by Henry Barnard in Connecticut, in 1839, to offer four- to six-weeks summer courses for teachers in service, and these had been organized in fifteen of the American States by 1860. Since 1870 the establishment of state normal schools has been rapid in the United States, two hundred having been established by 1910, and many since. The United States, though, is as yet far from having a trained body of teachers for its elementary schools. For the high schools, it is only since about 1890 that the professional training of teachers for such service has really been begun.

4. *England.* In England the beginnings of teacher-training came with the introduction of monitorial instruction, both the Bell and the Lancaster Societies (p. 625) finding it necessary to train pupils for positions as monitors, and to designate certain schools as model and training schools. In 1833, it will be remembered (p. 638), Parliament made its first grant of money in aid of education. Up to 1840 this was distributed through the two National Societies, and in 1839 a portion of this aid was definitely set aside to enable these Societies to establish model schools (**R. 347**). From this beginning, the model training-schools for the different religious Societies were developed. In these model schools prospective teachers were educated, being trained in religious instruction and in the art of teaching. In 1836, with the founding of the "Home and Colonial Infant Society," a Pestalozzian Training College was founded by it.

In a further effort to secure trained teachers the government, in 1846, adopted a plan then in use in Holland, and instituted what became known as the "pupil-teacher system" (**R. 348**). This was an improvement on the waning monitorial training system previously in use. Under this, a favorite old English method, used somewhat for the same purpose a century earlier (**R. 243**), was adapted to meet the new need. Under it promising pupils were apprenticed to a head teacher for five years (usually from thirteen to eighteen), he agreeing to give them instruction in both secondary-school subjects and in the art of teaching in return for their help in the schoolroom. Beginning in 1846, there were, by

1848, 200 pupil teachers; by 1861, 13,871; and by 1870, 14,612. This system formed the great dependence of England before the days of national education. In 1874 the pupil-teacher-center system was begun, and between 1878 and 1896 the age for entering as a pupil-teacher was raised from thirteen to sixteen, and the years of apprenticeship reduced from five to two. In most cases now the academic preparation continues to seventeen or eighteen, and is followed by one year of practice teaching in an elementary school, under supervision. After that the teacher may, or may not, enter what is there known as a Training-College.[1] So far the training of teachers has not made such headway in England and Wales as has been the case in the German States, France, the United States, or Scotland, but important progress may be expected in the near future as an outcome of new educational impulses arising as a result of the World War.

Spread of the normal-school idea. The movement for the creation of normal schools to train teachers for the elementary schools has in time spread to many nations. As nation after nation has awakened to the desirability of establishing a system of modern-type state schools, a normal school to train leaders has often been among the first of the institutions created. The normal school, in consequence, is found to-day in all the continental European States; in all the English self-governing dominions; in nearly all the South American States; and in China,[2] Japan, Siam, the Philippines, Cuba, Algiers, India, and other less important nations. In all these there is an attempt, often reaching as yet to but a small percentage of the teachers, to extend to them some of that training in the theory and art of instruction which has for long been so important a feature of the education of the elementary teacher in the German States, France, and the United States. Since about 1890 other nations have also begun to provide, as the German States and France have done for so

[1] These are higher institutions which offer two, three, or four years of academic and some professional education, and may be found in connection with a university; may be maintained by city or county school authorities; or may be voluntary institutions. In 1910–11 there were eighty-three such institutions in England and Wales.

[2] In China, for example, as soon as the new general system of education had been decided upon, normal schools of three types — higher normal schools, lower normal schools, and teacher-training schools — were created, and missionary teachers, foreign teachers, and students returning from abroad were used to staff these new schools. By 1910 as many as thirty higher normal schools, two hundred and three lower normal schools, and a hundred and eighty-two training classes had been established in China under government auspices. (Ping Wen Kuo, *The Chinese System of Public Education*, p. 156.)

long, some form of professional training for the teachers intended for their secondary schools [1] as well.

Psychology becomes the master science. Everywhere the establishment of normal schools has meant the acceptance of the newer conceptions as to child development and the nature of the educational process. These are that the child is a slowly developing personality, needing careful study, and demanding subject-matter and method suited to his different stages of development. The new conception of teaching as that of directing and guiding the education of a child, instead of hearing recitations and "keeping school," in time replaced the earlier knowledge-conception of school work. Psychology accordingly became the guiding science of the school, and the imparting to prospective teachers proper ideas as to psychological procedure, and the proper methodology of instruction in each of the different elementary-school subjects, became the great work of the normal school. Teachers thus trained carried into the schools a new conception as to the nature of childhood; a new and a minute methodology of instruction; and a new enthusiasm for teaching; — all of which were important additions to school work.

A new methodology was soon worked out for all the subjects of instruction, both old and new. The centuries-old alphabet method of teaching reading was superseded by the word and sound methods; the new oral language instruction was raised to a position of first importance in developing pupil-thinking; spelling, word-analysis, and sentence-analysis were given much emphasis in the work of the school; the Pestalozzian mental arithmetic came as an important addition to the old ciphering of sums; the old writing from copies was changed into a drill subject, requiring careful teaching for its mastery; the "back to nature" ideas of Rousseau and Pestalozzi proved specially fruitful in the new study of geography, which called for observation out of doors, the study of type forms, and the substitution of the physical and human aspects of geography for the older political and statistical; object lessons on natural objects, and later science and nature study, were used to introduce children to a knowledge of nature and to train them in thinking and observation; while the new subjects of music and drawing came in, each with an elaborate technique of instruction.

[1] The beginnings in the United States date from about 1890, and in England even later. In France, on the other hand, the training of teachers for the secondary schools goes back to the days of Napoleon.

By 1875 the normal school in all lands was finding plenty to do, and teaching, by the new methods and according to the new psychological procedure, seemed to many one of the most wonderful and most important occupations in the world. How great a change in the scope, as well as in the nature of elementary-school

1775	1825	1850	1875
READING Spelling Writing *Catechism* BIBLE Arithmetic	READING * *Declamation* SPELLING * *Writing* *Good Behavior* *Manners & Morals* ARITHMETIC *	READING DECLAMATION SPELLING WRITING Manners Conduct MENTAL ARITH. * CIPHERING	READING *Literary Selections* SPELLING PENMANSHIP * Conduct PRIMARY ARITH. * ADVANCED ARITH.
	Bookkeeping GRAMMAR Geography	Bookkeeping Elem. Language GRAMMAR *Geography* History U.S.	...... *Oral Language* * GRAMMAR Home Geography * TEXT GEOGRAPHY U.S. HISTORY *Constitution*
	Sewing and Knitting	Object Lessons	Object Lessons * Elementary Science * Drawing * Music * Physical Exercises ......

CAPITALS = Most important subjects. *Italics* = Subjects of medium importance.
Roman = Least important subjects. * = New methods of teaching now employed.

FIG. 226. EVOLUTION OF THE ELEMENTARY-SCHOOL CURRICULUM AND OF METHODS OF TEACHING

instruction had been effected in a century, the above diagram of American elementary-school development will reveal. History and literature, it will be noticed, had also come in as additional new subjects, but these were relatively unimportant in either the elementary school or the normal school until after the coming of Herbartian ideas, to which we shall refer a little further on.

Accompanying the organization of professional instruction for teachers, another important change in the nature of the elementary school was effected.

The grading of schoolroom instruction. For some time after elementary schools began it was common to teach all the children of the different ages together in one room, or at most in two rooms. In the latter case the subjects of instruction were divided

between the teachers, rather than the children.[1] Many of the pictures of early elementary schools show such mixed-type schools. In these the children were advanced individually and by subjects, as their progress warranted,[2] until they had progressed as far as the instruction went or the teacher could teach (R. 352). From this point on the division of the elementary school into classes and a graded organization has proceeded by certain rather well-defined steps.

The first step (Rs. 353, 354) was the division of the school into two schools, one more advanced than the other, such as lower and higher, or primary and grammar. Another division was introduced when the Infant School was added, beneath. The next step was the division of each school into classes. This began by the employment of assistant teachers, in England and America known as "ushers," to help the "master," and the provision of small recitation rooms, off the main large schoolroom, to which the usher could take his class to hear recitations. The third and final step came with the erection of a new type of school building, with smaller and individual classrooms, or the subdivision of the larger schoolrooms. It was then possible to assign a teacher to each classroom, sort and grade the pupils by ages and advancement, outline the instruction by years, and the modern graded elementary school was at hand.

The transition to the graded elementary school came easily and naturally. For half a century the course of instruction in the evolving elementary state school had been in process of expansion. Pestalozzi paved the way for its creation by changing the purpose and direction, and greatly enlarging (p. 543) the field of

[1] A common division was between the teacher who taught reading, religion, and spelling, and the teacher who taught writing and arithmetic (R. 307). Writing being considered a difficult art, this was taught by a separate teacher, who often included the ability to teach arithmetic also among his accomplishments.

[2] A good example of this may be found in the monitorial schools. The New York Free School Society (p. 660), for example, reported in its *Fourteenth Annual Report* (1819) that the children in its schools had pursued studies as follows:

297 children have been taught to form letters in sand.
615 have been advanced from letters in sand, to monosyllabic reading on boards.
686 from reading on boards, to Murray's First Book.
335 from Murray's First Book, to writing on slates.
218 from writing on slates, to writing on paper.
341 to reading in the Bible.
277 to addition and subtraction.
153 to multiplication and division.
60 to the compound of the four first rules.
20 to reduction.
24 to the rule of three.

instruction of the vernacular school. After him other new subjects of study were added (see diagram, Figure 226), new and better and longer textbooks were prepared (**R.** 351), and the school

FIG. 227. AN "USHER" AND HIS CLASS

The usher, or assistant teacher, is here shown with a class in one of the small recitation-rooms, off the large schoolroom.

term was gradually lengthened. The way in time became clear, earliest in the German lands and in a few American cities, but by about 1850 in most leading nations, for that simple reorganization of school work which would divide the school into a number of classes, or forms, or grades, and give one to each teacher to handle. When this point had been reached, which came about 1850 to 1860 in most nations, but earlier in a few, the modern type of town or city graded elementary school was at hand. Teaching had by this time become an organized and a psychological process; graded courses of study began to appear; professional school superintendents began to be given the direction and supervision of instruction; and the modern science of school organization and administration began to take shape. From this point on the further development of the graded elementary public school has come through the addition of new materials of instruction, and by changing the direction of the school to adapt it better to meeting the new needs of society brought about by the scientific, industrial, social, and political revolutions which we, in previous

chapters, have described. A few of the more important of these additions and changes in direction we shall now briefly describe.

II. NEW IDEAS FROM HERBARTIAN SOURCES

The work of Herbart. Taking up the problem as Pestalozzi left it, a German by the name of Johann Friedrich Herbart (1776–1841) carried it forward by organizing a truer psychology for the whole educational process, by erecting a new social aim for instruction, by formulating new steps in method, and by showing the place and the importance of properly organized instruction in history and literature in the education of the child. Though the two men were entirely different in type, and worked along entirely different lines, the connection between Herbart and Pestalozzi was, nevertheless, close.[1]

The two men, however, approached the educational problem from entirely different angles. Pestalozzi gave nearly all his long life to teaching and human service, while Herbart taught only as a traveling private tutor for three years, and later a class of twenty children in his university practice school. Pestalozzi was a social reformer, a visionary, and an impractical enthusiast, but was possessed of a remarkable intuitive insight into child nature. Herbart, on the other hand, was a well-trained scholarly thinker, who spent the most of his life in the peaceful occupation of a professor of philosophy in a German university.[2] It was while at Königsberg, between 1810 and 1832, and as an appendix to his work as professor of philosophy, that he organized a small practice school, conducted a Pedagogical Seminar, and worked out his educational theory and method. His work was a careful, scholarly attempt at the organization of education as a science, carried out amid the peace and quiet which a university atmosphere almost alone affords. He addressed himself chiefly to three things: (1) the aim, (2) the content, and (3) the method of instruction.

The aim and the content of education. Locke had set up as

[1] Herbart had visited Pestalozzi at Burgdorf, in 1799, just after graduating from Jena and while acting as a tutor for three Swiss boys, and had written a very sympathetic description of his school and his theory of instruction. Herbart was one of the first of the Germans to understand and appreciate "the genial and noble Pestalozzi."

[2] The son of a well-educated public official, Herbart was himself educated at the *Gymnasium* of Oldenburg and the University of Jena. After spending three years as a tutor, he became, at the age of twenty-six, an under teacher at the University of Göttingen. At the age of thirty-three he was called to succeed Kant as professor of philosophy at Königsberg, and from the age of fifty-seven to his death at sixty-five he was again a professor at Göttingen.

the aim of education the ideal of a physically sound gentleman. Rousseau had declared his aim to be to prepare his boy for life by developing naturally his inborn capacities. Pestalozzi had sought to regenerate society by means of education, and to prepare children for society by a "harmonious training" of their "faculties." Herbart rejected alike the conventional-social education of Locke, the natural and unsocial education of Rousseau, and the "faculty-psychology" conception of education of Pestalozzi. Instead he conceived of the mind as a unity, instead of being divided into "faculties," and the aim of education as broadly social rather than personal. The purpose of education, he said, was to prepare men to live properly in organized society, and hence the chief aim in education was not conventional fitness, natural development, mere knowledge, nor personal mental power, but personal character and social morality. This being the case, the educator should analyze the interests and occupations and social responsibilities of men as they are grouped in organized society, and, from such analyses, deduce the means and the method of instruction. Man's interests, he said, come from two main sources — his contact with the things in his environment (real things, sense-impressions), and from his relations with human beings (social intercourse). His social responsibilities and duties are determined by the nature of the social organization of which he forms a part.

Pestalozzi had provided fairly well for the first group of contacts, through his instruction in objects, home geography, numbers, and geometric form. For the second group of contacts Pestalozzi had developed only oral language, and to this Herbart now added the two important studies of literature and history, and history with the emphasis on the social rather than the political side. Two new elementary-school subjects were thus developed, each important in revealing to man his place in the social whole. History in particular Herbart conceived to be a study of the first importance for revealing proper human relationships, and leading men to social and national "good-will."

The chief purpose of education Herbart held to be to develop personal character and to prepare for social usefulness (**R. 355**). These virtues, he held, proceeded from enough of the right kind of knowledge, properly interpreted to the pupil so that clear ideas as to relationships might be formed. To impart this knowledge interest must be awakened, and to arouse interest in the many kinds

of knowledge needed, a "many-sided" development must take place. From full knowledge, and with proper instruction by the teacher, clear ideas or concepts might be formed, and clear ideas ought to lead to right action, and right action to personal character — the aim of all instruction. Herbart was the first writer on education to place the great emphasis on proper instruction, and to exalt teaching and proper teaching-procedure instead of mere knowledge or intellectual discipline. He thus conceived of the educational process as a science in itself, having a definite content and method, and worthy of special study by those who desire to teach.

Herbartian method. With these ideas as to the aim and content of instruction, Herbart worked out a theory of the instructional process and a method of instruction (**R.** 356). Interest he held to be of first importance as a prerequisite to good instruction. If given spontaneously, well and good; but, if necessary, forced interest must be resorted to. Skill in instruction is in part to be determined by the ability of the teacher to secure interest without resorting to force on the one hand or sugar-coating of the subject on the other. Taking Pestalozzi's idea that the purpose of the teacher was to give pupils new experiences through contacts with real things, without assuming that the pupils already had such, Herbart elaborated the process by which new knowledge is assimilated in terms of what one already knows, and from his elaboration of this principle the doctrine of apperception — that is, the apperceiving or comprehending of new knowledge in terms of the old — has been fixed as an important principle in educational psychology. Good instruction, then, involves first putting the child into a proper frame of mind to apperceive the new knowledge, and hence this becomes a corner-stone of all good teaching method.

Herbart did not always rely on such methods, holding that the "committing to memory" of certain necessary facts often was necessary, but he held that the mere memorizing of isolated facts, which had characterized school instruction for ages, had little value for either educational or moral ends. The teaching of mere facts often was very necessary, but such instruction called for a methodical organization of the facts by the teacher, so as to make their learning contribute to some definite purpose. This called for a purpose in instruction; the organization of the facts necessary to be taught so as to select the most useful ones: the connec-

tion of these so as to establish the principle which was the purpose of the instruction; and training in systematic thinking by applying the principle to new problems of the type being studied. The carrying-out of such ideas meant the careful organization of the teaching process and teaching method, to secure certain predetermined ends in child development, instead of mere miscellaneous memorizing and school-keeping.

The Herbartian movement in Germany. Herbart died in 1841, without having awakened any general interest in his ideas, and they remained virtually unnoticed until 1865. In that year a professor at Leipzig, Tuiskon Ziller (1817–1883), published a book setting forth Herbart's idea of instruction as a moral force. This attracted much attention, and led to the formation (1868) of a scientific society for the study of Herbart's ideas. Ziller and his followers now elaborated Herbart's ideas, advanced the theory of culture-epochs in child development, the theory of concentration in studies, and elaborated the four steps in the process of instruction, as described by Herbart, into the five formal steps of the modern Herbartian school.

In 1874 a pedagogical seminary and practice school was organized at the University of Jena, and in 1885 this came under the direction of Professor William Rein, a pupil of Ziller's, who developed the practice school according to the ideas of Ziller. A detailed course of study for this school, filling two large volumes, was worked out, and the practice lessons given were thoroughly planned beforehand and the methods employed were subjected to a searching analysis after the lesson had been given.

Herbartian ideas in the United States. For a time, under the inspiration of Ziller and Rein, Jena became an educational center to which students went from many lands. From the work at Jena Herbartian ideas have spread which have modified elementary educational procedure generally. In particular did the work at Jena make a deep impression in the United States. Between 1885 and 1890 a number of Americans studied at Jena and, returning, brought back to the United States this Ziller-Rein-Jena brand of Herbartian ideas and practices.[1] From the first the new ideas met with enthusiastic approval.

[1] Charles De Garmo's *Essentials of Method*, published in 1889, marked the beginning of the introduction of these ideas into this country. In 1892 Charles A. McMurry published his *General Method*, and in 1897, with his brother, Frank, published the *Method in the Recitation*. These three books probably have done more to popularize Herbartian ideas and introduce them into the normal schools and colleges of the United States than all other influences combined. Another important

New methods of instruction in history and literature, and a new psychology, were now added to the normal-school professional instruction. Though this psychology has since been outgrown (R. 357), it has been very useful in shaping pedagogical thought. New courses of study for the training-schools were now worked out in which the elementary-school subjects were divided into drill subjects, content subjects, and motor-activity subjects.[1] Apperception, interest, correlation, social purpose, moral education, citizenship training, and recitation methods became new terms to conjure with. From the normal schools these ideas spread rapidly to the better city school systems of the time, and soon found their way into courses of study everywhere. Practice schools and the model lessons in dozens of normal schools were remodeled after the pattern of those at Jena, and for a decade Herbartian ideas and the new child study vied with one another for the place of first importance in educational thinking. The Herbartian wave of the nineties resembled the Pestalozzian enthusiasm of the sixties. Each for a time furnished the new ideas in education, each introduced elements of importance into the elementary-school instruction, each deeply influenced the training of teachers in normal schools by giving a new turn to the instruction there, and each gradually settled down into its proper place in educational practice and history.

The Herbartian contribution. To the Herbartians we are indebted in particular for important new conceptions as to the teaching of history and literature, which have modified all our subsequent procedure; for the introduction of history teaching in some form into all the elementary-school grades; for the emphasis on a new social point of view in the teaching of history and geography; for the new emphasis on the moral aim in instruction; for a new and a truer educational psychology; and for a better organization of the technique of classroom instruction. In particular

influence was the "National Herbart Society," founded in 1892 by students returning from Jena, in imitation of the similar German society.

[1] The studies which have come to characterize the modern elementary school may now be classified under the following headings:

Drill subjects	*Content subjects*	*Expression subjects*
Reading	Literature	Kindergarten Work
Writing	Geography	Music
Spelling	History	Manual Arts
Language	Civic Studies	Domestic Arts
Arithmetic	Manners and Conduct	Plays and Games
	Nature Study	School Gardening
	Agriculture	Vocational Subjects

Herbart gave emphasis to that part of educational development which comes from without — environment acting upon the child — as contrasted with the emphasis Pestalozzi had placed on mental development from within and according to organic law. With the introduction of normal child activities, which came from another source about this same time, the elementary-school curriculum as we now have it was practically complete, and the elementary school of 1850 was completely made over to form the elementary school of the beginning of the twentieth century.

III. THE KINDERGARTEN, PLAY, AND MANUAL ACTIVITIES

To another German, Friedrich Froebel (1782–1852), we are indebted, directly or indirectly, for three other additions to elementary education — the kindergarten, the play idea, and handwork activities.

Origin of the kindergarten. Of German parentage, the son of a rural clergyman, early estranged from his parents, retiring and introspective by nature, having led a most unhappy childhood, and apprenticed to a forester without his wishes being consulted, at twenty-three Froebel decided to become a schoolteacher and visited Pestalozzi in Switzerland. Two years later he became the tutor of three boys, and then spent the years 1808–10 as a student and teacher in Pestalozzi's Institute at Yverdon. During his years there Froebel was deeply impressed with the great value of music and play in the education of children, and of all that he carried away from Pestalozzi's institution these ideas were most persistent. After serving in a variety of occupations — student, soldier against Napoleon, and curator in a museum of mineralogy — he finally opened a little private school, in 1816, which he conducted for a decade along Pestalozzian lines. In this the play idea, music, and the self-activity of the pupils were uppermost. The school was a failure, financially, but while conducting it Froebel thought out and published (1826) his most important pedagogical work — *The Education of Man*.

Gradually Froebel became convinced that the most needed reform in education concerned the early years of childhood. His own youth had been most unhappy, and to this phase of education he now addressed himself. After a period as a teacher in Switzerland he returned to Germany and opened a school for little children in which plays, games, songs, and occupations involving self-activity were the dominating characteristics, and in 1840 he hit

upon the name *Kindergarten* for it. In 1843 his *Mutter- und Kose-Lieder*, a book of fifty songs and games, was published. This has been translated into almost all languages.

Spread of the kindergarten idea. After a series of unsuccessful efforts to bring his new idea to the attention of educators, Froebel, himself rather a feminine type, became discouraged and resolved to address himself henceforth to women, as they seemed much more capable of understanding him, and to the training of teachers in the new ideas. Froebel was fortunate in securing as one of his most ardent disciples, just before his death, the Baroness Bertha von Marenholtz Bülow-Wendhausen (1810–93), who did more than any other person to make his work known. Meeting, in 1849, the man mentioned to her as "an old fool," she understood him, and spent the remainder of her life in bringing to the attention of the world the work of this unworldly man who did not know how to make it known for himself. In 1851 the Prussian Government, fearing some revolutionary designs in the new idea, and acting in a manner thoroughly characteristic of the political reaction which by that time had taken hold of all German official life, forbade kindergartens in Prussia. The Baroness then went to London and lectured there on Froebel's ideas, organizing kindergartens in the English "ragged schools." Here, by contrast, she met with a cordial reception. She later expounded Froebelian ideas in Paris, Italy, Switzerland, Holland, Belgium, and (after 1860, when the prohibition was removed) in Germany. In 1870 she founded a kindergarten training-college in Dresden. Many of her writings have been translated into English, and published in the United States.

Considering the importance of this work, and the time which has since elapsed, the kindergarten idea has made relatively small progress on the continent of Europe. Its spirit does not harmonize with autocratic government. In Germany and the old Austro-Hungary it had made but little progress up to 1914. Its greatest progress in Europe, perhaps, has been in democratic Switzerland.[1] In England and France, the two great leaders in democratic government, the Infant-School development, which came earlier, has prevented any marked growth of the kinder-

[1] Next, perhaps, would come Italy, which is strongly democratic in spirit. In the cities of Holland one finds many privately supported kindergartens, but the State has not made them a part of the school system. In Norway and Sweden the kindergarten practically does not exist. The kindergarten will always do best among self-governing peoples, and seldom meets with favor from autocratic power.

garten. In England, though, the Infant School has recently been entirely transformed by the introduction into it of the kindergarten spirit.[1] In France, infant education has taken a somewhat different direction.[2]

In the United States the kindergarten idea has met with a most cordial reception. In no country in the world has the spirit of the kindergarten been so caught and applied to school work, and probably nowhere has the original kindergarten idea been so expanded and improved.[3] The first kindergarten in the United States was a German kindergarten, established at Watertown, Wisconsin, in 1855, by Mrs. Carl Schurz, a pupil of Froebel. During the next fifteen years some ten other kindergartens were organized in German-speaking communities. The first English-speaking kindergarten was opened privately in Boston, in 1860, by Miss Elizabeth Peabody. In 1868 a private training-college for kindergartners was opened in Boston, largely through Miss Peabody's influence, by Madame Matilde Kriege and her daughter, who had recently arrived from Germany. In 1872 Miss Marie Boelte opened a similar teacher-training school in New York City, and in 1873 her pupil, Miss Susan Blow, accepted the invitation of Superintendent William T. Harris, of St. Louis, to go there and open the first public-school kindergarten in the United States.[4]

[1] "In the best English Infant Schools a profound revolution has taken place in recent years. Formal lessons in the 3 Rs have disappeared, and the whole of the training of the little ones has been based on the principles of the kindergarten as enunciated by Froebel. Much of the old routine still remains; nevertheless there is no part of the English educational system so brimful of real promise as the work that is now being done in the best Infant Schools." (Hughes, R. E., *The Making of Citizens* (1902), p. 40.)

[2] In France, the Infant School or kindergarten is known as the Maternal School. Pupils are received at two years of age, and carried along until six. In the lower division the school is largely in the nature of a day nursery, but in the upper division many of the features of the kindergarten are found.

[3] Since Froebel's day we have learned much about children that was then unknown, especially as to the muscular and nervous organization and development of children, and with this new knowledge the tendency has been to enlarge the "gifts" and change their nature, to introduce new "occupations," elaborate the kindergarten program of daily exercises, and to give the kindergarten more of an out-of-door character. Especially has the work of Dewey (p. 780) and the child-study specialists been important in modifying kindergarten procedure.

[4] By 1880 some 300 kindergartens and 10 kindergarten training-schools, mostly private undertakings, had been opened in the cities of thirty of the States of the Union. By 1890 philanthropic kindergarten associations to provide and support kindergartens had been organized in most of the larger cities, and after that date cities rapidly began to adopt the kindergarten as a part of the public-school system, and thus add, at the bottom, one more rung to the American educational ladder. To-day there are approximately 9000 public and 1500 private kindergartens in the cities of the United States, and training in kindergarten principles and practices is now given by many of the state normal schools.

To-day the kindergarten is found in some form in nearly all countries in the world, having been carried to all continents by missionaries, educational enthusiasts, and interested governments.[1] Japan early adopted the idea, and China is now beginning to do so.

The kindergarten idea. The dominant idea in the kindergarten is natural but directed self-activity, focused upon educational, social, and moral ends. Froebel believed in the continuity of a child's life from infancy onward, and that self-activity, determined by the child's interests and desires and intelligently directed, was essential to the unfolding of the child's inborn capacities. He saw, more clearly than any one before him had done, the unutilized wealth of the child's world; that the child's chief characteristic is self-activity; the desirability of the child finding himself through play; and that the work of the school during these early years was to supplement the family by drawing out the child and awakening the ideal side of his nature. To these ends doing, self-activity, and expression became fundamental to the kindergarten, and movement, gesture, directed play, song, color, the story, and human activities a part of kindergarten technique. Nature study and school gardening were given a prominent place, and motor-activity much called into play. Advancing far beyond Pestalozzi's principle of sense-impressions, Froebel insisted on motor-activity and learning by doing (**R. 358**).

Froebel, as well as Herbart, also saw the social importance of education, and that man must realize himself not independently amid nature, as Rousseau had said, but as a social animal in coöperation with his fellowmen. Hence he made his schoolroom a miniature of society, a place where courtesy and helpfulness and social coöperation were prominent features. This social and at times reverent atmosphere of the kindergarten has always been a marked characteristic of its work. To bring out social ideas many dramatic games, such as shoemaker, carpenter, smith, and farmer, were devised and set to music. The "story" by the teacher was made prominent, and this was retold in language, acted, sung, and often worked out constructively in clay, blocks, or paper. Other games to develop skill were worked out, and use was made of sand, clay, paper, cardboard, and color. The

[1] In 1918, for example, according to a recent Report to the Zionist Board of Education in the United States, there were over 5300 children in kindergartens in Palestine, 125 kindergarten teachers there, and a College for Kindergarten Teachers had been organized in the Holy Land to train additional teachers.

"gifts" and "occupations" which Froebel devised were intended to develop constructive and æsthetic power, and to provide for connection and development they were arranged into an organized series of playthings. Individual development as its aim, motor-expression as its method, and social coöperation as its means were the characteristic ideas of this new school for little children (R. 358).

The contribution of the kindergarten. Wholly aside from the specific training given children during the year, year and a half, or two years they spend in this type of school, the addition of the kindergarten to elementary-school work has been a force of very large significance and usefulness. The idea that the child is primarily an active and not a learning animal has been given new emphasis, and that education comes chiefly by doing has been given new force. The idea that a child's chief business is play has been a new conception of large educational value. The elimination of book education and harsh discipline in the kindergarten has been an idea that has slowly but gradually been extended upward into the lower grades of the elementary school.

To-day, largely as a result of the spreading of the kindergarten spirit, the world is coming to recognize play and games at something like their real social, moral, and educational values, wholly aside from their benefits as concern physical welfare, and in many places directed play is being scheduled as a regular subject in school programs. Music, too, has attained new emphasis since the coming of the kindergarten, and methods of teaching music more in harmony with kindergarten ideas have been introduced into the schools.

Instruction in the manual activities. Froebel not only introduced constructive work — paper-folding, weaving, needlework, and work with sand and clay and color — into the kindergarten, but he also proposed to extend and develop such work for the upper years of schooling in a school for hand training which he outlined, but did not establish. His proposed plan included the elements of the so-called manual-training idea, developed later, and he justified such instruction on the same educational grounds that we advance to-day. It was not to teach a boy a trade, as Rousseau had advocated, or to train children in sense-perception, as Pestalozzi had employed all his manual activities, but as a form of educational expression, and for the purpose of developing creative power within the child. The idea was advocated by a

number of thinkers, about 1850 to 1860, but the movement took its rise in Finland, Sweden, and Russia.

The first country to organize such work as a part of its school instruction was Finland, where, as early as 1858, Uno Cygnaeus (1810–1888) outlined a course for manual training involving bench and metal work, wood-carving, and basket-weaving. In 1866 Finland made some form of manual work compulsory for boys in all its rural schools, and in its training-colleges for male teachers. In 1872 the government of Sweden decided to introduce sloyd work into its schools, partly to counteract the bad physical and moral effects of city congestion, and partly to revivify the declining home industries of the people. A sloyd school was established at Naäs, in 1872, to train teachers, and in 1875 a second school, known as a "Sloyd Seminarium," was begun. The summer courses of these two schools were soon training teachers from many nations. In 1877 sloyd work was added to the Folk School instruction of Sweden. At first the old native sloyd occupations were followed, such as carpentering, turning, wood-carving, brush-making, book-binding, and work in copper and iron, but later the industrial element gave way to a well-organized course in educational tool work for boys from twelve to fifteen years of age, after the Finnish plan.

Spread of the manual-training idea. France was the first of the larger European nations to adopt this new addition to elementary-school instruction, a training-school being organized at Paris in 1873, and, in 1882, the instruction in manual activities was ordered introduced into all the primary schools of France. It has required time, though, to provide work rooms and to realize this idea, and it is still lacking in complete accomplishment. In England the work was first introduced in London, about 1887. The government at once accepted the idea, encouraged its spread, and began to aid in the training of teachers. By 1900 the work was found in all the larger cities, and included cooking and sewing for girls, as well as manual work for boys. The training for girls goes back still farther, and was an outgrowth of the earlier "schools of industry" established to train girls for domestic service (R. 241). By 1846 instruction in needlework had been begun in earnest in England. In German lands needlework was also an early school subject, while some domestic training for girls had been provided in most of the cities, before 1914. Manual training for boys, though, despite much propaganda work, had

made but little headway up to that time. As in the case of the kindergarten, the initiative and self-expression aspects of the manual-training movement made no appeal to those responsible for the work of the people's schools, and, in consequence, the manual activities have in German lands been reserved largely for the continuation and vocational schools for older pupils.

In the United States the manual-training and household-arts ideas have found a very ready welcome. Curious as it may seem, the first introduction to the United States of this new form of instruction came through the exhibit made by the Russian government at the Centennial Exhibition of 1876, showing the work in wood and iron made by the pupils at the Imperial Technical Institute at Moscow. This, however, was not the Swedish sloyd, but a type of work especially adapted to secondary-school instruction. In consequence the movement for instruction in the manual activities in the United States, unlike in other nations, began as a highly organized technical type of high-school instruction,[1] while the elementary-school sloyd and the household arts for girls came in later. This type of technical high school has since developed rapidly in this country, has rendered an important educational service, and is a peculiarly American creation. In Europe the manual-training idea has been confined to the elementary school, and no institution exists there which parallels these costly and well-equipped American technical secondary schools.

The introduction of manual work into the elementary schools came a little later, and a little more slowly. As early as 1880 the Workingmen's School, founded by the Ethical Culture Society of New York, had provided a kindergarten and had extended the kindergarten constructive-work idea upward, in the form of simple woodworking, into its elementary school. In the public schools, experimental classes in elementary-school woodworking were tried in one school in Boston, as early as 1882, the expense being borne privately. In 1888 the city took over these classes.

[1] The Saint Louis Manual Training High School, founded in 1880 in connection with Washington University, first gave expression to this new form of education, and formed a type for the organization of such schools elsewhere. Privately supported schools of this type were organized in Chicago, Toledo, Cincinnati, and Cleveland before 1886, and the first public manual-training high schools were established in Baltimore in 1884, Philadelphia in 1885, and Omaha in 1886. The shop-work, based for long on the "Russian system," included wood-turning, joinery, pattern-making, forging, foundry and machine work. The first high school to provide sewing, cooking, dressmaking, and millinery for girls was the one at Toledo, established in 1886, though private classes had been organized earlier in a number of cities.

In 1886 a teacher was brought to Boston from Sweden to introduce Swedish sloyd, and a teacher-training school which has been very influential was established there, in 1889. In 1876 Massachusetts permitted cities to provide instruction in sewing, and Springfield introduced such instruction in 1884, and elementary-school instruction in knifework in 1886.

From these beginnings the movement spread,[1] though at first rather slowly. By 1900 approximately forty cities, nearly all of them in the North Atlantic group of States, had introduced work in manual training and the household arts into their elementary schools, but since that time the work has been extended to practically all cities, and to many towns and rural communities as well.

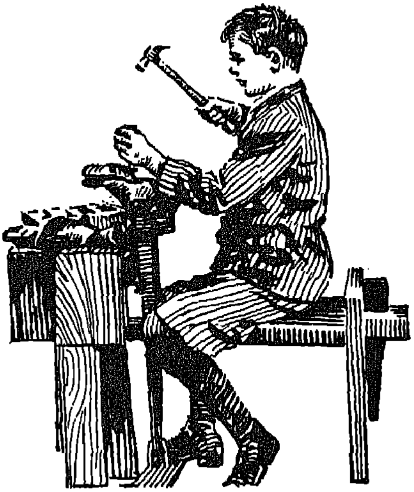

FIG. 228.
REDIRECTED MANUAL TRAINING
A boy mending his shoe instead of making a mortice-joint

Contribution of the manual-activities idea. These new forms of school work were at first advocated on the grounds of formal discipline — that they trained the reasoning, exercised the powers of observation, and strengthened the will. The "exercises," true to such a conception, were quite formal and uniform for all. With the breakdown of the "faculty psychology," and the abandonment in large part of the doctrine of formal discipline in the training of the mind, the whole manual-training and household-arts work has had to be reshaped. As the writings of Pestalozzi, Herbart, and Froebel were studied more closely, and with the new light on child development gained from child-study and the newer psychology, these new subjects came to be conceived of

[1] A few of the earlier adaptations of the idea may be given. In 1882 Montclair, New Jersey, introduced manual training into its elementary schools, and in 1885 the State of New Jersey first offered state aid to induce the extension of the idea. In 1885 Philadelphia added cooking and sewing to its elementary schools, having done so in the girls' high school five years earlier. In 1888 the City of New York added drawing, sewing, cooking, and woodworking to its elementary-school course of study.

in their proper light as means of individual expression, and to be extended to new forms, materials, colors, and new practical and artistic ends. To-day the instruction in manual work and the household arts in all their forms has been further changed to make of them educational instruments for interpreting the fields of art and industry and home-life in terms of their social significance and usefulness. Through these two new forms of education, also, the pupils in the elementary schools have been given training in expression and an insight into the practical work of life impossible in the old textbook type of elementary school. In the kindergarten, manual work, and the household arts, Froebel's principle of education through directed self-activity and self-expression has borne abundant fruit.

In the hands of French, English, and American educators the original manual-arts idea has been greatly expanded. In France some form of expression has been worked out for all grades of the primary school, and the work has been closely connected with art and industry on the one hand and with the home-life of the people on the other. In England the project system as applied to industry, and the household arts with reference to home-life, have been emphasized. In the United States the work has been individualized perhaps more than anywhere else, applied in many new directions — clay, leather, cement, metal — and used as a very important instrument for self-expression and the development of individual thinking.

IV. THE ADDITION OF SCIENCE STUDY

The gradual extension of the interest in science. A very prominent feature of world educational development, since about the middle of the nineteenth century, has been the general introduction into the schools of the study of science. It is no exaggeration of the importance of this to say that no addition of new subject-matter and no change in the direction and purpose of education, since that time, has been of greater importance for the welfare of mankind, or more significant of new world conditions, than has been the emphasis recently placed, in all divisions of state school systems, on instruction in the principles and the applications of science.

From the days of Francis Bacon (p. 390) on, the study of science has been making slow but steady progress. The early history of modern science we traced in chapter XVII. During the seven-

teenth century English scholars were most prominent in the further development, due largely to the greater tolerance of new ideas there, and the University of Cambridge early attained to some reputation (p. 423) as a place where instruction in the new scientific studies might be found. After the middle of the eighteenth century, in large part due to the illuminating work of Voltaire (p. 485), a great interest in science arose among the French. In the Revolutionary days we accordingly find the French creating important scientific institutions (p. 518), and Napoleon gave frequent evidence of his deep interest in scientific studies.[1] This interest the French have since retained.

From France this new interest in science passed quickly to the Germans. The new mathematical and physical studies had early found a home at the new University of Göttingen (p. 555), and largely under French influences scientific studies were later introduced into all the German universities. Early in the nineteenth century the German universities took the lead as centers for the new scientific studies (p. 576) — a lead they retained throughout the century. In England the universities had, by the nineteenth century, lost much of their seventeenth-century prominence in science, and had settled down into teaching colleges, instead of developing, as had the German universities, into institutions for scientific research. Compared with the reformed German universities, actuated by the new scientific spirit, the English universities of the mid-nineteenth century presented a very unfavorable [2] aspect (**R. 359**). In the United States, book instruction in the sciences came in near the close of the eighteenth century, but the first laboratory instruction in our colleges was not begun until 1846, and our real interest in science teaching dates from an even later period. Until the coming of German influences, after the middle of the century, the American college [3] largely followed English models and practices.

[1] In 1802 Napoleon provided for instruction in natural history, astronomy, chemistry, physics, and mineralogy in the scientific course of the *lycées*, and in 1814 enlarged this instruction. He also established numerous technical and military schools, with instruction based on mathematics and science.

[2] The Royal Commissioners which reported on the condition of the University of Oxford, in 1850, said: "It is generally acknowledged that both Oxford and the country at large suffer greatly from the absence of a body of learned men devoting their lives to the cultivation of science, and to the direction of academical education. The fact that so few books of profound research emanate from the University of Oxford materially impairs its character as a seat of learning, and consequently its hold on the respect of the nation."

[3] Book instruction in the new sciences goes back, in the universities of most lands, to the late eighteenth century, but laboratory instruction is a much more recent

Yet, as we pointed out earlier, the early nineteenth century witnessed a vast expansion of scientific knowledge, and by 1860 the main keys of modern science (p. 727) were in the hands of scholars everywhere. The great early development of scientific study had been carried on in a few universities or had been done by independent scholars, and had influenced but little instruction in the colleges or the schools below.

Science instruction reaches the schools but slowly. The textbook organization of this new scientific knowledge, for teaching purposes, and its incorporation into the instruction of the schools, took place but slowly.

1. *The elementary schools.* The greatest and the earliest success was made in German lands. There the pioneer work of Basedow (p. 534) and the Philanthropinists had awakened a widespread interest in scientific studies. In Switzerland, too, Pestalozzi had developed elementary science study and home geography, and, when Pestalozzian methods were introduced into the schools of Prussia, the study of elementary science (*Realien*) soon became a feature of the *Volksschule* instruction. From Prussia it spread to all German lands. In England the Pestalozzian idea was introduced into the Infant Schools,[1] though in a very formal fashion, under the heading of object lessons. In this form elementary science study reached the United States, about 1860, though a decade later well-organized courses in elementary science instruction began to be introduced into the American elementary schools.[2]

After the political reaction following the Napoleonic wars had set in, on the continent of Europe, all thought-provoking studies were greatly curtailed in the people's schools. In England, for

development. Chemistry was the first science to develop, being the mother of science instruction, and probably the first chemical laboratory in the world to be opened to students was that of Liebig at Giessen, in 1826. The first American university to provide laboratory instruction in chemistry was Harvard, in 1846. The instruction in science in most of the universities, up to at least 1850, was book instruction. (See schedule of studies for University of Michigan, R. 331.) The first American university to be founded on the German model was Johns Hopkins, in 1876.

[1] By Charles Mayo and his sister, who opened a private Pestalozzian school, about 1825. Miss Mayo published her *Lessons on Objects*, explaining the method, and this became very popular in England after about 1830. Both the Mayos were prominent in the Infant-School movement, which adopted a formalized type of Pestalozzian procedure.

[2] In 1871 Dr. William T. Harris, then Superintendent of City Schools in Saint Louis, published a well-organized course for the orderly study of the different sciences. This attracted wide attention, and was in time substituted for the scattered lessons on objects which had preceded it. This in turn has largely given way, in the lower grades, to nature study.

other reasons, object lessons did not make any marked headway, and as late as 1865 practically nothing relating to the great new world of scientific knowledge had as yet been introduced into the private and religious elementary schools (R. 360) which, up to that time, constituted England's chief dependence for the elementary instruction of her people.

2. *The secondary schools.* In the secondary schools the earliest work of importance in introducing the new scientific subjects was done by the Germans and the French. In German lands the *Realschule* obtained an early start (1747; p. 420), and the instruction in mathematics and science it included [1] had begun to be adopted by the German secondary schools, especially in the South German States, before the period of reaction set in. During the reign of Napoleon the scientific course in the French *Lycées* was given special prominence. After about 1815, and continuing until after 1848, practical and thought-provoking studies were under an official ban in both countries, and classical studies were specially favored.[2] Finally, in 1852 in France and in 1859 in Prussia, responding to changed political conditions and new economic demands, both the scientific course in the *Lycées* and the *Realschulen* were given official recognition, and thereafter received increasing state favor and support. The scientific idea also took deep root in Denmark. There the secondary schools were modernized, in 1809, when the sciences were given an important place, and again in 1850, when many of the Latin schools were transformed into *Realskoler*.

In the United States the academies and the early high schools both had introduced quite an amount of mathematics and book-science,[3] and, after about 1875, the development of laboratory instruction in science in the growing high schools took place rather rapidly. Fellenberg's work in Switzerland (p. 546) had also awakened much interest in the United States, and by 1830 a

[1] At the time of Professor Bache's visit, in 1838, the instruction included Latin, French, English, German, history, religion, music, drawing, mathematics, natural history, physics, chemistry, and geography.

[2] Scientific instruction in the *lycées* was not in favor in France after 1815, and in 1840 it was materially reduced, on the ground that it was injuring classical studies.

[3] Astronomy, botany, chemistry, and natural philosophy had been prominent studies in the American academies. Between about 1825 and 1840 was the great period of their introduction. The first American high school (Boston, 1821) provided for instruction in geography, navigation and surveying, astronomy, and natural philosophy. By 1850 the rising high schools were incorporating scientific studies quite generally. The instruction was still textbook instruction, but some lecture-table demonstrations had begun to be common.

number of Schools of Industry and Science had begun to appear.[1] These made instruction in mathematics and science prominent features of their work.

After the Napoleonic wars, England attained to the first place as an industrial and commercial nation. This led to a continual agitation on the part of manufacturers for some science and art instruction. In 1853, Parliament created a State Department of Science and Art (p. 638), and the promotion of science and art education by government grants was now begun. Though the nation had been the first to be transformed by the industrial revolution, and its foreign trade by 1850 reached all parts of the world, the secondary schools of England had remained largely untouched by the change. They were still mainly the Renaissance Latin grammar schools they had been ever since Dean Colet (1510) marked out the lines for such instruction by founding his reformed grammar school at St. Pauls (p. 275). Their courses of instruction contained little that was modern, and in their aims and purposes they went back to the days of the Revival of Learning for their inspiration (R. 361).

The challenge of Herbert Spencer. By the middle of the nineteenth century the scientific and industrial revolutions had produced important changes in the conditions of living in all the then important world nations. Particularly in the German States, France, England, and the United States had the effects of the revolutions in manufacturing and living been felt. In consequence there had been, for some time, a growing controversy between the partisans of the older classical training and the newer scientific studies as to their relative worth and importance, both for intellectual discipline and as preparation for intelligent living, and by the middle of the nineteenth century this had become quite sharp. The "faculty psychology," upon which the theory of the discipline of the powers of the mind by the classics was largely based, was attacked, and the contention was advanced that the content of studies was of more importance in education than was method and drill. The advocates of the newer studies contended that a study of the classics no longer provided a suitable preparation for intelligent living, and the question of the relative worth of the older and newer studies elicited more and more discussion as the century advanced.

[1] The Oneida School of Science and Industry, the Genesee Manual-Labor School, the Aurora Manual-Labor Seminary, and the Rensselaer School, all founded in the State of New York, between 1825 and 1830, were among the most important of these early institutions.

In 1859 one of England's greatest scholars, Herbert Spencer, brought the whole question to a sharp issue by the publication of a remarkably incisive essay on "What Knowledge is of Most Worth?" In this he declared that the purpose of education was to "prepare us for complete living," and that the only way to judge of the value of an educational course was first to classify, in the order of their importance,[1] the leading activities and needs of life, and then measure the course of study by how fully it offers such a preparation. Doing so (**R. 362**), and applying such a test, he concluded that of all subjects a knowledge of science (**R. 363**) "was always most useful for preparation for life," and therefore the type of knowledge of most worth. In three other essays [2] he recommended a complete change from the classical type of training which had dominated English secondary education since the days of the Renaissance. Still more, instead of a few being educated by a "cultural discipline" for a life of learning and leisure, he urged general instruction in science, that all might receive training and help for the daily duties of life.

FIG. 229. HERBERT SPENCER (1820–1903)

These essays attracted wide attention, not only in England but in many other lands as well. They were a statement, in clear and forceful English, of the best ideas of the educational reformers for three centuries. In his statement of the principles upon which sound intellectual education should be based he merely enunciated theses for which educational reformers had stood since the days of Ratke and Comenius. In his treatment of moral and

[1] Spencer's classification of life activities and needs, in the order of their importance, was (**R. 362**):

1. Those ministering directly to self-preservation.
2. Those which secure for one the necessities of life, and hence minister indirectly to self-preservation.
3. Those which have for their end the rearing and discipline of offspring.
4. Those involved in the maintenance of proper social and political relations.
5. Those which fill up the leisure part of life, and are devoted to the gratification of tastes and feelings.

[2] All were republished in book form, in 1861, under the title of *Education; Intellectual, Moral, and Physical.* The volume contains four essays: What Knowledge is of Most Worth?; Intellectual Education; Moral Education; and Physical Education. The first essay served as an introduction to the other three.

physical education he voiced the best ideas of John Locke. Spencer's great service was in giving forceful expression to ideas which, by 1860, had become current, and in so doing he pushed to the front anew the question of educational values. The scientific and industrial revolutions had prepared the way for a redirection of national education, and the time was ripe in England, France, German lands, and the United States for such a discussion. As a result, though the questions he raised are still in part unsettled, a great change in assigned values has since been effected not only in these nations, but in most other nations and lands which have drawn the inspiration for their educational systems from them. Though his work was not specially original, we must nevertheless class Herbert Spencer as one of the great writers on educational aims and purposes, and his book as one of the great influences in reshaping educational practice. He gave a new emphasis to the work of all who had preceded him, and out of the discussion which ensued came a new and a greatly enlarged estimate as to the importance of science study in all divisions of the school.

The new educational purpose. It is perhaps not too much to say that out of Spencer's gathering-up and forceful statement of the best ideas of his time, and the discussion which followed, a new conception of the educational purpose as adjustment to the life one is to live — physical, economic, social, moral, political — was clearly formulated, and a new definition of a liberal education was framed. The former found expression in a rather rapid introduction of science-study into the elementary school, the secondary school, and the college, after about 1865, in the school systems of all progressive nations, and the subsequent extension of the scientific method to such new fields as history, politics, government, and social welfare. The latter — the new definition of a liberal education — was wonderfully well stated in an address (1868) by the English scientist, Thomas Huxley, when he said:[1]

FIG. 230. THOMAS H. HUXLEY (1825–95)

[1] "A Liberal Education," in his *Science and Education*, p. 86.

That man, I think, has had a liberal education who has been so trained in youth that his body is the ready servant of his will, and does with ease and pleasure all the work that, as a mechanism, it is capable of; whose intellect is a clear, cold, logic engine, with all its parts of equal strength, and in smooth working order; ready, like a steam engine, to be turned to any kind of work, and spin the gossamers as well as forge the anchors of the mind; whose mind is stored with a knowledge of the great and fundamental truths of Nature and of the laws of her operations; one who, no stunted ascetic, is full of life and fire, but whose passions are trained to come to heel by a vigorous will, the servant of a tender conscience; who has learned to love all beauty, whether of Nature or of art, to hate all vileness, and to respect others as himself.

Such an one and no other, I conceive, has had a liberal education; for he is, as completely as a man can be, in harmony with Nature. He will make the best of her, and she of him. They will get on together rarely: she as his ever-beneficent mother; he as her mouthpiece, her conscious self, her minister and interpreter.

The inter-relation between the movement for the study of the sciences and the other movements for the improvement of instruction which we have so far described in this chapter, was close. Pestalozzi had emphasized instruction in geography and the study of nature; Froebel had given a prominent place to nature study and school gardening; the manual-arts work tended to exhibit industrial processes and relationships; and the scientific emphasis on content rather than drill was in harmony with the theories of all the modern reformers. Still more, the scientific movement was in close harmony with the new individualistic tendency of the early part of the nineteenth century, and with the movements for the improvement of individual and national welfare which have been so prominent a characteristic of the latter half of the century.

V. SOCIAL MEANING OF THESE CHANGES

A century of progress. Pestalozzi, true to the individualistic spirit of the age in which he lived and worked, had seen education as an individual development, and the ends of education as individual ends. The spirit of the French Revolutionary period was the spirit of individualism. With the progress of the Industrial Revolution and the consequent rise of new social problems, the emphasis was gradually shifted from the individual to society — from the single man to the man in the mass. The first educational thinker of importance to see and clearly state this new conception in terms of the school was Herbart. Seeing the educa-

tional purpose in far clearer perspective than had those who had gone before him, he showed that education must have for its function the preparation of man to live in organized society, and that character and social morality, rather than individual development, must in consequence be the larger aims. Froebel, possessed of something of the same insight, and seeing clearly the educational importance of activity and expression, had opened up for children a wealth of new contacts with the world about them in the new type of educational institution which he created. His principles, he said, when thoroughly worked out and applied to education "would revolutionize the world." He did not complete the full educational organization he had planned, but in the hands of the Swedes and Finns similar ideas were worked out in practical form and made a part of school work. Applying Froebel's idea to instruction in the old trades and industries, declining in importance in the face of the rise of the factory system, they evolved the manual-training activities, and these have since been made important tools for giving to young people some intelligent ideas as to the industrial relationships and economic problems of our complex modern life.

Since this early pioneer work changes in school work have been numerous and of far-reaching importance. The methods and purpose of instruction in the older subjects have been revised; new studies, which would serve to interpret to the young the industrial and social revolutions of the nineteenth century, have been introduced; the expression-subjects — the domestic arts, music, drawing, clay-modeling, color work, the manual arts, nature study, gardening — have given a new direction to school work; and the study of science and the vocations has attained to a place of importance previously unknown. During the past half-century the school has been transformed, in the principal world nations, from a disciplinary institution where drill in mastering the rudiments of knowledge was given, into an instrument of democracy calculated to train young people for living, for useful service in the office and shop and home, and to prepare them for intelligent participation in the increasingly complex social and political and industrial life of a modern world. This transformation of the school has not always been easy (**R. 365**), but the vastly changed conditions of modern life have demanded such a transformation in all progressive nations.

The contribution of John Dewey. The foremost American in-

terpreter, in terms of the school, of the vast social and industrial changes which have marked the nineteenth century, is John Dewey[1] (1859–). Better perhaps than any one else he has thought out and stated a new educational philosophy, suited to the changed and changing conditions of human living. His work, both experimental and theoretical, has tended both to re-psychologize (**R. 364**) and socialize education; to give to it a practical

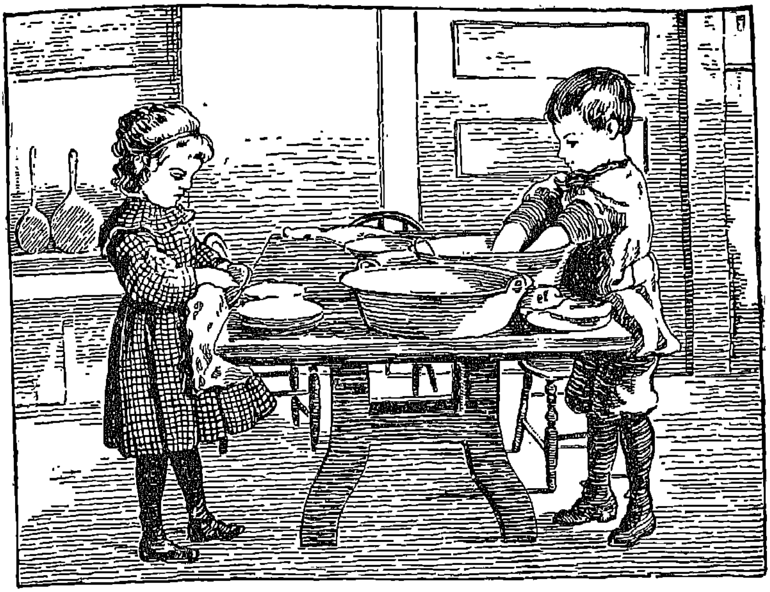

FIG. 231. A REORGANIZED KINDERGARTEN
Drawn from a photograph showing the reconstruction of the kindergarten activities, as worked out by Dewey at Chicago.

content, along scientific and industrial lines; and to interpret to the child the new social and industrial conditions of modern society by connecting the activities of the school closely with those of real life.

Starting with the premises that "the school cannot be a preparation for social life except as it reproduces the typical conditions of social life"; that "industrial activities are the most influential factors in determining the thought, the ideals, and the social organization of a people"; and that "the school should be life, not a

[1] For many years head of the School of Education at the University of Chicago, but more recently Professor of Philosophy at Columbia University, New York City.

preparation for living"; Dewey for a time conducted an experimental school, for children from four to thirteen years of age, to give concrete expression to his educational ideas. These, first consciously set forth by Froebel, were:[1]

1. That the primary business of the school is to train in coöperative and mutually helpful living. . . .
2. That the primary root of all educational activity is in the instinctive, impulsive attitudes and activities of the child, and not in the presentation and application of external material.
3. That these individual tendencies and activities are organized and directed through the uses made of them in keeping up the coöperative living . . . taking advantage of them to reproduce, on the child's plane, the typical doings and occupations of the larger, maturer society into which he is finally to go forth; and that it is through production and creative use that valuable knowledge is clinched.

The work of this school[2] was of fundamental importance in directing the reorganization of the work of the kindergarten along different and larger lines, and also has been of significance in redirecting the instruction in both the social subjects — history (**R.** 366), literature, etc. — and the manual, domestic, and artistic activities of the school. In his subsequent writings he may be said to have stated an important new philosophy for the school in terms of modern social, political, and industrial needs.

The Dewey educational philosophy. Believing that the public school is the chief remedy for the ills of organized society, Professor Dewey has tried to show how to change the work of the school so as to make it a miniature of society itself. Social efficiency, and not mere knowledge, he has conceived to be the end, and this social efficiency is to be produced through participation in the activities of an institution of society, the school. The different parts of the school system thus become a unified institution, in which children are taught how to live amid the constantly increasing complexities of modern social and industrial life.

Education, therefore, in Dewey's conception, involves not merely learning, but play, construction, use of tools, contact with nature, expression, and activity; and the school should be a place where children are working rather than listening, learning life by living life, and becoming acquainted with social institutions and

[1] Dewey, John, in *Elementary School Record*, p. 142.
[2] Described in *The Elementary School Record*, a series of nine monographs, making a volume of 241 pages. University of Chicago Press, 1900.

industrial processes by studying them. The work of the school is in large part to reduce the complexity of modern life to such terms as children can understand, and to introduce the child to modern life through simplified experiences. Its primary business may be said to be to train children in coöperative and mutually helpful living. The virtues of a school, as Dewey points out, are learning by doing; the use of muscles, sight and feeling, as well as hearing; and the employment of energy, originality, and initiative. The virtues of the school in the past were the colorless, negative virtues of obedience, docility, and submission. Mere obedience and the careful performance of imposed tasks he holds to be not only a poor preparation for social and industrial efficiency, but a poor preparation for democratic society and government as well. Responsibility for good government, under any democratic form of organization, rests with all, and the school should prepare for the political life of to-morrow by training its pupils to meet responsibilities, developing initiative, awakening social insight, and causing each to shoulder a fair share of the work of government in the school.

We have now before us the great contributions to a philosophy for the educational process made since the beginning of the nineteenth century. Many other workers in different lands, but more particularly in German lands, France, Italy, England, and the United States, have added their labors to the expansion and redirection of the school. They are too numerous to mention and, though often nationally important, need not be included here. Still more, the contributions of Pestalozzi, Herbart, Froebel, Spencer, Dewey, and their followers and disciples are so interwoven in the educational theory and practice of to-day that it is in most cases impossible to separate them from one another.[1]

[1] A very good example of this is to be found in the work of Colonel Francis W. Parker (1837–1902) in the United States. It was he who introduced Germanized Pestalozzian-Ritter methods of teaching geography; he who strongly advocated the Herbartian plan for concentration of instruction about a central core, which he worked out for geography; he who insisted so strongly on the Froebelian principle of self-expression as the best way to develop the thinking process; he who advocated science instruction in the schools; and he who saw educational problems so clearly from the standpoint of the child that he, and the pupils he trained, did much to bring about the reorganization in elementary education which was worked out in the United States between about 1875 and 1900.

QUESTIONS FOR DISCUSSION

1. How do you explain the long-continued objection to teacher-training?
2. Contrast "oral and objective teaching" with the former "individual instruction."
3. Show how complete a change in classroom procedure this involved.
4. Show how Pestalozzian ideas necessitated a "technique of instruction."
5. Why is it that Pestalozzian ideas as to language and arithmetic instruction have so slowly influenced the teaching of grammar, language, and arithmetic?
6. How do you explain the decline in importance of the once-popular mental arithmetic?
7. Show how child study was a natural development from the Pestalozzian psychology and methodology.
8. Explain what is meant by the statements that Herbart rejected:
   (*a*) The conventional-social ideal of Locke.
   (*b*) The unsocial ideal of Rousseau.
   (*c*) The "faculty-psychology" conception of Pestalozzi.
9. Explain what is meant by saying that Herbart conceived of education as broadly social, rather than personal.
10. Show in what ways and to what extent Herbart:
    (*a*) Enlarged our conception of the educational process.
    (*b*) Improved the instruction content and process.
11. Explain why Herbartian ideas took so much more quickly in the United States than did Pestalozzianism.
12. State the essentials of the kindergarten idea, and the psychology behind it.
13. State the contribution of the kindergarten idea to education.
14. Show the connection between the sense impression ideas of Pestalozzi, the self-activity of Froebel, and the manual activities of the modern elementary school.
15. Explain why scientific studies came into the schools so slowly, up to about 1860, and so very rapidly after about that time.
16. Explain the particularly long resistance to the introduction of scientific studies by industrial England.
17. State the comparative importance of content and drill in education.
18. Does the reasoning of Herbert Spencer appeal to you as sound? If not, why not?
19. Show how the argument of Spencer for the study of science was also an argument for a more general diffusion of educational advantages.
20. Would schools have advanced in importance as they have done had the industrial revolution not taken place? Why?
21. Why is more extended education called for as "industrial life becomes more diversified, its parts narrower, and its processes more concealed"?
22. Point out the social significance of the educational work of John Dewey.
23. Point out the value, in the new order of society, of each group of school subjects listed in footnote 1 on page 763.
24. Contrast the virtues of a school before Pestalozzi's time and those of a modern school.

SELECTED READINGS

In the accompanying *Book of Readings* the following selections illustrative of the contents of this chapter are reproduced:

344. Bache: The German Seminaries for Teachers.

345. Bache: A German Teachers' Seminary Described.
346. Bache: A French Normal School Described.
347. Barnard: Beginnings of Teacher-Training in England.
348. Barnard: The Pupil-Teacher System Described.
349. Clinton: Recommendation for Teacher-Training Schools.
350. Massachusetts: Organizing the First Normal Schools.
 (*a*) The Organizing Law.
 (*b*) Admission and Instruction in.
 (*c*) Mann: Importance of the Normal School.
351. Early Textbooks: Examples of Instruction from
 (*a*) Davenport: History of the United States.
 (*b*) Morse: Elements of Geography — Map.
 (*c*) Morse Elements of Geography.
352. Murray: A Typical Teacher's Contract.
353. Bache: The Elementary Schools of Berlin in 1838.
354. Providence: Grading the Schools of.
355. Felkin: Herbart's Educational Ideas.
356. Felkin: Herbart's Educational Ideas Applied.
357. Titchener: Herbart and Modern Psychology.
358. Marenholtz-Bülow: Froebel's Educational Views.
359. Huxley: English and German Universities Contrasted.
360. Huxley: Mid-nineteenth-Century Elementary Education in England.
361. Huxley: Mid-nineteenth-Century Secondary Education in England.
362. Spencer: What Knowledge is of Most Worth?
363. Spencer: Conclusions as to the Importance of Science.
364. Dewey: The Old and New Psychology Contrasted.
365. Ping: Difficulties in Transforming the School.
 (*a*) Relating Education to Life.
 (*b*) The Old Teacher and the New System.
366. Dewey: Socialization of School Work illustrated by History.

QUESTIONS ON THE READINGS

1. Contrast the instruction in a German Teachers' Seminary (345) or a French normal school (346) of 1838, as described by Bache, with that of an American normal school of to-day.
2. What do the beginnings of teacher-training in England (347, 348) indicate as to conceptions then existing as to the educational process?
3. Show, by comparison, that the beginnings of the American normal school were German, rather than English in origin.
4. Just what educational conditions does Governor Clinton (349) indicate as existing in New York State, in 1827?
5. Contrast the instruction in the early Massachusetts normal schools (350) with that in the German (345) and French (346) of about the same time.
6. What do the three professional courses reproduced (345, 346, 350 b) indicate as to the development of pedagogical work by about 1840?
7. Compare the textbook types, given in 351, with modern textbooks in equivalent subjects.
8. Just what light on school teaching, in 1841, does the teacher's contract given (352) throw?
9. State the steps in the evolution of a graded system of schools (353, 354).
10. State the essentials of Herbart's educational ideas (355, 356), and the nature of the advances made over his predecessors.

11. State the essentials of Froebel's educational ideas, as explained by the Baroness von Marenholtz-Bülow (358).
12. Explain the difference between the universities of the two nations (359).
13. Contrast elementary education in England (360) with that in the United States at the same period.
14. Would you add anything else to Spencer's requirements to prepare for complete living? What? Why?
15. How do you explain science being "written against in our theologies and frowned upon from our pulpits" (363) when it is of such importance as Spencer concludes?
16. Contrast the old and the new psychology (357, 364).
17. Have the difficulties experienced in the transformation of instruction in China (365) been essentially different than with us? How?
18. Apply Dewey's idea as to the socialization of history (366) to instruction in geography.

SUPPLEMENTARY REFERENCES

Barnard, Henry. *National Education in Europe.*

*Bowen, H. C. *Froebel and Education through Self-Activity.*

Compayré, G. *Herbart and Education by Instruction.*

*De Garmo, Chas. *Herbart and the Herbartians.*

Dewey, John. *The School and Social Progress.* (Nine numbers.)

*Dewey, John. *The School and Society.*

Gordy, J. P. *Rise and Growth of the Normal School Idea in the United States.* Circular of Information, United States Bureau of Education, No. 8, 1891.

Hollis, A. P. *The Oswego Movement.*

*Jordan, D. S. "Spencer's Essay on Education"; in *Cosmopolitan Magazine*, vol. XXIX, pp. 135–49. (Sept. 1902.)

Judd, C. H. *The Training of Teachers in England, Scotland, and Germany.* (Bulletin 35, 1914, United States Bureau of Education.)

Monroe, Will S. *History of the Pestalozzian Movement in the United States.*

*Parker, S. C. *History of Modern Elementary Education.*

Ping Wen Kuo. *The Chinese System of Public Education.*

Spencer, Herbert. *Education; Intellectual, Moral, and Physical.*

Vanderwalker, N. C. *The Kindergarten in American Education.*

CHAPTER XXIX

NEW TENDENCIES AND EXPANSIONS

I. POLITICAL

The enlarged conception of public education. The new ideas as to the purpose and functions of the State promulgated by English and French eighteenth-century thinkers, and given concrete expression in the American and French revolutions near the close of the century, imparted, as we have seen, a new meaning to the school and a new purpose to the education of a people. In the theoretical discussion of education by Rousseau and the empirical work of Pestalozzi a new individualistic theory for a secular school was created, and this Prussia, for long moving in that direction, first adopted as a basis for the state school system it early organized to serve national ends. The new American States, also long moving toward state organization and control, early created state schools to replace the earlier religious schools; while the French Revolution enthusiasts abolished the religious school and ordered the substitution of a general system of state schools to serve their national ends.

From these beginnings, as we have seen, the state-school idea has in course of time spread to all continents, and nations everywhere to-day have come to feel that the maintenance of a more or less comprehensive system of state schools is so closely connected with national welfare and progress as to be a necessity for the State (**R.** 367). In consequence, state ministries for education have been created in all the important world nations; state and local school officials have been provided generally to see that the state purpose in creating schools is carried out; state normal schools for the preparation of teachers have been established; comprehensive state school codes have been enacted or educational decrees formulated; and constantly increasing expenditures for education are to-day derived by taxing the wealth of the State to educate the children of the State.

Change from the original purpose. The original purpose in the establishment of schools by the State was everywhere to promote literacy and citizenship. Under all democratic forms of government it was also to insure to the people the elements of

learning that they might be prepared for participation in the functions of government.[1] This is well expressed in the quotations given (p. 525) from early American statesmen as to the need for the education of public opinion and the diffusion of knowledge among the people. The same ideas were expressed by French writers and statesmen of the time, and by the English after the passage of the Reform Bills of 1832 and 1867 (p. 642). With the gradual extension of the franchise to larger and larger numbers of the people, the extension of educational advantages naturally had to follow. The education of new citizens for "their political and civil duties as members of society and freemen" became a necessity, and closely followed each extension of the right to vote. In all democratic governments the growing complexity of modern political society has since greatly enlarged these early duties of the school. To-day, in modern nations where general manhood suffrage has come to be the rule, and still more so in nations which have added female suffrage as well, the continually increasing complexity of the political, economic, and social problems upon which the voters are expected to pass judgment is such that a more prolonged period of citizenship education is necessary if voters are to exercise, in any intelligent manner, their functions of citizenship. In nations where the initiative, referendum, and recall have been added, the need for special education along political, economic, and social lines has been still further emphasized.

At first instruction in the common-school branches, with instruction in morals or religion added, was regarded as sufficient. In States, such as the German, where religious instruction was retained in the schools, this has been made a powerful instrument in moulding the citizenship and upholding the established order. The history of the different nations has also been used by each as a means for instilling desired conceptions of citizenship, and some work in more or less formal civil government has usually been added. To-day all these means have been proven inadequate for democratic peoples. In consequence, the work in civil government is being changed and broadened into institutional and community civics; the work of the elementary school is being socialized, along the lines advocated by Dewey; and instruction in economic principles and in the functions of government is being

[1] For long the knowledge-conception dominated instruction, it being firmly believed by the advocates of schools that knowledge and virtue were somewhat synonymous terms.

introduced into the secondary schools. Instead of being made mere teaching institutions, engaged in promoting literacy and diffusing the rudiments of learning among the electorate, schools are to-day being called upon to grasp the significance of their political and social relationships, and to transform themselves into institutions for improving and advancing the welfare of the State (R. 368).

The promotion of nationality. In Prussia the promotion of national solidarity was early made an important aim of the school. This has in time become a common national purpose, as there has dawned upon statesmen generally the idea that a national spirit or culture is "an artificial product which transcends social, religious, and economic distinctions," and that it "could be manufactured by education" (R. 340). In consequence of this discovery the school has been raised to a new position of importance in the national life, and has become the chief means for developing in the citizenship that national unity and national strength so desirable under present-day world conditions. In the German States, where this function of the school has in recent times been perverted to carry forward imperialistic national ends (R. 342); in France, where it has been intelligently used to promote a rational type of national strength (R. 341); in Italy, where divergent racial types are being fused into a new national unity; in Cuba, Porto Rico, and the Philippines (R. 343) where the United States has used education to bring backward peoples up to a new level of culture, and to develop in them firm foundations of national solidarity; in China (R. 335) where an ancient people, speaking numerous dialects, is making the difficult transition from an old culture to the newer western civilization; and in Algiers and Morocco, where the spirit of French nationality is being fused into dark-skinned tribesmen — everywhere to-day, where public education has really taken hold on the national life, we find the school being used for the promotion of national solidarity and the inculcation of national ideals and national culture. To such an extent has this become true that practically all the pressing problems of the school to-day, in any land, find their ultimate explanation in terms of the new nineteenth-century conceptions of political nationality.

Since the development of world trade routes following long rail and steamship lines, along which people as well as raw materials and manufactured articles pass to and fro, the entrance of new and

diverse peoples into distant national groups has created a new problem of nationalization that before the early nineteenth century was largely unknown. Previous to the nineteenth century the problem was confined almost entirely to peoples conquered and annexed by the fortunes of war. To-day it is a voluntary migration of peoples, and a migration of such proportions and from such distant and unlike civilizations that the problem of assimilating the foreigner has become, particularly in the English-speaking nations and colonies, to which distant and unrelated peoples have turned in largest numbers,[1] a serious national problem. The migration of 32,102,671 persons to the United States, between 1820 and 1914, from all parts of the world, has been a movement of peoples compared with which the migrations of the Germanic tribes — Angles, Saxons, Jutes, Goths, Visigoths, Vandals, Suevi, Danes, Burgundians, Huns — into the old Roman Empire in the fourth and fifth centuries pale into insignificance. No such great movement of peoples was ever known before in history, and the assimilative power of the American nation has not been equal to the task. The World War revealed the extent of the failure to nationalize the foreigner who has been permitted to come, and brought the question of "Americanization" to the front as one of the most pressing problems connected with American national education. With the world in flux racially as it now is, the problem of the assimilation of non-native peoples is one which the schools of every nation which offers political and economic opportunity to other peoples must face. This has called for the organization of special classes in the schools, evening and adult instruction, community-center work, nationalization programs, compulsory attendance of children, state oversight of private and religious schools, and other forms of educational undertakings undreamed of in the days when the State first took over the schools from the Church the better to promote literacy and citizenship.

Effects of the Industrial Revolution. The effects of the great industrial and social changes which we have previously described are written large across the work of the school. As the civilization in the leading world nations has increased in complexity, and

[1] It is to democratic England and the United States, and to the English self-governing dominions, that the greatest flood of emigrants from less advanced civilizations have gone. South America has also experienced a large recent immigration, but this has been mainly of peoples from the Latin races, and hence easier of assimilation.

the ramifications of the social and industrial life have widened, the school has been called upon to broaden its work, and develop new types of instruction to increase its effectiveness. An education which was entirely satisfactory for the simpler form of social and industrial life of two generations ago has been seen to be utterly inadequate for the needs of the present and the future. It is the far-reaching change in social and industrial and home-life, brought about by the Industrial Revolution, which underlies most of the pressing problems in educational readjustment to-day. As the industrial life of nations has become more diversified, its parts narrower, and its processes more concealed, new and more extended training has been called for to prepare young people for the work of life; to reveal to them something of the intricacy and interdependence of modern political and industrial and social groups; and to point out to them the importance of each one's part in the national political and industrial organization. With the ever-increasing subdivision and specialization of labor, the danger from class subdivision has constantly increased, and more and more the school has been called upon to instill into all a political and social consciousness that will lead to unity amid increasing diversity, and to concerted action for the preservation and improvement of the national life.

More education than formerly has also been demanded to enable future citizens to meet intelligently national and personal problems, and with the widening of the suffrage and the spread of democratic ideas there has come a necessary widening of the educational ladder, so that more of the masses of the people may climb. Even in nations having the continental-European two-class school system, larger educational opportunities for the masses have had to be provided. This has come through the provision of middle schools, continuation schools, higher primary schools, and people's high schools,[1] as in Germany, France (see diagram, p. 598), the Scandinavian countries (p. 713; **R. 370**), and Japan (p. 720). In nations having an American-type educational ladder, it has led to the multiplication of secondary schools and secondary-school courses, that a larger and larger percentage of the people may be prepared better to meet the increasingly complex and increasingly difficult conditions of modern political, social, and industrial life. In the more advanced and more dem-

[1] See a good article on this development by I. L. Kandel, in the *Educational Review* for November, 1919, entitled "The Junior High School in European Systems."

ocratic nations we also note the establishment of systems of evening schools, adult instruction, university extension, science and art instruction in special centers, the multiplication of libraries, and the increasing use of the lecture, the stereopticon, and the public press, for the purpose of keeping the people informed. No nation has done more to extend the advantages of secondary education to its people than has the United States; France has been especially prominent in adult instruction; England has done noteworthy work with university extension and science and art instruction; while the United States has carried the library movement farther than any other land. All these, again, are extensions of educational opportunity to the masses of the people in a manner undreamed of a century ago.

University expansion. The modern university first attained its development in Prussia (pp. 553-55), while in England and in the nations which drew their inspiration from her, the teaching college, with its narrow range of studies and disciplinary instruction (**R.** 331), continued to dominate higher education until past the middle of the nineteenth century (**R.** 359). The old universities of France, aside from Paris, were virtually destroyed in the days of the Revolution, and their re-creation as effective teaching and research institutions has been a relatively recent (1896) event. The universities of Italy and Spain ceased to be effective teaching institutions centuries ago, and only recently have begun to give evidences of new life.

Within the past three quarters of a century, and in many nations within a much shorter period of time, the university has very generally experienced a new manifestation of popular favor, and is to-day looked upon as perhaps the most important part, viewed from the standpoint of the future welfare of the State, of the entire system of public instruction maintained by the State. In it the leaders for the State are trained; in it the thinking which is to dominate government a quarter-century later is largely done; out of it come the creative geniuses whose work, in dozens of fields of human endeavor, will mould the political, social, and scientific future of the nation (**R.** 369). Every government depending upon a two-class school system must of necessity draw its leaders in the professions, in government, in pure and applied science, and in many other lines from the small but carefully selected classes its universities train. In a democracy, depending entirely upon drawing its future leaders from among the mass,

the university becomes an indispensable institution for the training of leaders and for the promotion of the national welfare. In a democratic government one of the highest functions of a university is to educate leaders and to create the standards for democracy.

The university has, accordingly, in all lands, recently experienced a great expansion. The German universities have been prominent modern institutions for a century and a half. Realizing, as no other people have done, their value in developing skilled leaders for the State, promoting the national welfare, integrating the Empire, and as centers for building up among students of other nationalities a good-will toward Germany, large sums have been spent on their further development since 1871. Within the past quarter-century new and strong French universities have been created,[1] and old universities in Italy, Spain, Portugal, and Greece have been awakened to a new life. The English universities have been made over, since 1870, and new municipal universities in Sheffield, Bristol, Leeds, Manchester, Birmingham, Liverpool, and London have set new standards in English higher education. The universities of Scotland, Holland, Switzerland, and the Scandinavian countries have also recently attained to world prominence. In Australia, New Zealand, Japan, China, the Philippines, India, Egypt, Palestine, Algiers, and South Africa, new universities have been created to advance the national welfare. The South American nations have also established a number of promising new foundations, and given new life to older ones. Often nations swinging out into the current of western civilization have developed their universities before popular education really got under way.

In no country has the development of university instruction been more rapid than in the United States and Canada. New and important state universities are to-day found in most of the American States and Canadian Provinces, some States maintaining two. These have been relatively recent creations to serve democracy's needs, and upon the support of these state universities large and increasing sums of money are spent annually.[2] In

[1] Paris, for example, has become the greatest university in Europe, exceeding Berlin (1914) in students by approximately 25 per cent and in expenditures 40 per cent.

[2] "The rise of these great universities is the most epoch-making feature of our American civilization, and they are to become more and more the leaders and the makers of our civilization. They are of the people. When a state university has gained solid ground, it means that the people of a whole state have turned their

no nation of the world, too, has private benevolence created and endowed so many private universities of high rank as in the United States,[1] and these have fallen into their proper places as auxiliary agents for the promotion of the national welfare in government, science, art, and the learned professions.

From small collegiate institutions with a very limited curriculum, a century ago, stimulated in part by the German example and in part responding to new national needs, universities to-day, in all the leading world nations, have developed into groups of well-organized professional schools, ministering to the great number of special needs of modern life and government. The university development since the middle of the nineteenth century has been greater than at any period before in world history, and with the spread of democracy, dependent as democracy is upon mass education to obtain its leaders, the university has become "the soul of the State" (**R. 369**). The university development of the next half-century, the world as a whole considered, may possibly surpass anything that we have recently witnessed.

The state school systems as organized. We now find state school systems organized in all the leading world nations. In many the system of public instruction maintained is broad and extensive, beginning often with infant schools or kindergartens, continuing up through elementary schools, middle schools, continuation schools, secondary schools, and normal schools, and culminating in one or more state universities. In addition there are to-day, in many nations, state systems of scientific and technical schools and institutions, and vocational schools and schools for special classes, to which we shall refer more in detail a little further on. The support of all these systems of public instruction to-day comes largely from the direct or indirect taxation of the wealth of the State. Being now conceived of as essential to the welfare and progress of the State, the State yearly confiscates a portion of every man's property and uses it to maintain a service deemed vital to its purposes.

The sums spent to-day on education by modern States seem

faces toward the light; it means that the whole system of state schools has been welded into an effective agent for civilization. Those who direct the purposes of these great enterprises of democracy cannot be too often reminded that the highest function of a university is to furnish standards for a democracy." (Pritchett, Henry S., in *Atlantic Monthly*.)

[1] The gifts and bequests for colleges and universities in the United States, from 1871 to 1916, totaled $647,536,608, and by 1920 probably have reached $750,000,000.

enormous, compared with the sums spent for education under conditions existing a century ago. In England, for example, where the first national aid was granted, in 1833, in the form of a parliamentary grant of £20,000 (approximately $100,000), the parliamentary grants for elementary schools had reached approximately £12,000,000 by 1910, with an additional national aid for universities of over £1,100,000. By 1920 the grants were £32,851,111, and by 1931, Scotland included, were £56,717,000. In France a treasury grant of 50,000 francs (approximately $10,000) was first made for primary schools, in 1816. This was doubled in 1829, and in 1831 was raised to a million francs. By 1850, the state aid for primary education had reached 3,000,000 francs; by 1870, 10,000,000 francs; by 1880, 30,000,000; by 1914, 220,000,000; and by 1930, approximately 600,000,000 francs (old value). In addition the State made grants for secondary schools and universities. In the United States the total expenditures for maintenance only of public elementary and secondary schools was $69,107,612, in 1870–71; had reached $214,964,618 by the end of the nineteenth century; and was $640,717,053 in 1915–16, with an additional $101,752,542 for universities. By 1920 the total expenditures for the maintenance of public elementary, secondary, and higher education in the United States was $1,036,151,209, and by 1930 approximately $3,200,000,000. These rapidly increasing expenditures merely record the changing political conception as to the national importance of enlarging the educational opportunities and advantages of those who are to constitute and direct the future State.

II. SCIENTIFIC

In no phase of the remarkable educational development made by nations, since the middle of the nineteenth century, has there been a more important expansion of the educational service than in the creation of schools dealing with the applications of science to the affairs of the national life. Still more, no extension of instruction into new fields has ever yielded material benefits, increased productivity, alleviated suffering, or multiplied comforts and conveniences as has this new development in applied scientific education during the past three quarters of a century.

Science instruction in the schools. At first this new work came in, as we have seen (p. 774), but slowly, and its introduction into the secondary schools of France, Germany, England, the United States, and other nations for a time met with bitter opposi-

tion from the partisans of the older type of intellectual training. In Germany it was not until after Emperor William II came to the throne (1888) that the *Realschulen* really found a warm partisan, he demanding (1890), in the name of the national welfare, that the secondary schools "depart entirely from the basis that has existed for centuries — the old monastic education of the Middle Ages" — and that "young Germans and not young Greeks and Romans" be trained in the schools (**R.** 368). During his reign the *Realschulen* (six-year course) and *Oberrealschulen* (nine-year course) were especially favored, while permission to found additional *Gymnasien* became hard to obtain. The scientific course in the French *Lycées* similarly did not prosper until after the coming of the Third Republic (1871) and the rise of modern scientific and industrial demands. In England it was not until after 1870 that the endowed secondary schools began to include science instruction, and laboratory instruction in the sciences began to be introduced into the secondary schools of the United States at about the same time. In the United States, too, the first manual-training high school was not established until 1880, but by 1890 the creation of such schools was clearly under way. Other nations — Switzerland, Holland, the Scandinavian countries — also began to include laboratory science instruction in the work of their secondary schools at about the same time. The decade of the seventies witnessed a rising interest in instruction in science which carried such work into the secondary schools of all progressive nations. To-day, in nearly all lands, we find secondary-school courses in science, or special secondary schools for scientific instruction, occupying a position of at least equal importance with the older classical courses or schools. As science instruction has become organized, and a knowledge of the principles of science has become diffused, object lessons, *Realien*, nature study, or elementary science instruction has very generally been put into the elementary or people's schools for the younger pupils. As a result, young people finishing the elementary schools to-day know more relating to the laws of the universe, and the applications of these laws to human life and industry, than did distinguished scholars two centuries ago.

All this work in the elementary schools, middle schools, people's high schools, secondary schools, or special technical schools of middle or secondary grade has been of much value in diffusing scientific knowledge and scientific methods of thinking and work-

ing among large numbers of people, as well as in revealing to many the possibilities of a scientific career. The great and important development of scientific instruction, however, since about 1860, has been in the fields of advanced applied science or technical education, and has taken place chiefly in new and higher specialized schools and research foundations. The fields in which the greatest scientific advances have been made, and to which we shall here briefly refer, have been engineering, agriculture, and medicine.

The beginnings of technical education. The beginnings of technical education were made earliest in France, Germany, and the United States, and in the order named. France and German lands, but particularly France, inherited through the monasteries what survived of the old Roman skills and technical arts. In the building of bridges, roads, fortifications, aqueducts, and imposing public buildings, the Romans had shown the possession of engineering ability of a high order. Some of this knowledge was retained by the monks of the early Middle Ages, as is evidenced by the monasteries they erected and the churches they built. Later it passed to others, and is evidenced in the great cathedrals and town halls of Europe, and particularly of northern France.

In military and civil engineering the French were also the true successors of the Romans. As early as 1747 a special engineering school for bridges and highways (*École des Ponts et Chaussées*) had been created, and a little later a special school to train mining engineers (*École des Mines*) was added. These were the first of the world's higher technical schools. After the Revolution, the new need for military and medical knowledge, as well as the general French interest in applied science, led to the creation of a large number of important higher technical institutions (list, p. 518), most of which have persisted to the present and been enlarged and extended with time. Napoleon also created a School of Arts and Trades (**R. 282**), and a number of military schools (p. 590).

In German lands there was early founded a series of trade schools,[1] which have in time been developed into important technical universities. After the creation of the Imperial German Empire, in 1871, these schools were especially favored by the

[1] The oldest was Charlottenburg (1799), Darmstadt (1822), Carlsruhe (1825), Munich (1827), Dresden (1828), Nuremberg (1829), Stuttgart (1829), Cassel (1830), Hanover (1831), Augsburg (1833), and Brunswick (1835). A similar school, which later developed into a technical university, was founded at Prague in Bohemia, in 1806.

government, and their work was raised to a rank equal to that of the older universities. To the excellent training given in these institutions the German leadership in applied science and industry, before 1914, was largely due.[1] It has been the particular function of these technical universities to apply scientific knowledge to the industries and the arts, and to show the technical schools beneath and the directors of German industries how further to apply it (R. 371). Of their work a recent *Report*[2] well says:

> While in other countries the development of science has been academic, in Germany every new principle elaborated by science has revolutionized some industry, modified some manufacturing process, or opened up an entirely new field of commercial exploitation. In the chemical industries of Germany . . . there is one trained university chemist for every forty working-people. It is important to realize that the development of Germany's manufactures and commerce has depended not upon the establishment of any monopoly in the domain of science, not upon any special advancement of science within her own boundaries, but primarily upon the practical utilization of the results of scientific research in Germany and other countries.

The creation of the United States Military Academy, at West Point, in 1802, marks the American beginnings in technical education. In 1824 the Rensselaer Polytechnic Institute was begun, largely as a manual-labor school after the Fellenberg plan, to give instruction "in the applications of science to the common purposes of life," and about 1850 this developed into one of the earliest of our four-year engineering colleges. In 1846 the United States organized a college for naval engineering, at Annapolis, to do for the Navy what West Point had done for the Army. In 1861 the Massachusetts Institute of Technology was founded, opening its doors in 1865. This was the first of a number of important new engineering colleges, and eight others had been established, by private funds, before 1880.

The development in England came a little later. Good engineering schools have since been developed in connection with

[1] The German technical training "produces an engineer who is not only older in years, but also more mature in experience and in judgment than the average graduate of an engineering college in America. Whether or not it would be wise to adopt — so far as that would be possible — German methods in the schools and colleges of the United States, it must nevertheless be recognized that those methods have given Germany a leadership in applied science and in industry which she will keep unless the educational authorities of other nations find some way of producing men of like calibre." (Munroe, James P., "Technical Education"; in Monroe's *Cyclopedia of Education.*)

[2] *Report of Commission on National Aid to Vocational Education*, Washington, 1914, p. 90.

the new municipal universities, while good engineering colleges have also been created at Oxford and Cambridge, as well as at the Scottish and Irish universities.

The new impulses to development. During the first six decades of the nineteenth century, France, the German States, and the United States were slowly moving toward the creation of special schools for technical education. After about 1860 the movement increased with great rapidity. A number of events contributed to this change in rate of development, the most important of which were:

1. The development attained by pure science, by about 1860. (See chapter XXVII, part II, p. 723.)
2. The Industrial Revolution (p. 728), which changed nations from an agricultural to an industrial status, opened up the possibilities of vast world trade, and created enormous demands for technically trained men to supervise and develop the rapidly growing industries of nations.
3. The London Exhibition of 1851, which displayed to the world the applications of science to trade, manufacturing, and the arts, made in particular by England. This opened the eyes of Europe and America to the possibilities of technical education, and led to the creation, in 1853, of a national Department of Science and Art (p. 638) for England. This began the stimulation, by money grants, of technical education and instruction in drawing, and exerted from the first an important influence on English education.
4. The passage by the Congress of the United States of the Morrill Land-Grant-College Act, in 1862, which provided for the creation of colleges of engineering, military science, and agriculture, in each of the American States.
5. The militarily successful wars of Prussia against Denmark, in 1864; Austria, 1866; and France, 1870–71. These revealed to other nations the importance of sound military and engineering education for a nation, and so tremendously stimulated German technical education that the new nation soon arose, in many lines, to a position of world industrial leadership (369).
6. The Centennial Exposition at Philadelphia, in 1876, which repeated the work of the London Exhibition of 1851, and gave a new meaning to the scientific and engineering education then developing in the new American Land-Grant Colleges.
7. The work of Virchow in Germany (1856) in developing pathology; of Pasteur in France, after 1859, in establishing the germ theory of disease; the English surgeon Lister, about the same time, in developing antiseptic surgery; and the new work of physiologists and chemists. Combined these have remade medical science, and have opened up immense possibilities for benefiting mankind.

Following these important stimuli to activity, the important nations of the world began the earnest development of technical education, and later medical education, with the result that this new development has affected educational practice all over the world. The new ideas have spread to all continents, and to-day the call for technical education comes not only from the older nations and such new countries as Canada, Australia, South Africa, and the South American States, but from such ancient and backward civilizations as Japan, China, Siam, the Philippines, the East Indies, Egypt, Persia, and Turkey.

In consequence to-day numerous and expensive engineering colleges and research institutions are maintained by the important world nations. To-day the trained engineer goes to work his wonders in all corners of the globe, and his task has become primarily that of organizing and directing men in the work of controlling the forces and materials of nature so that they may be made to benefit the human race. So rapid has been the development that, out of the earlier comprehensive type of engineering, to-day dozens of specialized types of engineering education and specialization have been evolved, covering such related fields as civil, mechanical, mining, metallurgical, electrical, architectural, chemical, electro-chemical, marine, naval, sanitary, biological, and public-health engineering. No longer can a nation hope to develop its resources, care properly for the modern needs of its people, or be counted among the important industrial or agricultural nations if it neglects the development of technical education.

Science applied to agriculture. France also was the direct inheritor, through the monks, of the old Roman agricultural knowledge and skills, though up to the nineteenth century no attempt to organize agricultural instruction took place anywhere in Europe. The earliest effort in that direction was a proposal made in 1775 by Abbé Rosier, in France, to Turgot, then Minister of Finance, on "A Plan for a National School of Agriculture." Nothing coming of the proposal, the Abbé submitted the proposal to the National Assembly, in 1789, and the same idea was later presented to Napoleon, but without results. The first person to give practical form to the idea was Fellenberg (p. 546), who conducted his manual-labor agricultural institute at Hofwyl, from 1806 to 1844, and inaugurated a plan of educational procedure which was soon afterwards copied in Switzerland, France, the South German

States, England, and the United States. One of the earliest institutions to be established outside of Switzerland was the Institute of Agriculture and Forestry, founded by the Agricultural Society of Würtemberg, in 1817, at Hohenheim, near Stuttgart.

The earliest schools to teach agriculture in France were the Royal Agronomic Institution at Grignon (1827); the Institute at Coetbo (1830), and the Agricultural School at San Juan (1833). By 1847 twenty-five agricultural schools were in operation in France, to several of which orphan asylums and penal colonies were attached. In 1848 the French Government reorganized the instruction in agriculture and gave it a national basis. It ordered the creation of a farm school in each department of France; a number of higher schools for agricultural instruction at central places; and a National Agronomic Institute for more advanced instruction. A treasury grant of 2,500,000 francs to establish the system was voted. In 1873 elementary instruction in agriculture was ordered given in all village and rural elementary schools.

In the United States a number of agricultural societies were formed early in the century, and a private school of agriculture was opened in Maine, in 1821, and another in Connecticut, in 1824. With the opening-up of the new West to farming and the change of the East to manufacturing, after about 1825, the agitation for agricultural education for a time died out, reappearing in Michigan, in 1850. In that year a new constitution was adopted which required the legislature to create a State School of Agriculture, and in 1857 the Michigan Agricultural College opened its doors. Two years later a "Farmers' High School," which later became the Pennsylvania State College, was opened in central Pennsylvania. In 1862, in the midst of the greatest civil war in history, the American Congress passed the very important Morrill Act, which provided for the creation of a college to teach agriculture, mechanic arts, and military science in each of the American States. It was a decade before many of these institutions opened, and for a time they amounted to but little. They had but few students, little money, and the instruction was very elementary and but poorly organized. Cornell University, in New York State, was one of the first (1868) of the new institutions to get under way and find its work. The Centennial Exposition (1876) gave the needed emphasis to the engineering courses, and by 1880 these were well established. The agricultural courses did not flourish for two decades longer, and the military science not

until the World War. Despite feeble beginnings, the result of the aid given by the national government has in time proved very valuable, and to-day very large sums of money are being appropriated by the American States and Territories for instruction in engineering, agriculture, home economics, and related sciences, and large numbers of students are now enrolled for this technical training.

The recent new interest in agricultural education. Since the latter part of the nineteenth century agricultural education has awakened new interest in many lands. The German States have created many schools for instruction in agriculture and forestry. Denmark has regenerated the rural life of the nation (**R.** 370) by its "People's High Schools" and its special schools for instruction in agriculture. Italy has recently made special efforts to extend agricultural instruction to its people. Canada, Australia, and New Zealand have established agricultural schools. In Algiers, Morocco, Japan, China, the Philippines, and India, good beginnings in agricultural education have been made.

As agricultural knowledge has been worked out and classified, and agricultural instruction has become organized, it has become possible to relegate some of the more elementary instruction to the school below. This was done in European nations before it took place in the United States. In 1888 the first American agricultural high school was established in Minnesota. By 1898 there were ten such schools in the United States, but since 1900 the development has been very rapid. By 1920 probably a thousand high schools were offering instruction in agriculture, while elementary instruction in agriculture had been introduced into the rural and village schools of practically every American agricultural State.

The agricultural schools, colleges, and experimental stations established by the national, state, and local educational authorities of different nations have added another new division to the work of public education, and one which is both very costly and very remunerative. Out of the work of these schools has come a vast quantity of useful knowledge, and hundreds of important applications of science to farm and home life. Old breeds in stock and grains have been improved, new breeds have been derived, and productivity has been greatly increased. Through the teachings of home economics the farmer's home is being transformed, while the applications of science made in these schools

are modifying almost every phase of agricultural life and rural living.

Medicine and sanitary science. Closely related to sanitary, biological, and public-health engineering has been the enormous recent development of medicine and surgery. Within half a century instruction in these subjects has been entirely transformed, and large and costly laboratories and hospitals are now required for the work. There has also been much specialization in medical training, within recent years, and especially has preventive medicine been developed. Extending the newly found biological and medical knowledge to the animal and vegetable worlds has resulted in a similar development of veterinary medicine [1] and plant pathology. A combination of medical knowledge with engineering and chemistry has produced the sanitary engineer, while medical knowledge and applied biology has produced the public-health expert.[2]

So important, too, has the control of all kinds of disease become, now that people, animals, insects, plants, and goods move so freely along the great trade routes of the world, that nations everywhere feel the necessity, now that scientific research has revealed to questioning man the methods of transmission of the diseases which once decimated armies and cities, destroyed stocks, and ruined harvests, of developing ample quarantine service and medical staffs to cope with diseases — human, animal, and plant — from without, and to control those which arise within. Nations too poor as yet to provide such service for themselves are today having such provision made for them by other nations, or by great national foundations,[3] so that other lands may be protected from the ravages of their diseases and the economic wealth of all

[1] The first veterinary school in the world was established at Lyons, France, in 1762; the second at Alfort, a suburb of Paris, in 1766; the third at Berlin, in 1792; and the fourth at London, in 1793.

[2] The development of scientific training for nursing, begun by the Germans near the end of their wars with Napoleon, is another example of the creation of a new profession through the application of science. This was carried to new levels by Miss Florence Nightingale, who began work in London, in 1860, after her experiences in the Crimean War of 1854–56, and has been greatly improved since 1870 as a result of the new medical knowledge and methods which have come in since that time. The provision of training for nurses, and the certification of doctors and nurses for practice, are other new developments in the field of state education. Similarly is the training and certification of dentists, veterinarians, and pharmacists, all of which are nineteenth-century additions.

[3] The work of the Rockefeller Foundation, an American Foundation organized to promote "the well-being of mankind throughout the world," in spending millions to provide China with a modern system of western medical education and hospital service, is perhaps the greatest example of a scientifically organized service ever rendered by the people of one nation to those of another.

may be increased. The element of Christian charity has also entered into the service, the labors of Dr. Grenfell in Labrador, and the work of the Rockefeller medical and surgical boat traveling

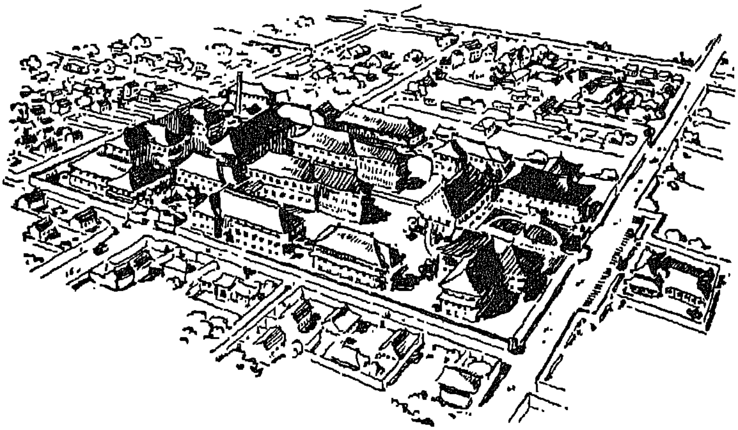

FIG. 232. THE PEKING UNION MEDICAL COLLEGE

A well-equipped center for instruction in western medicine, endowed by the Rockefeller Foundation. A similar school is being created at Shanghai, in central China. Existing medical schools at two other points, and nineteen hospitals scattered over the Republic, have also been aided by this American foundation. In addition, many medical missionaries, Chinese physicians, and nurses have been sent to the United States for study. To improve health standards and living conditions throughout the world is the purpose of the work of the Foundation, which now has work under way on every continent.

among the Philippine Islands and its hookworm work on every continent, being good examples of such Christian effort.

Applied science the nation's protector. To-day applied science stands everywhere as the nation's protector. Applied in sanitation and preventive medicine it has reduced the death rate, prolonged life, and protects homes from many hidden dangers. In the engineering fields it has transformed the face of the earth and all our ways of living and doing business. Applied to industry it builds factories and railways, and works out new processes to eliminate wastes, improve production, and utilize by-products. Thousands of labor-saving inventions owe their origin to a new truth worked out in some laboratory, and applied in another. Applied chemistry has wrought wonders in advancing industry, protecting the public welfare, eliminating unnecessary labor, and making life richer for all.

To-day the engineer with his railway and irrigating dam and

power plant in the desert has replaced the monk as the vanguard of the forces of civilization. The scientist in his laboratory in part replaces armies and navies as the protector of the nation's safety. The scientifically trained Red Cross nurse is fast replacing the unskilled devotion of the older Sister of Charity. The doctor and the surgeon at the medical mission are carrying a very practical type of Christian civilization into far-away lands. The laboratory expert in the quarantine station has succeeded the priest with bell and book in keeping pestilence away from the land. The public-health officer in the little town, and the sanitary engineer in the city, protect the health and happiness of millions of homes. The plant pathologist and veterinarian guard the crops and herds from which food and clothing are derived. The scientific experts in plant and animal industries work steadily to improve breeds and increase yields. When one compares present-day scientific knowledge with that represented in the thirteenth-century Encyclopædia of Bartholomew Anglicus (R. 77); our modern knowledge of diseases with the theories as to disease advanced by Hippocrates (p. 197), and taught for so many centuries in Christian Europe; our modern knowledge of bacterial transmission with the mediæval theories of Divine wrath and diabolic action; our modern ability to annihilate time and space compared with early nineteenth-century conditions; or modern applied science with the very limited technical knowledge possessed by the guilds of the later Middle Ages — the stories of Aladdin and his wonderful lamp seem to have been even more than realized in our practical everyday life.

Engineering, agriculture, and modern medicine stand as three of the great applications of modern science to human affairs, and as three of the most important and costly additions to state educational effort made since the time when nations began to accept the political philosophy of the eighteenth-century reformers and to take over the school from the Church, because by so doing the interests of the State could better be advanced thereby.

III. VOCATIONAL

What is vocational education? In a certain sense, all education is vocational, in that it aims to prepare one for some vocation in life. In Greece and Rome education was vocational, in that it prepared one to be a citizen in the State. During the Middle Ages education was to prepare for a vocation in the Church.

Later the vocation of a scholar appeared, and still later that of a gentleman. In modern times a large range of state services have been opened up as vocations. Since the beginning of the nineteenth century, with the extension of educational advantages to increasing numbers of the people, preparation for more intelligent living and citizenship have come to be new motives in education.

To-day we no longer use the term vocational education in this rather general sense, but restrict its use to the specific training of individuals for some useful employment. Training for law, medicine, the ministry, teaching, engineering, scientific agriculture, nursing, and commerce are examples of vocational education in its higher ranges. The development of education along these lines has previously been described. In this division of this chapter we shall use the term in a still more common and still more restricted sense, as meaning the training of the younger people of a State to do well certain specific things, by teaching them processes and the practical applications of knowledge, chiefly science and art, to the work of the vocation they expect to follow to earn their living. The *Report* of the American *Commission on National Aid to Vocational Education* (1914) defined vocational education (p. 16) as follows:

> Wherever the term "vocational education" is used in this *Report*, it will mean, unless otherwise explained, that form of education whose controlling purpose is to give training of a secondary grade to persons over fourteen years of age, for increased efficiency in useful employment in the trades and industries, in agriculture, in commerce and commercial pursuits, and in callings based upon a knowledge of home economics. The occupations included under these are almost endless in number and variety.

The need for vocational education. Used in this sense vocational education is an application of technical knowledge, worked out in the higher schools, to the ordinary vocations of a modern industrial world. As such it is a product of the Industrial Revolution and the breakdown of the age-old system of apprenticeship training,[1] and represents another of the important recent exten-

[1] "Large-scale production, extreme division of labor, and the all-conquering march of the machine, have practically driven out the apprenticeship system through which, in a simpler age, young helpers were taught, not simply the technique of some single process, but the 'arts and mysteries of a craft' as well. The journeyman and the artisan have given way to an army of machine workers, performing over and over one small process at one machine, turning out one small part of the finished article, and knowing nothing about the business beyond their narrow and limited task." (*Report of the Commission on National Aid to Vocational Education*, vol. I, pp. 19–20.)

sions of educational advantages to the masses of the people who labor with their hands to earn their daily bread.

Besides further democratizing education by extending its advantages to those who work in the shop and the office and on the farm, vocational education tends to correct many of the evils of modern industrial life. It puts the worker in possession of a great body of scientific knowledge relating to his work which shops and offices cannot give, and it keeps him, for several years after he becomes a wage earner and at a very impressionable period of his life, under the directing care of the school. It thus tends "to counteract the specialization and routine of the workshop, which wears out his body before nature has completed its development in form and power, blunts the intelligence which the school had tried to awaken, shrivels up his heart and imagination, and destroys his spirit of work."

Vocational education in Europe and the United States. For almost half a century the leading nations of western Europe, in an effort to readjust their age-old apprenticeship system of training to modern conditions of manufacture, and to develop new national prestige and strength, have given careful attention to the education of such of their children as were destined for the vocations of the industrial world. Germany, Austria, Switzerland, and France have been leaders, with Germany most prominent of all.[1] No small part of the great progress made by that country in securing world-wide trade,[2] before the World War, was due to the extensive and thorough system of vocational education worked out for German youths (R. 371). In commercial education, too, the Germans, up to 1914, led the world. Even more, they were the only great national group which had done much to develop commercial training. Next to Germany probably came the United States. The marked economic progress of Switzerland during the past quarter-century has likewise been due in large part to that type of education which would enable her, by skillful

[1] "In no country will you find the problem taken up in so thorough a manner; in no country will you find an attempt made to cover, by means of industrial schools, the occupations of everyone, from the lowly laborer to the director of the great manufacturing establishment. The State provided industrial training for every person who will be better off with it than without it. No occupation is too humble to receive the attention of the German authorities; and the opinion prevails there that science and art have a place in every occupation known to man." (Cooley, E. G., in *Report to the Commercial Club of Chicago*, 1912.)

[2] For example, the foreign trade of Germany, in 1880, was $31 per capita of the total population, and that of the United States was $32. Thirty years later, in 1910, Germany's foreign trade had increased to $62 per capita, and that of the United States to only $37.

artisanship, to make the most of her very limited resources. France has profited greatly, during the past half-century also, from vocational education along the lines of agriculture and industrial art. In Denmark, agricultural education has remade the nation (**R. 370**), since the days of its humiliation and spoliation at the hands of Prussia. England, though keenly sensitive to German trade competition, made only very moderate efforts in the direction of vocational education until Germany plunged the world in war in an effort more quickly to dominate commercially. Now, in the Fisher Education Act of 1918 (p. 649), England has at last laid foundations for a great national system of vocational education. Japan, also, recently laid large plans for a national system of vocational training.

In the United States but little attention was given to educating young people for the vocations of life until about 1905–10, though modern manufacturing conditions had before this largely destroyed the old apprenticeship type of training. Endowed with enormous natural resources; not being pressed for the means of subsistence by a rapidly expanding population on a limited land area; able to draw on Europe for both cheap manual labor and technically educated workers; largely isolated and self-sufficient as a nation; lacking a merchant marine; not being thrown into severe competition for international trade; and able to sell its products[1] to nations anxious to buy them and willing to come for them in their own ships; the people of the United States did not, up to recently, feel any particular need for anything other than a good common-school education or a general high-school education for their workers. The commercial course in the high school, the manual-training schools and courses, and

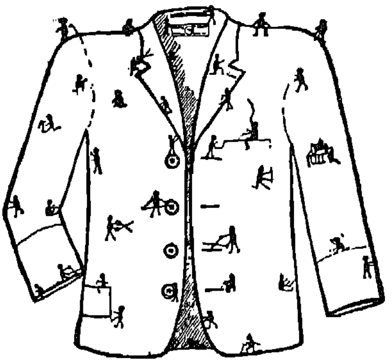

FIG. 233. THE DESTRUCTION OF THE TRADES IN MODERN INDUSTRY

Under the old conditions of apprenticeship a boy learned all the processes and became a tailor. To-day, in a thoroughly organized clothing factory, thirty-nine different persons perform different specialized operations in the manufacture of a coat.

[1] Chiefly raw products — a prodigal waste of natural resources. What every nation should do is to work up its raw products at home, and sell finished goods rather than raw products — "sell brains, rather than materials." (**R. 370.**)

drawing and creative art were felt to be
necessary to provide.

mission on Vocational Education. Largely
art to expanding world commerce and in-
in world trade; in part to a national realiza-
of the future are to be largely commercial
o the dawning upon the American people of
.hought out and put into practice by Impe-
ɾ), that that nation will triumph in foreign
such triumph means to-day in terms of the
ɜ of its citizenship (R. 372), which puts the
skill and brains into what it produces and

f sporadic efforts in different parts of the
roduction of a number of bills into Congress
ɜ passage, the favorite English plan was fol-
.tial Commission was appointed (1913) to in-
', and to report on the desirability and feasi-
›f national aid to stimulate the development
:ion. The Commission made its report in
a plan for gradually increasing national aid
.t them in developing and maintaining what
e a national system of agricultural, trade,
ıe-economics education.

s findings. The Commission found that
in round numbers, 12,500,000 persons en-
in the United States, of whom not over one
ʳ adequate preparation for farming; and that
ɔo persons engaged in manufacturing and
not one per cent of whom had had any op-
ate training.[2] In the whole United States
le schools, of all kinds, than existed in the lit-
ι of Bavaria, a State about the size of South
›ne Bavarian city of Munich, a city about the

. in the United States was established privately, in New
900 some half-dozen had been similarly established in dif-
.y. In 1902 a trade school for girls was founded in New
neer work. In 1906 Massachusetts created a State Com-
ucation, and later provided for the creation of industrial
ın enacted the first trade-school law, and New York State

formed an interesting contrast to such conditions. There
:e to be found, and the nation, before 1914, was rapidly
vocational education.

size of Pittsburgh, had more trade schools than were to be found in all the larger cities of the United States, put together. The Commission further found that there were 25,000,000 persons in

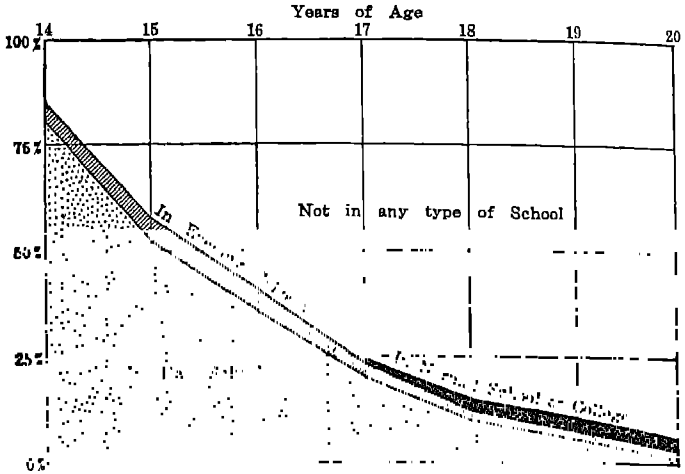

FIG. 234. SCHOOL ATTENDANCE OF AMERICAN CHILDREN, FOURTEEN TO TWENTY YEARS OF AGE

Based on an estimate made by the United States Bureau of Education in 1907 (Bulletin No. 1, p. 29), and based on conditions then existing, but probably still approximately true. In evening schools all classes were counted—public, private, Y.M.C.A., Y.W.C.A., etc. Public and private day schools, both elementary and secondary, also were counted.

the nation, eighteen years of age or over, engaged in farming, mining, manufacturing, and mechanical pursuits, and in trade and transportation, and of these the *Report* said:

> If we assume that a system of vocational education, pursued through the years of the past, would have increased the wage-earning capacity of each of these persons to the extent of only ten cents a day, this would have made an increase of wages for the group of $2,500,000 a day, or $750,000,000 a year, with all that this would mean to the wealth and life of the nation.
>
> This is a very moderate estimate, and the facts would probably show a difference between the earning power of the vocationally trained and the vocationally untrained of at least twenty-five cents a day. This would indicate a waste of wages, through lack of training, amounting to $6,250,000 every day, or $1,875,000,000 for the year.

The Commission estimated that a million new young people were required annually by our industries, and that it would need three years of vocational education, beyond the elementary-school

age, to prepare them for efficient service. This would require that three million young people of elementary-school age be continually enrolled in schools offering some form of vocational training. This was approximately three times the number of young people then enrolled in all public and private high schools in the United States, and following any kind of a course of study. In addition, the untrained adult workers then in farming and industry also needed some form of adult or extension education to enable them to do more effective work. The Commission further pointed out that there were in the United States, in 1910, 7,220,298 young people between the ages of fourteen and eighteen years, only 1,032,461 of whom were enrolled in a high school of any type, public or private, day or evening (Fig. 234), and few of those enrolled were pursuing studies of a technical type.

American beginnings; meaning of the work. In 1917 the American Congress made the beginnings of what is destined to develop rapidly into a truly national system of vocational education for the boys and girls of secondary-school age in the United States. This new addition to the systems of public instruction now provided is one which in time will bring returns out of all proportion to its costs. Without it the national prosperity and happiness would be at stake, and the position the United States has attained in the markets of the world could not possibly be maintained (**R. 372**).

This new American legislation is based on the best continental European experience, and is somewhat typical of recent national legislation for similar objects elsewhere. It is to include vocational training for agriculture, the trades and industries, commerce, and home economics.[1] A certain portion of the money appropriated annually by the national government is to be used for making or coöperating in studies and investigations as to needs and courses in agriculture, home economics, trades, industries, and commerce. The courses must be given in the public

[1] As illustrative of the general character of the vocations to be trained for, a few of the more common ones may be mentioned:

In agriculture: The work of general farming, orcharding, dairying, poultry-raising, truck gardening, horticulture, bee culture, and stock-raising.

In the trades and industries: The work of the carpenter, mason, baker, stonecutter, electrician, plumber, machinist, toolmaker, engineer, miner, painter, typesetter, linotype operator, shoecutter and laster, tailor, garment maker, straw-hat maker, weaver, and glove maker.

In commerce and commercial pursuits: The work of the bookkeeper, clerk, stenographer, typist, auditor, and accountant.

In home economics: The work of the dietitian, cook and housemaid. institution manager, and household decorator.

schools; must be for those over fourteen years of age and of less than college grade; and must be primarily intended for those who are preparing to enter or who have entered (part-time classes) a trade or a useful industrial pursuit.

As nation after nation becomes industrialized, as all except the smallest and poorest nations are bound to become in time, vocational education for its workers in the field, shop, and office will be found to be another state necessity. Only the State can adequately provide this, for only the State can finance or properly organize and integrate the work of so large and so important an undertaking. Though costly, this new extension of state educational effort will be found to be a wise business investment for every industrial and commercial nation. Considered nationally, the workers of any nation not provided with vocational education will find themselves unable to compete with the workers of other nations which do provide such specialized training.

IV. SOCIOLOGICAL

A new estimate as to the value of child life. As we saw in chapter XVIII, which described the opportunities for and the kind of schooling developed up to the middle of the eighteenth century, but little of what may be called formal education had been provided up to then for the great mass of children, even in the most progressive nations. We also noted the extreme brutality of the school. Such was the history of childhood, so far as it may be said to have had a history at all, up to the rise of the great humanitarian movement early in the nineteenth century.[1] Neglect, abuse, mutilation, excessive labor, heavy punishments, and often virtual slavery awaited children everywhere up to recent times. The sufferings of childhood at home were added to by others in the school (p. 455) for such as frequented these institutions.

After the coming of mills and manufacturing the lot of children became, for a time, worse than before. The demand for cheap labor led to the apprenticing of children to the factories to tend machines, instead of to a master to learn a trade, and there they

[1] "The snail's pace at which the race has moved toward humanitarianism is indicated by Payne's estimate (p. 6) that the race is perhaps two hundred and forty thousand years old, civilized man a few hundred years old, and a humanitarianism large enough to have any real concern in any organized fashion for the protection of children scarcely fifty years old. The fact that organizations in great number, laws, penalties, and constant vigilance are still everywhere needed to secure for children their inherent rights is evidence enough that we have still a long way to go before we reach the golden age." (Waddel, C. W., *An Introduction to Child Psychology*, p. 5.)

became virtual slaves and their treatment was most inhuman.[1] Conditions were worse in England than elsewhere, not because the English were more brutal than the French or the Germans, but because the Industrial Revolution began earlier in England and before the rise of humanitarian influences. England was a manufacturing nation decades before France, and longer still before Germany. By the time Germany had changed from an agricultural to a manufacturing nation (after 1871), the new humanitarianism and new economic conditions had placed a new value on child life and child welfare.

Since about 1850 an entirely new estimate has come to be placed on the importance of national attention to child welfare, though the beginnings of the change date back much earlier. As we have seen (p. 325), England early began to care for the children of its poor. In the Poor-Relief and Apprenticeship Law of 1601 (**R. 174**) England organized into law the growing practice of a century (p. 326) and laid the basis for much future work of importance. In this legislation, as we have seen, the foundations of the Massachusetts school law of 1642 were laid. In the Virginia laws of 1643 and 1646 (**R. 200 a**) and the Massachusetts law of 1660, providing for the apprenticeship of orphans and homeless children, the beginnings of child-welfare work in the American Colonies were made.

Many of the Catholic religious orders in Europe had for long cared for and brought up poor and neglected children, and in 1729 the first private orphanage in the new world was established by the Ursulines (p. 346) in New Orleans. The first public orphanage in America was established in Charleston, South Carolina, in 1790; the first in England at Birmingham, in 1817; and in 1824 the New York House of Refuge was founded. The latter was the forerunner of the juvenile reformatory institutions established later by practically all of the American States. These have developed chiefly since 1850. To-day most of the American States and governments in many other lands also provide state homes

[1] "As late as 1840 children of ten to fifteen years of age and younger were driven by merciless overseers for ten, twelve, sixteen, even twenty hours a day in the lace mills. Fed the coarsest food, in ways more disgusting than those of the boarding schools described by Dickens, they slept, when they had opportunity, often in relays, in beds that were constantly occupied. They lived and toiled, day and night, in the din and noise, filth and stench, of the factory that coined their life's blood into gold for their exploiters. Sometimes with chains about their ankles, to prevent their attempts to escape, they labored until epidemics, disease, or premature death brought welcome relief from a slavery that was forbidden by law for negro slaves in the colonies." (Payne, G. H., *The Child in Human Progress*.)

for orphan and neglected children, where they are clothed, fed, cared for, educated, and trained for some useful employment.

Child-labor legislation. One of the best evidences of the new nineteenth-century humanitarianism is to be found in the large amount of child-labor legislation which arose, largely after 1850, and which has been particularly prominent since 1900.

Under the earlier agricultural conditions and the restricted demand for education for ordinary life needs, child labor was not especially harmful, as most of it was out of doors and under reasonably good health conditions. With the coming of the factory system, the rise of cities and the city congestion of population, and other evils connected with the Industrial Revolution, the whole situation was changed. Humanitarians now began to demand legislation to restrict the evils that had arisen. This demand arose earliest in England, and resulted in the earliest legislation there.

The year 1802 is important in the history of child-welfare work for the enactment, by the English Parliament, of the first law to regulate the employment of children in factories. This was known as the Health and Morals of Apprentices Act (R. 373). This Act, though largely ineffectual at the time, ordered important reforms which aroused public opinion and which later bore important fruit. By it the employment of work-house orphans was limited; it forbade the labor of children under twelve, for more than twelve hours a day; provided that night labor of children should be discontinued, after 1804; ordered that the children so employed must be taught reading and writing and ciphering, be instructed in religion one hour a week, be taken to church every Sunday, and be given one new suit of clothes a year; ordered separate sleeping apartments for the two sexes, and not over two children to a bed; and provided for the registration and inspection of factories. This law represents the beginnings of modern child-labor legislation. It was 1843 before any further child-labor legislation of importance was enacted, and 1878 before a comprehensive child-labor bill was finally passed. In the United States the first laws regulating the employment of children and providing for their school attendance were enacted by Rhode Island in 1840, and Massachusetts in 1842. Factory legislation in other countries has been a product of more recent forces and times.

To-day important child-labor legislation has been enacted by all progressive nations, and the leading world nations have taken

advanced ground on the question. All recent thinking is opposed to children engaging in productive labor. With the rise of organized labor, and the extension of the suffrage to the laboring man, he has joined the humanitarians in opposition to his children being permitted to labor. From an economic point of view also, all recent studies have shown the unprofitableness of child labor and the large money-value, under present industrial conditions, of a good education. As a result of much agitation and the spread of popular education, it has at last come to be a generally accepted principle (**R. 374**) that it is better for children and better for society that they should remain in school until they are at least fourteen years of age, and be specially trained for some useful type of work. Shown to be economically unprofitable, and for long morally indefensible, child labor is now rapidly being superseded by suitable education and the vocational training and guidance of youth in all progressive nations.

Compulsory school-attendance legislation. The natural corollary of the taxation of the wealth of the State to educate the children of the State, and the prohibition of children to labor, is the compulsion of children to attend school that they may receive the instruction and training which the State has deemed it wise to tax its citizens to provide.

Except in the German States, compulsory education is a relatively recent idea, though in its origins it is a child of the Protestant Reformation theory as to education for salvation. Luther and his followers had stood for the education of all, supported by (**R. 156**) and enforced by (**R. 158**) the State. This idea of the education of all to read the Bible took deep root, as we have seen, with both Lutherans and Calvinists. In 1619 the little Duchy of Weimar made the school attendance of all children, six to twelve years of age, compulsory, and the same idea was instituted in Gotha by Duke Ernest (p. 317), in 1642; the same year that the Massachusetts General Court ordered the Selectmen of the towns to ascertain if parents and the masters of apprentices (**R. 190**) were training their children "in learning and labor" and "to read and understand the principles of religion and the capital laws of the country." This latter law is remarkable in that, for the first time in the English-speaking world, a legislative body representing the State ordered that all children should be taught to read. Five years later (1647) the Massachusetts Court ordered the establishment of schools (**R. 191**) better to enforce the compulsion.

and thus laid the foundations upon which the American public-school systems have since been built. In Holland, the Synod of Dort (1618) had tried to institute the idea of compulsory education (**R. 176**), and in 1646 the Scotch Parliament had ordered the compulsory establishment of schools (**R. 179**).

In German lands the compulsory-attendance idea took deep root, and in consequence the Germans were the first important modern nation to enforce, thoroughly, the education of all. In 1717 King Frederick William I issued (p. 555) the first compulsory-education law for Prussia, ordering that "hereafter wherever there are schools in the place the parents shall be obliged, under severe penalties, to send their children to school, . . . daily in winter, but in summer at least twice a week." He further ordered that the fees for the poor were to be paid "from the community's funds." Finally Frederick the Great organized the earlier procedure into comprehensive codes, and made (1763, **R. 274**, § 10; 1765, **R. 275** d) detailed provisions relating to the compulsion to attend the schools. In the Code of 1794 (p. 565) the final legislative step was taken when it was ordered that "the instruction in school must be continued until the child is found to possess the knowledge necessary to every rational being." By the middle of the eighteenth century the basis was clearly laid in Prussia for that enforcement of the compulsion to attend schools which, by the middle of the nineteenth century, had become such a notable characteristic of all German education. The same compulsory idea early took deep root among the Scandinavian peoples. In consequence the lowest illiteracy in Europe, at the beginning of the nineteenth century, was to be found (see map, p. 714) among the Finns, Swedes, Norwegians, Danes, and Germans.

The compulsory-attendance idea died out in America, in the Netherlands, and in part in Scotland. In England and in the Anglican Colonies in America it never took root. In France the idea awaited the work of the National Convention, which (1792) ordered three years of education compulsory for all. War and the lack of interest of Napoleon in primary education caused the requirement, however, to become a dead letter. The Law of 1833 provided for but did not enforce it, and real compulsory education in France did not come until 1882. In England the compulsory idea received but little attention until after 1870, met with much opposition, and only recently have comprehensive reforms been provided. In the United States the new beginnings of compul-

sory-attendance legislation date from the Rhode Island child-labor law of 1840, and the first modern compulsory-attendance law enacted by Massachusetts, in 1852. By 1885, fourteen American States and six Territories had enacted some form of compulsory-attendance law. Since 1900 there has been a general revision of American state legislation on the subject, with a view to increasing and the better enforcement of the compulsory-attendance requirements, and with a general demand that the National Congress should enact a national child-labor law.

As a result of this legislation the labor of young children has been greatly restricted; work in many industries has been prohibited entirely, because of the danger to life and health; compulsory education has been extended in a majority of the American States to cover the full school year; poverty, or dependent parents, in many States no longer serves as an excuse for non-attendance; often those having physical or mental defects also are included in the compulsion to attend, if their wants can be provided for; the school census has been changed so as to aid in the location of children of compulsory school-attendance age; and special officers have been authorized or ordered appointed to assist school authorities in enforcing the compulsory-attendance and child-labor laws. Having taxed their citizens to provide schools, the different States now require children to attend and partake of the advantages provided. The schools, too, have made a close study of retarded pupils, because of the close connection found to exist between retardation in school and truancy and juvenile delinquency.

One result of this legislation. One of the results of all this legislation has been to throw, during the past quarter of a century, an entirely new burden on schools everywhere. Such legislation has brought into the schools not only the truant and the incorrigible, who under former conditions either left early or were expelled, but also many children who have no aptitude for book learning, and many of inferior mental qualities who do not profit by ordinary classroom procedure. Still more, they have brought into the school the crippled, tubercular, deaf, epileptic, and blind, as well as the sick, needy, and physically unfit. By steadily raising the age at which children may leave school, from ten or twelve up to fourteen and sixteen, schools everywhere have come to contain many children who, having no natural aptitude for study, would at once, unless specially handled, become a nuisance in the

school and tend to demoralize schoolroom procedure. These laws have thrown upon the school a new burden in the form of public expectancy for results, whereas a compulsory-education law cannot create capacity to profit from education. Under the earlier educational conditions the school, unable to handle or educate such children, dealt with them much as the Church of the time dealt with religious delinquents. It simply expelled them or let them drop from school, and no longer concerned itself about them. To-day the public expects the school to retain and get results with them. Consequently, within the past twenty-five years the whole attitude of the school toward such children has undergone a change; many different kinds of classes and courses, that might serve better to handle them, have been introduced; and an attempt has been made to salvage them and turn back to society as many of them as possible, trained for some form of social and personal usefulness.

The education of defectives. Another nineteenth-century expansion of state education has come in the provision now generally made for the education of defectives. To-day the state school systems of Christian nations generally make some provision for state institutional care, and often for local classes as well, for the training of children who belong to the seriously defective classes of society. This work is almost entirely a product of the new humanitarianism of modern times. Excepting the education of the deaf, seriously begun a little earlier, all effective work dates from the first half of the nineteenth century. At first the feasibility of all such instruction was doubted, and the work generally was commenced privately. Out of successes thus achieved, public institutions have been built up to carry on, on a large scale, what was begun privately on a small scale. It is now felt to be better for the State, as well as for the unfortunates themselves, that they be cared for and educated, as suitably and well as possible, for self-respect, self-support, and some form of social and vocational usefulness. In consequence, the compulsory-attendance laws of the leading world States to-day require that defectives, between certain ages at least, be sent to a state institution or be enrolled in a public-school class specialized for their training.

Beginnings of the work. Up to the middle of the eighteenth century a number of private efforts at the education of the deaf are on record, all dating however from the pioneer work of a Span-

ish Benedictine, in 1578. In 1760 a new era in the education of the deaf was begun when Abbé de l'Épée opened a school at Paris for the oral instruction of poor deaf mutes, and Thomas Braidwood (1715–1806) began similar work at Edinburgh. A few years later (1778) a third school was opened at Leipzig. This last was established under the patronage of the Elector of Saxony, and was the first school of its kind in the world to receive government recognition. The Paris school was taken over as a state institution by the Constituent Assembly, in 1791. In England the instruction of the deaf remained a private and a family monopoly until 1819. In 1817 the first school in America was opened, at Hartford, Connecticut, by the Reverend Thomas H. Gallaudet, and Massachusetts, in 1819, sent the first pupils paid for at state expense to this institution. In 1823 Kentucky created the first state school for the training of the deaf established in the new world, and Ohio the second, in 1827.

FIG. 235. ABBÉ DE L'ÉPÉE (1712–89)

FIG. 236. REV. THOMAS H. GALLAUDET TEACHING THE DEAF AND DUMB

From a bas-relief on the monument of Gallaudet, erected by the deaf and dumb of the United States, in the grounds of the American Asylum, at Hartford, Connecticut.

The education of the blind began in France, in 1784; England, in 1791; Austria, in 1804; Prussia, in 1806; Holland, in 1808; Sweden, in 1810; Denmark, in 1811; Scotland, in 1812; in Boston and New York, in 1832; and in Philadelphia, in 1833. All were private institutions, and general interest in the education of the blind was awakened later by exhibiting the pupils trained. The first book for the blind was printed in Paris, in 1786. The first kindergarten for the blind was estab-

lished in Germany, in 1861; the first school for the colored blind, by North Carolina, in 1869.

Before the nineteenth century the feeble-minded and idiotic were the laughing-stock of society, and no one thought of being able to do anything for them. In 1811 Napoleon ordered a census of such individuals, and in 1816 the first school for their training was opened at Salzburg, Austria. The school was unsuccessful, and closed in 1835. The real beginning of the training of the feeble-minded was made in France, by Édouard Seguin, "The Apostle of the Idiot," in 1837, when he began a life-long study of such defectives. By 1845 three or four institutions had been opened in Switzerland and Great Britain for their study and training, and for a time an attempt was made to effect cures. Gallaudet had tried to educate such children at Hartford, about 1820, and a class for idiots was established at the Blind Asylum in Boston, in 1848. The interest thus aroused led to the creation of

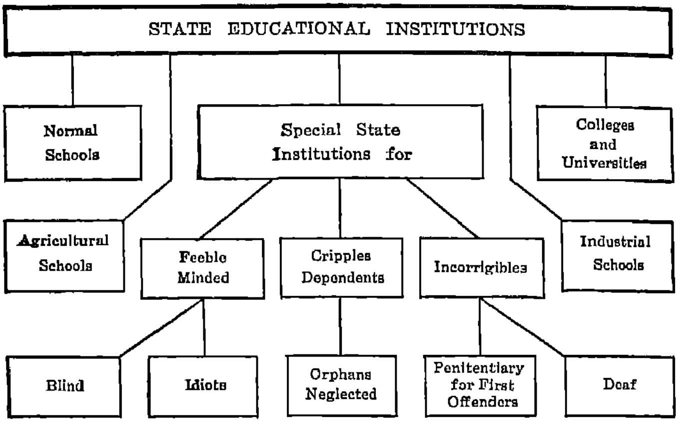

FIG. 237. EDUCATIONAL INSTITUTIONS MAINTAINED BY THE STATE
As state institutions, other than public schools.

the Massachusetts School for Idiotic and Feeble-Minded Youth, in 1851, the first institution of its kind in the United States. In 1867 the first city school class to train children of low-grade intelligence was organized in Germany, and all the larger cities of Germany later organized such special classes. Norway followed with a similar city organization, in 1874; and England, Switzerland, and Austria, about 1892. The first American city to organize such classes was Providence, Rhode Island, in 1893. Since that time special classes for children of low-grade mentality have

become a common feature of the large city school systems in most American cities.

In 1832 the first attempt to educate crippled children, as such, was made in Munich. The model school in Europe for the education of cripples was established in Copenhagen, in 1872. The work was begun privately in New York City, in 1861, and first publicly in Chicago, in 1899. The London School Board first began such classes in England, in 1898.

Dependents, orphans, children of soldiers and sailors, and incorrigibles of various classes represent others for whom modern States have now provided special state institutions. To-day a modern State finds it necessary to provide a number of such specialized institutions, or to make arrangements with neighboring States for the care of its dependents, if it is to meet what have come to be recognized as its humanitarian educational duties. The more important of these special state institutions are shown in the diagram given in Fig. 237.

Public playgrounds and play directors, vacation schools, juvenile courts, disciplinary classes, parental schools, classes for mothers, visiting home-teachers and nurses, and child-welfare societies and officers, are other means for caring for child life and child welfare which have all been begun within the past half-century. The significance of these additions lies chiefly in that the history of the attitude of nations toward their child life is the history of the rise of humanitarianism, altruism, justice, order, morality, and civilization itself.

The education of superior children. All the work described above and relating to the work of defectives, delinquents, and children for some reason in need of special attention and care has been for those who represent the less capable and on the whole less useful members of society — the ones from whom society may expect the least. They are at the same time the most costly wards of the State.

Wholly within the second decade of the present century, and largely as a result of the work of the French psychologist Alfred Binet (1857–1911) we are now able to sort out, for special attention, a new class of what are known as superior, or gifted children, and to the education of these special attention is to-day here and there beginning to be directed. Educationally, it is an attempt to do for democratic forms of national organization what a two-class school system does for monarchical forms, but to select intellec-

tual capacity from the whole mass of the people, rather than from a selected class or caste. We know now that the number of children of superior ability is approximately as large as the number of the feeble in mind, and also that the future of democratic governments hinges largely upon the proper education and utilization of these superior children. One child of superior intellectual capacity, educated so as to utilize his talents, may confer greater benefits upon mankind, and be educationally far more important, than a thousand of the feeble-minded children upon whom we have recently come to put so much educational effort and expense. Questions relating to the training of leaders for democracy's service attain new significance in terms of the recent ability to measure and grade intelligence, as also do questions relating to grading, classification in school, choice of studies, rate of advancement, and the vocational guidance of children in school.

The new interest in health. Another new expansion of the educational service which has come in since the middle of the nineteenth century, and which has recently grown to be one of large significance, is work in the medical inspection of schools, the supervision of the health of pupils, and the new instruction in preventive hygiene. This is a product of the scientific and social and industrial revolutions which the nineteenth century brought, rather than of humanitarian influences, and represents an application of newly discovered scientific knowledge to health work among children. Its basis is economic, though its results are largely physical and educational and social (R. 375).

Net Average Worth of a Person

Age	*Worth*
0	$90
5	950
10	2000
20	4000
30	4100
40	3650
50	2900
60	1650
70	15
80	−700

(Calculations by Dr. William Farr, formerly Registrar of Vital Statistics for Great Britain. Based on pre-war values.)

The discovery and isolation of bacteria; the vast amount of new knowledge which has come to us as to the transmission and possibilities for the elimination of many diseases; the spread of information as to sanitary science and preventive medicine; the change in emphasis in medical practice, from curative to preventive and remedial; the closer crowding together of all classes of people in cities; the change of habits for many from life in the open to life in the factory, shop, and apartment; and the growing realization of the economic value to the nation of its manhood and womanhood; have all alike combined with modern humani-

tarianism and applied Christianity to make progressive nations take a new interest in child health and proper child development. European nations have so far done much more in school health work than has the United States, though a very commendable beginning has been made here.

Medical inspection and health supervision. Medical inspection of schools began in France, in 1837, though genuine medical inspection, in a modern sense, was not begun in France until 1879. The pioneer country for real work was Sweden, where health officers were assigned to each large school as early as 1868. Norway made such appointments optional in 1885, and obligatory in 1891. Belgium began the work in 1874. Tests of eyesight were begun in Dresden in 1867. Frankfort-on-Main appointed the first German school physician in 1888. England first employed school nurses in 1887; and, in 1907, following the revelations as to low physical vitality growing out of the Boer War, adopted a mandatory medical-inspection and health-development act applying to England and Wales, and the year following Scotland did the same. Argentine and Chili both instituted such service in 1888, and Japan made medical inspection compulsory and universal in 1898.

In the United States the work was begun voluntarily in Boston, in 1894, following a series of epidemics. Chicago organized medical inspection in 1895, New York City in 1897, and Philadelphia in 1898. From these larger cities the idea spread to the smaller ones, at first slowly, and then very rapidly. The first school nurse in the United States was employed in New York City, in 1902, and the idea at once proved to be of great value. In 1906 Massachusetts adopted the first state medical inspection law. In 1912 Minnesota organized the first "State Division of Health Supervision of Schools" in the United States, and this plan has since been followed by other States.

From mere medical inspection to detect contagious diseases, in which the movement everywhere began, it was next extended to tests for eyesight and hearing, to be made by teachers or physicians, and has since been enlarged to include physical examinations to detect hidden diseases and a constructive health-program for the schools. The work has now come to include eye, ear, nose, throat, and teeth, as well as general physical examinations; the supervision of the teaching of hygiene in the schools, and to a certain extent the physical training and playground activities; and a

constructive program for the development of the health and physical welfare of all children. All this represents a further extension of the public-education idea.

V. THE SCIENTIFIC ORGANIZATION OF EDUCATION

An important recent development in the field of public education, and in a sense an outgrowth of all the preceding recent development which we have described, has been the organization of collegiate and university instruction in the history, theory, practice, and administration of education. Still more recent has been the organization of Teachers' Colleges and Schools of Education to give advanced training in educational research and in the solution of the practical problems of school organization and administration. So important has this recent development become that no history of educational progress would be complete without at least a brief mention of this recent attempt to give scientific organization to the educational process.

Early beginners. Though the teachers' seminaries had been organized in Germany and other northern lands toward the close of the eighteenth century, the normal school in France early in the nineteenth, and the training-college in England and the normal school in the United States by the close of the first third of that century, the work in these remained for a long time almost entirely academic in nature and elementary in character. This was also true of the superior normal school for training teachers for the *lycées* of France.

The reason for this is easy to find. The writings of the earlier educational reformers were little known; the contributions of Herbart and Froebel had not as yet been popularized; there was no organized psychology of the educational process, and no psychology better than that of John Locke; the detailed Pestalozzian procedure had not as yet been worked out in the form of teaching technique; the history of the development of educational theory or of educational practice had not been written; and almost no philosophy of the educational purpose had been formulated which could be used in the training-schools. In consequence the training of teachers, both for elementary and secondary instruction,[1]

[1] An exception to this statement is to be found in the work of the Pedagogical Seminary, organized in the German universities in the second decade of the nineteenth century, which were intended for the professional training of German university students for teaching in the German secondary schools. (See footnote 1, page 573.)

was almost entirely in academic subjects, with some talks on school-keeping and class organization and management added, and at times a little philosophy as to educational work, such as habit-formation, morality, thinking, and the training of the will. Educational journalism did not begin in either Europe or America until near the close of the first quarter of the nineteenth century, and it was 1850 before it attained any significance, and 1840 to 1850 before any important pedagogical literature arose.[1]

New influences. In 1843 there appeared, in Germany, the first two volumes of a very celebrated and influential History of Education, by a professor of mineralogy in the University of Erlangen, by the name of Karl Georg von Raumer. As a young man in Paris (1808–09), studying the great mineral collections found there, he read and was deeply stirred by Fichte's "Address to the German Nation" (p. 567). As a result he went to Yverdon, in 1809, and spent some months in studying the work in Pestalozzi's Institute. This interest in education he never lost, and thereafter, as professor of mineralogy at Halle and Erlangen, he also gave lectures on pedagogy (*Über Pädagogik*). The outgrowth of these lectures was his four-volume *History of Pedagogy from the Revival of Classical Studies to our own Time.*[2] The work was done with characteristic German thoroughness, and for long served as a standard organization and text on the history of the development of educational theory and practice since the days of the Revival of Learning. The work of von Raumer stimulated many to a study of the writings of the earlier educational re-

FIG. 238
KARL GEORG VON RAUMER
(1783–1865)

[1] When the first teachers' training-school in America was opened at Concord, Vermont, by the Reverend Samuel R. Hall, in 1823, it included, besides a three-year academy-type academic course, practice teaching in a rural school in winter, and some lectures on the "Art of Teaching." Without a professional book to guide him, and relying only upon his experience as a teacher, Hall tried to tell his pupils how to organize and manage a school. To make clear his ideas he wrote out a series of *Lectures on Schoolkeeping*, which some friends induced him to publish. This, the first professional book in English issued in America for teachers, appeared in 1829.

[2] *Geschichte der Pädagogik vom Wiederaufblühen klassicher Studien bis auf unsere Zeit.* Vols. I and II, 1843; vol. III, 1847; vol. IV, 1855. Much of this was translated into other languages. Barnard's *American Journal of Education*, begun in 1855, published a translation of much of von Raumer's work for American readers.

formers, and numerous books and papers on educational history and theory soon began to appear. Most important, for American students, was Henry Barnard's monumental *American Journal of Education*, begun in 1855, and continued for thirty-one years. This is a great treasure-house of pedagogical literature for American educators.

After 1850 the organization of a technique of instruction for the elementary-school subjects took place rapidly, in the normal schools of all lands, as it had earlier in the German teachers' seminaries. By 1868 the study of the new Herbartian psychology and educational theory was well under way in Germany, and by 1890 in the United States. By 1875 the kindergarten, with its new theory of child life, was also beginning to make itself felt in both Europe and America. Between 1850 and 1875 Weber, Lotze, Fechner, and Wundt laid the foundations for a new psychology (**R. 357**), and in 1878 Wundt opened the first laboratory for the experimental study of psychology at the University of Leipzig. In 1890 William James published his two-volume work on *Principles of Psychology,* a book so original and lucid in treatment that it at once gave a new teaching organization to modern psychology. After about 1880, the extension of education upward and outward in the United States, and the rapid development of state school systems which had by that time begun, began to make new demands for better scientific and legal and administrative organization, and this gave rise to a new type of educational literature.

After von Raumer's work, probably the greatest single stimulative influence of the mid-nineteenth century was that exerted by the marked successes of the Prussian armies in a series of short but very decisive wars. Against Denmark (1864) and Austria (1866), but in particular in the Franco-Prussian War of 1870–71, the Prussian armies proved irresistible. These military operations attracted new attention to education, and "the Prussian schoolmaster has triumphed" became a common world saying. This, coupled with the remarkable national development of United Germany which almost immediately set in, caused progressive nations to turn to the study of education with increased interest. The English and Scottish universities now began to establish lectureships in the theory and history of education,[1] and

[1] In 1876 S. S. Laurie (1829–1909) was elected to one of the first chairs in education in Great Britain, that of "Professor of the Theory, History, and Practice of Education" in the University of Edinburgh.

the first university chairs in education in the United States were founded.

The university study of education. In no country in the world have the universities, within the past three decades, given the attention to the study of Education — a term that in English-speaking lands has replaced the earlier and more limited "Pedagogy" — that has been given in the United States.[1] After the United States the newer universities of England probably come next. Up to 1890 less than a dozen chairs of education had been established in all the colleges of the United States, and their work was still largely limited to historical and philosophical studies of education, and to a type of classroom methodology and school management, since almost entirely passed over to the normal schools. By 1930 there were some six hundred colleges in the United States giving serious courses on educational history and procedure and administration, many of them maintaining large and important professional Schools of Education for the more scientific study of the subject, and for the training of leaders for the service of the nation's schools.

In the great advances which have taken place in the organization of education, during these three decades, no institution in the world has exerted a more important influence than has "Teachers College," Columbia University, in the City of New York, which was organized in 1887 as "The New York College for the Training of Teachers," but since 1890 has been affiliated with Columbia University, under its present name. This institution has been a model copied by many others over the world; has trained a large percentage of the leaders in education in the United States; and has been particularly influential with students from England, the English self-governing dominions, China, and South America.

To-day, in all the state universities and in many non-state institutions in the United States, we find well-organized Teachers' Colleges engaged in a work which two decades ago was being at-

[1] Probably the first lectures on Pedagogy given in any American college were given in 1832, in what is now New York University. From 1850 to 1855 the city superintendent of schools of Providence, Rhode Island, was Professor of Didactics, in Brown University. In 1860 a course of lectures on the "Philosophy of Education, School Economy, and the Teaching Art" was given to the seniors of the University of Michigan. In 1873 a Professorship of Philosophy and Education was established in the University of Iowa. This was the first permanent chair created in America. In 1879 a Department of the Science and Art of Teaching was created at the University of Michigan. In 1881 a Department of Pedagogy was created at the University of Wisconsin, and in 1884 similar departments at the University of North Carolina and at Johns Hopkins University.

tempted by but a few institutions anywhere. In the municipal universities of England, in Canada, in Japan and China, and in other democratic lands, we find the beginnings of a similar development of the scientific study of education. In these Schools or Colleges for the scientific study of education the best thinking on the problems of the reorganization and administration of education, and the most new and creative work, has been and is being done.[1]

The problems of the present. Pestalozzi dreamed that he might be able to psychologize instruction and reduce all to an orderly procedure, which, once learned, would make one a master teacher. What he was not able to accomplish he died thinking others after him would do. The problem of education has had, with time, no such simple and easy solution. Instead, with the development of state school systems, the extension of education in many new directions to meet new needs, and the application to the study of education of the same scientific methods which have produced such results in other fields of human knowledge, we have come to-day to have hundreds of problems, many of which are complex and difficult and which influence deeply the welfare of society and the State. That these problems, even with time, will receive any such simple solution as that of which Pestalozzi dreamed, may well be doubted. In the days of church control, memoriter instruction, and a school for religious ends, education was a simple matter; to-day it partakes of the difficulty and complexity which characterize most of the problems of modern world States. In consequence of this important change in the character of education a great number of important problems in educational organization, practice, and procedure now face us for solution.

Space can here be taken to mention only the more prominent of these present-day educational problems. On the administrative side is a whole group of problems relating to forms of organization: the proper educational relationships between the State and its subordinate units; the development of a state educational policy: the types of instruction the State must provide, and compel attendance upon; questions of taxation and support, compulsory attendance, and child labor; the training and oversight of teachers for the service of the State; problems of child health and welfare; the provision of adequate and professional supervision;

[1] In education, as in other lines of work, the statement of Richard H. Quick that the distinctive function of a university is not action, but thought, has been exemplified.

the provision of continuation schools, and of industrial and vocational training; the supervision of school buildings for health and sanitary control; and the relation of the State to private and parochial education. The problem of how to produce as effective and as thorough education for leadership with a one-class school system as with a two-class; the opening-up of opportunity for youth of brains in any social class to rise and be trained for service; the selection and proper training of those of superior intelligence; the elimination of barriers to the advancement of children of large intellectual endowment; and what best to do with those of small intellectual capacity, form another important group of present-day educational problems. Vocational training and technical education, and the relation and the proper solution of these questions to national happiness and prosperity and human welfare, form still another important group. The many questions which hinge upon instruction; the elimination of useless subject-matter; the best organization of instruction; proper aims and ends; moral and civic training; the most economical organization of school work; the saving of time; and what are desirable educational reorganizations, all these form a group of instructional problems of large significance for the future of public education. Still more in detail, but of large importance, are the questions relating to the scientific measurement of the results of instruction; the erection of attainable goals in teaching; and the introduction of scientific accuracy into educational work. Still another important group of problems relates to the readjustment of inherited school organization and practices, the better to meet the changed and changing conditions of national life — social, industrial, political, religious, economic, scientific — brought about by the industrial and social and scientific and political revolutions which have taken place.

These represent some of the more important new problems in education which have come to challenge us since the school was taken over from the Church and transformed into the great constructive tool of the State. Their solution will call for careful investigation, experimentation, and much clear thinking, and before they are solved other new problems will arise. So probably it will ever be under a democratic form of government; only in autocratic or strongly monarchical forms of government, where the study of problems of educational organization and adjustment are not looked upon with favor, can a school system to-day

remain for long fixed in type or uniform in character. Education to-day has become intricate and difficult, requiring careful professional training on the part of those who would exercise intelligent control, and so intimately connected with national strength and national welfare that it may be truthfully said to have become, in many respects, the most important constructive undertaking of a modern State.

QUESTIONS FOR DISCUSSION

1. Show that education must be extended and increased in efficiency in proportion as the suffrage is extended, and additional political functions given to the electorate. Illustrate.
2. Trace the changes in the character of the instruction given in the schools, paralleling such changes.
3. Explain the difference in use of the schools for nationality ends in Germany and France.
4. Of what is the recent development of evening, adult, and extension education an index?
5. Show why university education is more important in national life to-day than ever before in history.
6. Compare the rate of development of universities during the nineteenth century, and all time before the nineteenth. Of what is the difference in rate an index?
7. Explain why Americans have been less successful in introducing science instruction into their schools than have the Germans. Agriculture than the French.
8. Explain the breakdown of the old apprenticeship education.
9. Explain the American recent rapid acceptance of the agricultural high school, whereas the agricultural colleges for a long time faced opposition and lack of interest and support.
10. Explain the continued emphasis of high-school studies leading to the professions rather than the vocations, though so small a percentage of people are needed for professional work.
11. In Germany this was largely regulated by the Government; show how it would be much easier there than in the United States.
12. Show why European nations would naturally take up vocational training ahead of the United States, Canada, Australia, or South America.
13. Explain the reasons for the new conceptions as to the value of childlife which have come within the past hundred years, in all advanced nations. Why not in the less advanced nations?
14. Show the relation between the breakdown of the apprentice system, the Industrial Revolution, and the rise of compulsory school attendance.
15. Show that compulsory school attendance is a natural corollary to general taxation for education.
16. How do you account for the relatively recent interest in the education of defectives and delinquents? Of what is this interest an expression?
17. Does the obligation assumed to educate involve any greater exercise of state authority or recognition of duty than the advancement of the health of the people and the sanitary welfare of the State?
18. What additional unsolved problems would you add to the list given on the preceding page?

SELECTED READINGS

In the accompanying *Book of Readings* the following selections illustrative of the contents of this chapter are reproduced:

367. McKechnie, W. S.: The Environmental Influence of the State.
368. Emperor William II.: German Secondary Schools and National Ends.
369. Van Hise, Chas. R.: The University and the State.
370. Friend: What the Folk High Schools have done for Denmark.
371. U.S. Commission: The German System of Vocational Education.
372. U.S. Commission: Vocational Education and National Prosperity.
373. de Montmorency: English Conditions before the First Factory-Labor Act.
374. Giddings, F. R.: The New Problem of Child Labor.
375. Hoag, E. B., and Terman, L. M.: Health Work in the Schools.

QUESTIONS ON THE READINGS

1. Explain why it is now so important that the State properly environ (367) its youth.
2. What were the actuating motives behind the German Emperor's speech (368)? Was he right in his position as to the relation of the schools and national needs and welfare?
3. Explain Van Hise's conception (369) that the university is "The Soul of the State."
4. Does Denmark form any exception as to what might be done (370) in any country, such as Russia? Mexico?
5. Show that the results justified the German emphasis (371) on vocational training. How do you explain this German far-sightedness?
6. What will be the result when many nations (372) become highly skilled?
7. Show the growth of humanitarian influences by contrasting conditions in England in 1802 (373), and conditions to-day.
8. Would the English 1802 conditions be found in any Christian land to-day? Why?
9. Show that the child-labor problem (374) is a product of the Industrial Revolution.
10. Viewed in the light of history, what would we say of the present opposition to health work (375) in the schools?

SUPPLEMENTARY REFERENCES

*Allen, E. A. "Education of Defectives"; in Butler, N. M., *Education in the United States*, pp. 771–820.

Barnard, Henry. *National Education in Europe.*

**Commission on National Aid to Vocational Education, Report*, vol. I. (Document 1004, H. R., 63d Congress, 2d session, Washington, 1914.)

Cook, W. A. "A Brief Survey of the Development of Compulsory Education in the United States"; in *Elementary School Teacher*, vol. 12, pp. 331–35. (March, 1912.)

*Dean, A. D. *The Worker and the State.*

Eliot, C. W. *Education for Efficiency.*

Farrington, F. E. *Commercial Education in Germany.*

Foght, H. W. *Rural Denmark and its Schools.*

Friend, L. L. *The Folk High Schools of Denmark.* (Bulletin No. 3, 1914, United States Bureau of Education.)

*Hoag, E. B., and Terman, L. M. *Health Work in the Schools.*

Kandel, I. L. "The Junior High School in European Systems"; in *Educational Review*, vol. 58, pp. 305–29. (Nov. 1919.)

*Munroe, J. P. *New Demands in Education.*

*Payne, G. H. *The Child in Human Progress.*

Smith, A. T., and Jesien, W. S. *Higher Technical Education in Foreign Countries.* (Bulletin No. 11, 1917, United States Bureau of Education.)

Snedden, D. S. *Vocational Education.*

*Terman, L. M. *The Intelligence of School Children.*

Waddle, C. W. *Introduction to Child Psychology*, chap. I.

Ware, Fabian. *Educational Foundations of Trade and Industry.*

CONCLUSION; THE FUTURE

We have now reached the end of the story of the rise and progress of man's conscious effort to improve himself and advance the welfare of his group by means of education. To one who has followed the narrative thus far it must be evident how fully this conscious effort has paralleled the history of the rise and progress of western civilization itself. Beginning first among the Greeks — the first people in history to be "smitten with the passion for truth," the first possessing sufficient courage to put faith in reason, and the first to attempt to reconcile the claims of the State and the individual and to work out a plan of "ordered liberty" — a new spirit was born and in time passed on to the western world. As Butcher well says (R. 11), "the Greek genius is the European genius in its first and brightest bloom, and from a vivifying contact with the Greek spirit Europe derived that new and mighty impulse which we call Progress." Hellenizing first the Eastern Mediterranean, and then taking captive her rude conqueror, the Hellenization of the Roman and early Christian world was the result.

Then followed the reaction under early Christian rule, and the fearful deluge of barbarism which for centuries well-nigh extinguished both the ancient learning and the new spirit. Finally, after the long mediæval night, came "time's burst of dawn," first and for a long time confined to Italy, but later extending to all northern lands, and in the century of revival and rediscovery and reconstruction the Greek passion for truth and the Greek courage to trust reason were reawakened, and once more made the heritage of the western world. Once again the Greek spirit, the spirit of freedom and progress and trust in the power of truth, became the impulse that was to guide and dominate the future. To follow reason without fear of consequences, to substitute scientific for empirical knowledge, to equip men for intelligent participation in civic life, to discover a rational basis for conduct, to unfold and expand every inborn faculty and energy, and to fill man with a restless striving after an ideal — these essentially Greek characteristics in time came to be accepted by an increasing number of modern men, as they had been by the thoughtful men of the ancient Greek world, as the law and goal of human endeavor. From

this point on the intellectual progress of the western world was certain, though at times the rate seems painfully slow.

The great events which stand out in modern history — milestones, as it were, along the road of the intellectual progress of mankind in the recovery of the Greek spirit — were the revival of the ancient learning, the Protestant appeal to reason, the recovery and vast extension of the old scientific knowledge, the assertion of the rights of the individual as opposed to the rights of the State, and the growth of a new humanitarianism, induced by the teachings of Christianity, which has softened old laws and awakened a new conception of the value of child and human life. Out of these great historic movements have come modern scholarship, the inestimable boon of religious liberty, the firm establishment of the idea of the reign of law in an orderly universe, the conception of government as in the interests of the governed, the substitution of democracy and political equality for the rule of a class or an autocratic power, and the assertion of the right to an education at public expense as a birthright of every child. The common school, the education of all, equality of rights and opportunity, full and equal suffrage, the responsibility of all for the advancement of the common welfare, and liberty under law have been the natural consequences and the outcome of these great struggles to set free and quicken the human spirit.

The Peace of Westphalia (1648), which marked the close of a century of effort to crush human reason and religious liberty with violence and oppression, marked a turning-point in the history of the world. Though religious intolerance and bigotry might still persist in places for centuries to come, this Peace acknowledged the futility of persecution to stamp out human inquiry, and marked the downfall of intellectual mediævalism. The work of the political philosophers of the eighteenth century, the establishment of a new political ideal by the leaders of the American Revolution, and the drastic sweeping-away of ancient abuses in Church and State in the Revolution in France, applied a new spirit to government, ushered in the rule of the common man, and began the establishment of democracy as the ruling form of government for mankind. The recent World War in Europe was in a sense a sequel to what had gone before. One result of its outcome, despite certain reactionary but temporary old-type governments that the near future may see set up in places, has been the elimination of the mediæval theory of the "divine right of

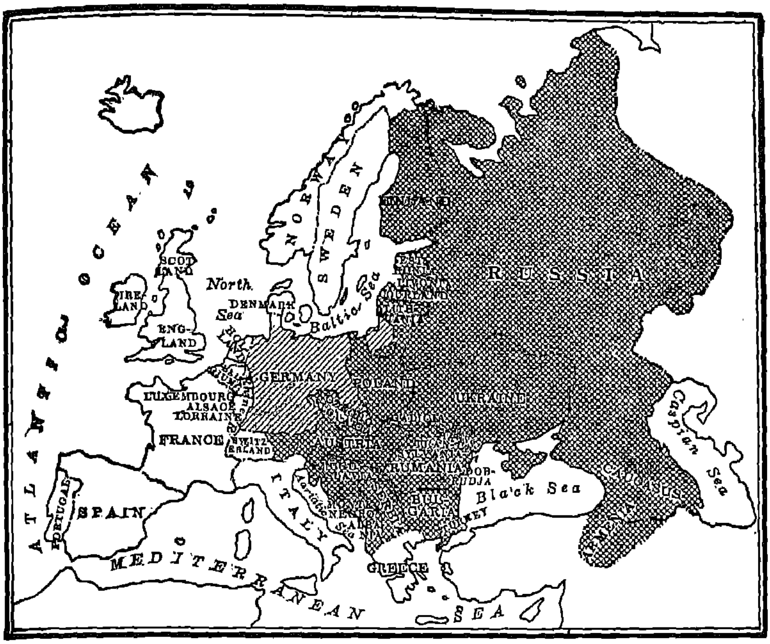

FIG. 239. THE ESTABLISHED AND EXPERIMENTAL NATIONS OF EUROPE
The established nations are in white; the experimental nations shaded. After a time Germany should become white also.

kings" from the continent of Europe, and the establishment of the democratic type of government as the ruling type of the future. Some of the nations for a time will be in a sense experimental, as shown on the above map, and even well-governed Germany must learn new forms and ways, but in time government of and by and for the people is practically certain to become established everywhere on the continent of Europe.

Still more, the outcome of the World War would seem to indicate that democratic forms of government are destined in time to extend to peoples everywhere who have the capacity for using them. The great problem of the coming century, then, and perhaps even of succeeding centuries, will be to make democracy a safe form of government for the world. This can be done only by a far more general extension of educational opportunities and advantages than the world has as yet witnessed. In the hands of an uneducated proletariat democracy is a dangerous instrument. In Russia, Mexico, and in certain of the Central American Republics

we see what a democracy results in in the hands of an uneducated people. There, too often, the revolver instead of the ballot box is used to settle public issues, and instead of orderly government under law we have a reign of injustice and anarchy. Only by the slow but sure means of general education of the masses in character and in the fundamental bases of liberty under law can governments that are safe and intelligent be created. In a far larger sense than anything we have as yet witnessed, education must become the constructive tool for national progress.

The great needs of the modern world call for the general diffusion among the masses of mankind of the intellectual and spiritual and political gains of the centuries, which are as yet, despite the great recent progress made in extending general education, the possession of but a relatively small number of the world's population. Among the more important of these are the religious spirit, coupled with full religious liberty and tolerance; a clear recognition of the rights of minorities, so long as they do not impair the advancement of the general welfare; the general diffusion of a knowledge of the more common truths and applications of science, particularly as these relate to personal hygiene, sanitation, agriculture, and modern industrial processes; the general education of all, not only in the tools of knowledge, but in those fundamental principles of self-government which lie at the basis of democratic life; training in character, self-control, and in the ability to assume and carry responsibility; the instilling into a constantly widening circle of mankind the importance of fidelity to duty, truth, honor, and virtue; the emphasis of the many duties and responsibilities which encompass all in the complex modern world, rather than the eighteenth-century individualistic conception of political and personal rights; the clear distinction between liberty and license; and the conception of liberty guided by law. In addition each man and woman should be educated for personal efficiency in some vocation or form of service in which each can best realize his personal possibilities, and at the same time render the largest service to that society of which he forms a part.

The great needs of the modern world also call for that form of education and training which will not merely impart literacy and prepare for economic competence and national citizenship, but which will give to national groups a new conception of national character and international morality and create new standards of value for human effort. National character and international

morality are always the outgrowth of the personality of a people, and this in turn calls for the inculcation of humane ideals, the proper discipline of the instincts, the training of a will to do right, good physical vigor, and, to a large degree, the development of individual efficiency and economic competence. Moral and religious instruction, as it has been given, will not suffice, because it does not reach the heart of the problem. No nation has shown more completely the utter futility of religious instruction to produce morality than has Germany, where the instruction of all in the principles of religion has been required for centuries.

The problem of the twentieth century, then, and probably of other centuries to come, is how the constructive forces in modern society, of which the schools of nations should stand first, can best direct their efforts to influence and direct the deeper sources of the life of a people, so that the national characteristics it is desired to display to the world will be developed because the schools have instilled into every child these national ideals. Many forces must coöperate in such a task, but unless the schools of nations become clearly conscious of national needs and of international purposes, become inspired by an ideal of service for the welfare of mankind, substitute among national groups competition in the things of the spirit — art, architecture, music, sports, education, letters, sanitation, housing, public works, and such applications of science as minister to health and happiness — for competition in the creation of material wealth, the piling-up of armaments, the extension of national boundaries, and the present overemphasis of a narrow nationalism, and direct the energies of coming generations to the carrying-out of this new and larger human service, nations must inevitably fail to reach the world position they might otherwise have occupied, destructive international competition and warfare will continue, and the advancement of world civilization and international well-being will be greatly retarded thereby.

In this work of advancing world civilization, the nations which have long been in the forefront of progress must expect to assume important rôles. It is their peculiar mission — for long clearly recognized by Great Britain and France in their political relations with inferior and backward peoples; by the United States in its excellent work in Cuba, Porto Rico, and the Philippines; and clearly formulated in the system of "mandatories" under the League of Nations — to help backward peoples to advance, and

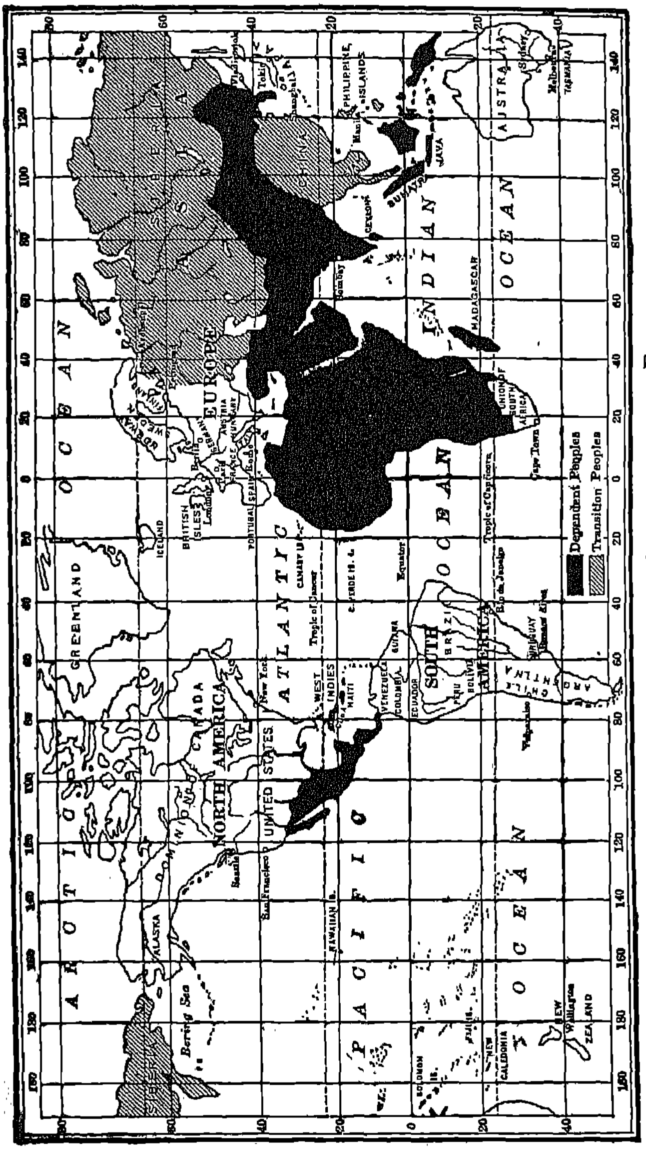

FIG. 240. THE EDUCATIONAL PROBLEMS OF THE FUTURE

Transition peoples are shaded; dependent and backward peoples black. The "mandatories" of the "League of Nations" will be in the black areas, and will have to be carried by the nations which have made the most progress in civilization and shown the highest sense of responsibility for the welfare of peoples that have come under their care. The black areas reveal "The White Man's Burden" of the future.

to assist them in lifting themselves to a higher plane of world civilization. In doing this a very practical type of education must naturally play the leading part, and time, probably much time, will be required to achieve any large results. Disregarding the

large need for such service among the leading world nations, the map reproduced on the opposite page reveals how much of such work still remains to be done in the world as a whole. "The White Man's Burden" truly is large, and the larger world tasks of the twentieth century for the more advanced nations will be to help other peoples, in distant and more backward lands, slowly to educate themselves in the difficult art of self-government, gradually establish stable and democratic governments of their own, and in time to take their places among the enlightened and responsible peoples of the earth.

At the bottom of all this work and service lie the new human-liberty conceptions first worked out and formulated for the world by little Greece. In time the ideas to which they gave expression have become the heritage of what we know as our western civilization, and the warp and woof of the intellectual and political life of the modern world. As a result of the Industrial Revolution, and of the new political and commercial and social forces of our time, this western civilization, using education as its great constructive tool, is now spreading to every continent on the globe. The task of succeeding centuries will be to carry forward and extend what has been so well begun; to level up the peoples of the earth, as far as inherent differences in capacity will permit; and to extend, through educative influences, the principles and practices of a Christian civilization to all. In establishing intelligent and interested government, and in moulding and shaping the destinies of peoples, general education has become the great constructive tool of modern civilization. A hundred and fifty years ago education was of but little importance, being primarily an instrument of the Church and used for church ends. To-day general education is an instrument of government, and is rightfully regarded as a prime essential to good government and national progress. With the spread of the democratic type the importance of the school is enhanced, its control by the State becomes essential, its continued expansion to include new types of schools and new forms of educational opportunities and service a necessity, the study of its organization and administration and problems becomes a necessary function of government, while the training it can give is dignified and made the birthright of every boy and girl.

INDEX

Abelard, 188–90, 196.
Academie des Armes, 404.
Academy, the, 44, 272; at Venice, 250, 265; in Europe and America, 400, 418, 463, 524, 696–99.
Act, Five-Mile, 324; Roman Catholic relief, 490; of Conformity, 324, 400: of Supremacy, 298, 321, 358.
Adams, John, 526.
Adelhard, 185.
Advisory Order of 1717, 555.
Africa, education in South, 717.
Agricola, 254, 271, 389.
Agriculture, beginnings of instruction in, 546; science applied to, 800; first schools of, 801; a world movement, 802.
Agricultural Institute of Fellenberg, 546.
Albany, educational beginnings in, 662.
Albertus Magnus, 191.
Alcuin, 140, 163.
Aldus press, 250, 257.
Alexandria, importance of, in history, 47–49.
Alexandrian learning, 48, 381.
Alfred, King, 145–47.
Algebra, study of, begun, 280, 392.
Algemeine Landrecht, the, 565.
Algiers, education in, 741, 787.
Alhazen, 185.
Alphabet, origins of, 77.
Altenstein, Baron von, 581.
America, battles for schools in, 676; begins constitutional government, 494; colonial colleges in, 703; contributions to world history, 496; educational ladder evolved, 708; effect of Revolutionary War on schools, 654; Protestant settlement of, 356.
Anglican educational foundations, 319–26.
Anselm, 187.
Antoninus, St., 264.
Apprenticeship education, 210, 452; breakdown of, 734.
Aquinas, Thomas, 191, 227.
Argentine, The, education in, 717; school system of, 718.
Aristotle, 42, 197, 225, 390; translations of, 185, 226.
Arithmetic, Gerbert's, 160; in Greece, 27; in Middle Ages, 160, 280; in Rome, 65; in Seven Liberal Arts, 158; first modern texts in, 444.
Arnaul de Marviel, 243.
Arnold, Matthew, on Guizot, 599; on Napoleon, 604.
Astronomy, in Seven Liberal Arts, 160, 280.
Athenian education, the new, 39–50; the old, 23–37.
Athens, university of, 45.
Attica, ancient, 17–20.
Augustine, St., 96, 138, 198.
Austria, education in, 715, 716.
Austrian reformers, 475.
Austrian School Code of 1774, 562.
Averroës, 185.
Avicenna, 185, 198, 226.

Baccalaureus, in a mediæval university, 222.
Bache, Alexander D., 752.
Bacon, Sir Francis, 390, 394, 405, 423.
Bacon, Roger, 227.
Bacteria, isolation of, 726.
Bagdad, Mohammedan learning at, 182.
Baines, Edward, on education, 641.
Balfour Annexation Law of 1912, 645.
Baltimore, educational beginnings in, 661.
Banking, revival of, 207.
Barbarian migrations, 109–23.
Barbarian tribes accept Christianity, 118–21.
Barnard, Henry, 690, 753.
Basedow, J. B., 534–38.
Battles for education in U.S., 676.
Bede, Venerable, 139.
Bell, Andrew, 622–24.
Benedict, St., 99, 128.
Benedictines, 100, 128.
Berlin, University of, 574–77.
Bible, translation of, into English, 289, 290 into French, 289; into German, 310.
Bills of Rights, 498.
Binet, Alfred, 821.
Blind, education of, 819.
Blow, Susan, 766.
Boccaccio, 245.
Boethius, 163.
Bologna, law developed at, 192–97, 225.
Boston, first high school at, 699.
Boston Latin School, 361.
Brahe, Tycho, 387, 394.
Braidwood, Thomas, 819.
Brazil, education in, 717, 719.
Brethren of the Common Life, 271.
Britain, introduction of Christianity into, 119, 138; early learning in, 138.
British and Foreign School Society, 625.
British Museum founded, 492.
Brothers of the Christian Schools, 347–51, 515, 590, 596.

INDEX

Brougham, Lord, 625–31, 633, 636.
Budæus, Guillaume, 268.
Bülow, Baroness, 765.
Bunyan, John, 491.
Burgher class, rise of, 207.
Burgher school, 418, 419, 599.

Cadet years, in ancient Greece, 34.
Cæsar de Bus, 346.
Cahiers of 1789, 512.
Calvin, John, 298, 330.
Calvinists, educational work of, 330–35.
Cambridge, and science study, 423.
Cambridge university, founding of, 218.
Campe, J. H., 538 f.
Campion, teaching of, 283.
Canada, education in, 716.
Canon Law organized, 196.
Capella, Martianus, 163.
Carter, James G., 700, 702.
Cassian, 99, 128.
Cassiodorus, 163.
Catechetical schools, 93.
Catechism, 311, 430, 437, 442.
Catechumenal instruction, 92.
Cathedral schools, 97, 152, 188.
Cathedral school at Paris, 189.
Cathedral school at York, 139.
Catherine II of Russia, 477, 511, 715.
Cato the Elder, 63.
Cavour, Count of, 609.
Caxton, work of, 256.
Certificates, first teachers', 176.
Cessatio, in mediæval universities, 221.
Chalcondyles, Demetrius, 248.
Chalotais, René de la, 509.
Chancellor, in the university, 224.
Chantry schools, 152.
Charity school, religious, 449, 615; in New Jersey, 682; in Pennsylvania, 680.
Charlemagne, his work, 140–45; his proclamations, 142–44.
Chemical laboratory, the first, 724.
Chemistry, beginnings of modern, 724.
Childhood, care of, 457, 630.
Child Labor, 738, 813–15.
Chili, education in, 718.
China, educational system of, 721, 789.
Chivalric commandments, 169.
Chivalric education, 164–69.
Chivalric ideals, 168.
Christianity, challenge of, 87; contribution of, 82–100; influence of, on barbarians, 118, 121; rejects pagan learning, 94, 282, 429; where arose, 84.
Chrysoloras, Manuel, 247.
Church and elementary education, 344–51; early organization of, 95; work of, in Middle Ages, 121.
Cicero, Petrarch discovers work of, 244, 265.
Ciceronian style, 274, 283, 398.
Cities, development of, in U.S., 667; new problems arising in, 668.
Citizen-cadet, in Ancient Greece, 34
City class, rise of, 204.
City life, revival of, 202.
City school societies in U.S., 660.
Clinton, De Witt, 660, 671, 751.
Colet, John, 254, 274, 275, 288.
Collège de France, 269.
Colleges in the U.S., 657; by 1860, 704; by 1900, 705; colonial, 703.
Comenius, John Amos, 408–16.
Commerce, revival of, 205.
Communal colleges of France, 595.
Compulsory school attendance, 815–17; in England, 644; in German lands, 552, 815; in U.S., 816.
Concordat of Napoleon, 590.
Condorcet, 514, 516, 597.
Conic sections, 392.
Connecticut, Bernard in, 690; Law of 1650, 366.
Conservation of energy, 725.
Constance, Council of, 291.
Constantine accepts Christianity, 91.
Constantine, of Carthage, 199, 216.
Constituent Assembly of France, 512.
Constitutional government begins, in America, 494, 499, 522; in France, 500; in other lands, 503.
Convention, National, of France, 515–18.
Convents, and their schools, 137, 150, 346.
Coote, Edmund, 443.
Copernicus, Nicholas, 386.
Council of Constance, 291.
Council of Trent, 303, 336.
Counting-board, Greek, 27; Roman, 65.
Court schools of Italy, 265–68.
Cousin, Victor, 597, 751.
Crippled children, education of, 821.
Crusade movement, 199–202.
Cuba, education in, 740, 789.
Curriculum, evolution of, elementary, 756, 780; grading of instruction in, 756; secondary, 281.
Cygnæus, Uno, 769.

Dalton, 724.
Dame School, in England, 447; in U.S., 665
Dante, 242.
Dartmouth College decision, 706.
Darwin, Charles, 726.
Deaf, education of, 819.
Defectives, education of, 818–21.
Defoe's *Robinson Crusoe*, 491.
De Garmo, Charles, 722 f.
Démia, Father, 745.
Democracy, spread of idea, 503, 504.
Denmark, educational system of, 713.
Descartes, René, 394, 423.
Dewey, John, 780–83.

Dialectic, in Seven Liberal Arts, 158; supersedes Grammar, 190, 280.
Diderot, 477, 482, 511.
Diesterweg, 570, 582.
Dilworth, Thos., 443, 444.
Directory, the, in France, 518.
Discipline, school, 455; by a Swabian schoolmaster, 455.
Disease, modern theory of, 383.
Dissenters allowed to establish schools, 438, 459.
Dominicans, 191 f.
Donatus, 156.
Dutch, early education among, 333–35.

Education a national tool, 739; problems of, in the future, 838; present, 828–30; scientific organization of, 824–30.
Educational societies, in England, 632; in U.S., 659.
Egypt, education in, 741.
Eighteenth century, importance of, 471–72.
Elementarwerk of Basedow, 535.
Elementary school curriculum, evolution of, 756.
Elyot, Sir Thomas, 275.
Encyclopædia, first modern, 492.
Engine, steam, 493.
England, Annexation Law of 1902, 645; Department of Science and Art created, 776; early Christian learning in, 138; educational system evolved, 649; Fisher Education Act of 1918, 649; progress since 1870, 645–50; pupil-teacher system in, 753; Reform Bill of 1832, 637; of 1867, 642; secondary education included in the national system, 646; teacher training in, 627, 753.
English Bible, 289, 321.
English eighteenth-century educational efforts, 614.
English grammar schools, 277, 278.
English Law of 1833, 638.
English Law of 1870, 642.
English liberty, beginnings of, 486.
English parliamentary battle for schools, 633–44.
English period of philanthropic effort, 622–33.
English Prayer Book, 321.
Épée, Abbé de l', 819.
Ephebic oath, the, 35.
Ephebic years, in ancient Greece, 35.
Episcopal schools, 97.
Erasmus, 274, 281, 288, 398.
Ernest, Duke, educational work of, 317, 417.
Euclid, translations of, 185, 186, 392.
Europe, illiteracy in, in 1900, 714.

Faculties, in a mediæval university, 223–25; in a modern university, 422.
Farraday, 724.
Fechner, 826.
Feeble-minded, education of, 820.
Fellenberg and his Institutions, 546, 800.
Female academies founded, 698.
Feudalism, 164.
Fichte, J. G., 545, 567, 574.
Finland, education in, 297, 713; manual training in, 769.
Five-Mile Act, the, 324.
Florence, Medicean Library at, 251; revival of banking at, 207; revival of study of Greek at, 248.
Fourcroy, Count de, 590.
Fourier, Peter, 346.
France, creation of primary education in, 596–600; educational organization under Napoleon, 590–96; eighteenth-century conditions in, 478; higher schools created by Napoleon, 593; Law of 1791, 512; Law of 1793, 515; Law of 1795, 517; Law of 1802, 590–92; Law of 1833, 597; Law of 1850, 601; progress since 1870, 602; reduction of illiteracy in, 602; revolution in thinking, in 18th century, 484; revolutionary pedagogy of, 508–19; school system created, 598; special revolutionary foundations, 518; University of, created, 593.
Franciscans, 191 f.
Francke's Institutions, 418.
Frederick Barbarossa, 216.
Frederick the Great, 474, 558–61.
Frederick William I, 555.
Frederick William III, 565, 580.
Frederick William IV, 583.
Froebel, Fr., 764–68; Dewey's modification of educational ideas of, 780–82.

Galen, 47, 185, 198, 226, 380, 382.
Galileo, G., 388.
Gallaudet, Thos. R., 819.
Gaza, Theodorus, 248, 267.
General Land-Schule Reglement, 558.
Geneva, center of Calvinism, 299.
Genoa, center of commerce, 206.
Geographical discovery, revival of, 257.
Geography, in Seven Liberal Arts, 160, 280.
Geometry, in Seven Liberal Arts, 160, 280.
Gerbert, 160, 183.
Gerhard of Cremona, 185.
German education, development of. *See* Prussia.
German educational propaganda abroad, 741.
German school organization, early, 312–19, 552.
Gesner, Conrad, 390.
Gesner, J. M., 555.
Gesner, Rector, 420.
Gilbert, William, 389.

INDEX

Ginnasio, of Italy, 609.
Girls, education of, in early Church, 100.
Gladstone and Law of 1870, 642.
Gotha, Duke Ernest's work in, 317, 417.
Göttingen, university of, 423.
Grading of school instruction, 756–59.
Grammar, at Rome, 67; in Seven Liberal Arts, 155, 279, 280.
Grammar schools, English, 277, 353, 461; founded after the Reformation, 321–24.
Grammatist, school of, 26.
Gratian organizes Canon Law, 196, 226.
Greece, early education in, 21; golden age of, 39; land and government of, 15; our debt to, 50, 101.
Greek at Cambridge, 274, 289.
Greek Church, divides off, 103; in education in East, 715.
Greek conquest of Eastern Mediterranean, 46.
Greek education, the old, 15–37; the new, 39–50; results under old, 36.
Greek higher education, spread and influence of, 46.
Greek language and learning, preservation of, 57.
Greek learning, in Syria, 180; forgotten, 138, 247; revival of, 247–49.
Greek universities, ancient, 47.
Gregorian calendar, 392.
Grocyn, William, 253, 274, 288.
Grote, Gerhard, 271.
Guarino da Verona, 266.
Guilds of Middle Ages, 209; university degrees in, 221.
Guizot, M., 598–600.
Gulliver's Travels, 491.
Gundling, at Halle, 554.
Gymnasia, German, 316, 353, 418, 554, 558; reorganized, 572, 574, 577.
Gymnasial training in Ancient Greece, 32.
Gymnasium, ancient Greek, 33, 272; Sturm's, 273.
Gymnastics in Greek education, 31, 41.

Halle, University of, 423, 553–55.
Hamilton, Alexander, 660.
Hanseatic League, 208.
Hardenburg, 567.
Haroun-al-Raschid, 182.
Harris, William T., 766.
Harvard College, early history of, 367, 657, 702, 703; founding of, 363; Greek brought to, 254.
Harvey, William, 389, 394.
Health, new interest in, 822.
Health supervision, 823.
Hebrew, revival of study of, 254, 269.
Hebrews, early, 84.
Hecker, Julius, 421, 558, 562.
Hedge schools, 451.
Hegius, 271, 289.
Heidelberg, University of, founding of, 216, 220; center of humanistic learning, 254, 270.
Hellinization of Eastern Mediterranean, 46, 180–83; of Rome, 62.
Herbart, J. Fr., 759–64; contributions of, 763.
Herbartian ideas, in Germany, 762; in U.S., 762.
Heretic, in Middle Ages, 291.
Hieronymians, 271.
High school, in U.S., battle to establish, 695–702; first, 699; for agriculture, 802; Massachusetts law of 1827, 700.
High schools, some early, 700.
Hippocrates, 185, 197, 226, 380, 389.
Hodder's Arithmetic, 444.
Holland, education in, 333, 712.
Home and Colonial Infant Society, 631, 753.
Horn Book, 440.
Huguenots, 299, 301, 356; in education, 333.
Humanism, a religious reform movement, 288; in France, 268; in England, 274; in Germany, 269; rise and spread of, 252–54.
Humanistic course of study, 267.
Humanistic realism, 397–401.
Humboldt, Wilhelm von, work of, in reorganizing secondary education, 472–74; in creating the University of Berlin, 474–77.
Huss, John, 291.
Huxley, Thomas, 778; his definition of an educated man, 779.

Idiotic, training of, 820.
Illinois, educational provisions of first constitution, 671.
Illiteracy, in Europe by 1900, 714; in France, 602; in German lands, 583.
Individual instruction, 454.
Industrial revolution, 728, 736, 779; effects of, on education, 736, 790.
Industry, revival of, in Middle Ages, 207.
Infant schools, in England, 630; in France, 600; in U.S., 664–66.
Innovators, ideas of, 406.
Inquisition, the, 384.
Institutes of France, 515.
Institutes of Justinian, 195.
Ireland, learning in early, 138.
Irnerius of Bologna, 195.
Isidore of Seville, 163.
Isocrates, 43.
Italy, beginnings of modern education in, 606; decline after the Renaissance, 605; modern school system created, 608–12; recent educational progress, 610; work of Sardinia and Cavour, 609.

James, William, 826.
Jansenists, 347.

INDEX

Japan, education in, 719; school system created, 720.
Jay, John, 526, 660.
Jefferson, Thomas, 525.
Jerome, St., 99.
Jesuit colleges, 337.
Jesuit education, 336–44.
Jesuit methods, 341.
Jesuit school organization, 340.
Jesuit teachers, training of, 342.
Jesus, his teachings, 86.
Jesus, Society of, 336–44.
Jewish faith, early, 85.
Joseph II, 475.
Justinian, *Institutes* of, 195, 226.

Kalamazoo decision, 701.
Kant, Immanuel, 534, 537.
Kepler, Johann, 387, 394.
Kindergarten idea, 767; contribution of, 768; Dewey's reorganization of, 781; in U.S., 766; origin of, 764; spread of, 765.
King's College (Columbia), 703.
Knight, the, 167.
Knox, John, 335.
Krüsi, Hermann, 545.

Lakanal, 516.
Lancaster, Joseph, 624–27.
Lancastrian system, in England, 627–30; in U.S., 662–64.
Land grants for education, in U.S., 677.
Languages, rise of national, 242.
La Salle, educational work of, 347–51, 745.
Latin, importance of, in Middle Ages, 282.
Latin grammar schools, in England, 277, 321–24, 353, 461, 776; in New England, 361, 698; in Middle Ages, 307.
Law, canon, 196, 226.
Law, evolution of, as a study, 192–97, 226.
Leaving examinatitons esablished, 564.
Leeds Mercury on education, 641.
Lefèvre, Jacques, 289.
Lehrerseminar, 563.
Lehrfreiheit und Lehrnfreiheit, 554.
Leonard and Gertrude, 539, 542.
Lepelletier le Saint-Fargeau, 516.
Libraries, early monastic, 135; university, 228, 231; first circulating, 492.
License to teach, first, 176; in Middle Ages, 222.
Liceo in Italy, 610.
Liebig, Justus von, 724.
Lily's Latin Grammar, 276, 281.
Linacre, William, 253, 274, 288.
Lister and antiseptics, 726.
Literature, in ancient Greek education, 29.
Living conditions, transformation of, in 19th century, 729–36.
Locke, John, 402, 433–37.
Logarithms, 392.
Lollards, the, 291.
Lombard League, the, 194.
Lombard, Peter the, 171, 191.
Lotze and modern psychology, 826.
Loyola, Ignatius, 336.
Luder, Peter, 254.
Ludi magister, the, 65.
Luther, Martin, 270; his *Theses*, 295; his educational ideas, 306, 312–14.
Lutheran school organization, 312–19.
Lutheranism, 297, 300.
Lycées, creation of, under Law of 1802, 591, 595, 596, 603; instruction in, 601, 775.
Lyceum, the, 44, 272.
Lyell, Charles, 725.
Lyon, Mary, 698.

Macaulay, Lord, 640.
Madison, James, 525, 526.
Magellan, 260.
Malthus, Rev. F. R., 621.
Mandeville, Sir John, 258.
Mann, Horace, on Prussian Teachers' Seminaries, 570; work in establishing normal schools, 752; work in Massachusetts, 689, 692, 702.
Manual activities in education, 768–72; contribution of, 771; origin of instruction in, 769; spread of the idea of, 769.
Manual-labor school idea, 564.
Manual training high school in U.S., 796.
Manufacturing, rise of, 492.
Manumission Society of N.Y., 660.
Manuscripts, copying of, 132.
Maria Theresa, 475, 562.
Massachusetts Law of 1642, 326, 363, 506; Law of 1647, 365, 506; Law of 1827, 700.
Massachusetts school system, first constitutional provision for, 522; fundamental basis of, 366.
Maturitätsprüfung, 573.
Maurus, R., 155, 164.
Mayo, Charles, 631.
Mebrissensis, 253.
Mechanics, 392.
Mediæval Church, repressive attitude of, 173.
Mediæval education, characteristics of, 171, 174.
Mediæval man, transformation of, 243.
Mediæval town, a typical, 203.
Mediævalism, reaction against, 278.
Medical inspection in schools, 823.
Medical instruction, beginnings of, 198; in Middle Ages, 226; in modern times, 803.
Medicean Library, 250.
Medici, Cosimo de, 250, 257, 265.
Melancthon, 270, 281, 289; his Saxony plan 316.
Mercator's map of the world, 392.
Methodism, rise of, 489.
Methods of teaching, evolution of new, 75[illegible]

Middle Ages, deadly sins of, 173; problems faced by, 123; what started with, 101.
Middle schools, 791.
Migrations of peoples, 732–34; to U.S., 790.
Mill, James, 625, 631.
Milton, John, 399.
Minnesingers, rise of, 186, 242.
Mirabeau, Count de, 512.
Modern studies, evolution of, 281.
Mohammedans in Spain, 180–86; influence of, on Europe, 184–86.
Monasteries, civilizing work of, 122; in Charlemagne's day, 136; preserve learning, 129–36; suppression of, in England, 321.
Monastic collections, 135.
Monastic schools, 100, 128, 150, 152.
Monasticism, rise of, 98.
Monitorial system, in England, 624–30; in U.S., 662–64.
Monroe Doctrine, 503, 717.
Montaigne, 401.
Monte Cassino, 99, 245.
Montesquieu, 480.
Montpellier as a medical center, 199, 225, 226.
More, Sir Thomas, 288.
Morocco, education in, 741, 787.
Mount Holyoke College, 698.
Mulcaster, Richard, 432.
Music, in ancient Greece, 30; in Seven Liberal Arts, 162, 280.

Napoleon, 518; and technical education, 797; organizing work of, in France, 590–95; in Holland, 712; in Italy, 603–07.
National Convention of France, 515; work of, 516–18.
National needs in education, 836.
Nationality, rise of spirit of, 242, 473, 738; schools to promote, 789.
Nations, educational problems of the future of, 838; established and experimental, 835.
Necker, 485.
Neptune, discovery of, 725.
Nestorian Christians, 181.
Netherlands, early education in, 333.
New England, beginning of schools in, 360.
New England Primer, 374.
New Jersey, early educational history, 371; elimination of charity school in, 683.
Newspapers, first, 309, 490, 491.
Newton, Sir Isaac, 388, 395, 423, 485.
New York, attempt to divide the school funds in, 693; early educational history in, 368, 660, 666; elimination of rate bill in, 685; first State Superintendent, 687.
New Zealand, education in, 716.
Nicene Creed, 96, 196.
Nobility, training of, in early Middle Ages, 164–69; in later Middle Ages, 265–68; in early modern times, 403–05, 418, 462.
Normal school, contribution of Pestalozzi to work of, 746–49; in France, 517, 595, 597, 750; in Prussia, 561, 562, 570, 750; in U.S., 664, 745.
Northmen, invasions of, 145.
Nunneries, 100.

Oberschulecollegium Board created, 564; abolished, 569.
Odyssey, translation of, into Latin, 61.
Orbis Pictus, 412–15, 441.
Orphanages, first, 813.
Orphans, care of, 821.
Owen, Robert, 630.

Pagan learning, rejection of, in West, 95.
Page, a, 166.
Paine, Tom, 622.
Palace School of Charlemagne, 141.
Palæstra, in ancient Greece, 31, 34.
Palestine, education in, 741.
Papal schism, the, 291, 302.
Paper, invention of, 254.
Paracelsus, 389.
Paris, cathedral school at, 189, 217; rise of University of, 217, 225; work of University of, 423.
Parish school of early Middle Ages, 151.
Pasteur, Louis, 726.
Pauper school, 451.
Pauper school idea, in England, 615; in U.S., 679–84.
Peabody, Elizabeth, 766.
Pedagogy. *See* Education.
Pennsylvania, early educational history of, 369.
Pennsylvania, Law of 1834, 681.
Percyvall, John, 277.
Peru, education in, 718.
Pestalozzi, and Basedow compared, 538; and Froebel, 764; contribution of, 541–44; to teacher-training problem, 746–49, 760; Prussia sends teachers to study work of, 569; spread of ideas of, 544; work of, 539–46.
Peter the Great, 477.
Peter the Lombard, 171, 191, 227.
Petrarch, 244, 247, 265, 386, 424.
Philadelphia, educational beginnings in, 652, 666.
Philanthropinum of Basedow, 536, 538.
Philippines, education in, 740, 789.
Philosophers banished from Rome, 63.
Phrase books, 282.
Physics, in Middle Ages, 162; modern, 724
Piarists, 346.
Pietism, 418.
Pilgrimages, in Middle Ages, 200.
Pilgrim's Progress, 491.
Plato, 41.
Political influences modify school, 787–95

Political pamphlets appear, 490.
Polo, Marco, 258.
Poor-Law legislation in England, 325, 367, 372.
Porto Rico, education in, 740, 789.
Pounds, John, 619.
Precenter, the, 176.
Presbyterians, Scotch, 299, 335.
Press, freedom of, 490.
Primary education in U.S., 666.
Primer, the New England, 441.
Primer, the religious, 440.
Principia Regulative, the, 557.
Printing, early presses, 256; invention of, 254.
Private adventure schools, 451.
Probejahr, the, 573.
Protestant revolts, results of, 296.
Protestant school organization, 319.
Providence, early educational beginnings in, 662; grading of schools in, 756–59.
Prussia, benevolent rulers of, 473; earliest school laws for, 555, 557–61, 565; earliest Teachers' Seminaries in, 746 f.; humiliation of, 566; regeneration of, 566–79.
Prussian school system, 577; 19th-century characteristics evolved, 578; modern purpose of, 585; reaction after 1848, 580–84; reorganization of 1872, 584.
Psychology, becomes the master science, 755; history of modern, 826.
Ptolemy, 49, 160, 185, 385.
Public meetings, first in England, 491.
Public School Society of N.Y., 660.
Punishments, school, 455.
Pupil-teacher system, 753.
Puritans, the, 299, 357, 488.

Quadrivium, the, 158–62, 164, 280.
Quintilian, 67, 155, 246.
Quintilian's *Institutes of Oratory*, recovered, 246, 257, 265.

Rabelais, Fr., 398.
Ragged Schools, 618, 619.
Raikes, Robert, 617.
Rate bill, elimination of, in U.S., 684–86.
Ratio Studiorum, 340.
Ratke, Wolfgang, 607.
Raumer, Karl Georg von, 545 f, 825.
Raymer, Andreas, 317, 417.
Reading, in ancient Greece, 28.
Reading schools, 445.
Realien, 419, 796.
Realism in education, 397–425.
Realschule, first, 420; in Germany, 423, 582, 775, 796.
Rector, the, in the University, 224.
Reformation, the Protestant, 287–304; and education, 35[illegible].
Reformatories, juvenile, 813.
Reform Bill, of 1832 in England, 637; of 1867 in England, 642.
Rein, William, 762.
Religions in the Roman world, 82.
Religious freedom, 300, 489, 497.
Religious societies for education in England, 632.
Religious theory for schools, 312, 437; weakening of, 438, 493, 519.
Reuchlin, Johann, 255, 271, 289.
Revolution in France, results of, 502.
Revolutionary War in U.S., effect of, on education, 657.
Rhetoric, in Seven Liberal Arts, 157; law a part of, 157; law separates from, 196; schools of, at Rome, 69.
Rhode Island, Barnard in, 690; early education in, 368.
Richter, Jean-Paul, 534.
Ritter, Carl, 544 f.
Ritterakademien, 405, 418, 462.
Robinson Crusoe, 491.
Rolland, 510.
Roman cities, fate of, 117, 193; survival of law in, 194.
Roman education, schools die out, 116; ancient system, 721.
Roman law, influence of, 117.
Rome, barbarian inroads on, 111; debt to, 102; education and work of, 53–78; great mission of, 55, 74–78.
Rousseau, Jean Jacques, 483, 508, 530–33.
Royal Society of Great Britain, 492.
Russia, benevolent despots of, 477; nineteenth-century progress, 715; work of Catherine II, 477, 511.

St. Paul's School, 275.
Saleno, rise of medical study at, 198.
Salzmann, C. G., 538 f.
Sanitary science, creation of, 727, 803.
Sardinia, beginning of Italian educational organization in, 608.
Savonarola, 288.
Savoy, educational beginnings in, 606.
Saxe-Gotha, Duke Ernest's work in, 317.
Saxony plan of Melancthon, 316; school organization, 552, 561.
Scharnhorst, 567.
Schism, the papal, 291, 312.
Scholastic theology, rise of, 189–92.
Scholasticus, 175, 176, 224.
School conditions by 1750, 437–58, 519–21, 563.
School societies, in England, 618, 632; in U.S., 659.
School support, beginnings of, 459.
Schools of industry, 450, 453.
Science, character of ancient, 380; loss and recovery of, 803; in agriculture, 800; in industry, [illegible], 804; in medicine, 803;

National Institute of Education